भगवान् महावीर के २५००वें परिनिर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रकाशित

का

विशेषांक

जैन संस्कृति और राजस्थान

जैन संस्कृति और राजस्थान

[राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनधर्म के बहुआयामी योगदान का मूल्यांकन]

●

प्रधान सम्पादक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

●

सम्पादक

डॉ० कमलचन्द सोगानी

डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

●

सह सम्पादक

डॉ० प्रेमसुमन जैन

डॉ० देव कोठारी

डॉ० महेन्द्र भानावत

महावीर कोटिया

●

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर–३

'जिनवाणी' विशेषांक

अप्रैल – जुलाई, १९७५ : वर्ष ३२, अंक ४–७
वीर निर्वाण संवत् २५०१

●

प्रबन्ध सम्पादक

प्रेमराज बोगावत

●

संस्थापक

श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

●

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर–३०२००३

●

सम्पादकीय सम्पर्क-सूत्र

सी–२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर–३०२००४

●

वार्षिक शुल्क : **दस रुपया**
आजीवन शुल्क : **स्वदेश में १५१ रु०**
आजीवन शुल्क **विदेश में ४०१ रु०**
इस अंक का मूल्य : **दस रुपये**
आवरण पृष्ठ **श्री पारस भंसाली**

●

मुद्रक :

जिनवाणी प्रिण्टर्स के लिए

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर–३

नोट :–यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक अथवा मण्डल की सहमति हो।

समर्पण

परम श्रद्धेय

आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज

के

नैतिक उत्थान एवं सांस्कृतिक जागरण

में निरत

साधनाशील महिमामय व्यक्तित्व

को

सादर सविनय

समर्पित

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम खण्ड

जैन संस्कृति (१ से ११४)

द्वितीय खण्ड

राजस्थान में जैन संस्कृति का विकास (११५–१७८)

४. उद्योग और वाणिज्य (३४७-३८४)

५. धर्म और समाज (३८५-४६६)

तृतीय खण्ड
राजस्थान का सांस्कृतिक विकास और जैन धर्मानुयायी (१७९–४६६)

१. पुरातत्त्व और कला (१८५–२१४)

२. भाषा और साहित्य (२१५–३०४)

३. प्रशासन और राजनीति (३०५–३४६)

चतुर्थ खण्ड

परिचर्चा (४६७-४९०)

परिशिष्ट

हमारे सहयोगी लेखक (४९१-४९६)

□□

संस्कृति जन का मस्तिष्क है और धर्म जन का हृदय। जब-जब संस्कृति ने कठोर रूप धारण किया, हिंसा का पथ अपनाया, अपने रूप को भयावह व विकृत बनाने का प्रयत्न किया, तब तब धर्म ने उसे हृदय का प्यार लुटा कर कोमल बनाया, अहिंसा और करुणा की बरसात कर उसके रक्तानुरंजित पथ को शीतल और अमृतमय बनाया, संयम, तप और सदाचार से उसके जीवन को सौन्दर्य और शक्ति का वरदान दिया। मनुष्य की मूल समस्या है—आनन्द की खोज। यह आनन्द तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि मनुष्य भय-मुक्त न हो, आतंक-मुक्त न हो। इस भय-मुक्ति के लिये दो शर्तें आवश्यक हैं। प्रथम तो यह कि मनुष्य अपने जीवन को इतना शीलवान, सदाचारी और निर्मल बनाए कि कोई उससे न डरे। द्वितीय यह कि वह अपने में इतना पुरुषार्थ, सामर्थ्य और बल संचित करे कि कोई उसे डरा-धमका न सके। प्रथम शर्त को धर्म पूर्ण करता है और दूसरी को संस्कृति।

जैनधर्म और मानव-संस्कृति :

जैनधर्म ने मानव संस्कृति को नवीन रूप ही नहीं दिया, उसके अमूर्त्त भाव तत्त्व को प्रकट करने के लिए सभ्यता का विस्तार भी किया। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस मानव-संस्कृति के सूत्रधार बने। उनके पूर्व युगलियों का जीवन था, भोगमूलक दृष्टि की प्रधानता थी, कल्पवृक्षों के आधार पर जीवन चलता था। कर्म और कर्तव्य की भावना सुषुप्त थी। लोग न खेती करते थे न व्यवसाय। उनमें सामाजिक चेतना और लोक दायित्व की भावना के अंकुर नहीं फूटे थे। भगवान् ऋषभदेव ने भोगमूलक संस्कृति के स्थान पर कर्ममूलक संस्कृति की प्रतिष्ठा की। पेड़-पौधों पर निर्भर रहने वाले लोगों को खेती करना बताया। आत्म-शक्ति से अनभिज्ञ रहने वाले लोगों को अक्षर और लिपि का ज्ञान देकर पुरुषार्थी बनाया। दैववाद के स्थान पर पुरुषार्थवाद की मान्यता को संपुष्ट किया। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने के लिये हाथों में बल दिया। जड़ संस्कृति को कर्म की गति दी। चेतना शून्य जीवन को सामाजिकता का बोध और सामूहिकता का स्वर दिया। पारिवारिक जीवन को मजबूत बनाया, विवाह, प्रथा का समारंभ किया। कला-कौशल और उद्योग-धन्धों की व्यवस्था कर निष्क्रिय जीवन-यापन की प्रणाली को सक्रिय और सक्षम बनाया।

संस्कृति का परिष्कार और महावीर :

अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक आते-आते इस संस्कृति में कई परिवर्तन हुए। संस्कृति के विशाल सागर में विभिन्न विचारधाराओं का मिलन हुआ। पर महावीर के समय इस सांस्कृतिक

मिलन का कुत्सित और वीभत्स रूप ही सामने आया। सस्कृति का जो निर्मल और लोककल्याणकारी रूप था, वह अब विकारग्रस्त होकर चन्द व्यक्तियों की ही सम्पत्ति बन गया। धर्म के नाम पर क्रिया-काण्ड का प्रचार बढ़ा। यज्ञ के नाम पर मूक पशुओ की बलि दी जाने लगी। अश्वमेध ही नही नरमेध भी होने लगे। वर्णाश्रम व्यवस्था मे कई विकृतिया आ गई। स्त्री और शूद्र अधम तथा निम्न समझे जाने लगे। उनको आत्म-चिन्तन और सामाजिक-प्रतिष्ठा का कोई अधिकार न रहा। त्यागी-तपस्वी समझे जाने वाले लोग अब लाखो-करोड़ो की सम्पत्ति के मालिक बन बैठे। सयम का गला घोटकर भोग और ऐश्वर्य किलकारियां मारने लगा। एक प्रकार का सांस्कृतिक सकट उपस्थित हो गया। इससे मानवता को उबारना आवश्यक था।

वर्द्धमान महावीर ने सवेदनशील व्यक्ति की भाति इस गभीर स्थिति का अनुशीलन और परीक्षण किया। साढ़े बारह वर्षों की कठोर साधना के बाद वे मानवता को इस सकट से उबारने के लिए अमृत ले आये। उन्होने घोषणा की—सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता। यज्ञ के नाम पर की गई हिंसा अधर्म है। सच्चा यज्ञ आत्मा को पवित्र बनाने मे है। इसके लिये क्रोध की बलि दीजिए, मान को मारिये, माया को काटिये और लोभ का उन्मूलन कीजिये। महावीर ने प्राणि-मात्र की रक्षा करने का उद्बोधन दिया। धर्म के इस अहिंसामय रूप ने संस्कृति को अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तृत बना दिया। उसे जन-रक्षा (मानव-समुदाय) तक सीमित न रखकर समस्त प्राणियो की सुरक्षा का भार भी संभलवा दिया। यह जनतत्र से भी आगे प्राणतत्र की व्यवस्था का सुन्दर उदाहरण है।

जैनधर्म ने सास्कृतिक विषमता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। वर्णाश्रम व्यवस्था की विकृति का शुद्धिकरण किया। जन्म के आधार पर उच्चता और नीचता का निर्णय करने वाले ठेकेदारो को मुँह तोड जवाब दिया। कर्म के आधार पर ही व्यक्तित्व की पहचान की। अपमानित और अचल सम्पत्तिवत् मानी जाने वाली नारी के प्रति आत्म-सम्मान और गौरव की भावना जगाई। उसे धर्म ग्रंथो को पढने का ही अधिकार नही दिया वरन् आत्मा के चरम विकास मोक्ष की अधिकारिणी माना। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इस युग मे सर्वप्रथम मोक्ष जाने वाली ऋषभ की माता मरुदेवी ही थी। नारी को अबला और शक्तिहीन नही समझा गया। उसकी आत्मा मे भी उतनी ही शक्ति सभाव्य मानी गई, जितनी पुरुष मे। महावीर ने चन्दनबाला की इसी शक्ति को पहचान कर उसे साध्वियो का नेतृत्व प्रदान किया। नारी को दब्बू, आत्मभीरु और साधना-क्षेत्र मे बाधक नही माना गया। उसे साधना मे पतित पुरुष को उपदेश देकर संयम-पथ पर लाने वाली प्रेरक शक्ति के रूप मे देखा गया। राजुल ने संयम मे पतित रथनेमि को उद्बोधन देकर अपनी आत्म-शक्ति का ही परिचय नही दिया, वरन् तत्त्वज्ञान का पांडित्य भी प्रदर्शित किया।

सांस्कृतिक समन्वय और भावनात्मक एकता :

जैनधर्म ने सांस्कृतिक समन्वय और एकता की भावना को भी बलवती बनाया। यह समन्वय विचार और आचार दोनो क्षेत्रों मे देखने को मिलता है। विचार-समन्वय के लिए अनेकान्त-दर्शन की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भगवान् महावीर ने इस दर्शन की मूल भावना का विश्लेपण करते हुए सांसारिक प्राणियो को बोध दिया—किसी बात को, सिद्धान्त को एक तरफ से मत देखो, एक ही तरह उस पर विचार मत करो। तुम जो कहते हो वह सच होगा, पर दूसरे जो कहते हैं, वह

भी सच हो सकता है। इसलिये सुनते ही भड़को मत, वक्ता के दृष्टिकोण से विचार करो। आज ससार मे जो तनाव और द्वन्द्व है वह दूसरों के दृष्टिकोण को न समझने या विपर्यय रूप से समझने के कारण है। अगर अनेकान्त दृष्टि के आलोक मे सभी राष्ट्र और व्यक्ति चिन्तन करने लग जायें तो झगडे की जड ही न रहे। संस्कृति के रक्षण और प्रसार मे जैनधर्म की यह देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आचार-समन्वय की दिशा मे मुनि-धर्म और गृहस्थ धर्म की व्यवस्था दी है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामंजस्य किया गया है। ज्ञान और क्रिया का, स्वाध्याय और सामायिक का सन्तुलन इसीलिये आवश्यक माना गया है। मुनि-धर्म के लिये महाव्रतो के परिपालन का विधान है। वहा सर्वथा-प्रकारेण हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के त्याग की बात कही गई है। गृहस्थ धर्म में अणुव्रतो की व्यवस्था दी गई है, जहां यथाशक्य इन आचार नियमो का पालन अभिप्रेत है। प्रतिमाधारी श्रावक वानप्रस्थाश्रमी की तरह और साधु संन्यासाश्रमी की तरह माना जा सकता है।

सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से जैनधर्म का मूल्याकन करते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि उसने सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रान्तीयतावाद, आदि सभी मतभेदो को त्याग कर राष्ट्र-देवता को बड़ी उदार और आदर की दृष्टि से देखा है। प्रत्येक धर्म के विकसित होने के कुछ विशिष्ट क्षेत्र होते है। उन्ही दायरो मे वह धर्म बंधा हुआ रहता है पर जैनधर्म इस दृष्टि से किसी जनपद या प्रान्त विशेष मे ही बधा हुआ नही रहा। उसने भारत के किसी एक भाग विशेष को ही अपनी श्रद्धा का, साधना का और चिन्तना का क्षेत्र नही बनाया। वह सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना मानकर चला। धर्म का प्रचार करने वाले विभिन्न तीर्थकारो की जन्मभूमि, दीक्षास्थली, तपोभूमि, निर्वाणस्थली, आदि अलग-अलग रही हैं। भगवान् महावीर विदेह (उत्तर बिहार) में उत्पन्न हुए तो उनका साधना क्षेत्र व निर्वाण स्थल मगध (दक्षिण बिहार) रहा। तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म तो वाराणसी मे हुआ पर उनका निर्वाणस्थल बना सम्मेद शिखर। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव अयोध्या मे जन्मे, पर उनकी तपोभूमि रही कैलाश पर्वत और भगवान् अरिष्टनेमि का कर्म व धर्म क्षेत्र रहा गुजरात। भूमिगत सीमा की दृष्टि से जैनधर्म सम्पूर्ण राष्ट्र मे फैला। देश की चप्पा-चप्पा भूमि इस धर्म की श्रद्धा और शक्ति का आधार बनी। दक्षिणी भारत के श्रवणवेलगोला व कारकल आदि स्थानों पर स्थित बाहुबली के प्रतीक आज भी इस राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक है।

जैनधर्म की यह सांस्कृतिक एकता भूमिगत ही नही रही। भाषा और साहित्य में भी उसने समन्वय का यह औदार्य प्रकट किया। जैनाचार्यों ने संस्कृत को ही नही अन्य सभी प्रचलित लोक-भाषाओं को अपना कर उन्हे समुचित सम्मान दिया। जहां-जहा भी वे गए, वहा-वहां की भाषाओ को चाहे वे आर्य परिवार की हो, चाहे द्राविड़ परिवार की—अपने उपदेश और साहित्य का माध्यम बनाया। इसी उदार प्रवृत्ति के कारण मध्ययुगीन विभिन्न जनपदीय भाषाओ के मूल रूप सुरक्षित रह सके है। आज जब भाषा के नाम पर विवाद और मतभेद है, तब ऐसे समय मे जैनधर्म की यह उदार दृष्टि अभिनन्दनीय ही नही अनुकरणीय भी है।

जैनधर्म अपनी समन्वय भावना के कारण ही सगुण और निर्गुण भक्ति के झगडे मे नही पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास के समय इन दोनो भक्ति-धाराओ मे जो समन्वय दिखाई पडता है, उसके बीज जैन भक्तिकाव्य मे आरम्भ से मिलते हैं। जैन दर्शन मे निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान् के स्वरूप मे एकता के दर्शन होते है। पंचपरमेष्ठी महामत्र (णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाण

आदि) में सगुण और निर्गुण भक्ति का कितना सुन्दर मेल विठाया है। अर्हन्त सकल परमात्मा कहलाते हैं। उनके शरीर होता है, वे दिखाई देते है। सिद्ध निराकार है, उनके कोई शरीर नही होता, उन्हे हम देख नही सकते। एक ही मगलाचरण मे इस प्रकार का समभाव कम देखने को मिलता है।

जैनधर्म का लोकसंग्राहक रूप :

धर्म का आविर्भाव जब कभी हुआ विषमता मे समता, अव्यवस्था मे व्यवस्था और अपूर्णता में सम्पूर्णता स्थापित करने के लिए ही हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि इसके मूल मे वैयक्तिक अभिक्रम अवश्य रहा पर उसका लक्ष्य समष्टिमूलक हित ही रहा है, उसका चिन्तन लोकहित की भूमिका पर ही अग्रसर हुआ है।

पर सामान्यत: जब कभी जैनधर्म या श्रमण धर्म के लोक सग्राहक रूप की चर्चा चलती है तब लोग चुप्पी साध लेते हैं। इसका कारण मेरी समझ मे शायद यह रहा है कि जैन दर्शन मे वैयक्तिक मोक्ष की बात कही गयी है। सामूहिक निर्वाण की बात नही। पर जब हम जैन दर्शन का सम्पूर्ण संदर्भों मे अध्ययन करते है तो उसके लोक संग्राहक रूप का मूल उपादान प्राप्त हो जाता है।

लोक संग्राहक रूप का सबसे बडा प्रमाण है लोक नायको के जीवन-क्रम की पवित्रता, उनके कार्य-व्यापारो की परिधि और जीवन-लक्ष्य की व्यापकता। जैनधर्म के प्राचीन ग्रथो मे ऐसे कई उल्लेख आते हैं कि राजा श्रावक धर्म अगीकार कर, अपनी सीमाओ मे रहते हुए, लोक-कल्याणकारी प्रवृत्तियो का सचालन एवं प्रसारण करता है। पर काल-प्रवाह के साथ उसका चिन्तन वढ़ता चलता है और वह देशविरति श्रावक से सर्वविरति श्रमण बन जाता है। सांसारिक मायामोह, पारिवारिक प्रपच, देह-आसक्ति आदि मे विरत होकर वह सच्चा साधु, तपस्वी और लोक-सेवक बन जाता है। इस रूप या स्थिति को अपनाते ही उसकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक और उसका हृदय अत्यन्त उदार बन जाता है। लोक-कल्याण मे व्यवधान पैदा करने वाले सारे तत्त्व अब पीछे छूट जाते है और वह जिस साधना पर बढता है, उसमे न किसी के प्रति राग है न द्वेष। वह सच्चे अर्थों मे श्रमण है।

श्रमण के लिए शमन, समन, समण, आदि शब्दो का भी प्रयोग होता है। उनके मूल मे भी लोक सग्राहक वृत्ति काम करती रही है। लोक सग्राहक वृत्ति का धारक सामान्य पुरुष हो ही नही सकता। उसे अपनी साधना से विशिष्ट गुणो को प्राप्त करना पडता है। क्रोधादि कषायो का शमन करना पडता है, पाच इन्द्रियो और मन को वशवर्ती बनाना पडता है, शत्रु-मित्र तथा स्वजन-परिजन की भेद भावना को दूर हटाकर सबमे समान मन को नियोजित करना पडता है। समस्त प्राणियों के प्रति समभाव की धारणा करनी पड़ती है। तभी उसमे सच्चे श्रमण-भाव का रूप उभरने लगता है। वह विशिष्ट साधना के कारण तीर्थंकर तक बन जाता है। ये तीर्थंकर तो लोकोपदेशक ही होते है।

इस महान् साधना को जो साध लेता है, वह श्रमण बारह उपमाओ से उपमित किया गया है :—

> उरग, गिरि, जलण, सागर, णहतल, तरुगण, समोय जो होइ।
> भमर, मिय, धरणि, जलरुह, रवि, पवण, समोय सो समणो॥

अर्थात् जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपक्ति, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान होता है, वह श्रमण कहलाता है।

ये सब उपमाएँ साभिप्राय दी गई है। सर्प की भांति ये साधु भी अपना कोई घर (बिल) नही बनाते। पर्वत की भाति ये परीषहो और उपसर्गो की आधी से डोलायमान नही होते। अग्नि की भाति ज्ञान रूपी ईन्धन से ये तृप्त नही होते। समुद्र की भाति अथाह ज्ञान को प्राप्त कर भी ये तीर्थंकर की मर्यादा का अतिक्रमण नही करते। आकाश की भाति ये स्वाश्रयी, स्वावलम्बी होते है, किसी के अवलम्बन पर नही टिकते। वृक्ष की भाति समभाव पूर्वक दु:ख-सुख को सहन करते है। भ्रमर की भाति किसी को बिना पीड़ा पहुचाये शरीर-रक्षण के लिए आहार ग्रहण करते है। मृग की भाति पापकारी प्रवृत्तियो के सिह से दूर रहते है। पृथ्वी की भाति शीत, ताप, छेदन, भेदन आदि कष्टो को समभाव पूर्वक सहन करते है, कमल की भाति वासना के कीचड और वैभव के जल से अलिप्त रहते है। सूर्य की भाति स्वसाधना एव लोकोपदेशना के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते है। पवन की भाति सर्वत्र अप्रतिबद्ध रूप से विचरण करते है। ऐसे श्रमणो का वैयक्तिक स्वार्थ हो ही क्या सकता है ?

ये श्रमण पूर्ण अहिंसक होते है। षट्काय (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय) जीवो की रक्षा करते है। न किसी को मारते है, न किसी को मारने की प्रेरणा देते है और न जो प्राणियों का वध करते है, उनकी अनुमोदना करते है। इनका यह अहिंसा-प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म और गम्भीर होता है।

ये अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी उपासक होते है। किसी की वस्तु बिना पूछे नही उठाते। कामिनी और कंचन के सर्वथा त्यागी होते है। आवश्यकता से भी कम वस्तुओं की सेवना करते है। संग्रह करना तो इन्होने सीखा ही नही। ये मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का वध नही करते, हथियार उठाकर किसी अत्याचारी–अन्यायी राजा का नाश नही करते, लेकिन इससे उनके लोक सग्रही रूप मे कोई कमी नही आती। भावना की दृष्टि से तो उसमे और वैशिष्ट्य आता है। ये श्रमण पापियों को नष्ट कर उनको मौत के घाट नही उतारते वरन् उन्हें आत्मबोध और उपदेश देकर सही मार्ग पर लाते है। ये पापी को मारने में नही, उसे सुधारने मे विश्वास करते है। यही कारण है कि महावीर ने विषदृष्टि सर्प चण्डकौशिक को मारा नही वरन् अपने प्राणो को खतरे मे डाल कर, उसे उसके आत्मस्वरूप से परिचित कराया। बस फिर क्या था ? वह विष से अमृत बन गया। लोक-कल्याण की यह प्रक्रिया अत्यन्त सूक्ष्म और गहरी है।

इनका लोक-सग्राहक रूप मानव सम्प्रदाय तक ही सीमित नही है। ये मानव के हित के लिये अन्य प्राणियो का वध करना व्यर्थ ही नही, धर्म के विरुद्ध समझते है। इनकी यह लोक-सग्रह की भावना इसीलिये जनतत्र से आगे बढकर प्राणतंत्र तक पहुँची है। यदि अयतना से किसी जीव का वध हो जाता है या प्रमादवश किसी को कष्ट पहुचता है तो ये उन सब पापो से दूर हटने के लिए प्रातः साय प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) करते है। ये नगे पैर पैदल चलते है। गाव-गांव और नगर-नगर मे विचरण कर सामाजिक चेतना और सुषुप्त पुरुषार्थ को जाग्रत करते हैं। चातुर्मास के अलावा किसी भी स्थान पर नियत वास नही करते। अपने पास केवल इतनी वस्तुएँ रखते है जिन्हे ये अपने आप उठाकर भ्रमण कर सके। भोजन के लिये गृहस्थो के यहाँ से भिक्षा लाते है। भिक्षा भी जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही। दूसरे समय के लिये भोजन का सचय ये नही करते। रात्रि मे न पानी पीते है न कुछ खाते है।

इनकी दैनिक चर्या भी बड़ी पवित्र होती है। दिन-रात ये स्वाध्याय-मनन-चिन्तन-लेखन और प्रवचन आदि मे लगे रहते है। सामान्यतः ये प्रतिदिन संसार के प्राणियो को धर्मबोध देकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। इनका समूचा जीवन लोक-कल्याण मे ही लगा रहता है। इस लोक-सेवा के लिये ये किसी से कुछ नही लेते।

श्रमण धर्म की यह आचारनिष्ठ दैनन्दिन चर्या इस बात का प्रवल प्रमाण है कि ये श्रमण सच्चे अर्थों मे लोक-रक्षक और लोक-सेवी हैं। यदि आपद्काल मे अपनी मर्यादाओ से तनिक भी इधर-उधर होना पडता है तो उसके लिये भी ये दण्ड लेते है, व्रत-प्रत्याख्यान करते है। इतना ही नही, जब कभी अपनी साधना मे कोई बाधा आती है तो उसकी निवृत्ति के लिये परीषह और उपसर्ग आदि की सेवना करते है। मैं नही कह सकता, इससे अधिक आचरण की पवित्रता, जीवन की निर्मलता और लक्ष्य की सार्वजनीनता और किस लोक सग्राहक की होगी ?

सामान्यतः यह कहा जाता है कि जैनधर्म ने ससार को दुखमूलक बताकर निराशा की भावना फैलाई है, जीवन मे संयम और विराग की अधिकता पर बल देकर उसकी अनुराग भावना और कला प्रेम को कुंठित किया है। पर यह कथन साधार नही है, भ्रांतिमूलक है। यह ठीक है कि जैनधर्म ने संसार को दुखमूलक माना, पर किस लिए ? अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिए, शाश्वत सुख की उपलब्धि के लिए। यदि जैनधर्म संसार को दुखपूर्ण मान कर ही रुक जाता, सुख-प्राप्ति की खोज नही करता, उसके लिए साधना मार्ग की व्यवस्था नही देता तो हम उसे निराशावादी कह सकते थे, पर उसमे तो मानव को महात्मा बनाने की, आत्मा को परमात्मा बनाने की आस्था का बीज छिपा हुआ है। दैववाद के नाम पर अपने को असहाय और निर्बल समझी जाने वाली जनता को किसने आत्म-जागृति का सन्देश दिया ? किसने उसके हृदय मे छिपे हुए पुरुषार्थ को जगाया ? किसने उसे अपने भाग्य का विधाता बनाया ? जैनधर्म की यह विचारधारा युगो बाद आज भी बुद्धिजीवियो की धरोहर बन रही है, सस्कृति को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर रही है।

यह कहना भी कि जैनधर्म निरा निवृत्तिमूलक है, ठीक नही है। जीवन के विधायक पक्ष को भी उसने महत्त्व दिया है। इस धर्म के उपदेशक तीर्थंकर लौकिक-अलौकिक वैभव के प्रतीक है। दैहिक दृष्टि से वे अनन्त बल, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त पराक्रम के धनी होते है। जैनधर्म की कलात्मक देन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण और अलग से अध्ययन की अपेक्षा रखती है। वास्तुकला के क्षेत्र मे विशालकाय कलात्मक मन्दिर, मेरुपर्वत की रचना, नंदीश्वर द्वीप व समवसरण की रचना, मानस्तम्भ, चैत्य, स्तूप आदि उल्लेखनीय है। मूर्तिकला मे विभिन्न तीर्थंकरो की मूर्तियो को देखा जा सकता है। चित्रकला मे भित्ति चित्र, ताड़पत्रीय चित्र, काष्ठ चित्र, लिपि चित्र, वस्त्र पर चित्र आश्चर्य मे डालने वाले हैं। इस प्रकार निवृत्ति और प्रवृत्ति का समन्वय कर जैनधर्म ने सस्कृति को लचीला बनाया है। उसकी कठोरता को कला की बाँह दी है तो उसकी कोमलता को सयम की दृढता।

नैतिक उत्थान और सांस्कृतिक जागरण मे योग :

आधुनिक भारत के नवनिर्माण की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रवृत्तियो मे जैनधर्मावलम्बियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अधिकांश सम्पन्न जैन श्रावक अपनी आय का एक निश्चित भाग लोकोपकारी प्रवृत्तियो मे व्यय करने के व्रती रहे हैं। जीवदया, पशुबलि निषेध, स्वधर्मी वात्सल्यफड, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, जैसी अनेक प्रवृत्तियो के माध्यम से असहाय लोगों

को सहायता मिली है। समाज मे निम्न और घृणित समझे जाने वाले खटीक, बलाई आदि जाति के भाइयों मे प्रचलित कुव्यसनो को मिटा कर, उन्हें सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला वीरवाल एव धर्मपाल प्रवृत्ति का रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसक समाज-रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। लौकिक शिक्षण के साथ-साथ नैतिक शिक्षण के लिये देश के विभिन्न क्षेत्रो में कई जैन शिक्षण संस्थाएं, स्वाध्याय-शिविर और छात्रावास कार्यरत हैं। निर्धन और मेधावी छात्रों को अपने शिक्षण में सहायता पहुँचाने के लिये व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बने कई धार्मिक और पारमार्थिक ट्रस्ट हैं, जो छात्रवृत्तिया और ऋण देते हैं। जन-स्वास्थ्य के सुधार की दिशा मे भी जैनियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे कई अस्पताल और औषधालय खोले गये है, जहां रोगियों को नि.शुल्क तथा रियायती दरो पर चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है।

जैन साधु और साध्विया वर्षा ऋतु के चार महीनों मे पदयात्रा नही करते। वे एक ही स्थान पर ठहरते है जिसे चातुर्मास करना कहते है। इस काल में जैन लोग तप, त्याग, प्रत्याख्यान, संघ-यात्रा, तीर्थ-यात्रा, मुनि दर्शन, उपवास, आयम्बिल, मासखमण, सवत्सरी, क्षमापर्व जैसे विविध उपासना-प्रकारो द्वारा आध्यात्मिक जागृति के विविध कार्यक्रम बनाते है। इससे व्यक्तिगत जीवन निर्मल, स्वस्थ और उदार बनता है तथा सामाजिक जीवन मे बधुत्व, मैत्री, वात्सल्य जैसे भावों की वृद्धि होती है।

अधिकाश जैन धर्मावलम्बी कृषि, वाणिज्य और उद्योग पर निर्भर है। देश के विभिन्न क्षेत्रो मे ये फैले हुए है। इनके बडे-बड़े उद्योग-प्रतिष्ठान है। अपने आर्थिक संगठनो द्वारा इन्होंने राष्ट्रीय उत्पादन तो बढाया ही है, देश के लिये विदेशी मुद्रा अर्जन करने मे भी इनकी विशेष भूमिका रही है। जैन सस्कारो के कारण मर्यादा से अधिक आय का उपयोग वे सार्वजनिक स्तर के कल्याण कार्यो मे करते रहे है।

राजनीतिक चेतना के विकास मे भी जैनियो का सक्रिय योग रहा है। भामाशाह क परम्परा को निभाते हुए कइयो ने राष्ट्रीय रक्षाकोष मे पुष्कल राशि समर्पित की है। स्वतत्रता से पूर्व देशी रियासतो मे कई जैन श्रावक राज्यो के दीवान और सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदो पर कार्य करते रहे है। स्वतंत्रता सग्राम मे क्षेत्रीय आन्दोलनो का नेतृत्व भी उन्होने सभाला है। अहिंसा, सत्याग्रह, भूमिदान, सम्पत्तिदान, भूमि सीमाबदी, आयकर प्रणाली, धर्म निरपेक्षता, जैसे सिद्धान्तों और कार्यक्रमो मे जैन-दर्शन की भावधारा न्यूनाधिक रूप से प्रेरक कारण रही है।

प्राचीन साहित्य के संरक्षक के रूप मे जैनधर्म की विशेष भूमिका रही है। जैन साधुओं ने न केवल मौलिक साहित्य की सर्जना की वरन् जीर्णशीर्ष, दुर्लभ ग्रंथो का प्रतिलेखन कर उनकी रक्षा की और स्थान-स्थान पर ग्र थ भण्डारो की स्थापना कर, इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखा। ये ज्ञान-भण्डार इस दृष्टि से राष्ट्र की अमूल्य निधि है। महत्त्वपूर्ण ग्र थो के प्रकाशन का कार्य भी जैन शोध सस्थानो ने अब अपने हाथ मे लिया है। जैन पत्र-पत्रिकाओ द्वारा भी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ और सदाचारयुक्त बनाने की दिशा मे बड़ी प्रेरणा और शक्ति मिलती रही है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैनधर्म की दृष्टि राष्ट्र के सर्वांगीण विकास पर रही है। उसने मानव-जीवन की सफलता को ही मुख्य नही माना, उसका बल रहा उसकी सार्थकता और आत्म-शुद्धि पर।

प्रस्तुत ग्रंथ :

जैनधर्म-दर्शन से सम्बन्धित तात्त्विक और सैद्धान्तिक ग्रंथ पर्याप्त मात्रा में लिखे गये हैं पर सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे जैन संस्कृति के प्रभावो का मूल्यांकन करने वाले ग्रंथ बहुत ही कम हैं। प्रस्तुत ग्रंथ इस दिशा मे एक विनम्र प्रयास है।

हमने ऊपर जैनधर्म और संस्कृति के मूल्यांकन के जिन आयामो की ओर संकेत किया है, उसी पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए 'जैन संस्कृति और राजस्थान' नामक इस ग्रंथ की योजना तैयार की गई है।

यह ग्रंथ चार खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड 'जैन संस्कृति' से सम्बन्धित है। इसमे जैन संस्कृति के मूल तत्त्वो और इसके ऐतिहासिक विकास पर अधिकृत विद्वानो के १६ लेख संकलित किये गये हैं। द्वितीय खण्ड मे 'राजस्थान मे जैन संस्कृति का विकास' विषय पर ४ लेख दिये गये हैं जो राजस्थान में जैनधर्म के विभिन्न सम्प्रदायो की ऐतिहासिकता पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। तृतीय खण्ड 'राजस्थान का सांस्कृतिक विकास और जैन धर्मानुयायी' सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण खण्ड है। इसमे ३१ लेख हैं जो ५ भागो मे विभक्त हैं। ये भाग है—१. पुरातत्त्व और कला, २. भाषा और साहित्य, ३. प्रशासन और राजनीति, ४. उद्योग और वाणिज्य, ५. धर्म और समाज। इस खण्ड के सभी लेख बडे उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक हैं। कई लेख ऐसे हैं जो पहली बार सम्बद्ध विषय पर लिखे गये है और शोध क्षेत्र की नई संभावनाओ के द्वार खोलते हैं। इस खण्ड का अन्तिम लेख 'राजस्थान मे लोकोपकारी जैन संस्थाएं' सर्वेक्षणात्मक लेख है जो धार्मिक प्रवृत्तियो के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव का बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करता है। चतुर्थ खण्ड 'परिचर्चा' से सम्बन्धित है। इसमे विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यरत ९ प्रबुद्ध विचारको के 'राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे जैनधर्म एवं संस्कृति का योगदान' विषय पर विचार गुंफित किये गये हैं।

इस ग्रंथ के प्रारम्भिक दो खण्डो की अधिकांश सामग्री राजस्थान जैन संस्कृति परिषद्, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। इस सहयोग के लिए मैं परिषद् के पदाधिकारियो, विशेषत डॉ० कमलचन्द सोगानी, श्री बलवन्तसिंह मेहता, श्री जोधसिंह मेहता आदि के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। विद्वान् लेखको ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी जिस तत्परता और अपनत्व के साथ अपने लेख भिजवाकर सहयोग प्रदान किया तथा सम्पादक-मण्डल के सदस्यो ने जो आत्मीयतापूर्ण योगदान दिया, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम कर्तव्य मानता हूँ। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मंत्री श्री चन्द्रराज सिंघवी के प्रति मैं विशेष आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से अल्प अवधि मे इतने बडे ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था सम्भव हो सकी।

आशा है, जैन संस्कृति और राजस्थान के विकासात्मक सांस्कृतिक अध्ययन की दिशा मे यह ग्रंथ एक महत्त्वपूर्ण घटक सिद्ध होगा और अन्य प्रदेशवासियो को भी इस दृष्टिकोण से सांस्कृतिक अध्ययन–अनुशीलन करने की प्रेरणा मिलेगी।

सी–२३५ ए, दयानन्द मार्ग
तिलक नगर, जयपुर–४

प्रथम खण्ड

जैन संस्कृति

१ | णमोकार मंत्र

डॉ० नेमिचन्द शास्त्री

नमस्कार मंत्र :

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं ।

अरिहन्तो या अर्हन्त को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यो को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो और लोक के सर्व साधुओ को नमस्कार हो ।

अरिहन्तों को नमस्कार :

'णमो अरिहताण' इस पद मे अरिहंतो को नमस्कार किया गया है । अरि–शत्रु–शत्रुओ के नाश करने से अरिहत यह सज्ञा प्राप्त होती है । नरक, तिर्यच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायो में निवास करने से होने वाले समस्त दु:खों की प्राप्ति का निमित्त कारण होने से मोह को अरि–शत्रु कहा गया है ।

मोहरूप अरि के नष्ट हो जाने पर जन्म, मरण की परम्परा रूप ससार के उत्पादन की शक्ति शेष कर्मो मे नही रहने से उन कर्मो का सत्व, असत्व के समान हो जाता है तथा केवलज्ञानादि समस्त आत्मगुणो के आविर्भाव को रोकने मे समर्थ कारण होने से भी मोह को प्रधान शत्रु कहा जाता है । अत: उसके नाश करने से अरिहन्त सज्ञा प्राप्त होती है ।

कर्म रूपी शत्रुओ के नाश करने से प्राप्त होने वाले अर्हन्त अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय के प्राप्त होने पर इन्द्रादि के द्वारा निर्मित पूजा को प्राप्त होने वाले अर्हत् अथवा घातिया ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मो के नाश होने से अनन्तचतुष्टया विभूति जिनको प्राप्त हो गयी है, उन अर्हन्तो को नमस्कार किया गया है ।

जो ससार मे विरक्त होकर, घर छोडकर मुनि धर्म स्वीकार कर लेते है तथा अपनी आत्मा का स्वभाव साधनकर चार घातिया कर्मो के नाश द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इस अनन्त चतुष्ट को प्राप्त कर लेते हैं, वे अरहन्त है । ये अरहन्त अपने दिव्य ज्ञान द्वारा संसार के समस्त पदार्थो की समस्त अवस्थाओ को प्रत्यक्ष रूप से जानते है, अपने दिव्य दर्शन द्वारा समस्त पदार्थो का सामान्य अवलोकन करते है । ये आकुलता रहित परम आनन्द का अनुभव करते है । क्षुधा, तृषा, भय, राग, द्वेप, मोह, चिन्ता, बुढापा, रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति, आश्चर्य, जन्म, नीद और शोक इन अठारह दोषो[1] से रहित होने के कारण परम शान्त होते हैं, अत. वे देव कहलाते है ।

अर्हन्तो के मूल दो भेद है—सामान्य अर्हन्त और तीर्थकर अर्हन्त । अतिशय और धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन तीर्थकर अर्हन्त मे ही पाया जाता है । अन्य विशेपताए दोनो की समान होती है । कोई भी आत्मा तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मो को नष्ट करने पर अर्हन्त पदको प्राप्त कर सकती है ।

सिद्धों को नमस्कार :

जिन्होने नाना भेदरूप आठ कर्मो का नाश कर दिया है, जो तीन लोक के मस्तक के शेखर स्वरूप है, दु.खो से रहित है, सुखरूपी सागर मे निमग्न है, निरजन है, नित्य है, आठ गुणो से युक्त है, निर्दोप है, कृतकृत्य है । जिन्होने समस्त पर्यायो सहित सम्पूर्ण पदार्थो को जान लिया है, जो वज्रशिला निर्मित अभग्न प्रतिमा के समान अभेद्य आकार से युक्त है, जो पुरुपाकार होने पर भी गुणो से पुरुप के समान नही है, क्योकि पुरुप सम्पूर्ण इन्द्रियो के विपयो को भिन्न-भिन्न देश मे भी जानता है, परन्तु जो प्रत्येक देश मे सब विपयो को जानते है, वे सिद्ध है । आत्मा का वास्तविक स्वरूप इस सिद्ध पर्याय मे ही प्रकट होता है, सिद्ध ही पूर्ण स्वतन्त्र और शुद्ध है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध कृतकृत्य, अचल, अनन्त सुख, ज्ञानमय और स्वतन्त्र सिद्ध आत्माओ को 'णमो सिद्धाणं' पद मे नमस्कार किया गया है ।

आचार्यो को नमस्कार :

आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार है । जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाच आचारो का स्वय आचरण करते हे और दूसरे साधुओ से आचरण कराते है, उन्हे आचार्य कहते हैं जो चौदह विद्या स्थानो मे पारगत हो, ग्यारह अग के धारी हो अथवा आचाराग मात्र के धारी हो अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय मे पारगत हो, मेरु के समान निश्चल हो, पृथ्वी के समान सहनशील हो, जिन्होने समुद्र के समान मल अर्थात् दोपो को वाहर फेक दिया हो और जो सात प्रकार के भय से रहित हो, उन्हे आचार्य कहते है ।

---

१ श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार घातिकर्मो के उदय से होने वाले अज्ञान, निद्रा, पाच अन्तराय, काम, क्रोध मोह आदि ११ दोप मिलकर १८ दोप बताये गये है । क्षुधा, तृपा, रोग, जरा आदि शारीरिक दोपो से आत्मज्ञान मे कोई बाधा नही मानी जाती ।

—सम्पादक

परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीति से छ आवश्यको का पालन करते है, जो मेरु पर्वत के समान निष्कम्प है, शूरवीर है, सिह के समान निर्भिक है, श्रेष्ठ है, सौम्य मूर्ति है, आकाश के समान निर्लेप है, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते है। ये दीक्षा और प्रायश्चित् देते है।

उपाध्यायों को नमस्कार :

चौदह विद्यास्थान के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार है। तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते है। उन उपाध्याय परमेष्ठी के लिए नमस्कार है, जिनके पास अनन्त मुनि गण अध्ययन करते है, अथवा जिनके निकट द्वादशाग के सूत्र और अर्थों का मुनिगण अध्ययन करते है।

साधुओ को नमस्कार :

मनुष्य लोक के समस्त साधुओ को नमस्कार है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र के द्वारा मोक्षमार्ग की साधना करते है तथा सभी प्राणियो मे समान बुद्धि रखते है, वे स्थविरकल्पि और जिनकल्पि आदि भेदो से युक्त साधु है।

सिह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्मत्त, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गौचरी वृति करने वाले, पवन के समान निस्संग या सर्वत्र विना रुकावट के विचरण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या समस्त तत्त्वो के प्रकाशक, समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरु के समान परीषह और उपसर्गो के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शान्तिदायक, मणि के समान प्रभापुन्ज युक्त, पृथ्वी के समान सभी प्रकार की वाधाओ को सहने वाले, सर्प के समान दूसरो के बताये हुए अनियत आश्रय मे रहने वाले, आकाश के समान निरालम्बी या निर्भीक एव सर्वदा मोक्ष का अन्वेपण करने वाले साधु परम परमेष्ठी होते है।

नमस्कार-क्रम का औचित्य :

सभी प्रकार के कर्म लेप से रहित सिद्ध परमेष्ठी के विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मो के लेप से युक्त अरिहन्तो को आदि मे नमस्कार क्यो किया है ? इस आशका का उत्तर देते हुए वीरसेन स्वामी ने लिखा है कि यह कोई दोष नही है, क्योकि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धो के प्रति श्रद्धा-जागृत करने के कारण अरिहन्त परमेष्ठी ही है—अरिहन्त परमेष्ठी के निमित्त–से ही अधिक गुण वाले सिद्धो के प्रति सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है अथवा यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगो को आप्त आगम और पदार्थ का परिज्ञान नही हो सकता था। अतः अरिहन्त की कृपा से ही हमे बोध की प्राप्ति हुई है, इसलिए उपकार की अपेक्षा से भी आदि मे अरिहन्तो को नमस्कार करना युक्ति सगत है। जो मार्गदर्शक उपकारी होता है उसी का सबसे पहले स्मरण किया जाता है।

आचार्य से कम उपकारी उपाध्याय हैं। आचार्य सर्वसाधारण को अपने उपदेश से धर्म मार्ग मे लगाते हैं। किन्तु उपाध्याय उन जिज्ञासुओ को अध्ययन कराते है, जिनके हृदय मे ज्ञानपिपासा

२ | णमोकार मन्त्र का वैशिष्ट्य

आचार्य रजनीश

नमस्कार मंत्र का वैशिष्ट्य :

अद्भुत है यह बात भी कि इस महामंत्र ने किसी व्यक्ति का नाम नही लिया महावीर का नही, पार्श्वनाथ का नाम नही, किसी का नाम नही। जैन परम्परा का भी कोई नाम नही। यह नमस्कार बडा विराट है। सभवत. विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामत्र, इतना सर्वागीण, इतना स्वस्पर्शी महामत्र विकसित नही किया। व्यक्ति का जैसे खयाल भी नही है, केवल शक्ति का खयाल है। रूप पर ध्यान ही नही है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ध्यान है।

अरिहन्त : शत्रुरहित स्थिति :

अरिहन्त शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है—जिनके शत्रु समाप्त हो गये। यह पॉजिटिव नही है, यह विधायक नही है। असल मे इस जगत् मे जो श्रेष्ठनम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है। 'नेति नेति' से उसको विधायक शब्द नही दिया जा सकता। उसका कारण है–सभी विधायक शब्दो मे सीमा आ जाती है, निषेध मे सीमा नही होती। अगर मै कहता हूँ–ऐसा है, तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मै कहता हू कि ऐसा नही है, तो कार्य सीमा नही है। 'नही' की कोई सीमा नही, है की तो सीमा है। तो 'है' तो वडा छोटा शब्द है। 'नही' बहुत विराट है। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहन्त को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके सव शत्रु समाप्त हो गये, जिनके अन्तर्द्वन्द्व विलीन हो गये, नकारात्मक हो गये। जिनमे लोभ नही, मोह नही, काम नही। क्या है यह नही कहा, क्या नही है जिनमे वह कहा ?

सिद्ध : सम्पूर्ण उपलब्धि :

इसलिए अरिहन्त बहुत वायवीय, ऐब्स्ट्रेक्ट शब्द है और शायद पकड़ मे न आये। इसलिए ठीक दूसरे शब्द मे पॉजिटिव का उपयोग किया है—'णमो सिद्धाणम्'। सिद्ध का अर्थ होता है–वे जिन्होने पा लिया। अरिहन्त का अर्थ होता है–वे, जिन्होने कुछ छोड़ दिया। सिद्ध बहुत पॉजिटिव शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, एचीवमेंट–जिन्होने पा लिया, उनको नम्बर दो पर रखा है। क्यो ? सिद्ध अरिहन्त से छोटा नही होता ? सिद्ध वही पहुँचता है जहा अरिहन्त पहुँचता है। लेकिन भाषा

से पारिटिव नम्बर दो पर रखा जायेगा । सिद्ध के सम्बन्ध मे सिर्फ इतनी ही सूचना है कि पहुच गये, और कुछ नही कहा है । कोई विशेषण नही जोडा । पर पहुच गये कहने भर से हमारी समझ मे वह नही आयेगा । अरिहन्त भी हमे बहुत दूर लगता है । जो शून्य हो गये, निर्वाण को पा गये, मिट गये, नही रहे । सिद्ध भी बहुत दूर है । सिर्फ इतना ही कहा है कि जिन्होने पा लिया । लेकिन क्या ? और पा लिया तो हम कैसे जाने ?

इसलिए हमारी पकड मे सिद्ध भी न आ सकेगा और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढी से लेकर आखिरी शिखर तक जहा जो है, वही से पकड मे आ जाय । जो जहा खडा हो वही से यात्रा कर सके । इसलिए तीसरा सूत्र कहा है–आचार्यो को नमस्कार ।

आचार्य : ज्ञान और आचरण की एकता .

आचार्य का अर्थ है—वह जिसने पाया भी और आचरण से प्रकट भी किया । आचार्य का अर्थ है जिसका ज्ञान और आचरण एक है । ऐसा नही कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है । लेकिन शून्य हो सकता है । ऐसा भी नही कि अरहन्त का आचरण भिन्न होता है । लेकिन हो सकता है कि वह हमारी पकड मे न आये । हमे फ्रेम चाहिए जिसमे पकड मे आ जाय । आचार्य से शायद निकटता मालूम पडेगी । ज्ञान और आचरण के अर्थो मे हम ज्ञान को भी न पहचान पायेंगे, आचरण को पहचान लेंगे । आचरण और ज्ञान जहा एक हो जाये, उसे हम आचार्य कहते है ।

जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मै नही जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण ? लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान मे उपजता है और बहता है, उनको मै नमस्कार करता हूँ । अभी भी बात सूक्ष्म है इसलिए चौथे चरण मे उपाध्यायो को नमस्कार किया गया है । -

उपाध्याय ' ज्ञान और आचरण के साथ उपदेश भी :

उपाध्याय का अर्थ है–आचरण ही नही, उपदेश भी । उपाध्याय का अर्थ है—ज्ञान ही नही, आचरण ही नही, उपदेश भी । वे जो जानते है, जानकर वैसा जीते है और जैसा वे जीते है और जानते है वैसा बताते भी है । उपाध्याय का अर्थ है वह जो बताता भी है । क्योकि हम मौन से न समझ पाये तो । आचार्य मौन हो सकता है । वह मान सकता है कि आचरण काफी है और अगर तुम्हे आचरण दिखाई नही पडता, तो तुम जानो । उपाध्याय आप पर और भी दया करता है, वह बोलता भी है । वह आपको कह कर भी बताता है ।

साधु : सरलता की प्रतिमूर्ति :

ये चार स्पष्ट रेखाएं है । लेकिन जानने वाले इन चार के बाहर भी छूट जायेंगे । क्योकि जानने वालो को केटेगरी मे बाधा नही जा सकता । इसलिए पाचवे चरण मे एक सामान्य नमस्कार है । 'नमो लोए सव्व साहूणम्' । लोक मे जो भी साधु हैं उन सबको हमारा नमस्कार है । जो इन चार मे कही भी छूट गये हो उनके प्रति भी हमारा नमन है । पूज्य व्यक्तित्व को केटेगराइज नही किया जा सकता है, खाचो में नही बाटा जा सकता । इसलिए जो शेष रह जायेंगे उनको सिर्फ 'साधु' कहा है । वे जो सरल हैं । साधु का एक अर्थ और भी है । इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाये । पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुंचने चाहिए ।

नमस्कार मंत्र : रूपान्तरण की प्रक्रिया :

सवाल यह नही है कि हमारे नमस्कार से उनको कुछ फायदा होगा। सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमे रूपान्तरित करता है। न अरिहन्तो को कोई फायदा होगा, न सिद्धो को, न आचार्यो को, न उपाध्याओ को, न साधुओ को। पर आपको फायदा होगा। यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते है कि शायद इस नमस्कार मे हम सिद्धो के लिए अथवा अरहन्तो के लिए कुछ कर रहे है। तो इस भूल मे न पडे। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेगे। यह नमस्कार अरिहन्तो के लिए नही है, अरिहन्तो की तरफ है। यह आपके लिए है। इसके जो परिणाम है, वे आप पर होने वाले है जो फल है वे आप पर बरसेगे। अगर कोई व्यक्ति इस भाति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते है, उस व्यक्ति मे अहकार टिक सकेगा ? असभव है।

नमस्कार : नमन का सूत्र :

नमोकार नमन का सूत्र है। यह पाच चरणो मे है। समस्त जगत् मे जिन्होने भी कुछ पाया है, जिन्होने भी कुछ जाना है, जिन्होने भी कुछ जिया है, जो जीवन के अन्तर्तम गुह्य रहस्य से परिचित हुए है, जिन्होने मृत्यु पर विजय पायी है, जिन्होने शरीर के पार कुछ पहचाना है उन सबके प्रति नमस्कार। समय और क्षेत्र दोनो मे लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थ विस्तार मे जो है स्पेस है, आकाश मे, जो आज है वे। लेकिन जो कल थे, वे भी और जो कल होगे वे भी, लोक मे, सर्व लोक मे, सव्व- साहूणं, समस्त साधुओ को समय के अन्तराल के पीछे जो कभी हुए होगे, भविष्य मे जो होगे, और आज जो है, वे समय या क्षेत्र मे कही भी, जब भी कही कोई ज्ञानज्योति जगी हो, उस सबके लिए नमस्कार।

३ | आत्मा

•
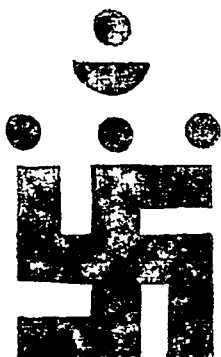
डॉ० कमलचन्द सोगानी

आत्मा की स्वतन्त्रता :

जैन दर्शन के अनुसार जीव अथवा आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिये न तो यह किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई और दूसरा द्रव्य है। सब द्रव्यो मे जीव ही सर्वश्रेष्ठ द्रव्य है, क्योकि केवल जीव को ही हित-अहित, हेय-उपादेय, सुख-दुख आदि का ज्ञान होता है। अन्य द्रव्यो—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल मे इस प्रकार के ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है। द्रव्य की सामान्य परिभाषा के अनुसार आत्मा परिणामी नित्य है। द्रव्य एव गुण अपेक्षा से आत्मा नित्य है किन्तु पर्याय अपेक्षा से परिणामी। आत्मा के ज्ञानादि गुणो की अवस्थाये परिवर्तित होती रहती है तथा ससारी आत्मा विभिन्न जन्म ग्रहण करती है, इन अपेक्षाओ से आत्मा परिणामी है और आत्मा कभी भी इन परिवर्तनो मे नष्ट नहीं होती इस अपेक्षा से नित्य है। यहा यह कहा जा सकता है कि यह लक्षण ससारी आत्मा मे तो घटित हो जाता है, किन्तु मुक्त आत्मा मे नही। पर ऐसा कहना उचित नही है, क्योकि मुक्त आत्मा की नित्यता के विषय मे तो सदेह है ही नही और उसमे ज्ञानादि गुणो का स्वरूप परिणमन होता है इस अपेक्षा से वह परिणामी भी सिद्ध होती है अतः आत्मा द्रव्य गुण दृष्टि से नित्य और पर्याय दृष्टि से परिणामी स्वीकार की गई है।

आत्म स्वातन्त्र्य के प्रमाण :

अब यह विचार करना है कि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए प्रमाण क्या है? इसके लिये चार प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रथम, अहं प्रत्यय अर्थात् 'मै हू' का कोई न कोई आधार होना आवश्यक है, वह आधार आत्मा ही हो सकता है। यदि आत्मा नही है तो अह प्रत्यय कैसे हो सकता है?[1] द्वितीय, सुख दुःखात्मक भावों की अनुभूति, स्मृति आदि ज्ञान आत्मा के अभाव मे सभव नही है[2] अतः आत्मा का अस्तित्व है। तृतीय, आत्मा के अस्तित्व मे सशय, आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यदि सशय ही नही तो 'मै हू या नही हू' यह सशय कहा से उत्पन्न

१—विशेषावश्यक भाष्य, पृ० ४८३

२—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १८३, आचाराग ५-६०

होता है ?[1] चतुर्थ, यह बतलाया जा चुका है कि गुण गुणी के अभाव में नहीं रह सकते। जैसे घट के रूपादि गुणों से घट का अस्तित्व सिद्ध होता है उसी प्रकार ज्ञानादि गुणों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है।[2]

आत्मा का स्वरूप :

आत्मा के अस्तित्व के प्रमाणो के पश्चात् अब हमे उसके स्वरूप का विचार करना है। यहा यह ध्यान देने योग्य बात है कि जैन दर्शन मे आत्मा एक नहीं, अनेक अर्थात् अनन्त मानी गई है। आत्मा का लक्षण चैतन्य है।[3] इस विशेषता के कारण आत्मा का अन्य द्रव्यों से भेद होता है। यह चैतन्य ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक रूप मे प्रकट होता है। अतः हम कह सकते है कि जहा चैतन्य है वहा ज्ञान है, भाव है और कर्तव्य है। जैसे उष्णता अग्नि का स्वभाव है, वैसे ही ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। ज्ञान या चैतन्य आत्मा का आगन्तुक धर्म नहीं है, किन्तु स्वभाव धर्म है।[4] आत्मा ज्ञाता होने के साथ-साथ कर्ता और भोक्ता भी है।[5] आत्मा ससार अवस्था मे अपने शुभ-अशुभ कर्मों का कर्ता है और उनके फलस्वरूप उत्पन्न सुख-दु ख की भोक्ता भी है। मुक्त अवस्था में आत्मा अनन्त ज्ञान की स्वामी होती है, शुभ-अशुभ से परे शुद्ध क्रियाओ की (राग द्वेष रहित क्रियाओं की) कर्ता होती है और अनन्त आनन्द की भोक्ता होती है।

जैन दर्शन जीव को स्वदेह परिमाण स्वीकार करता है।[6] जिस प्रकार दूध मे डाली हुई पद्मरागमणि (लाल मणि) उसे अपने रंग से प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार देह में रहने वाला जीव भी अपनी देह मात्र को अपने रूप से प्रकाशित करता है, अर्थात वह स्वदेह में ही व्याप्त होता है, देह के बाहर नही।[7] जैन दार्शनिको का कथन है कि जिस वस्तु के गुण जहां विद्यमान होते है, वह वस्तु भी वहीं पर होती है। घड़ा वहीं है जहा घड़े के गुण, रूपादि वर्तमान है। इसी प्रकार आत्मा का अस्तित्व भी वही मानना चाहिये जहां आत्मा के ज्ञानादि गुण विद्यमान है। अतः हम कह सकते है कि आत्मा सर्वव्यापी नही है क्योकि उसके गुण सर्वत्र उपलब्ध नही होते। जिसके गुण सर्वत्र उपलब्ध नही होते वह सर्वव्यापी नही होता, जैसे घट। जो सर्वव्यापी होता है उसके गुण सर्वत्र उपलब्ध होते है, जैसे आकाश।[8]

जैन दर्शन की मान्यता है कि संसारी आत्मा अनादिकाल से कर्मो से बद्ध है। इसी कारण प्रत्येक संसारी जीव जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। इतना होते हुए भी प्रत्येक संसारी आत्मा वस्तुतः सिद्ध समान है।[9] दोनो मे भेद केवल कर्मो के बन्धन का है। यदि कर्मो के बन्धन को हटा दिया जाय तो आत्मा का सिद्ध स्वरूप जो अनन्त ज्ञान, सुख और शक्ति रूप है प्रकट हो जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव को प्रभु कहा गया है।[10] इसका अभिप्रायः यह है कि जीव स्वयं ही अपने उत्थान या पतन का उत्तरदायी है। वही अपना शत्रु है और वही अपना मित्र है।[11] बन्धन

१–विशेषावश्यक भाष्य पृ० ४८३ २–पंचास्तिकाय, १३ ३–नियमसार, ३७
४–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १७८ ५–द्रव्य सग्रह, ८९ ६–द्रव्य सग्रह, २
७–पंचास्तिकाय संग्रह, ३३ ८–स्याद्वादमंजरी, पृ० ९४ ९–नियमसार, ४८
१०–पंचास्तिकाय, २७ ११–उत्तराध्ययन, २०–३७

और मुक्ति उसी के आश्रित है। अज्ञानी से ज्ञानी होने का और बद्ध से मुक्त होने का सामर्थ्य उसी मे है, वह सामर्थ्य कहीं बाहर से नहीं आता वह तो उसके प्रयास से ही प्रकट होता है।

सांसारिक जीव :

जैन दर्शन मे जीवो का वर्गीकरण दो दृष्टिकोण से किया गया है—(१) सांसारिक और (२) आध्यात्मिक। सांसारिक दृष्टिकोण से जीवो का वर्गीकरण इन्द्रियो की अपेक्षा से किया गया है।[1] सबसे निम्न स्तर पर एक इन्द्रिय जीव है जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। वनस्पति वर्ग एक इन्द्रिय जीवो का उदाहरण है। इनमे चेतना सबसे कम विकसित होती है। इनसे उच्च स्तर के जीवो मे दो से पाच इन्द्रियो तक के जीव है। सीपी, शंख, बिना पैरो के कीडे आदि के स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिया होती है। जू, खटमल, चीटी, आदि के स्पर्शन रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रिया होती है। मच्छर, मक्खी, भवरा, आदि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रिया होती है। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाच इन्द्रिया होती है।

जीव तीन प्रकार के : बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा :

आध्यात्मिक दृष्टिकोण मे जीव तीन प्रकार के है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।[2] बहिरात्मा शरीर को ही आत्मा समझता है और शरीर के नष्ट होने पर अपने को नष्ट हुआ समझता है।[3] वह इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त रहता है और इच्छित वस्तु के सयोग मे प्रसन्न होता है और उसके वियोग से अप्रसन्न।[4] वह मृत्यु के भय से आक्रान्त रहता है।[5] वह कार्माण शरीर रूपी कांचली मे ढके हुए ज्ञान रूपी शरीर को नहीं जानता है, इसलिए बहुत काल तक ससार मे भ्रमण करता है।[6]

अन्तरात्मा अपने आत्मा को अपने शरीर से भिन्न समझता है।[7] वह निर्भय होता है अतः उसे लोक-भय, परलोक-भय, मरण-भय आदि भय नहीं होते। उसको कुल, जाति, रूप, ज्ञान, धन, बल, तप और प्रभुता का मद नहीं होता।[8] उसकी आत्म तत्व मे रुचि पैदा होने से उसकी सासारिक पदार्थों मे आसक्ति नहीं होती और वह शीघ्र ही जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है।[9]

परमात्मा वह है जिसने आत्मोत्थान मे पूर्णता प्राप्त कर ली है और काम, क्रोधादि दोषो को नष्ट कर दिया है।[10] एवं अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख प्राप्त कर लिया है तथा जो सदा के लिये जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो गया है।

□ □ □

१-पचास्तिकाय ११३ से ११७ २-समाधिशतक ४ ३-मोक्षपाहुड ८, ज्ञानार्णव ३२-१८
४-समाधिशतक, ७-५५ परमात्मा प्रकाश, १-८४ ५-समाधिशतक ७६ ६-वही ६८
७-कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १९३ ८-मोक्ष पाहुड, १४, ८७ ९-समाधिशतक, १३
१०-मोक्षपाहुड, ५, ६, नियमसार, ७ १० क-तत्वार्थ सूत्र ५-२३। १० ख-द्रव्य सग्रह, ५०
१० ग-नियमसार १७७

४ | कर्म

डॉ० मोहनलाल मेहता

कर्म सिद्धान्त :

भारतीय दार्शनिक चिन्तन मे कर्म सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुख, दुःख एव अन्य प्रकार के सासारिक वैचित्र्य के कारणों की खोज करते हुए भारतीय चिन्तको ने इसका अन्वेषण किया। जो जैसा करता है वैसा भरता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी के कर्मफल का अधिकारी नही होता। कर्मवाद किसी-न-किसी रूप में भारत की समस्त दार्शनिक एवं नैतिक विचारधाराओ मे विद्यमान है तथापि इसका जो सुविकसित रूप जैन परम्परा मे उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र उपलब्ध नही होता। कर्मवाद जैन विचारधारा एवं आचार परम्परा का अविच्छेद्य अग है।

कर्मवाद, नियतिवाद एवं इच्छा स्वातंत्र्य :

प्राणी अनादिकाल से कर्म-परम्परा में पड़ा हुआ है। पुरातन कर्मों के योग एवं नवीन कर्मों के वन्धन की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। जीव अपने कृत कर्मो को भोगता हुआ नवीन कर्मो का उपार्जन करता है। ऐसा होते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि प्राणी एकान्त रूप से कर्मो के अधीन है अर्थात् वह कर्मो का वन्धन रोक ही नही सकता। यदि प्राणी का प्रत्येक कार्य कर्माधीन ही माना जाए तो वह अपनी आत्मशक्ति का स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग कैसे कर सकेगा ? प्राणी को सर्वथा कर्माधीन मानने पर इच्छा स्वातंत्र्य का कोई मूल्य नही रह जाता। परिणामतः कर्मवाद नियतिवाद के रूप मे परिणत हो जायगा।

कर्मवाद को नियतिवाद अथवा अनिवार्यतावाद नही कह सकते। कर्मवाद यह नही मानता कि प्राणी जिस प्रकार कर्म का फल भोगने में परतन्त्र है उसी प्रकार कर्म का उपार्जन करने मे भी परतन्त्र है। कर्मवाद यह मानता है कि प्राणी को स्वोपार्जित कर्म का फल किसी न किसी रूप मे अवश्य भोगना पडता है किन्तु जहा तक नवीन कर्म के उपार्जन का प्रश्न है, वह अमुक सीमा तक स्वतन्त्र होता है। यह सत्य है कि कृत कर्म का भोग किये विना मुक्ति नही हो सकती किन्तु यह अनिवार्य नही कि अमुक समय में अमुक कर्म का उपार्जन हो ही। आन्तरिक शक्ति तथा वाह्य परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए प्राणी अमुक सीमा तक नये कर्मो का उपार्जन रोक सकता है।

यही नही, वह अमुक सीमा तक पूर्व कृत कर्मों को शीघ्र अथवा देर से भी भोग सकता है। इस प्रकार कर्मवाद मे सीमित इच्छास्वातत्र्य स्वीकार किया गया है।

कर्म का अर्थ :

कर्म शब्द का अर्थ साधारणतया कार्य, प्रवृत्ति अथवा क्रिया किया जाता है। कर्मकाण्ड मे यज्ञ आदि क्रियाएँ कर्म के रूप मे प्रचलित है। पौराणिक परम्परा मे व्रत, नियम आदि क्रियाएँ कर्म रूप मानी जाती है। जैन परम्परा मे कर्म दो प्रकार का माना गया है :—द्रव्य कर्म और भावकर्म। कार्मण जाति का पुद्गल अर्थात् जड तत्त्व विशेष जो कि आत्मा के साथ मिलकर कर्म के रूप मे परिणत होता है, द्रव्य कर्म कहलाता है। राग द्वेषात्मक परिणाम को भावकर्म कहते है।

आत्मा और कर्म का सम्बन्ध प्रवाहतः अनादि है। जीव पुराने कर्मों का विनाश करता हुआ नवीन कर्मों का उपार्जन करता रहता है। जब तक प्राणी के पूर्वोपार्जित समस्त कर्म नष्ट नही हो जाते एवं नवीन कर्मों का उपार्जन बन्द नही हो जाता तब तक उसकी भवबन्धन से मुक्ति नही होती। एक बार समस्त कर्मों का विनाश हो जाने पर पुनः नवीन कर्मों का उपार्जन नही होता क्योकि उस अवस्था मे कर्मोपार्जन का कारण विद्यमान नही रहता। आत्मा की इसी अवस्था को मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण अथवा सिद्धि कहते है।

कर्मबन्ध का कारण :

जैन परम्परा मे कर्मोपार्जन के दो कारण माने गये है—योग और कषाय। शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। क्रोधादि मानसिक आवेगो को कषाय कहते है। वैसे तो प्रत्येक प्रकार का योग अर्थात् क्रिया कर्मोपार्जन का कारण है किन्तु जो योग कषाय युक्त होता है। उससे होने वाला कर्मबन्ध विशेष बलवान होता है जब कि कषाय रहित क्रिया से होने वाला कर्मबन्ध अति निर्बल व अल्पायु होता है। दूसरे शब्दो मे कषाययुक्त अर्थात् राग-द्वेषजनित प्रवृत्ति ही कर्म-बन्ध का महत्त्वपूर्ण कारण है।

कर्मबन्ध की प्रक्रिया :

सम्पूर्ण लोक मे ऐसा कोई भी स्थान नही है जहा कर्मयोग्य परमाणु विद्यमान न हो। जब प्राणी अपने मन, वचन अथवा तन से किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब उसके आस-पास चारो ओर से कर्मयोग्य परमाणुओ का आकर्षण होता है अर्थात् जितने क्षेत्र मे आत्मा विद्यमान होती है उतने ही क्षेत्र मे विद्यमान परमाणु उसके द्वारा उस समय ग्रहण किये जाते है। प्रवृत्ति की तरतमता के अनुसार परमाणुओ की मात्रा मे भी तारतम्य होता है। गृहीत परमाणुओ के समूह का कर्मरूप मे आत्मा के साथ बद्ध होना जैन कर्मवाद की परिभाषा मे प्रदेशबन्ध कहलाता है। इन्ही परमाणुओं की ज्ञानावरणादि रूप परिणति को प्रकृतिबन्ध कहते है। कर्मफल के काल को स्थिति बन्ध तथा कर्मफल की तीव्रता-मदता को अनुभाव बन्ध कहते है। कर्म बधते ही फल देना प्रारम्भ नही कर देते। कुछ समय तक वे वैसे ही पडे रहते हैं। कर्म के इस काल को अबाधाकाल कहते हैं। अबाधाकाल के व्यतीत होने पर ही बद्धकर्म फल देना प्रारम्भ करते है। कर्मफल का प्रारम्भ ही कर्म का उदय कहलाता है। कर्म अपने स्थिति बन्ध के अनुसार उदय मे आते रहते है एव फल प्रदान

करते हुए आत्मा से अलग होते रहते है। इसी को निर्जरा कहते है। जिस कर्म का जितना स्थिति बन्ध होता है वह उतनी ही अवधि तक उदय मे आता रहता है। जब आत्मा से समस्त कर्म अलग हो जाते है तब जीव कर्म मुक्त हो जाता है। आत्मा की इसी अवस्था को मोक्ष कहते है।

कर्म प्रकृति :

जैन कर्मशास्त्र मे कर्म की आठ मूल प्रकृतिया मानी गई है। ये प्रकृतियाँ प्राणी को भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुकूल एवं प्रतिकूल फल प्रदान करती है। इन आठ प्रकृतियों के नाम ये है :— (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र व (८) अन्तराय। इनमे से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—ये चार घाती प्रकृतियां है क्योकि इनसे आत्मा के चार मूल गुणो ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य का घात होता है। शेष चार प्रकृतिया अघाती है क्योकि ये आत्मा के किसी गुण का घात नही करतीं। ज्ञानावरण कर्मप्रकृति आत्मा के ज्ञान गुण का घात करती है। दर्शनावरण कर्मप्रकृति आत्मा के दर्शन गुण का घात करती है। मोहनीय कर्मप्रकृति से आत्मसुख का घात होता है। अन्तराय कर्मप्रकृति के कारण वीर्य अर्थात् आत्म शक्ति का घात होता है। वेदनीय कर्मप्रकृति अनुकूल एव प्रतिकूल सवेदन अर्थात् सुख दु.ख के अनुभव का कारण है। आयु कर्मप्रकृति के कारण नरकादि विविध भवो की प्राप्ति होती है। नाम कर्मप्रकृति विविध शरीर आदि का कारण है। गोत्र कर्मप्रकृति प्राणियो के उच्चत्व एव नीचत्व का कारण है।

कर्मफल की तीव्रता और मन्दता का आधार तन्निमित्तक कषायो की तीव्रता–मन्दता है। जो प्राणी जितना अधिक कषाय की तीव्रता से युक्त होगा, उसके अशुभ कर्म उतने की प्रबल एव शुभ कर्म उतने ही निर्बल होगे। जो प्राणी जितना अधिक कषायमुक्त एवं विशुद्ध होगा, उसके शुभ कर्म उतने ही अधिक प्रबल एव अशुभकर्म उतने ही अधिक दुर्बल होगे।

कर्म और पुनर्जन्म :

कर्म और पुनर्जन्म का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। कर्म की सत्ता स्वीकार करने पर तद्फलरूप परलोक अथवा पुनर्जन्म की सत्ता भी स्वीकार करनी पड़ती है। जैन कर्म-साहित्य में समस्त संसारी जीवो का समावेश चार गतियो मे किया गया है—मनुष्य, तिर्यच, नारक और देव। मृत्यु के पश्चात् प्राणी अपने गति नाम कर्म के अनुसार इन चार गतियों में से किसी एक गति में उत्पन्न होता है। जब जीव शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण करने वाला होता है तब आनुपूर्वी नाम कर्म उसे अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुचा देता है। गत्यन्तर के समय जीव के साथ केवल दो प्रकार के शरीर रहते है—तैजस और कार्मण। अन्य प्रकार के शरीर औदारिक अथवा वैक्रिय का निर्माण वहा पहुचने के बाद प्रारम्भ होता है।

---

५ | अहिंसा

मुनि नथमल

अहिंसा-साधना :

भगवान् ऋषभदेव ने जो साधना अपनायी वह अहिंसा की साधना थी। उन्होंने सर्व प्राणातिपात का विरमण किया। यहीं से अहिंसा का स्रोत बहा, उपदेशलब्ध धर्म का प्रवर्तन हुआ। दूसरों का प्राण नाश करना मनुष्य के हित में नहीं है, इस भावना से प्राणातिपात विरति का सूत्रपात हुआ। उसका विकास होते-होते वह चतुर्रूप बन गई —

१—२. पर प्राण-वध जैसे पाप है, वैसे स्व-प्राण वध भी पाप है।

३—४. पर के आत्मगुण का विनाश करना जैसे पाप है, वैसे अपने आत्म-गुण का विनाश करना भी पाप है।

प्राणातिपात विरमण के इस विस्तृत अर्थ को संक्षेप में रखने की आवश्यकता हुई तब अहिंसा शब्द प्रयोग में आया। इसका सम्बन्ध केवल प्राण-वध से न होकर असत्-प्रवृत्ति मात्र से होता है। कल्पना की दृष्टि से भी यह संगत लगता है। पहले-पहल जब दूसरों को न मारने की भावना उत्पन्न हुई, तब उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्राणातिपात विरति शब्द ही पर्याप्त था। किन्तु अनुभव जैसे आगे बढ़ा, प्राण-वध के बिना भी प्रवृत्तियों में दोष प्रतीत हुआ, तब एक ऐसे शब्द की आवश्यकता हुई, जो केवल प्राण-वध का अभिव्यंजक न होकर सदोष-प्रवृत्ति मात्र (आत्मा की विभाव परिणति मात्र) का व्यंजक हो। इसी खोज के फलस्वरूप अहिंसा शब्द प्रयोग में आया। इस कल्पना को साहित्य का आधार भी मिल जाता है—

१—'आचारांग' सूत्र में तीन महाव्रत—अहिंसा, सत्य और बहिर्द्धादान का उल्लेख मिलता है।[1]

२—'स्थानांग', 'उत्तराध्ययन' आदि में चार याम—अहिंसा, सत्य, अचौर्य और बहिर्द्धादान का उल्लेख मिलता है।[2] चातुर्याम का उल्लेख बौद्ध पिटकों में भी हुआ है।[3]

१—आचारांग ८।१५ २—(क) स्थानांग २६६, (ख) उत्तराध्ययन २३।२३ ३—दीर्घनिकाय

(d) 2,2-dimethyl pentanoic acid

३—पाच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है।[1]

इस विविध परम्परा से फलित यह हुआ कि धर्म का मौलिक रूप अहिंसा है। सत्य आदि उसका विस्तार है, इसलिए आचार्यो ने लिखा है 'अवसेसा तस्स रक्खट्ठा' शेप व्रत अहिसा की सुरक्षा के लिए है। काव्य की भाषा मे अहिंसा धान है, सत्य आदि उसकी रक्षा करने वाले बाडे है।[2] अहिसा जल है और सत्य आदि उसकी रक्षा के लिए सेतु है।[3] सार यही है कि दूसरे सभी व्रत अहिंसा के ही पहलू है।

किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए—यही ज्ञानियो के ज्ञान वचनो का सार है। अहिंसा, समता—सब जीवो के प्रति आत्मसात् भाव—इसे ही शाश्वत धर्म समझो।[4]

अहिंसा की परिभाषा :

अहिसा को भगवान् ने जीवो के लिए कल्याणकारी देखा है। सर्व जीवो के प्रति सयमपूर्ण जीवन-व्यवहार ही अहिंसा है।[5]

मनसा, वाचा और कर्मणा जो स्वय जीवो की हिंसा करता है, दूसरो से करवाता है, या जो जीव हिंसा का अनुमोदन करता है, वह (प्रति हिसा को जगाता हुआ) वैर की वृद्धि करता है।[6]

सुख-दु ख, प्रिय-अप्रिय की वृत्ति प्राणी मात्र मे तुल्य होती है। अहिसा की भावना को समझने और बलवान् बनाने के लिये यह आत्म तुला का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। इसीलिए भगवान् महावीर ने बताया है—छह जीव—निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो।[7] प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझो।

हे पुरुप जिसे तू मारने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जीवन जैसा ही सुख-दु ख का अनुभव करने वाला प्राणी है, जिस पर तू हुकूमत करने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे तू दुःख देने का विचार करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे तू अपने वश मे करने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, तू जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है।

सत्पुरुप इसी तरह विवेक रखता हुआ जीवन बिताता है, न किसी को मारता है और न किसी का घात करता है।

जो हिंसा करता है, उसका फल पीछे भोगना पड़ता है, अतः किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे।

१—उत्तराध्ययन २१।२२ २—हारिभद्रीय अष्टक १६।५ ३—योगशास्त्र प्रकाश ४—वही, ११।४।१० ५—दशवैकालिक ६।६ ६—वही, ७—दशवैकालिक १०।५

जैसे मुझे कोई बेत, हड्डी, कंकर आदि से मारे, पीटे, ताडित करे, तर्जन करे, दुःख दे, व्याकुल करे, भयभीत करे, प्राण-हरण करे तो मुझे दुःख होता है, जैसे मृत्यु से लेकर रोम उखाडने तक से मुझे दुःख होता है और भय होता है, वैसे ही सब प्राणी, भूत, जीव और सत्वो को होता है। यह सोच कर किसी भी प्राणी, भूत, जीव व सत्व को नही मारना चाहिये, उस पर हुकूमत नही करनी चाहिए, यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है।[1]

अहिंसा के दो रूप :

अहिंसा का शब्दानुसारी अर्थ है—हिंसा न करना। न + हिंसा – इन दो शब्दो से अहिंसा शब्द बना है। इसके पारिभाषिक अर्थ निषेधात्मक एवं विधेयात्मक—दोनो है। राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति न करना, प्राण वध न करना, या प्रवृत्ति मात्र का विरोध करना निषेधात्मक अहिंसा है। सत्प्रवृत्ति करना, स्वाध्याय, अध्यात्म-सेवा, उपदेश, ज्ञानचर्चा आदि आत्महितकारी क्रिया करना विधेयात्मक अहिंसा है। सयमी के द्वारा अशक्य कोटि का प्राणवध हो जाता है, वह भी निषेधात्मक अहिंसा है यानी हिंसा नही है। निषेधात्मक अहिंसा मे केवल हिंसा का वर्जन होता है, विधेयात्मक अहिंसा मे सत् क्रियात्मक सक्रियता होती है। यह स्थूल दृष्टि का निर्णय है। गहराई मे पहुचने पर बात कुछ और है। निषेध मे प्रवृत्ति और प्रवृत्ति मे निषेध होता है। निषेधात्मक अहिंसा मे सत् प्रवृत्ति और सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा मे हिंसा का निषेध होता है। हिंसा न करने वाला यदि आन्तरिक प्रवृत्तियो को 'शुद्ध न करे तो वह अहिंसा नही होगी। इसलिए निषेधात्मक अहिंसा मे सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा मे हिंसा का निषेध होना आवश्यक है, इसके बिना कोई प्रवृत्ति सत् या अहिंसा नही हो सकती, यह निश्चय दृष्टि की बात है। व्यवहार मे निषेधात्मक अहिंसा को निष्क्रिय अहिंसा और विधेयात्मक अहिंसा को सक्रिय अहिंसा कहा जाता है।

आत्म-तुला के मर्म को समझे बिना हिंसा-वृत्ति नही छूटती। इसीलिए अहिंसा मे मैत्री-रूप विधि और अमैत्री त्याग रूप निषेध दोनो समाए हुए है।

सब जीवो को अपने समान समझो और किसी को हानि मत पहुचाओ, इन शब्दो मे अहिंसा का द्वयर्थी सिद्धान्त—विधेयात्मक और निषेधात्मक सन्निहित है। विधेयात्मक मे एकता का सदेश है, सबमे अपने आपको देखो। निषेधात्मक उससे उत्पन्न होता है—किसी को भी हानि मत पहुँचाओ। सब मे अपने आपको देखने का अर्थ है—सबको हानि पहुचाने से बचना। यह हानि रहितता सबमें एक की कल्पना से विकसित होती है।[2]

नकारात्मक अहिंसा :

'स्थानाग' सूत्र मे सयम की परिभाषा बताते हुए लिखा है—सुख का व्यपरोपण या वियोग न करना और दुःख का सयोग करना—संयम है।[3] यह निवृत्ति रूप अहिंसा है।

१—आचारांग १।५।१०१–१०३ २—हिन्दुस्तान, दिनाक २८ मार्च, १९५३ : भगवान् महावीर : उनका जीवन और सदेश। ३—स्थानांग ४।४

'आचारांग' सूत्र मे धर्म की परिभाषा बताते हुए लिखा है—किसी प्राणी को मत मारो, उस पर अनुशासन मत करो, उसको अधीन मत करो, दास-दासी की तरह पराधीन बना कर मत रखो, परिताप मत दो, प्राण-वियोग मत करो। यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। सर्वज्ञ तीर्थंकरो ने इसका उपदेश किया है। यह भी निवृत्ति रूप अहिंसा है।

भगवान महावीर ने प्रवृत्ति रूप अहिंसा का भी विधान किया है, किन्तु सब प्रवृत्ति अहिंसा नही होती। चारित्र मे जो प्रवृत्ति है, वही अहिंसा है। अहिंसा के क्षेत्र मे आत्मलक्षी प्रवृत्ति का विधान है और संसारलक्षी या पर-पदार्थलक्षी प्रवृत्ति का निषेध। ये दोनों क्रमशः विधि रूप अहिंसा और निषेध रूप अहिंसा बनते है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे कहा है—समिति अर्थात् सत् व्यापार, यह प्रवृत्ति धर्म है और गुप्ति अर्थात् असत् व्यापार का नियन्त्रण, यह निवृत्ति धर्म है।[1]

सर्व प्राणियो के साथ मैत्री रखो[2]—यह कथन भी प्रवृत्ति रूप अहिंसा का विधान करता है।

वस्तु-तत्त्व को जानने वाले व्यक्ति, प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझ कर पीड़ित नही करते। वे समझते है जैसे कोई दुष्ट पुरुष मुझे मारता है, गाली देता है, बलात्कार करता है, दास-दासी बना अपनी आज्ञा का पालन कराता है, तब मैं जैसा दुःख अनुभव करता हू वैसे ही दूसरे प्राणी भी मारने, पीटने, गाली देने, बलात्कार से दास-दासी बना आज्ञा-पालन कराने से दुःख अनुभव करते होगे। इसलिए किसी भी प्राणी को मारना, कष्ट देना, बलात् आज्ञा मनवाना उचित नहीं।[3]

हिंसा की परिभाषा :

प्रमाद और काम-भोगो मे जो आसक्ति होती है, वही हिंसा है।[4] आत्मा की अशुद्ध परिणति मात्र हिंसा है। इसका समर्थन करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है—असत्य आदि सभी विकार आत्म परिणति को बिगाडने वाले है। इसलिए वे सभी हिंसा है। असत्य आदि जो दोष बतलाए है, वे केवल शिष्यबोधाय है। संक्षेप मे राग-द्वेष का अप्रादुर्भाव अहिंसा और उनका प्रादुर्भाव हिंसा है। राग-द्वेष रहित प्रवृत्ति से अशक्य कोटि का प्राण-वध हो जाये तो भी नैश्चयिक हिंसा नही होती, राग-द्वेष सहित प्रवृत्ति से प्राण-वध न होने पर भी, हिंसा होती है। जो राग-द्वेष की प्रवृत्ति करता है, वह अपनी आत्मा की घात कर ही लेता है, फिर चाहे दूसरे जीवो की घात करे या न करे। हिंसा से विरत न होना भी हिंसा है और हिंसा मे परिणति होना भी हिंसा है। इसलिए जहां राग-द्वेष की प्रवृत्ति है वहा निरन्तर प्राणवध होता है।[5]

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।[6]

१—उत्तराध्ययन २४।२६ २—उत्तराध्ययन ६।२ ३—सूत्रकृताग ४—सूत्रकृताग–१।१।८६
५—पुरुपार्थ सिद्धयुपाय ४२–४८ ६—हरिभद्र कृत अष्टक ७, श्लोक ६ की वृत्ति

इन तथ्यो से साफ हो जाता है कि प्राण-वध और हिंसा सर्वथा एक नही है। इसी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए अहिंसा शब्द व्यवहार मे आया, ऐसा प्रतीत होता है।

अहिंसा शब्द हिंसा का निषेध है। हिंसा सदेह मे होती है और अहिंसा भी उसी मे है। विदेह मे हिंसा और अहिंसा की कोई कल्पना ही नही होती। हिंसा वन्धन या सदेह दशा का हेतु है और अहिंसा मुक्ति या विदेह दशा का। मुक्ति होने के बाद अहिंसा आत्मा की शुद्धि रूप रह जाती है, साधना रूप नही। फिर उसका कोई कार्य नही रहता। इसलिए उसकी कोई कल्पना भी नही होती। मुक्ति धर्म है—हिंसा का निपेध।

सदेह जीवन तीन प्रकार का होता है—हिंसा का, हिंसा के अल्पीकरण का और अहिंसा का। हिंसा के जीवन मे हिंसा-अहिंसा का विवेक ही नही होता। हिंसा के अल्पीकरण के जीवन मे हिंसा को कम से कम करने का प्रयत्न किया जाता है। अहिंसा के जीवन मे हिंसा का पूरा त्याग किया जाता है।

हिसा : जीवन की परवशता :

अहिंसा मे मैत्री है, सौहार्द है, एकता है, सुख और शान्ति है। अहिंसा का स्वरूप है उपशम, मृदुता, सरलता, सन्तोष, अनासक्ति और अद्वेष। अहिंसा हमारे मन मे है, वाणी मे है और कार्यो मे है। इनके द्वारा हम न किन्ही दूसरो को सताते है और न अपने आपको। अहिंसा हमारी स्वाभाविक क्रिया है। हिंसा हमारे स्वभाव के प्रतिकूल है। हिंसा मे मनुष्य को परवशता का भान होता है। विना खाये, विना पिये, विना कुछ किये शरीर चल नही सकता। शरीर के सामर्थ्य के विना खाने-पीने का साधन नही जुटाया जा सकता। इस प्रकार की क्रमबद्ध शृ खलाओ की अनिवार्य प्रेरणाओ से मनुष्य व्यापार करता है, धन का अर्जन करता है, उसकी रक्षा करता है, उपभोग करता है, चोर लुटेरो से अपने स्वत्व को बचाता है, दण्ड प्रहार करता है, शासन-व्यवस्था करता है और अपने विरोधियो से लोहा लेता है। यह सब हिंसा है। पूर्ण आत्म-सयम के विना सव प्रकार की हिसाओ को नही त्यागा जा सकता और सब प्रकार की हिंसाओ को त्यागने के पश्चात् ये सब काम नही किये जा सकते। कितनी जटिल समस्या है अहिंसा और हिंसा के बीच। हिसा के विना गृहस्थ जी नही सकता और अहिंसा के विना वह मानवीय गुणो को नही पा सकता। ऐसी स्थिति मे बहुधा विचार शक्तिया उलझ जाती है और अहिंसा का मार्ग कठोर प्रतीत होने लग जाता है। जैन आचार्यों ने मनोवैज्ञानिक तरीको से मानसिक विचारो का अध्ययन किया, उनकी गहरी छानबीन की और तत्पश्चात् एक तीसरे हिंसा और अहिंसा के बीच के मार्ग (मध्यम मार्ग) का निरूपण किया। यह मार्ग यथाशक्य अहिंसा के स्वीकार का है। जैन दर्शन के अनुसार उसका नाम अहिंसा-अणुव्रत है।

हिंसा : चार प्रकार की :

गृहस्थ खाने के लिए भोजन पकाते है, पानी पीते है, रहने के लिए मकान बनवाते है, पहनने-ओढ़ने के लिए कपडे बनवाते है—यह आरम्भी हिंसा है। खेती करते है, कल-कारखाने चलाते

है, व्यापार करते हैं—यह उद्योगी हिंसा है। राष्ट्र जनता एवं कुटुम्ब की रक्षा करते है, आततायियों से लडते है, अपने आश्रितो को आपत्तियों से बचाते हैं, दल-बल आदि सम्भव उपायों का प्रयोग करते है—यह विरोधी हिंसा है। द्वेषवश या लोभवश दूसरो पर आक्रमण करते है, बिना प्रयोजन किसी को सताते है, दूसरो का स्वत्व छीनते है, अपने तुच्छ स्वार्थो के लिए मनमाना प्राणवध करते है, वृत्तियों को उच्छृखल करते है—यह संकल्पी हिंसा है। इस प्रकार हिंसा के चार प्रमुख वर्ग किये गये है। गृह-त्यागी मुनि इन चारो प्रकार की हिंसाओं को त्यागते है, अन्यथा वे मुनि नही हो सकते। गृहस्थ पहली तीन प्रकार की हिंसाओ को पूर्ण रूप से नही त्याग सकते, तथापि यथासम्भव इनको त्यागना चाहिये। व्यापारादि करने मे मनुष्य का सीधा उद्देश्य हिंसा करने का नही, कार्य करने का होता है। हिंसा हो जाती है। संकल्पी हिंसा का सीधा उद्देश्य हिंसा का होता है, कार्य करने का नहीं। दूसरो के सुख, शान्ति, हित और अधिकारो को कुचलने वाले कार्य भी बहुधा संकल्पी हिंसा जैसे बन जाते हैं। अत: सामूहिक न्यायनीति की व्यवस्था का उल्लंघन करना भी सबल हिंसा का साधन है। संकल्पी हिसा तो गृहस्थ के लिये भी सर्वथा वर्जनीय है। जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होने वाली हिंसा का असर व्यक्तिनिष्ठ है, समष्टिगत नही। किन्तु संकल्पी हिंसा का अभिशाप समूचे राष्ट्र और समाज को भोगना पड़ता है।

हिंसा-अहिंसा का चतुर्वर्ग :

वस्तुओं का स्वरूप देखने के लिए जैन आचार्यो ने निश्चय और व्यवहार इन दो दृष्टियों का उपयोग किया है। व्यवहार दृष्टि वस्तु का बाहरी स्वरूप देखती है और निश्चय दृष्टि उसका आन्तरिक स्वरूप। व्यवहार दृष्टि में लौकिक व्यवहार की प्रमुखता होती है और निश्चय दृष्टि में वस्तु स्थिति की। व्यवहार दृष्टि के अनुसार प्राणवध हिंसा है और प्राण-वध नही होता है, वह अहिंसा है। निश्चय दृष्टि के अनुसार असत् प्रवृत्ति यानी राग, द्वेष, प्रमादात्मक प्रवृत्ति हिसा है और सत् प्रवृत्ति अहिंसा है। इन दृष्टियों के आधार पर हिंसा-अहिंसा की चतुर्वर्गी बनती है, जैसे:—

१—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा

२—द्रव्य हिंसा और भाव अहिंसा

३—द्रव्य अहिंसा और भाव हिंसा

४—द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा।

राग-द्वेष वश होने वाला प्राणवध द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा है। जैसे एक शिकारी हिरण को मारता है, यह द्रव्य यानी व्यवहार मे भी हिंसा है, क्योकि वह हिरण के प्राण लूटता है और भाव यानी वास्तव मे भी हिंसा है, क्योंकि शिकार करने में उसकी प्रवृत्ति असत् होती है। राग-द्वेष के विना होने वाला प्राणवध द्रव्य-हिंसा और भाव अहिंसा है। जैसे एक संयमी सावधानीपूर्वक चलता-फिरता है तथा आवश्यक दैहिक क्रियाए करता है, उसके द्वारा अशक्य परिहार कोटि का प्राणवध हो जाता है। वह व्यवहार मे हिंसा है क्योकि वह प्राणी की मृत्यु का निमित्त वनता है पर वास्तव मे अहिंसा है, हिंसा नही है, क्योकि वहा उसकी प्रवृत्ति राग द्वेपात्मक नही होती। राग-द्वेष युक्त विचार

से अप्राणी पर घात या प्रहार किया जाता है, वह द्रव्य अहिंसा और भाव हिंसा है। जैसे कोई व्यक्ति धुंधुले प्रकाश मे रस्सी को सांप समझ कर उस पर प्रहार करता है तो वह व्यवहार मे अहिंसा है, क्योकि उस क्रिया मे प्राणवध नही होता पर निश्चय मे हिंसा है, कारण कि वहा मारने की प्रवृत्ति द्वेषात्मक है। जहां न राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति होती है और न प्राणवध होता है, वह सर्व संवर रूप अवस्था द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा है। यह अवस्था दैहिक और मानस क्रिया से निवृत्त तथा समाधि प्राप्त योगियो की होती है। भाव अहिंसा की पूर्णता संयम जीवन में प्राप्त होती है किन्तु द्रव्य अहिंसा की पूर्ण अवस्था दैहिक चंचलता छूटे विना, दूसरे शब्दों मे समाधि—अवस्था पाये विना, नही आती।

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण —सूत्रकृताग १।११।१०

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है।

आय तुले पयासु —सूत्रकृताग १।११।३

सभी प्राणियों के प्रति आत्मतुल्य भाव रखो।

आरंभजं दुक्खमिणं —आचाराग १।३।१

संसार में जितने भी दुःख है, वे सव आरंभज-हिंसा से उत्पन्न होते हैं।

तुमंसि नाम स चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि —आचाराग १।५।५

जिसे तू मारना चाहता है। जिसको कष्ट व पीड़ा पहुँचाना चाहता है। वह अन्य कोई तेरे समान ही चेतनावाला प्राणी है, ऐसा समझ। वास्तव मे वह तू ही है।

६ | समता

आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

विज्ञान का विकास और विषमता :

यह कहना सर्वथा उचित ही होगा कि अनियंत्रित विज्ञान के विकास ने मानव जीवन को असन्तुलित बना दिया है और यह असन्तुलन नितप्रति विषमता को बढाता जा रहा है। विज्ञान जहाँ वास्तव मे निर्माण का साधन बनना चाहिये, वहाँ वह उसके दुरुपयोग से विनाश और महाविनाश का साधन बनता जा रहा है।

विज्ञान तो विशेष ज्ञान का नाम है और भला स्वयं ज्ञान और विज्ञान विनाशकारी कैसे बन सकता है ? उसे विनाशकारी बनाने वाला है उसका अनियत्रण अथवा उसका दुष्प्रवृत्तियों के बीच संरक्षण। उस्तरे से हजामत बनाई जाती है, मगर वही अगर बन्दर के हाथ में पड़ जाय तो वह उससे किसी का गला भी काट सकता है, बल्कि वह तो गला काट ही देता है।

विषमताजन्य समाज मे विज्ञान का जितना विकास हुआ है, वह बराबर बन्दरस्वभावी लोगो के हाथ मे पड़ता रहा है। आखिर विज्ञान एक शक्ति है इसके नये-नये अन्वेषण और अनुसंधान शक्ति के नये-नये स्रोतों को प्रकट करते है। ये ही स्रोत अगर सदाशयी और त्यागी लोगों के नियत्रण में आ जाते है तो उनसे समता की ओर गति की जाकर सामूहिक कल्याण की साधना की जा सकती है। परन्तु आज तो यह शक्ति स्वार्थ और भोग के पंडों के हाथो मे है, जिसका परिणाम है कि ये तत्त्व अधिक से अधिक शक्तिशाली होकर इस शक्ति का अपनी सत्ता और अपना वर्चस्व बढ़ाने में प्रयोग कर रहे है।

शक्तिः स्रोतों का असन्तुलन :

वैज्ञानिक शक्तियो का यह दुरुपयोग, सभी क्षेत्रों मे निरन्तर विषमता में वृद्धि करता जा रहा है। हमारी संस्कृति का जो मूलाधार गुण और कर्म पर टिकाया गया था, वह इस असन्तुलित वातावरण के बीच उखडता जा रहा है। शक्ति-स्रोतो के इस असन्तुलन का सीधा प्रभाव यह दिखाई दे रहा है कि योग्य को योग्य नही मिलता और अयोग्य मारा योग्य हड़प जाता है। योग्य हताश

होकर निष्क्रिय होता जा रहा है और अयोग्य अपनी अयोग्यता का तांडव नृत्य कर रहा है। जब उपलब्धियो का विभाजन लूट के आधार पर होने लगे तो लुटेरा ही लूट सकेगा, साहूकार को तो मुँह की खानी ही पडेगी। लुटेरा बेझिझक होकर लूटता रहेगा तो निश्चित रूप से शक्तियाँ अधिक से अधिक असन्तुलित होती जायेगी, अधिक से अधिक शक्ति कम से कम हाथों मे इकट्ठी होती जायगी और वे कम से कम हाथ भी खून और कत्ल करने वाले हाथ होगे। दूसरी ओर बड़ी से बडी सख्या मे लोग शक्तिहीन होकर नैतिकता के अपने साधारण धरातल से भी गिरने लगते हैं। आज भौतिकता की ऐसी ही दुर्दशाग्रस्त विषम स्थिति मे समाज जकड़ा हुआ है।

विषमता का मूल : परिग्रह :

सारभूत एक वाक्य मे कहा जाय तो इस सर्वव्यापिनी पिशाचिनी विषमता का मूल मनुष्य की मनोवृत्ति मे है। जैसे हजारो गज भूमि पर फैले एक वट वृक्ष का बीज राई जितना ही होता है, उसी प्रकार इस विषमता का बीज भी छोटा ही है, किन्तु है कठिन अवश्य। मनुष्य की मनोवृत्ति मे जन्मा और पनपा यह बीज बाह्य और आन्तरिक जगत् मे वट वृक्ष की तरह प्रस्फुटित होकर फैलता है और हर क्षेत्र मे अपनी विषमता की शाखाएँ एव उपशाखाएँ विस्तारित करता है।

इसके मूल के क्षेत्र को और भी छोटा किया जा सकता है। अधिक सूक्ष्मता से मनोवृत्तियो का अध्ययन किया जायगा तो स्पष्ट होगा कि इस भयाविनी विषमता का बीज केवल मनुष्य की भोग मनोवृत्ति मे रहा हुआ है। भोग स्वय के लिये ही होता है इसलिये भोग-वृत्ति स्वार्थ को जन्म देती है। स्वार्थ का स्वभाव संकुचित होता है—वह सदा छोटा से छोटा होता जाता है, उसका दायरा बराबर घटता ही जाता है। जितना यह दायरा घटता है, उतनी ही मनुष्यता बौनी होती है—पशुता बडी बनती जाती है।

भोगवृत्ति की तुष्टि का प्रधान आधार है परिग्रह—अपने द्रव्य अर्थ मे भी और अपने भाव अर्थ मे भी।

परिग्रह का जीवन पर प्रभाव :

अपने द्रव्य अर्थ मे परिग्रह का अर्थ है धन-सम्पदा। निश्चय ही सासारिक जीवन धनाभाव मे नही चल सकता है। जीवन-निर्वाह की मूल आवश्यकताएँ है—भोजन, वस्त्र एव निवास, जिनका सचालन धन पर ही आधारित है। इसलिये इस तथ्य को स्वीकारना पड़ेगा कि धन का ससारी जीवन पर अमित प्रभाव ही नही है, बल्कि वह उसके लिये अनिवार्य है।

अनिवार्य का अर्थ है–धन के बिना इस सशरीरी जीवन को चलाना संभव नही; तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे अनिवार्य पदार्थ की साधारण रूप से उपेक्षा नही की जा सकती है। किसी भी दर्शन ने इसकी उपेक्षा की भी नही है। जो ज्ञान का प्रकाश फैलाया गया है, वह इस दिशा मे कि धन को आवश्यक बुराई मानकर चला जाय। सन्तोष, सहकार, सहयोग आदि सद्गुणो विकास इसी आधार पर किया गया कि धन का उपयोग करने दे मर्यादाओ के भीतर और उस दुरुपयोग को न पनपने दे।

दार्शनिकों ने धन-लिप्सा के भयावह परिणामों को जाना था। इसीलिये उन्होने इस पर अधिक से अधिक कडे अंकुश लगाने का विधान भी किया। धन का बाहुल्य नैतिक अर्जन से संभव नही बनता। अधिक धन का अर्थ अधिक अन्याय और उसका अर्थ है अधिक कष्ट—इस कारण एक के लिये अधिक धन का साफ अर्थ हुआ बहुतो के लिये अधिक कष्ट। अतः बहुलतया अधिक धन अधिक अनीति से ही अर्जित हो सकता है—यह पहली बात है।

दूसरे, अधिक धन की उपलब्धि का सीधा प्रभाव मनुष्य की भोगवृत्ति के उत्तेजित बनने पर पड़ता है। भोग अधिक—स्वार्थ अधिक और जितना स्वार्थ अधिक तो उतनी ही विषमता अधिक जटिल बनती जायगी—यह स्वाभाविक प्रक्रिया होती है।

होना यह चाहिये कि जो अधिक सद्गुणी हो, वह समाज मे अधिक शक्तिशाली हो किन्तु जहाँ धन-लिप्सा अनियंत्रित छोड़ दी जाती है, वहा अधिक धनी, अधिक शक्तिशाली और अधिक धनी, अधिक सम्माननीय, यह मापदंड बन जाता है। इसी मानदंड से विषमता का विषवृक्ष फूटता है।

शक्ति और सम्मान का स्रोत जब गुण न रह कर धन बन जाता है तो साँसारिक जीवन मे सभी धन के पीछे दौड़ना शुरू करते है—एक गहरा ममत्व लेकर। समाज का ऐसा मूल्य-निर्धारण मनुष्य को विदिशा मे मोड़ देता है। तब भोग उसका भगवान् बन जाता है और स्वार्थ उसका परम आराध्य देव—फिर भला उसका विवेक इन घेरो से बाहर कैसे निकले और कैसे समता के स्वस्थ मूल्यो को ग्रहण करे? जब विवेक सो जाता है तो निर्णय शक्ति उभरती नही। निर्णय नही तो जीवन की दिशा नही—भावना का जगत् तब शून्य होने लगता है। दिशा-निर्णय एवं स्वस्थ भावना के अभाव मे विषमता ही तो सब ठौर फैलने लगेगी।

परिग्रह का गूढ़ार्थ : मूर्छा :

"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो—" यह जैन-सूत्रो की परिग्रह की गूढ़ व्याख्या है। मूर्छा को परिग्रह कहा गया है। द्रव्य परिग्रह की ओर तब कदम बढ़ते है जब पहले भाव परिग्रह जन्म लेता है और यह भाव परिग्रह है—ममत्व और मूर्छा। जब मनुष्य की भावनात्मक जागृति क्षीण बनती है, उस अवस्था को ही मूर्छा कहते है। ममत्व मूर्छा को बढ़ाता है।

यह मेरा है—ऐसा अनुभाव कभी अन्तर जगत् के लिये स्फूर्तिजनक नही माना जाता है, क्योकि इसी अनुभाव से स्वार्थ पैदा होता है जिसकी परिणति व्यापक विषमता मे होती है। यह मेरा है इसे ही ममत्व कहा गया है। मेरे-तेरे की भावना से ऊपर उठने मे ही जागृति का मूल मत्र समाया हुआ है और इसी भावना की नीव पर त्याग का प्रासाद खडा किया जा सकता है।

इस मूर्छा को मन मे न जन्मने दो, न जमने दो—फिर जिन जीवन मूल्यो का निर्माण होगा, वह त्याग पर आधारित होगा। त्याग का अर्थ है जो अपने पास परिग्रह है उसे भी परोपकार के निमित्त छोड़ देना बल्कि यो कहे कि अपनी ही आत्मा के उपकार के निमित्त छोड़ देना। जो छोड़ना सीख लेता है तो उसकी तृष्णा कट जाती है और इस तृष्णा के कटने पर विपमता के मूल पर आघात होता है।

नियम और संयम की धारा :

परिग्रह और परिग्रहजन्य मनोवृत्तियो मे भटकना या परिग्रह और उसकी मूर्छा तक से निरपेक्ष वन जाना—वास्तव मे यही जीवन का दोराहा है। एक राह प्रवृत्ति की है, दूसरी राह निवृत्ति की। निवृत्ति और समूची निवृत्ति को सभी नहीं अपना सकते है। समूची निवृत्ति साधु जीवन का अग होती है और अन्तिम रूप से वही ग्राह्य मानी गई है, किन्तु सासारिक जीवन मे न्यूनाधिक प्रवृत्ति के विना काम नही चल सकता है। इसलिये वताया गया है कि द्रव्य परिग्रह के अर्जन की पद्धति को आत्म-नियन्त्रित वनाओ।

यह पद्धति जितनी विपमता से दूर हटेगी—जितनी समता के समीप जायगी, उतनी ही सार्वजनिक कल्याण का कारण भी वन सकेगी। इस पद्धति को नियम और सयम के आधार पर ही नियन्त्रित वनाया जा सकता है। यह नियम और सयम जितना व्यक्ति स्वेच्छा से ग्रहण करे, उतना ही अच्छा है। हा, व्यक्ति की अज्ञान अवस्था मे ऐसे नियम और सयम को सामूहिक शक्ति से भी शुरू करके व्यक्ति जीवन को प्रभावित वनाया जा सकता है।

नियम और सयम की धारा तव ही वहती रह सकेगी जव परिग्रह की मूर्छा समाप्त की जाय। जीवन-निर्वाह के लिये धन चाहिये, वह निरपेक्ष भाव से अर्जित किया जाय और चारो ओर ममता के वातावरण की सृष्टि की जाय—तव धन जीवन मे प्राथमिक न रहकर गौण हो जायगा। इसके गौण होते ही गुण ऊपर चढेगा—विषमता कटेगी और समता प्रसारित होगी। नियन्त्रित प्रवृत्ति और निवृत्ति की ओर गति ही समता जीवन का आधार है।

सार्थक जीवन .

इस दिशा मे विशिष्ट सत्यानुभूति के उद्देश्य से यह नवीन सूत्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

'कि जीवनम् ?
सम्यक् निर्णायकं समतामयञ्च यत्
तज्जीवनम्।'

जीवन क्या है ? प्रश्न उठाया गया है और उसका उत्तर भी इसी सूत्र मे दिया गया है कि जो जीवन सम्यक् निर्णायक और समतामय है, वास्तव मे वही जीवन है।

जो जिया जाता है, वह जीवन है—यह तो जीवन की स्थूल परिभाषा है। एक आदमी को वोरे मे वांध कर पहाड़ की चोटी से नीचे लुढका दिया जाय तो वह वोरा ढलान से लुढकता हुआ नीचे आ जाय—यह भी एक तरह से चलना ही हुआ। वहा दूसरा आदमी अपने नपे-तुले कदमो से अपनी सजग दृष्टि से चल कर उतरे—उसे भी तो चलना ही कहेगे। तो दोनो तरह के चलने मे फर्क क्या हुआ ? एक चलाया जाता है, दूसरा चलता है। चलाया जाना जडत्व है तो चलना चैतन्य। अव दोनो मे परिणाम भी देखिये। जो वोरे मे वधा लुढक कर चलता है, वह लहूलुहान हो जायगा—चट्टानो के आघात-प्रतिघातो से वह अपनी सज्ञा भी खो वैठेगा और सभव है कि फिर अर्से तक वह चल सकने के काविल भी न रहे। तो जो केवल जिया जाता है, उसे केवल जडता

जीवन ही कहा जा सकता है। सार्थक जीवन वह है जो स्वयं चले—स्वस्थ एव सुदृढ गति से चले बल्कि अपने चलने के साथ अन्य दुर्बल जीवनो मे भी प्रगति का बल भरता हुआ चले।

समतामय जीवन :

समता शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपो मे लिया जाता है। वैसे मूल शब्द सम है जिसका अर्थ समान होता है। अब यह समानता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किस-किस रूप मे हो—इसका विविध विश्लेषण किया जा सकता है।

सबसे पहले आध्यात्मिक क्षेत्र की समानता पर सोचे तो अपने मूल स्वरूप की दृष्टि में सारी आत्माएं समान होती है—चाहे वह एकेन्द्रिय याने अविकसित प्राणी की आत्मा हो या सिद्ध भगवान् की पूर्ण विकसित आत्मा। दोनों मे वर्तमान समय की जो विषमता है, वह कर्मजन्य है। कुविचारो एवं कुप्रवृत्तियो का मैला अविकसित अवस्था में आत्मा के साथ संलग्न होने से उसका स्वरूप भी मैला हो जाता है और जैसे मैले दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता, उसी तरह मैली आत्मा भी श्रीहीन बनी रहती है। तो आध्यात्मिक समता यह है कि इस मैल को दूर करके आत्मा को अपने मूल निर्मल स्वरूप मे पहुँचाई जाय।

एक-एक आत्मा इस तरह समता की ओर मुडे तो दूसरी ओर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व मे भी ऐसा समतामय वातावरण बनाया जाय जिसके प्रभाव से समूहगत समता भी सशक्त बनकर समग्र जीवन को समतामुखी बना दे। राजनीति मे समानता, अर्थनीति में समानता और समाजनीति मे समानता के जब पग उठाये जायेगे और उसे अधिक से अधिक वास्तविक रूप दिया जायगा तो समता की द्विधारा बहेगी—भीतर से बाहर और बाहर से भीतर। तब भौतिकता और आध्यात्मिकता संघर्षशील न रहकर एक दूसरे की पूरक बन जायेगी जिसका समन्वित रूप जीवन के बाह्य और अन्तर को समतामय बना देगा।

यह परिवर्तन समाजवाद या साम्यवाद से आवे अथवा अन्य विचार के कार्यान्वय से—किन्तु लक्ष्य हमारे सामने स्पष्ट होना चाहिये कि मानवीय गुणों की अभिवृद्धि के साथ सांसारिक व्यवस्था मे अधिकाधिक समता का प्रवेश होना और ऐसी समता का जो मानव-जीवन के आभ्यन्तर को न सिर्फ सन्तुलित रखे, बल्कि उसे संयम-पथ पर चलने के लिये प्रेरित भी करे। धरातल जब समतल और साफ होता है तो कमजोर आदमी भी उस पर ठीक व तेज चाल से चल सकता है, किन्तु इसके विपरीत अगर धरातल उबडखाबड़ और कंटीला, पथरीला हो तो मजबूत आदमी को भी उस पर भारी मुश्किलो का सामना करना पड़ेगा। व्यक्ति की क्षमता का तालमेल यदि सामाजिक विकास के साथ बैठ जाता है तो व्यक्ति की क्षमता भी कई गुनी बढ जाती है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध :

यो देखा जाय तो समाज कुछ भी नही है, व्यक्ति-व्यक्ति मिल कर ही तो समाज की रचना करते है, फिर व्यक्ति से विलग समाज का अस्तित्व कहा है ? किन्तु सभी के अनुभव मे आता होगा कि व्यक्ति की शक्ति प्रत्यक्ष दीखती है फिर भी समूह की शक्ति उससे ऊपर होती है जो व्यक्ति की शक्ति को नियंत्रित भी करती है। एक व्यक्ति एक संगठन की स्थापना करता है—उसके नियमो-

पनियम वनाता है तथा उनके अनुपालन के लिये दंड व्यवस्था भी कायम करता है। एक तरह से सगठन का वह जनक है, फिर भी क्या वह स्वयं ही नियम-भग करके दंड से वच सकता है? यही शक्ति समाज की शक्ति कहलाती है जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से वरण करता है। राष्ट्रीय सरकारो के सविधानो मे यही परिपाटी होती है।

जव-जव व्यक्ति स्वस्थ धारा से अलग हटकर निरकुश होने लगता है—शक्ति के मद मे झूम कर अनीति पर उतारू होता है, तव-तव यही सामाजिक शक्ति उस पर अंकुश लगाती है। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता होगा कि कई वार वह कुकर्म करने का निश्चय करके भी इसी विचार से रुक जाता है कि लोग क्या कहेगे? ये लोग चाहे परिवार के हों—पडोस के हो—मोहल्ले, गाँव, नगर या देश-विदेश के हों, इन्हे ही समाज मान लीजिये।

व्यक्ति स्वयं से नियंत्रित हो—व्यक्ति समाज से नियन्त्रित हो—ये दोनो परिपाटिया समता लाने के लिये सक्रिय वनी रहनी चाहिये। यही व्यक्ति एव समाज के सम्बन्धो की सार्थकता होगी कि विपमता को मिटाने के लिये दोनो ही नियन्त्रण सुदृढ वने।

समता : मानव मन के मूल मे है :

प्रत्येक मानव अपने जीवन को सुखी बनाना चाहता है और उसके लिये प्रयास करता है, किन्तु आज की दुविधा यह है कि सभी तरह की विपमताओ के बीच सम्पन्न भी सुखी नही, विपन्न भी सुखी नही और शान्ति लाभ तो जैसे एक दुष्कर स्थिति वन गई है। इसका कारण यह है कि मानव अपने साध्य को समझने के वाद भी उसके प्रतिकूल साधनो का आश्रय लेकर जब आगे बढता है तो बबूल उगाने से आम कहाँ से फलेगा?

समता मानव मन के मूल मे है—उसे भुला कर जव वह विपरीत दिशा मे चलता है तभी दुर्दशा आरम्भ होती है।

समता का मूल्यांकन :

समता या समानता का कोई यह अर्थ ले कि सभी लोग एक ही विचार के या एक से शरीर के वन जावे अथवा विल्कुल एक सी ही स्थिति मे रखे जावे तो यह न सभव है और न ही व्यावहारिक। एक ही विचार हो तो विना आदान-प्रदान, चिन्तन और सघर्ष के विचार का विकासशील प्रवाह ही रुक जायगा। इसी तरह आकृति, शरीर अथवा संस्कारो मे भी समानपने की सृष्टि संभव नही।

समता का अर्थ है कि पहले समतामय दृष्टि वने तो यही दृष्टि सौम्यतापूर्वक कृति मे उतरेगी। इस तरह समता समानता की वाहक वन सकती है। आप ऐसे परिवार को लीजिये, जिसमे पुत्र अर्थ या प्रभाव की दृष्टि से विभिन्न स्थितियो मे हो सकते है किन्तु सब पर पिता की जो दृष्टि होगी, वह समतामय होगी। एक अच्छा पिता ऐसा ही करता है। उस समता से समानता भी आ सकेगी।

समता कारण रूप है तो समानता कार्यरूप; क्योंकि समता मन के धरातल पर जन्म लेकर मनुष्य को भावुक बनाती है तो वही भावुकता फिर मनुष्य के कार्यो पर असर डाल कर उसे समान

स्थितियो के निर्माण मे सक्रिय सहायता देती है। जीवन मे जब समता आती है तो सारे प्राणियों के प्रति समभाव का निर्माण होता है। तब अनुभूति यह होती है कि बाहर का सुख हो या दु ख—दोनों अवस्थाओ मे समभाव रहे—यह स्वय के साथ की स्थिति तो अन्य सभी प्राणियों को आत्म-तुल्य मानकर उनके सुख-दुःख मे सहयोगी बने—यह दूसरो के साथ व्यवहार करने की स्थिति। ये दोनो स्थितियां जब पुष्ट बनती है तो यह मानना चाहिये कि जीवन समतामय बन रहा है। कारण कि यही पुष्ट भावना आचरण मे उतर कर व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति की दोराहो पर विषमता को नष्ट करती हुई समता की सृष्टि करती है।

समता का आविर्भाव कब :

समता का श्रीगणेश चूंकि मन से होना चाहिये इसलिये मन की दो वृत्तिया होती है—राग और द्वेष। ये दोनो विरोधी वृत्तिया है। जिसे आप चाहते है उसके प्रति राग होता है। राग मोह और पक्षपात जन्म लेता है : जिसे आप नही चाहते उसके प्रति द्वेष आता है। द्वेष से कलुष, तेशोध और हिंसा पैदा होती है। ये दोनो वृत्तिया मन को चंचल बनाती रहती है तथा मनुष्य को थरचित्ती एव स्थिरधर्मी बनने से रोकती है। चंचलता से विपमना बनती और बढ़ती है। मन षम तो दृष्टि विषम होगी और उसकी कृति भी विषम होगी।

समता का आविर्भाव अतः तभी संभव होगा जब राग और द्वेष को घटाया जाय। जितनी रपेक्ष वृत्ति पनपती है, समता संगठित और सस्कारित बनती है। निरपेक्ष दृष्टि मे पक्षपात नही ;ता और जब पक्षपात नही है तो वहा उचित के प्रति निर्णायक वृत्ति पनपती है तथा गुण और कर्म दृष्टि से समता अभिवृद्ध होती है। अगर एक पिता के मन मे भी एक पुत्र के प्रति राग और सरे के प्रति द्वेष है तो वह स्थिति समता जीवन की द्योतक नहीं है। मैं सबकी आंखो में प्रफुल्लता खना चाहूँ—मै किसी की आख मे आंसू नही देखना चाहू—ऐसी वृत्ति जब सचेष्ट बनती है तो ानना चाहिये कि उसके मन मे समता का आविर्भाव हो रहा है।

वाह्य समानता के लिये प्रयास करने से पूर्व अन्तर की विषमता नही मिटाई और कल्पना रले कि वाहर की विषमता किसी भी बल प्रयोग से एक बार मिटा भी दी गई हो तो भी विषमता-य अन्तर के रहते वह समानता स्थायी नही रह सकेगी। एक ध्वजा जो उच्च गगन मे वायु-मण्डल लहराती है—उसकी कोई दिशा नही होती। जिस दिशा का वायु वेग होता है, वह उधर ही मुड़ ाती है, किन्तु ध्वजा का जो दण्ड या स्तूप होता है, वह सदा स्थिर रहता है। तो समता के विकास लिये दण्ड या स्तूप बनने का प्रयास करे जो स्थिर और अटल हो। फिर समता का सूक्ष्मतम कास होता चला जायगा।

न्तर्दृष्टि और वाह्य दृष्टि :

समता के दो रूप हैं—दर्शन और व्यवहार। अन्तर के नेत्रों की प्रकाशमय दृष्टि से देखकर ीवन मे गति करना समता दर्शन का मुख्य भाव है और यह जो गति है उससे समता के व्यवहार ा स्वरूप स्पष्ट होता है। अतः अन्तर और वाह्य दोनो दृष्टियो से समतापूर्ण जीवन का संचालन रने से सार्थक जीवन की उपलब्धि हो सकती है। दर्शन की गति व्यापक नही हो तो व्यवहार मे

भी एकरूपता नही आती है। इसके लिये अन्तर्दृष्टि और वाह्य दृष्टि मे सम्यक् समन्वय होना चाहिये।

आप एक मकान को देखते है। उसमे कही पत्थर होता है, कही चूना, सीमेन्ट, लोहा, लकडी आदि। फिर भी उसमे रहने या बैठने वालो की स्थिति भी एक सी नही होती—अलग-अलग आकृतियां, वेश-भूषा आदि। फिर भी यदि अन्तर्दृष्टि मे सबके समता आ जाय तो इन विभिन्नताओ के बावजूद सारा समूह एकरूपता की अनुभूति ले सकता है। वाह्य दृष्टि की विषमता इसी भाव एव विचार समता के दृढ आधार पर समाप्त की जा सकती है।

किन्तु जो अन्तर्दृष्टि मे शून्य रह कर केवल वाह्य दृष्टि मे भटकता है, वह विषमता को ही अधिक बढाता है। समता की साधना एकागी नही, मन, वचन एवं कर्म तीनों के सफल संयोग से की जानी चाहिये तभी वाह्य दृष्टि अपना मार्ग अन्तर्दृष्टि से पूछ कर ही चलेगी। अन्तर्दृष्टि का अनुशासन ही वाह्य दृष्टि पर चलना चाहिये।

समता : शान्ति, समृद्धि एवं श्रेष्ठता की प्रतीक :

मनुष्य के मन के मूल मे रही समता ज्यो-ज्यों उभरती जायगी, वह अपने व्यापक प्रभाव के साथ मानव जीवन को भी उबारती जायगी। उसे अशान्ति, दुःखदैन्य एवं निकृष्टता के चक्रवात से बाहर निकाल कर यही समता उसे शान्ति, सर्वांगीण समृद्धि एव श्रेष्ठता के साचे मे ढालेगी। ऐसी ढलान के बाद ही मनुष्य विषमताजन्य पशुता के घेरो से निकल कर आत्मीयतापूर्ण मनुष्यता का स्वामी बन सकेगा। समता शान्ति, समृद्धि एव श्रेष्ठता की प्रतीक होती है—इसे कभी न भूले।

नो उच्चावयं मणं नियंछिज्जा —आचाराग २।३।१

सकट की घड़ियो मे भी मन को ऊंचा-नीचा अर्थात् डावाडोल नही होने देना चाहिए।

समयं सया चरे। —सूत्रकृताग २।२।३

साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिए।

असंविभागी ण हु तस्स मोक्खो —दशवैकालिक ९।२।१३

जो अपनी प्राप्य सामग्री दूसरो मे बाटता नही, उसकी मुक्ति नही होती।

७ | सामायिक

उपाध्याय अमर मुनि

सामायिकः समभाव की साधना :

सब जीवों पर समता—समभाव रखना, पाच इन्द्रियो का संयम नियंत्रण करना, अन्तर्हृदय मे शुभ भावना—शुभ सकल्प रखना, आर्त—रौद्र दुर्ध्यानो का त्याग कर धर्मध्यान का चिन्तन करना सामायिक व्रत है।

सामायिक का मुख्य लक्षण समता है। समता का अर्थ है—मन की स्थिरता, रागद्वेष की अपरिणति, समभाव, एकीभाव, सुख-दुःख में निश्चलता इत्यादि। समता आत्मा का स्वरूप है और विषमता परस्वरूप यानी कर्मों का स्वरूप। अतएव समता का फलितार्थ यह हुआ कि कर्म—निमित्त से होने वाले राग आदि विषम भावों की ओर से आत्मा को हटाकर स्व-स्वरूप मे रमण करना ही समता है। आचार्य हरिभद्र पंचाशक मे लिखते है—

समभावो सामाइयं, तण-कंचण सत्तु-मित्त विसउत्ति।
णिरभिस्संगं चित्तं, उचिय पवित्तिप्पहाणं च॥

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मन को राग-द्वेष की आसक्ति से रहित रखना तथा पाप-रहित उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना, सामायिक है, क्योंकि समभाव ही तो सामायिक है।

सामायिक के दो भेद :

(१) **द्रव्य सामायिक :**—द्रव्य का अभिप्राय यहां ऊपर के विधि विधानों तथा साधनों से है। अतः सामायिक के लिए आसन बिछाना, गृहस्थ-वेष के कपड़े उतारना, माला फेरना आदि द्रव्य सामायिक है।

(२) **भाव सामायिक :**—भाव का अभिप्राय यहा अन्तर्हृदय के भावो और विचारो से है। अर्थात् राग-द्वेष से रहित होनें के भाव रखना, राग-द्वेष से रहित होने के लिए प्रयत्न करना, यथा-शक्ति राग-द्वेष से रहित होते जाना, भाव सामायिक है। उक्त भाव को जरा दूसरे शब्दो मे कहे, तो यो कह सकते है कि बाह्य दृष्टि का त्याग कर अन्तर्दृष्टि के द्वारा आत्म निरीक्षण मे मन को जोड़ना,

८ | तप

डॉ०. नरेन्द्र भानावत

आत्म-शुद्धि और तप :

भारतीय साधना पद्धति मे तप को परम ज्योति और अग्नि कहा गया है। अग्नि की भांति तपोसाधना से जहाँ आत्मा के विकार नष्ट होते हैं, वहाँ उससे नई शक्ति और प्रकाश भी मिलता है। तप की उष्मा पाकर आत्मा निर्मल और पवित्र बनती है और धीरे-धीरे साधना का बल पाकर यह उष्मा विलक्षण ज्योति मे परिणत हो जाती है। यह परिणमन ही तपोसाधना का चरम लक्ष्य है। इसे ही आत्म-दशा से परमात्म-दशा तक पहुचने की स्थिति कहा गया है। आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है, वह कर्म जनित है। राग-द्वेषादि कर्मो से आत्मा मलीन और अपवित्र बन जाती है। आत्मा की शुद्धि के लिये श्रमण सस्कृति मे तप का विशेष विधान है। 'सयुक्त निकाय' जैसे बौद्ध ग्रन्थो मे तप और ब्रह्मचर्य को बिना पानी का स्नान कहा गया है। भगवान् महावीर ने कहा- तवेण परिसुज्झई' अर्थात् तप से आत्मा का शुद्धिकरण होता है।

सासारिक बन्धनो मे बन्ध कर आत्मा भारी हो जाती है। तप की अग्नि से आत्मा हल्की और विशुद्ध होकर परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेती है। इस दृष्टि से आत्म-शुद्धि के लिये की जाने वाली कोई भी प्रवृत्ति तप कही जा सकती है। जैन साधको की दृष्टि इस दिशा मे बड़ी उदार रही है। कोई भी व्यक्ति अपनी आतरिक शक्तियो को जागृत कर उनका विकास कर महापुरुष बन जाता है। उसमे ईश्वरत्व की झलक प्रतिबिम्बत होने लगती है। साधारण पुरुष से महापुरुष बनने की इस प्रक्रिया मे तप की विशेष भूमिका है। तप के द्वारा ही मन की सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं। जिस अनुपात मे ये शक्तियाँ जागृत होती जाती हैं, उसी अनुपात मे महानता का स्तर बढता जाता है।

तप का मूल धैर्य :

तप का मूल धैर्य माना गया है—'तवस्स मूल धिती'। जब व्यक्ति मे धीर भाव का उ होता है तब उसमे अन्य गुण स्वतः चले आते है। शायद इसीलिए साहित्यशास्त्रियो ने हर नायक के पहले धीर विशेषण का प्रयोग किया है, यथा धीरोदात्त, धीर प्रशान्त आदि। जहां धैर्य होता.

वहाँ अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो मे सतुलन बना रहता है। यह सतुलन ही जीवन मे स्थैर्य और गतिशीलता जोड़े रखता है।

तप . बाह्य और आभ्यन्तर :

जैन आगमो मे व्यक्ति की क्षमता और रुचि के अनुसार तप का विधान किया गया है। ख्य रूप से दो प्रकार के तप कहे गये है—बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। वे क्रियाएँ जिनका चरण करने पर हमें स्वय कष्ट, श्रम आदि का अनुभव होता है और दूसरों को भी बाहर मे खता है कि हम तप कर रहे हैं, वाह्य तप की श्रेणी मे आती हैं। इनका मुख्य लक्ष्य इन्द्रिय-विषयो दूर हटना होता है।

ाह्य तप के ६ प्रकार :

वाह्य तप के छह भेद माने गये हैं—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस-परित्याग, कायक्लेश ौर प्रतिसलीनता।

अनशन का अर्थ है—आहार का त्याग करना। यह तप सभी तपो मे प्रथम है क्योंकि ाहार के प्रति प्राणी मात्र की आसक्ति रहती है। भूख पर विजय प्राप्त करना सबसे कठिन तप । आहार की इच्छा का त्याग करने का अर्थ है—प्राणों का मोह छोडना और मृत्यु के भय को ोतना। आहार त्याग से मानसिक विकारो को दूर करने मे भी मदद मिलती है। व्यवहार मे नशन तप को ही 'उपवास' कहा जाता है। उपवास शब्द पर विचार करने से प्रतीत होता है कि समे दो शब्द है उप+वास। 'उप' का अर्थ है समीप और 'वास' का अर्थ है—रहना अर्थात् आत्मा समीप रहना। आत्मा का स्वभाव आनन्दमय एवं ज्ञानमय है। इस आनन्द और ज्ञान की अनु- ति वही कर सकता है जो राग-द्वेष आदि विकारो से दूर रहकर समभाव मे रमण करता है।

तप का दूसरा भेद ऊनोदरी है। इसका अर्थ है भूख से कम खाना। इस तप द्वारा खाद्य यम की साधना को बल मिलता है और अनावश्यक संचय करने की प्रवृत्ति पर अकुश लगता है तः यह तप धार्मिक दृष्टि से ही नही, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी उपयोगी है। वस्तु की रह क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मानसिक विकारो में कमी लाना, इनके वेगो को कम करना भी ाव ऊनोदरी तप है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सादगी, संयम और समभाव लाना इस तप का मुख्य क्ष्य है।

तीसरे तप भिक्षाचरी का सम्बन्ध निर्दोष आहार ग्रहण करने की विधि से है। इसमे साधक लिये विधान है कि वह अभिग्रह आदि नियम करके रूखा-सूखा जैसा भी निर्दोष आहार प्राप्त हो, से समभाव पूर्वक ग्रहण करे। चौथे रस-परित्याग तप मे स्वाद-वृत्ति पर विजय प्राप्त करते हुए भक्ष्य चीजो से बचा जाता है। आज युवको मे बढ़ती हुई मासाहार और होटलो मे खाने की प्रवृत्ति स्यत: स्वादलोलुपता का ही परिणाम है। तन-मन को स्वस्थ रखने के लिए सादे और सात्विक ोजन की ओर प्रवृत्त होना इस तप का लक्ष्य है। पांचवा कायक्लेश तप व्यक्ति को सहिष्णु और हनशील बनाता है। छठे प्रतिसलीनता तप मे असद्वृत्तियो से इन्द्रियो को हटाकर सद्वृत्तियों मे

मन को तल्लीन किया जाता है। इस प्रकार इन छह बाह्य तपो के द्वारा विषयो से बचने की साधना की जाती है। इनमे से प्रारभ के चार तप आहार से सम्बन्धित है। जब तक आहार पर सयमन नही किया जाता, तब तक मन की शक्तियों को उजागर नही किया जा सकता।

आभ्यन्तर तप के ६ प्रकार :

जिन क्रियाओ के द्वारा साधना मे शारीरिक कष्ट तो कम होते है किन्तु मानसिक एकाग्रता, सरलता और भावो की शुद्धता का प्रभाव अधिक रहता है, उन्हे आभ्यन्तर तप कहा गया है। इनका विधान विकारो को दूर हटाने के लिए है। इनके छह प्रकार हैं—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

प्रायश्चित का अर्थ है—प्रमाद या अज्ञानवश हुई भूल के प्रति मन मे ग्लानि या पश्चाताप करते हुए उसे दुबारा न करने का सकल्प करना। इस प्रक्रिया से आत्म-निरीक्षण होकर उत्तरोत्तर जीवन शुद्ध बनता है। विनय का अर्थ है—नम्रता। बडो के प्रति विनम्र भाव रखना और छोटो के प्रति स्नेह और वात्सल्य रखना वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के लिये आवश्यक है। विनय द्वारा अहकार टूटता है और सदाचार मे वृद्धि होती है।

वैयावृत्य का अर्थ है—सेवा। सेवा को परम धर्म कहा गया है। जैन आगमो मे तो यहाँ तक कथन है कि वैयावृत्य करने से तीर्थङ्कर गोत्र बधता है। इसमे अपनी सुख-सुविधाओ का त्याग करके दूसरो के सुख के लिये त्याग की भावना जागृत होती है। आज सेवा का विशाल क्षेत्र हमारे सामने है। जो समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा मे निष्काम भाव से अपना योग देता है वह भी हमारे यहाँ तपस्वी कहा गया है। विधि पूर्वक सद्शास्त्रो का अध्ययन, मनन करना और तदनुरूप उस पर आचरण करने का प्रयत्न करना स्वाध्याय तप है। स्वाध्याय से मन एकाग्र होता है, विचार शुद्ध बनते है और ज्ञान का अभ्यास बढ़ता है। स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है—'सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्मं खवेइ'। वाचना पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ये स्वाध्याय के पाँच प्रकार है। मन का एकाग्रता के लिये ध्यान तप का विधान है। इसके द्वारा मन के प्रवाह को अशुभ विचारो से शुभ विचारो की ओर मोडा जाता है। शुभ विचारो की ओर बढता हुआ मन जब किसी विषय मे तन्मय हो जाता है, तब वह ध्यान कहलाता है। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। इनसे आत्मबल का विकास होता है और धीरे-धीरे मन समाधिस्थ होने लगता है। व्युत्सर्ग तप मे विशिष्ट विधि पूर्वक त्याग किया जाता है। शरीर के प्रति आसक्ति का त्याग करना, धन सम्पत्ति के ममत्व का त्याग करना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारो के परिहार का अभ्यास करना व्युत्सर्ग तप है। इसमे देहासक्ति से सर्वथा मुक्त होने का प्रयास किया जाता है।

तप का वास्तविक स्वरूप :

केवल भूखा रहना वास्तविक अर्थ मे सच्चा तप नही है। यह तो तप का आरभ मात्र है। अनशन तप मे भोजन का त्याग भर करना पड़ता है। पर ज्यो-ज्यो तप सूक्ष्म बनता जाता है, उसमे विषय और विकार छूटते चलते है और अन्ततः भोग से सर्वथा विरक्ति हो जाती है। श्रेष्ठ तप वह है जिसमे मन किसी प्रकार का अमगल न सोचे, इन्द्रियो की हानि न हो और नित्य प्रति की धर्म-

क्रियाओं में विघ्न न आये। तप व्यक्ति को कमजोर या निष्क्रिय नहीं बनाता, वह उसकी सक्रियता और जीवन्त शक्ति को सतेज करता है।

तप का वैयक्तिक और सामाजिक महत्त्व :

जैनागमों मे वर्णित उक्त बाह्य एव आभ्यन्तर तपो के बारह प्रकारो से यह स्पष्ट है कि तप का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी साधना से कर्मों की निर्जरा तो होती ही है, साथ ही खाद्य-सयम, कष्ट-सहिष्णुता, अस्वादवृत्ति, सेवा-भावना, मानसिक एकाग्रता, त्याग-वृत्ति जैसे सद्‌गुणो का भी विकास होता है जो किसी भी स्वस्थ समाज और प्रगतिशील मजबूत राष्ट्र के मूल आधार हैं।

एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरगं

—आचारांग १।४।२

आत्मा को शरीर से विलग जानकर भोगलिप्त शरीर को तपश्चर्या के द्वारा धुन डालना चाहिए।

भवकोडिय संचियं कम्मं, तवसा णिज्जरिज्जइ

—उत्तराध्ययन ३०।६

करोडों भवो के सचित कर्म तपश्चर्या से निर्जीर्ण–नष्ट हो जाते हैं।

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो।
न दीसई जाइविसेस कोई॥

—उत्त० १२।३७

तप की महिमा प्रत्यक्ष मे दिखलाई देती है किन्तु जाति की महिमा तो कोई नजर नहीं आती है।

---

९ | श्रावक धर्म

• श्री मधुकर मुनि

श्रावक का स्वरूप :

'श्रावक' श्रमण-संस्कृति का मुख्य शब्द है। जैन और बौद्ध—दोनो ही परम्पराओ मे गृहस्थ उपासक को श्रावक कहा गया है। श्रावक शब्द के कुछ गुणवाचक अर्थ इस प्रकार है।

जो धर्मशास्त्रो का श्रवण करता है, वह श्रावक।

जो त्यागी श्रमणो की उपासना करता है, वह श्रमणोपासक है। श्रावक शब्द से ध्वनित होता है—

श्रा } श्रद्धावान हो,
व } विवेकी हो,
क } क्रियावान हो,

श्राद्धविधि[1] नाम के प्राचीन ग्रंथ मे श्रावक शब्द की व्युत्पत्ति के साथ निम्न अर्थ बताये गये हैं—

श्रा—वह तत्त्व-अर्थ के चिन्तन द्वारा श्रद्धालुता को दृढ करता है।

व—वह सत्पात्र मे धन रूप बीज का वपन करता है।

क—वह शुद्ध साधु की सेवा करके पाप धूलि को दूर फेंकता है।

उक्त परिभाषाओ से यह स्पष्ट होता है कि श्रावक वह व्यक्ति है, वह पवित्र मानव है जो सदा श्रद्धा, ज्ञान और कर्म की पावन त्रिवेणी मे अवगाहन करता रहता है। राष्ट्र और समाज मे जिसका चरित्र आदर्श होता है। जो संग्रह भी करता है तो दान भी देता है, जो सेवा लेता है तो सेवा करने मे भी पीछे नही रहता और जो नीति एवं सदाचार के नियमों का आत्मसाक्षी से पालन करता है, वह जैन परिभाषा के अनुसार 'श्रावक' है।

---

१. श्रद्धालुतां श्राति पदार्थ चिन्तनाद्, धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम्।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवना, दत्तोपि तं श्रावक माहुरुत्तमाः ॥

—श्राद्धविधि पृ० ७२। श्लोक ?

श्रावकधर्म की रूपरेखा :

जीवन एक अखण्ड वस्तु है। धर्म उसकी अखण्डता का रक्षक, पालक एवं पोषक है। धार्मिक जीवन और लौकिक जीवन भिन्न-भिन्न नही हो सकते। दोनो का विकास एक साथ होता है। अत: सामान्य आचार की भूमिका बनाने के बाद श्रावकधर्म का विकास इस प्रकार किया जा सकता है—

श्रावक आंशिक रूप मे सावद्य योगो का परित्याग करते हुए आत्मसाधना के लिए तत्पर रहते है। अतएव हिंसादि का एक सीमा तक त्याग करने के कारण श्रावकधर्म को अणुव्रत भी कहते है। उन व्रतो के नाम इस प्रकार है—

पांच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

तीन गुणव्रत—दिशापरिमाण, उपभोग-परिभोग-परिमाण, अनर्थदण्डविरमण।

चार शिक्षाव्रत—सामायिक, देशावकाशिक, पौषध, अतिथिसविभाग।

इन सबको मिलाकर श्रावक के १२ व्रत कहे जाते है। अहिंसा आदि पाँच अणुव्रत, सावद्य प्रवृत्तियो से निवृत्ति रूप है। गुणव्रतो के परिपालन से सावद्य योगो से निवृत्ति का पोषण करने का अभ्यास बढता है और शिक्षाव्रतो के रूप मे प्रवृत्ति की जाने से दैनिक जीवन के व्यवहार रूप मे धर्म-धारा बहती रहती है।

अणुव्रत :

(१) **अहिंसा अणुव्रत**—यह श्रावकाचार की भूमिका है। स्थूल हिंसा का त्याग करते हुए शेष सूक्ष्म हिंसा का त्याग करना अहिंसा अणुव्रत है। हिंसा का अर्थ है प्रमत्त योग से प्राणो का नाश करना। प्रमत्त योग अर्थात् राग-द्वेष से की गई प्रवृत्ति। इस राग-द्वेष पूर्ण प्रवृत्ति से हिंसा होती है।

अहिंसाव्रत के अतिचार :

अहिंसा के पाच अतिचार (दोष) बताये गये है, जिनसे गृहस्थ को सदा बचना होता है। जैसे—

बन्धन—पशु आदि को कठोर बन्धन से बाँधना।

वध—गाय-बैल, घोड़ा आदि मूक पशुओ पर निर्मम प्रहार करना।

छविच्छेद—पशु एव मनुष्यो के हाथ-पैर आदि अगो को काटना।

अतिभार—किसी भी प्राणी पर उसकी शक्ति से अधिक भार लादना, अति श्रम लेना, शोषण करना।

अन्नपाननिरोध—अपने आश्रित पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के भोजन-पानी मे बाधा डालना। आश्रित प्राणी को भूखा मारना।

(२) **सत्याणुव्रत**—यह अहिंसा का ही दूसरा नाम है। इसका उद्देश्य झूठ बोलने से बचना है। सत्य बोलना दूसरो के लिए लाभदायक होने की अपेक्षा स्वय के लिए महान् हितकारी है। इसीलिए सत्य को भगवान् की उपमा दी है—**'सच्चं खु भगवं'**—सत्य ही भगवान् है।

स्वार्थ के लिए अथवा दूसरों के लिए क्रोध से अथवा भय से किसी भी प्रसंग पर दूसरो को पीड़ा पहुचाने वाला असत्य-वचन न तो स्वय बोलना, न दूसरो से बुलवाना चाहिए ।

सत्यव्रत के अतिचार :

सत्य की सीमा अनन्त है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इसका उपयोग होता है । कभी-कभी न चाहते हुए भी गृहस्थ को विवश होकर असत्य का सहारा लेना पडता है, किन्तु धर्मशास्त्र कहते हैं यदि विवशतावश असत्य बोलते हो तब भी असत्य के प्रति मन मे ग्लानि रखो । अपनी दुर्बलता को छोड़ने की दिशा मे प्रयत्नशील रहो । यह सकल्प रखो कि आज नही तो कल मुझे असत्य का पूर्ण परित्याग करना है—

सत्यव्रत के पाच अतिचारो से गृहस्थ को बचना चाहिए, ताकि उसका व्रत दूषित न हो। पाच अतिचार इस प्रकार हैं—

मिथ्योपदेश—सच-झूठ समझाकर किसी को बुरे मार्ग पर ले जाना ।
रहस्याभ्याख्यान—किसी की गुप्त बात प्रकट करना, मर्मभेद करना ।
कूटलेखक्रिया—झूठे दस्तावेज, नकली खाते-बही आदि बनाना ।
न्यासापहार—धरोहर रखकर देते समय मुकर जाना ।
साकारमंत्रभेद—झूठी अफवाहें फैलाना, चुगली खाना ।

ये पाचो ही सत्यव्रत के दोष हैं । गृहस्थ को इनसे बचना अत्यन्त आवश्यक है ।

(३) अचौर्याणुव्रत—अचौर्यव्रत का अर्थ है, अपने स्वामित्व की वस्तु को छोडकर किसी दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के अपने उपयोग मे लाना चोरी है और इस चोरी का त्याग करना अचौर्यव्रत है ।

अचौर्यव्रत के सम्बन्ध मे गम्भीरता से विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि पेट भरने और शरीर ढकने के लिए जरूरत से अधिक सग्रह रखना भी चोरी है । गाधीजी ने तो इसके लिए लिखा है कि जिस वस्तु की हमे आवश्यकता न हो. भले ही वह वस्तु दूसरो से आज्ञा लेकर ही ली हो, किन्तु उसे लेना भी चोरी है ।

वस्तु के स्वामी की अनुपस्थिति मे ताला तोडकर वस्तु लेना जैसे चोरी कही जाती है, वैसे ही उसकी उपस्थिति मे धोखा देकर ले जाना भी चोरी है । ताला तोडकर लेना असभ्य चोरी है। लेकिन अपनी बुद्धिमानी, शक्ति आदि से दूसरे की वस्तुओ पर अधिकार जमाना, शोषण करना, अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु की मिलावट करना; विज्ञापन आदि देकर मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य को खराब करने वाली वस्तुओ आदि को बेचना आदि उपाय या कार्य सब चोरी ही माने जाएँगे ।

अचौर्यव्रत के अतिचार :

गृहस्थ सम्पूर्ण अचौर्यव्रती बने यह सभव नही । चूंकि जीवन-व्यवहार इतने उलझे हुए और एक दूसरे से सम्बद्ध है कि कभी-कभी अनचाहे भी चोरी हो जाती है, जिसे समझ भी नही पाते ।

इसलिए गृहस्थ जीवन मे चोरी की स्थूल मर्यादा की जाती है कि ऐसा चौर्य कर्म न करे जिसके कारण समाज मे वह कलंकित हो, शासन द्वारा दंडित किया जाय । इस मर्यादा के साथ उसे अचौर्यव्रत के पांच निम्न अतिचारों से भी बचते रहना चाहिए—

(१) **स्तेनाहृत**—चोरी का माल खरीदना ।

(२) **तस्कर प्रयोग**—चोरी के नये-नये तरीके खोजना और दूसरो को चोरी के उपाय बताना ।

(३) **विरुद्धराज्यातिक्रम**—राज्य के नियम के विरुद्ध व्यापार आदि कार्य करना ।

(४) **कूटतुला-कूटमान**—तौलने और नापने मे गड़बड करना ।

(५) **तत्प्रतिरूपक व्यवहार**—असली मे नकली तथा बहुमूल्य वाली वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना । दिखाना कुछ, देना कुछ ।

ये पाचो ही कार्य अचौर्यव्रत के दोष हैं । सदाचारी गृहस्थ को इनसे बचना चाहिए ।

(४) **ब्रह्मचर्यव्रत**—इस व्रत का उद्देश्य शरीर एवं मन की शक्तियो को सुरक्षित रखना और उन्हे सत्कार्यो, सत्प्रवृत्तियो मे नियोजित करना है । आन्तरिक शक्तियो को सुरक्षित रखने के लिए संयम की आवश्यकता है । संयम के द्वारा महान् और अद्भुत कार्य किये जा सकते है ।

सदाचार का पालन ही मानव-जीवन की आधार शिला है । मनुष्य के पास विद्वत्ता और लक्ष्मी हो या न हो, परन्तु उसके पास चारित्र होना ही चाहिए । सदाचार के अभाव मे न तो बौद्धिक शक्तियां प्राप्त की जा सकती है और न आत्मिक शक्तिया ।

मनुष्य यदि सदाचारी है, ब्रह्मचारी है तो उसका वीर्य ऊपर चढ़ेगा और तेजस्वी बनेगा । असयम मनुष्य को तेजहीन बना देता है । वीर्य का उर्ध्वीकरण नर को नारायण और अब्रह्मचर्य मानव को दानव बना सकता है ।

ब्रह्मचर्यव्रत के अतिचार :

यद्यपि ब्रह्मचर्य की सम्पूर्ण साधना कर ऊर्ध्वरेता बनना मनुष्यजीवन का आदर्श है, पर साधारण गृहस्थ इस आदर्श के अनुसार नही चल सकता । अतः उसे यथाशक्य ब्रह्मचर्य का उपदेश किया गया है । अधिक-से-अधिक संयम कर इन्द्रियो का निग्रह करे, ब्रह्मचर्य की अधिक-से-अधिक साधना करे, यही उसका ध्येय होना चाहिए । उसे ब्रह्मचर्य पालन मे बड़ी सतर्कता और सावधानी रखनी होती है । खासकर निम्न ५ दूषणो से तो बचते रहना आवश्यक है—

(१) **इत्वरि परिग्रहितागमन**—परस्त्री-गमन अथवा अल्पकाल के लिए रखैल स्त्री से गमन करना ।

(२) **अपरिग्रहीतागमन**—अविवाहित स्त्री, कन्या अथवा वेश्या आदि के साथ गमन करना ।

(३) **अनंगक्रीड़ा**—ऐसी क्रीड़ाएँ करना, जिनसे कामोत्तेजना हो ।

(४) परविवाहकरण—बेमेल विवाह करवाना, अथवा विवाह कराने में अधिक दिलचस्पी रखना।

(५) तीव्रकामासक्ति—काम-भोग सेवन की तीव्र अभिलाषा रखना।

ये पाचो ही ब्रह्मचर्यव्रत के दूषण है, श्रावक को इनसे बचते रहना अनिवार्य है।

(५) अपरिग्रहव्रत—तृष्णा, मूर्च्छा, ममत्व व आसक्ति को नियंत्रित करने के लिए यह व्रत है। यह व्रत-पालन करने के मुख्य दो उद्देश्य हैं—एक व्यक्तिगत आत्म-विकास और दूसरा सामाजिक व्यवस्था। जड वस्तुओ के अधिक संग्रह से मनुष्य की आत्मचेतना दब जाती है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। जब एक मनुष्य किसी वस्तु का अधिक सग्रह करता है, तब दूसरे मनुष्यो को उस वस्तु की कमी भोगनी पडती है। सग्रह की वजह से समाज मे विषमता और अव्यवस्था उत्पन्न होती है। भगवान् महावीर ने जड पदार्थो का सग्रह करने वालो को बोध देते हुए कहा है—

> वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इयम्मि लोए अदुवा परत्था।
> दीविप्पणट्ठेव अणंतमोहे, नेयाउयं दट्ठूमदट्ठूमेव॥

हे प्रमादी जीव! इस लोक या परलोक मे धन शरण देने वाला नही है। अधकार मे जैसे दीपक बुझ जाए तो देखा हुआ मार्ग भी बिन देखा जैसा हो जाता है, वैसे ही पौद्गलिक-वस्तुओ के मोहान्धकार मे मनुष्य न्याय मार्ग को देखकर अनदेखा कर देता है।

परिग्रह सब पापो की जड है। जबतक परिग्रह, सग्रहवृत्ति पर नियत्रण नही किया जायेगा, तब तक दूसरे पाप रुक नही सकते। श्रावक का यह अपरिग्रह अणुव्रत, इच्छापरिमाण व्रत के नाम से प्रसिद्ध है, क्योकि गृहस्थ सम्पूर्ण रूप मे अपरिग्रही नही बन सकता है। अत उसके लिए यही उचित है कि वह अपनी इच्छाओ को सीमित करे, तृष्णा का, लालसा का दमन कर उन्हे एक सीमा मे आगे न बढने दे। इसीलिए जैन आगमो मे अपरिग्रह अणुव्रत को 'इच्छापरिमाणव्रत' कहा है।

इच्छापरिमाणव्रत के अतिचार :

अन्य व्रतो की भाँति इस व्रत के भी पाच अतिचार हैं।

१ धन व धान्य का नियम व मर्यादा से अधिक संग्रह करना। २. भूमि तथा गृह आदि की सीमा से अधिक स्वामित्व रखना। ३. चादी व सोना मर्यादा से अधिक रखना। ४. नियम से अधिक दास-दासी तथा पशु आदि रखना। ५. मर्यादा के उपरान्त घर का सामान रखना।

इन अतिचारो मे मुख्य बात यही है कि गृहस्थ सग्रह तो करता है, किन्तु अपने गृहीत नियम से उपरान्त सग्रह न करे। एक दृष्टि से सामाजिक एवं राजकीय मर्यादा का उल्लघन भी इसमे आ सकता है। दृष्टि यही है कि किसी भी प्रकार अधिक सग्रह न करे। सग्रह ही विग्रह की जड है, विषमता का जनक है।

गुणव्रत

गुणव्रत का भाव है, जो पांच अणुव्रत हैं, उनके गुणो की वृद्धि करने वाले व्रत। अहिंसा आदि की साधना को अधिक सशक्त बनाना इनका ध्येय है।

(६) **दिशापरिमाणव्रत**—अपनी शक्ति के अनुसार पूर्व-पश्चिम आदि की सीमा निश्चित करना कि उन दिशाओं में इस सीमा से आगे मैं व्यापार आदि प्रवृत्तियां नही करूंगा। यह व्रत अपरिग्रह का पूरक व्रत है। अपरिग्रहव्रत में धन आदि वस्तुओ की मर्यादा की जाती है। इस व्रत का आराधक दिशाओ की की हुई मर्यादा से बाहर व्यापार-व्यवसाय नही करता।

दिशाओं की मर्यादा न रहने से आज विश्व मे वर्ग-संघर्ष, व्यापारिक-प्रतियोगिता, बेकारी, द्ध का वातावरण बना हुआ है। यदि भारतवासी अपने व्यापार-व्यवसाय व वस्तुओं के लिए क्षेत्र ामा बाध ले तो विदेशो पर निर्भरता की मनोवृत्ति कम होगी और देश को उत्पादन की दृष्टि से ावलम्बी बना सकेगे।

दिशापरिमाणव्रत वाला तो अपनी क्षेत्र-सीमा रखता ही है और उसके बाहर क्रय-विक्रय नही रता, किन्तु साधारण जन भी दिशापरिमाण कर ले तो बहुत-से संघर्षो व तस्करीकृत्य आदि से हज ही बच सकते है। इस व्रत का उद्देश्य सतोष और शाँति युक्त जीवन बिताने की ओर प्रेरित रना है।

इस व्रत के पाच अतिचार निम्न हैं—

(१) ऊची दिशा, (२) नीची दिशा, (३) तिर्यक् दिशा मे जाने की सीमा का उल्लंघन करना, ४) क्षेत्र की सीमा का बढाना तथा (५) अपनी सीमा-मर्यादा को भूल जाना। इन बातो से व्रत में ोष आता है। अतः सतत् सावधानी बरतनी चाहिए।

(७) **उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत**—अपरिग्रहव्रत और दिशापरिमाणव्रत से धन-संपत्ति, ेत्र की सीमा निश्चित कर ली, लेकिन उसके बाद भी भोगोपभोग की इच्छाओ पर नियंत्रण नही खा गया, तो भी सुख प्राप्त नही हो सकता है। अतएव भोगोपभोग सामग्रियो को और भी सीमित नियन्त्रित करने के लिए व्रत उपयोगी है। इस व्रत मे उपभोग यानी एक बार भोगी जाए, ऐसी स्तु—भोजन, पेय आदि पदार्थ और परिभोग यानी बार-बार भोगी जा सके, ऐसी वस्तु—वस्त्र, ाभूषण आदि पदार्थ—इन दोनों प्रकार के पदार्थो का परिमाण किया जाता है।

इस व्रत के दो प्रकार हैं—एक भोजन, वस्त्र आदि सम्बन्धी और दूसरा कर्म-सम्बन्धी। ापभोग-परिभोग की वस्तुओ की मर्यादा का बाध लेना, भोजन, वस्त्रादि सम्बन्धी उपभोग-परिभोग-रिमाणव्रत कहलाता है और इन उपभोग-परिभोग की वस्तुओ की प्राप्ति के लिए जो उद्योग-धन्धे रने पड़ें, उनका प्रमाण व प्रकार निश्चित करना कर्म-सम्बन्धी उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत है। नके लिए यह भी समझ लेना चाहिए कि तामसिक पदार्थों, भोजन आदि का और आजीविका के हंसक व्यापारों का तो पहले ही त्याग हो जाता है। इस व्रत मे जिस कार्य व व्यापार मे अधिक हंसा और अधर्म होने की संभावना हो, उनका त्याग कर कम हिंसा और अधर्म वाली वस्तुओ का ी परिमाण (सीमा) बाध दिया जाता है।

इस व्रत का पालन करने से अहिंसा आदि व्रतो का निर्दोष रीति से पालन किया जा सकता ै। इस व्रत के पांच अतिचार ये हैं—

१. **सचित्त-आहार**—किसी प्रकार की भी वनस्पति आदि सचेतन पदार्थ का आहार करना।

२. **सचित्तसंबद्ध-आहार**—कठिन बीज या गुठली आदि सचेतन पदार्थ से युक्त बेर, आम आदि पके फल खाना।

३. **सचित्तसंमिश्र-आहार**—तिल, खसखस आदि सचित वस्तुओ से मिश्रित लड्डू आदि खाना या चीटी आदि से मिश्रित वस्तु खाना।

४. **अभिषव-आहार**—किसी प्रकार के एक मादक द्रव्य का अथवा विविध विविध द्रव्यों के मिश्रण से उत्पन्न मद्य आदि का सेवन करना।

५. **दुष्पक्व-आहार**—अधपके या ठीक न पके हुए को खाना।

(८) **अनर्थदण्डविरमणव्रत**—यह श्रावक धर्म का आठवां व्रत है। इसका पालन करने वाला सावद्य (हिंसायुक्त) व्यापारो से और अधिक निवृत्ति लेता है। अपने जीवन-निर्वाह के लिए होने वाले सावद्य व्यापारो के सिवाय अन्य सभी अधर्म व्यापारो व निरर्थक वस्तुओ के सग्रह से निवृत्ति लेना, अनर्थदण्डविरमणव्रत है।

अनर्थ का मतलब है—निरर्थक, अनावश्यक और दण्ड का अर्थ है हिंसा। अनावश्यक हिंसा से बचना इस व्रत का लक्ष्य है।

अनर्थदण्ड के चार प्रकार है—(१) अपध्यान, (२) प्रमादयुक्त आचरण, (३) हिंसादान और (४) पापोपदेश।

अशुभ चिन्तन-मनन करना अपध्यान है। प्रिय वस्तु के वियोग और अनिष्ट वस्तु के सयोग होने पर शोक करना, संयोग-वियोग के लिए सदैव संकल्प-विकल्पो मे लीन रहना, शत्रु के नाश व उसका अनिष्ट करने की चिन्ता मे डूबे रहना आदि अपध्यान कहलाता है। अपध्यान करने से दुर्गति की प्राप्ति होती है।

प्रमाद भयकर पाप है। प्रमाद पतन की निशानी है। शास्त्रो मे प्रमाद के पाप को हिंसा के के समान माना है।

प्रमाद के कारणो का सकेत करते हुए शास्त्रो मे कहा है—मद्य (नशा, मद्यपान), इन्द्रियो के विषय (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), निद्रा और विकथाओ का कहना-सुनना। इनमे अनुरक्त जीव प्रमादयुक्त होता है और ये सब कारण प्रमाद को बढाने वाले है।

हिंसादान यह तीसरा अनर्थदण्ड है। जिसके द्वारा किसी की हिंसा हो सकती है, ऐसे अस्त्र शस्त्र व अन्य साधन देना अथवा किसी के हिंसक कृत्य मे सहायता देना हिंसादान कहलाता है।

पापोपदेश—जिस उपदेश से पापकर्म मे प्रवृत्ति होती हो, पापकर्म मे सलाह या स्वीकृति देना, दूसरे को दुर्व्यसनो मे फसाने की आदत डालना आदि सब पापोपदेश माना जाता है। अनर्थदण्ड का त्यागी इन सब हिंसाकारक कार्यों और कारण से निवृत्ति ले लेता है।

इस व्रत के पाच अतिचार ये है—

१. कन्दर्प—अधिक हसी-मजाक करना।

२. कौत्कुच्य—शरीर से भाड की तरह कुचेष्टा करना

३. मौखर्य—निरर्थक बकवास करना ।

४. सयुन्ताधिकरण—अनावश्यक हिसक साधनों का संग्रह करना ।

५. उपभोग-परिभोगातिरिक्त—भोगोपभोग के अनावश्यक साधनों का संग्रह करना ।

शिक्षाव्रत :

शिक्षा-व्रत का अर्थ है श्रावक के लिए उपदेश एव उद्बोधन देने वाले व्रत । इनसे व्रतो का विकास व विस्तार होता है ।

(६) **सामायिकव्रत**—मन की चंचल वृत्तियों को शान्त करने, स्थिर करने के लिए सामायिक द्वारा शिक्षा मिलती है । सामायिक का अर्थ है 'समभाव' ! सम, अर्थात् समता और आय, अर्थात् लाभ जिस साधना से समभाव की प्राप्ति हो । उसे सामायिक कहते है । भगवान् महावीर ने कहा है—

जिसकी आत्मा संयम, नियम एवं तप मे तल्लीन है, उसी को सच्ची सामायिक होती है ।

सामायिक साधना आत्मा की खुराक है । व्रतों को बलवान् बनाने वाला रसायन (टानिक) है ।

इस व्रत के पाच अतिचार निम्न है—

(१) मन, (२) वचन, (३) काया को चचल बनाना, (४) सामायिक की समय-मर्यादा को भूल जाना, (५) सामायिक के काल और क्रियासाधना का सम्यक् पालन न करना ।

साधक को इन अतिचारो का परिहार करना चाहिए ।

(१०) **देशावकाशिकव्रत**—इस व्रत मे छठे दिशापरिमाणव्रत और सातवे उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत के लिए जो जीवनपर्यन्त के लिए क्षेत्र की सीमा व पदार्थों के उपभोग की मर्यादा की थी, उनमें सवर (सयम) की वृद्धि के लिए प्रतिदिन के लिए कमी करने का लक्ष्य रहता है । प्रतिदिन के लिए मर्यादा करने से भोगोपभोग की वृत्तियों को संयमित करने का अभ्यास किया जाता है । इस व्रत का पालन करने वाला प्रतिदिन की हुई मर्यादा से बाहर न तो स्वयं गमन करता है और न दूसरे को भेजता है । बाहर से लाई हुई वस्तु का उपयोग नहीं करता है । यहां तक कि अपने-आपको संयमित कर लेता है कि शब्द आदि भी जोर से नही बोलता, जो सीमामर्यादा से बाहर जाकर किसी को अपनी ओर आकर्षित कर सके ।

जीवन की सभी प्रवृत्तियो में महारम्भ का त्याग कर जीवन की आवश्यकताए घटाकर जीवन को पवित्र बनाना इस व्रत का आशय है । यह व्रत दैनिक संवर बढ़ाता है तथा जीवन को अधिकाधिक संयम-साधना के लिए अभ्यस्त बनाता है । इस व्रत के पाच अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) सीमा के बाहर से किसी वस्तु को मंगाना, (२) बाहर किसी वस्तु को भेजना, (३) जिस देश मे स्वयं न जाने का नियम लिया हो, वहाँ शब्द-सकेत से अपना काम करते रहना, (४) सीमा से बाहर देश मे कई वस्तु-सकेत आदि भेजकर उसी के सहारे काम करना, तथा (६) मर्यादा के बाहरी देश में वस्तुएँ भेजकर कार्य करना ।

(११) पौषधव्रत—पौपधव्रत का अर्थ है पोषना, तृप्त करना। हम प्रतिदिन भोजन से तो अपने शरीर को तृप्त बनाते हैं लेकिन आत्मा को भूखा रखते है। लेकिन इस व्रत मे शरीर को भूखा रखकर आत्मा को तृप्त किया जाता है। आत्म-चिन्तन मे समय व्यतीत करना और आत्म-निरीक्षण कर आत्मभाव मे रमण करना पौपधव्रत है।

इस व्रत के पालक को भौतिक आपत्तिया, भय आदि भी आत्मभाव से विचलित नही कर सकते हैं और वह अखण्ड शान्ति का अनुभव करता है।

पौपधव्रतधारी की एक दिन-रात की चर्या श्रमणधर्म का अभ्यास कराने वाला सोपान-जैसा है।

पौपधव्रत के पाच अतिचार :

पौपधव्रत प्राय: उपवास के साथ ही किया जाता है। उपवास करके एकान्त स्थान मे जाकर सासारिक वृत्तियो का त्याग कर चौबीस घण्टे या कम-अधिक समय के लिए साधु की तरह जीवन-चर्या करना इस व्रत की विधि है। इस व्रत के पाच अतिचार हैं, जैसे—

(१) पौपध योग्य स्थान आदि का भली प्रकार निरीक्षण न करना, (२) पौपध योग्य शैय्या आदि का सम्यक् अवलोकन न करना, (३) मल-मूत्र त्यागने के स्थान का निरीक्षण न करना, (४) अयोग्य स्थान पर मलमूत्र त्यागना तथा (५) पौषधोपवासव्रत की मर्यादाओ के क्षेत्र मे कहीं खामी करना।

(१२) अतिथिसंविभागव्रत—दान देना श्रावक के प्रतिदिन के कार्यों मे से एक है। जिसकी पूर्ति यह व्रत करता है। इस व्रत मे सयमी सुपात्र को शुद्ध आहार आदि वस्तुओ को दान करने का विधान है। संयमी पुरुषो को आवश्यक वस्तुओ का दान करने से उनके पवित्र जीवन का अनुमोदन और उनके धर्माचरण मे सहयोग होता है, इससे दान देने वाले का जीवन भी विकसित होता है। अपने न्यायोपार्जित धन का सुपात्र के लिए सविभाग करना—देना इस व्रत का उद्देश्य है। अपने लिए तो सभी प्रकार के साधन जुटाये जाते है, किन्तु उन साधनो मे से दूसरो के लिये उपयोग मे देने की शिक्षा इस व्रत से मिलती है।

दान देने मे धनी या निर्धन का कोई भेद नही है। रुपया-पैसा ही धन नही है, किन्तु जिसके पास बुद्धि है, वह शारीरिक शक्ति है, औपधि है, वे भी विद्यादान, सेवाकार्य, औपधिदान, वस्त्रदान, भयभीत को अभयदान दे सकते हैं।

सुपात्र दान के तीन प्रकार माने गये है—

(१) उत्कृष्ट सुपात्रदान, (२) मध्यम सुपात्रदान, (३) जघन्य सुपात्रदान। सयमी पुरुषो को दान देना उत्कृष्ट सुपात्रदान है। स्वधर्मी बन्धुओ को दान देना मध्यम सुपात्र दान है। समकिती, दीन-दुखियो को अनुकम्पा भाव से सहायता देना जघन्य सुपात्रदान है। ये तीनो सुपात्रदान कहे जाते हैं। प्रसङ्गानुसार श्रावक को तीनो दानो का अवसर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

जो धन का उपयोग भोग-विलास मे करता है और दान नही देता, लक्ष्मी उसके लिए भार-स्वरूप हो जाती है। विलास में लगाया गया धन मनुष्य को डुबो देता है, जबकि सत्कार्य मे व्यय किया

गया धन मनुष्य को भवसागर मे तिराता है। अतः गृहस्थ को यथावसर दान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। अतिथिसंविभागव्रत के पाच अतिचार—

(१) निर्दोष (अचित्त) आहार आदि को सचित्त वस्तु मे डालकर रखना।

(२) सचित्त वस्तु से ढककर रखना।

(३) समय पर दान न देना, असमय मे दान के लिए कहना।

(४) दान देने की भावना से अपनी वस्तु को पराई बना देना।

(५) ईर्ष्या व अहंकार की भावना से दान देना। देखा-देखी, प्रशंसा के लिए भी देना व्रत का दोष है।

श्रावकधर्म की उपयोगिता

उक्त बारहव्रतरूप श्रावकधर्म इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक मानव यदि परिवार के बीच रह कर इसका पालन करने लगे तो वह अपने जीवन को सुखी बना सकता है और कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र व निज-जीवन मे सुख-शान्ति रूप हो सकता है। व्रतों के पालन के लिए जरूरी है—शल्य-रहितता। कपट, प्रदर्शन की भावना, अहंकार आदि मन के शल्य है। इन शल्यों से रहित होना ही व्रती बनने की भूमिका है। कहा है—**'नि शल्यो व्रती'**।

व्रतो का पालन जीवन को शुद्ध और सरल बनाने के लिए है। व्रत बन्धन नहीं, किन्तु शक्तिसचय के कारण हैं। व्रतों से जीवनशक्ति केन्द्रित होती है और उसके विकास का द्वार खुलता है।

१० | भक्ति

•

पं० चैनसुखदास

भक्ति शब्द का अर्थ :

भक्ति का अर्थ है—भाव की विशुद्धि से युक्त अनुराग। जिस अनुराग में भाव की निर्मलता नहीं होती वह अनुराग (प्रेम) भक्ति नहीं कहला सकता। सांसारिक अनुराग में वासना होती है इसलिए उसे भक्ति का रूप नहीं दिया जा सकता। परमात्मा, गुरु या शास्त्र आदि में होने वाले विशुद्ध प्रेम को ही भक्ति कहा जा सकता है। जिसकी भक्ति की जाती है उसमें पहले पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है। उसका कारण है अपने इष्ट देवता आदि के वे गुण जिन्हें भक्त प्राप्त करना चाहता है।

भक्ति का लक्ष्य :

जैन भक्ति का लक्ष्य वैयक्तिक अर्थात् ऐहिक स्वार्थ नहीं है, अपितु आत्मशुद्धि है। आत्मा जब परमात्मा बनना चाहती है तब उसका प्रारम्भिक प्रयत्न भक्ति के रूप में ही होता है। भक्ति आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए एक सरल एवं पकड़ सकने योग्य मार्ग है। सागार गृहस्थ के लिये यह मार्ग विशेष रूप से उपादेय है। भक्ति शुभोपयोग का कारण है और शुभोपयोग से पुण्यबंध होता है। यदि भक्ति में फलासक्ति न हो और वह पूर्णतया निष्काम हो तो अन्त में मनुष्य को शुद्धोपयोग की ओर आकृष्ट करने का कारण बन सकती है, जो मुक्ति का साक्षात् कारण है।

जैन धर्म : गुण का उपासक :

जैन धर्म व्यक्ति का उपासक नहीं अपितु गुण का उपासक है। वह व्यक्ति की उपासना का समर्थन तो करता है पर उसका कारण भी व्यक्ति के गुण ही है। व्यक्ति स्वयं में कुछ नहीं है, उसकी सारी महत्ता का कारण उसके गुण हैं और गुणों की उपासना का प्रयोजन भी गुणों की प्राप्ति है। गुणों के लिये ही भक्त, उपासक गुणवान् उपास्य को अपना आदर्श मानता है और जिस विधि से स्वयं उपास्य ने गुण प्राप्त किये उसी विधि से उस मार्ग को अपनाकर भक्त भी उपास्य के गुणों को प्राप्त करना चाहता है। यही भक्ति का वास्तविक ध्येय है। इस सम्बन्ध में निम्नांकित प्राचीन उल्लेख बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है—

मोक्षमार्गस्य नेतार, भेतारं कर्मभूभृताम्,
ज्ञातार विश्वतत्वाना, वन्दे तद्गुणलब्धये।

अर्थात् मै मोक्ष के नेता, कर्मरूपी पर्वतो के भेता और विश्व तत्त्वो के ज्ञाता को उसके गुणो की प्राप्ति के लिये वंदना करता हूं। यहां किसी खास व्यक्ति को प्रणाम नही है अपितु उन गुणो को धारण करने वाले व्यक्तियो को प्रणाम है, चाहे वह कोई भी क्यो न हो। एक श्वेताम्बराचार्य भी यही कहते है –

भववीजांकुरजलदा:, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य,
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै।

भव-वीजाकुर के लिये मेघ के समान, रागादिक सपूर्ण दोष जिसके नष्ट हो गये हैं उसे मेरा प्रणाम है फिर चाहे वह ब्रह्मा हो या विष्णु अथवा महादेव हो या जिन।

सुप्रसिद्ध तार्किक आचार्य अकलंकदेव भी गुणोपासना के सम्बन्ध मे यही कहते है—

यो विश्वं वेदवैद्यं, जननजलनिधेर्भगिन पारदृश्वा,
प्ौर्वापर्याऽविरूद्ध, वचनमनुपम निष्कलकं यदीयम्।
तं वन्देसाधुवंद्यं निखिलगुण निधि ध्वस्तदोषद्विषन्त,
बुद्धं वा वर्द्धमान शतदलनिलय केशव वा शिव वा।

जिसने जानने योग्य सब कुछ जान लिया है, जो जन्म रूपी समुद्र की तरगो के पार पहुंच गया है, जिसके वचन दोष रहित, अनुपम और पूर्वा पर विरोध रहित है, जिसने अपने सारे दोषो का विध्वस कर दिया है और इसीलिए जो सपूर्ण गुणो का भडार वन गया है तथा इसी हेतु से जो संतों द्वारा वन्दनीय है, मै उसकी वदना करता हू। चाहे वह कोई भी हो, वर्द्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो अथवा महादेव हो।

ये सब उदाहरण हमे यह बतलाते है कि भक्ति के स्थान गुण है, व्यक्ति नही। इसलिए जैन-दर्शन, भक्ति का आधार गुणो को मानता है। यदि परमात्मा की भक्ति करने से कोई परमात्मा नही बन सकता तो फिर उसकी भक्ति का प्रयोजन ही क्या है ? इस सम्बन्ध मे आचार्य मानतुंग ने ठीक ही कहा है—

नात्यद्भुत भुवनभूषण ! भूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त:।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भुत्याश्रित य इह नात्मसम करोति।

अर्थात् हे जगत के भूपण, हे जगत् के जीवो के नाथ ! आपके यथार्थ गुणों के द्वारा आपका स्तवन करते हुए भक्त यदि आपके समान हो जाय तो हमे कोई अधिक आश्चर्य नही है। ऐसा तो होना ही चाहिये क्योकि स्वामी का यह कर्तव्य है कि वह अपने आश्रित भक्त को अपने समान बना ले। अथवा उस मालिक से लाभ ही क्या है जो अपने आश्रित को वैभव से अपने समान नहीं बना लेता।

किन्तु यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जव परमात्मा रागद्वेप से विहीन है, तव उसकी भक्ति से लाभ ही क्या है ? राग न होने के कारण वह अपने किसी भी भक्त पर अनुग्रह नही करेगा

और न द्वेष होने से किसी दुष्ट का निग्रह करने के लिये ही प्रेरित होगा क्योकि अनुग्रह और निग्रह मे प्रवृत्ति तो राग-द्वेष की प्रेरणा से ही होती है। जो शिष्टो पर अनुग्रह और दुष्टो पर निग्रह करता है उसमे राग या द्वेष का अस्तित्व जरूर होता है किन्तु जैन इस प्रकार के किसी ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नही करते, इस प्रश्न का उत्तर जैन स्रोतो मे जो दिया गया है वह वडा ही मनोग्राही, तर्क-सगत एव आकर्षक है। प्रख्यात तार्किक आचार्य समन्तभद्र इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अपने 'स्वयभू स्तोत्र' में वासुपूज्य तीर्थंकर का स्तवन करते हुए कहते हैं—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाद विवान्तवैरे,
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न:, पुनातु चेतो दुरिता जनेभ्य. ।

हे नाथ ! आप तो वीतराग हैं। आपको अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नही है। आप न अपनी पूजा करने वालो से खुश होते हैं और न निन्दा करने वालो से नाखुश, क्योकि आपने तो वैर का पूरी तरह वमन कर दिया है तो भी यह निश्चित है कि आपके पवित्र गुणो का स्मरण हमारे चित्त को पापरूप कलक से हटा कर पवित्र वना देता है। इसका आशय है कि परमात्मा स्वय यद्यपि कुछ भी नही करता फिर भी उसके निमित्त से आत्मा से जो शुभोपयोग उत्पन्न हो जाता है उसी से उसके पाप का क्षय और पुण्य की उत्पत्ति हो जाती है।

महाकवि धनजंय इसी का समर्थन करते हुए अपने 'विपापहार' नामक स्तोत्र मे क्या ही मनोग्राही वाणी मे कहते हैं—

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद् विमुखश्च दुःखम्,
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ।

हे भगवन् ! तुम तो निर्मल दर्पण की तरह स्वच्छ हो। स्वच्छता तुम्हारा स्वभाव है। जो तुम्हे अपने निष्कपट भाव से देखता है वह सुख पाता है और विमुख होकर बुरे भावो से तुम्हे देखता है वह दु ख पाता है। ठीक ही है, दर्पण मे कोई अपना मुंह सीधा करके देखता है तो उसे उसका मुंह सीधा दिखता है और जो अपना मुंह टेढा करके देखता है उसे टेढा दिखता है। किन्तु दर्पण किसी का मुंह न सीधा करता है और न टेढा। इसी प्रकार राग-द्वेष रहित परमात्मा स्वय न किसी को सुख देते है और न दु ख। वह तो प्रकृतिस्थ हैं।

भक्त के आत्मोद्धार और भगवान् की भक्ति मे निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध हैं। यद्यपि जैन दर्शन मानता है कि भक्ति साक्षात् मुक्ति का कारण नही है, उससे 'दासोहम्' की भावना नष्ट होती है, तो भी भक्ति का महत्त्व कम नही होता। वह मनुष्य के सामने परमात्मा का आदर्श उपस्थित करती है। यद्यपि उस आदर्श की प्राप्ति रत्नत्रय से होती है, भक्ति से कभी नही, किन्तु साधना की प्रथम भूमिका मे भक्ति का वहुत वड़ा उपयोग है। इसका अर्थ यह है कि मन जव उपास्य की ओर आकृष्ट होता है तव वह उसके मार्ग का अनुसरण करना भी अपना कर्तव्य समझता है। वह असत् प्रवृत्तियो से हटता है और सत् प्रवृत्तियो को अपनाता है। अदया से दया की ओर, अक्षमा से क्षमा की ओर तथा सक्षेप मे अधर्म से धर्म की ओर वढ़ता है। यदि भक्ति मे पाखण्ड न हो, किसी प्रकार का प्रदर्शन न हो और वह मानव मन को अपने यथार्थ रूप से छूने लगे तो भक्ति उसको मुक्ति की ओर ले जा सकती है। यही कारण है कि अनेक जैन कवियो ने भक्ति को इतना अधिक महत्त्व दे दिया है कि उसे पढकर आश्चर्य हुए विना नही रहता।

भक्ति तर्क को पसन्द नही करती, वह तो श्रद्धाप्रसूत है। पर इसका अर्थ यह कदापि नही है कि भक्ति में विवेक नहीं होता ऐसा हो तो वह भक्ति ही नहीं है। ज्ञानी और अज्ञानी की भक्ति मे जो महान् अन्तर जैनाचार्यो ने बतलाया है उसका कारण विवेक का सद्भाव और असद्भाव ही तो है। विवेक सहित भक्ति ही मनुष्य को अमरत्व की ओर ले जाती है। जो साधक श्रमणत्व की ऊंची भूमिका मे नही जा सकता उसके लिए भक्ति सवल है। मुक्ति मार्ग में पाथेय है और साधक के लिए एक सहारा है। इसलिए महाकवि वादिराज ने अपने 'एकीभाव स्तोत्र' मे कहा है—

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चैदनवधिसुखावंचिका कुंचिकेयम्।
शक्योद्घाट भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो,
मुक्तिद्वारं परिदृढ़महामोहमुद्रा कपाटम्।

अर्थात् शुद्ध ज्ञान और पवित्र चरित्र होने पर भी यदि असीम सुख देने वाली तुम्हारी भक्ति रूपी कुंचिका न हो तो जिसके महामोह रूपी ताला लगा हुआ है ऐसा मुक्तिद्वार, मुक्ति की इच्छा रखने वाले के लिये कैसे खुल सकता है? यहां कवि ने भक्ति की तुलना मे शुद्ध ज्ञान और पवित्र चारित्र को भी उतना महत्त्व नही दिया है। यह भक्ति की पराकाष्ठा है।

भक्ति का फल:

जैनाचार्यो ने भक्ति को एक निष्काम कर्म माना है। यदि उसे लक्ष्य कर मनुष्य में फलासक्ति उत्पन्न हो जाय तो भक्ति बिल्कुल व्यर्थ है। जैन-शास्त्रों में निदान (फलाकांक्षा) को धार्मिक जीवन मे एक प्रकार का शल्य (काटा) बतलाया गया है। भक्त के सामने सदा मुक्ति का आदर्श उपस्थित रहता है। वह उससे कभी भटकता नही। यदि भटकता है तो उसे सच्चा भक्त नहीं कह सकते। भक्ति का सच्चा फल वह यही चाहता है कि जब तक मुक्ति की प्राप्ति न हो तब तक प्रत्येक मानव जन्म में उसे भगवद्भक्ति मिलती रहे। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए 'द्विसंधान काव्य' के कर्ता महाकवि धनंजय कहते है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्, वरं न याचं त्वमुपेक्षकोऽसि,
छाया तरु संश्रयतः स्वतः स्यात्, कश्छायया याचितयाऽऽमलोभः।
अथास्ति दित्या यदिवोपरोधः, त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति-बुद्धि,
करिष्यते देव तथा कृपां मे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरीः।

हे देव! इस प्रकार आपकी स्तुति कर मैं आप से उसका कोई वर नही मांगता, क्योकि किसी से भी कुछ मांगना तो एक प्रकार की दीनता है। सच तो यह है कि आप उपेक्षक (उदासीन) हैं। आप में न द्वेष है और न राग। राग बिना कोई किसी की आकाक्षा पूरी करने के लिए कैसे प्रवृत्त हो सकता है? तीसरी बात यह है कि छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठकर फिर उस वृक्ष से छाया की याचना करना तो बिल्कुल व्यर्थ है, क्योकि वृक्ष के नीचे बैठने वाले को तो वह स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

'कल्याण मंदिर स्तोत्र' के कर्ता महाविद्वान् कुमुदचन्द्र भी इस सवध मे यही बात कहते हैं:—

यद्यस्ति नाथ भवदघ्रिसरोतहाणाम्, भक्तेः फल किमपि संतत संचितायाः,
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्यभूयाः स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेपि ।

हे शरण्य ! आपके चरण कमलो की सतत् सचिता भक्ति का यदि कोई फल हो तो वह यही होना चाहिये कि इस जन्म और अगले जन्म मे आप ही मेरे स्वामी हों, क्योकि आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी शरण नही हो सकता ।

किन्तु जैसा कि पहले कहा है, मनुष्य का चरम लक्ष्य मुक्ति है । इसलिए कोई भी भक्त जब तक मुक्ति नही मिले तब तक ही इस फलाकांक्षा का औचित्य समझता है । इसलिए भगवान् की पूजा के अंत मे जैन मंदिरो मे जो शान्तिपाठ बोला जाता है, उसमे इस अभिप्राय को अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया गया है :—

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वयेलीनम्,
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावत् यावन्निर्वाणसंप्राप्ति ।

हे भगवन् ! जब तक निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक तुम्हारे चरण मेरे हृदय मे लीन रहे, और मेरा हृदय तुम्हारे चरणो मे लीन रहे, इन उद्धरणो से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि जैन भक्ति का उद्देश्य परमात्मत्व की ओर बढ़ना है । किसी भी प्रकार का लौकिक स्वार्थ उसका लक्ष्य नही है । जिसके जीवन मे भक्ति की महत्ता अकित हो जाती है उसकी दुनिया के क्षणभगुर पदार्थों मे आस्था नही होती और न उसके मन मे किसी प्रकार के वैयक्तिक स्वार्थ की ही आकाक्षा होती है । वास्तविक भक्त वह है जिसकी दुनिया के क्षणभगुर सुखो मे आस्था नही होती । जिसको इस प्रकार की आस्था, आसक्ति अथवा आकाक्षा होती है वह कभी परमात्मत्व की ओर नही बढ सकता, भक्त हृदय अहिंसक होता है इसलिए उसका कोई शत्रु भी नही होता है वह अपनी भक्ति के बीच मे इस प्रकार की आकाक्षाये भी नही लाता जो द्वेषमूलक एव हृदय को विकृत करने वाली हो । जैन दृष्टि से वे स्तोत्र अत्यन्त नीच स्तर के ही समझे जाने चाहिये जो मनुष्य को हिंसा एव विकार की ओर प्रेरित करने वाले हो ।

हा, जैन भक्ति एव पूजा के प्रकरणो मे भक्ति के फलस्वरूप ऐसी मागे जरूर उपलब्ध होती है जो वैयक्तिक नही अपितु सार्वजनिक है, फिर चाहे वे लौकिक ही क्यो न हो । भगवान् की उपासना के बाद जैन उपासना गृहो मे शाति पाठ बोला जाता है उसमे भक्त कहता है :—

क्षेमं सर्वप्रजाना प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल.,
काले काले च सम्यग् विलसतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।
दुर्भिक्ष चौरमारी क्षणमपि जगता मास्मभूज्जीवलोके,
जैनेन्द्र धर्मचक्रं प्रभवतु सतत सर्वसौख्य-प्रदायि ।

हे भगवान् ! सारी प्रजा का कल्याण हो । शासक बलवान् और धर्मात्मा हो । समय-समय पर (आवश्यकतानुसार) पानी बरसे । रोग नष्ट हो जावे । कही न चोरी हो और न महामारी फैले और सारे सुखो को देने वाला भगवान् जिनेन्द्र का धर्मचक्र शक्तिशाली हो ।

इस प्रकार का एक उल्लेख और भी सुनिये :—

संपूजकानां प्रतिपालकानाम्, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्,
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांति भगवान् जिनेन्द्रः ।

जो भगवान् के भक्त है, जो दीनहीनों के सहायक है, जो यतियों में श्रेष्ठ है, जो तपोधन हैं, उन सबको तथा देश, राष्ट्र, नगर और राजा को भगवान् जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करे ।

ये सब उल्लेख स्पष्ट यह बतलाते है कि जैनो के वाङ्मय का लक्ष्य आत्मशोधन के साथ-साथ लोकोपकार की भावना भी है । उसका दृष्टिकोण संकुचित नहीं अपितु उदार, विशाल एवं व्यापक है । इसमें वसुधैवकुटुम्बकम् की उदात्त तथा प्रांजल भावना ओतप्रोत है । इससे मानव को जो प्रेरणा मिलती है उससे उसकी पशुता निकल कर मानवता निखर जाती है ।

मूर्तिपूजा और भक्ति :

श्वेताम्बर जैनो के स्थानकवासी और तेरापंथी एवं दिगम्बर जैनों का तारणपंथी सम्प्रदाय —यद्यपि मूर्ति पूजा को महत्त्व नही देते, फिर भी वे भक्ति का समर्थन करते है । यद्यपि मूर्ति पूजा और भक्ति का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है तथापि ये दोनो चीजे एक नही है । किन्ही दो पदार्थों मे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बनाना व्यक्तिगत प्रश्न है । भक्ति के लिये भी कोई मूर्ति पूजा को अवलम्बन मानता है और कोई नही मानता है । जो संप्रदाय मूर्ति या प्रतिमा को अवलम्बन नही मानते, वे भी भगवान् की भक्ति करते है । भक्ति तो मनुष्य की मानसिक वृत्ति है । वह मूर्ति रूप आलंबन के बिना निरालंबन भी हो सकती है । वास्तव मे परमात्मा या भगवान् ही आलंबन है । उपास्य मे तो कोई भेद है नहीं, भले ही उनकी मूर्ति बनाई जाये या न बनाई जाये । बिना मूर्ति के भी परमात्मा या महात्माओ के गुणो मे अनुराग उत्पन्न कर उसमें पूजनीयता की आस्था स्थापित की जा सकती है । भक्ति का रहस्य भी यही है । जैन धर्म में जो भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे जैनों के सभी सम्प्रदाय एक मत से स्वीकार करते हैं ।

११ | योग

•

मुनि सुशीलकुमार

योग का अर्थ :

योग का प्रसिद्ध अर्थ समाधि है अथवा संयोग। समाधि योग का साध्य है और संयोग साधन। ध्याता का ध्येय के साथ संयोग—तदाकार हो जाना ही योग है, अतः चित्त-वृत्तियों का निरोध भी योग कहा जाता है। इन्हे ध्यान और समाधि भी कहा जा सकता है, क्योंकि ध्यानयोग में मन की एकाग्रता का सम्पादन करना और समाधि मे मन की सुस्थिरता प्राप्त करना ही योग की सिद्धि है।

जैनागमो मे विशिष्ट अर्थ :

किन्तु जैनागमो मे मन, वचन तथा काया के व्यापारो को भी योग कहा गया है।[1] आत्म-प्रदेशो के साथ—कर्मपरमाणुओ का सम्बद्ध होना ही बंध कहलाता है, बंध में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और योग ही कारण है।[2] विशेषकर आत्मा की शुभाशुभ प्रवृत्ति मे मन, वचन तथा काया-व्यापार की नितान्त आवश्यकता रहती है। इसीलिए इन्हे आस्रवद्वार भी कहा जाता है। यद्यपि वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम से आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन-कम्पन-व्यापार ही वास्तव मे योग है, किन्तु यह आत्म-परिस्पन्दन मन, वचन तथा काया के आश्रित हैं, अतः इन्हे ही योग कहा जाता है।

मनोयोग :

मन, शरीर और इन्द्रियो का शासक है, वाणी अन्तःस्थ भावनाओं की अभिव्यञ्जना का साधन है और शरीर क्रियाशक्ति का केन्द्र है, शरीर की अपेक्षा वाणी मे और वाणी की अपेक्षा [illegible] सूक्ष्म-शक्ति [illegible] है।

जैनागम ने मन को सत्यार्थ, असत्यार्थ, उभय और अनुभय के रूप मे चार भागो मे बांटा है।

---

१. [illegible]

२. [illegible]

मन की सारी दौड़-धूप इसी चतुष्पथ मे समाप्त हो जाती है। यद्यपि मनोदण्ड के नाते स्थूल रूप से छः दोषो से मन अभिभूत हो जाता है जैसा कि—

१. विषाद, २. निर्दयतापूर्ण-विचार ३. व्यर्थ कल्पना-जाल, ४. इधर-उधर मन को भटकाना, ५. अपवित्र विचार, ६. द्वेष या अनिष्ट चिंतन आदि।

इनसे विपरीत मन को प्रशस्त भाव, पवित्र विचार, विश्वहित तथा आत्मबोध की ओर लगाना ही मनोयोग है।

वचन योग :

वचन योग भी सत्यवाणी, असत्यवाणी सत्यासत्य और अनुभयरूप वाणी के भेद से चार प्रकार का होता है। वचन भी अप्रशस्त भाव से छः बुराई कर बैठता है—

१. असत्य-भाषण २. निन्दा, चुगली, ३. कटु गाली, शाप देना, ४. अपनी बडाई हाकना, ५. व्यर्थ की बाते करना, ६. शास्त्रों के सम्बन्ध मे मिथ्याप्ररूपणा करना।

इन्ही से विपरीत प्रशस्त वचन का अर्थ है—'हितमित्त पथ्य, सुखद, कल्याणकर वाणी बोलना।'

काय योग :

काया का व्यापार बहुत विस्तृत है। जैनधर्म मे इस शरीर को औदारिक शरीर बताया गया है। औदारिक, आहारक, वैक्रिय और कार्मण काय-योग के साथ जो आत्म-परिस्पन्दन होता है, उसे काय-योग कहा जाता है।

और सामान्यत काय योग को भी प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से विभक्त किया गया है, जैसे कायादण्ड के नाते—

१. पीडा पहुचाना, २. व्यभिचार करना, ३. वस्तु चुराना, ४. अकड़ कर चलना, ५. व्यर्थ की चेष्टाएँ करना, ६. असावधानी से चलना, अयत्ना करना आदि कायदण्ड है, और इन्ही के विपरीत पीडा न पहुचाना, ब्रह्मचर्य पालन करना, और संयत रहना आदि, काया के शुभ व्यापार (प्रशस्त काय योग) है।

मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, तथा हठयोग की तरह जैनधर्म मे भी योग को समाधि के रूप मे ग्रहण किया गया है, किन्तु जैनधर्म निरोध प्रधान ही योग नही है, अपितु वह चिन्तन-प्रधान योग को मानता है। जैनधर्म के योग का स्पष्ट मन्तव्य यह है कि अकुशल मन का निरोध और कुशल मन की उदीरणा,[1] और लौकिक योग मे मनोलय का ही आदर्श श्रेष्ठ माना गया है। इसीलिए आचार्य हरिभद्र सूरि ने योग के पाँच प्रकार बतलाएं है—और योग को निर्वाण प्राप्ति का श्रेष्ठतम मार्ग प्रतिपादित किया है, एव १. अध्यात्म योग, २. भावना योग, ३. ध्यान योग, ४. समता योग, व ५. वृत्ति संक्षय योग, को ही योग का सोपान-क्रम निश्चित किया गया है। भावना, ध्यान, तथा समता का तो वर्णन पृथक्-

---

१—अकुसल मरण निरोहो वा, कुसल मन उदीरण वा—भगवती शतक २५, उ० ७, पा० ७।

पृथक् यथा स्थान मे हुआ है, सभव है आध्यात्म और वृत्ति सक्षय के अर्थ मे कुछ भ्राति रह जाए अतः जैनधर्म के अनुसार अध्यात्म का अर्थ तत्त्वचिन्तन करना है, जो औचित्य, वृक्षसमवेतत्त्व, आगमानुसारित्व तथा मैत्री, करुणा, प्रमुदित और उपेक्षा-भावना से युक्त होना चाहिए।

वृत्ति सक्षय का अर्थ आत्मा मे शरीर मन के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाली विकल्प रूप तथा चेष्टारूप वृत्तियो का अपुनर्भाव से व आत्यन्तिक रूप से समूल नाश हो जाना ही किया गया है।[1] पतञ्जलि योग के अनुसार इन्हे संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि के रूप से तुलनात्मक भाषा मे प्रतिपादित किया जा मकता है।

जैनधर्म मे अष्टॉग योग :

जैनधर्म मे भी योग के अष्टॉगो का वर्णन प्राप्त होता है, यद्यपि जैनागमो मे चित्तगत मल का नाश और आत्मगत ज्ञान की प्राप्ति को ही योग का मुख्य ध्येय वताया गया है, किन्तु योग के अष्टॉगो का वहुत ही मौलिक रूप से वर्णन किया गया है। महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाँगो के ये नाम वताये है—

१. यम, २ नियम, ३. आमन, ४. प्राणायाम, ५ प्रत्याहार ६ धारणा, ७. ध्यान, ८ समाधि।

जैन धर्म के अनुसार इन्ही अष्टाँगो को इस प्रकार प्रतिपादित किया है, जैसे कि—

१ महाव्रत (यम), २. ३२ योग सग्रह (नियम), ३. कायक्लेश (आसन), ४. भावप्राणायाम (प्राणायाम), ५. प्रतिसलीनता (प्रत्याहार), ६. धारणा (धारणा), ७. ध्यान (ध्यान), ८. ममाधि (समाधि)।

१ महाव्रत पॉच है, अहिसादि।

२ योग सग्रह ३२ हैं जैसे—

१ पापो की आलोचना, २. किसी की आलोचना दूसरे को नही कहना, ३. कष्ट मे धर्म दृढता, ४ स्वालम्वी तप करना, ५. शिक्षा-ग्रहण, और आसेवन शिक्षा का पालन। ६. शरीर की निष्प्रतिक्रमता, ७. मान, वड़ाई न चाह कर, अज्ञात तप, ८. अलोभ, ९. तितिक्षासहन, १०. सरलता, ११ पवित्रता, १२ सम्यग्दृष्टि, १३. समाधिस्थ होना, १४. सदाचारी १५. विनयी, १६. धैर्यवा १७. सवेगयुक्त, १८ अमायी, १९ सदनुष्ठान, २०. संव रयुक्त, २१. स्वदोपो का निरोध, २२. का विपयादि से विरक्त, २३. मूल गुणो का शुद्ध पालन, २४. उत्तर गुणो का शुद्ध पालन, २५. व्युत्स करना, २६. अप्रमादी, २७ क्षण-क्षण मे समाचारी का ध्यान, २८. ध्यान, सवरयुक्त करना, २९. मृत्यु तुल्य कष्ट मे भी अचल, ३०. सगत्याग, ३१ प्रायश्चित्त करना, ३२. मरण समय आराधक वनना।

३. काय-क्लेश मे अनेक प्रकार के आसनो का वर्णन किया गया है, जैसे कि—वीरासन कमलासन, उत्कटिकासन, गोदोहासन, सुखासन, कायोत्सर्ग आदि।[2]

४ प्राणायाम के विपय मे जैनागमो मे अधिक नही कहा गया; क्योकि आसन, मुद्रा, प्राणायाम, और पट्कर्म पर हठयोग मे अधिक वल दिया गया है; किन्तु जैनधर्म मे तो उत्साह, निश्चय

१–योग विन्दु ३६६। २–औपपा० सू०।

धैर्य, सन्तोष, तत्त्वदर्शन और लोकत्याग के द्वारा और प्राण-वृत्ति के निरोध से भाव प्राणायाम को ही महत्त्व दिया गया है ।

५. प्रत्याहार और प्रतिसलीनता के अर्थ मे कोई अन्तर नही है । इन्द्रिय, कषाय, योग, और विविक्त शयनासन प्रतिसलीनता का अर्थ है, अप्रशस्त से हटाकर प्रशस्त की ओर प्रयाण करना ।[1]

६. धारणा[2]–चित्त की एकाग्रता के किसी एक स्थान पर अथवा किसी एक पुद्गल पर दृष्टि लगा देना धारणा है ।

७ ध्यान के विषय मे जैनागमो मे बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध होता है । जैनधर्म मे ध्यान की परिभाषा यह की गई है जैसे कि स्थिर दीप-शिखा के समान निश्चल और अन्य विषय के संचार से रहित केवल एक ही विषय के धारावाही प्रशस्त सूक्ष्म बोध को ध्यान योग कहा गया है[3], क्योकि शक्ति का अभ्युदय सकल्प की दृढता और तीव्रता मे निहित है, और संकल्प की दृढता एव तीव्रता मानसिक वृत्तियो के अनियन्त्रित प्रसार अवरोध मे । जब मनोवृत्तिया अपने उद्दाम उच्छृङ्खल प्रवाह को रोक कर एक ओर वहने लगती है, चिन्तन धारा लक्ष्य की ओर ही तीव्रता के साथ दौडना प्रारम्भ कर देती है, उस समय का चित्तवृत्तियो का एक ही ओर का वह प्रवहन जैनशास्त्रो में ध्यान कहलाता है ।

ध्यान के अवलम्बन से मानसिक शक्ति पूंजीभूत हो जाती है और आत्मा मे अद्भुत सामर्थ्य प्रकट होता है । इसी कारण जैनधर्म की साधना मे ध्यान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, और अशेष कर्मक्षय का साक्षात् कारण माना गया है ।

ध्यान के प्रकार :

हमारी मानसिक वृत्तियो के प्रवाह के सामने एक चत्वर है, चहुंमुखी मार्ग है । उसे चार प्रकार का ध्यान[4] कहा जाता है और उनका सक्षिप्त आशय इस प्रकार है—

१. आर्त्तध्यान—शोक, चिन्ता से उद्भूत वृत्तिप्रवाह ।

२ रौद्रध्यान—पाप जनक दुष्ट भावों से उत्पन्न होने वाला दु:सकल्प ।

३. धर्मध्यान—आत्मस्वरूप दर्शन की उत्कठामयी चित्तवृत्ति ।

४. शुक्लध्यान—शुद्ध आत्मदर्शन से जनित सर्वथा विशुद्ध आत्मवृत्ति ।[5]

यही वह चत्वर है, जिस पर सृष्टि के समग्र प्राणियो की चित्त वृत्तिया दौड रही है ।

(१) **आर्त्तध्यान**—अरति, शोक, संताप और चिन्ता हमारे मन पर जो प्रभुत्व जमा लेती है, वह आर्त्तध्यान है । उसके प्रधान कारण चार है—[6]

१–औपपा० सू०, भगवती श०, २५, उ० ७, पा० ७ ।

२–भगवती सूत्र, शतक ३, उ० २, 'एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठि' ।

३–निवायसरणप्पदीप्पपज्झाणमिव निप्पकपे, प्रश्न० संवरद्वार, ५ ।

४–भगवती सूत्र, श० २५, उ० ७, पा० १३,

५–भगवती सूत्र, श० २५, उ० ७, पा० १३

६–भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, पाठ १३, तत्त्वार्थ सूत्र, अ० ९ सूत्र ३ ।

१. अनिष्ट वस्तु का सयोग और उसके वियोग—पृथक्करण के लिए होने वाली चिन्ता।

२ इष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर उसका सम्बन्ध-विच्छेद न होने की चिन्ता और सम्बन्ध विच्छेद होने पर उसकी पुनः प्राप्ति की कामना।

३ व्याधिजन्य दु.ख और पीड़ा से विमुक्ति पाने की चिन्ता।

४. भविष्य के कमनीय स्वप्नो की पूर्ति की चिन्ता।

चार कारणों से उत्पन्न होने के कारण आर्त्तध्यान के प्रकार भी चार ही माने गये हैं।

(२) रौद्रध्यान—[1] रुद्र का अर्थ है क्रूर आशय। क्रूर आशय से उत्पन्न होने वाली चित्त-वृत्ति की एकाग्रता रौद्रध्यान है। रौद्र ध्यान के चार कारण है, जिनसे यह ध्यान भी चार प्रकार का माना गया है:–[2]

१ हिंसानुबंधी—प्राणिहिंसा का क्रूर संकल्प।

२. मृषानुबंधी—असत्य परपीडा-जनक या सत्य का अपलाप करने वाली वाणी का प्रयोग करना या ऐसा सकल्प करना।

३. चौर्यानुबंधी—अदत्तादान की चित्तवृत्ति।

४. संरक्षणानुबंधी—परिग्रह की रक्षा मे संलग्न मनोवृत्ति।

ये दोनों ध्यान त्याज्य हैं।

(३) धर्मध्यान—[3]धार्मिक कार्यो मे चित्त की एकाग्रता होना धर्मध्यान है। यह भी चार प्रकार का है। (उत्तराध्ययन अ० ३०, गा० ३५।)

१. आज्ञाविचय—वीतराग कथित तत्वो मे अचल आस्था रखकर उनका यथोचित विश्लेषण करने की मानसिक एकाग्रता।

२ अपायविचय—राग, द्वेष, मोह, आदि आन्तरिक विकारो को नष्ट करने की और इन विकारो से पीडित प्राणियो को कल्याण पथ की ओर आकृष्ट करने की मानसिक चिन्तना।

३. विपाकविचय—सुख मे हर्ष, दुःख मे विषाद की भावना त्याग कर कर्म-फल का चिन्तन करना।

४ संस्थानविचय—लोक की पुरुषाकार आकृति का, जगत् के स्वरूप का एवं द्रव्य-गुण पर्याय का चिन्तन करना।

धर्मध्यान के चार विधेय रूप है, जिनके द्वारा मानसिक वृत्तियो को सत्त्वस्वरूपमय बनाया जा सकता है, जैसे—

१–भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, सूत्र ८०३।
२–,,   ,,   ,,   ,,   ,,
३–,,   ,,   ,,   ,,   ,,

१. पिण्डस्थध्यान—पिण्ड अर्थात् शरीर में स्थित आत्मा पर मनोवृत्ति को केन्द्रित करना पिण्डस्थ ध्यान है।

२. पदस्थस्थान—नमस्कार-महामन्त्र के पाँच पदों पर चित्तवृत्ति एकाग्र करना पदस्थ ध्यान है।

३. रूपस्थ-ध्यान—सम्पूर्ण बाह्य और आन्तरिक महिमा से सुशोभित अर्हन्त भगवान् का अवलम्बन लेकर उन पर चित्तवृत्ति केन्द्रित कर लेना, रूपस्थ ध्यान है।

४. रूपातीत ध्यान—निरंजन, निर्विकार, अमूर्त्त, अशरीर, सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है।

यहाँ अत्यन्त संक्षेप में धर्म-ध्यान का सूचन किया गया है। पिण्डस्थ ध्यान से आरम्भ करके रूपातीत ध्यान का अभ्यास करने से मन की चचलता मिट जाती है और आत्मा विशुद्ध होती है।

(४) शुक्लध्यान :

धर्मध्यान आत्मा की विकास-अवस्था का द्योतक है। इस ध्यान से भी कषाय का पूर्णतया ाश नही होता। धर्मध्यान की स्थिति सातवे गुणस्थान तक ही है। आठवे गुणस्थान से शुक्लध्यान ी अवस्था आती है। शुक्लध्यान के प्रयोग से समस्त कषाय निर्मूल हो जाते है, कर्माशय हल्का ोकर क्रमशः सर्वथा जीर्ण हो जाता है। यह सर्वोत्तम ध्यान है, परम समाधि है। इस ध्यान मे भी ़क प्रकार का तारतम्य होता है, जिसके आधार पर उसके चार भेद किए गए है, वे इस प्रकार है—

शुक्लध्यान[1] की प्राथमिक अवस्था पृथक्त्व वितर्क सविचार अवस्था कहलाती है। यहाँ वतर्क का अर्थ है 'श्रुत' और विचार का अर्थ पदार्थ, शब्द और योग का संक्रमण होना है। अभिप्राय ाह है कि इस ध्यान के प्रयोग मे ध्येय वस्तु, उसके वाचक शब्द और मन आदि योगों का परिवर्तन ोता रहता है। फिर भी यह सब एकाग्रता आत्मस्थ ही होती है।

इसके पश्चात् जब ध्यान में कुछ अधिक परिपक्वता आती है, तो किसी एक ही वस्तु का ध्यान होने लगता है। पदार्थ, शब्द और योग का संक्रमण रुक जाता है। उस समय का ध्यान एकत्व वेतर्क अविचार शुक्लध्यान कहलाता है।[2]

मन, वचन, काय के स्थूल योगो का निरोध कर देने पर सिर्फ श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया ही शेष रह जाती है, उस समय का ध्यान सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति, शुक्लध्यान है।[3] इस ध्यान के पश्चात् जब सूक्ष्म क्रिया का भी सर्वथा अभाव हो जाता है, और आत्मप्रदेश सुमेरू की तरह अचल हो जाते है, उस समय का सर्वोत्कृष्ट ध्यान 'व्युपरतक्रियानिवर्त्ति शुक्लध्यान' कहलाता है। इस ध्यान के प्रभाव से अत्यल्प काल मे ही पूर्ण सिद्धि—विदेह अवस्था—की प्राप्ति हो जाती है। निर्विकल्प समाधि का यह सर्वोत्कृष्ट रूप है।[4]

१—प्रज्ञापना, पद १, चारित्रार्य विषय।

२—भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, सूत्र ८०३।

३—,, ,, ,, ,, ,,

४—प्रज्ञापना, पद १, चारित्रार्य विषय, स्थानाग, सत्रवृत्ति, स्था० ४, उ० १, सत्र २४७।

८. समाधि का पूर्ण समावेश शुक्लध्यान के चार भेदो मे ही हो जाता है। जैनाचार्यों ने योग का सर्वाङ्गरूप—मित्रा, तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा, और परा, इन सप्त दृष्टियों के क्रमिक-विकास मे भी प्रतिपादित किया है। जैनधर्म मे योग और उसकी साधना महान् है। तत्वचिन्तन और प्रशस्त-भाव से उसकी प्राप्ति होती है। समाधि का शब्दो द्वारा वर्णन करना कठिन है। वह अनुभवजन्य ज्ञान है। हठयोग की साधना में तो उसे रहस्यमय तत्त्व बताया गया है क्योंकि इडा व पिंगला नाडियां ही शारीरिक चैतन्य का आधार है, ध्यानावस्था में योगी शरीर की सुध-बुध भुलाकर इडा व पिंगला को सुषुम्णा मे विलय कर देता है। सुषुप्ति अवस्था भी इसे ही कहते हैं। किन्तु योगी त्राटक द्वारा नेत्र मूंद कर भ्रूमध्य मे टिमकने वाले कृष्ण विन्दु को एकाग्रता से तोड़कर प्रकाश व संगीत का आस्वाद लेता है। ये सब आत्मानुभव की प्राथमिक सीढियाँ है। जैनधर्म समता शब्द द्वारा उसी स्थिति को कायोत्सर्ग कर, भ्रूमध्य मे ध्यानस्थ होकर, समाधि के आनन्द का विधान करता है।

आत्मदोषों की आलोचना करने से पश्चाताप की भट्टी सुलगती है और उस पश्चाताप की भट्टी में सब दोषों को जलाने के बाद साधक परम वीतराग भाव को प्राप्त करता है।

—भगवान् महावीर

आत्मस्वरूप में लगा हुआ चित्त बाह्य विषयों की इच्छा नही करता, जैसे दूध में से निकला घी फिर दुग्ध भाव को प्राप्त नहीं होता।

—शंकराचार्य

आत्मा से बाहर मत भटको, अपने ही केन्द्र में सीमित रहो।

—स्वामी रामतीर्थ
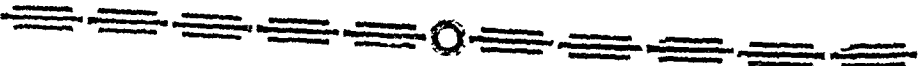
१२ | समाधिमरण

•

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

मरण कैसा हो ?

संसार में शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो जो मरण को नहीं जानता हो। छोटे से छोटे कीट, पतग से लेकर नरेन्द्र, असुरेन्द्र और देवेन्द्र तक भी इसके प्रभाव से प्रभावित है।

भयकर से भयंकर रोग मे फंसने वाला असहाय रोगी भी मरना नही चाहता। भले उसे कितना ही रोग, शोक, वियोग या अपमान सहना पडे। फिर भी वह प्राणी यही चाहेगा कि मरूं :ही। कारण मरण सबसे बड़ा भय है। कहा भी है—मरण सम नत्थिभय। मरण से बचने के लिये ;नुष्य हर सभव उपाय को करने के लिये तैयार रहता है। उसने मृत्युंजय और महामृत्युंजय के भी ाठ कराये, सुसज्जित सेनाओं के बीच अपने को सुरक्षित रक्खा, फिर भी मरण से नही बच पाया। ारण के सामने मत्र बल, तंत्र बल, यत्र बल और शस्त्र बल सभी बेकार है। कहावत भी है—'काल ाताल की धाक तिहु लोक मे।' सच है जगत के जीव मात्र मरण का नाम सुनते ही रोमांचित हो ाते है।

किन्तु ज्ञानी कहते है—'मृत्योर्विभेषिकिं मूढ ?' मूर्ख ! मृत्यु से क्यो डरता है ? यह तो ुराना चोला छोड़कर नया धारण करना है। इसमे भयभीत होने की क्या बात है। निर्भय और नेर्मल भाव से कर्तव्य पालन कर, फिर देख कि मरण भी तेरे लिये मगल महोत्सव बन जायगा।

अतः यह जानना आवश्यक है कि मरण क्या है और वह कितने प्रकार का है ? तथा उत्तम मरण कैसा होना चाहिये।

जैन शास्त्र कहते है कि ससार का कोई भी द्रव्य सर्वथा नष्ट नही होता। अतः प्रश्न होता है के 'मरण' जिसको कि नाश कहते है कैसे संगत होगा ? कारण द्रव्य का लक्षण 'उत्पाद', व्यय, ध्रौव्य-युक्तसत्' कहा है। उसका कभी नाश नही होता, तब मरण क्या हुआ ? यहां मरण का अर्थ आत्यन्तिक तिरोभाव या अदर्शन है। जब आयु पूर्ण कर जीव किसी शरीर से अलग होता है याने जीव या प्राणों का शरीर से सर्वथा सबंध छूट जाता है उसे मरण कहते है।

यद्यपि आत्मा अजर, अमर और अजन्मा है। वास्तव मे उसका न जन्म है और न मरण, फिर भी ससारावस्था मे शरीरधारी जीव का शरीर की अपेक्षा जन्म और मरण कहा जाता है। सक्षेप मे कहना चाहिये कि वर्तमान शरीर को छोडकर जीव का प्रयाण कर जाना ही मरण है।

जैन शास्त्रो मे मरण पर बहुत गंभीर विचार किया गया है। श्रीस्थानांग, श्रीभगवती, श्री उत्तराध्ययन आदि अंगोपाग सूत्रों के अतिरिक्त जैनाचार्यो ने मरण पर स्वतंत्र प्रकरण भी लिखे है। मरणविभत्ति, भत्तपच्चक्खाण और समाधिमरण उनमे खास उल्लेख योग्य है।

यह निश्चित है कि संसार मे दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ मात्र एक दिन विलय होने वाले है। अचेतन मे जड़ होने से हर्ष, शोक के भाव उत्पन्न नही होते। चेतन होने से जीव को ही हर्ष, शोक होते हैं। इसलिये यहा इसी के मरण का विचार करना है। आत्मदर्शी महात्माओ ने कहा है कि मरण केवल दुःखदायी ही नही वह सुखप्रद भी होता है।

अज्ञानी और ज्ञानी की दृष्टि से मरण भी बुरा और भला होता है। अज्ञानी पर्यायदृष्टि-प्रधान होने से प्राण-वियोग पर रोता और दुःख करता है, वहा ज्ञानी दिव्यदृष्टि की प्रधानता से धन, जन, प्राण के वियोग मे भी प्रसन्न रहता है, सदा समरस रहता है। ठीक ही कहा है कि अज्ञानी मरण से डरते है, जबकि ज्ञानी उसको सहर्ष गले लगाते है। कारण, ज्ञानी समझता है कि मैं तो त्रिकाल सत्य हूं, इस शरीर के पहले भी था, अब भी हूँ और शरीर छूटने पर भी रहूंगा, फिर सुकृताचरण से मैं कृतकृत्य हो चुका हूं, अतः मुझे मरण से घबराने की कोई आवश्यकता नही। कहा भी है— मरणादपि नोद्विजते कृतकृत्योऽस्मीति धर्मोऽस्मा" शास्त्रो में मरण का विस्तार निम्न रूप से किया है :—

मरण के प्रकार :

भगवती सूत्र मे मरण के ५ प्रकार बतलाए हैं—

(१) आवीचिमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यन्तिकमरण, (३) बालमरण (५) पंडितमरण।

प्रथम तीन प्रकार के मरण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव भेद से पाच-पांच प्रकार के बतलाये गये हैं[1]। प्रति समय आयुकर्म के दलिकों का क्षीण होते जाना यह आवीचिमरण है। नरक आदि भव की स्थिति पूर्ण कर जो तत् तत् भवानुबन्धी सामग्री का त्याग किया जाता है वह अवधिमरण है। और एक बार मरने के बाद फिर उस भव से नही मरना यह आत्यन्तिकमरण है।

फिर स्थानाग सूत्र मे मरण के तीन प्रकार भी बतलाये है[2]। जैसे (१) बालमरण (२) पंडितमरण, (३) बालपडितमरण। विवेकरहित अविरत जीव का मरण बालमरण, तत्त्वज्ञानी संयमी का मरण पडितमरण और सम्यग्दृष्टिव्रती गृहस्थ का मरण बालपडितमरण कहलाता है। परिणामो के स्थित, अस्थित और वर्धमान शुभाध्यवसायों से प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते है।

बालमरण :

बाल मरण जन्म-मरण की वृद्धि का कारण है। अतएव श्रमण भगवान् श्रीमहावीर ने कहा है कि[3] तपस्वी निग्रन्थो को ऐसे मरण से नही मरना चाहिये। ये मरण निम्न प्रकार हैं–(१) बला

---

१. भगवती सूत्र १३ श०, ७ उ०, ४९६ सूत्र

२. स्था० ३ उ० (२२२ सूत्र)

३. स्था० २

मरण, (२) वशार्तमरण, (३) निदानमरण, (४) तद्भवमरण, (५) गिरिपतन, (६) तरुपतन, (७) जलप्रवेश, (८) अग्निप्रवेश, (९) विपभक्षण, (१०) शस्त्रघात, (११) वेहायस, (१२) गृद्ध-पृष्ठमरण। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) भूख-प्यास आदि परिषहों से घबरा कर असंयम सेवन करते मरना बलयमरण है। (२) पतंग आदि की तरह शब्दादि विषयों के अधीन होकर मरना वशार्तमरण है, जैसे किसी कामिनी के पीछे कामी का प्राण गंवाना, (३) ऋद्धि आदि की प्रार्थना करके सम्भूति मुनि की तरह मरना निदानमरण है। (४) जिस भव मे है उसी जन्म (योनी) का आयु बांध कर मरना तद्भव-मरण है। (५) पर्वत से गिर के मरना। (६) वृक्ष से लटक कर मरना। (७) जल में डूब कर मरना। (८) आग मे सती आदि की तरह जीते जल मरना, (९) विप खाकर मरना। (१०) शस्त्र से आत्महत्या कर लेना। (११) फांसी लेकर मरना। (१२) पशु के कलेवर में गीध आदि का भक्ष्य बन कर मरना।

उपर्युक्त १२ प्रकार के मरण से मरने वाला जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के नन्त-अनन्त जन्म करता हुआ चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है। इस प्रकार यह 'बाल-रण' संसार को वढ़ाने वाला है। भगवान् महावीर कहते है—'कौटुम्बिक झगड़ों से तंग आकर ाश, धन-हानि, जन-हानि और मान-हानि की व्याकुलता में मरना दुःख को घटना नहीं बढ़ाना है'—ह पंडितमरण नही बालमरण' है।

माता, पिता, पुत्र या पति, पत्नी आदि प्रियजन के वियोग में मर जाना अथवा मृत ति के साथ जीते जल जाना भी उत्तम मरण नही है। वहुत सी बार मनुष्य शोक, मोह और अज्ञान के वश भी प्राण गमा देता है। व्यापार, धंधे में हानि उठाकर लेनदारों को देने की अक्षमता से सैकडों ने मान-प्रतिष्ठा की आग में प्राणों की वलि कर दी और करते जाते है। अर्थाभाव में पारिवारिक भरण-पोषण और कर्जदारी की चिंता से भी कई हलाहल पी कर मरण की शरण ले लेते हैं। घर के लडाई-झगडो से तग आकर और दुःख में ऊब कर भी कई ललनाएं तेल छिड़क कर जल मरती है। नौकरी नही मिलने से कई शिक्षित युवक और परीक्षा में फेल होकर कई विद्यार्थी प्रतिवर्ष जीवन समाप्त करते सुने जाते हैं। इस प्रकार इच्छा से मरने वालों की सख्या कम नही है। वास्तव मे ये सब अकाम-मरण या बालमरण है। इस प्रकार चिन्ता, शोक या अभाव में झुलस कर कई मानव जीवन-लीला समाप्त करते है। सचमुच यह देश और समाज के लिये कलंक की बात है। समाज और राष्ट्रनायको को इसका उचित हल निकालना चाहिये। ऐसे अबिवेकपूर्वक अकाममरण से मरना दुःख घटाने वाला नही होता। इससे तत्काल ऐसा प्रतीत होता है कि मर जाने से मैं अपनी आँखों से यह दुःख नही देख पाऊगा, किन्तु उसे घ्यान रखना चाहिये कि अकाममरण से वर्तमान का दुःख लाखों-गुणा होकर फिर सामने आ सकता है। जब कि आज का विचारपूर्ण समर्थ मन भी नहीं रह पाता। सच बात यह है कि दुःख भागने से नही छूटता, वह तो शांतिपूर्वक भोगने से छूटता है।

पंडितमरण :

'भगवती सूत्र' के द्वितीय शतक, प्रथम उद्देश्य में प्रभु ने खंदक संन्यासी को मरण का स्वरूप वतलाते हुए कहा है कि—पंडितमरण दो प्रकार का है—पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान। नीहारिम और अनीहारिम रूप से पादोपगमन दो प्रकार का है। यह प्रतिकर्म रहित ही होता है। भक्तप्रत्याख्यान नीहारिम और अनीहारिम दोनों प्रकार का सप्रतिकर्म होता है—अर्थात् इसमे शरीर

की हलन-चलन रूप चेष्टाएं तथा सार-संभाल होती है। इन दोनो प्रकार के पंडितमरण से मरने वाला जीव अनन्त-अनन्त नरक, तिर्यंच आदि के जन्म-मरण से आत्मा को विमुक्त करता यावत् संसार को पार करता है। भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वरूप एवं भेद निम्न दिये जाते हैं—

भक्त प्रत्याख्यान—जिसमे तीन या चार प्रकार के आहारमात्र का त्याग होता है और शरीर का हलन-चलन वन्द नही किया जाता उसे भक्तप्रत्याख्यान कहते हैं।

इंगितमरण—इसमे सर्वथा खाने-पीने का त्याग किया जाता और मर्यादित क्षेत्र के अतिरिक्त शरीर से गमनागमन आदि चेष्टा भी नही की जाती है। पादोपगमन मे यह विशेषता है कि वह शरीर की कोई चेष्टा नही करता, न करवट ही वदलता है। दूसरा भले कोई उसे इधर से उधर बैठा दे या करवट वदल दे, किन्तु स्वय वह कोई चेष्टा नही करता, वृक्ष की तरह अडोल पड़ा रहता है।

भक्त प्रत्याख्यान मे जलाहार लिया जाता है और वह सागारी भी होता है, किन्तु इंगित-मरण और पादोपगमन मे कोई आगार नही होता, न कोई जलाहार ही ग्रहण किया जाता है। भक्त-प्रत्याख्यान सर्वदा सबके लिये सुलभ है, परन्तु इगितमरण एव पादोपगमन प्रथम ३ संहनन मे और विशिष्ट श्रुतधारी को ही होते हैं। व्यवहार भाष्य मे कहा है कि सभी आर्या और सब प्रथम संहननहीन जीव तथा सब देशविरति भक्त प्रत्याख्यान को ही प्राप्त करते है।

पादोपगमन वाले को कभी पूर्वभव के वैर से कोई देव पातालकलशो मे संहरण करदे तो वह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। उस समय ऐसा सोचता है कि जैसे तलवार म्यान से भिन्न है, ऐसे जीव शरीर मे भिन्न है, अत उपसर्ग से मेरी कोई हानि नही होती। जैसे मेरू पूर्वादि चारो दिशा की प्रचण्ड वायु से कम्पित नही होता, वैसे पादोपगमनवाला उपसर्ग मे भी ध्यान से चलायमान नही होता है।

इनका आदर्श होता है उग्रतम कष्ट के समय भी अविचल रहकर मरण का आलिंगन करना। देखिये, कृष्ण वासुदेव के लघु भाई गजसुकुमार ने मरणान्त कष्ट के समय भी कैसी अखण्ड शांति कायम रक्खी। भगवान् नेमनाथ की अनुमति लेकर जब महामुनि महाकाल श्मशान मे ध्यान लगाकर देहभान को भुलाकर आत्मध्यान मे तल्लीन हो गये। उस समय सोमल ब्राह्मण उधर से निकला और महामुनि को देखते ही क्रोध से जल उठा। उसने गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर बांधी तथा अगार रख दिये। सिर जलने लगा और नसें खिचने लगी, फिर भी मुनिजी के मन मे उफ तक नही क्योंकि उन्होने क्रोध, मान, माया, लोभ के आतर विकारो को जला दिया एव प्राणीमात्र को आत्म सम समझ लिया था। अतर मे एक ही आवाज गूंजती थी कि—"मै एक और शाश्वत हू। मेरा स्वरूप ज्ञान, दर्शन है। धन, दारा और परिवार आदि सब वाह्यभाव पर है। और वे संयोग सबध मे अपने व पराये होते है। वास्तव मे ये मेरे नही ज्ञान, दर्शन रूप उपयोग स्वभाव ही मेरा है। जो न कभी जलता है औ न कभी गलता है।"

'एगो मे सासओ अप्पा, नाणदसणसजुओ।
सेसा मे वहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

अग अंग के जलने पर भी गजसुकुमाल की प्रसन्नता अविचल रही और उन क्षणो मे अखण्ड समाधि के साथ उन्होने सकल कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करली।

पण्डितमरण के अधिकार :

वे लोग इसके अधिकारी नही होते, जिनका जीवन हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि पापों मे रचा-पचा होता है, जो अजितेन्द्रिय होकर अभक्ष्य भक्षण करता और विषय कषाय में रति मानता है। ऐसे असयमशील प्राणियों का अन्तिम समय में हाहाकार करते प्रयाण होता है, उनको पंडितमरण प्राप्त नही होता। अतः यह बालमरण है। क्रोध, लोभ या मोह और अज्ञान के वश जो आत्म-हत्याएं की जाती हैं वे सब भी बालमरण है।

अंतिम क्षण तक भौतिक कामना की आकुलता होने से ये अकाममरण मरते है। अतः पंडितमरण के अधिकारी नहीं होते।

संयमशील व्रती गृहस्थ या महाव्रतधारी साधु-साध्वी जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के पूर्ण त्यागी और जितेन्द्रिय है, आरम्भ परिग्रह और विषय-कषाय से मन को मोड़ कर जिन्होंने परमात्मा के चरणों में चित्त लगा दिया एव ज्ञान के प्रकाश मे जड़-चेतन का भेद समझकर तन, धन, परिजन से ममता हटाली है वे ही पंडितमरण के अधिकारी होते है। पडितमरण मे केवल विशुद्ध हेतु और प्रसन्नता के साथ देहत्याग किया जाता है, अतः इसे सकाममरण भी कहते है। सभी साधु और श्रावक पडितमरण को प्राप्त नही करते, किन्तु पंडितमरण के अधिकारी कुछ विशिष्ट पुरुष ही होते है। जैसे कहा भी है—

> **न इमं सव्वेसु भिक्खुसु, न इमं सव्वेसुऽगारिसु।**
> **नाणा सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो ॥ उ० ५ ॥**

अर्थात् यह मरण सभी भिक्षुओं में नही होता, न सब गृहस्थो को होता है। कारण विभिन्न शील स्वभाव के गृहस्थ होते है और भिक्षुओ के भी संयमस्थान समान नही होते।

देखिये, हजार वर्ष का सयमपालन करके भी कुंडरीक ने चन्द दिनो की भोग-भावना मे मरण बिगाड लिया, परिणामस्वरूप उसको नरक में जाना पडा और पुंडरीक ने जीवन का लम्बा समय भोग एवं राग मे बिता कर भी अन्तिम दिनो की पवित्र साधना से जीवन सुधार लिया और पडितमरण से मरकर सुगति प्राप्त की। यह पंडितमरण की ही महिमा है।

ज्ञानी कहते है—यदि तुम दु.ख से ऊब गए हो, सहने की शक्ति खो चुके हो और मरना चाहते हो तो चिन्ता-शोक मे देह को गला कर मरने की अपेक्षा तप-सयम में देह को विवेकपूर्वक गलाओ और ध्यानाग्नि मे दु ख को जला कर हंसते-हंसते मरो, रोते हुए क्यो मरते हो।

पण्डितमरण की विधि :

जब समझ लो कि अब शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नही है अथवा धर्म रक्षा के लिये प्राणो का त्याग करना है तब सर्वप्रथम मन से वैरविरोध भुला कर अन्तरात्मा को स्वच्छ बना लेना चाहिये। फिर तन, मन, धन, परिजनादि बाह्य वस्तुओ से मन मोड कर, आत्मस्वरूप मे वृत्ति जमा कर, सदा के लिये अकरणीय पापकर्म और चतुर्विध आहार का त्याग कर लेना चाहिये।

अर्हन्त सिद्ध की साक्षी से यह निश्चय कर लो कि ससार के दृश्य पदार्थ सब पर और नाशवान् है। उनको अपना समझ कर ही चिरकाल से मै भटक रहा हूं। यह मेरा अज्ञान है। वास्तव

मे तन एवं धन की हानि से मेरी कोई हानि नहीं होती। मैं सदा शुद्ध, बुद्ध एवं समरस हूं। आग में जलना, पानी मे गलना और रोग से सडना मेरा स्वभाव नही है। सडना गलना, गलना आदि देह के धर्म हैं, अतः इस परमप्रिय देह का भी आज से स्नेह छोड़ता हूं। मेरा न किसी पर राग है, न किसी पर द्वेष।

इसी प्रकार के मरण से अवड़ सन्यासी के ७०० शिष्यो ने भी सुगति प्राप्त की थी कंपिलपुर से पुरिमताल की ओर जाते समय अब उनके पास का पानी समाप्त हो गया और तृषा मारे होठ-कठ सूखने लगे, तब उन्होने उस दुःखद स्थिति मे निम्न प्रकार का पंडितमरण स्वीका किया था।

पहले गंगा के किनारे वालू को देखा, साफ किया और पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से बैठ कर दो हाथ जोडे हुए इस प्रकार बोले—"नमस्कार हो सिद्धि प्राप्त जिनवर को और नमस्कार है सिद्धिग पाने वाले श्रमण भगवान् महावीर को, फिर नमस्कार हो हमारे धर्माचार्य धर्मगुरु अम्बड परिव्राज को। हमने पहले धर्मगुरु अम्वड़ के पास स्थूल हिंसा, झूठ अदत्त, सपूर्ण मैथुन और परिग्रह का त्य किया है। अब श्रमण भगवान् महावीर के पास आजीवन सब प्रकार के हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील अ परिग्रह का त्याग करते हैं। हम सर्वथा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशु परपरिवाद अरतिरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्यरूप अकरणीय पापकर्मो का आजीवन त्य करते है। जीवन भर के लिये सब प्रकार का अनशनादि चतुर्विध आहार भी छोडते है और यह शरीर जो आज तक इष्ट, कात एव अत्यन्त प्रेमपात्र रहा जिसको सदा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, द मच्छर, चोरव्याल और रोग-शोक से वचाते रहे, उस प्रिय तन की भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के स हम ममता छोडते है। अब कुछ भी हो, इस ओर ध्यान नही देगे।" यह पंडितमरण ग्रहण करने विधि है।

इस प्रकार वे सलेखनापूर्वक आमरण अनशन मे काल की अपेक्षा नही करते हुए विच रहे। अन्तिम समय अनशनपूर्वक समाधिभाव मे मरण पा कर ब्रह्मलोक के अधिकारी बने। उन्ह अपना मरण सुधार लिया।

आत्महत्या और समाधिमरण :

बहुत से लोग यह समझा करते हैं कि संथारा या भत्तपच्चक्खाण से मरना, यह आत्मह है। उनको समझना चाहिये कि आत्महत्या और समाधिमरण मे बडा अन्तर है। आत्महत्या निष्कारण शोक या मोहादिवश शरीर नष्ट किया जाता है। उसमे चिंता-शोक की आकुलता या की विकलता होती है, जबकि समाधिमरण मे भय, शोक को भूल कर प्रसन्न मन से सब को मैत्री से देखते हुए निर्मोह भाव मे देह त्याग किया जाता है। आत्महत्या मे देह का दुरुपयोग है, जब समाधिमरण सभी प्रकार के वेगो को शान्त कर स्वस्थ मन से आयुकाल की निकट अन्त मे समा समझ कर किया जाता है।

आत्महत्या किसी कामना को लेकर होती है। उसमे क्रोध, लोभ या शोक, मोह का होते है, जबकि समाधिमरण निष्काम होता है। इसमे सभी प्रकार के विकारो को नष्ट कर के आत्मशुद्धि का ही लक्ष्य होता है।

समाधिमरण में ये पाच दूषण माने गये है। (१) इस लोक मे तन, धन वैभव आदि सुखो की इच्छा करना, (२) इन्द्रादि पद या स्वर्गीय सुख की आशा करना, (३) अधिक जीने की इच्छा करना, (४) कष्ट से घबरा कर जल्द मरने की इच्छा करना, (५) कामभोग-इन्द्रिय-सुखो की वांछा करना।

समाधिमरण मे वहां कोई कामना नही रहती, वहा शरीर को अक्षम समझ कर या शील धर्मादि की रक्षा के लिये अनिवार्य समझ कर पवित्र हेतु से आत्महित के लिये शरीर त्यागा जाता है। अतः यह किसी तरह आत्महत्या नही कहा जा सकता। यह तो समाधिमरण या पंडितमरण है।

मरण-महिमा :

मनुष्य चाहे जैसे भी उच्च कुल, जाति या योनि मे उत्पन्न हुआ हो, यदि जीवन का संध्या-मरण अंधकारपूर्ण है तो उसका सारा परिश्रम और साधन-संकलन व्यर्थ है। उसका जन्म दुःख वृद्धि के लिये है। वास्तव मे जीवन शिक्षाकाल है और मरण परीक्षाकाल। जीवन कार्यकाल है और मरण विश्रांतिकाल। जैन महर्षियो ने कहा है कि—जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा समझो और मरण बिगडा तो जीवन बिगडा समझो, क्योकि मरण की सध्या पार करके ही प्राणी जीवन के नवप्रभात की ओर जाता है। शास्त्र मे भी कहा है—

> **अन्तोमुहुत्तमि गए, अन्तोमुहुत्तंमि सेसए चेव।**
> **लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं ॥ उ० ३४ ॥**

जिस लेश्या मे जीव काल करता है, अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक मे भी उसी लेश्यास्थान मे जाकर उत्पन्न होता है। अतः आत्महितैषियो के लिये मरण सुधार की ओर लक्ष्य देना अत्यावश्यक है। शास्त्र कहते है कि तनधारी प्राणीमात्र को मरना तो है ही, चाहे धैर्यपूर्वक कष्टो को शाति से सह कर मरे या कायर की तरह दीन होकर मरे। तन, धन एव परिवार के लिये अकुलाते हुए मरे या सब से ममता हटा कर निराकुल भाव से मरे। सत्यशील की आराधना करते हुए मरे अथवा शीलरहित अव्रत दशा मे मरे। दोनो दिशा मे मरना तो अवश्य है। तब कायर की तरह बिलखते मरने की अपेक्षा सयमशील होकर धैर्य से हसते हुए मरना ही अच्छा है। कहा भी है—

> **धीरेणं वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्स मरियव्वं।**
> **दुण्हंपि हु मरियव्वे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं ॥ ६४ ॥**
> **सीलेण वि मरियव्वं निस्सीलेण वि अवस्स मरियव्वं।**
> **दुण्हपि हु मरियव्वे, वरं खु सीलतणे मरिउ ॥ ६५ ॥ आतु० प०**

किसी उर्दू कवि ने भी कहा है—

> **हँस के दुनिया में मरा, कोई कोई रोके मरा।**
> **जिन्दगी पाई मगर, उसने जो कुछ हो के मरा॥**

विद्वानो को ऐसे ही मरण से मरना चाहिये। इस प्रकार मरने वाले मर के भी अमरता के भागी होते हैं।

अभ्युद्यत मरणविधि .

विवेकी पुरुष जीवन की अन्तिम घडियो मे पूरी सतर्कता रखते है क्योकि उस समय की जरासी गलती बने-बनाये काम को बिगाड़ देती है। अतः ज्योही उन्हे जीवन-यात्रा मे लम्बे समय तक शरीर टिकने वाला नही है ऐसा प्रतिभासित होता है, त्योही बिना विलम्ब वे मरण को शानदार बनाने के लिये कटिबद्ध हो जाते है। तन, धन, परिजन और सम्मान से मन मोड़कर वे एक मात्र आत्मलक्षी हो जाते है। तब पराये गुणापगुण देखने की अपेक्षा उनको आत्मदर्शी होकर अपना निरीक्षण करना ही अधिक प्रिय होता है और जीवन की छोटी-मोटी कोई भी चूक हो उसको बिना सकोच के गीतार्थ के पास आलोचना द्वारा प्रगट करना और यथायोग्य प्रायश्चित से उसकी शुद्धि करना उनका प्रधान लक्ष्य होता है। जैसे सुयोग्य वैद्य भी अपनी चिकित्सा दूसरे से कराता है, वैसे ज्ञानसपन्न साधक भी अन्य गीतार्थ के सम्मुख अपनी आलोचना करते और आत्म-शुद्धि करते है।

संलेखना :

मरण की तैयारी के लिये शास्त्रो मे पहले सलेखना का विधान है। वह जघन्य ६ मास और उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३६वे अध्याय मे कहा है कि उत्कृष्ट संलेखना १२ वर्ष की, मध्यम १ वर्ष और जघन्य ६ मास की होती है।

उत्कृष्ट सलेखना मे पहले ४ वर्ष दूध आदि विगई का त्याग किया जाता है और दूसरे चार वर्ष मे उपवास, बेला आदि विचित्र तप किये जाते है। फिर दो वर्ष एकान्तर तप और पारणक मे आयंबिल किया जाता है। ग्यारहवे वर्ष मे ६ महीने का सामान्य तप किया जाता है और ६ महीने विकृष्ट तप किया जाता है। इसमे आयबिल भी परिमित किये जाते है। बारहवे वर्ष मे उपवास आदि के पारणक मे कोटि सहित आयंबिल आदि किये जाते है। बीच बीच मे मास और पक्ष के अनशन भी करते है। [अ० ३६/२५२-५६]

'व्यवहार सूत्र' के दशम उद्देश्य के भाष्य मे भी इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। वहा प्रथम के चार वर्षों मे विचित्र तप का इच्छानुसार कामगुण पारणा और दूसरे चार वर्षो मे विगइ, त्यागपूर्वक पारणा का उल्लेख है। [भा० ४१२ से ४२१]

मध्यम और जघन्य सलेखना भी ऐसे मास और पक्ष के विभाग से की जाती है। इस प्रकार सलेखना के अनन्तर गुरु या गीतार्थ परीक्षित ही सामान्य रूप से इस मरण को स्वीकार करते है।

सलेखना द्वारा केवल शरीर को ही क्षीण नही किया जाता, बल्कि अन्तर के विकारो को भी क्षीण किया जाता है। जब तक आन्तरिक विकार क्षीण नही होते साधक उत्तम मरण को प्राप्त नही कर सकता। इसके लिये पहले परीक्षा की जाती थी। मनोनुकूल उत्तम भोजन को पाकर भी जब मरणार्थी उसको ग्रहण नही करता तब तक उसकी अगृध्नुता समझ ली जाती थी। इस पर एक छोटा उदाहरण दिया गया है—

किसी समय एक आचार्य के पास भक्त परीक्षार्थी शिष्य आया और उसने कहा, "मै भक्त प्रत्याख्यान करना चाहता हू।" तब आचार्य ने पूछा—'तुमने सलेखना की है या नही ?' शिष्य को आचार्य की बात से विचार हुआ। उसने सोचा—मेरा शरीर हड्डी का पजर सा हो चुका है, लोहू-

मांस का कही नाम भी नही, फिर गुरुजी पूछते है कि संलेखना की या नही ? रोष में आकर उसने अपनी अंगुली तोड़ डाली और बोला—'महाराज ! देखो रक्त की एक बूंद भी नही है, क्या अब भी संलेखना बाकी है ?" गुरुजी ने कहा—"वत्स ! यह तो द्रव्य संलेखना का रूप है जो तेरे शरीर से प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु अभी भाव संलेखना करनी है, कषाय के विकारों को सुखाना है। इसीलिये मैने पूछा था कि संलेखना की या नही। जाओ, अभी भाव संलेखना करो। फिर भक्त पच्चक्खाण संथारा प्राप्त होगा। [व्य० भा० ४५०]

इस प्रकार द्रव्य-भाव-संलेखनापूर्वक किया गया मरण ही पंडितमरण है। मरणान्तिक कष्ट, आघात-प्रत्याघात या आतंक से निकट भविष्य में ही देह छूटने वाला हो, वैसी स्थिति मे द्रव्य संलेखना की आवश्यकता नही होती। उसी समय आलोचनापूर्वक आत्मशुद्धि की जाती है और विचार एव आचार की पूर्ण शुद्धि के साथ सर्वथा पापो के त्याग कर लिये जाते है।

न संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२९

शीलवान और बहुश्रुत भिक्षु मृत्यु के क्षणों मे भी संत्रस्त नही होते।

कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

—उपासकदशाग १।७३

आत्मार्थी साधक कष्टों से जूझता हुआ मृत्यु से अनपेक्ष बन कर रहे।

मरणं हेच्च वयंति पंडिया।

—सूत्रकृताग १।२।३।१

पंडित पुरुप ही मृत्यु की दुर्दम सीमा को लाघकर अविनाशी पद को प्राप्त होते है।

माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ।

—आचारंग १।३।१

जो व्यक्ति मृत्यु से सदा सतर्क रहता है, वही उससे मुक्ति पा सकता है।

१३ | नव तत्त्व

आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी

जैन दर्शन में तत्त्व का स्वरूप :

जैनदर्शन में लोक व्यवस्था का मूल आधार 'तत्त्व' है। कहा है—

भावस्स णत्थि णासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जएस्सु भावा उप्पाय वयं पकुव्वंति ॥

—पंचास्तिकाय—१५०

किसी भाव यानी सत् का कभी नाश नही होता है और असत् की उत्पत्ति नही होती है। इसीलिए आकाश-कुसुम की तरह जो सर्वथा असत् है, वह तत्त्व नही हो सकता है। इसीलिए जैनदर्शन मे लौकिक व्यवहार मे प्रचलित तत्त्व शब्द के अर्थों को स्वीकार करते हुए भी तत्त्व की विशुद्ध व्याख्या की है—

'सद् दव्वं वा।' —भगवती ८।९

यानी द्रव्य (तत्त्व) का लक्षण सत् है। यह सत् स्वतः सिद्ध है और नवीन अवस्थाओ की उत्पत्ति एवं पुरानी अवस्थाओ का विनाश होते रहने पर भी अपने स्वभाव का कभी परित्याग नही करता है। वाचक मुख्य उमास्वाति ने सत् की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा है—

'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।' —तत्त्वार्थसूत्र ५।३०

यानी जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनो से युक्त अर्थात् तदात्मक है, उसे सत् कहते हैं। भगवान महावीर की वाणी मे सत् के स्वरूप को इस प्रकार कहेंगे—

'उपन्ने इ वा विगमे इ वा धुवे इ वा।' —स्थानांग १०

उत्पन्न होने वाले, नष्ट होने वाले और ध्रुव रहने वाले को सत् कहते है। इसीलिए सत् की न तो आदि है और न अंत है। उसका न तो कभी नाश होता है और न कभी नया उत्पन्न होता है। वह सदैव—भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालो मे विद्यमान रहता है।

तत्त्वों की संख्या :

तत्त्व का लक्ष्य ज्ञात होने पर यह प्रश्न होता है कि जैन दर्शन मे 'तत्त्व' किसे कहा है और उनकी सख्या कितनी है ? इस प्रश्न का उत्तर आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि से विभिन्न ग्रंथो मे विभिन्न शैली से दिया गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा ही मुख्य तत्त्व है और आत्मा के कर्म सहित अशुद्ध आत्मा और कर्मरहित (शुद्ध आत्मा) अथवा ससारी और मुक्त यह दो प्रकार होने से दो भेद हो जाते है। आत्मा के इन दो प्रकारो के अतिरिक्त अन्य शेष जड पदार्थ है। अध्यात्मयोगी आचार्य कुन्दकुन्द ने जड पदार्थों को बहिस्तत्त्व तथा आत्मा के दोनो प्रकारो को क्रमशः अन्तस्तत्त्व और परमतत्त्व कहा है।

लेकिन जन-साधारण को जानकारी देने के लिए तत्त्व के भेद और उनके नामो के लिए निम्नलिखित तीन शैलिया दृष्टिगत होती है—

१. पहली शैली के अनुसार तत्त्व दो है—
   (i) जीव और (ii) अजीव।

२. दूसरी शैली के अनुसार तत्त्वो की संख्या सात है—
   (i) जीव, (ii) अजीव, (iii) आस्रव, (iv) बध (v) सवर, (vi) निर्जरा और (vii) मोक्ष।

३. तीसरी शैली के अनुसार तत्त्वो की सख्या नौ है।
   (i) जीव, (ii) अजीव, (iii) पुण्य, (iv) पाप, (v) आस्रव, (vi) बन्ध, (vii) सवर, (viii) निर्जरा, (ix) मोक्ष।

उक्त दो, सात और नौ सख्या कथन की शैली मे कोई वास्तविक भेद नही है। इनमे मुख्य रूप से जीव, अजीव यह दो तत्त्व है तथा शेष आस्रव आदि जीव व अजीव की पर्याय होने से उन दोनो मे अन्य तत्त्वो का समावेश हो जाता है।

नव तत्त्वों का वर्गीकरण व लक्षण :

उक्त जीवादि सात अथवा नव तत्त्वो मे मुख्य तत्त्व जीव है अथवा जीव और अजीव। यह दो तत्त्व तो धर्मी है यानी आस्रव आदि अन्य तत्त्वो के आधार है और आस्रव आदि शेष तत्त्व उनके धर्म है।

१. जीव तत्त्व :

नौ तत्त्वो मे सबसे पहला तत्त्व जीव है। जीव की परिभाषा करते हुए कहा है—

'जीवो उवओग लक्खणो।' —उत्तराध्ययन २८।१०

जीव का लक्षण उपयोग है अर्थात् जिसमे चेतना—उपयोग हो उसे जीव कहते है। आगमो मे उपयोग के दो भेद किये है। साकारोपयोग (ज्ञान) और निराकारोपयोग (दर्शन)। इसलिए

जिसमे ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग पाये जाते है, वह जीव है। जीव को चेतन इसलिए कहते है कि उसमे सुख-दुःख, अनुकूलता, प्रतिकूलता आदि की अनुभूति करने की क्षमता है। 'स्व', 'पर' का ज्ञान और हिताहित का विवेक जीव के सिवाय अन्य पदार्थो मे नही पाया जाता है। जीव द्रव्य की अपेक्षा अनन्त है और प्रत्येक जीव असंख्यप्रदेशी है।

जीव शब्द की शाब्दिक व्याख्या करते हुए आचार्यों ने जीव का लक्षण इस प्रकार कहा है—

'पाणेहि चदुहि जीवदि जीविस्सदि जो हि जीवदो पुव्वं।'

—प्रवचनसार गा० १४७

जो चार प्राणो (इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास) से जीता है, जीयेगा और पहले भी जीता था उसे जीव कहते है।[1] सत्व, भूत, प्राणी, आत्मा आदि भी जीव के एकार्थवाची—पर्यायवाची दूसरे नाम हैं। लेकिन इन सबका साराश यही है कि जिसमे ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग है, वह जीव है।

जीव की पाच जातिया हैं। १. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, और ५. पचेन्द्रिय। जाति का अर्थ है सामान्य अर्थात् जिस एक शब्द के बोलने से उसके समान गुण-धर्म वाले सभी पदार्थो का ग्रहण हो जाये। जैसे—गाय, भैस आदि बोलने से समस्त गायो, भैसो का ग्रहण हो जाता है। वैसे ही एकेन्द्रिय कहने मे सभी एक इन्द्रिय वाले जीवो का ग्रहण व ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदि पचेन्द्रिय जीवो के बारे मे भी समझ लेना चाहिए।

एकेन्द्रिय जीवो के सिर्फ एक स्पर्शनेन्द्रिय होती है। एकेन्द्रिय जीवो के पांच प्रकार है—(i) पृथ्वीकाय, (ii) अप्काय (पानी), (iii) तेजस्काय (अग्नि), (iv) वायुकाय और (v) वनस्पतिकाय। पृथ्वी ही जिनका काय-शरीर हो उन्हे पृथ्वीकाय कहते है। इसी प्रकार से अप्काय आदि भी समझ लेना चाहिये।

पृथ्वीकाय आदि पांचो प्रकार के एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते है—सूक्ष्म और बादर। जो हमारी आखो से दिखाई नही दे सकते वे सूक्ष्म हैं, और जो हमे दृष्टिगोचर होते है वे बादर कहलाते है। हम पृथ्वी, जल आदि का जो रूप देखते हैं वह बादर है। बादर एकेन्द्रिय जीव तो ससार के किसी-किसी भाग मे ही निवास करते हैं लेकिन सूक्ष्म जीवो से तो यह समस्त लोक काजल की डिबिया की तरह खचाखच भरा हुआ है।

द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन (शरीर) और रसन (जीभ) ये दो इन्द्रिया होती है। जैसे—लट, शख, जोक, घुन आदि द्वीन्द्रिय जीव कहलाते है।

---

१ ५ इन्द्रिय—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।
३ बल—मनोबल, वचनबल और कायबल, तथा आयु व श्वासोच्छ्वास। इस प्रकार से भेद करने पर प्राण के दस भेद होते है।

त्रीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन और घ्राण यह तीन इन्द्रियां होती है। चीटी, जू, कानखजूरा आदि जीव त्रीन्द्रिय है।

चतुरिन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु (आख) यह चार इन्द्रिया होती है। मक्खी, मच्छर, टिड्डी, भौरा, बिच्छू आदि जीव चतुरिन्द्रिय होते है।

पचेन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र (कान) ये पाचो इन्द्रिया होती है। जैसे—गाय, भैस, घोड़ा, हाथी, कबूतर, कौवे आदि।

नारक, मनुष्य और देवो के भी पाच इन्द्रियाँ होती है। अतः उनका भी पचेन्द्रिय जाति मे ग्रहण हो जाता है।

इन एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीवो मे से द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव अपने हित के लिए प्रवृत्ति और अहित की निवृत्ति के लिए हलन-चलन कर सकते है, अतः उन्हे त्रस और एकेन्द्रिय जीव अपने हिताहित के लिए प्रवृत्ति-निवृत्ति के निमित्त हलन-चलन करने मे समर्थ नही है अतः उन्हे स्थावर कहते है।

एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के तिर्यचो के मन नही होने से असज्ञी (अमनस्क) और पचेन्द्रिय तिर्यचो मे मन सहित वाले सज्ञी कहलाते है। गर्भ से उत्पन्न होने वाले तिर्यचो के मन होता है और शेष बिना मन वाले होते है।

एकेन्द्रिय जीवो मे सजीवता बतलाने के लिए भगवान् महावीर ने मानव शरीर के साथ तुलना करके वनस्पति को दृष्टान्त रूप मे रखते हुए स्पष्ट बताया है कि "मनुष्य की तरह वनस्पति—वृक्ष आदि बाल, युवा, वृद्धावस्थाओ का उपभोग करती है। मनुष्य की तरह वृक्षो मे भी चेतना शक्ति है तथा सुख-दुःख, आघात आदि का अनुभव करते है। मनुष्य के शरीर मे घाव आदि हो जाने पर वे ठीक हो जाते है, वैसे ही वृक्षादि भी छिन्न-भिन्न होने पर पुनः ठीक हो जाते है। वृक्षो को भी मनुष्य की तरह भूख-प्यास का अनुभव होता है। खाद पानी आदि मिलने पर मनुष्य शरीर की तरह वृक्ष भी बढते है और न मिलने पर सूख जाते है। आयु क्षीण हो जाने पर वृक्ष भी मनुष्य की तरह मर जाते है। वनस्पति के लिए जो कथन किया गया है, वही अन्य पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवो के बारे मे भी समझना चाहिये।"

—आचाराग १।१।५।४४

२. अजीव तत्त्व :

यह जीव के स्वरूप से विपरीत लक्षण वाला है। जीव चेतना वाला है, सुख-दुःख की अनुभूति करता है, लेकिन अजीव मे चेतना नही है, उसमे सुख-दुःख की अनुभूति नही होती है। अर्थात् जिसमे चेतना न हो उसे अजीव कहते है। अजीव को जड, अचेतन भी कहते है। ससार मे जितने भी ईट, चूना, चांदी, सोना आदि भौतिक तथा धर्मास्तिकाय आदि अभौतिक पदार्थ है, वे सब अजीव है।

अजीव के भेद :

अजीव के पाच भेद हैं—(i) धर्म, (ii) अधर्म, (iii) आकाश, (iv) काल और (v) पुद्गल।

अजीव के उक्त पाच भेदो मे से धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त और पुद्गल मूर्त है। आगमो मे अमूर्त के लिए 'अरूपी' और मूर्त के लिए 'रूपी' शब्द का प्रयोग किया गया है। अरूपी उसे कहते हैं जिसमे रूप, रस, गंध और स्पर्श न हो, आंखो से दिखाई न दे और जिसमे रूप, रस, गंध स्पर्श हो तथा जिसके विभिन्न प्रकार के आकार-प्रकार बन सके उसे रूपी कहते हैं।

धर्म आदि अजीव के पाच भेदो के लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं—

धर्म—यह गति सहायक तत्त्व है। जीव और पुद्गल मे गतिशीलता की शक्ति है। जिस प्रकार से मछली को गमन करने मे पानी सहकारी निमित्त है, उसी प्रकार से जीव और पुद्गल द्रव्यो के हलन-चलन, गमन मे सहायक कारण धर्म द्रव्य है।

अधर्म—यह स्थिति सहायक तत्त्व है। इसका स्वभाव धर्म द्रव्य से विपरीत है। अर्थात् जिस प्रकार से धर्म, द्रव्य, जीव और पुद्गल को गतिक्रिया मे सहायक बनता है, उसी प्रकार अधर्म ठहरने की इच्छा रखने वाले जीव और पुद्गलो को पथिक को वृक्ष की छाया की तरह ठहरने मे सहायता देता है।

यह धर्म और अधर्म जीव और पुद्गलो को न तो बलात् चलाते हैं और न चलने से रोकते हैं। किन्तु सहकारी निमित्त के रूप मे इनके चलने मे या रुकने मे सहायक बन जाते हैं।

आकाश—जिसमे पदार्थो को अवकाश-आश्रय आधार देने का गुण हो, उसे आकाश कहते हैं। विश्व के समस्त पदार्थ आकाश के आधार से ही टिके हुए हैं। आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। आकाश के जितने क्षेत्र मे जीवादि द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश और शेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

काल—जो द्रव्यो की नवीन, पुरातन आदि अवस्थाओ के बदलने मे निमित्त रूप से सहायता करता है वह 'काल' है। घडी, घंटा, मिनट, समय आदि सभी काल की अवस्थायें हैं। बाल, युवा, वृद्ध, नूतन, पुरातन, ज्येष्ठत्व, कनिष्ठत्व आदि लोक व्यवहार काल की सहायता से होता है।

पुद्गल—जिसमे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हो उसे पुद्गल कहते हैं। वैज्ञानिक पुद्गल को मैटर (matter), न्याय वैशेषिक दर्शन भौतिक तत्त्व, सांख्य दर्शन प्रकृति शब्द से कहते हैं। बौद्धदर्शन मे विज्ञानसन्तति के लिए पुद्गल शब्द का प्रयोग होता है।

'पुद्गल' यह 'पुद्' और 'गल' इन दो शब्दो से बना है। इसमे पुद् का अर्थ है पूरण और गल का अर्थ है गलन। अर्थात् "पूरणाद् गलनाद् वा पुद्गलः" जिसमे पूरण और गलन होता है उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गल इस पूरण और गलन स्वभाव वाला होने के कारण पिंड रूप हो सकता है

और खड-खंड होकर इतना सूक्ष्म भी हो जाता है कि जिसका कोई दूसरा टुकड़ा नही होता। पिंड रूप पुद्गल को स्कन्ध और सूक्ष्मतम अंश को परमाणु कहते है।

जैनदर्शन के अनुसार जीव आदि काल पर्यन्त छह द्रव्यो के समूह को लोक कहते है। यह छह द्रव्य नित्य है, अवस्थित है और शाश्वत है। इनका कभी विनाश नही होता है और अपने-अपने गुण, पर्यायो द्वारा उत्पाद, विनाश, रूप से परिणमन करते रहते है। इस लोक को न तो किसी ने बनाया है और न कोई इसका विनाश ही कर सकता है।

३-४. पुण्य और पाप तत्त्व :

जो आत्मा को शुभ की ओर ले जाता है उसे पुण्य कहते है और आत्मा का शुभ से बचाता है अथवा जिससे अनिष्ट पदार्थो की प्राप्ति होती है वह पाप है। यह पुण्य और पाप का शाब्दिक अर्थ है। यह अर्थ जीव के भावो, परिणामो और विचारो की अपेक्षा से किया गया है। लेकिन यहां पुण्य और पाप को शुभ और अशुभ कर्म परमाणु रूप से अजीव मानकर कथन किया जा रहा है।

इस पर प्रश्न होता है पुण्य और पाप को अजीव रूप मानने का कारण क्या है ? जबकि अजीव कर्म परमाणु जीव के परिणामो द्वारा अपना शुभ अथवा अशुभ रूप मे फल देते है। और जीव के शुभ अथवा अशुभ परिणामो के द्वारा ही उनका बध होता है। इसका समाधान यह है कि जीव मे होने वाले शुभ या अशुभ परिणामो को योग-आस्रव के अन्तर्गत रखा गया है कि जीव मन, वचन, काया की अच्छी बुरी प्रवृत्ति द्वारा शुभ-अशुभ कर्म पुद्गलो को ग्रहण करता रहता है। यहां तो पुण्य और पाप को अलग तत्त्व मानने से इतना ही अपेक्षित है कि मन, वचन, काय की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा जो कर्म पुद्गल जीव के साथ सम्बद्ध होते है और शुभ या अशुभ रूप मे जिनका विपाकोदय होता है। कर्मो की इसी विपाकोदय की दृष्टि को ध्यान में रखकर वाचक-मुख्य उमास्वाति ने (तत्त्वार्थसूत्र ८।२६ मे) सातावेदनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, शुभ-आयु, शुभनाम और शुभगोत्र—इन कर्म प्रकृतियो को पुण्य रूप तथा इनके अतिरिक्त शेष कर्म प्रकृतियो को पाप रूप कहा है।

आत्मा के परिणाम अगणित है। इसलिए पुण्य-पाप के कारण भी अगणित है। फिर भी उनका सक्षेप मे वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

'शुभः पुण्यस्य। अशुभः पापस्य।' —तत्त्वार्थसूत्र ६।३४

शुभ योग (परिणामो) से पुण्य का बंध होता है और अशुभ से पाप का। यानी योगप्रवृत्ति शुभ रूप है तो पुण्य का और अशुभ रूप है तो पाप का कारण बनती है और उनसे कर्मपरमाणुओ मे शुभ या अशुभ रूप से फल देने की शक्ति आयेगी और वे उस रूप मे अपना फल देगे। इसलिये आत्म-वृत्तियो की विविधता के कारण यद्यपि उनमे अनेकता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से उनमे से कुछ एक कारणो का यहा सकेत करते है—

पुण्य व पाप तत्त्व के भेद :

उदय मे आये हुए पुद्गलो को जहा पुण्य कहा गया वही उनके कारणो को भी पुण्य कहा

है । पुण्य के कारण अनेक हैं फिर भी संक्षेप में उनको अनेक प्रकार से कहा जा सकता है—

अर्हदादौ परा भक्तिः कारुण्यं सर्वजन्तुषु ।
पावने चरणे रागः पुण्यबंधनिबन्धनम् ॥

—योगशास्त्र ४।३७

अर्हंत आदि पंच परमेष्ठियो मे भक्ति, समस्त जीवो पर करुणा और पवित्र चारित्र मे प्रीति रखने से पुण्य का बन्ध होता है । दीन-दुःखी पर करुणा व उनकी सेवा करना, गुणीजनो पर प्रमोद भाव रखना, दान-देना, परोपकार करना, मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति करना आदि अनेक कारण माने जा सकते है । आगमो मे पुण्योपार्जन के नौ कारण बतलाये है । अतः शास्त्रीय दृष्टि से पुण्य के नौ भेद इस प्रकार है[1]—

१. अन्न पुण्य —भोजन देना ।
२. पान पुण्य —पानी पिलाना ।
३. लयन पुण्य —योग्यतानुसार आवास स्थान की व्यवस्था करना ।
४. शयन पुण्य —शैया, पाट आदि विश्राम के साधनो को देना ।
५. वस्त्र पुण्य —तन ढाकने के लिए वस्त्र आदि देना ।
६. मन पुण्य —दान, शील आदि भावनाओ मे मन को प्रवृत्त रखना ।
७. वचन पुण्य —मुख से हित-मित-प्रिय वचन बोलना ।
८. काय पुण्य —शरीर द्वारा जीवो की सेवा आदि कार्य करना ।
९. नमस्कार पुण्य —गुणीजनो, गुरुजनो आदि का विनय, नमस्कार आदि करना ।

इन सब भेदो मे अन्तर्हित भावनाओ और कार्यों का साराश यह है कि मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को शुभ कार्यों को करने मे लीन रखकर प्राणिमात्र का उपकार करना ।

उदय मे आए हुए अशुभकर्म पुद्गलो और अशुभकर्मों को पाप कहते हैं । पुण्य के कारणो की तरह पाप के कारण भी आत्म-परिणतियो की असख्यता से असंख्य है । इन कारणो को संक्षेप और विस्तार की दृष्टि से अनेक प्रकार से कह सकते है, फिर भी पाप-उपार्जन के निम्नलिखित मुख्य अठारह कारण माने गये हैं—

१. प्राणातिपात —प्रमाद के योग से प्राणो का घात करना ।
२. मृषावाद —झूठ बोलना ।
३. अदत्तादान —चोरी करना ।
४. अब्रह्मचर्य —कुशील का सेवन करना ।
५. परिग्रह —पर-पदार्थों मे मूर्च्छाभाव (ममत्व) रखना ।
६. क्रोध —गुस्सा करना, कुपित हो जाना ।

---

१. पुण्य नौ प्रकार से बाधा जाता है । ४२ प्रकार से भोगा जाता है । पाप १८ प्रकार से बांधा जाता है । ८२ प्रकार से भोगा जाता है ।

७. मान —अभिमान (घमण्ड) करना ।
८. माया —कपट भाव रखना ।
९. लोभ —असंतोष, पदार्थों के संरक्षण की वृत्ति ।
१०. राग —माया और लोभ की वृत्ति के साथ आसक्ति रूप परिणाम ।
११. द्वेष —क्रोध और मान के वशवर्ती जीव के परिणाम ।
१२. कलह —लड़ाई-झगड़ा करना ।
१३. अभ्याख्यान —झूठा दोषारोपण करना ।
१४. पैशुन्य —परोक्ष मे किसी के दोषों को प्रगट करना, चुगली करना ।
१५. परनिन्दा —दूसरों की बुराई करना, निन्दा करना ।
१६. रति-अरति —मनोज्ञ वस्तु में राग और अमनोज्ञ वस्तु मे द्वेष-भाव अथवा पाप मे रुचि रखना और धर्मवृत्ति में उदासीन रहना ।
१७. माया-मृषावाद —कपट पूर्वक झूठ बोलना ।
१८. मिथ्यादर्शन —जीवादि तत्त्वो और देव, गुरु, धर्म के प्रति श्रद्धा न रखना अथवा विपरीत श्रद्धा रखना ।

५. आस्रव तत्त्व :

पुण्य-पाप, रूप कर्मों के आने के द्वार को 'आस्रव' कहते हैं । आस्रव द्वारा आत्मा कर्मों को ग्रहण करती रहती है । यानी आत्मा के जिन परिणामो से पुद्गलद्रव्य कर्म रूप बनकर आत्मा मे आता है, उसे आस्रव कहते है । संसारी जीव मे प्रतिसमय मन, वचन, काय की परिस्पन्दनात्मक क्रिया होती रहती है जिससे वह सतत् कर्मपुद्गलो का आस्रवण-ग्रहण करता है । जैसे समुद्र मे नदियों द्वारा पानी का आना चालू रहता है, वैसे ही आत्मा हिंसा, झूठ आदि प्रवृत्ति द्वारा कर्म रूपी जल को ग्रहण करती रहती है । इसीलिए कर्म के आने के मार्ग को आस्रव कहा गया है ।

आस्रव तत्त्व के भेद :

आस्रव तत्त्व के दो भेद है—(i) द्रव्यास्रव, और (ii) भावास्रव । अपने-अपने निमित्त रूप योग को प्राप्त करके आत्मप्रदेशों मे स्थित पुद्गल कर्म रूप से परिणत हो जाते हैं, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं और आत्मा के जिन परिणामो से पुद्गलद्रव्य कर्म रूप बनकर आता है उसे भावास्रव कहते है ।

आत्मा मे कर्मों के आगमन के मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण हैं । इसलिए इन कारणो की अपेक्षा से आस्रव के पांच भेद हैं—

(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग ।

(१) मिथ्यात्व—जीवादि तत्त्वो के विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं । इस विपरीत श्रद्धान के कारण जड़ पदार्थों में चैतन्य बुद्धि, अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि आदि विपरीत प्ररूपणा की जाती है ।

(२) **अविरति**—अर्थात् इच्छाओं एवं पापाचरणों से विरत न होना। पांच इन्द्रियों और मन को वश में न रखना और पृथ्वी आदि छहकाय के जीवो की हिंसा का त्याग प्रत्याख्यान न करना।

(३) **प्रमाद**—कुशल कार्यो मे उत्साह न रखना। अर्थात् आत्म-विकास की प्रवृत्ति मे आलस्य एव शिथिलता करना।

(४) **कषाय**—आत्मा के स्वाभाविक रूप का घात करने वाली क्रोध, मान, माया, लोभ आदि प्रवृत्तियां।

(५) **योग**—मानसिक, वाचिक, कायिक शुभा-शुभ प्रवृत्ति।

६. वन्ध तत्त्व :

कापायिक परिणामो से कर्म के योग्य पुद्गलो का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना वन्ध कहलाता है। जीव अपने कापायिक परिणामो से अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गलो का वन्ध करता रहता है। आत्मा और कर्मो का यह वन्ध दूध और पानी या अग्नि और लौह पिण्ड जैसा है। जैसे दूध और पानी, अग्नि और लौह पिण्ड अलग-अलग है फिर भी एक दूसरे के संयोग से एकमेक दिखते है।

वन्ध तत्त्व के भेद :

वन्ध के निम्नलिखित चार भेद है—

(१) **प्रकृतिवन्ध**—जीव द्वारा ग्रहण किये गये कर्म पुद्गलो मे भिन्न-भिन्न स्वभावो का होना। जैसे अमुक कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत करेगा, अमुक दर्शन गुण को इत्यादि।

(२) **स्थितिवन्ध**—जीव द्वारा वद्ध कर्म पुद्गलो मे अमुक समय तक जीव के साथ जुडे रहने की कालमर्यादा को स्थितिवन्ध कहते है। कर्मो की यह स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट और इन दोनो के मध्य के समय भेद से अनेक प्रकार की होती है। कालमर्यादा की न्यूनाधिकता होने मे जीव के परिणाम कारण हैं।

(३) **अनुभागवन्ध**—अनुभाग नाम फल देने की शक्ति का है। जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलो मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना अनुभाग वन्ध कहलाता है। इसे अनुभाववन्ध, रसवन्ध भी कहते हैं।

(४) **प्रदेशवन्ध**—ग्रहण किए जाने पर भिन्न-भिन्न स्वभाव मे परिणत होने वाली कर्म पुद्गल शक्ति का, स्वभावानुसार अमुक-अमुक परिमाण मे वँट जाना प्रदेशवन्ध है।

वन्ध के उक्त प्रकृतिवन्ध आदि चार भेदो मे से प्रकृतिवन्ध और प्रदेश वन्ध योग के निमित्त से तथा स्थितिवन्ध और अनुभागवन्ध कपाय के निमित्त से होता है। क्योकि योग परिस्पन्दन के तरतम भाव पर ही वद्ध कर्म पुद्गलो मे उस रूप मे उनका स्वभाव और प्रदेश मर्यादा हो सकती है यदि भोगो की प्रवृत्ति मद है तो वद्ध कर्म पुद्गलो मे वैसा मद स्वभाव और प्रदेश मर्यादा वनेगी और तीव्र होने पर स्वभाव व प्रदेशो की सख्या मे अधिकता होगी। कपाय एक प्रकार की चिकनाई है। चिकनाई मे अधिकता होने पर जैसे धूलि आदि अधिक समय तक चिपकी रहती है और उसे हटाने मे

समय भी लगता है । इसीलिए अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध की न्यूनाधिकता कषाय पर आधारित है ।

बन्ध के शुभ या अशुभ ऐसे दो प्रकार भी हो सकते है । शुभ बन्ध को पुण्य और अशुभ बन्ध को पाप कहते है । जब तक कर्म फल नही देते है तब तक बन्ध कहलाते है और फल देने पर पुण्य या पाप कहे जाते है । यानी कर्मो के अनुदयकाल को बन्ध और उदयकाल-फल देने के समय को पुण्य-पाप कहते है ।

७. संवर तत्त्व :

आस्रव-निरोध को संवर कहते है, अर्थात् जिन निमित्तो से कर्म बधते है, उनका निरोध-प्रतिबन्ध करना । कर्म आने के द्वार को रोकना संवर है । आत्मा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग प्रवृत्ति द्वारा कर्मो का आस्रवण करती है । इन कारणो द्वारा जो कर्मो का आगमन हो रहा है, कर्मो के आने के द्वार बद कर देना सवर का अर्थ है । नवीन कर्मो के आगमन को रोकने के कारण है—गुप्ति, समिति, धर्मसाधना, अनुप्रेक्षा (लोक स्वरूप का चिन्तन) परिषह सहन करना, सम्यक्चारित्र, तप आदि ।

सवर के स्वरूप को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—'कल्पना कीजिये कि कोई व्यक्ति तालाब को खाली करने के लिए पानी उलीच कर, अथवा पम्पिग सेट आदि द्वारा बाहर फेक रहा है । लेकिन परिश्रम करने पर यदि वह तालाब मे पानी आने के द्वारो-नालो को बन्द नही करता है तो उसका किया कराया परिश्रम व्यर्थ हो जाता है । जितना वह पानी निकालता है उतना ही पानी नालो द्वारा तालाब मे भरता जा रहा है । इस स्थिति मे तालाब का खाली होना सम्भव नही ।

सवर द्वारा कर्मबध की निमित्तभूत प्रवृत्तियो का निरोध एवं उन क्रियाओ का निरोध होने से आने वाले कर्मपुद्गलो का विच्छेद होता है । इसलिए आत्म-प्रवृत्तियो के निरोध को भावसवर एव आगत कर्मो के रुकने को द्रव्य संवर कहा जाता है ।

संवर तत्त्व के भेद :

कर्मास्रव रोकने का मुख्य हेतु तो आत्मा का स्वभाव है, लेकिन सवर आस्रव का विरोधी तत्त्व है । अतः सवर के निम्नलिखित ५ भेद है—

(१) **सम्यक्त्व**— जीवादि तत्त्वो का यथार्थ श्रद्धान करना ।

(२) **व्रत**— पाप कर्मो से विरत होना ।

(३) **अप्रमाद**— धर्म के प्रति उत्साह का होना ।

(४) **अकषाय**— क्रोधादि कषायो का क्षय या उपशम होजाना ।

(५) **योगनिग्रह**—मन, वचन, काय, प्रवृत्ति का निरोध करना ।

ये पॉचो आस्रव के विरोधी भेद है । इनके अतिरिक्त हिंसादि पापो से निवृत्ति लेना । पॉच इन्द्रियो की अपने-अपने विषयो की प्रवृत्ति को रोकना । मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना

अथवा, सम्यक् प्रवृत्ति करना आदि भी सवर के भेद हैं। लेकिन उन सबका ऊपर बताये गये भेदो मे समावेश हो जाने से मुख्यतया संवर के सम्यक्त्व आदि पांच भेद तथा विस्तार से २० और ५७ भेद माने गए हैं।

८. निर्जरा तत्त्व :

पूर्व बद्ध कर्मों का आंशिक या क्रमिक क्षय होना निर्जरा है। संवर के द्वारा आगत कर्मों को रोका जाता है और निर्जरा से पूर्वबद्ध कर्मों को धीरे-धीरे क्षीण किया जाता है। जैसे—तालाब मे पानी के आने के द्वारो को रोक देने पर सूर्य के ताप आदि से धीरे-धीरे तालाब सूख जाता है, वैसे ही संवर द्वारा नवीन कर्मो का निरोध हो जाने पर निर्जरा द्वारा बद्धकर्मों का शनै-शनै क्षय होता है।

ससारी जीव के साथ कर्मबन्ध का क्रम और अपना फल देकर क्षय होने का क्रम भी निरन्तर चालू रहता है। लेकिन यहाँ निर्जरा का विशेष अर्थ यह है कि संवर द्वारा कर्मो के आगमन को रुकने के बाद पूर्व-बद्ध कर्मों का शनै -शनैः क्षय होना। इसलिए कर्मास्रव के साथ कर्मक्षय होने को सविपाक निर्जरा और बिना फलोदय के कर्मक्षय होने को अविपाक निर्जरा कहते हैं।

निर्जरा मुक्ति प्राप्ति के लिए सीढियो के समान हैं। सीढियो द्वारा जैसे मजिल पर पहुँचा जाता है। वैसे ही निर्जरा भी कर्मक्षय के लिए सहायक बनती है। कर्मक्षय के लिए अग्रसर साधक का एक मात्र उद्देश्य अनादिकाल से चले आ रहे कर्म-बन्धन को नष्ट करने का होता है और सांसारिक कामनाओ मे न उलझकर कर्मक्षय के लिए प्रयत्नशील रहना है।

निर्जरा तत्त्व के भेद :

जैसे शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति के लिए कनकोपल को तपाया जाता है, वैसे ही आत्मा से सम्बद्ध कर्मावरण को हटाने के लिए आत्मा व शरीर को तपाया जाता है। तप शुद्धि का मुख्य साधन है। इसीलिए तप को निर्जरा कहते हैं। तप के बारह भेद होने से निर्जरा के भी बारह भेद होते हैं।[1]

९. मोक्ष का लक्षण :

मोक्ष अर्थात् कर्मबन्धनो से सर्वथा मुक्त होकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति कर लेना। समस्त कर्मों का क्षय करके आत्म-स्वरूप की प्राप्ति कर लेना ही जीव का लक्ष्य है और इसी की प्राप्ति मे उसके पुरुषार्थ की सफलता है। कर्म ही ससार है और कर्ममुक्ति हुई कि अनन्तकाल के लिए जन्म-मरण का चक्र रुक गया। सद्-चित्-आनन्दमय स्वरूप की जागृति हो गई। वेदान्त के 'ब्रह्मोऽस्मि' को आत्मा की इसी अवस्था का द्योतक मान सकते हैं।

आत्म-विकास की पूर्णता मोक्ष है, अत. मोक्ष मे कोई भेद नही है। मुक्त आत्माएँ अपने स्वरूप की अपेक्षा समान हैं। भेद के कारण कर्म हैं, जब कर्मो का ही अभाव हो गया तो भेद की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। फिर भी लोक व्यवहार मे मुक्ति प्राप्त करने की पूर्वावस्था के आधार से तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि १५ भेद जनसाधारण को समझाने के लिए शास्त्रो मे बताए

१ देखिए इसी पुस्तक का तप शीर्षक निबन्ध, स० ८।

गये है। जिनका फलितार्थ यह है कि कोई भी जीव चाहे वह किसी भी लिंग, जाति आदि का हो, मुक्ति प्राप्ति का अधिकारी है। मुक्ति की प्राप्ति जीव के सम्यक् पुरुषार्थ पर निर्भर है, जाति, कुल आदि उसमे कारण नही है।

मोक्ष कोई स्थान विशेष नही है, लेकिन जिसे हम लोक के अग्रभाग में स्थित सिद्धशिला के नाम से कहते है, वह तो जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण शुद्ध आत्मा के अवस्थान की दृष्टि से समझ लेना चाहिए। जैसे मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तुम्बा पानी के तल भाग में डूबा रहता है और लेप के हटने पर ऊपर पानी की सतह पर आ जाता है, वैसे ही कर्म लेप से भारी बना जीव संसार सागर मे डूबा रहता है, लेकिन निष्कर्मा होकर लोकाग्र मे स्थित हो जाता है और उस स्थान विशेष को सिद्धशिला कह दिया जाता है।

मोक्ष प्राप्ति के उपाय :

आगमों मे मोक्ष प्राप्ति के चार उपाय बताये है—(i) ज्ञान, (ii) दर्शन, (iii) चारित्र, और (iv) तप। ज्ञान से तत्त्वों की जानकारी और दर्शन से तत्त्वों पर श्रद्धा होती है। चारित्र द्वारा कर्मास्रव रुकता है और तप से पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय होता है। आचार्यों ने तप को चारित्र में गर्भित करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र को मोक्ष प्राप्ति का उपाय कहा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि मे किसी एक के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नही, किन्तु ज्ञान, दर्शन आदि की सामूहिक रूप से साधना करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसीलिए इनको 'रत्न त्रय' कहा जाता है।
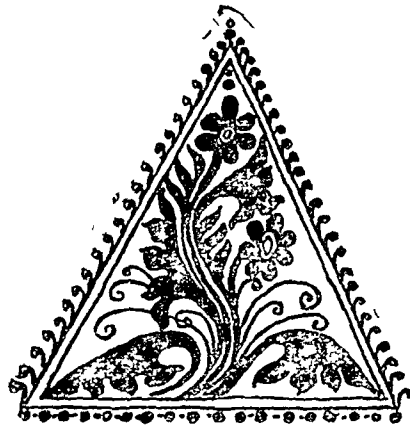
१४ | गुणस्थान

पं० सुखलाल संघवी

गुणस्थान : आत्मविकास की क्रमिक अवस्था :

गुणो (आत्मशक्तियो) के स्थानो को अर्थात् विकास की क्रमिक अवस्थाओ को गुणस्थान कहते है। जैन शास्त्र मे गुणस्थान, इस पारिभाषिक शब्द का मतलब आत्मिक शक्तियो के आविर्भाव की, उनके शुद्ध कार्य रूप मे परिणत होते रहने की तरतम भावापन्न अवस्थाओ से है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चेतना और पूर्णानन्दमय है। पर उसके ऊपर जब तक तीव्र आवरणो के घने बादलो की घटा छाई हो, तब तक उसका असली स्वरूप दिखाई नही देता। किन्तु आवरणो के क्रमश. शिथिल या नष्ट होते ही उसका असली स्वरूप प्रकट होता है। जब आवरणो की तीव्रता आखिरी हद की हो, तब आत्मा प्राथमिक अवस्था मे अविकसित अवस्था मे पडा रहता है। और जब आवरण बिल्कुल ही नष्ट हो जाते है, तब आत्मा चरम अवस्था—शुद्ध स्वरूप की पूर्णता मे वर्तमान हो जाता है। जैसे-जैसे आवरणो की तीव्रता कम होती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा भी प्राथमिक अवस्था को छोडकर धीरे-धीरे शुद्ध रूप का लाभ करता हुआ चरम अवस्था की ओर प्रस्थान करता है। प्रस्थान के समय इन दो अवस्थाओ के बीच उसे अनेक नीची-ऊंची अवस्थाओ का अनुभव करना पड़ता है। प्रथम अवस्था को अविकास की अथवा अधःपतन की पराकाष्ठा और चरम अवस्था को विकास की अथवा उत्क्रान्ति की पराकाष्ठा समझना चाहिये। इस विकास क्रम की मध्यवर्तिनी सब अवस्थाओ को अपेक्षा से उच्च भी कह सकते है और नीच भी, अर्थात् मध्यवर्तिनी कोई भी अवस्था अपने मे ऊपर वाली अवस्था की अपेक्षा नीच और नीचे वाली अवस्था की अपेक्षा उच्च कही जा सकती है। विकास की ओर अग्रसर आत्मा वस्तुत. उक्त प्रकार की सख्यातीत आध्यात्मिक भूमिकाओ का अनुभव करता है। पर जैन शास्त्र मे संक्षेप मे वर्गीकरण करके उनके चौदह विभाग किये है, जो चौदह गुणस्थान कहलाते हैं।

मोह : आत्मविकास मे मुख्य बाधक :

सब आवरणो मे मोह का आवरण प्रधान है अर्थात् जब तक मोह बलवान् और तीव्र हो, तब तक अन्य सभी आवरण बलवान और तीखे बने रहते है। इसलिए आत्मा के विकास करने मे मुख्य बाधक मोह की प्रबलता और मुख्य सहायक मोह की निर्बलता समझनी चाहिये। इसी कारण गुणस्थानो की विकास क्रम की अवस्थाओ की कल्पना मोह शक्ति की उत्कटता, मन्दता, तथा अभाव पर अवलम्बित है।

मोह की प्रधान शक्तिया दो हैं। इनमें से पहली शक्ति, आत्मा को दर्शन अर्थात् स्वरूप–पररूप का निर्णय किंवा जड़–चेतन का विवेक करने नहीं देती और दूसरी शक्ति आत्मा को विवेक प्राप्त कर लेने पर भी तदनुसार प्रवृत्ति से छुटकारा स्वरूप लाभ नही करने देती। व्यवहार मे पग-पग पर यह देखा जाता है किसी वस्तु का यथार्थ दर्शन बोध कर लेने पर ही उस वस्तु को पाने या त्यागने की चेष्टा की जाती है और वह सफल भी होती है। आध्यात्मिक विकासगामी आत्मा के लिए भी मुख्य दो ही कार्य है। पहला स्वरूप तथा पररूप का यथार्थ दर्शन किंवा भेद ज्ञान करना और दूसरा स्वरूप मे स्थित होना। इनमे से पहले कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति जैनशास्त्र में दर्शनमोह और दूसरे कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति चारित्रमोह कहलाती है। दूसरी शक्ति अनुगामिनी है, अर्थात् पहली शक्ति प्रबल हो, तब तक दूसरी शक्ति कभी निर्बल नही होती और पहली शक्ति के मन्द-मन्दतर और मन्दतम होते ही दूसरी शक्ति भी क्रमशः वैसी ही होने लगती है, अथवा यो कहिये कि एक बार आत्मा स्वरूपदर्शन कर पावे तो फिर उसे स्वरूप-लाभ करने का मार्ग प्राप्त हो ही जाता है।

ग्रंथिभेद :

अविकसित किंवा सर्वथा अधःपतित आत्मा की अवस्था प्रथम गुणस्थान है। इसमे मोह की उक्त दोनों शक्तियो के प्रबल होने के कारण आत्मा की आध्यात्मिक स्थिति बिल्कुल गिरी हुई होती है। इस भूमिका के समय आत्मा चाहे आधिभौतिक उत्कर्ष कितना ही क्यो न कर ले, पर उसकी प्रवृति तात्विक लक्ष्य से सर्वथा शून्य होती है। जैसे दिग्भ्रम वाला मनुष्य पूर्व को पश्चिम मान कर गति करता है और अपने इष्ट स्थान को नहीं पाता, उसका श्रम एक तरह से वृथा ही जाता है, वैसे प्रथम भूमिका वाला आत्मा, पर रूप को स्वरूप समझ कर उसी को पाने के लिए प्रति क्षण लालायित रहता है। और विपरीत दर्शन या मिथ्यादृष्टि के कारण राग-द्वेष की प्रबल चोटो का शिकार बनकर तात्विक सुख से वचित रहता है। इसी भूमिका को जैन शास्त्र मे बहिरात्माभाव किंवा मिथ्यादर्शन कहा है। इस भूमिका मे जितने आत्मा वर्तमान होते हैं, उन सभी की आध्यात्मिक स्थिति एक सी नही होती अर्थात् सब के ऊपर मोह की सामान्यतः दोनों शक्तियों का आधिपत्य होने पर भी उसमे थोड़ा बहुत तरतम भाव अवश्य होता है। किसी पर मोह का प्रभाव गाढतम, किसी पर गाढतर और किसी पर उससे भी कम होता है। विकास करना यह प्रायः आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जानते या अजानते, जब उस पर मोह का प्रभाव कम होने लगता है, तब वह कुछ विकास की ओर अग्रसर हो जाता है और तीव्रतम राग-द्वेष को कुछ मन्द करता हुआ मोह की प्रथम शक्ति को छिन्न-भिन्न करने योग्य आत्मबल प्रकट कर लेता है। इसी स्थिति को जैनशास्त्र में ग्रन्थिभेद कहा है।

ग्रन्थि भेद का कार्य बडा ही विषम है। राग-द्वेष का तीव्रतम विष एक बार शिथिल व छिन्न-भिन्न हो जाए तो फिर बेडा पार ही समझिए। क्योंकि इसके बाद मोह की प्रधान शक्ति दर्शन मोह को शिथिल होने मे देरी नही लगती और दर्शन मोह शिथिल हुआ कि चारित्र मोह की शिथिलता का मार्ग आप ही आप खुल जाता है। एक तरफ राग-द्वेष अपने पूर्ण बल का प्रयोग करते हैं और दूसरी तरफ विकासोन्मुख आत्मा भी उनके प्रभाव को कम करने के लिए अपने वीर्य बल का प्रयोग करता है। इस आध्यात्मिक युद्ध मे यानी मानसिक विकार और आत्मा की प्रतिद्वन्द्विता

१४ | गुणस्थान

पं० सुखलाल संघवी

गुणस्थान : आत्मविकास की क्रमिक अवस्था :

गुणो (आत्मशक्तियो) के स्थानो को अर्थात् विकास की क्रमिक अवस्थाओ को गुणस्थान कहते है। जैन शास्त्र मे गुणस्थान, इस पारिभाषिक शब्द का मतलब आत्मिक शक्तियो के आविर्भाव की, उनके शुद्ध कार्य रूप मे परिणत होते रहने की तरतम भावापन्न अवस्थाओ से है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चेतना और पूर्णानन्दमय है। पर उसके ऊपर जव तक तीव्र आवरणो के घने वादलो की घटा छाई हो, तव तक उसका असली स्वरूप दिखाई नही देता। किन्तु आवरणो के क्रमश. शिथिल या नष्ट होते ही उसका असली स्वरूप प्रकट होता है। जव आवरणो की तीव्रता आखिरी हद की हो, तव आत्मा प्राथमिक अवस्था मे अविकसित अवस्था मे पड़ा रहता है। और जव आवरण विल्कुल ही नष्ट हो जाते है, तव आत्मा चरम अवस्था—शुद्ध स्वरूप की पूर्णता में वर्तमान हो जाता है। जैसे-जैसे आवरणो की तीव्रता कम होती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा भी प्राथमिक अवस्था को छोडकर धीरे-धीरे शुद्ध रूप का लाभ करता हुआ चरम अवस्था की ओर प्रस्थान करता है। प्रस्थान के समय इन दो अवस्थाओ के वीच उसे अनेक नीची-ऊंची अवस्थाओ का अनुभव करना पड़ता है। प्रथम अवस्था को अविकास की अथवा अधःपतन की पराकाष्ठा और चरम अवस्था को विकास की अथवा उत्क्रान्ति की पराकाष्ठा समझना चाहिये। इस विकास क्रम की मध्यवर्तिनी सव अवस्थाओ को अपेक्षा से उच्च भी कह सकते है और नीच भी, अर्थात् मध्यवर्तिनी कोई भी अवस्था अपने से ऊपर वाली अवस्था की अपेक्षा नीच और नीचे वाली अवस्था की अपेक्षा उच्च कही जा सकती है। विकास की ओर अग्रसर आत्मा वस्तुत' उक्त प्रकार की सख्यातीत आध्यात्मिक भूमिकाओ का अनुभव करता हे। पर जैन शास्त्र मे संक्षेप मे वर्गीकरण करके उनके चौदह विभाग किये है, जो चौदह गुणस्थान कहलाते हैं।

मोह : आत्मविकास मे मुख्य वाधक :

सव आवरणो मे मोह का आवरण प्रधान है अर्थात् जव तक मोह वलवान् और तीव्र हो, तव तक अन्य सभी आवरण वलवान और तीखे वने रहते हैं। इसलिए आत्मा के विकास करने मे मुख्य वाधक मोह की प्रवलता और मुख्य सहायक मोह की निर्वलता समझनी चाहिये। इसी कारण गुणस्थानो की विकास क्रम की अवस्थाओ की कल्पना मोह शक्ति की उत्कटता, मन्दता, तथा अभाव पर अवलम्बित हैं।

मोह की प्रधान शक्तिया दो हैं। इनमे से पहली शक्ति, आत्मा को दर्शन अर्थात् स्वरूप–पररूप का निर्णय किंवा जड़–चेतन का विवेक करने नहीं देती और दूसरी शक्ति आत्मा को विवेक प्राप्त कर लेने पर भी तदनुसार प्रवृत्ति से छुटकारा स्वरूप लाभ नही करने देती। व्यवहार में पग-पग पर यह देखा जाता है किसी वस्तु का यथार्थ दर्शन वोध कर लेने पर ही उस वस्तु को पाने या त्यागने की चेष्टा की जाती है और वह सफल भी होती है। आध्यात्मिक विकासगामी आत्मा के लिए भी मुख्य दो ही कार्य है। पहला स्वरूप तथा पररूप का यथार्थ दर्शन किंवा भेद ज्ञान करना और दूसरा स्वरूप मे स्थित होना। इनमे से पहले कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति जैनशास्त्र में दर्शनमोह और दूसरे कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति चारित्रमोह कहलाती है। दूसरी शक्ति अनुगामिनी है, अर्थात् पहली शक्ति प्रवल हो, तब तक दूसरी शक्ति कभी निर्वल नही होती और पहली शक्ति के मन्द-मन्दतर और मन्दतम होते ही दूसरी शक्ति भी क्रमशः वैसी ही होने लगती है, अथवा यों कहिये कि एक वार आत्मा स्वरूपदर्शन कर पावे तो फिर उसे स्वरूप-लाभ करने का मार्ग प्राप्त हो ही जाता है।

ग्रंथिभेद :

अविकसित किंवा सर्वथा अध पतित आत्मा की अवस्था प्रथम गुणस्थान है। इसमें मोह की उक्त दोनो शक्तियो के प्रवल होने के कारण आत्मा की आध्यात्मिक स्थिति बिल्कुल गिरी हुई होती है। इस भूमिका के समय आत्मा चाहे आधिभौतिक उत्कर्ष कितना ही क्यो न कर ले, पर उसकी प्रवृति तात्विक लक्ष्य से सर्वथा शून्य होती है। जैसे दिग्भ्रम वाला मनुष्य पूर्व को पश्चिम मान कर गति करता है और अपने इष्ट स्थान को नही पाता, उसका श्रम एक तरह से वृथा ही जाता है, वैसे प्रथम भूमिका वाला आत्मा, पर रूप को स्वरूप समझ कर उसी को पाने के लिए प्रति क्षण लालायित रहता है। और विपरीत दर्शन या मिथ्यादृष्टि के कारण राग-द्वेष की प्रवल चोटों का शिकार वनकर तात्विक सुख से वंचित रहता है। इसी भूमिका को जैन शास्त्र मे बहिरात्माभाव किंवा मिथ्यादर्शन कहा है। इस भूमिका में जितने आत्मा वर्तमान होते हैं, उन सभी की आध्यात्मिक स्थिति एक सी नही होती अर्थात् सब के ऊपर मोह की सामान्यतः दोनों शक्तियो का आधिपत्य होने पर भी उसमें थोडा वहुत तरतम भाव अवश्य होता है। किसी पर मोह का प्रभाव गाढतम, किसी पर गाढ़तर और किसी पर उससे भी कम होता है। विकास करना यह प्रायः आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जानते या अजानते, जव उस पर मोह का प्रभाव कम होने लगता है, तव वह कुछ विकास की ओर अग्रसर हो जाता है और तीव्रतम राग-द्वेष को कुछ मन्द करता हुआ मोह की प्रथम शक्ति को छिन्न-भिन्न करने योग्य आत्मवल प्रकट कर लेता है। इसी स्थिति को जैनशास्त्र में ग्रन्थिभेद कहा है।

ग्रन्थि भेद का कार्य वडा ही विपम है। राग-द्वेष का तीव्रतम विष एक वार शिथिल व छिन्न-भिन्न हो जाए तो फिर वेड़ा पार ही समझिए। क्योकि इसके वाद मोह की प्रधान शक्ति दर्शन मोह को शिथिल होने मे देरी नही लगती और दर्शन मोह शिथिल हुआ कि चारित्र मोह की शिथिलता का मार्ग आप ही आप खुल जाता है। एक तरफ राग-द्वेष अपने पूर्ण वल का प्रयोग करते हैं और दूसरी तरफ विकासोन्मुख आत्मा भी उनके प्रभाव को कम करने के लिए अपने वीर्य वल का प्रयोग करता है। इस आध्यात्मिक युद्ध मे यानी मानसिक विकार और आत्मा की प्रतिद्वन्द्विता

मे कभी एक तो कभी दूसरा जय लाभ करता है। अनेक आत्मा ऐसे भी होते है जो करीब-करीब ग्रन्थिभेद करने लायक बल प्रकट करके भी अन्त मे राग-द्वेष के तीव्र प्रहारो से आहत होकर व उनसे हार खाकर अपनी मूल स्थिति मे आ जाते है और अनेक बार प्रयत्न करने पर भी राग-द्वेष पर जयलाभ नही करते। अनेक आत्मा ऐसे भी होते हैं, जो न तो हार खाकर पीछे गिरते है और न जयलाभ कर पाते है। किन्तु वे चिरकाल तक उस आध्यात्मिक युद्ध मैदान मे ही पडे रहते है। कोई-कोई आत्मा ऐसा भी होता है जो अपनी शक्ति का यथोचित प्रयोग कर, उस आध्यात्मिक युद्ध पर, राग-द्वेष पर जयलाभ कर ही लेता है।

आध्यात्मिक युद्ध :

किसी भी मानसिक विकार की प्रतिद्वन्द्विता में इन तीनों अवस्थाओं का अर्थात् कभी हार खाकर पीछे गिरने का, कभी प्रतिस्पर्धा मे डटे रहने का और जयलाभ करने का अनुभव हमें अक्सर नित्य प्रति हुआ करता है। यही संघर्ष कहलाता है। संघर्ष विकास का कारण है। चाहे विद्या, चाहे धन, चाहे कीर्ति, कोई भी लौकिक वस्तु इष्ट हो, उसको प्राप्त करते समय भी अचानक अनेक विघ्न उपस्थित होते है और उनकी प्रतिद्वन्द्विता मे उक्त प्रकार की तीनों अवस्थाओ का अनुभव प्रायः सबको होता रहता है। कोई विद्यार्थी, कोई धनार्थी या कोई कीर्ति का आकांक्षी जब अपने इष्ट के लिए प्रयत्न करता है तब या तो वह बीच मे अनेक कठिनाइयों को देखकर प्रयत्नों को छोड़ ही देगा या कठिनाइयों को पारकर इष्ट-प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होता है। जो अग्रसर होता है, वह बडा विद्वान्, बड़ा धनवान् या बडा कीर्तिशाली बन जाता है। जो कठिनाइयों से डर कर पीछे भागता है, वह पामर, अज्ञानी, निर्धन, कीर्तिहीन बना रहता है। और जो कठिनाइयों को जीत सकता है और उनसे हार मानकर पीछे भागता है, वह साधारण स्थिति में ही पड़ा रहकर, कोई ध्यान खीचने योग्य उत्कर्ष लाभ नही करता।

इस भाव को समझाने के लिए शास्त्र मे एक दृष्टान्त दिया गया है। तीन प्रवासी कही जा रहे थे। बीच मे भयानक चोरो को देखते ही तीन मे से एक तो पीछे भाग गया। दूसरा उन चोरों से डर कर नही भागा, किन्तु उनके द्वारा पकडा गया। तीसरा तो असाधारण बल तथा कौशल से उन चोरों को हराकर आगे बढ ही गया। मानसिक विकारो के साथ आध्यात्मिक युद्ध करने मे जो जय-पराजय होता है, उसका थोडा बहुत खयाल उक्त दृष्टान्त से आ सकता है।

सद्दृष्टि :

प्रथम गुणस्थान मे रहने वाले विकासगामी ऐसे अनेक आत्मा होते हैं, जो राग-द्वेष के तीव्रतम वेग को थोड़ा-सा दबाये हुए होते हैं, पर मोह की प्रधान शक्ति को अर्थात् दर्शनमोह को शिथिल किये हुए नहीं होते, तो भी उनका बोध व चरित्र अन्य अविकसित आत्माओं की अपेक्षा अच्छा ही होता है। यद्यपि ऐसी आत्माओ की आध्यात्मिक दृष्टि सर्वथा आत्मोन्मुख न होने के कारण वस्तुतः मिथ्या दृष्टि, विपरीत दृष्टि या असत् दृष्टि ही कहलाती है तथापि वह सद्दृष्टि के समीप ले जाने वाली हो जाने के कारण उपादेय मानी गई है।

बोध, वीर्य व चारित्र के तरतम भाव की अपेक्षा से उस असत् दृष्टि के चार भेद करके

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की अन्तिम अवस्था का शास्त्र में अच्छा चित्र खींचा गया है। इन चार दृष्टियों मे जो वर्तमान होते है, उनको सद्दृष्टि लाभ करने मे फिर देरी नही लगती।

सद्वोध, सद्वीर्य व सच्चरित्र के तरतम भाव की अपेक्षा से सद्दृष्टि के भी शास्त्र मे चार विभाग किये है, जिनमे मिथ्यादृष्टि त्यागकर अथवा मोहकर एक या दोनों शक्तियों को जीतकर आगे बढे हुए सभी विकसित आत्माओ का समावेश हो जाता है, अथवा दूसरे प्रकार से यों समझाया जा सकता है कि जिसमे आत्मा का स्वरूपभासित हो और उसकी प्राप्ति के लिए मुख्य प्रवृत्ति हो, वह सद्दृष्टि इसके विपरीत जिसमे आत्मा का स्वरूप न तो यथावत् भासित हो और न उसकी प्राप्ति के लिए हो प्रवृत्ति हो, वह असद्दृष्टि। बोध, वीर्य व चरित्र के तरतम भाव को लक्ष्य मे रखकर शास्त्र मे दोनो दृष्टि के चार-चार विभाग किये गये है, जिनमे सब विकासगामी आत्माओं का समावेश हो जाता है और जिनका वर्णन पढ़ने से आध्यात्मिक विकास का चित्र आंखो के सामने नाचने लगता है।

शारीरिक और मानसिक दु:खों की संवेदना के कारण अज्ञातरूप मे ही 'गिरिनदीपापान्याय' से जब आत्मा का आवरण कुछ शिथिल होता है और इसके कारण उसके अनुभव तथा वीर्योल्लास की मात्रा कुछ वढती है, तब उस विकासगामी आत्मा के परिणामो की शुद्धि व कोमलता कुछ बढ़ती है। जिसकी बदौलत वह रागद्वेष की तीव्रतम-दुर्भेद्य ग्रंथि को तोड़ने की योग्यता बहुत अंशों मे प्राप्त कर लेता है। इस अज्ञान पूर्वक दुःख संवेदनाजनित अति अल्प आत्मशुद्धि को जैन शास्त्र में 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहा है। इसके बाद जब कुछ और भी अधिक आत्मशुद्धि तथा वीर्योल्लास की मात्रा बढती है तब रागद्वेष की उस दुर्भेद्य ग्रंथि का भेदन किया जाता है। इस ग्रंथिभेदकारक आत्म शुद्धि को 'अपूर्वकरण' कहते है। क्योकि ऐसा करण-परिणाम विकासगामी आत्मा के लिये अपूर्व प्रथम ही प्राप्त है। इसके बाद आत्मशुद्धि व वीर्योल्लास की मात्रा कुछ अधिक बढती है, तब आत्मा मोह की प्रधानभूत शक्ति-दर्शनमोह पर अवश्य विजयलाभ करता है। इस विजयकारक आत्म शुद्धि को जैन-शास्त्र मे 'अनिवृत्तिक करण' कहा है, क्योंकि उस आत्म-शुद्धि के हो जाने पर आत्मा दर्शनमोह पर जयलाभ किये बिना नही रहता, अर्थात् वह पीछे नही हटता। उक्त तीन प्रकार की आत्मशुद्धियो मे दूसरी अर्थात् अपूर्वकरण नामक शुद्धि ही अत्यन्त दुर्लभ है। क्योकि राग-द्वेष के तीव्रतम वेग को रोकने का अत्यन्त कठिन कार्य इसी के द्वारा किया जाता है, जो सहज नही है। एक बार इस कार्य से सफलता प्राप्त हो जाने पर फिर चाहे विकासगामी आत्मा ऊपर की किसी भूमिका से गिर भी पडे तथापि वह पुनः कभी न कभी अपने लक्ष्यो को अपने—आध्यात्मिक पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस आध्यात्मिक परिस्थिति का कुछ स्पष्टीकरण अनुभवगत व्यावहारिक दृष्टान्त के द्वारा किया जा सकता है।

जैसे एक ऐसा वस्त्र हो, जिसमे मल के अतिरिक्त चिकनाहट भी लगी हो। उसका मल उपर-ऊपर से दूर करना उतना कठिन और साध्य नही जितना कि चिकनाहट का दूर करना। यदि चिकनाहट एक बार दूर हो जाए तो फिर वाकी का मल निकालने मे किंवा किसी कारणवश फिर से लगे हुए गर्दे को दूर करने मे विशेष श्रम नही पड़ता, और वस्त्र को उसके असली स्वरूप मे सहज ही लाया जा सकता है। ऊपर-ऊपर का मल दूर करने मे जो बल दरकार है, उसके सदृश 'यथाप्रवृत्ति-करण' है। चिकनाहट दूर करने वाले विशेष बल व श्रम के समान 'अपूर्वकरण' है, जो चिकनाहट

के समान राग-द्वेष की तीव्रतम ग्रंथि को शिथिल करता है । बाकी बचे हुए मल को किंवा चिकनाहट दूर होने के बाद फिर से लगे हुए मल को कम करने वाले बल प्रयोग के समान 'अनिवृत्तिकरण' है । उक्त तीनों प्रकार के वल प्रयोग मे चिकनाहट दूर करने वाला बल प्रयोग ही विशिष्ट है ।

अथवा, जैसे किसी राजा ने आत्मरक्षा के लिए अपने अंगरक्षको को तीन विभागो मे विभाजित कर रखा हो, जिनमे दूसरा विभाग शेष दो विभागो मे से अधिक बलवान् हो, तब उसी को जीतने मे विशेष बल लगाना पडता है । वैसे ही दर्शनमोह को जीतने के पहले उसके रक्षक राग-द्वेष के तीव्र संस्कारो को शिथिल करने के लिए विकासगामी आत्मा को तीन बार बल प्रयोग करना पड़ता है । जिनमे दूसरी बार किया जाने वाला बल प्रयोग ही, जिसके द्वारा राग-द्वेष की अत्यन्त तीव्रतारूप ग्रंथि भेदी जाती है, प्रधान होता है । जिस प्रकार उक्त तीनो दलो मे बलवान् दूसरे अंगरक्षक दल के जीत लिए जाने पर फिर उस राजा की पराजय सहज होती है, इसी प्रकार राग-द्वेष की अति तीव्रता को मिटा देने पर दर्शन मोह पर जयलाभ करना सहज है । दर्शन मोह को जीता और पहले गुणस्थान की समाप्ति हुई ।

अन्तरात्म भाव :

ऐसा होते ही विकासगामी आत्मा स्वरूप का दर्शन कर लेता है । अर्थात् उसकी अब तक जो पररूप मे स्वरूप की भ्रान्ति थी, वह दूर हो जाती है । अतएव उसके प्रयत्न की गति उलटी न होकर सीधी हो जाती है । अर्थात् वह विवेकी बनकर कर्तव्य–अकर्तव्य का वास्तविक विभाग कर लेता है । इस दशा को जैन शास्त्र मे अन्तरात्म भाव कहते है, क्योकि इस स्थिति को प्राप्त करके विकासगामी आत्मा अपने अन्दर वर्तमान सूक्ष्म और सहज शुद्ध परमात्म भाव को देखने लगता है, अर्थात् अन्तरात्म भाव, यह आत्म मन्दिर का गर्भद्वार है, जिसमे प्रविष्ट होकर उस मन्दिर मे वर्तमान परमात्म भावरूप निश्चय देव का दर्शन किया जाता है ।

सम्यक्त्व :

यह दशा विकासक्रम की चतुर्थी भूमिका किंवा चतुर्थ गुणस्थान है, जिसे पाकर आत्मा पहले-पहल आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव करता है । इस भूमिका मे आध्यात्मिक दृष्टि यथार्थ (आत्म-स्वरूपोन्मुख) होने के कारण विपर्याय रहित होती है । जिसको जैन शास्त्र मे सम्यक्त्व कहा है ।

चतुर्थी से आगे की अर्थात् पचमी आदि सब भूमिकाए सम्यग्दृष्टि वाली ही समझनी चाहिए, क्योकि उनमे उत्तरोत्तर विकास तथा दृष्टि की शुद्धि अधिकाधिक होती जाती है । चतुर्थ गुणस्थान मे स्वरूप दर्शन करने से आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है और उसको विश्वास होता है कि अब मेरा साध्य-विषयक भ्रम दूर हुआ, अर्थात् अब तक जिस पौद्गलिक व वाह्य सुख के लिए मै तरस रहा था, वह परिणाम विरस, अस्थिर एवं परिमित है, सुन्दर, स्थिर व अपरिमित सुख स्वरूप-प्राप्ति मे ही है । तब वह विकासगामी आत्मा स्वरूप-स्थिति के लिए, प्रयत्न करने लगता है ।

देशविरति :

मोह की प्रधान शक्ति दर्शन मोह को शिथिल करके स्वरूप दर्शन कर लेने के बाद भी, जब

तक उसकी दूसरी शक्ति चारित्र-मोह को शिथिल न किया जाए, तब तक स्वरूप लाभ किंवा स्वरूप स्थिति नहीं हो सकती। इसलिए वह मोह की दूसरी शक्ति को मन्द करने के लिए प्रयास करता है। जब वह उस शक्ति को अशत. शिथिल कर पाता है, तब उसकी और भी उत्क्रान्ति हो जाती है। जिसमे अशतः स्वरूप स्थिरता या परपरिणति त्याग होने से चतुर्थ भूमिका की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। यह देशविरति नामक पांचवां गुणस्थान है।

सर्वविरति :

इस गुणस्थान मे विकासगामी आत्मा को यह विचार होने लगता है कि यदि अल्प विरति से ही इतना अधिक शान्ति लाभ हुआ तो फिर सर्वविरति, द्वारा जड भावों के सर्वथा परिहार से कितना शान्ति लाभ होगा ? इस विचार से प्रेरित होकर व प्राप्त आध्यात्मिक शान्ति के अनुभव से बलवान् होकर वह विकासगामी आत्मा चारित्रमोह को अधिकाश मे शिथिल करके पहले की अपेक्षा भी अधिक स्वरूप-स्थिरता व स्वरूप लाभ प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा मे कृतकृत्य होते ही उसे सर्वविरति सयम प्राप्त होता है जिसमें पौद्गलिक भावों पर मूर्च्छा बिल्कुल नही रहती, और उसका सारा समय स्वरूप की अभिव्यक्ति करने के काम मे ही खर्च होता है। यह सर्वविरति नामक षष्ठ गुणस्थान है। इसमे आत्म कल्याण के अतिरिक्त लोक कल्याण की भावना और तद्नुकूल प्रवृति भी होती है। जिससे कभी-कभी थोड़ी बहुत मात्रा मे प्रमाद आ जाता है।

प्रमाद से युद्ध :

पाचवे गुणस्थान की अपेक्षा, इस छठे गुणस्थान मे स्वरूप-अभिव्यक्ति अधिक होने के कारण यद्यपि विकासगामी आत्मा को आध्यात्मिक शान्ति पहले से अधिक ही मिलती है तथापि बीच-बीच मे अनेक प्रमाद उसे शान्ति के अनुभव मे जो बाधा पहुचाते हैं, उसको वह सहन नहीं कर सकता। अतएव सर्वविरतिजनित शान्ति के साथ अप्रमादजनित विशिष्टशान्ति का अनुभव करने की प्रबल लालसा से प्रेरित होकर वह विकासगामी आत्मा प्रमाद का त्याग करता है और स्वरूप की अभिव्यक्ति के अनुकूल मनन-चिन्तन के सिवाय अन्य सब व्यापारो का त्याग कर देता है। यही अप्रमत्त-संयत नामक सातवा गुणस्थान है। इसमे एक ओर अप्रमादजन्य उत्कट सुख का अनुभव आत्मा को उस स्थिति मे बने रहने के लिए उत्तेजित करता है और दूसरी ओर प्रमादजन्य पूर्व वासनाएं उसे अपनी ओर खीचती है। इस खीचातानी मेविकासगामी आत्मा कभी प्रमाद की तन्द्रा और कभी अप्रमाद की जागृति अर्थात् छठे और सातवे गुणस्थान मे अनेक बार जाता-आता रहता है। भवर या वातभ्रमी मे पडा हुआ तिनका इधर से उधर और उधर से इधर जिस प्रकार चलायमान होता रहता है, उसी प्रकार छठे और सातवें, गुणस्थान के समय विकासगामी आत्मा अनवस्थित बन जाता है।

प्रमाद के साथ होने वाले इस आन्तरिक युद्ध के समय विकासगामी आत्मा यदि अपना चारित्र बल विशेष प्रकाशित करता है तो फिर वह प्रमादो, प्रलोभनो को पार कर विशेष अप्रमत्त अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को पाकर वह ऐसी शक्तिवृद्धि की तैयारी करता है जिससे शेष रहे-सहे मोहबल को नष्ट किया जा सके। मोह के साथ होने वाले भावी युद्ध के लिए की जाने वाली तैयारी की इस भूमिका को आठवा गुणस्थान कहते है।

तीसरे गुणस्थान की कथा, जो छूट गई है, वह यो है—सम्यक्त्व किंवा तत्वज्ञान वाली ऊपर की चतुर्थी आदि भूमिकाओं के राजमार्ग से च्युत होकर जब कोई आत्मा तत्वज्ञान शून्य किंवा मिथ्यादृष्टि वाली प्रथम भूमिका के उन्मार्ग की ओर झुकता है, तब बीच मे उस अधःपतनोन्मुख आत्मा की जो कुछ अवस्था होती है, वही दूसरा गुणस्थान है। यद्यपि इस गुणस्थान मे प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा आत्मशुद्धि अवश्य कुछ अधिक होती है, इसलिए इसका नम्बर पहले के बाद रखा गया है, फिर भी यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि इस गुणस्थान को उत्क्रान्ति स्थान नही कह सकते। क्योकि प्रथम गुणस्थान को छोड़कर उत्क्रान्ति करने वाला आत्मा इस दूसरे स्थान को सीधे तौर से प्राप्त नही कर सकता, किन्तु ऊपर के गुणस्थान से गिरने वाला आत्मा ही इसका अधिकारी बनता है। अध.पतन मोह के उद्रेक से होता है अतएव इस गुणस्थान के समय मोह की तीव्र कापायिक शक्ति का आविर्भाव पाया जाता है। खीर आदि मिष्ट भोजन करने के बाद जब वमन हो जाता है, तब मुख मे एक प्रकार का विलक्षण स्वाद अर्थात् न अति मधुर न अति अम्ल जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार दूसरे गुणस्थान के समय आध्यात्मिक स्थिति विलक्षण पाई जाती है। क्योकि उस समय आत्मा न तो तत्वज्ञान की निश्चित भूमिका पर है और न तत्वज्ञान शून्य की निश्चित भूमिका पर, अथवा जैसे कोई व्यक्ति चढने की सीढियो से खिसक कर जब तक जमीन पर आकर नही ठहर जाता, तब तक बीच मे एक विलक्षण अवस्था का अनुभव करता है, वैसे ही सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व को पाने तक मे अर्थात् बीच मे आत्मा एक विलक्षण आध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है। यह बात हमारे इस व्यावहारिक अनुभव से भी प्रसिद्ध है कि जब किसी निश्चित उन्नत अवस्था से गिरकर कोई निश्चित अवनत अवस्था प्राप्त की जाती है, तब बीच मे एक विलक्षण परिस्थिति खडी हो जाती है।

तीसरा गुणस्थान आत्मा की उस मिश्रित अवस्था का नाम है, जिसमे न तो केवल सम्यक् दृष्टि होती है और न केवल मिथ्यादृष्टि, किन्तु आत्मा उसमे दोलायमान आध्यात्मिक स्थिति वाला बन जाता है। अतएव उसकी बुद्धि स्वाधीन न होने के कारण सन्देहशील होती है अर्थात् उसके सामने जो कुछ आया, वह सब सच। न तो वह तत्व को एकान्त अतत्वरूप से ही जानता है और न तत्व अतत्व का वास्तविक पूर्ण विवेक ही कर सकता है।

कोई उत्क्रान्ति करने वाला महात्मा प्रथम गुणस्थान से निकलकर सीधे ही तीसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है और कोई अवक्रान्ति करने वाला आत्मा भी चतुर्थ आदि गुणस्थान से गिरकर तीसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उत्क्रान्ति करने वाले और अवक्रान्ति करने वाले दोनों प्रकार के आत्माओ का आश्रय स्थान तीसरा गुणस्थान है। यही तीसरे गुणस्थान की दूसरे गुणस्थान से विशेषता है।

---

१५ | अनेकान्त

उपाध्याय विद्यानंद मुनि

जीव और अजीव : अनन्तानन्त :

इस जगत् मे अनन्तानन्त चेतन पदार्थ (जीव) है और अनन्तानन्त जड़ (अजीव) पदार्थ है, उनमें से प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणों (शक्तियो) तथा अनन्त विशेषताओं का पुंज है। सूक्ष्म परमाणु (एटम) मे भी अनन्त शक्तियाँ निहित हैं। परमाणु की शक्ति से विशाल नगरों का विध्वंस क्षण-भर मे किया जा सकता है और विशाल परिमाण में विद्युत् उत्पन्न करने वाले बिजलीघर का संचालन किया जा सकता है, भीमकाय जल-यान (पानी के जहाज, पनडुब्बी, नाव आदि) परमाणु की शक्ति से चलाये जा सकते है। एक परमाणु में जब इस प्रकार की विध्वस, निर्माण, सचालन, प्रेरण-रूप असीम शक्तियाँ तथा विशेषताएँ सिद्ध होती है, तब अन्य विशाल जड़-चेतन पदार्थों के गुणो और विशेपताओ का भी इससे अनुमान लगाया जा सकता है।

अग्नि लकड़ी को जलाकर भस्म करती है, सोने को गलाकर शुद्ध करती है, रोटी को पकाती है, दाल को गलाती है, जल को भाप बनाती है, अशुद्ध धातु-पात्रो को शुद्ध करती है, शीत को दूर करती है, प्रकाश प्रदान करती है, इत्यादि अनन्त प्रकार की विशेषताएँ अग्नि मे विद्यमान है।

ऐसी ही अनन्त शक्तियाँ, गुण या विशेपताएँ जल, वायु तथा पार्थिव पदार्थो मे विद्यमान है। ये भौतिक (पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायव्य) पदार्थ उन परमाणुओं के सम्बद्ध समुदाय से बना करते है, जिनकी शक्ति परमाणु-बम, परमाणु-बिजलीघर आदि के रूप मे पहले बतलाई जा चुकी है।

अमूर्तिक जड़ पदार्थ :

पौद्गलिक (मटीरियल) जड़ पदार्थो के सिवाय अमूर्तिक (नॉनमटीरियल) जड़ पदार्थ और भी है, जिनको धर्म (ईथर) (क्रियाशील अनन्त पदार्थो की हलनचलन रूप क्रिया मे सहायक), अधर्म (स्थितिशील अनन्त पदार्थो की स्थिति मे सहायक), आकाश (समस्त पदार्थों के लिए स्थान-दाता), काल (समस्त अनन्त पदार्थो के प्रतिक्षणवर्ती परिणमन मे सहायक) नाम से कहा जाता है। उन अमूर्तिक जड़ पदार्थों मे से प्रत्येक मे भी परमाणु या भौतिक पदार्थो के समान अनन्त शक्तियाँ

तद्वत् स्यात् पृथगस्ति नास्ति युगपत् स्यादस्तिनास्त्याहिते
वक्तव्ये गुणमुख्य भावनियतः स्यात् सप्तभंगी विधिः ।।

—श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्रम् ।।१०।।

अर्थात् स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्त्यवक्तव्य, स्यान्नास्त्य-वक्तव्य, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य—ये सात भंग है । वक्तव्य मे गौण और मुख्य भाव नियत करने वाली यह 'सप्तभंग' विधि है ।

भंग शब्द के भाग, लहर, प्रकार, विघ्न आदि अनेक अर्थ होते है, उनमे से यह 'भंग' शब्द प्रकारवाची लिया है; तदनुसार वचन के भंग सात प्रकार के हो सकते है, उससे अधिक नही क्योकि आठवी तरह का कोई वचन-भंग नही होता और सात से कम मानने से कोई-न-कोई वचन-भग छूट जाता है ।

इसका कारण यह है कि किसी भी पदार्थ के विषय मे जो भी बात कही जाती है, वह मौलिक रूप से तीन प्रकार की होती है या हो सकती है—१. 'है' (अस्ति) के रूप मे; २ 'नही' (नास्ति) के रूप मे; ३. न कह सकने योग्य (अवक्तव्य) के रूप मे ।

इन तीन मूल अगो को परस्पर मिलाकर तीन युगल (द्वि-संयोगी) रूप होते है—१. 'है' और 'नही' (अस्ति-नास्ति) रूप; २. 'है' और 'न कह सकने योग्य' (अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य) ।

इस तरह वचन-भंग सात तरह के है । इन सातो भगो के समुदाय को (सप्ताना भङ्गानां समुदाय. सप्तभंगी) 'सप्तभंगी' कहते हैं ।

(१) प्रत्येक वस्तु अपने (विवक्षित-कहने के लिए इष्ट) दृष्टिकोण (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) की अपेक्षा 'अस्ति' (मौजूद) रूप होती है, जैसे—राम अपने पिता दशरथ की अपेक्षा 'पुत्र' है ।

(२) प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओ की या अन्य (अविवक्षित) दृष्टिकोणो की अपेक्षा अभाव (नास्तित्व) रूप होती हैं; जैसे—राम राजा जनक (की अपेक्षा) के पुत्र नही है ।

(३) दोनो दृष्टिकोणो को क्रमशः कहने पर वस्तु अस्तित्व तथा अभाव (अस्ति-नास्ति) रूप होती है; जैसे—राम दशरथ के पुत्र है. जनक के पुत्र नही है ।

(४) परस्पर-विरोधी ('है' तथा 'नही' रूप) दोनो दृष्टिकोणो से एक साथ (युगपद्) वस्तु 'वचन द्वारा कही नही जा सकती' क्योकि वैसा वाचक (कहने वाला) कोई शब्द नही है । अतः उस अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होती है; जैसे—राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की युगपद् (एक साथ एक शब्द द्वारा) अपेक्षा कुछ नही कहे जा सकते ।

(५) वस्तु 'न कह सकने योग्य' (युगपद् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य) होते हुए भी अपने

दृष्टिकोण से होती तो है (स्यात् अस्ति अवक्तव्य) जैसे—राम यद्यपि दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य (न कहे जा सकने योग्य) है फिर भी राजा दशरथ की अपेक्षा पुत्र है (स्यात् अस्ति अवक्तव्य)।

(६) वस्तु अवक्तव्य (युगपद् कहने की अपेक्षा) होते हुए भी अन्य दृष्टिकोण से नही रूप (स्यात् नास्ति-अवक्तव्य) है; जैसे—राम दशरथ तथा जनक की युगपद् अपेक्षा पुत्र नही है, (स्यात् नास्ति अवक्तव्य)।

(७) परस्पर विरोधी (है और नही रूप) दृष्टिकोणों से युगपद् (एक साथ एक ही शब्द द्वारा) अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होते हुए भी वस्तु क्रमशः उन परस्पर-विरोधी दृष्टिकोणो से है, नही (अस्ति नास्ति अवक्तव्य) रूप होती है; जैसे—राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की अपेक्षा युगपद् रूप से कुछ भी नही कहे जा सकते (अवक्तव्य है) किन्तु युगपद् अपेक्षया अवक्तव्य होकर भी क्रमश राम राजा दशरथ के पुत्र है, राजा जनक के पुत्र नही है।

इस प्रकार सप्तभंगी प्रत्येक पदार्थ के विषय मे लागू होती है। सप्तभङ्गी के लागू होने के विषय मे मूल बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ मे अनुयोगी (अस्तित्व-रूप) और प्रतियोगी (अभावरूप-नास्तित्व रूप) धर्म पाये जाते हैं तथा अनुयोगी-प्रतियोगी धर्मों को युगपद् (एक साथ) किसी भी शब्द द्वारा न कह सकने योग्य रूप अवक्तव्य धर्म भी प्रत्येक पदार्थ मे विद्यमान है। अनुयोगी, प्रतियोगी और अवक्तव्य इन तीनो धर्मो के एक सयोगी (अकेले-अकेले) तीन भग होते है तथा तीनो का मिलकर त्रि-संयोगी भग एक होता है। इस तरह सब मिलाकर सात भग हो जाते है।

आचार्य कहते है—'**अक्षरेण मिमते सप्त वाणी**' :—सप्तविध वाक् अक्षरो द्वारा व्यक्त है। यहाँ प्रथमा, द्वितीयादि सप्त विभक्तियाँ ही ज्ञातव्य नही है, अपितु वाक् की सप्तभगिमाएँ भी व्याख्यात हुई है। 'सप्त व्याहृति' वाणी को सप्तविध–सख्यान ही होनी चाहिये। नही तो कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन, सम्बन्ध, अधिकरण आदि कारक कैसे सिद्ध कर सकोगे; इसलिए सप्तविध भग ही शब्द-शास्त्र से एव वाणी से कथन करना सम्भव है।

स्याद्वाद :

'स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते।
अहिंसायाः प्रधानत्वं, जैनधर्मः स उच्यते॥

जानने और कहने मे बहुत भारी अन्तर है, क्योकि जितना जाना जा सकता है उतना कहा नही जा सकता। इसका कारण यह है कि जितने ज्ञान के अंश है, उन ज्ञान-अंशो के वाचक न तो उतने शब्द ही है और न ही उन सब ज्ञान-अंशो को कह डालने की शक्ति जीभ मे है।

सामान्य दृष्टान्त है कि हम अगूर, आम, अनार खाकर उनकी मिठास के अन्तर (मिष्ठता) को यथार्थतः पृथक्-पृथक् नही कह सकते। किसी भी इष्ट या अनिष्ट पदार्थ के छूने, सूंघने, देखने, सुनने मे जो आनन्द या दुःख होता है, कोई भी मनुष्य उसे इन्द्रिय-जन्य ज्ञान को ठीक उसी रूप मे

मुख द्वारा कह नही सकता । परीक्षा मे उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी को अपना परीक्षाफल जानकर जो हर्ष हुआ, उस हर्ष को हजार यत्न करने पर भी वह ज्यों-का-त्यो कह नही सकता । गठियावात के रोगी को गठियावात की जो पीडा होती है, उसे वह शब्दों मे नही बतला सकता ।

इस तरह एक तो जानने और कहने में यह एक बड़ा भारी अन्तर है । दूसरे जितना विषय एक समय मे जाना जाता है यदि उसे मोटे रूप से भी कहना चाहे तो उसके कहने मे जानने की अपेक्षा समय बहुत अधिक लगता है । किसी सुन्दर उद्यान का एक दृश्य देखकर जो उस बगीचे के विषय मे एक ही मिनट मे ज्ञान हुआ, उस सब को कहने मे अनेक मिनट ही नही अपितु अनेक घंटे लग जाएंगे; क्योंकि जिन सब बातो को नेत्रो ने एक मिनट मे जान लिया है, उनको जीभ (युगपद्) एक साथ कह नही सकती । उन बातो को क्रम से एक-एक करके कहा जा सकेगा ।

इसी कारण प्राचीन ग्रंथकारो ने लिखा है कि सर्वज्ञ अपने ज्ञान द्वारा जितना त्रिकालवर्ती तथा त्रिलोकवर्ती पदार्थों को युगपद् (समसामयिक) जानता है, उसका अनन्तवां भाग विषय उसकी वाणी से प्रगट होता है । जितना दिव्य-ध्वनि से प्रगट होता है उसका अनन्तवां भाग चार ज्ञान-धारक गणधर अपने हृदय मे धारण कर पाते हैं । जितना विषय धारण कर पाते है तथा उसका अनन्तवां भाग शास्त्रो मे लिखा जाता है ।

इस प्रकार जानने और उस जाने हुए विषय को कहने मे महान् अन्तर है । एक साथ जानी हुई बात को ठीक उसी रूप मे एक साथ कह सकना असम्भव है ।

अतः जिस पदार्थ के विषय मे कुछ कहा जाता है तो एक समय मे उसकी एक ही बात कही जाती है, उस समय उसकी अन्य बातें कहने से छूट जाती हैं; किन्तु वे अन्य बातें उसमे होती अवश्य हैं । जैसे कि जब यह कहा जाए कि 'राम राजा दशरथ के पुत्र थे' ।

उस समय राम के साथ लगे हुए सीता, लक्ष्मण, लव-कुश आदि अन्य व्यक्तियो के पति, भ्राता, पिता आदि के सम्बन्ध कहने से छूट जाते हैं, जो कि यथार्थ हैं । यदि उन छूटे हुए सम्बन्धो का अपलाप कर लिया जाए (सर्वथा छोड दिया जाए) तो राम-सम्बन्धी परिचय अधूरा रह जाएगा और इसी कारण वह कहना गलत प्रमाणित होगा । इस गलती या अधूरेपन को हटाने के लिए जैन-धर्म-सिद्धान्त ने प्रत्येक वाक्य के साथ 'स्यात्' शब्द लगाने का निर्णय दिया है ।

'स्यात्' शब्द का अर्थ 'कथंचित्' यानी 'किसी-दृष्टिकोण से' या 'किसी अपेक्षा से' है । अर्थात् जो बात कही जा रही है, वह किसी एक अपेक्षा से (किसी एक दृष्टिकोण से) कही जा रही है, जिसका अभिप्राय यह प्रगट होता है कि यह विषय अन्य दृष्टिकोणो से या अन्य अपेक्षाओ मे अन्य अनेक प्रकार भी कहा जा सकता है ।

तदनुसार राम के विषय मे यो कहेंगे—स्यात् (राजा दशरथ की अपेक्षा) राम पुत्र हैं । 'स्यात्' (सीता की अपेक्षा) राम 'पति' हैं । स्यात् (लक्ष्मण की अपेक्षा) राम 'भ्राता-भाई' हैं । स्यात् (लवकुश की अपेक्षा) राम 'पिता' हैं । स्यात् (राजा जनक की अपेक्षा) राम 'जामाता' (दामाद) हैं ।

इस तरह 'स्यात्' शब्द लगाने से उस बड़ी भारी त्रुटि उपर्युक्त पाँच बातो में से एक ही बात कहने पर होती है, का सम्यक् परिहार हो जाता है । यानी–राम 'पुत्र' तो हैं, किन्तु वे सर्वथा (हर तरह से) पुत्र ही नही है, वे पति, भाई, पिता, दामाद आदि भी तो है । हाँ, वे राजा दशरथ की अपेक्षा से पुत्र ही है । इस 'अपेक्षा' शब्द से उसके अन्य दूसरे पति, भाई, पिता, दामाद आदि सम्बन्ध सुरक्षित रहे आते है ।

इस प्रकार 'स्यात्' निपात के सयोग से ससार के सभी सैद्धान्तिक विवाद शान्त हो जाते हैं और पूर्ण सत्य का ज्ञान हो जाता है ।

जगत् के विभिन्न मत-मतान्तर अपने-अपने एक-एक दृष्टिकोण ही को सत्य मानकर दूसरो के दृष्टिकोण से प्रकट की गई मान्यता असत्य बतलाकर परस्पर विवाद करते हैं । उनका विवाद 'स्यात्' पद लगाकर दूर किया जा सकता है ।

अनेकान्तवाद और सप्तभगी स्याद्वाद के रूपान्तर है । स्याद्वाद एक वास्तविक अकाट्य सिद्धान्त है; किन्तु यह दार्शनिक तर्क-विषय है, अत. कुछ कठिन है । अनेक व्यक्ति इसका स्वरूप ठीक न समझ सकने के कारण इसे गलत ठहराने का यत्न करते है । ऐसी त्रुटि साधारण व्यक्ति ही नहीं, बड़े-बडे विद्वान् भी कर जाते है ।
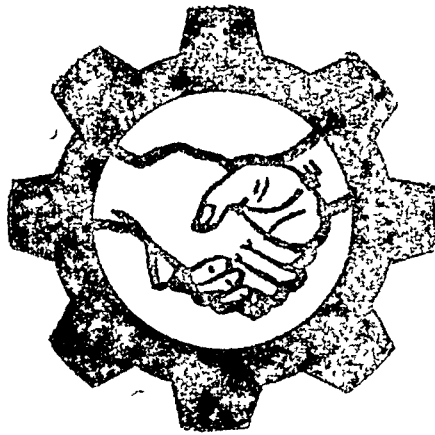
१६ | जैन संस्कृति का विकास

●

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

१. कालचक्र और प्रागैतिहासिक काल

धर्म और संस्कृति :

इतिहास अतीत की कहानी है और उसका एक उद्देश्य उन पुराण पुरुषों के पुण्यचरित्र की स्मृति का संरक्षण है, जिन्होंने मानव समाज के उन्नयन में उल्लेखनीय योग दिया है। राजनैतिक, आर्थिक आदि लौकिक क्षेत्रों में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों का इतिवृत्त लौकिक इतिहास में दिया जाता है, तो सांस्कृतिक इतिहास में धार्मिक संस्कृति के विकास में पथचिह्न बनने वाले और लोक को कल्याणकारी सुपथ दिखाने वाले महापुरुषों का चरित्र चित्रण होता है।

संस्कृति प्रायः सदैव से सर्वत्र धर्माश्रित रहती आई है और प्रत्येक संस्कृति की पृष्ठभूमि में तत्तद् धर्म की कतिपय मौलिक मान्यतायें नींव के रूप में रहती हैं। अस्तु, जब हम प्रदेश विशेष राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में जैन संस्कृति का अध्ययन करने के लिए उक्त संस्कृति के उद्गम एवं विकास का अनुसंधान करते हैं तो वह तत्सम्बन्धी जैन परम्पराओं एवं मान्यताओं के आश्रय से ही करते हैं, जो स्वाभाविक भी है, उचित और युक्तियुक्त भी।[1]

विश्व : अनादि-अनन्त :

जैनधर्म एवं संस्कृति की यह असंदिग्ध मौलिक मान्यता है कि चराचर जगत् या विश्व अनादि और अनन्त है। जो विभिन्न एवं विविध द्रव्य विश्व के उपादान हैं, जिनसे कि वह निर्मित है, वह सब भी अनादि और अनन्त हैं। असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं होती, और सत् का कभी विनाश नहीं होता। अतएव, इस विश्व की न कभी किसी ने सृष्टि की, और न कभी किसी के द्वारा उसका अन्त ही होगा, किन्तु साथ ही, इस शाश्वत जगत् में उसके उपादान द्रव्यों में निरन्तर परिवर्तन, परिणमन, पर्याय से पर्यायान्तर होते रहते हैं। वर्तमान पर्याय का नाश होता है और नवीन का उत्पाद और इसका निमित्त है कालचक्र।

१—[illegible], द [illegible] ऑव जैनाज, पृ० १८

कालचक्र :

काल का प्रवाह भी अनादि-अनन्त है। काल का सबसे छोटा अविभाज्य अंश 'समय' कहलाता है, और सबसे बड़ी व्यवहार्य इकाई 'कल्पकाल'। एक कल्पकाल का परिमाण बीस कोटाकोटि 'सागर' होता है जो स्थूलतः संख्यातीत वर्षो का होता है। प्रत्येक कल्पकाल के दो विभाग होते है—एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी, जो एक के अनन्तर एक आते रहते है। अवसर्पिणी उत्तरोत्तर ह्रास एव अवनति का युग होता है। और उत्सर्पिणी उत्तरोत्तर विकास एवं उन्नति का। इन दोनो मे से प्रत्येक छ भागों में विभक्त होता है, और अवसर्पिणी के प्रारभ से उक्त छः युगो या कालो की गणना प्रारम्भ होती है। यथा—प्रथमकाल (सुखमा-सुखमा), द्वितीयकाल (सुखमा), तृतीय काल (सुखमा-दुखमा), चतुर्थकाल (दुखमा-सुखमा), पचमकाल (दुखमा), और षष्ठकाल (दुखमा-दुखमा)।

इनमे से प्रथम काल मे मनुष्यो एवं अन्य प्राणियो के शरीर का बल, आकार, आयु आदि सर्वाधिक होते है और सर्वप्रकार का शारीरिक एव मानसिक सुख अत्यन्त होता है। दूसरे काल मे इन सब चीजो मे कमी होती जाती है, तीसरे मे और अधिक कमी होती है तथा साथ मे दुःख का भी समावेश होने लगता है, तथापि ये तीनों काल सुख एवं भोग प्रधान होते है और जीवन पूर्णतया प्रकृत्याश्रित होता है, अतएव सामूहिक रूप से प्रथम तीनो काल भोगयुग या भोगभूमि काल कहलाते हैं। चौथे काल से कर्मभूमि या कर्मयोग का उदय होता है। शरीर के आकार, बल, आयु, सुख और भोग मे उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है, तथा दुःख की प्रधानता होने लगती है। मात्र प्रकृति पर निर्भर रहने से काम नहीं चलता। स्वपुरुषार्थ एव कृत्रिम उपायो का सहारा अनिवार्यतः आवश्यक हो जाता है। अतएव इस चौथे काल मे ही तीर्थकरो के रूप मे महान् जननेताओ का आविर्भाव होता है, जो अपने-अपने समय मे मनुष्यो को सुकर्म और धर्म की शिक्षा देते है। पाँचवे काल मे जीवन सघर्ष मे और अधिक वृद्धि हो जाती है तथा सुख नाम मात्र का ही रह जाता है। छठे काल मे आत्यन्तिक दु ख की प्रधानता रहती है और इस काल के अन्त तक सर्वव्यापी पतन अपनी चरमावस्था को पहुँच जाता है तथा ह्रास चक्र की चरम सीमा स्पर्श कर्ता है। उसके उपरान्त, घडी के पेन्डुलम की भाति, कालचक्र पीछे को लौटता है—उसका प्रत्यावर्तन होता है और पुन' छठे से प्रारम्भ होकर पाँचवां, चौथा, तीसरा, दूसरा, और पहिला काल क्रमशः आते है। यह उत्सर्पिणी का युग उत्तरोत्तर विकास एवं उन्नति का युग होता है।[1] इसके प्रथम तीन कालों मे कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है और अन्तिम तीन मे भोमभूमि की। इस अनादि कालचक्र मे युगारंभ एवं वर्षारंभ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से होता है।

अनन्त आकाश के एक भाग मे पुरुषाकार परिमित लोक है। उसी मे जीव-अजीव आदि विभिन्न द्रव्य पाये जाते है, वही चराचर जगत् और हमारा विश्व है। उसके मध्यभाग को मध्यलोक कहते है। मध्यलोक के ठीक मध्य मे जम्बूद्वीप है जिसके केन्द्र मे सुमेरु पर्वत स्थित है और चारो ओर लवण समुद्र है। इस जम्बूद्वीप के ही एक भाग मे, उत्तर मे हिमवन पर्वत तथा दक्षिण मे तीन ओर लवणसमुद्र से वेष्ठित भरत क्षेत्र है। इसके मध्य मे विजयार्थ पर्वत है। हिमवन पर्वत से निकल कर, अनेक सहायक नदियों के परिवार से युक्त होकर, एक पूर्व की ओर और दूसरी पश्चिम की ओर वह

१–शूब्रिंग, द डाक्ट्रिन ऑव जैनाज, पृ० १८–१९

संभवतया इन्ही के नाम पर इस देश का प्राचीनतम नाम अंननाभ या अननाभ प्रसिद्ध हुआ था। इस समय तक समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो चुके थे, किन्तु साथ ही सहज उत्पन्न विविध औषधियां, धान्य, फल-फूलादि उगने लगे थे। नाभिराय ने क्षुधानिवारण के लिये इन स्वतः उत्पन्न शालि, जौ, बल्ल, तुवर, तिल, उड़द आदि का भक्षण करना बताया। एक मतानुसार उन्होने अग्नि जलाना, अन्न पकाना और कपडे बुनना भी सिखाया। अन्य मतानुसार ये आविष्कार उनके पुत्र ऋषभदेव ने अपने कुमारकाल में किये थे।[1] अन्तिम चार कुलकरो के समय मे दण्डनीति में 'धिक्कार' का भी प्रयोग होने लगा था।

जैन परम्परा मे मान्य भोगभूमि की व्यवस्था तथा कुलकरो से सम्बन्धित वर्णन आधुनिक चिन्तको एवं विचारक मनीषियो के उस वर्णन के साथ अद्भुत सादृश्य रखते है जो वे मानवजाति की आदिम शैशावास्था मे मानवीय सभ्यता के उदयकाल तक हुये, उसके विकास-क्रम के सम्बन्ध मे प्रतिपादित करते हैं। कुलो, जनो, कबीलो आदि की मान्यता भी अमरीका के आदिवासियो तथा यूनान एवं रोम के आदिवासियो मे उसी प्रकार रही मानी एव जानी जाती है।[2] ये तथ्य जहाँ इस जैन परम्परा को विश्वसनीय सिद्ध करते हैं, वही जैन धर्म एवं संस्कृति की अत्यन्त प्राचीनता के भी सूचक हैं।

तीसरे काल अर्थात् भोगभूमि और कुलकर युग के साथ वास्तविक प्रागैतिहासिक युग समाप्त हो जाता है और अनुश्रुतिगम्य इतिहास (प्रोटोहिस्टरी) का प्रारम्भ होता है। कर्मभूमि और सभ्यता एवं सस्कृति के इतिहास का भी वही से ॐ नमः होता है, और इस आने वाले युग के प्रमुख नेता चौबीस तीर्थंकर है तथा गौण नेता उनतालिस अन्य महापुरुष है जो सब मिलकर त्रिषष्टिशलाका-पुरुष कहलाते है।[3]

तीर्थ नाम धर्मशासन का है अतएव जो महापुरुष जन्म-मरण रूपी दुःख के आगार ससार सागर से पार करने के लिये धर्मतीर्थ की स्थापना या प्रवर्तन करते है, वे तीर्थंकर कहलाते है। आगे के समय मे ऐसे चौबीस तीर्थंकर हुये। उनके अतिरिक्त बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव (नारायण), नौ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) तथा नौ बलदेव (बलभद्र), इस प्रकार कुल मिलाकर त्रेसठ शलाका पुरुष हुये।

२. ऋषभ से नमि पर्यन्त—इक्कीस तीर्थंकर

ऋषभदेव :

अन्तिम कुलकर नाभिराय की चिरसगिनी मरुदेवी की कुक्षि से प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ का जन्म चैत्र कृष्णा नवमी (अष्टमी) के दिन हुआ था। इनके जन्मस्थान पर ही अयोध्या (इक्ष्वाकु भूमि) नाम की नगरी बसी, जिसके अपरनाम विनीता और साकेत भी हुये। भगवान का लांछन वृषभ था। तथा ऋषभ शब्द का अर्थ धर्म है, और यह स्वय धर्म के साक्षात्, सर्वप्रथम, सजीव रुप थे, अतएव इनका नाम

१—तिलोयपण्णति, IV गा० ४२१–५०६, पृ० १६७–२०६; आचार्य हस्तीमलजी, वही पृ० ३–५, ६११–६१२; सिकदार, वही, पृ० १४३–१४६; शूब्रिंग, वही पृ० १६–२०

२—सिकदार, वही, पृ० १४२–१४३, १५०; एन्जेल्स कृत दी ओरिजिन ऑव दी फैमिली, पृ० २४–२६, ८३–८४।

३—जिनसेन गुणभद्र कृत महापुराण तथा हेमचद्र कृत त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्।

ऋषभ, ऋषभदेव या ऋषभनाथ (वृषभदेव या वृषभनाथ भी) प्रसिद्ध हुआ। इनके गर्भ में आते ही देवताओ ने जन्मस्थान मे स्वर्णवृष्टि की थी, इसी से ये हिरण्यगर्भ भी कहलाये। वयस्क होते ही इन्होने कुलो की व्यवस्था अपने हाथ मे ले ली अतएव ये कुलकर और मनु भी कहलाये, साथ ही प्रथम मानव (मनुओ की सन्तान) भी थे। इस कल्पकाल मे मानवी सभ्यता के आद्य जनक होने के कारण आदि पुरुष भी थे। प्रथम लोकनायक होने के कारण आदिनाथ, परमात्मपद को प्राप्त होने वाले प्रथम व्यक्ति होने के कारण आदिदेव, आदीश्वर, आदिब्रह्म तथा महादेव कहलाये। इन्होने जो कुछ किया स्वयं किया, किसी अन्य की शिक्षा या उपदेश से नही किया, अतएव ये स्वयभू थे और प्रजा का विधिवत पालन करने के कारण प्रजापति भी कहलाते थे। इक्षुदण्ड (गन्ने) का रस निकालना और उस रस को भौज्य पदार्थ के रूप मे पान करना इन्होने सर्वप्रथम लोगो को सिखाया। इसलिये वे इक्ष्वाकु एवं काश्यप नामों से भी प्रसिद्ध हुये, जो कि उनकी सन्तति के क्रमशः वंश एव गोत्र नामों के रूप मे प्रचलित हुये इस प्रकार भगवान ऋषभ के अनेक सार्थक नाम लोकप्रसिद्ध हुए।

अनुश्रुति है कि इन आदि पुरुष ने ही सर्वप्रथम जनता को खेती करना, आग जलाना, आग मे अन्न को भूनना, पकाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, कपड़ा बुनना, मकान बनाना, ग्राम-नगर आदि बसाना सिखाया था। इन्होने लोगों को असि-मसि-कृषि-शिल्प, वाणिज्य-विद्या नामक षट कर्मो द्वारा जीविकोपार्जन करने का तथा पुरुषो की बहत्तर और स्त्रियो की चौसठ कलाओ का ज्ञान तत्कालीन जनता की बुद्धि, ग्रहणशीलता एवं लोकदशा के अनुरूप दिया था। समाज-व्यवस्था के लिये उन्होंने मनुष्यो को उनके कर्म, रुचि एव प्रवृत्ति के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र, इन तीन वर्णो मे विभाजित किया। यह वर्णभेद वर्ण या प्रतिष्ठाभेद सूचक न था, मात्र कर्मभेद सूचक था और अपरिवर्तनीय भी नही था। भगवान ने कच्छ और सुकच्छ की पुत्रियो नन्दा और सुनन्दा (अथवा सुनन्दा और सुमंगला अपरनाम यशस्वती) के साथ विवाह करके मानव समाज मे सर्वप्रथम विवाह प्रथा प्रचलित की। इन दोनो पत्नियो से उनके अनेक पुत्र और ब्राह्मी एवं सुन्दरी नाम की दो कन्याये उत्पन्न हुईं। उन्होंने पुत्रियो को भी पुत्रो के समान ही शिक्षा दी—ब्राह्मी को अक्षर ज्ञान की शिक्षा देने के निमित्त से ही प्राचीन ब्राह्मी लिपि का आविष्कार हुआ और सुन्दरी को अक ज्ञान दिया। इस प्रकार भगवान ऋषभ ने प्रजा का सम्यक्रित्या पालन, पथप्रदर्शन एवं नेतृत्व चिरकाल तक किया। ज्ञान-विज्ञान एवं विविध कलाओं की शिक्षा, सामाजिक सगठन, अर्थव्यवस्था, राज्य प्रशासन आदि के रूप मे मानवीय सभ्यता एव संस्कृति के बीजारोपण का प्रधान श्रेय इन्ही आदि पुरुष को है।

एक दिन उनकी राज्य सभा मे नीलांजना नाम की नर्तकी की नृत्य करते-करते मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक दुर्घटना को देखकर[1] भगवान् को ससार-देह-भोगो की अस्थिरता एवं क्षण-भगुरता का भान हुआ। उनके चित्त मे विराग उत्पन्न हुआ और उन्होने सर्वस्व का परित्याग कर, वन मे जाकर प्रव्रज्या ले ली तथा सर्व परिग्रह विमुक्त हो निग्रन्थ मुनि के रूप मे इन योगिराज ने दुर्द्धर तपश्चरण द्वारा आत्मसाधन करना प्रारंभ किया। अन्य अनेक व्यक्तियो ने उनका अनुकरण किया, किन्तु उनमे से प्रायः कोई भी उक्त कठिन मार्ग पर न चल सके और अपने पथ से विचलित हो गये। स्वय योगीश्वर भगवान ने एक स्थान पर ही कायोत्सर्ग योग से खडे रहकर छ, मास की

१—यह उल्लेख दिगम्बर मान्यता के अनुसार है—सम्पादक

समाधि लगाई। उस अवधि के बीतने पर पारणा करने के लिये यत्र-तत्र विहार किया। वे मौन रहते थे, और लोग जानते नही थे कि वे क्या चाहते हैं अथवा उन्हे क्या करना है। इस प्रकार छः मास और व्यतीत हो गये। एक बार वे गजपुर (हस्तिनापुर) पधारे वहा राजा सोमयश के अनुज श्रेयास कुमार ने पूर्वजन्म के सस्कारो से प्रेरित होकर भगवान् को इक्षुरस का आहार दिया। वह वैसाख शुक्ला तृतीया का दिन था जो तभी से अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस घटना की पुण्यस्मृति मे कुमार श्रेयास ने दानस्थल पर एक रत्नमय स्तूप का निर्माण कराया।

भगवान् वहा से विहार करके पुन. तपश्चरण मे लीन हो गये। एक समय जब वे पुरिमताल नगर (वर्तमान प्रयाग-इलाहाबाद) के बाहर एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे, उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वे सर्वज्ञ, केवलि, जिन, अर्हत परमेष्टि हो गये और स्वपुरुपार्थ से उक्त परमपद को प्राप्त करने के कारण वे स्वयभु थे। वह वटवृक्ष भी अक्षयवट के नाम से लोकप्रसिद्ध हुआ।

अब ये सर्वज्ञ—'वीतराग-हितोपदेशी जिनेन्द्र देश-देश मे विहार करके लोक कल्याणार्थ धर्म प्रचार करने लगे। इस धर्म तीर्थ प्रवर्तन द्वारा उन्होने अपना तीर्थंकर पद चरितार्थ किया। एक अनुश्रुति के अनुसार यह धर्म चक्र प्रवर्तन सर्वप्रथम तक्षशिला नगरी मे हुआ था। भारत महादेश के राष्ट्रीय ध्वज चिह्न 'धर्म चक्र' का इतिहास यही से प्रारंभ होता है। भगवान की व्याख्यान सभा मे सभी प्राणियो को बिना किसी भेदभाव के धर्म लाभ लेने का समान अवसर प्राप्त था, इसी कारण वे सभाये 'समवसरण' कहलाती थी।

चिरकाल तक अपने धर्मोपदेश द्वारा लोकहित करने के उपरान्त फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी (मतान्तर से माघ कृष्णा त्रयोदशी) की रात्रि मे कैलाश पर्वत (अब चीन अधिकृत तिब्बत मे स्थित) पर भगवान् ने निर्वाण-लाभ किया और मुक्तिरूपी शिव लक्ष्मी का वरण किया। तभी से शिवरात्रि पर्व प्रसिद्ध हुआ।

ये युगादि पुरुष भ० ऋषभदेव इस कल्पकाल मे धर्म के सर्वप्रथम प्रवर्तक और जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर थे।[1]

पौराणिक हिन्दू धर्म मे भगवान ऋषभ की गणना विष्णु के प्रारम्भिक प्रमुख अवतारो मे की गई है। भागवत्, विष्णु, ब्रह्माड आदि अनेक ब्राह्मणीय पुराणो मे जैन अनुश्रुति से प्राय सर्वथा मिलता-जुलता ही उनका वर्णन मिलता है। प्राचीन ऋग्वेदादि वेद ग्रन्थो तथा उत्तरकालीन बौद्ध त्रिपिटको मे भी भगवान् ऋषभ के एकाधिक उल्लेख मिलते है। सिन्धु घाटी की पाच-छ सहस्र वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेषो के उत्खनन मे प्राप्त नग्न—कायोत्सर्ग-ध्यानस्थ योगियो की मृण्मुद्राओ से उस काल एव प्रदेश मे ऋषभ धर्म तथा ऋषभदेव की उपासना का प्रचलन रहा पाया जाता है। प्राचीन यूनानी लेखको के मेरु पर्वत निवासी आद्य भारतीय महापुरुष डायोनिसस से भी आदि पुरुष ऋषभदेव का ही अभिप्राय है। कई विद्वान तो पौराणिक देवता शिव (महादेव या शकर) की कल्पना का मूलाधार ऋषभ को ही मानते हैं। सेमेटिक (यहूदी-ईसाई-मुस्लिम आदि) परम्पराओ

---

१. महापुराण; त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित, सी० आर० जैन, वही, का० प्र० जैन, वही, पृ० ४१-४५, हीरालाल जैन, वही. पृ० ११, आचार्य हस्तीमलजी, वही, पृ० १३-६३; ज्यो० प्र० जैन, वही, पृ० २२-२४।

के आद्य मानव बाबा आदम भी आदि पुरुष ऋषभदेव ही प्रतीत होते है।[1] आधुनिक दृष्टि से भगवान् ऋषभ का सुनिश्चित समय निर्धारित करना तो अत्यन्त दुष्कर है, किन्तु उनका अस्तित्व था इस विषय मे सदेह करने की गुंजाइश नही है।

ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी महाराज भरत थे, जो प्रथम तीर्थंकर के श्रावकोत्तम एव प्रधान श्रोता भी थे। जो व्यक्ति धर्मात्मा, मन्दकषायी, अल्प संतोषी एव ज्ञान-ध्यान मे लीन रहने वाले थे, उन्हे भरत ने ब्राह्मण सज्ञा देकर चतुर्थ वर्ण की स्थापना की। भरत ही सभ्य ससार के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे। उन्होने छ खंड पृथ्वी को दिग्विजय करके वसुंधरा का उपभोग किया। उन्ही भरत के नाम पर यह महादेश भारतवर्ष या भारत कहलाया।[2] यह तथ्य महापुराण आदि प्राचीन जैन ग्रन्थो से ही नही, भागवत्, विष्णु आदि ब्राह्मण पुराणों एव वैदिक साहित्य से भी भलीभाति सिद्ध है।

सम्राट भरत के अनुज बाहुबलि अत्यन्त वीर एवं बलशाली थे। उन्हे तक्षशिला का — मतान्तर से दक्षिण देशस्थ-पोदनपुर का राज्य मिला था। जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये निकले तो मात्र बाहुबलि ही ऐसे नरेश थे जिन ने विना युद्ध किये उनकी प्रभुसत्ता मानना अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप दोनो भाइयो के बीच भीषण द्वन्द्व युद्ध हुआ, जो अनिर्णीत रहा, किन्तु बाहुबलि संसार से विरक्त हो गये और राज्य का परित्याग करके मुनि हो गये। एक ही स्थान मे निश्चल ध्यानावस्थित खडे रहकर उन्होने चिरकाल तक दुर्द्धर तप किया। इन्ही गोम्मटेश्वर बाहुबलि की अति विशाल-काय प्रतिमाये दक्षिण भारत के अनेक स्थानो मे विद्यमान है और संसार के आश्चर्यो मे गिनी जाती है।

बाहुबलि के एक पुत्र सोमयश गजपुर के नरेश थे—उन्ही से प्राचीन क्षत्रियो का चन्द्र या सोमवश चला। इनके एक वंशज कुरु के नाम से कुरु देश या कुरु नागल देश और कुरु वश प्रसिद्ध हुये, तथा एक अन्य वंशज हस्तिन के समय से गजपुर का नाम बदल कर हस्तिनपुर या हस्तिनापुर हुआ। हरिवश आदि अन्य प्रमुख प्राचीन वशो का प्रारभ भी आगे-पीछे इसी काल मे हुआ—यादव वश हरिवश की ही एक शाखा थी। कुलकरो और तीर्थकरो का पूर्वोक्त वश मूलत. मानव वंश कहलाता था—उसी की उपर्युक्त शाखा-प्रशाखाये होती चली गई। इन मानववशियो के अतिरिक्त नागफणि, ऋक्ष, यक्ष, असुर गधर्व, किन्नर, वानर आदि अनेक विद्याधर वशी मनुष्य जातिया भी इस भूखण्ड के विभिन्न भागो मे निवास करती थी। अनेक आधुनिक विद्वानो के मतानुसार इन्ही की वशज तथाकथित द्राविड जातिया है। प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी आदि सभ्यताओ के जनक भी यही आर्येतर विद्याधर वशी जातिया रही, ऐसा अनुमान किया जाता है। लौकिक विद्याओ और कलाओ मे

---

१ ज्यो० प्र० जैन, वही, पृ० २६-२८, तथा जैनिज्म. दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ४०-६१, हीरालाल जैन, वही, पृ० ११-१८, का० प्र० जैन, वही, पृ० ४४-४७, ६०—६५; आ० हस्ती-मलजी, वही, पृ० ५७-६३।

२ स्वामी कर्मानन्द—भारत का आदि सम्राट, तथा भरत और भारत; जयचन्द्र विद्यालकर, भा० इति० की रूपरेखा, पृ० १४६, ३४३, ज्यो० प्र० जैन-जैनिज्म दी ओलडेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ४७ तथा भा० इति० एक दृष्टि, पृ० २४।

विद्याधर लोग मानवों की अपेक्षा कही अधिक बढे-चढे थे, किन्तु धर्म साधना, दार्शनिक चिन्तन एव आध्यात्मिक सस्कृति के नेता मानव वंशी ही प्रायः रहे।[1]

अजितनाथ :

ऋषभदेव के निर्वाण के वहुत समय उपरान्त साकेत (अयोध्या) मे ही इक्ष्वाकुवशी-काश्यप गोत्रीय राजा जितशत्रु की रानी विजया (विजयासेना) की कुक्षि से दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ का जन्म हुआ। इनका लाछन हस्ति था। वहुत समय तक राज्य एव गृहस्थ का उपभोग करके इन्होने दीक्षा ली, तपस्या की, केवल ज्ञान प्राप्त किया और यत्र-तत्र विहार करके धर्मोपदेश दिया। अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण लाभ किया। तीर्थंकर अजितनाथ के ही तीर्थ मे, उनके निर्वाण के कुछ समय पश्चात् उसी इक्ष्वाकु वंश एव अयोध्या नगरी मे राजा समुद्र विजय और रानी सुवला का पुत्र सगर भरत क्षेत्र का दूसरा चक्रवर्ती सम्राट हुआ। इस सगर चक्रवर्ती और उसके साठ हजार पुत्रो की कथा ब्राह्मणीय पुराणो में भी पाई जाती है।[2]

संभवनाथ :

तीसरे तीर्थंकर सभवनाथ भी इक्ष्वाकु वशी थे, किन्तु उनका जन्म श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश के वहराइच जिले का सहेट महेट नामक स्थान) मे हुआ था। इनके पिता का नाम दृढराज (या जितारि) और माता का सुषेणा (या सेना) था। लांछन अश्व था। चिरकाल तक गृहस्थ सुख का उपभोग करके इन्होने वन की राह ली, तप किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया, लोगो को धर्मोपदेश दिया और अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया।"[3] प्राचीन श्रावस्ती के स्थान पर सहेट-मेहट के खडहरो मे तीर्थंकर सभवनाथ के एक प्राचीन मदिर के भग्नावशेष अव तक खडे है। सिंधु देश के मौर्यकालीन संभूत्तर जनपद के निवासियो के पूर्वज तथा वे स्वय भ० सभवनाथ के विशेष भक्त रहे प्रतीत होते हैं। सिन्धु देश अश्वो के लिये प्रसिद्ध रहा है—अश्व का एक पर्यायवाची ही सैन्धव हैं। सभव है कि अश्वपालन एव प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी (मोहनजोदडो आदि को) सभ्यता के उदय का प्रारंभ अश्वलांछन तीर्थ कर सभवनाथ के तीर्थ मे ही हुआ हो।

अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ :

चौथे तीर्थंकर अभिनन्दननाथ का लाछन वानर था, पिता का नाम स्वयवर (या सवर) और माता का सिद्धार्था था, वंश इक्ष्वाकु, जन्म स्थान अयोध्या और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था।[4] पाचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ भी उसी वंश और उसी नगर मे उत्पन्न हुये थे, मोक्ष स्थान भी वही था। इनका लाछन चक्रवाक (क्रौच) था, पिता का नाम मेघरथ (मेघ) और माता का मंगला (या सुमगला) था।[5] छट्ठे पद्मप्रभु का जन्म कौशाम्बी नगरी मे हुआ था, पितृवश एव मोक्ष स्थान

---

१. देखिये—भा० इति० एक दृष्टि, पृ० २२-२३; का० प्र० जैन, वही, पृ० ५४-५८।

२ गुणभद्र—उत्तर पुराण, पर्व ४८. अजितादि आगे के तीर्थंकरो के वर्णन का मुख्य आधार यही पुराण ग्रन्थ बनाया गया है। दिगम्बर-श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायो की इन तीर्थंकरो से सबंधित अनुश्रुतियां प्रायः समान हैं। कही-कही कोई-कोई साधारण से अन्तर हैं।

३. उत्तरपुराण, पर्व ४९, ४. वही, पर्व ५०, ५. वही, पर्व ५१

वही था, लाछन पद्म (लाल कमल) था, माता का नाम सुसीमा और पिता का नाम 'धरण' या (धर) था।[1] कोशाम्बी के निकट पभोसा (प्रभास) नाम की पहाडी इनका तप एवं केवलज्ञान स्थान मानी जाती है। सातवे तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का लाछन स्वस्तिक था, पितृवश इक्ष्वाकु, जन्म स्थान वाराणसी, पिता का नाम सुप्रतिष्ठ (प्रतिष्ठ) और माता का पृथिवीषेणा (पृथ्वी) था, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था।[2] तीर्थंकर सुपार्श्व की प्रतिमाये बहुधा सर्प-छत्र युक्त पाई जाती है। मथुरा का जैन स्तूप सर्वप्रथम इन्ही के समय मे देवो द्वारा निर्मित हुआ था, ऐसी अनुश्रुति है। नागजाति के विद्याधरो मे इनकी मान्यता विशेष रही प्रतीत होती है। प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता का यह प्रायः मध्य काल था। स्वस्तिक का वहा बहुत प्रचार था, सड़के भी प्रायः स्वस्तिकाकार बनाई जाती थी। क्या आश्चर्य है कि योगिराज सुपार्श्व की मान्यता वहा विशेष रही हो।

चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ :

आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का लांछन चन्द्रमा, जन्म स्थान चन्द्रपुर, वंश इक्ष्वाकु, पिता का नाम महासेन, माता का लक्ष्मणा और निर्वाण स्थान सम्मेद शिखर था।[3] चन्द्रप्रभ अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय तीर्थंकरों मे से एक है। इनकी प्रतिमायें बहुलता से प्राप्त होती है। नौवे तीर्थंकर पुष्पदन्त का अपरनाम सुविधिनाथ था, पितृवंश इक्ष्वाकु, पिता का नाम सुग्रीव, माता का जयरामा (रामा) था, जन्म स्थान काकदी नगरी (देवरिया जिले का वर्तमान खुखुन्दो) थी और मोक्ष स्थान सम्मेद-शिखर था। इनका लांछन नक्र (मगर) था।[4] ब्राह्मणायी पुराण साहित्य मे इनका उलेल्ख काकुत्स्थ नाम से हुआ लगता हैं।[5] सिन्धु घाटी सभ्यता का यह उत्कर्ष काल था और वहा नक्र प्रतीक की उस काल मे बड़ी मान्यता थी। इस प्रदेश का नाम ही मकरदेश प्रसिद्ध हो गया था।[6] अतएव तीर्थंकर पुष्पदत की उपासना यहा रही प्रतीत होती है। दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ का जन्म भद्रपुर (या भद्दिलपुर) मे हुआ था। इनका लाछन श्रीवत्स, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम दृढरथ और माता का सुनन्दा (नन्दा) था, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखर था।[7] शीतलनाथ की गणना भी लोकप्रिय तीर्थंकरो मे है। इनके निर्वाणोपरान्त, उन्ही के तीर्थकाल के अन्तिम भाग मे समीचीन जैनधर्म की परम्परा कालदोष से समाप्त प्रायः हो गई कही जाती है।[8] उसी भद्रिलपुर के राजा मेघरथ के शासनकाल मे भुडशालायन नामक एक ब्राह्मण ने अपने प्रभाव से ब्राह्मणो की पूजा करवाने और उन्हें भूमि-स्वर्ण आदि का दान देने की प्रथा चलवादी।[9] ऐसा लगता है कि भ० शीतलनाथ के समय तक इस देश मे तीर्थंकरो के धर्म का प्राय. एकच्छत्र एव अविच्छिन्न प्रभाव और प्रचार रहता आया था, किन्तु अब देशज ब्राह्मणों के धार्मिक विचारो मे सर्वप्रथम क्रान्ति होनी प्रारभ हुई, त्याग के स्थान मे भोग की ओर, निवृत्ति के स्थान मे प्रवृत्ति की प्रधानता होने लगी। सभवतया यही वह युग था जब

---

१. वही, पर्व ५२,
२. वही, पर्व ५३,
३. वही, पर्व ५४,
४. वही, पर्व ५५
५. पिछले दिनों एक ब्राह्मण पडित ने 'काकुत्स्थचरित' नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमे यह समी-करण स्थापित किया था।
६ ज्यो० प्र० जैन—जैनिज्म, दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ५२।
७. उत्तरपुराण, पर्व ५६,
८ वही, श्लोक ६३,
९ वही, श्लोक ६४-६६।

उत्तर-पश्चिमीय भारत मे आर्यो का तथाकथित प्रवेश हुआ, अथवा वैदिक आर्य ब्राह्मणीय धर्म, सस्कृति एव सभ्यता का उदय प्रारंभ हुआ। तीर्थंकरो के अनुयायी मध्य देशीय ब्राह्मण भी उनके प्रभाव मे आने लगे और प्राय: यही समय विद्याधरों की प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी प्रभृत्ति सभ्यताओ का अस्तकाल था।

श्रेयांसनाथ :

ग्यारहवे तीर्थकर श्रेयासनाथ का जन्म सिंहपुर (वर्तमान सारनाथ) नामक नगर मे हुआ था। इनका वश इक्ष्वाकु था, पिता का नाम विष्णु और माता का नन्दा (या विष्णु देवी) था, लाछन गेंडा और निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर था। भ० श्रेयासनाथ ने धर्म की टूटी हुई परम्परा को पुनः जोडा और तीर्थंकरो के धर्म का लोक मे पुनः प्रचार किया। इन्ही के समय मे पेदनपुर नरेश त्रिपृष्ठ हुआ जो नव नारायणो (वासुदेवो) मे प्रथम था, अर्धचक्री और त्रिखडी था। इसका भाई विजय (या अचल) नव बलभद्रो (बलदेवो) मे प्रथम बलप्रद था। दोनो भाई बडे प्रतापी थे और तीर्थंकर के परम भक्त थे। इनका प्रतिद्वन्द्वी प्रथम प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव) अश्वग्रीव अलकापुरी का राजा था, जो बडा अत्याचारी था। त्रिपृष्ठ और विजय द्वारा उसका अन्त हुआ।[1] इस प्रकार देश मे अत्याचारी राजाओ का प्रादुर्भाव और राजनीतिक सघर्षों एव राज्य सत्ता के लिये युद्धो का प्रारभ भी प्राय: इसी समय से हुआ लगता है।

वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ

बारहवे तीर्थकर वासुपूज्य का जन्म अगदेश के चम्पापुर नामक नगर (बिहार के भागलपुर जिले) मे हुआ था, वंश इक्ष्वाकु, पिता का नाम वसुपूज्य, माता का जयावती और लाछन महिप था। इनका निर्वाण चम्पापुर के निकट मन्दारगिरि पर हुआ माना जाता है। इन्ही के समय मे दूसरा बलभद्र अचल, दूसरा वासुदेव द्विपृष्ट तथा दूसरा प्रतिनारायण तारक हुये थे।[2] तेरहवे तीर्थंकर विमलनाथ का लांछन बराह और जन्म स्थान काम्पिल्य नगर था। वश इक्ष्वाकु. पिता का नाम कृतवर्मा और माता का नाम जयश्यामा (सामा) था तथा निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था। इनके समय मे सुधर्म (या भद्र) नाम का बलभद्र, स्वयभू नाम का नारायण और मधु (मेरक) नामक प्रतिनारायण हुये, तथा मेरु और मन्दर नामक प्रसिद्ध गणधर एव सजयत नामक केवली हुये।[3] चौदहवे तीर्थकर अनन्तनाथ का जन्म अयोध्या मे हुआ, निर्वाण सम्मेदशिखर पर। इनका लाछन सेही (श्येन) था, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम सिंहसेन और माता का जयश्यामा (या सुयशा) था। इनके समय मे सुप्रभ बलभद्र, पुरुषोत्तम, नारायण और मधुसूदन (मधु कैटभ) नामक प्रतिनारायण हुये।[4]

धर्मनाथ :

पन्द्रहवे तीर्थकर धर्मनाथ का जन्म रत्नपुर (फैजाबाद जिले का नौराई या रौनाइ) मे कुरुवशी राजा भानु की पत्नि सुप्रभा (सुव्रता) की कुक्षि से हुआ था और निर्वाण सम्मेदशिखर पर। इनका लाछन वज्रदड था। इनके समय मे सुदर्शन नामक बलभद्र, पुरुषसिंह नामक नारायण और

---

१ उत्तरपुराण, पर्व ५७.
२ वही, पर्व ५८
३ वही, पर्व ५९,
४ वही, पर्व ६०,

मधुक्रोड (या निशुंभ) नामक प्रतिनारायण हुये। धर्मनाथ के निर्वाण और सोलहवे तीर्थंकर के जन्म के मध्य-अन्तराल मे अयोध्या नगरी मे इक्ष्वाकु, या सूर्यवशी दो चक्रवर्ती सम्राट कालान्तर से हुये—प्रथम का नाम मघवा था और दूसरे का सनत्कुमार।[1] अब तक के समस्त चक्रवर्ती अयोध्या मे ही हुये, जिससे प्रतीत होता है कि पूरे देश की राजनीति मे तब तक अयोध्या और उसके इक्ष्वाकु वंश का ही सर्वोपरि प्रभाव रहता रहा था। ये सब चक्रवर्ती तथा विभिन्न नारायण एव बलभद्र भी, तीर्थंकरो के भक्त थे। किन्तु इस अन्तराल मे भी कुछ काल तक श्रमणधर्म-मुनिमार्ग का विच्छेद रहा जिसे सोलहवे तीर्थंकर शान्तिनाथ ने पुनः स्थापित किया।[2]

शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ :

शान्तिनाथ तीर्थंकर होने के साथ ही साथ चक्रवर्ती सम्राट भी थे। उनका जन्म हस्तिनापुर (गजपुर) के कुरुवंशी नरेश विश्वसेन की रानी ऐरा (अचिरा) की कुक्षि से हुआ था, लाछन हिरण था। चिरकाल पर्यंत पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य एव गृह सुख का उपभोग करके उन्होने दीक्षा ली तपस्या की, केवलज्ञान प्राप्त किया, लोक को धर्मोपदेश दिया, मुनि मार्ग की पुनः स्थापना की और अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया।[3] वे एक अत्यन्त लोकप्रिय तीर्थंकर हुये। आज भी उनकी उपासना का प्रभूत प्रचार है।

सत्रहवे तीर्थंकर कुन्थुनाथ का जन्म भी कुरुजागल देश के उसी हस्तिनापुर नगर मे और कुरु वश मे ही हुआ था, पिता का नाम शूरसेन (या वसु), और माता का श्रीकांता (या श्रीदेवी) था, लाछन अज था और मोक्ष स्थान सम्मेदशिखर। ये भी अपने समय के चक्रवर्ती सम्राट थे।[4]

अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का जन्म भी उसी हस्तिनापुर मे, सोमवंश नरेश सुदर्शन की पत्नी मित्रसेना (या महादेवी) की कुक्षि से हुआ था, लांछन नद्यावर्त (मत्स्य) था और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर। ये भी अपने समय के चक्रवर्ती सम्राट थे।[5] इन तीनो तीर्थंकरों के समय मे श्रमण धर्म का प्रधान केन्द्र पश्चिमी उत्तर प्रदेशस्थ कुरु महाजनपद रहा जिसकी प्रधान महानगरी हस्तिनापुर थी। राजनीतिक प्रभुसत्ता भी अयोध्या से स्थानान्तरित हो चुकी थी, और हस्तिनापुर मे स्थिर हुई। ऐसा लगता है कि इस समय तक वैदिक सस्कृति का प्रभाव एव प्रसार पश्चिमोत्तर प्रान्त तक ही सीमित था, गगा-यमुना के अन्तर्वेद मे विशेष नही हो पाया था।

मल्लिनाथ :

अरनाथ के निर्वाणोपरान्त उन्ही के तीर्थ मे सुभौम (सुभूम) नाम का चक्रवर्ती हुआ जिसके प्रसग मे परशुराम और कार्तवीर्य सहस्त्रबाहु के भीषण सघर्ष की कथा जैन अनुश्रुति मे ब्राह्मणीय अनुश्रुति से बहुत कुछ मिलती जुलती पाई जाती है। इसी काल मे नन्दिषेण (नन्दी) नामक बलभद्र, पुण्डरीक नाम का नारायण और निशुभ (बलि) नामक प्रतिनारायण हुआ।[6]

उन्नीसवे तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्म मिथिला नगरी मे हुआ, वश इक्ष्वाकु था, पिता का नाम कुंभ, माता का प्रजावती (या प्रभावती), लाछन कलश और मोक्ष स्थान· सम्मेदशिखर था।

---

१. उत्तरपुराण, पर्व ६१
२ वही, पर्व ६३, श्लोक ४११-१२
३ वही, पर्व ६३,
४ वही, पर्व ६४,
५ वही, पर्व ६५,
६. वही,

इन्होने विवाह नही किया, बालब्रह्मचारी रहे। भ० मल्लिनाथ के तीर्थकाल मे वाराणसी नगरी मे पद्म नाम का चक्रवर्ती सम्राट हुआ तथा नन्दिमित्र नामक बलभद्र, दत्त नामक नारायण और बलीन्द्र, (प्रहलाद, प्रहरण) नामक प्रतिनारायण हुये।[1]

मुनिसुव्रत :

बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का जन्म राजगृही नगरी मे हरिवंशी महाराज सुमित्र की रानी सोमा (या पद्मावती) की कुक्षि से हुआ था। इनका लाछन कच्छप था और मोक्ष स्थल सम्मेद-शिखर।[2] इन्ही के तीर्थ मे अयोध्या के रघुवशी महाराज रामचन्द्र और लका के विद्याधर वशी महाबली रावण हुये तथा रामायण मे वर्णित घटनायें घटी। भगवान् राम उस युग के बलभद्र थे, उनके अनुज लक्ष्मण नारायण थे और रावण प्रतिनारायण। महारानी सीता की जैन परम्परा की सोलह सर्वोपरि सतियो मे गणना है। राम ने दीक्षा लेकर पद्ममुनि नाम से तपश्चरणा की, अर्हत केवलि हुये और उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करके सिद्ध परमात्मा हुये। पवन्जय-अजंना सुत हनुमान का भी जैन परंपरा मे एक कामदेव तथा मोक्षगामी महापुरुष के रूप मे कथन किया गया है। जैन पद्म-पुराण मे इन महान् विभूतियो एव तत्सबंधी घटनाओ का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। भ० मुनि-सुवृत के तीर्थकाल मे ही राजा वसुचैद्योपरिस्चर की राज्य सभा में नारद और पर्वत का वह सैद्धान्तिक विवाद हुआ था जिसके फलस्वरूप याज्ञिक हिंसा—पशुबलि आदि का प्रचलन हुआ और प्रचार बढा। हरिषेण नामक चक्रवर्ती भी इसी तीर्थकाल मे भोगपुर नगर मे हुआ था।[3] विष्णु-कुमार मुनि द्वारा बलिवधन, सात सौ मुनियो की रक्षा और रक्षाबंधन पर्व की प्रवृत्ति की घटनायें भी सभवतया इसी काल की हैं।

नमिनाथ :

इक्कीसवे तीर्थंकर नमिनाथ का जन्म मिथिला नगरी मे इक्ष्वाकु वशी राजा विजय की रानी वप्पिला (वप्रा) की कुक्षि से हुआ था। इनका लाछन नील कमल और निर्वाण स्थल सम्मेद शिखर था। इन्ही के तीर्थ मे वत्सदेशस्थ कोशाम्बी नगरी मे जयसेन नामक चक्रवर्ती सम्राट हुआ।[4] हिन्दू पुराणो मे विदेहजनक के पूर्वज जिन मिथिलानरेश नमि[5] का उल्लेख आया है सभवतया वही इक्कीसवे तीर्थंकर नमिनाथ थे। मिथिला मे आग लग जाने पर इनकी अनासक्त वृत्ति का जो वर्णन जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे आया है, प्रायः वही महाभारत तथा बौद्धो के महाजनक जातक मे आया है। तीनो परम्पराओ का यह समीकिरण तीर्थंकर नमि की ऐतिहासिकता का साधक है।[6] आगे चल कर जिम आध्यात्मवाद ने उपनिषदो की आत्मविद्या का रूप लिया उसका बीज इन विदेह नमि द्वारा ही मिथिला मे आरोपित हुआ था।

---

१. वही, पर्व ६६—श्वेताम्बर अनुश्रुतियो मे तीर्थंकर मल्लिनाथ को स्त्री रहा प्रतिपादित किया है।
२, वही, पर्व ६७
३. वही, पर्व ६७-६८,
४. वही, पर्व ६६।
५. ये नमि प्रत्येक बुद्ध है, स्वय बुद्ध नही, अत तीर्थंकर नमिनाथ से ये भिन्न है—सम्पादक
६ डॉ० हीरालाल जैन, भा० स० मे जैन धर्म का योगदान, पृ० १६-२०।

ऐसा लगता है कि १८वें तीर्थंकर अरनाथ के उपरान्त ही मध्य देश मे वैदिक ब्राह्मणीय र्म और संस्कृति का द्रुतवेग से प्रसार हुआ, राज्य सत्ता भी श्रमण या व्रात्य क्षत्रियों के हाथ से कलकर वैदिक क्षत्रियो के हाथ मे आ गई। सिंधु घाटी की सभ्यता तथा उसकी अन्य शाखायें कभी । समाप्त प्रायः हो चुकी थी, उनके निवासियों का भी स्वतत्र अस्तित्व प्रायः कोई नही रह गया । । तीर्थंकरो के अनुयायी मानव वंश प्रसूत इक्ष्वाकु, सूर्य, सोम, हरि उग्र आदि वंशो के क्षत्रिय । पराभूत हो गये थे, कम से कम मध्य देश से निष्कासित से हो गये थे। यह निरा सयोग ही नही कि शान्ति, कुन्थु, अर नाम के तीन तीर्थंकर लगातार पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर मे हुये तो नके बाद के तीन तीर्थंकर लगातार सुदूर एव बिहार प्रदेश मे हुये। वैदिक सभ्यता और सत्ता का ह चरमोन्नत काल था। इसी युग मे श्रमण और ब्राह्मण उभय संस्कृतियों का पारस्परिक संघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुच गया था। तीर्थंकर परम्परा के लिये यह एक जबरदस्त झटका था।

३. अन्तिम तीन तीर्थंकर—नेमि, पार्श्व, महावीर

अरिष्टनेमि :

बाइसवे तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) का लाछन शख था। उनका जन्म हरिवंश की यादव शाखा मे हुआ था। शौरिपुर (वर्तमान आगरा जिले में स्थित) के सस्थापक यदुवशी राजा शूर (शूरसेन) के वशज अन्धकवृष्णि के कई पुत्र थे जिनमे सबसे बड़े समुद्रविजय थे और सबसे छोटे वसुदेव। समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की कुक्षि से तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म शौरिपुर मे हुआ था। वसुदेव कामदेव के समान अत्यन्त रूपवान एवं साहसिक थे। उनके साहसिक भ्रमणो एवं कार्यकलापो का अतिरोचक वर्णन हरिवंश पुराण मे हुआ है। वसुदेव के पुत्र कृष्ण और बलराम थे जो अपने समय के क्रमशः नारायण और बलभद्र थे, बड़े वीर, प्रतापी और विचक्षणबुद्धि थे। उनका प्रतिद्वन्द्वी राजगृह नरेश जरासध उस युग का प्रतिनारायण था। उसके आतक से ही त्रस्त होकर यादव लोग शौरिपुर और मथुरा का परित्याग करके पश्चिमी समुद्र तट पर स्थिति द्वारका नगरी मे जा बसे थे। कालान्तर मे कृष्ण द्वारा ही जरासघ और उसके कस, शिशुपाल आदि साथियो का पराभव एव अन्त हुआ। हस्तिनापुर के कुरुवशी कौरव पाडवो का पारस्परिक सघर्ष और उनके मध्य कुरुक्षेत्र का सर्व प्रसिद्ध महाभारत नामक महायुद्ध इसी काल मे हुआ। उस युग की राजनीति के प्रधान सूत्रधार अर्धचक्री, त्रिखंडी, नारायण कृष्ण ही थे। वे पाँडवो के मित्र थे, और उनकी विजय मे प्रधान निमित्त हुये। यदि कृष्ण राजनीतिक नेता थे तो तीर्थंकर अरिष्टनेमि उस युग के धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता थे।

द्वारका के निकट जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की सुन्दरी कन्या राजुलमती के साथ कुमार नेमिनाथ का विवाह सबंध स्थिर हुआ। बड़े ठाठबाट से छप्पनकोटि यदुवशी उस बारात मे चढ़कर जूनागढ़ पहुचे। वर यात्रा जब नगर के राजपथ से जा रही थी तो वर वेष मे सुसज्जित रथारूढ़ नेमिकुमार ने मार्ग मे एक ओर एक विशाल बाडे मे बन्द अनेक पशुओ को बिलबिलाते हुये देखा। कारण पूछने पर उन्हे बताया गया कि उन्ही की बारात मे आगत अतिथियो के भोज का आयोजन करने के लिये इन मूक पशुओ का वध किया जाने वाला है। करुणामूर्ति भगवान् को यह सुनकर बड़ी ग्लानि हुई। ससार, देह भोगो से उनका चित्त विरक्त हो गया। वह तुरन्त रथ पर से कूद पड़े, समस्त पशुओ को बन्धन मुक्त एव स्वतंत्र किया, वस्त्राभूषण उतार फेके और वन की राह ली।

जैन तीर्थकरो मे पार्श्वनाथ प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे जितने मंदिर, मूर्तिया और तीर्थस्थान इनके नाम से सम्बद्ध पाये जाते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य तीर्थंकर के हो। गजपुर नरेश स्वयभू, कुशस्थलपुर का राजा रविकीर्ति, तेरापुर का स्वामी करकण्ड आदि कई भूपति इनके परम भक्त और अनुयायी थे। नाग, यक्ष, असुर आदि अनार्य देशी जातियो मे, जिनका ब्राह्मणीय साहित्य मे व्रात्य क्षत्रिय के रूप मे बहुधा उल्लेख हुआ है, तीर्थंकर पार्श्व का प्रभाव विशेष रहा प्रतीत होता है। उत्तर प्रदेश, बिहार एव बगाल मे ही नही उडीसा और आन्ध्र प्रदेश पर्यन्त इनका प्रत्यक्ष प्रभाव था। अनुमान तो यह भी किया जाता है कि देश की पश्चिमोत्तर सीमाओ को पारकर के मध्य एशियाई देशो एवं यूनान आदि तक भी इनकी कीर्तिगाथा एव विचार प्रसारित हुये थे। पार्श्व के निर्वाण और महावीर के जन्म के मध्य लगभग पौने दो सौ वर्षों का अन्तर था और इस बीच पार्श्व का उपदेश एवं उनकी श्रमण शिष्य परम्परा अविच्छिन्न बनी रही। महावीर का पितृकुल एव मातृकुल पार्श्व के ही अनुयायी थे। महावीर ने जब उपदेश देना प्रारभ किया तब तक भी पार्श्वपरम्परा के केशि प्रभृति प्रभावशाली श्रमण विद्यमान थे। पार्श्व द्वारा उपदेशित मार्ग को बहुधा चातुर्याम धर्म के नाम से उल्लेखित किया जाता है और कहा जाता है कि उन्होने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह पर ही बल दिया था, ब्रह्मचर्य नाम के पृथक् से किसी व्रत का विधान नही किया था, जैसा कि महावीर ने बाद मे किया। धर्मसाधना मे भगवान पार्श्व चारित्रिक नैतिकता पर विशेष बल देते थे और तत्कालीन जनमानस मे नैतिकता का महत्त्व जमाने मे वे बहुत कुछ सफल भी हुये। इसके अतिरिक्त, पचाग्नि जैसे कृश तपो और हठयोगादि की निरर्थकता एव निर्दयता की ओर उन्होने लोक का ध्यान आकर्षित किया। तीर्थंकर नेमिनाथ ने यदि मनुष्य के भक्षण के लिये पशु हत्या का बहिष्कार किया तो तीर्थंकर पार्श्व ने धर्म के नाम से की जाने वाली साधना मे सभावित हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई। वस्तुतः तीर्थकर पार्श्व, जो तत्कालीन जगत् मे 'पुरिसदानिय' (पुरुषश्रेष्ठ) के नाम से प्रसिद्ध हुये, उत्तर वैदिक काल के उस श्रमण धर्म-पुनरुत्थान के सर्वमहान एव सफल नेता थे, जिसका प्रारंभ नेमिनाथ ने किया था। उन्ही के नैतिक एव आध्यात्मिक विचारो का प्रभाव था कि स्वय ब्राह्मण वैदिक परम्परा मे एक प्रभावशाली दल याज्ञिक हिसा का विरोधी हो गया और उसने औपनिषदिक आत्मविद्या का प्रचार किया। पार्श्व के प्रचार क्षेत्र मे विदेह के जनक ही उपनिषदो की विचारधारा के सबसे बड़े पोषक एव प्रचारक हुये।[1]

महावीर स्वामी :

सिंहलांछन भगवान् महावीर तीर्थंकर परम्परा के चरम, अन्तिम अर्थात् चौबीसवे तीर्थंकर थे। वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान आदि उनके अन्य नाम थे। जैन साहित्य में 'श्रमण भगवान महावीर' और बुद्ध साहित्य मे 'निगठनातपुत्र (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) के नाम से उनका बहुधा उल्लेख हुआ है।

ईसा पूर्व ५९९ की चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन महानगरी वैशाली के निकटवर्ती

---

१. ज्यो० प्र० जैन—रिवाईवल आफ श्रमणधर्म इन लेटर वैदिक एज, जैन जर्नल, सात, २, पृ० ८६–९०

उपनगर कुण्ड ग्राम या कुण्डपुर मे उनका जन्म हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ लिच्छवि जाति के ज्ञातृवंशी काश्यपगोत्री क्षत्रिय थे और माता त्रिशला (अपर नाम प्रियकारिणी एवं विदेहदत्ता) गणतन्त्रात्मक वज्जिसंघ के प्रधान वैशाली के महाराज चेटक की पुत्री (मतान्तर से भगिनी) थी। महावीर बाल्यकाल से ही बड़े शान्त चित्त, देह भोगो से विरक्त और चिन्तनशील थे, साथ ही अत्यन्त निर्भय, वीर और साहसी थे। प्राचीन ग्रन्थो मे उनके शैशव एवं किशोरकाल की अनेक घटनाओं का प्रेरणाप्रद वर्णन प्राप्त होता है, जिससे उनके अतुल बल, वीर्य, शौर्य, बुद्धि और प्रतिभा का परिचय मिलता है। इससे बड़ी बात यह थी कि वे परदुख कातर थे, करुणा की साक्षात् मूर्ति थे। संसारीजनो की दुःखग्रस्त दुर्दशा ने और चारो ओर के हिंसामयी वातावरण ने, जहाँ कि धर्म के नाम पर भी विविध प्रकार की घोर हिंसा होती थी, उन्हे गंभीर, विरक्त एवं चिन्तनशील बना दिया था। वर्णभेद, वर्गभेद, दास-दासी प्रथा, स्त्री जाति को हीन समझना, क्रियाकाड, आडम्बर, व्यभिचार, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का बोलबाला था। अपने स्वरूप से वेभान लोक झूठे सुख की चाह एवं खोज मे भटक रहा था, और दुःख की दल-दल में अधिकाधिक फँसता जा रहा था। परिणामस्वरूप उस महावीर के हृदय मे लोक के दु.ख का निवारण करने तथा लोक का कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना प्रतिदिन बलवती होती जाती थी। बन्धु-बान्धवों ने उन्हें विवाह बन्धन में बाँधकर संसार मे रमाये रखने का प्रयत्न किया। किन्तु उस वीर ने बालब्रह्मचारी रहना ही स्थिर किया (मतान्तर से महावीर ने विवाह किया था और उनके एक पुत्री हुई थी।)

तीस वर्ष की अवस्था होते न होते उन्होने जो कुछ धन सम्पत्ति उनकी थी सब याचको को मुक्त हस्त से दान कर दी, और समस्त साँसारिक सुख भोगो से मुँह मोड बन की राह ली। मार्गशीर्ष कृष्णादशमी के दिन उन्होने पचमुष्टि केशलौच किया, दीक्षा ली और आत्म-साधना के दुर्द्धर मार्ग पर चल पडे। साढे बारह वर्ष की इस कठोर एव अलौकिक साधना मे अनगिनत उपसर्ग सहे, सभी प्रकार के कष्ट, लाँछन, अपमान, तिरस्कार पूर्णतया समताभाव के साथ सहन किये। न किसी से राग था, न किसी से द्वेष। आत्मशोधन और सत्यान्वेषण की प्रक्रिया मे एकनिष्ट होकर लीन रहे। फलस्वरूप, वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जब वे ऋजुकूला नदी के तट पर शालवृक्ष के नीचे एक शिला पट पर आत्मस्थ अवस्था मे आसीन थे तो उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे वीतराग, सर्वज्ञ, अर्हंत, केवलि, जिन हो गये। छयासठ दिन[1] तक उपयुक्त शिष्य के समागम के अभाव में मौनावस्था मे ही विहार करते हुये वह मगध की राजधानी राजगृह अपरनाम पंचशैलपुर के विपुलाचल पर्वत पर पधारे। एक निकटवर्ती ग्राम में वेद-वेदांग मे पारंगत इन्द्रभूति नाम का गौतम गौत्रीय महा तेजस्वी, शीलवान ब्राह्मण अपने विशाल शिष्य समुदाय के साथ रहता था। उसे जीव, अजीव आदि तत्त्वो के विषय मे शका थी। भगवान का विपुलगिरि पर आगमन सुनकर शास्त्रार्थ की इच्छा से वह सदलबल वहाँ आया, किन्तु भगवान के समक्ष पहुँचते ही उसकी शकाये विलीन हो गईं—उनके परमतेजोमय मौन से ही उसे अपनी समस्त शकाओ का समाधान मिल गया। वह भक्ति से नतमस्तक हुआ और उनका प्रथम शिष्य बना। यही तीर्थंकर महावीर के प्रधान गणधर गौतम स्वामी थे। यह शुभ दिन आषाढ शुक्ला पूर्णिमा का था, अतएव लोक मे गुरुपूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अगले दिन,

---

१. श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भ० महावीर ने केवलज्ञान के दूसरे ही दिन इन्द्रभूति आदि को अपापापुरी मे ही शकाओ का निरसन कर प्रतिबोधित किया था। —सम्पादक

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा[1] को उसी स्थल पर अपनी समवसरण सभा मे भगवान ने अपना सर्वप्रथम उपदेश दिया, धर्मतीर्थ की स्थापना की और धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। यही दिन वीर शासनजयन्ति के नाम से प्रसिद्ध है। मगध नरेश श्रेणिक बिम्बसार भी श्रोता रूप मे उपस्थित था। भगवान ने बिना किसी भेदभाव के सभी प्राणियो को कल्याण का मार्ग दिखाया, अपना अहिंसामय उपदेश और गुभद सदेश दिया।

तदनन्तर, देश-देशान्तरो मे पदातिक विहार करते हुये निरन्तर तीस वर्ष पर्यन्त उस महाप्रभु ने जन-जन को, जनता की ही भाषा (लोक भाषा अर्धमागधी प्राकृत) में सच्चा एवं वास्तविक सुख प्राप्त करने का उपाय बताया—विश्वप्रेम, आत्मौपम्य, अहिंसा और अनेकान्त को समाविष्ट करने वाली तथा श्रमपूर्वक तप-त्याग-संयम द्वारा आत्मशोधन पर आधारित समीचीन रत्नत्रयी उस परम-स्वातन्त्र्य अथवा मोक्ष सुख की प्राप्ति की कुन्जी और साधिका प्रतिपादित की।

अन्त मे, शक पूर्व ६०५, विक्रम पूर्व ४७० और ईसा पूर्व ५२७ की कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी (अमावस्या) की रात्रि के अन्तिम प्रहर मे, प्रत्यूष वेला मे, पावापुरी में तीर्थंकर महावीर का निर्वाण हुआ। उसी रात गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। लोगो ने दीपमालिका प्रज्वलित करके निर्वाण महोत्सव मनाया, और वह शुभ दिन लोक में दीपमालिका, दीपावली या दीवाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2]

विश्व मानव के इतिहास मे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान महावीर के व्यक्तित्व, देन एवं महत्त्व का मूल्याकन गत अढाई सहस्र वर्षो से होता आ रहा है। प्रत्येक युग अपनी-अपनी समस्याओ का समाधान उसमे ढूंढता और पाता रहा है।

---

१. श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थ-स्थापना का शुभ दिन वैशाख शुक्ला एकादशी माना गया है। —सम्पादक

२ महावीर की निर्वाण तिथि के लिये देखिए—प्रो० ज्यो० प्र० जैन—जैनसोर्सेज आफ दी हिस्टरी आफ एन्शेन्ट इण्डिया, पृ० ३२-५४

द्वितीय खण्ड

राजस्थान
में
जैन संस्कृति का विकास

१७ | राजस्थान की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि
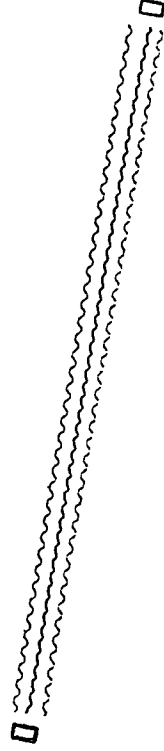
डॉ० रामगोपाल शर्मा

राजस्थान भारतवर्ष का एक महत्त्वपूर्ण राज्य है जहाँ के लोगों ने देश के इतिहास एव संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष मे राजस्थानी वीरों की प्रशंसनीय भूमिका रही है। यही नही, यहाँ के लोगो ने संस्कृति के संरक्षण एवं परिवर्द्धन मे भी महत्त्वपूर्ण योग दिया हैं। राजस्थान के इस ऐतिहासिक दाय को समुचित परिप्रेक्ष्य मे समझने के लिए आवश्यक है कि प्रारंभ मे उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

भौगोलिक पृष्ठभूमि :

आकार मे राजस्थान एक विषमकोणीय चतुर्भुज जैसा है। इसके पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे पाकिस्तान स्थित है और इसका उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी सीमान्त पंजाब तथा उत्तर-प्रदेश को स्पर्श करता है। चम्बल नदी राजस्थान की दक्षिण-पूर्व सीमा बनाती है। इसकी दक्षिणी सीमा वक्राकार रेखा के रूप मे मध्य-भारत के आरपार जाती है और राजस्थान को मध्य-प्रदेश तथा गुजरात से पृथक् करती है, जो क्रमशः इसके दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम में स्थित है।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति की प्रमुख विशेषता अरावली पर्वत-श्रृंखला है जो उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम में लगभग ४३० मील तक फैली हुई है और जो सारे राज्य को दो भागो मे विभाजित करती है। अरावली पर्वत के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम मे राजस्थान का मरुप्रदेश स्थित है जो लगभग ७०,००० वर्ग मील मे फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत जैसलमेर, बीकानेर की पुरानी रियासते तथा जोधपुर का अधिकाश भाग और जयपुर का शेखावाटी प्रदेश आता है, किन्तु अरावली पर्वत के पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व का राजस्थानी प्रदेश इस मरुस्थल से सर्वथा भिन्न है। यह उपजाऊ प्रदेश है और इसमें मेवाड़, हाड़ौती तथा जयपुर के मैदानी तथा पठारी क्षेत्र सम्मिलित है।

राजस्थान के जनजीवन मे जलवायु तथा वर्षा का भी अपना महत्त्व है। यहाँ की जलवायु मुख्यतः शुष्क है और अधिकाश भागो मे प्रायः वर्षा का अभाव रहता है। लगभग ९० प्रतिशत वर्षा मानसून के समय होती है। यद्यपि राजस्थान के उत्तरी भाग मे वर्षा का अभाव रहता है तथापि

चित्तौड, कोटा तथा बांसवाड़ा के क्षेत्र अधिक वर्षा के लिए प्रसिद्ध है। जलवायु की विषमता के कारण विदेशी आक्रान्ताओ ने यहाँ अपना स्थायी प्रभुत्व स्थापित करने में अधिक रुचि नही ली।

राजस्थान की उपर्युक्त भौगोलिक विशेषताओं का यहाँ के जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। विषम प्राकृतिक स्थिति तथा जलवायु के साथ सतत् संघर्ष ने यहाँ के लोगों में अदम्य साहस एव दृढता, असाधारण धैर्य एवं सहनशीलता तथा कर्मठता का संचार किया है। भौगोलिक परिवेश ने राजस्थान के इतिहास तथा सस्कृति को भी एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। अरावली पर्वत माला का व्यापक प्रभाव इस सन्दर्भ मे विशेष उल्लेखनीय है। इस अरावली पर्वत की पश्चिमी तथ केन्द्रीय मेखला घनी और दुर्गम है तथा वह इस क्षेत्र के निवासियो के लिए सुरक्षा की महत्त्वपूर प्राचीर रही है। इन पर्वतीय प्रदेशो व घाटियो मे बसने वाली, भील, मीणा, मेर आदि जन-जातिय ने बाह्य सपर्क से दूर रहकर अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति का विकास किया।

अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण राजस्थान समीपवर्ती प्रदेशो से निष्क्रमण कर वाली जन-जातियो के लिए आश्रय-स्थल भी रहा है। उत्तर-प्रदेश, पंजाब, मालवा तथा गुजरात साथ मिलने वाली राजस्थान की सीमा पर ऊँचे पहाड, नदी हैं और इसलिए वह अधिवासन के लि उपयुक्त है, किन्तु इन सीमावर्ती क्षेत्रो के समीप ही दुर्गम थार का मरुस्थल तथा दुर्गम उच्च अराव की पर्वत-शृंखला स्थित है जो आक्रान्ताओ के विरुद्ध सघर्ष में उपयुक्त रक्षा-पंक्ति का कार्य क हैं। यूनानियो के हाथो पराजित होने के बाद मालवगण ने राजस्थान मे ही शरण ली। राजस्थ में आकर बसनेवाली अन्य गण-जातियो मे यौधेय एव अर्जुनायन मुख्य है जिन्होने यहाँ आकर अप स्वाधीनता की रक्षा की। मालव, यौधेय एव अर्जुनायन गणो ने विदेशी शकों को यहाँ से भ भगाया और शक्तिशाली कुषाण साम्राज्य के ध्वस में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार राजस्थ को भारत के महान् गणराज्यो का क्रीड़ा-स्थल बनने का गौरव प्राप्त है।

राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओ के फलस्वरूप ही यहाँ के वीर राजनेता भारत सास्कृतिक सरक्षण के लिए विधर्मियो के विरुद्ध सफलतापूर्वक संघर्ष कर सके। अरावली की घाटि तथा गिरिगह्वरो में आश्रय ले, राजस्थानी वीरो ने विदेशियो का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।

राजस्थान में दुर्गम पहाडी प्रदेशों का उपयोग धार्मिक स्थानो की सुरक्षा के लिए भी हु है। विधर्मियो के सतत् आघात से सुरक्षित रखने के लिए यहाँ के शासको तथा समृद्ध परिवारों मन्दिरो तथा धर्म-स्थानो का निर्माण दुर्गम पर्वतीय प्रदेशो में करवाया। नागदा, एकलिंगजी, राण पुर, सिहाड़ आदि के मन्दिर इसी दृष्टि से दुर्गम पर्वतीय प्रदेश मे बनवाए गए है।

भौगोलिक विविधता के बीच भी राजस्थानी जन-जीवन मे एक मूलभूत एकता दृष्टिगोच होती है। भाषा, धर्म, समान आचार-विचार तथा आदर्शों की समानता यहाँ के निवासियों में एकत की अनुभूति की निरन्तर पुष्टि करते है। विषम भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु के कारण राजस्था का उत्तरी-पश्चिमी भाग आर्थिक दृष्टि से अधिक विकसित नही हो सका है किन्तु अब राजस्था नहर एव चम्बलघाटी जैसी विशाल योजनाओ के फलस्वरूप समस्त राजस्थान का आर्थिक भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

'राजस्थान' नाम काफी अर्वाचीन है, किन्तु इस नाम से द्योतित प्रदेश हमारे देश के प्राचीनतम इतिहास तथा सस्कृति से संबद्ध रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस प्रदेश के विभिन्न नाम मिलते हैं जो या तो इस प्रदेश की भौगोलिक विशेषताओं से संबद्ध हैं या यहाँ बसने वाले लोगों से सवद्ध। इन नामो का अध्ययन हमे राजस्थान की राजनीति एवं इतिहास की विकास-प्रक्रिया का बोध कराता है।

राजस्थान का सबसे प्राचीन उल्लेख हमे 'मरु' नाम से ऋग्वेद मे मिलता है। मरुप्रदेश का उल्लेख महाभारत के वनपर्व[1] मे, वृहत्संहिता में, सम्मोहतन्त्र मे, रुद्रदामन के जूनागढ अभिलेख (१५० ई०) में तथा पाल अभिलेखो मे भी मिलता है। खरतरगच्छ पट्टावली[2] में मरुप्रदेश के लोगो (मारवो) को गुर्जरो से भिन्न बताया गया है। मरुदेश प्रारम्भ मे राजस्थान के रेतीले क्षेत्र का बोध कराता था, किन्तु कालान्तर मे उसका अर्थ अधिक व्यापक वन गया। जयसिंह सूरि की रचना 'हमीर मदमर्दन' मे जो उल्लेख है, उससे मरुप्रदेश के अन्तर्गत जालोर, चन्द्रावती, आबू तथा मेवाड के शामिल होने का भी सकेत मिलता है।

'जागल' नाम से भी राजस्थानी प्रदेश का उल्लेख प्राचीन साहित्य मे हुआ है। महाभारत मे कुरु और मद्र जनपदो के दक्षिण की ओर स्थित प्रदेशों के लिए क्रमश: 'कुरु-जांगल' तथा 'मद्र-जांगल' शब्दो का प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ में 'जागल देश' के अन्तर्गत हर्ष, नागौर तथा सांभर के क्षेत्र सम्मिलित थे। जागल क्षेत्र पर शासन करते थे शाकम्भरी तथा अजमेर के चौहान शासक जो 'जागलेश' भी कहलाते थे।[3] परवर्ती काल मे बीकानेर के राजा भी इस जागल देश के शासक होने के नाते स्वय को 'जांगलधर बादशाह' कहते थे।

शाकभरी तथा अजमेर का चौहान राज्य केवल 'जांगल' के रूप मे ही नही, 'सपादलक्ष' (सवालाख) के रूप मे भी विख्यात था। इसीलिए चौहान शासक 'सपादलक्षीय नृपति' भी कहलाते थे। सपादलक्ष नाम से चौहान राज्य का अनेक अभिलेखों तथा साहित्य मे उल्लेख हुआ है। इस प्रदेश का नामकरण 'सपादलक्ष' हुआ, क्योंकि इसके अन्तर्गत बहुत से ग्राम रहे होगे। प्रारम्भ मे सपादलक्ष केवल शाकम्भरी व अजमेर के चौहान राज्य का द्योतक था, किन्तु चौहान राजशक्ति के विस्तार के साथ-साथ इसका प्रादेशिक क्षेत्र भी अधिक व्यापक होता गया। जब चौहान राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर था तब सपादलक्ष के अन्तर्गत जांगल, शेखावाटी से रणथंभोर तक का विस्तृत क्षेत्र, कोटा, मेवाड़ का माण्डलगढ़ दुर्ग, बूंदी का पश्चिमी भाग, किशनगढ तथा अजमेर के क्षेत्र सम्मिलित थे।[4]

प्राचीनकाल मे राजस्थान के विभिन्न प्रदेशो का नामकरण उनसे सबद्ध जन-जातियों के नाम पर भी हुआ। ऐसे नामो मे 'मत्स्य' शब्द विशेष उल्लेखनीय है। 'मत्स्य' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद मे मिलता है जहाँ मत्स्यों को राजा सुदास का विरोधी बताया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' के

१ वनपर्व, २०१·४ १ २. पृ० ३६

३. डॉ० दशरथ शर्मा, Early Chauhana Dynasty, पृ० 10, 11, 63, 70

४. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३०-३३२

अनुसार मत्स्य लोग सरस्वती के समीप बसे थे और उनके राजा ने सरस्वती के तट पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे। महाभारत युद्ध के समय विराट् (वर्तमान बैराठ) मत्स्य के विस्तृत राज्य की राजधानी था और मत्स्यो ने पाण्डवों के प्रमुख सहयोगियो के रूप मे युद्ध मे सक्रिय भाग लिया था। महाभारत के 'कर्ण पर्व' मे मत्स्यो को सत्य के प्रति निष्ठावान् बताया गया है। 'अंगुत्तर निकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ मे मत्स्यो का उल्लेख शूरसेनो के साथ हुआ है। मत्स्य प्रदेश के अन्तर्गत किसी समय जयपुर तथा अलवर रियासत का कुछ भाग तथा अधिकाश भरतपुर रियासत का क्षेत्र शामिल था।

एक अन्य प्रादेशिक नाम 'शाल्व' का उल्लेख भी महाभारत मे मिलता है। शाल्वो की राजधानी शाल्वपुर थी जिसका समीकरण कनिघंम ने अलवर से किया है। शाल्व प्रदेश के अन्तर्गत अधिकांश अलवर राज्य का भाग सम्मिलित था।

प्राचीन साहित्य मे शूरसेन जनपद का भी उल्लेख मिलता है जिसके अन्तर्गत मथुरा, अलवर, भरतपुर, धोलपुर तथा करौली के समीपवर्ती भाग शामिल थे। यूनानी लेखको ने भी शौरसेन जनपद का उल्लेख किया है। शूरसेन जनपद 'भडाणक' भी कहलाता था जिसका समीकरण वर्तमान 'बयाना' से संभव है।

प्राचीनकाल मे दक्षिणी राजस्थान मे शिबि जनपद की भी स्थिति थी। इसका ज्ञान चित्तौड के समीप नगरी से प्राप्त सिक्को से होता है जिन पर लेख है—'मज्झिमिकय शिबि जनपदस अर्थात् शिबि जनपद से सबद्ध मध्यमिका। प्राचीन काल मे मध्यमिका एक महत्त्वपूर्ण नगरी थी और इसीलिए भारत पर आक्रमण करने वाले बाल्त्री यवनो ने मथुरा के साथ-साथ मध्यमिका पर भी घेरा डाला था।[1]

मालवगण की भी राजस्थान के इतिहास मे प्रमुख भूमिका रही। मालवगण की स्थिति के सूचक अनेक सिक्के जयपुर रियासत के उणियारा ठिकाने के अन्तर्गत नगर या कारकोट नगर से मिले है। इन सिक्को से भी अधिक महत्त्वपूर्ण रैंड मे प्राप्त वह मुद्रा है जिस पर 'मालव जनपदस' लेख अकित है।

राजस्थान प्रदेश से सबद्ध एक अन्य प्राचीन नाम है 'गुर्जर', जिसका उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसाग ने किया है। ह्वेनसाग के कथनानुसार गुर्जर प्रदेश की राजधानी पि-लो-मो-लो थी जिसका समीकरण वर्तमान भीनमाल से किया जा सकता है। उद्योतनसूरि भी अपनी 'कुवलयमाला कहा' मे गुर्जर देश तथा भिल्लमाल का उल्लेख करते हैं। गुर्जर प्रदेश के लिए 'गुर्जरात्र' शब्द भी प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ है—गुर्जरो द्वारा रक्षित प्रदेश। भोजप्रथम के दौलतपुर अभिलेख मे दण्डवानक विषय के अन्तर्गत 'शिव' ग्राम का उल्लेख मिलता है। दण्डवानक विषय का समीकरण वर्तमान डीडवाना से किया जाता है। प्रारम्भ मे 'गुर्जर' शब्द पुरानी जोधपुर रियासत के अधिकाश प्रदेश तथा वर्तमान गुर्जर राज्य के कुछ भागो का सूचक था, किन्तु बाद मे वह केवल गुजरात प्रदेश का समानार्थक बन गया।

मेवाड का उल्लेख मेदपाट नाम से भी मिलता है जो उसका सस्कृत रूप है। मेदपाट के

---

१ अरुणद् यवन: साकेतम्।

प्रयोग से यह संकेत मिलता है कि गुहिल शासको के आधिपत्य से पूर्व मेवाड़, मेद अथवा मेर कहलाने वाले लोगो के अधीन था। डॉ० गौ० ही० ओझा मेदो को शकों का वंशज बतलाते हैं। जयसिंह कलचुरि के करणबेल अभिलेख से ज्ञात होता है कि मेदपाट का दूसरा नाम प्रागवाट भी था।[1] प्रागवाट शब्द पोरवाल वणिक् जाति का बोध कराता है जो मूलत: मेदपाट अथवा प्रागवाट से सबद्ध रही होगी।

राजस्थान के अन्य क्षेत्रीय नामों मे वल्ल, त्रवणि, माड़, अनन्तगोचर तथा वागड़ उल्लेखनीय हैं। इन नामों का उल्लेख जोधपुर के कई अभिलेखो मे हुआ है। वल्ल माड राज्य का सीमावर्ती प्रदेश था। 'माड' नाम अभी भी जैसलमेर क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। इसी से राजस्थान के एक लोकप्रिय 'माण्ड' नामक राग का उदय हुआ प्रतीत होता है। अनन्तगोचर नाम का उल्लेख अभिलेखों मे प्रारम्भिक चौहानो की भूमि के रूप मे हुआ है। यह वही क्षेत्र है जिसका नागपुरा अथवा नागौर प्रमुख नगर था। वागड़ राजस्थान मे दो हैं। डूंगरपुर तथा बांसवाडा रियासतो के क्षेत्र अभी भी वागड़ कहलाते है और इसी अर्थ मे वागड़ का स्थानीय अभिलेखों मे उल्लेख मिलता है। डॉ० गौ० ही० ओझा के अनुसार वागड़ शब्द की उत्पत्ति बगड़ा से हुई है जिसका अर्थ है जगल।[2] नरहड़ (पिलानी के पास), भाद्रा नोहर तथा कनणा का क्षेत्र भी कभी वागड के रूप मे प्रसिद्ध रहा है और इसी नाम से इस क्षेत्र का खरतरगच्छपट्टावलि मे उल्लेख मिलता है। नाडोल का चौहान राज्य 'सप्तशत' कहलाता था। आबू का क्षेत्र 'अष्टादशशत' के नाम से प्रसिद्ध था, क्योंकि इसमे १८०० ग्राम शामिल थे। इस नाम का विनयचन्द्र की काव्य शिक्षा, उपदेश तरंगिणी तथा उपदेशसार मे उल्लेख मिलता है।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो के द्योतक उपर्युक्त नामो मे समय-समय पर परिवर्तन होता रहा, किन्तु मरु, वागड तथा मेदपाट आदि नाम अपरिवर्तित रहे।

उपर्युक्त विवेचन से राजस्थान का ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है। भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे राजस्थानियों का स्वाधीनता प्रेम विशेष द्रष्टव्य है। प्राचीनकाल मे राजस्थान मालव, यौधेय, अर्जुनायन जैसे स्वाधीनता प्रेमी 'गणो' की क्रीड़ास्थली रहा जव आठवी शताब्दी मे अरवो ने आक्रमण किया तो जालोर के शासक नागभट्ट प्रथम ने सफलतापूर्वक उनका प्रतिरोध किया और महान् प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना की। प्रतिहार साम्राज्य के पतन के वाद चौहानो ने हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए संघर्ष जारी रखा। चौहानो के पराभव के वाद मेवाड़ के शीशोदियो–महाराणा कुंभा, महाराणा सागा तथा महाराणा प्रताप ने स्वाधीनता की ज्योति को किसी-न-किसी रूप मे प्रज्वलित रखा। इन महान् विभूतियो का कार्यकलाप भारत के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है जो युगो से हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन मे भी राजस्थान की सक्रिय भूमिका रही है।

स्वाधीनता प्राप्ति के वाद राजस्थान की राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। कई चरणों मे राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ। सर्वप्रथम १७ मार्च, १९४८ को 'मत्स्य' राज्य का

---

१. गौ० ही० ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३६

२. ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३७

निर्माण हुआ, जिसमे अलवर, भरतपुर, धोलपुर तथा करौली के प्रदेश सम्मिलित थे। २५ मार्च, १९४८ को कोटा, टोंक, बूंदी, झालावाड, प्रतापगढ, डूंगरपुर, बासवाडा, किशनगढ, शाहपुरा एव कुशलगढ को मिलाकर राजस्थान की दूसरी इकाई का निर्माण किया गया जिसमे बाद मे उदयपुर रियासत भी शामिल हो गई। यह इकाई 'राजस्थान' कहलाई। बाद मे जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर रियासतो के इसमे शामिल होने पर बृहत्तर राजस्थान का उद्घाटन ३० मार्च, १९४९ को सरदार पटेल के करकमलो द्वारा हुआ। बाद मे मत्स्य राज्य और आबू भी इसमे शालिम हो गये और इस प्रकार राजस्थान की राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक एकता का स्वप्न साकार हुआ।

धार्मिक पृष्ठभूमि :

प्राचीनकाल से ही राजस्थान के जन-जीवन पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। राजस्थान का सास्कृतिक जीवन धार्मिक परिवेश मे ही पल्लवित होता रहा है। राजस्थान के धार्मिक जीवन की मुख्य धारा वैदिक एवं पौराणिक ढग का हिन्दुत्व रहा है और उसके समानान्तर जैन-धर्म की परम्परा भी निरन्तर प्रवाहमान रही है। यहाँ हम राजस्थान मे विभिन्न धर्मों की स्थिति एव व्यापकता का सक्षेप मे अध्ययन करेगे।

वैदिक मत :

प्राचीनकाल से ही राजस्थान मे यज्ञ की वैदिक परम्परा विद्यमान रही है। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के घोसुण्डी शिलालेख मे हमे अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का उल्लेख मिलता है। नान्दसा यूप स्तम्भ लेख मे, जो तीसरी शताब्दी का है, षष्ठिरात्र यज्ञ करने का उल्लेख है। वैदिक यज्ञो की यह परम्परा राजस्थान मे बहुत बाद तक प्रचलित रही। मेवाड़ के महाराणा कुंभा ने अनेक वैदिक यज्ञो का आयोजन किया। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह ने ईसा की अठारहवी शताब्दी मे भी वैदिक परम्परा को पुनर्जीवित कर अश्वमेध तथा अन्य कई यज्ञो का आयोजन किया। वैदिक यज्ञों तथा कर्मकाण्ड की परम्परा आज भी राजस्थान मे व्यापक रूप मे विद्यमान है।

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही पौराणिक हिन्दू धर्म भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। पौराणिक धर्म के अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, ब्रह्मा, गणेश आदि विभिन्न देवी-देवताओ की पूजा का विधान था। राजस्थान मे पौराणिक देवताओ की आराधना के लिए चित्तौड, ओसियाँ, पुष्कर, आहड़, आम्बानेरी, भीनमाल आदि नगरो मे अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ। राजस्थान मे विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य आदि देवता बहुत लोकप्रिय थे। आबू, नागदा तथा चित्तौड़ आदि स्थानो से अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो पौराणिक देवी-देवताओ के स्तुतिगान से ओतप्रोत है। प्रतिहार काल मे राजस्थान मे सूर्य पूजा का भी काफी प्रचलन था। भीनमाल सूर्य पूजा का महान् केन्द्र था और वहाँ जगत् स्वामिन् का प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर था।

यद्यपि राजस्थान मे विभिन्न देवी-देवताओ की उपासना प्रचलित रही तथापि परम्परागत धार्मिक-सहिष्णुता की भावना को इससे कोई आघात नही पहुँचा। हिन्दुओ की धार्मिक सहिष्णुता की भावना प्रतिहार काल मे समन्वित हिन्दू देवताओ की मूर्तियो के निर्माण मे अभिव्यक्त हुई है। बघेरा तथा बेडला से प्राप्त हरिहर की मूर्ति, हर्ष से प्राप्त तीन मुखवाले सूर्य की मूर्ति, झालावाड से प्राप्त सूर्यनारायण की मूर्ति, आभानेरी से प्राप्त अर्धनारीश्वर की मूर्ति और अजमेर म्यूजियम मे

उपलब्ध विष्णु तथा त्रिपुरुष की त्रिमूर्ति हिन्दू धर्म की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की सुन्दर प्रतीक है ।[1]

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही हिन्दुत्व के विभिन्न धार्मिक संप्रदाय फलते-फूलते रहे। इन सप्रदायो मे विशेष उल्लेखनीय है—शैव तथा पांचरात्र या वैष्णव मत ।

शैवमत :

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही शैवमत का व्यापक प्रसार रहा है। पाशुपत, शैव, घोष पाशुपत, कापालिक, कालमुख, लकुलीश आदि अनेक शैव संप्रदाय राजस्थान में प्रचलित रहे है।[2] इनमे पाशुपत सप्रदाय विशेष लोकप्रिय रहा है। पूर्व मध्यकालीन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि राजस्थान मे शिव की उपासना अनेक नामों से की जाती थी, जिनमे मुख्य है—एकलिंग, समिधेश्वर, चन्द्र चूडामणि, भवानीपति, अचलेश्वर, शम्भू, पिनाकिन् आदि। शैव उपासना के अन्तर्गत राजस्थान मे लकुलीश तथा नाथ संप्रदाय विशेष लोकप्रिय रहे है। मेवाड़ के महाराणाओं ने श्री एकलिंगजी को ही राज्य का स्वामी माना और स्वय को उनका दीवान। नाथ संप्रदाय का जोधपुर क्षेत्र मे विशेष जोर रहा है और राजस्थान के कई स्थलो मे उनके अखाड़े है। राजस्थान मे शैवमत की प्रगति यहाँ बने वहुत से शैव मन्दिरो से स्पष्ट है।

शक्ति-पूजा :

राजस्थान मे शक्ति के रूप में देवी को उपासना का भी प्रचलन रहा है। देवी की उपासना महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, योगेश्वरी, अरण्यवासिनी, अष्टमात्रिका, लक्ष्मी, सरस्वती, अम्बिका, काली तथा राधिका के रूप मे होती रही है। देवी दुर्गा शक्ति की प्रतीक मानी जाती है, इसलिए राजस्थान के कई राजवश शक्ति को कुलदेवी के रूप मे मान्यता दे, उसकी आराधना करते रहे है।

पांचरात्र अथवा वैष्णव मत :

पांचरात्र लोकप्रिय भागवत धर्म का ही पूर्व रूप था। इसका प्राचीनतम उल्लेख दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के घोसुण्डी अभिलेख मे मिलता है। इस अभिलेख में बलराम वासुदेव के पूजा-स्थान का उल्लेख है। कालान्तर मे यह पांचरात्र सप्रदाय भगवत् गीता के अवतारवाद मे परिणत हो गया। इस परिवर्तन से हिन्दुत्व मे हर धार्मिक विचारधारा को आत्मसात् करने की आश्चर्यजनक क्षमता विकसित हुई। पांचरात्र तथा भागवत दोनों प्रकार का वैष्णववाद दीर्घकाल तक राजस्थान का प्रमुख धर्म बना रहा। वैष्णवमत के अन्तर्गत कृष्ण की पूजा का भी विकास हुआ। राजस्थान के कई मन्दिरो मे कृष्ण लीला से सम्बन्धित दृश्य उत्कीर्ण है। कृष्ण चरित से सम्बन्धित कई आख्यान तक्षण कला के द्वारा व्यक्त हुए हैं और ओसियाँ, किराडू, सादड़ी आदि स्थानों से अनेक ऐसी कला-कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। महाराणा कुंभा के काल में चित्तौड़ तथा कुम्भलगढ मे कृष्ण मन्दिरो का निर्माण हुआ। राजस्थान मे वैष्णवमत राम की आराधना के रूप मे भी प्रचलित रहा है।

भक्ति-आन्दोलन :

मध्यकाल मे राजस्थान मे धर्म सुधार की प्रवृत्ति भक्ति-आन्दोलन के रूप मे प्रवाहित हुई।

---

१. डॉ० दशरथ शर्मा, Rajasthan through the Ages.

२ उपमिति भवप्रपञ्चकथा, पृ० ३६६-९७

धर्म के वाह्य कर्मकाण्ड तथा आडम्वर के स्थान पर ईश्वर की शुद्ध भक्ति पर जोर दिया गया और धर्म के संदेश को ब्राह्मणो के एकाधिकार से मुक्त कर, जन-साधारण तक पहुंचाया गया। राजस्थान में इस नई धार्मिक चेतना के अग्रदूत थे भक्तशिरोमणि धन्नाजी, जाम्भोजी, मीरावाई तथा दादू।

बौद्धधर्म :

वैराठ तथा झालावाड जैसे कतिपय स्थलो से पुरातत्त्वविदो को स्तूप व विहार आदि के कुछ ऐसे अवशेप मिले है जो प्राचीनकाल में राजस्थान मे वौद्ध धर्म के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं, किन्तु वौद्धधर्म राजस्थान मे कभी लोकप्रिय न हो सका और शीघ्र ही यहाँ से लुप्त हो गया। राजस्थान से उसके विलोप का मुख्य कारण यहाँ निरन्तर वढती हुई वैष्णव तथा जैनमतो की लोकप्रियता थी।

जैनधर्म :

जैनधर्म शुरू से ही राजस्थान, गुजरात, मालवा एवं सौराष्ट्र मे काफी लोकप्रिय रहा और उसने इस भ्रान्त धारणा का खण्डन कर दिया कि युद्ध-प्रिय राजपूत जन-जातियो द्वारा प्रशासित प्रदेशो मे अहिंसा परक धर्मो का कोई स्थान नही है।

राजस्थान मे जैन-धर्म के उत्कर्ष का श्रेय उन जैन साधुओ की परम्परा को है जिसने जैन-धर्म व समाज में सुधार के लिए विधि-चैत्य आन्दोलन का सचालन किया। यह एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था जिसका शुभारम्भ जैन आचार्य हरिभद्रसूरि ने किया और उद्योतनसूरि तथा सिद्धर्पिसूरि जैसे आचार्यों ने जिसे व्यापक आधार प्रदान किया। हरिभद्रसूरि ने जैनमत में प्रचलित बुराइयो के विरुद्ध आवाज उठाई और अपनी रचनाओं तथा उपदेशो द्वारा समस्त जैन चिन्तन को प्रभावित किया। उनकी रचनाओ में 'अनेकान्तजय' तथा 'धर्मविन्दु' विशेप उल्लेखनीय है। उनकी मृत्यु के वाद उनके सन्देश का प्रसार दो महान् जैन लेखक—उद्योतनसूरि तथा सिद्धर्पिसूरि ने किया।

राजस्थान मे अनेक जैन गच्छो का व्यापक प्रचलन हुआ। आवू मे बड़गच्छ की स्थापना हुई। वडगच्छ का प्रभाव सिरोही तथा मारवाड़ क्षेत्रो में भी रहा। खरतरगच्छ का जन्म गुजरात मे हुआ, किन्तु राजस्थान इसकी गतिविधि का प्रसिद्ध केन्द्र वन गया। खरतरगच्छ के आचार्यो ने राजस्थान मे जैनधर्म को लोकप्रिय वनाने मे विशेष योग दिया। उन्होने निरन्तर पद यात्रा कर अपने उपदेशो द्वारा जन-साधारण में जैन-धर्म के प्रति नई चेतना जागृत की। जगह-जगह व्रत, उपवास तथा उत्सवो का आयोजन किया गया।

जैन साधुओ की राजस्थान को एक महत्त्वपूर्ण देन उनके द्वारा रचा गया विशाल साहित्य है। इन विद्वान् साधुओ ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओ पर सहस्रो ग्रन्थ लिखे और उनका अपने धर्म स्थानो मे सरक्षण किया। भारतीय इतिहास, दर्शन एवं साहित्य के ज्ञान के लिए जैन विद्वानो का यह विशाल साहित्य हमारी अमूल्य निधि है।

---

१८ | राजस्थान में जैन संस्कृति के विकास का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन
डॉ० मनोहरलाल दलाल

[१]

महावीर के समय जैनधर्म

भगवान् महावीर के जीनवकाल मे ही राजस्थान के कुछ भागों मे जैन-धर्म के प्रचार एवं प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य से होता है। महावीर के मामा एवं लिच्छवी गणतंत्र के प्रमुख चेटक की ज्येष्ठ पुत्री प्रभावती सिन्धु-सौवीर के शासक उदाइन को व्याही गई थी। उदाइन जैन-मतावलम्वी हो गया था। भगवती सूत्र के अनुसार उसने अपने भाणेज केशी को राज्य देकर अपने अंतिम समय मे श्रमण-दीक्षा स्वीकार करली थी। सामान्यतः सौवीर प्रदेश के अंतर्गत जैसलमेर और कच्छ के हिस्से भी माने जाते है।[१] अवन्ति महाजनपद के अंतर्गत राजस्थान के कुछ पूर्वी भाग भी सम्मिलित थे, जहाँ का शासक प्रद्योत महासेन महावीर का अनुयायी था क्योंकि इसे चेटक की चतुर्थ पुत्री शिवा व्याही गई थी।

भीनमाल के १२७६ ई० के एक अभिलेख[२] से विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर पधारे थे। आबूरोड से ८ कि०मी० पश्चिम मे मुंगस्थल से प्राप्त १३६६ ई० के शिलालेख[३] से पता चलता है कि भगवान् महावीर स्वय अर्बुद भूमि पधारे थे।

उपर्युक्त विवरण बहुत वाद के हैं इतिहास के प्रकाश मे इनकी सत्यता प्रमाणित नही होती। यद्यपि महावीर युग में सिन्धु-सौवीर के शासक उदाइन और अवन्ति महाजनपद के शासक प्रद्योत महासेन के जैन मतावलम्वी होने की सम्भावना को निरस्त नही किया जा सकता है।

---

१ Ancient India by Tribhuvanlal Shah Vol. I, p. 215

२ Progress Report of Archaeological Survey of India, Western Circle, 1907

३ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, अभिलेख सख्या–४८

[२]

राजस्थान में जैनधर्म

राजस्थान मे जैन-धर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा पूर्व पञ्चम शताब्दी का वडली-शिलालेख[१] माना जाता है, जिसमे वीर निर्वाण संवत् के ८४ वे वर्ष तथा माझमिका का उल्लेख है। माझमिका की पहिचान चित्तौड़ के निकट स्थित 'नगरी' से की जाती है। पातञ्जल महाभाष्य[२] मे उल्लेखित माध्यमिका ही वडली-लेख की माझमिका है। माध्यमिका जैन-धर्म का प्राचीन केन्द्र रही है, जहाँ जैन श्रमण संघ की माध्यमिका शाखा की स्थापना सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रंथ ने की थी।[३] जैन श्रमणो की माध्यमिका शाखा का स्थविरावलि मे उल्लेख है। प्रियग्रंथ का समय ई०पू० तृतीय शताब्दी माना जाता है, इसी समय का यहाँ से एक अभिलेख भी मिला है, जिमका अर्थ है—सर्वभूतो के निमित्त।[४] यह अभिलेख जैन या बौद्ध अनुयायी द्वारा सम्पन्न पुण्य कर्म से सम्बद्ध माना जा सकता है, चूंकि माध्यमिका जैन-धर्म के श्रमण संघ का केन्द्र थी, अतएव इस अभिलेख की स्थापना जैन धर्मानुयायी द्वारा की जाने की ही अधिक सम्भावना है। वड़ली-शिलालेख की प्रामाणिकता के सन्दर्भ मे मतवैभिन्य[५] है, अतः इसे प्रामाणिक नही माना जा सकता। परन्तु प्रद्योत के प्रभाव क्षेत्र मे सूरसेन प्रदेश होने तथा अवन्ति के निकटवर्ती राजस्थान के क्षेत्रो पर अधिकार होने की सम्भावना के प्रकाश मे माध्यमिका का जैन-धर्मावलम्बियो के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित होने के प्रति उपेक्षा भाव नही रखा जा सकता, अन्यथा प्रियग्रंथ माध्यमिका मे आवास नही कर सकते। मौर्यकाल तक माध्यमिका जैन-धर्म के प्रतिष्ठित केन्द्र के रूप मे जानी जाने लगी थी।

मौर्य युग में जैनधर्म :

मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल से ही राजस्थान का क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग था। कलिंग देश के विजेता अशोक का वैराट से अभिलेख मिला है। चन्द्रगुप्त को जैनधर्मानुयायी[६] बताने वाले परवर्ती साहित्यिक एव आभिलैखिक साक्ष्यो को अविश्वसनीय नही माना जा सकता है। चन्द्रगुप्त ने जैन-धर्म के प्रसार के लिये कई प्रयत्न किये। उसे अनेक मदिरो की स्थापमा का श्रेय दिया जाता हे, किन्तु ये अनुश्रुतियाँ विश्वसनीय नही है। जोधपुर से २६ कि०मी० पर स्थित घंघाणी ग्राम मे पार्श्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है तथा वहाँ के एक तालाव से १६०५ ई० मे कई जैन-मूर्तियाँ खोजी गई थी।

---

१ Nahar Jain Inscription, No 402, भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृष्ठ—२

२ The History of Rajputana, Vol. I, p 110

३ Sacred Books of the East, Vol. 22 p. 293

४ उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३५४-५८

५ Journal of the Bihar and Orissa Research Society, March 1954, p. 8

६ The Early History of India p. 154 (see also F. N. 3)

चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात भी पिता का अनुगामी प्रतीत होता है, यद्यपि उसका पुत्र अशोक कलिंग युद्ध के पश्चात् बौद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट हो चुका था। अहिंसा के प्रति अनुराग अशोक मे सस्कारजन्य प्रतीत होता है। अशोक ने बराबर की पहाड़ियो में आजीविकों के वर्षावास हेतु गुफाए खुदवाई थी तथा अपने अभिलेखो मे 'निग्गथो' के प्रति उसने आदर भाव व्यक्त किया है, फलतः राजस्थान क्षेत्र मे भी जैन-धर्म फूलता-फलता रहा होगा। अशोक का पौत्र सम्प्रति जैन इतिहास मे अशोक के समान महान् माना जाता है। उसने जैन-धर्म के प्रसार हेतु अथक प्रयत्न किये थे। जैन परम्परा मे उसे राजस्थान, गुजरात और मालवा में अनेक मन्दिरों के निर्माण तथा मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करवाने का श्रेय दिया जाता है।[1] सम्प्रति ने अपने आचार्य आर्य सुहस्ती के संरक्षण में जैन-धर्म के प्रसार के लिये सभा भी बुलाई थी तथा तीर्थयात्रा के लिये उसे संघ निकालने का भी श्रेय दिया जाता है। टॉड के अनुसार[2] कुंभलमेर का मन्दिर सम्प्रति ने निर्मित करवाया था, जोकि सत्य नही है। यह मन्दिर वास्तुशैली की दृष्टि से १३वी शताब्दी का प्रकट होता है तथा बनावट मे आबू के समकालीन मन्दिरो से समानता रखता है। नडूलाई के शिलालेख[3] से विदित होता है कि वि०स० १६८६ में स्थानीय जैन संघ ने राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मन्दिरका पुन-निर्माण करवाया था, इसे प्रमाण रूप से ग्रहण करना सम्भव नही है।

मौर्येतर काल में जैनधर्म :

मौर्येतर काल मे जैन-धर्म का उत्थान शको के शासन काल में ज्ञातव्य है। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व मे जैन विद्वान् कालकाचार्य ने सौराष्ट्र, अवन्ति और सम्भवतः पश्चिमी राजस्थान तक जैन-धर्म का प्रचार किया था। आचार्य कालक की बहिन सरस्वती भी साध्वी रूप मे धर्म प्रचार में साथ थी, परन्तु उज्जयिनी के शासक गर्दभिल्ल ने कामुकता वश अपरिमित सुन्दरी साध्वी सरस्वती का बलात् हरण कर लिया तथा स्थानीय जैन सघ और कालक के अनुरोध पर भी सरस्वती को मुक्त नही किया, फलतः प्रतिशोध लेने हेतु कालक पश्चिम मे गया। पश्चिमी भारत के सिन्धु प्रदेश मे शाही (शक) शासक को ज्योतिष विद्या से प्रभावित कर अन्य ९५ सरदारो सहित अवन्ति पर चढा लाया तथा गर्दभिल्ल के पराभव एवं मृत्यु के पश्चात् सरस्वती को मुक्त करवा लिया। इन शाहियों का उज्जयिनी पर १७ वर्ष राज्य रहा और तत्पश्चात् गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शको को खदेड़ कर विक्रम सवत् का प्रवर्तन किया। सम्भवतः कालक के प्रभाव से पश्चिमी भारत मे जैन-धर्म लोकप्रिय हो गया था, क्योकि जैन अनुश्रुति के अनुसार विक्रमादित्य ने जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर के प्रभाव से जैन-धर्म स्वीकार कर लिया था,[4] जोकि मालव गणतत्र से सम्बद्ध था, जिनका शासन कालान्तर मे अजमेर, जयपुर, टोक के त्रिकोण प्रदेश पर होने की पुष्टि सिक्कों और अभिलेखो से होती है।[5]

---

१ T L. Shah, Ancient India, Vol. 2 pp. 293 94

२ Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. 2, pp. 779-80

३ Nahar Jain Inscriptions No. 856

४ The Pattavaali Sammuchchaya, pp. 46, p. 106; Indian Antiquary, Vol. 20

५ Epigraphia Indica, Vol. 27, p. 266; Catalogue of Indian Coins by Gardner, Pt. XVII. No. 5

इस समय अजमेर एवं पुष्कर के बीच हर्षपुर एक समृद्धिशाली नगर था, जिसकी पहिचान 'हरसुर' से की जाती है। जैन परम्परा[1] मे हर्षपुर को जैन-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र वर्णित किया गया है, जहाँ ३०० जैन मन्दिर थे। जैनो का हर्षपुर-कच्छ भी इसी स्थल से प्रसिद्ध हुआ था, जिसका ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेखो मे उल्लेख है।

कुषाण युग में जैनधर्म :

मथुरा से प्राप्त जैन अवशेषों, मूर्तियो एव अभिलेखों से कुषाणो के शासनकाल में प्राचीन सूरसेन प्रदेश मे जैन-धर्म लोक प्रिय ज्ञात होता है। इस युग से जैनसघ का गण, कुल एवं शाखा मे विभक्त होने के उल्लेख भी मिलते हैं, अतएव मथुरा के निकट के राजस्थानीय क्षेत्रों मे जैन-धर्म की समृद्धि का आभास होता है। समन्तभद्र के प्रयासों से द्वितीय शताब्दी मे जैन-धर्म का प्रचार अधिक हुआ था। श्रवणबेलगोला के शक संवत् १०५० के शिलालेख[2] के अनुसार समन्तभद्र ने जैन-धर्म की विजय का डका पाटलीपुत्र, मालवा एवं सिन्ध मे बजाने के बाद काची होते हुए कर्नाटक तक प्रयाण किया था। इस समय मालव लोग जयपुर-टोक-अजमेर के प्रदेश मे स्थापित थे। माध्यमिका, हर्षपुर आदि नगर कुषाणकाल मे जैनधर्म के प्रतिष्ठित केन्द्र माने जाते थे।

गुप्त एवं गुप्तेतर काल में जैनधर्म :

केशोराय पाटण मे सम्पन्न उत्खनन मे गुप्तयुगीन जैन मूर्तियाँ एव कल्प वृक्ष पट्ट निकला था,[3] जिससे इस स्थल पर गुप्तकाल मे निर्मित जैन मन्दिर का ज्ञान होता है। व्हेनसांग ने भीनमाल और वैराठ के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी दी है, जिससे ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म इन स्थानो पर पतनावस्था मे था,[4] जबकि अन्य धर्मावलम्बियो की जनसंख्या अधिक थी। इनमे ब्राह्मण धर्मों के साथ जैन-धर्म भी यहाँ विद्यमान रहा होगा। बसतगढ से भगवान् ऋषभदेव की दो मूर्तियाँ मिली हैं, जिन पर ६८७ ई० का अभिलेख है।[5]

आठवी और नवमी शताब्दी मे राजस्थान मे जैन-धर्म के प्रसार का सम्पूर्ण श्रेय हरिभद्र-सूरि को है, जो आरम्भ मे चित्तौड़ के शासक जितारी के विद्वान् पुरोहित थे, किन्तु बाद मे जैन श्रमण हो गये थे। इन्होने अपने ग्रथ 'समराइच्यकहा' मे जैन-धर्म की स्थिति पर कुछ प्रकाश डाला है।[6]

[३]

राजपूतकाल में जैनधर्म

शक्तिशाली राजपूत शासको के राज्यकाल मे जैन-धर्म की अप्रत्याशित प्रगति हुई। ये शासक

---

१ Tribhuvan Lal Shah : Anciant India, III p. 140

२ हीरालाल जैन : जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, संख्यक ५४, पृष्ठ १०२

३ Jainism in Rajasthan by Dr. K.C. Jain pp. 16

४ Thomas Watters : On Yuanchawang's Travels in India p. 249

५ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्यक, ३६५

६ समराइच्चकहा, भूमिका पृष्ठ ५३; मूल पृष्ठ १८७-८८

शैव या शाक्त धर्म के अनुयायी थे, परन्तु सहिष्णुता एव जैन-धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण के कारण राजपूत शासकों ने जैन-धर्म की उन्नति मे हर प्रकार से सहयोग दिया। गुजरात, मालवा एवं राजपूताना के शासकों ने जैन विद्वान् जिनसेन, हेमचन्द्र आदि के प्रभाव से जैन-धर्म की उन्नति मे सक्रिय सहयोग दिया था।

प्रतीहार-राजवंश :

गुर्जर प्रतीहार शासकों के राज्यकाल में जैन-धर्म के प्रसार से सम्बद्ध उल्लेख आठवी शताब्दी के अंतिम चरण से प्राप्त होते है। वत्सराज[1] के समय ओसिया मे महावीर स्वामी के मन्दिर का निर्माण हुआ था। इसी वत्सराज का जिनसेन ने ७८३ ई० मे लिखे गये अपने जैन ग्रंथ 'हरिवंश पुराण' मे विवरण दिया है। करीब ७९२ ई० में वत्सराज का उत्तराधिकारी नागभट्ट हुआ, जिसे 'आम' नाम से भी उल्लेखित किया गया है। 'प्रभावक चरित' से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'आम' एवं नागावलोक अभिन्न राजा था, जिसने एक वणिक जैन-कन्या से विवाह किया था, इसी वणिक के वशज कर्मशाह[2] ने १५३० ई० में शत्रुंजय-तीर्थ का सस्कार करवाया था। नागभट्ट जैन आचार्य वप्पभट्टसूरि का बहुत सम्मान करता था तथा उनके आदेशानुसार इसने कई स्थलो पर जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया था। प्रसिद्ध गुर्जर प्रतीहार सम्राट् मिहिरभोज के ८४० ई० में गद्दी पर बैठने के पश्चात् जैन-धर्म को और अधिक संरक्षण मिला क्योकि मिहिरभोज वप्पसूरि के दो शिष्यो— नन्नसूरि एवं गोविन्दसूरि से प्रभावित था। कक्कुक, जोधपुर के निकट मडोर का प्रतीहार शासक था, जोकि संस्कृत का विद्वान् तथा जैन-धर्म का संरक्षक था। घटियाला-शिलालेख[3] से विदित होता है कि कक्कुक ने ८६१ ई० में एक जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।

चौहान-राजवंश :

चौहान शासकों के राज्यकाल मे जैन-धर्म का प्रचार अधिक हुआ। प्रसिद्ध जैनाचार्य धर्मघोषसूरि, जिनदत्तसूरि चौहानो के समकालीन थे, जिनके प्रति अगाध श्रद्धा के कारण जैनो को मन्दिरो को बनवाने हेतु अनुमति एव भूमिदान दी। ११०५ ई० मे शासनरत पृथ्वीराज प्रथम[4] ने रणथम्भोर के जैन मन्दिरो मे स्वर्ण-कलश की प्रतिष्ठा की थी,[5] जो धार्मिक मामलो मे उसके उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। इसके पुत्र अजयराज ने शैवमतावलम्बी होते हुए भी जैन-धर्म के प्रति सहिष्णुता का परिचय देते हुए नव स्थापित अजमेर नगर मे जैन मन्दिरो के निर्माण हेतु जैनों को अनुमति दी तथा पार्श्वनाथ मन्दिर हेतु एक स्वर्ण-कलश भेंट किया।[6] अजयराज ने श्वेताम्बर जैनाचार्य

---

१ Archaeological Survey of India, Annual Report 1908-09 p. 108
२ मुनि जिनविजय : जैन-लेख-संग्रह, भाग—२, सख्यक—१२
३ Dr. K C. Jain : Jainism in Rajasthan p 19
४ Annual Report, Rajputana Museum, Ajmer, 1934, No. 4
५ Catalogue of the Manuscripts in the Pattna Bhandaras p. 316
६ Janamana, Yr. 1, No 1, p 4

धर्मघोषसूरि एवं दिगम्बर गुणचन्द्र के मध्य धार्मिक वाद-विवाद मे निर्णायक का कार्य किया था। इसके उत्तराधिकारी अर्णोराज अथवा आन्नलदेव की जिनदत्त सूरि के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जो ११३३ ई० के पूर्व सिंहासनारूढ़ हो चुका था। अर्णोराज ने जिनदत्त सूरि के दर्शन किये और उनके अनुयायियो को एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण करने हेतु भूमि दान दी थी।[1] यह स्थान दादा जिनदत्त सूरि के पश्चात् दादावाडी (दादा का उद्यान) के नाम से विख्यात हो गया।

अर्णोराज का उत्तराधिकारी करीब ११५२ ई० मे वीसलदेव विग्रहराज हुआ, जोकि सहिष्णुता एव धार्मिक उदारता का पक्षपाती था। जैनो हेतु उसने विहार बनवाये तथा उनके धार्मिक समारोह मे भाग लिया। जैन विद्वानो के प्रति श्रद्धालु होने के कारण धर्मघोष सूरि के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु वीसलदेव ने एकादशी के दिन पशुहिंसा बन्द[2] करवादी। इसके पश्चात् ११६९ ई० के बिजोलिया शिलालेख से विदित होता है कि पृथ्वीराज द्वितीय ने वहाँ के पार्श्वनाथ मन्दिर के दैनिक खर्चो हेतु मोरकुरी ग्राम दान मे दिया था। पृथ्वीराज द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका चाचा सोमेश्वर हुआ, जोकि अर्णोराज का पुत्र था। यह शासक प्रतापलंकेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसने स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से रेवा नदी के तट पर स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर को रेवाना ग्राम की सम्पूर्ण आय दान की थी।[3] सोमेश्वर का उत्तराधिकारी ११७९ ई० मे पृथ्वीराज तृतीय हुआ, जिसे धार्मिक वाद-विवाद का शौक था, फलत. उसके दरबार मे जिनपति सूरि एव पडित पद्मप्रभ के मध्य ११८२ ई० मे वाद-विवाद आयोजित किया गया,[4] जिसमे उपकेशगच्छीय चैत्यवासी पद्मप्रभ परास्त हो गये।

चौहानो की एक शाखा ने नाडौल मे ९६० से १२५२ ई० तक शासन किया था। अश्वराज चौहान सोलंकी शासक कुमारपाल के अधीनस्थ था। अश्वराज ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था तथा अपने राज्य मे अहिंसा के पालनार्थ निश्चित दिनो मे पशु हिंसा का निषेध घोषित कर रखा था। इसके शिला लेखो से विदित होता है कि कई जैन मन्दिरो मे उसने दान दिये थे। अश्वराज ने अपने पुत्र कटुकराज को सेवादी ग्राम की जागीर दी थी, जहाँ पर वीरनाथ (महावीर स्वामी) का प्रसिद्ध जैन मन्दिर था। सेवादी से १११० ई० के प्राप्त शिलालेख मे अश्वराज के समय मे प्रदत्त दान का विवरण है। इस प्रज्ञापन के अनुसार पद्राडा, मेद्रचा, छेछड़िया एव मेद्दड़ी ग्राम के प्रत्येक कूप वाले किसान को एक हारक यव (जौ) धर्मनाथ देव की दैनिक पूजा, अर्चना हेतु महास्थानीय उप्पलराक द्वारा समीपाटी-मदिर मे देने का आदेश था। १११५ ई० के दूसरे शिलालेख से विदित होता है कि कटुकराज ने आठ द्रम वार्पिक का अनुदान थल्लक को दिया था ताकि वह शिवरात्रि के दिन खत्तक मे प्रतिष्ठित शांतिनाथ की पूजा करे।[5]

---

१. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ १६

२ Catalogue of the Manuscripts in the Patna Bhandaras, p. 370

३. Epigraphia Indica, Vol. XXIV, p. 84

४. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ २५–३३

५. Epigraphia Indica, Vol XI, p. 30–32

महाराज रायपाल ने भी जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया था। नाड़लाई अभिलेख से विदित होता है कि रायपाल की राज्ञी मानलदेवी और पुत्रगण—रुद्रपाल और अमृतपाल ने ११३२ ई० में जैन साधुओं हेतु प्रति तेलघानी से राजभाग मे से दो पलिकाएं तेल दानस्वरूप दिये जाने की घोषणा की थी।[१] नाडलाई से प्राप्त ११३८ ई० के शिलालेख से विदित होता है कि महाराज रायपाल के शासनकाल में गुहिल ठाकुर राजदेव ने नेमिनाथ भगवान् की पूजा हेतु नड्डुलाड़गिक से आयात-निर्यात होने वाले भार की आय का बीसवाँ भाग दान दिया था।[२] नाडलाई के ११४३ ई० के तृतीय शिलालेख मे महावीर के मन्दिर को महाराज रायपाल के राज्य मे दी गई सुविधाओं का विवरण है, जबकि रावल राजदेव ठाकुर थे।[३] यही से प्राप्त चतुर्थ शिलालेख[४] मे रावल राजदेव द्वारा ११४३ ई० मे मन्दिर हेतु प्रति घाणक दो पलिकाएं तेल दान देने का आदेश है।

सोलकी कुमारपाल के सामत महाराज आल्हणदेव ने अपने स्वामी के पक्ष मे किराट कूप, लाटहृडा एव शिवा ग्रामो मे ११५२ ई० मे[५] महाजनो तथा ताम्बुलिको के आत्म सतोष के लिये प्रति मास अष्टमी, एकादशी एवं चतुर्दशी को पशु हिंसा का निषेध कर दिया था तथा इसका उल्लघन कर पशु हिंसा करने या पशु हिंसा का कारण बनने वाले के लिये उसने गम्भीर दण्ड का प्रावधान घोपित कर दिया था। यह कदम आल्हणदेव की जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा को व्यक्त करता है। ब्राह्मणो, पुरोहितो तथा मंत्रियों को भी पशुहिंसा निषेध से सम्बद्ध इस प्रज्ञापन का पालन करने का आल्हणदेव ने निर्देश दिया था। आल्हण एवं केल्हण के नाडोल दान पत्र से विदित होता है कि उन्होने राजपुत्र कीर्तिपाल को बारह ग्राम दिये थे तथा ११६० ई० में नाडलाई मे सूर्य एवं महेश्वर की आराधना कर स्नान करने के पश्चात् कीर्तिपाल ने अपने प्रत्येक ग्राम की ओर से नाडलाई के जिन महावीर मन्दिर हेतु दो द्रम वार्षिक दान की घोषणा लिखवाई थी।[६]

आल्हणदेव का पुत्र केल्हणदेव ने भी जैनधर्म के उत्थान हेतु सहयोग प्रदान किया था। उसके ११६४ ई० के साडेराव के शिलालेख से विदित होता है कि राजमाता अण्हल्लदेवी ने सन्डेरक गच्छ के मूल नायक तीर्थंकर महावीर हेतु भूमिदान किया था।[७] लालराई के द्वितीय शिलालेख से विदित होता है कि सम्नाणक के स्वामी राजपुत्र लाखनपाल एवं अभयपाल के अधीनस्थ कृषक—भीवड़ा, आशाधर एवं अन्यों ने तीर्थंकर शांतिनाथ से सम्बद्ध गुर्जरों के उत्सव के लिये चार सेर जौ अपने खेत —खाडिसीरा से[८] आत्म कल्याणार्थ भेट दिया था।

कीर्तिपाल ने चाहमान राजधानी नाडोल से जबालिपुर स्थानांतरित कर ली थी, फलतः जवालिपुर से भी जैन धर्म के उत्थान के उल्लेख मिले हैं। महाराज आल्हण के पौत्र एव महाराज कीर्तिपालदेव के पुत्र महाराज समरसिह के राज्यकाल के ११८२ ई० के जालोर शिलालेख के अनुसार

---

१. Epigraphia Indica, Vol. XI, p. 34–35
२. वही, पृ० ३७–४१
३. वही, Vol. IX, पृ० १५९
४. वही, पृ० ६३–६६
५. वही, Vol. XI, पृ० ४३–४६
६. वही, Vol. IX, पृ० ६६–७०
७. वही, Vol. XI, पृ० ४६–४७
८. वही, पृ० ५०–५१

श्रीमाल परिवार के सेठ यशोवीर ने अपने भाई एवं गोष्ठी के समस्त सदस्यों के साथ एक मण्डप निर्मित करवाया था।[1] चाहमान महाराज समरसिंह के आदेश से भण्डारी यशोवीर ने कुमारपाल द्वारा निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनरुद्धार ११८५ ई० मे जालोर मे करवाया था।[2] चाहमान शासक चाचिगदेव के शासनकाल मे १२४५ ई० मे तेलिया ओसवाल नरपति ने भगवान् महावीर के मन्दिर के भण्डार मे ५० द्रम दिये थे।[3] १२७५ ई० के एक अन्य शिलालेख से विदित होता है कि सामतसिंह के राज्यकाल मे नरपति ने पार्श्वनाथ-मंदिर मे भेंट अर्पित की थी।[4]

चौहानो के उदार राज्यकाल मे राजस्थान के मारवाड़, अजमेर, बिजोलिया, एव साम्भर के क्षेत्रो मे जैन धर्म का उत्कर्ष और प्रसार हुआ था। चौहान शासको के जैनेतर धर्मों के अनुयायी होने पर भी हिन्दू देवी-देवताओ के साथ-साथ सहिष्णुतावश जैन तीर्थंकरो की भी अर्चना करते रहे तथा जैनमतावलम्बियों के उत्सवो मे भाग लेकर अपनी जैन-प्रजा के प्रति सौहार्द्रता का परिचय देते रहे।

चावड़ तथा सोलंकी राजवंश :

जैन धर्म को चावड एव सोलकी शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ था, इन राजवंशो के शासनकाल मे जैन धर्म का अधिक प्रचार हुआ। ये राजवश शैवधर्मानुयायी थे, परन्तु जैन धर्म एव साधुओं के प्रति सहिष्णुतावश आदर भाव रखते थे। कुछ शासको ने स्वयं भी जैन धर्म के प्रचार मे सहयोग दिया। प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्र के चरित्र, पांडित्य एवं प्रभाव के कारण जैन धर्म का गुजरात और राजस्थान मे अत्यधिक प्रसार हुआ था। विद्वता तथा जीवन की पवित्रता की दृष्टि से हेमचन्द्र की तुलना शंकराचार्य से ही की जा सकती है।

अन्हिलवाड़ के संस्थापक वनराज ने चावड़ वश की स्थापना की थी। वनराज ने शीलगुण सूरि को अपनी राजधानी आने को आमन्त्रित किया तथा अपना सम्पूर्ण राज्य सूरिजी के चरणो मे अर्पित करने की तत्परता व्यक्त की। शीलगुणसूरि के प्रति इतनी श्रद्धा का कारण यह बताया गया है कि जब वनराज जगल मे पलने पर सोया हुआ था, उस समय सूरिजी ने उसके शारीरिक लाञ्छनो को देखकर भविष्यवाणी की थी कि यह बालक आगे चलकर राजा बनेगा। निःस्वार्थ भाव रखने वाले त्यागी सूरिजी ने इसको स्वीकार नही किया, परन्तु सूरिजी के आदेशानुसार वनराज ने अणहिलपुर पाटन मे पचासर नाम के मन्दिर का निर्माण करवाकर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की।[5] वनराज ने अपनी नवस्थापित राजधानी अणहिलपुर पाटन मे बसने हेतु श्रीमाल तथा मरुधर देश के अन्य स्थानो के जैन व्यापारियो को आमन्त्रित भी किया था।

मूलराज सोलंकी ने वनराज के वशज अतिम चावड़ राजा से करीब ९४२ ई० मे सत्ता हस्तगत कर ली। मूलराज शक्तिशाली शासक था, इसके राज्य क्षेत्र मे सारस्वत, सत्यपुरमण्डल तथा

---

१. Epigraphia Indica, Vol. XI, पृ० ५२–५४

२. Progress Report of Archaeological Survey, Western Circle 1908–09, p. 55

३ वही, पृ० ५५ ४. वही, पृ० ५५

५. प्रबन्धचिन्तामणि, वनराज-प्रबन्ध, पृ० १५

कच्छ एवं सौराष्ट्र के भाग थे। यह जैन धर्म का सरक्षक एवं प्रेमी था तथा इसने मूलराजवसहिका[1] नामक जैन मंदिर निर्मित करवाया था।

जयसिंह सिद्धराज एवं कुमारपाल की उदात्त भावना एवं जैन धर्म के प्रति अनुराग के कारण इसका उत्थान एव प्रसार अधिक हुआ। जयसिंह यद्यपि शैव धर्म का अनुयायी था, फिर भी जैन धर्म के प्रति उसकी उदारता प्रशसनीय है। जयसिंह के दरबार में दिगम्बर आचार्य कुमुदचन्द्र और श्वेताम्बर आचार्य देवसूरि के मध्य ११२५ ई० मे वाद-विवाद हुआ था,[2] जिसे सुनने हेतु उसके राज्य क्षेत्र के जैन धर्मानुयायी एकत्रित हुए होगे। जयसिंह विद्वानो का आश्रयदाता था, प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र भी कुछ समय तक उसके दरबार मे आते रहे। जयसिंह का उत्तराधिकारी कुमारपाल था, जो धीरे-धीरे हेमचन्द्राचार्य के प्रभाव मे आकर जैन धर्मानुयायी हो गया था। कुमारपाल ने जैन धर्म के प्रचार के लिये कई उपाय किये तथा अपने राज्य को एक आदर्श जैन राज्य के रूप में सस्थापित करने का प्रयास किया। जैन धर्म मे त्याज्य विलासप्रिय वस्तुओ को न केवल स्वय कुमारपाल ने त्यागा बल्कि अपनी प्रजा को भी तद्नुरूप अग्रसर होने का परामर्श दिया। इसने अपने राज्य मे जीव-वध पर पाबन्दी लगा दी तथा इसका पालन सजगतापूर्थक सख्ती से करवाया। द्वाश्रय-काव्य के अनुसार पाली देश के ब्राह्मणों को यज्ञ मे पशुबलि के स्थान पर अन्न का उपयोग करना पड़ता था। मेरुतुंग के अनुसार सपादलक्ष के एक साधारण व्यापारी को एक मूषक को मारने के दण्डस्वरूप अपनी समस्त सम्पत्ति यूकाविहार बनवाने मे खर्च करनी पड़ी थी;[3] यद्यपि यह विवरण अतिरंजित है, फिर भी जीव हिंसा-निषेध का पालन कुमारपाल ने अपनी प्रजा से सख्ती से करवाया होगा।

कुमारपाल विद्या प्रेमी और विद्वानो का आश्रयदाता था, उसने अपने राज्य मे विभिन्न स्थानो पर २१ शास्त्र भण्डारो की स्थापना की थी।[4] वह एक महान् निर्माता भी था; मेरुतुंग के अनुसार उसने १४४० मन्दिर निर्मित करवाये थे।[5] कुमारपाल से सम्बद्ध बहुसंख्यक मन्दिर बताना अतिरजित हो सकता है, परतु उसने बडी तादाद मे जैन मंदिर अवश्य बनवाये थे। ११३४ ई० के अभिलेख[6] से विदित होता है कि उसने जालोर मे एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था। कुमारपाल की मृत्यु के बाद राजनीतिक अस्थिरता के कारण जैन धर्म की उन्नति मे बाधा अवश्य आई, परन्तु जैन राजनयिको के प्रभाव एव प्रयत्न से जैन धर्म विकासोन्मुख बना रहा।

जैन धर्म ने विमल, वस्तुपाल और तेजपाल जैसे महापुरुषो की सरक्षता मे उन्नति की। ये श्रावक जैन धर्म के प्रसार हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे। चालुक्य शासक भीम प्रथम ने विमल को अपना प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था, इसने भीम और धन्धू के मध्य मैत्री स्थापित करवाई तथा धन्धू के

---

१. प्रबन्धचिंतामणि, मूलराज-प्रबन्ध, पृ० २२
२. प्रभावक चरित्र, पृ० १७१–८२; प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ७८–८२
३. प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ११०
४. प्रभावक चरित्र, पृ० ९२
५. प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ११५
६. Progress Report of Archaeological Survey, Western Cirle 1908–09, P. 55.

आदेश से १०३२ ई० मे आबू मे आदिनाथ के एक सौन्दर्यपूर्ण एवं विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया।

वस्तुपाल एव तेजपाल पहले भीम द्वितीय के मंत्री थे, जिन्हे वीरधवल के अनुरोध पर मैत्रीवश वाघेला राज्य की सेवार्थ भीम ने भेज दिया, फलतः बाद मे ये वीरधवल के मत्री रहे। सोमसिंह के शासनकाल मे वस्तुपाल के अनुज तेजपाल ने १२३० ई० मे आबू मे नेमीनाथ का मन्दिर निर्मित करवाया तथा अपने पुत्र लूणसिंह की स्मृति मे मन्दिर का नाम लूणवसही दिया। यह मंदिर कला का अद्भुत उदाहरण माना जाता है।

परमार राजवंश :

परमार शासको ने भी जैन धर्म की उन्नति मे योगदान अर्पित किया था। सिरोही रियासत के दियाणा ग्राम के जैन मन्दिर मे ९६७ ई० के शिलालेख[1] में कृष्णराज के शासन काल मे विष्टित परिवार के वर्द्धमान द्वारा वीरनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से दियाणा का यह जैन शिलालेख कृष्णराज परमार का समय निश्चित करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कृष्णराज, आबू के परमार राजवंश मे उत्पलराज का पौत्र एवं आरण्यराज का पुत्र तथा आबू के परमारों से सम्बद्ध यह सबसे प्राचीन अभिलेख है।

झाड़ोली के महावीर जैन मन्दिर के ११९७ ई० के शिलालेख[2] से ज्ञात होता है कि परमार राजा धारावर्ष की रानी श्रृंगारदेवी ने मन्दिर हेतु भूमिदान दी थी। चन्द्रावती के शासक आल्हणसिंह के शासन काल में पार्श्वनाथ मन्दिर को भेंट देने का विवरण १२४३ ई० के अभिलेख से विदित होता है।[3] चन्द्रावती के महाराज वीसलदेव और सारंगदेव के शासनकाल में दत्ताणी के परमार ठाकुर द्वय श्री प्रताप और हेमदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर के व्यय हेतु दो खेत १२८८ ई० मे दान दिये थे।[4] रावल महिपालदेव के पुत्र सूहडसिंह ने भी इसी मन्दिर को धार्मिक महोत्सव मनाने के लिये ४०० द्रम दान किये थे। दियाणा से प्राप्त १३३४ ई० के शिलालेख[5] से विदित होता है कि महाराज तेजपाल और उनके मंत्री कूपा ने एक हौज बनवाकर महावीर स्वामी के मन्दिर को भेंट किया था।

धार के परमार शासको ने भी जैन धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखलाई। राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र—मेवाड़, सिरोही, कोटा और झालावाड़ इनके शासनान्तर्गत थे। इन प्रदेशो मे जैन धर्म की लोकप्रियता का ज्ञान बिखरे हुए जैन अवशेषो से होता है। धार का परमार शासक नरवर्मन शैव था, परन्तु जैन धर्म के प्रति आचार्य जिनवल्लभसूरि के कारण श्रद्धालु था। खरतरगच्छ की एक परम्परा के अनुसार नरवर्मन के दरबार मे दो दाक्षिणात्य ब्राह्मण एक समस्या के निदान हेतु धार आये थे, धार के विद्वानगण उक्त समस्या का सतोषप्रद हल नही कर सके; फलतः राजा ने उन ब्राह्मणो को जिनवल्लभसूरि के पास चित्तौड़ भेज दिया। सूरिजी ने तुरन्त सतोषप्रद हल निकाल दिया। जब जिनवल्लभसूरि धारा नगरी आये तो राजा नरवर्मन ने उनको राजमहल मे आमंत्रित किया

---

१. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, संख्यक ३११ २ वही, संख्यक ३११
३. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1909–10, No. 22
४. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ५५ ५. वही, संख्यक ४९०

तथा सूरिजी के विद्वतापूर्ण उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित हुआ। नरवर्मन ने जिनवल्लभसूरि को तीन ग्राम या ३० हजार द्रम दान लेने की इच्छा व्यक्त की, जिसे सूरिजी ने स्वीकार नहीं किया। सूरिजी के अनुरोध पर नरवर्मन ने चित्तौड के चूंगीगृह से वहां के खरतरगच्छ के दो मन्दिरों को दो द्रम दैनिक दिये जाने के आदेश दिये।[1]

हठुंडी का राठौड़ राजवंश :

हठुंडी, मारवाड मे बीजापुर के निकट है, जहां से दसवी शताब्दी मे राठोड़ों का शासन करना ज्ञात होता है। सामान्यतः यह राठोड़ राजवंश जैनधर्मावलम्बी विदित होता है।[2] वासुदेवाचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर हठुंडी में हरिवर्मन के पुत्र विदग्धराज ने ऋषभदेव का मन्दिर निर्मित करवाकर भूमि दान में दी थी। विदग्धराज के पुत्र ममत्त ने भी इसी मन्दिर को कुछ दान दिये थे। ममत्त के पुत्र धवल ने अपने पितामह द्वारा निर्मित इस मन्दिर का नवीनीकरण करवाया तथा जैन-धर्म की कीर्ति स्थापित करने हेतु प्रत्येक प्रकार के प्रयत्न किये। हठुंडी के इस मन्दिर को 'हस्तिकुण्डी की गोष्ठी' ने पुनः सुधरवाया था तथा उसके बाद वासुदेवाचार्य के शिष्य शातिभद्र के हाथो १०५३ ई० मे प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी, जिसमे कुछ जैन श्रावकों ने भी सहयोग प्रदान किया था। इन राठोड शासको का स्वर्ण से तुलकर, स्वर्ण गरीबो मे बांटने के भी सन्दर्भ मिलते है।[3]

सूरसेन राजवंश :

आधुनिक भरतपुर रियासत के क्षेत्रो पर प्राचीन सूरसेन राजवंश ने छठी से बारहवी शताब्दियो तक शासन किया था। इनके शासनकाल मे जैन-धर्म का प्रसार एव उन्नति होने के कतिपय साक्ष्य मिले है। कुछ सूरसेन शासको ने जैन-धर्म को स्वीकार कर इसे संरक्षण दिया तथा कई मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। प्रसिद्ध जैनाचार्यो ने सूरसेन प्रदेश की यात्रा की तथा कुछ ने इस क्षेत्र मे निवास भी किया था।

सूरसेन जनपद की प्राचीन राजधानी मथुरा तो जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था, परन्तु प्राचीन स्मारकों को मुस्लिमो ने तोड-फोड़ डाला। भरतपुर क्षेत्र मे जैनधर्म से सम्बद्ध उल्लेख दसवी शताब्दी से मिलते हैं। मेवाड़ के राजा अल्लट ने समकालीन प्रद्युम्नसूरि को सपादलक्ष एवं त्रिभुवनगिरि के राज दरबारो मे सम्मानित किया गया था।[4] प्रद्युम्नसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि ने धनेश्वरसूरि को जैनसाधु होने की प्रेरणा दी थी। धनेश्वरसूरि 'त्रिभुवनगिरि का कर्दमभूपति' के नाम से प्रसिद्ध है, यद्यपि कर्दम इनका नाम था कि विरुद; अज्ञात है। धनेश्वरसूरि ने राजगच्छ की स्थापना की तथा ये धार के परमार शासक वाक्पति मुञ्ज के समकालीन माने जाते है;[5] मुञ्ज की अन्तिम तिथि

---

१. खरतरगच्छ बृहदगुर्वावली, पृष्ठ–१३
२. Dr. K. C. Jain : Jainism in Rajasthan; pp. 26–27
३. Nahar : Jain Inscriptions, Pt. I, No. 898.
४. Peterson's Reports, 3, pp. 158–62
५. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९७–९८

९९७ ई० थी। इस कर्दमभूपति की पहिचान ११५५ ई० के अनंगपालदेव के थाकरदा (डूंगरपुर) अभिलेख[1] मे उल्लेखित राजा पृथ्वीपालदेव उर्फ भर्तृपट्ट से की जाती है। इस अभिलेख मे पृथ्वीपालदेव उर्फ भर्तृपट्ट के पुत्र त्रिभुवनपालदेव, पौत्र विजयपाल एवं प्रपौत्र सूरपालदेव के भी उल्लेख हैं, यद्यपि इनका राजवंश का नाम नही है, परन्तु ये सूरसेन शासक ही रहे होगे।

दिगम्बर जैन कवि दुर्गदेव ने अपनी कृति 'ऋष्ट समुच्चय' की रचना १०३२ ई० मे राजा लक्ष्मीनिवास के शासनकाल मे कुम्भनगर के शान्तिनाथ मन्दिर मे पूर्ण की थी।[2] इस कुम्भनगर की पहिचान भरतपुर के निकटवर्ती कामा से की जाती है। इसमे उल्लेखित राजा लक्ष्मीनिवास को पहिचान १०१२ के बयाना अभिलेख[3] मे वर्णित चित्रलेखा के पुत्र लक्ष्मणराज से की जाती है। राजा विजयपाल के शासनकाल के श्वेताम्बर काम्यकगच्छ के विष्णुसूरि एवं महेश्वरसूरि के नामोल्लेख-युक्त बयाना के १०४३ ई० के शिलालेख[4] मे महेश्वरसूरि के निर्वाण का विवरण है। इसी विजयपाल को दुर्ग का पुर्ननिर्माण एव विस्तार कर विजयमंदिरगढ़ नाम देने का श्रेय दिया जाता है। काम्यकगच्छ की स्थापना भरतपुर के निकटवर्ती कामा से मानी जाती है तथा इसी क्षेत्र मे श्वेताम्बरों के इस गच्छ का विस्तार भी ज्ञात है। बयाना से प्राप्त इन जैन अभिलेखो मे नगर का नाम श्रीपथ दिया है, जो कि बयाना का प्राचीन नाम था। बयाना तहसील के नरोली ग्राम से भी ११३९ ई० की लेखयुक्त जैन प्रतिमाए[5] मिली है, जिससे यह क्षेत्र जैन-धर्म का जीवन्त केन्द्र प्रकट होता है।

बयाना का अन्तिम सूरसेन शासक कुमारपाल था, जो कि ११५४ ई० मे सिंहासन पर बैठा। इस कुमारपाल को जैनसाधु जिनदत्तसूरि ने धार्मिक शिक्षा दी थी। यहा के शांतिनाथ मन्दिर पर स्वर्णकलश एवं ध्वज जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाने का समारोह बडे उत्साह से मनाया गया था।[6] जिनदत्तसूरि के दो शिष्यो—जिनपालगणि एव धर्मशीलगणि ने यशोभद्राचार्य के निकट अध्ययन किया था। अपने गुरु जिनदत्तसूरि की आज्ञा मिलने पर ११८८ ई० मे त्रिभुवनगिरि के सघ को लेकर इन्होने तीर्थयात्रा की तथा अन्य संघो के साथ जिनदत्तसूरि से भेंट की।[7] त्रिभुवनगिरि के दुर्ग मे १२वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे वादिदेवसूरि ने किसी प्रकाड विद्वान् को वादविवाद में परास्त करने का गौरव अर्जित किया था।[8] त्रिभुवनगिरि मे उपकेशगच्छ से सम्वद्ध एक प्राचीन मन्दिर भी था।[9] उपर्युक्त विभिन्न उल्लेखों से भरतपुर के निकटवर्ती क्षेत्रो मे सूरसेन राजवंश के अन्तर्गत जैनधर्म की प्रतिष्ठा एवं प्रसार का ज्ञान होता है।

[४]

राजस्थान की विभिन्न रियासतों में जैन धर्म

राजस्थान के विभिन्न देशी रियासतो मे विभाजित रहने के पश्चात् भी जैन-धर्म उन्नतिशील

१. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer 1915–16 p. 3
२. Singhi Jain Series Vol. 21 (Introduction)
३. Epigraphia Indica, Vol. 22, p 120 ४ Indian Antiquary, Vol. 21, p. 57
५. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1920–21, p. 116
६. खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ–१९ ७ वही, पृष्ठ ३४
८ भारतीय विद्या, जिल्द–२, भाग १, पृष्ठ ६२ ९ वही

बना रहा। मध्यकाल मे अनेक मन्दिर निर्मित हुए तथा उनमे मूर्तियो की प्रतिष्ठा की गई। अनेक पवित्र ग्रथो की प्रतिया तथा मौलिक ग्रंथ लिखे गये। राजा एव राजनयिको ने जैन-साधुओं को आदर की दृष्टि से देखते हुए, जैनधर्म के प्रति उदारता और सहिष्णुता का परिचय दिया, जिसके कारण राजस्थान मे जैन-धर्म एवं अहिसा का प्रभाव अक्षुण्ण बना रहा।

मेवाड़ :

मेवाड़ के महाराणाओ तथा उनके जैन मन्त्रियो ने जैन-धर्म के प्रसार एवं उन्नति हेतु कई प्रयत्न किये। मन्दिर निर्माण, मूर्तियो की प्रतिष्ठा, अहिसा पालन की उद्घोषणा तथा जैनाचार्यो का हार्दिक स्वागत एव प्रवचन-श्रवण द्वारा मेवाड मे जैनेतर धर्मावलम्बी होते हुए भी राणाओ ने जैन-धर्म के प्रति सहिष्णुता बनाये रखी।

राणा भर्तृभट्ट (९४३ ई०) ने भर्तृपुर[१] बसाया तथा गुहिलविहार निर्मित करवाकर चैत्रपुरीय गच्छ के बूदगणि के द्वारा उसमे आदिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई[२]। इसके पुत्र अल्लट के मन्त्री ने आघाट मे मन्दिर बनवाकर पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा सन्डेरक गच्छ के यशोदेवसूरि द्वारा करवाई। जिनप्रबोधसूरि के समकालीन चित्तौड के महारावल क्षेत्रसिह थे,[3] जिन्होने सूरिजी के करीब १२७७ ई० मे चित्तौड़ पदार्पण पर ब्राह्मणों, सामतों और कर्णराज के साथ भव्य स्वागत किया था[४]। महाराणा समरसिह और उनकी माता जयतल्लादेवी, देवेन्द्रसूरि के उपदेश से प्रभावित होकर उनके भक्त हो गये। चित्तौडगढ के १२७८ ई० के शिलालेख[५] से मेदपाट और चित्रकूट के स्वामी तेजसिंह की रानी जयतल्लादेवी ने वहा पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था। समरसिह ने मन्दिर के पश्चिम मे प्रद्युम्नसूरि हेतु विहार बनाने को भूमिदान दी थी तथा भर्तृपुरीय गच्छ के जैन मन्दिर को साध्वी सुमाला के उपदेशो से प्रभावित होकर अपनी माता जयतल्लदेवी के आत्मकल्याणार्थ कुछ भूमिदान मे दी थी।[६] देवेन्द्रसूरि के उपदेशो से प्रभावित होकर समरसिह ने अपने राज्य में पशुहिंसा का निषेध घोषित कर प्रजा को अध्यादेश मे मदिरा त्याग करने और न्यायपूर्ण एवं धार्मिक जीवन व्यतीत करने का परामर्श भी दिया था। राणा के पुत्र तेजक ने अपनी पत्नी रत्नदेवी और पुत्र विजयसिह के साथ जयतल्लादेवी के लिए १३०६ ई० मे एक जिनमूर्ति प्रतिष्ठित की थी, जो कि प्रतापगढ के मन्दिर के मूर्ति-लेख[७] से ज्ञात है।

महाराणा मोकल के खजाची ने अपने स्वामी के आदेश से १४२८ ई० मे महावीर-मन्दिर बनवाया था।[८] नागदा के पार्श्वनाथ मन्दिर को १४२९ ई० मे पोरवाल जाति के एक व्यापारी ने निर्मित करवाया था।[९] मोकल के पुत्र महाराणा कुम्भा के शासनकाल मे कई जैन मन्दिर और

---

१. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, Yr. 1914–15 No. 1
२. जैन सत्य प्रकाश, वर्ष ७, दीपोत्सवाक, पृष्ठ १४६–४७
३. जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९३   ४. खरतरगच्छ वृहदगुर्वावली, पृष्ठ ५६
५. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1922–23, No. 8
६. वही, No. 9   ७ वही, 1921–22, No 3
८. मध्यप्रान्त, मध्यभारत और राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक, पृष्ठ १३७
९. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1904–05 p 62

मूर्तियां बनी तथा स्वयं महाराणा ने सादड़ी का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बनवाया[1] जिसे राणकपुर का मन्दिर कहा जाता है। चित्तौड़ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ को बघेरवाल जीजा के पुत्र पुन्नसिंह ने अपनी पुत्री की प्रेरणा से तथा महाराणा कुम्भा की अनुमति से दुर्ग के अन्दर निर्मित करवाया था।[2] रणपुर एव कमलगढ के प्रसिद्ध चौमुखा मन्दिर कुम्भा के ही शासनकाल मे बने थे। देलवाड़ा के जैन विहार के निकट पडे शिलालेख से विदित होता है कि महाराणा कुम्भा के शासनकाल मे धर्मचिन्तामणि मन्दिर मे पूजा हेतु १४ टंका दान किये गये थे।[3] इसके शासनकाल मे एक व्यापारी सारंग ने नागदा के अद्भुदजी मन्दिर में शान्तिनाथ की मूर्ति १४३७ ई० मे प्रतिष्ठित की थी।[4] कुम्भा के कोषाधिकारी साह केल्हा के पुत्र भण्डारी वेलाक ने १४४८ ई० मे जैन तीर्थंकर शाँतिनाथ का मन्दिर निर्मित करवाया था।[5] वसन्तपुर (वसन्तगढ) चैत्य मे धनसी के पुत्र भादाक ने मुनि सुन्दरसूरि के द्वारा एक जैनमूर्ति की प्रतिष्ठा १४५३ ई० मे करवाई थी।[6] अचलगढ की काँसे की आदिनाथ मूर्ति के पादपीठ अभिलेख से विदित होता है कि जब महाराजाधिराज कुम्भा का कुम्भलमेरू पर शासन था, तब डूंगरपुर मे रावल सोमदास के शासनकाल मे बनी इसी प्रतिमा को तपागच्छ-सघ द्वारा आबू मे लाया गया था।[7]

राणा कुम्भा के पुत्र राणा रायमल के शासनकाल के १४६९ ई० के उदयपुर-अभिलेख से ज्ञात होता है कि महावीर और अम्बिका के मन्दिर बनवाये गये थे।[8] मेवाड़ के राणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के आदेश से सीहा एवं समदा ने नादलाई मे आदिनाथ प्रतिमा का प्रतिष्ठा समारोह किया था।[9]

महाराणा प्रताप ने हीरविजयसूरि को मेवाड़ी मे पत्र लिखकर[10] धर्म-प्रचार हेतु मेवाड़ आने का १५७८ ई० मे निमन्त्रण दिया था। प्रताप के पुत्र अमरसिह ने भी जैनमन्दिर को १६०२ ई० मे दान दिया था।[11] महाराणा जगतसिह के शासनकाल मे जैनधर्म की समृद्धि मे वृद्धि हुई। १६२९ ई० मे जयमल्ल ने सम्पूर्ण सघ सहित नादोल[12] एवं नादलाई[13] मे प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। आचार्य महाराज देवसूरि के गुणगान से प्रभावित होकर जगतसिह ने उन्हे चातुर्मास हेतु उदयपुर आमन्त्रित

---

१ History of Indian and Eastern Architecture p. 240
२. अनेकांत, वर्ष ८, क्रमाक ३
३. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1923-24, No. 7
४. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1905-6 p 61
५. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1920-21, No. 10
६ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1923-24 No. 8
७. वही, 1925-26, No 8
८. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1905-06, p. 60
९. वही, 1908-09, p. 43 10 राजपूताना के जैन वीर, पृष्ठ ३४१-४२
११. Progress Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1907-08 p 48-49
१२. वही, 1908-09 p. 46 १३ वही, p. 43

करने के लिये अपने प्रधानमन्त्री झाला कल्याणसिंह को भेजा था। देवसूरि का उदयपुर मे शानदार स्वागत किया गया तथा उनके उपदेशो से प्रभावित होकर जीवहिंसा रोकने से सम्बन्धित आदेश निकाले, इनमे उदयपुर की पिछोला एव उदयसागर झील मे मछली पकड़ने पर रोक; महाराणा के जन्मदिन वाले मास, राज्याभिषेक की तिथि तथा भाद्रपद मास में सम्पूर्ण राज्य में जीवहिंसा की मनाही आदि प्रमुख है। वरकाना मे वार्षिक सम्मेलन मे जाने वाले लोगो से राणा ने शुल्क नही लेने के चुंगीघर को आदेश दिये तथा मचिन्द दुर्ग पर राणा कुम्भा द्वारा निर्मित जैन मन्दिर को उसने सुधरवाया। जगतसिंह को उदयपुर के जैनमन्दिर मे भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा की पूजा करने[1] का भी श्रेय दिया जाता है।

मेवाड़ के राजघराने के संरक्षण मे जैनधर्म की उन्नति होती रही। महाराणा राजसिंह के प्रधानमन्त्री दयालशाह ने १६७५ ई० मे राजनगर मे जैन मन्दिर बनवाकर जैनाचार्य विजयसागर के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।[2]

वागड़ :

राजस्थान के डूंगरपुर, बासवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्यों का सम्मिलित क्षेत्र वागड कहलाता था। इन तीनों राज्यों मे शासको की सहिष्णुतापूर्ण नीति एव जैनानुयायी मन्त्रियो के कारण मन्दिरो का निर्माण हुआ तथा मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं भी ठाटबाट से सम्पन्न हुई। जैन समाज के प्रभाव से अहिंसा का पालन तेली तक करते ज्ञात होते है। वागड़ सघ का सबसे प्राचीन उल्लेख ९९४ ई० के मूर्ति-लेख से होता है।[3] वागड़ प्रदेश की प्राचीन राजधानी 'वटपद्र' थी, जिसकी पहिचान 'बरोद' से की जाती है। यहां पर एक चट्टान पर २४ तीर्थंकरो की प्रतिमाएं उभारी गई है, जिन्हे १३०७ ई० के अभिलेख के अनुसार खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि ने स्थापित करवाई थी।[4] मेवाड के धुलेवा मे स्थापित केसरियाजी की प्रतिमा भी यही से ले जाई गई थी।[5]

डूंगरपुर का प्राचीन नाम गिरिवर था, जिसकी स्थापना १३५८ ई० मे की गई थी। जयानन्द के 'प्रवासगीतिकात्रय' से विदित होता है कि १३७० ई० मे यहां पांच जैन-मन्दिर तथा नौ-सौ जैन परिवार थे।[6] रावल प्रतापसिंह के मन्त्री प्रहलाद ने १४०४ ई० में एक जैन-मन्दिर बनवाया था।[7] गजपाल के शासनकाल की चार ग्रंथो की हस्तलिखित प्रतियां—पञ्चप्रस्थान-विपमपद व्याख्या (१४२३ ई०), द्वाश्रय महाकाव्य सटीक (१४२८ ई०) द्वितीय खण्ड ग्रंथाग्रत्रिय-सकलग्रंथा (१४२९ ई०) और कथाकोष (१४३० ई०), मिली हैं।[8] इसके मन्त्री साभा ने आंतरी में शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाकर तीर्थंकर की काँसे की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।[9] गजपाल के बाद उसके पुत्र

---

१. राजपूताना के जैनवीर पृष्ठ ३४१ २. केशरियाजी तीर्थ का इतिहास, पृष्ठ–२७

३. Dr K. C. Jain : Jainism in Rajasthan p. 32 (जयति श्री वागट संघ)

४. डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ–१ ५. वही, पृष्ठ–१५

६. मेवाड राज्य का इतिहास ७. श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ३९७

८. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1915-16

९. श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ३९८

सोमदास के शासनकाल मे डूंगरपुर मे निर्मित आदिनाथ की कॉसे की विशाल प्रतिमा अचलगढ मे सपरिवार साभा सहित तपागच्छ के सघ द्वारा पधराई गई थी।[1] साभा के बाद उसका पुत्र साल्हा सोमदास का मुख्यमन्त्री बना, जिसने १४६४ ई० के अकाल के समय दो हजार व्यक्तियो को प्रतिदिन भोजन करवाया था।[2] गिरिपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर को सुधरवाया था तथा अपने पिता साभा द्वारा निर्मित आतरी के मन्दिर मे एक मण्डप एव देवकुलिकाएँ बनवाई थी, जिसका प्रतिष्ठा समारोह १४६८ ई० मे सोमविजयसूरि द्वारा सम्पन्न हुआ था। डूंगरपुर से पांच मील दूर अपने जन्म-स्थान थाना मे साल्हा ने एक विशाल जैन-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया था, जो पूर्ण नही हो सका।[3] रावल सोमदास के शासनकाल मे सिद्ध-हेम वृहद-वृत्ति, श्री सुकुमाल-स्वामी-चरित्रम् और काव्यकल्प लता कवि शिक्षावृत्ति लिखी गई थी।[4] इसके शासनकाल मे जैन-मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह १४६२ ई० एव १४७३ ई० मे सम्पन्न हुए थे।[5] सोमदास के समय का किसी जैन साधु का स्मारक भी मिला है।[6] बासवाड़ा रियासत के नौगामा मे स्थित शान्तिनाथ मन्दिर के भीत्ति लेख से ज्ञात होता है कि १५१४ ई० मे राजा उदयसिह के शासनकाल मे हुम्बड जाति के डोसी चम्पा तथा उसके पुत्रो एव पौत्रो ने यह मन्दिर निर्मित करवाया था।[7] डूगरपुर एव बासवाडा मे जैन-धर्म की लोकप्रियता एव उत्थान का ज्ञान परवर्तीयुग की प्राप्त बहुसख्यक मूर्तियो से होता है।[8]

प्रतापगढ रियासत मे जैन-धर्म के उत्थान का ज्ञान देवली, झासदी, एवं प्रतापगढ के जैन-मन्दिरो की १४वी और १५वी शताब्दियो की लेखयुक्त मूर्तियो से होता है। देवली मन्दिर की १३१६ ई० की पार्श्वनाथ के कास्य-मूर्तिलेख से विदित होता है कि इसे धन्धलेश्वरवाटक निवासी श्रीमाल जाति के ठाकुर खेटाक ने प्रतिष्ठित करवाया था।[9] देवली के १७१५ ई० के शिलालेख से विदित होता है कि महारावल पृथ्वीसिह के राज्यकाल मे सारैया एवं जीवराज नामक महाजनो के अनुरोध पर स्थानीय तेलियो ने वर्ष मे ४४ दिन अपने कार्य को बन्द रखने का निश्चय किया था।[10] उसी राजा के शासनकाल मे मल्लिनाथ का मन्दिर देवली मे सिघवी वर्धमान ने १७१७ ई० मे बनवाया था।[11] महारावल सामन्तसिह के राज्यकाल मे आदिनाथ का मन्दिर धनरूप, मनरूप एव अभयचन्द्र ने १७८१ ई० मे निर्मित करवाया था।[12] प्रतापगढ़ मे जैनमूर्तियों का एक विशाल प्रतिष्ठा समारोह १७७८ ई० मे सम्पन्न हुआ था।

कोटा

कोटा रियासत मे बारां, कोषवर्धन (शेरगढ़) श्रीनगर, अत्रु, विलास आदि जैन-धर्म के प्रसिद्ध प्राचीन केन्द्र थे। पद्मनन्दि ने बारा मे 'जम्बूद्वीपपण्णति' की रचना आठवी शताब्दी मे की थी, इस

---

१. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1929-30 No. 3
२. वही, 1925-26, No. 8
३. डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ५८
४. श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ३९९
५. डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ७०-७१
६. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1916-17
७. वही, 1916-17 No. 5
८. वही, 1914-15
९. वही, 1921-22 No 6
१०. वही, 1934-35, No. 17
११. वही, No. 18
१२. वही, No 20

ग्रंथ के अनुसार बारां जैन श्रावको एवं मन्दिरो से परिपूर्ण था। 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' में उल्लेखित बारा की पहिचान कोटा रियासत के बारां से की जाती है, जो कि इस समय मूलसंघ के भट्टारकों का पीठ था।[१] शेरगढ मे ग्यारहवी शताब्दी मे किसी राजपूत सरदार द्वारा प्रतिष्ठित तीन विशाल प्रतिमाएं है, जिनके पादपीठ-लेख से नगर का प्राचीन नाम कोपवर्धन ज्ञात होता है।[२] रामगढ़ के निकट पहाडियो मे आठवी-नवी शताब्दी की कटी हुई जैन-गुफाएं है। इस स्थल को श्रीनगर कहा जाता था। यहां जैनसाधु वर्षावास करते होंगे। गुफाओं के आस-पास जैन तीर्थङ्करों की कुछ मूर्तियां भी कोरी गई थी।[3]

कोटा जिले के अत्रु रेलवे स्टेशन के निकट मन्दिरो के अवशेष विखरे पड़े है, इनमें दो जैन-मन्दिर थे। हिन्दू मन्दिर धार के परमार शासको के समय बारहवी एवं तेरहवी शताब्दिय में निर्मित हुए थे, सम्भवतः जैन-मन्दिर भी इसी समय बने होगे। अत्रू के पूर्व में बारह मील पर पार्वती नदी के तट पर प्राचीन नगर कृष्णविलास के अवशेप है; इनमे आठवीं से ग्यारहवी शताब्दियो के बीच बने जैन एव हिन्दू मन्दिरो के भी अवशेप है। विलास के पूर्व मे २५ मील दूर शाहबाद तथा वहां से पाच मील दूरी पर स्थित तालाब के निकट टीले पर जैन-मन्दिरो के अवशेप हिन्दू मन्दिरों के साथ विखरे है। इन विभिन्न भग्नावशेषो से यहा जैन-धर्म की लोकप्रियता प्रकट होती है।

खानपुर के निकट चादखेडी[४] मे औरंगजेब के शासनकाल मे १६८९ ई० मे जब कोटा के शासक सामंत किशोरसिह चौहान था, तब बघेरवाल कृष्णदास ने महावीर का एक मन्दिर बनवाया तथा अपनी पत्नियो और पुत्रो के साथ बहुसंख्यक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की थी। औरंगजेब ने साम्राज्य-नीति के विरुद्ध मन्दिर निर्मित होने पर स्थानीय शासक से कई बार स्पष्टीकरण पूछा था, जिसको टालने हेतु अस्पष्ट उत्तर दिया जाता रहा।

सिरोही :

सिरोही के शासको ने जैन-धर्म को प्रश्रय दिया तथा आचार्यो का सम्मान किया। कालन्द्री से प्राप्त १३३२ ई० के लेख[५] से ज्ञात होता है कि स्थानीय श्रमणसंघ के कुछ सदस्यो ने समाधिमरण (सथारा) के द्वारा निर्वाण प्राप्त किया था। सिरोही के शासक सोहज के समय वर्धमान ने १४०८ ई० मे पिण्डवाड़ा मे महावीरस्वामी का मन्दिर वनवाया था।[६] आबू रोड़ स्टेशन के निकट रायमल ने रायसिह के शासनकाल मे ऋषभ विहार १५४२ ई० मे वनवाया था।[७] पिंडवाड़ा मे महावीर के मन्दिर मे दुर्जनसाल के शासनकाल मे दो देवालय १५४६ ई० में लछलड़े एवं तेजपाल के कल्याणार्थ[८]

---

१. Indian Antiquary, Vol, 21 p. 57 २. कोटा राज्य का इतिहास, पृष्ठ २८

३. Dr. K. C. Jain : Jainism in Rajasthan pp. 35-36.

४. Dr. K.C. Jain । Jainism in Rajasthan, p. 36

५. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1916-17, p. 67

६. Annual Report of the Rajputana Museum, 1909-10, No. 3

७. वही, 1924- 25, No. 10 ८. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, संख्यक ३७९ एवं ३८०

तथा १५६५ ई० में उदयसिंह के शासनकाल मे दो देवालय वाई गोरंगदे एवं लक्ष्मी के कल्याणार्थ[1] निर्मित हुए थे। अकवर के निमंत्रण पर जव हीरविजयसूरि फतहपुरसीकरी जा रहे थे, तव शासक सुरतानसिंह ने उन्हे ससम्मान सिरोही रोका था तथा मांस, मदिरा एवं आखेट को त्यागकर एक-पत्नीव्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण की थी और सूरि के परामर्श पर कुछ कर भी माफ किये थे।[2] इसके पुत्र महाराजा राजसिंह के समय सिरोही मे चतुर्मुखा मन्दिर १५७७ ई० मे वना था।[3] अखैराज वर्मदास के शासनकाल में १६६२ ई० मे सिंहविजय की पादुका वीरवाड़ा (ब्राह्मणवाड़ा) में चतुर्विधसंघ द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी[4] तथा १६६४ ई० मे उदयभान एवं जगमाल[5] ने आदिनाथ और शीतलनाथ की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी। इसी समय पेशुवा[6] मे सम्पूर्ण संघ ने कुंथुनाथ की प्रतिमा का प्रतिष्ठा महोत्सव किया था।

मानसिंह के शासनकाल में पीठा ने १७१४ ई० में सूरि की पादुका प्रतिष्ठित की थी तथा भट्टारक चक्रेश्वरसूरि ने जनकल्याणार्थ १७३० ई० मे मडार मे अन्य साधुओं के साथ प्रतिष्ठा समारोह किया था।[7] राजा शिवसिंह ने वामणवाडा ग्राम का पशु और भूमि पर लगने वाला कर वहां के जैन-मन्दिर को १८१९ ई० मे जागीर के रूप मे प्रदान कर दिया था।[8]

जैसलमेर :

जैसलमेर के भाटी राजवश के अंतर्गत इस प्रदेश में जैनधर्म का प्रसार हुआ। मरुस्थल के मध्य होने से विध्वंसको से शास्त्र भण्डारो, जैन-मन्दिरों एवं मूर्तियो की सुरक्षा वनी रही। मन्दिरों, मूर्तियो, जैनाचार्यों की पादुकाएं, शास्त्र भण्डरों आदि की स्थापना तथा स्थानीय श्रावक संघो द्वारा जैनतीर्थों की यात्राओ मे भाटी शासको की सहिष्णुता एवं जैनधर्म के प्रति श्रद्धा का ज्ञान होता है। जैसलमेर राज्य की पुरानी राजधानी लोद्रवा थी। जिसके नष्ट होने पर जैसलमेर हुई। करीव ९९४ ई० में यहां के शासक सगर को खरतरगच्छ के आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि के वरदान मे दो पुत्र—श्रीधर एव राजधर उत्पन्न हुए, फलत. उसने पार्श्वनाथ का मन्दिर वनवाया था,[9] जिनका पुनर्निर्माण १६१८ ई० मे सेठ थाहरूशाह ने करवाया था।[10]

विक्रमपुर (अव वीकमपुर) खरतरगच्छीय जैनों का केन्द्र था, जहा इस गच्छ के कई आचार्य धार्मिक समारोहों में आते रहे। जिनवल्लभसूरि ने ११११ ई० में विक्रमपुर की यात्रा की थी[11] तथा जिनपतिसूरि तो ११५३ ई० में यहीं जन्मे थे। विक्रमपुर के कुछ जैनो ने जिनपतिसूरि से विभिन्न अवसरो पर दीक्षा ली थी तथा ११७५ ई० में इन्होने भाण्डागारिक गुणचन्द्र-गणि के स्तूप का प्रतिष्ठा समारोह[12] सम्पन्न किया था। जिनपतिसूरि के साथ स्थानीय श्रावको ने अभयकुमार के नेतृत्व में अणहिलपट्टन से ११८५ ई० से निकलने वाले संघ में सम्मिलित होकर तीर्थयात्राएं की थी।[13]

---

१. वही, सख्यक ३८३ एव ३८४
२. सूरीश्वर और सम्राट अकवर, पृष्ठ १८८
३. प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक २५०
४ वही, संख्यक २९८
५. वही, सख्यक २४३ एवं २५७
६. वही, संख्यक ५०४
७. वही, सख्यक १०१ एव १०३
८ वही, संख्यक ३०४
९ Nahar ' Jain Inscriptions, pt III No. 2543
१०. वही, संख्यक २५४४
११. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ १३
१२ वही, पृष्ठ २४
१३. वही, पृष्ठ ३४

जिनप्रबोधसूरि ने महाराजा कर्ण के अनुरोध पर १२८३ ई० मे चातुर्मास जैसलमेर मे किया था।[1] जिनराजसूरि के उपदेशों से प्रभावित होकर राजा लक्ष्मणसिंह के शासनकाल मे यहां चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर १४१६ ई० मे निर्मित कर[2] लोद्रवा से पार्श्वनाथ प्रतिमा लाकर प्रतिष्ठित की गई थी तथा जैन प्रजा की राजा के प्रति श्रद्धा के कारण मन्दिर का नाम राजा के नाम पर 'लक्ष्मण विलास' रखा गया। इसके पुत्र वैरीसिंह के समय पासड़ ने इस मन्दिर मे सुपार्श्वनाथ की मूर्ति १४३६ ई० में प्रतिष्ठित की थी[3] तथा १४३७ ई० मे साह हेमराज एवं पूना ने सम्भवनाथ का मन्दिर बनवाया,[4] जिसमे सम्भवनाथ-मूर्ति का प्रतिष्ठा समारोह १४४० ई० में हुआ और तभी जिनभद्र ने तीन सौ जैन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की थी। राजा वैरीसिंह ने प्रतिष्ठा समारोह में भाग लिया था। इसी समय साह लोला ने भी पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा १४४० ई० मे स्थापित की थी।[5] वैरीसिंह के पुत्र चाचिगदेव के शासन काल मे सजाक,[6] सचोहराज[7] एवं सज्जा[8] ने क्रमशः नन्दीश्वरपट्टिका, शत्रुञ्जय गिरनारावतार पट्टिका और नन्दीश्वरपट्टिका की प्रतिष्ठा जिनचन्द्रसूरि के द्वारा १४६१ ई० मे करवाई थी।

देवकरण के शासन मे भी जैनधर्म को प्रोत्साहन मिला था, साखवालेचा खेटा एवं चोपड़ा पञ्चा ने १४७९ ई० मे दो मन्दिर[9] शांतिनाथ और अष्टापद के बनवाये थे तथा संघवी खेटा ने सपरिवार कई वार तीर्थयात्रा की और सम्भवनाथ मन्दिर मे तपपट्टिका का प्रतिष्ठा समारोह किया। पाटन के धनपति ने १४७९ ई० मे यहां के पार्श्वनाथ मन्दिर मे शातिनाथ-बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी[10] तथा हेमा[11] और भीमसी[12] ने जिनवरेन्द्र पट्टिका १४७६ ई० में निर्मित करवाई थी। देवकरण के ही शासनकाल मे मरुदेवी की प्रतिमा[13] ऋषभ-मन्दिर मे प्रतिष्ठित की गई थी।

जैसलमेर के परवर्ती शासकों के समय भी जैनधर्म की उन्नति अविरल रही। भीमसेन के शासनकाल मे संघवी पासदत्त ने १५९३ ई० मे जिनकुशलसूरि की पादुका स्थापित की थी[14] तथा पार्श्वनाथ मन्दिर मे स्तम्भ-प्रतिष्ठा १६०६ ई० मे सम्पन्न[15] हुई। कल्याणदास के राज्यकाल मे जिनसिंहसूरि ने १६१५ ई० मे जिनचन्द्रसूरि की पादुका[16] बनवाई और मत्री टोडरमल ने १६१६ ई० मे उपासरा का द्वार बनवाया[17] तथा १६२१ ई० मे जिनसिंहसूरि ने जैसलमेर पधारकर लक्ष्मणविलास मन्दिर मे लोद्रवा से लाई गई चितामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न की।[18]

बुधसिंह के शासनकाल मे गंगाराम ने १७१२ ई. मे तत्त्वसुन्दरगणि के धर्मोपदेश पर प्रतिमाए प्रतिष्ठित करवाई थीं।[19] अखैसिंह के राज्यकाल में जिनउदयसूरि की पूज्यपादुकाएं १७४९ एव १७५५ ई० मे उनके अनुयायियो ने स्थापित की थी।[20] मूलराज के शासनकाल मे जिनयुक्तसूरि का

---

१. खरतरगच्छ-बृहदगुर्वावली, पृष्ठ ५८ २ Nahar : Jain Inscriptions pt. III No. 2112
३. वही, पृष्ठ २११४ ४. वही, पृष्ठ २१३९ ५ वही, पृष्ठ २१४५ ६. वही, पृष्ठ २११६
७. वही, पृष्ठ २११७ ८. वही, पृष्ठ २११९ ९. वही, पृष्ठ २१५४ १०. वही, पृष्ठ २१२०
११. वही, पृष्ठ २४०४ १२. वही, पृष्ठ २४०६ १३. वही, पृष्ठ २४०० १४. वही, पृष्ठ २४९४
१५. वही, पृष्ठ २५९५ १६. वही, पृष्ठ २४९७ १७. वही, पृष्ठ २४४७ १८. वही, पृष्ठ २४९८
१९. Nahar Jain Inscriptions, pt III No. 2501 २०. वही, पृष्ठ २५०८ व २५०९

स्तूप, १७६८ ई० मे बनवाया गया था[1] तथा पडित रूपचन्द्र के द्वारा १७८६ ई० मे थम्ब पादुका[2] और श्रावक सघ द्वारा निर्मित ऋषभदेव-मन्दिर मे १८०४ ई० में प्रतिमा[3] की प्रतिष्ठाएं सम्पन्न हुई थी। इसी तरह १७८४ ई० मे स्तम्भ प्रतिष्ठा[4] और १८१८ ई० मे एक स्तम्भ को ऊचा[5] किया गया था।

मूलराज के उत्तराधिकारी गजसिंह के शासनकाल मे आचार्य जिनउदयसूरि का स्मृति महोत्सव स्थानीय सघ ने १८१९ ई० में मनाया था।[6] स्थानीय श्रावकों ने सपरिवार तीर्थयात्रा कर वहां भोज, पूजा, दान, रथयात्रा आदि पुण्यकर्म १८३४ ई० मे सम्पन्न किये थे।[7] महारावल गजसिंह के शासनकाल मे जैसलमेर मे ओसवालो ने जिनहर्षसूरि की भग्न पादुकाओ का पुनर्निमाण[8] किया तथा १८४० ई० मे संघवी गुमानमल ने अमरसागर के निकट भग्न जैन-मन्दिर का संस्कार करवाकर आदिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी।[9] इसी के शासनकाल मे जिनमहेन्द्रसूरि ने १८४४ ई. मे जिनचन्द्र के शिष्य जितरंगगणि की पादुका स्थापित की थी।[10]

रणजीतसिंह के शासनकाल मे जैसलमेर के जैनसघ ने १८४६ ई० मे आदिनाथ का मन्दिर बनवाकर मुनि डूंगरसी के द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न की थी[11] तथा १८६० ई० में साहिबचन्द्र ने जिनमुक्तिसूरि के द्वारा अमरसागर पर पादुका स्थापित करवाई थी।[12] इस प्रकार जैसलमेर के राजवंश ने जैन-धर्म एवं सांस्कृतिक आयोजनो की प्रगति मे सहयोग दिया।

जोधपुर :

जोधपुर के राठोड शासकों ने जैन-धर्म के प्रति सहिष्णुता तथा जैनाचार्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की, फलतः कई मन्दिर निर्मित हुए और जिन मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हुए। जोधपुर राज्य की पुरानी राजधानी खेडा के शासक मल्लिनाथ के राठोड़ उत्तराधिकारियो द्वारा शासित 'नगर' जैन-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था, जो जसोला से तीन मील की दूरी पर स्थित है। गोविन्दराज ने १५५६ ई० मे मोदराजगणि के परामर्श पर यहा के महावीर-मन्दिर को रड़ुड़ा के शासनकाज मे दान दिया था।[13] रावल कुपकरण के शासनकाल में विरमपुर के सघ ने १५११ ई० के शिलालेख के अनुसार विमलनाथ मन्दिर मे रंगमण्डप बनवाया था।[14] रावल मेघविजय के समय १५५७ ई० मे शांतिनाथ का नन्दिमण्डप निर्मित हुआ था[15] तथा १५८० ई मे एक मन्दिर मे सुधार कार्य किया गया था।[16] रावल तेजसिंह के शासनकाल मे स्थानीय संघ ने शांतिनाथ-मन्दिर मे सुधार कार्य करवाया था[17] तथा १६१० ई० मे ऋषभदेव-मन्दिर के अभिलेखानुसार कुछ पुनर्निर्माण भी हुआ था।[18] स्थानीय जैनो ने रावल जगमल के शासनकाल मे महावीर-मन्दिर मे नाकोडा पार्श्वनाथ हेतु चतुष्किका १६२१ ई० मे बनवाई थी[19] तथा १६२४ ई० मे निर्गम चतुष्किका और तीन खिडकिया पार्श्वनाथ मन्दिर मे जुड़वाई थी।[20]

---

१. वही, पृष्ठ २५०३ व २५०२ २. वही, पृष्ठ २५११ ३. वही, पृष्ठ २५७५
४ वही, पृष्ठ २५१० ५. वही, पृष्ठ २५०४ ६. वही, पृष्ठ २५०४ ७. वही, पृष्ठ २५३०
८. वही, पृष्ठ २५८५ ९. वही, पृष्ठ २५२४ १०, वही, पृष्ठ २४९९ ११. वही, पृष्ठ २५१८
१२. वही, पृष्ठ २५४२ १३. Nahar Jain Inscriptions, No. 931
१४ Progress Report of the Archaeslogical Survey, Western Circle, 1911-12 p. 54
१५. वही १६. वही १७ वही १८ वही १९. वही २०. वही

जोधपुर के राठोड शासको ने भी जैन-धर्म के प्रसार और उन्नति मे योगदान दिया था। सूर्यसिंह के राज्यकाल में वस्तुपाल ने १६१२ ई० में पार्श्वनाथ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी।[1] गजसिंह के समय १६२१ ई० मे भामा ने कापडा मे पार्श्वनाथ-प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी[2] तथा जालोर मे जयमल ने १६२६ ई० मे आदिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की नवनिर्मित मूर्तियों का प्रतिष्ठा समारोह किया था। गजसिंह के शासनान्तर्गत मेडता[3] मे सुमतिनाथ की तथा पाली[4] मे पार्श्वनाथ की मूर्तियों के प्रतिष्ठा-समारोह १६२९ ई० मे सम्पन्न हुए थे। महाराजा अभयसिंह के अधीनस्थ मारोठ मे भक्तसिंह एव बैरीसाल के शासनान्तर्गत १७३७ ई० मे मूर्ति-प्रतिष्ठा समारोह हुआ था।[5] अभयसिंह के पुत्र रामसिंह के शासनकाल मे गिरधरदास ने १७४६ मे बिलाडा मे मन्दिर बनवाया था[6] तथा इसके सामंत मेडतिया राजपूत हुकमसिंह के समय भट्टारक विजयकीर्ति ने १७६७ ई० मे मारोठ की यात्रा की थी।[7]

बीकानेर :

बीकाजी ने अपने अनुयायियो सहित जोधपुर छोड़कर १४८८ ई० में बीकानेर बसाया था। इनके उत्तराधिकारियो ने जैन-धर्म के प्रति श्रद्धाभाव बनाये रखा। महाराजा रायसिंह ने १५८२ ई० मे अकबर से सिरोही से १०५० जैनमूर्तिया अपने मत्री करमचन्द्र के अनुरोध पर प्राप्त की थी[8] तथा करमचन्द्र द्वारा लाहोर मे आयोजित युगप्रधानपदोत्सव मे भाग लेकर जिनचन्द्रसूरि को शास्त्र-प्रतियां भेंट की थी।[9] जयचन्द्रसूरि के पट्टधर जयसिंहसूरि से रायसिंह का निकट सम्पर्क था तथा इनके शासनकाल मे हम्मीर ने नेमीनाथ की प्रतिमा १६०५ ई० मे प्रतिष्ठित की थी। कर्णसिंह (१६३१ ई०) ने जैन उपासरा बनवाने हेतु भूमिदान दी थी। जैनधर्म के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण के कारण जैनकवि धर्मवर्धन सूरि ने महाराज अनूपसिंह के राज्यारोहण के अवसर पर प्रशस्ति रची थी। जिनचन्द्रसूरि से बीकानेर के शासको—अनूपसिंह, जोरावरसिंह, सज्जनसिंह एव गजसिंह का पत्र व्यवहार हुआ था। महाराज सूरतसिंह (१७६५ ई०) ने जैन उपासरो हेतु भूमिदान दी थी तथा दादाजी के प्रति श्रद्धा के कारण दादावाड़ी को १५० बीघा भूमिदान मे दी थी।[10] इनके उत्तराधिकारी रतनसिंह (१८२८ ई०) ने भी जैनधर्म एवं जैनाचार्यो के प्रति आदरभाव रखा था।

जयपुर :

जयपुर के कच्छावा शासको, उनके जागीरदारो और ठाकुरो आदि ने जैनधर्म को प्रश्रय दिया। इस राजवश के दीवानो मे करीब पचास जैन थे। जयपुर राज्य मे अनेक शास्त्रो की प्रतियां

---

१. Nahar Jain Inscriptions, No. 773 २. वही, पृष्ठ ९८१ ३. वही, पृष्ठ ७८३
४. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1907-8, p. 45
५ Dr K.C. Jain : Jainism in Rajasthan, p. 43, F. No. 1
६. Nahar Jain Inscriptions, No. 937
७. Dr K C Jain : Jainism in Rajasthan, p. 43
८. बीकानेर जैन लेख संग्रह पृष्ठ २७ ९. वही, पृष्ठ ७ (प्रस्तावना)
१०. बीकानेर जैन लेख सग्रह, पृष्ठ ८-११ (प्रस्तावना)

लिखी गई, अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठाएं हुई और कई नवीन मन्दिर बनाये गये। करमचन्द्र के शासनकाल में भविष्यदत्तचरित्र की एक प्रति १५३८ ई० मे लिखी गई थी।[१] १५५६ ई० मे भारमल के समय नेमीनाथ मन्दिर मे पाण्डव पुराण[२] और हरिवंश पुराण[३] तथा इसके उत्तराधिकारी भगवानदास के शासनान्तर्गत मालपुरा मे वर्धमानचरित[४] की प्रति लिखी गई थी। मानसिंह के शासनकाल मे मालपुरा के आदिनाथ मन्दिर मे हरिवश पुराण की प्रति १५८८ ई० मे लिखी गई थी[५] तथा १५९१ ई० मे खण्डेलवाल थानसिंह ने पावापुरी की यात्रा हेतु संघ निकाला था।[६] चम्पावती (चात्सु) के भट्टारक चन्द्रकीर्ति ने १६०५ ई० मे एक स्तम्भ स्थापित किया था।[७] मानसिंह के ही शासनकाल में राजमहल (१६०४ ई०) एवं सग्रामपुरा (सांगानेर) मे १६०५ ई० मे हरिवंश पुराण की प्रति लिखी गई थी[८] तथा १६०७ ई० मे जेता ने बड़ी संख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह मौजमाबाद मे किया।[९]

मिर्जा राजा जयसिंह ने शाहजहा के शासनकाल मे जैनधर्म को प्रश्रय दिया था। इसके मुख्यमंत्री मोहनदास ने आम्बेर मे विमलनाथ का मन्दिर बनवाया था।[१०] सवाई जयसिंह की सेवा तीन जैन मत्रियो—रामचन्द्र छावडा, राव कृपाराम एवं विजयराम छावडा ने की थी। रामचन्द्र ने शाहबाद का जैन मन्दिर बनवाया था तथा भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के पट्ट महोत्सव मे भाग लिया था। कृपाराम ने चात्सु का जैन मन्दिर तथा जयपुर मे चाकसू का चौक, का विशाल जैन मन्दिर बनवाये थे। विजयराम ने १७४० ई० में संयुक्त समकित कौमुदी लिखवाकर पडित गोवर्धन को भेट की थी।[११]

सवाई माधोसिह का मुख्यमन्त्री जैन बालचन्द्र छावड़ा था, जिसने अपने पूर्ववर्ती असहिष्णु ब्राह्मण श्यामराम द्वारा भग्न जैन मन्दिरो का पुनर्निर्माण किया तथा १७६४ ई० मे इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव' का जयपुर मे सफल आयोजन[१२] करवाया, जिसमे दीवान रतनचन्द्र शाह ने भी भाग लिया और एक जैन मन्दिर बनवाया। पृथ्वीसिंह के शासनकाल मे नन्दलाल ने १७६९ ई. में भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के परामर्श पर सवाई माधोपुर मे बड़ी संख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह किया तथा जयपुर और सवाई माधोपुर मे जैन मन्दिर निर्मित करवाये[१३]। दीवान केसरीसिंह कासलीवाल

---

१. कस्तूरचन्द कासलीवाल : प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ १४८   २. वही, पृष्ठ १२६   ३ वही, पृष्ठ ७७
४ वही, पृष्ठ १७०   ५ वही, पृष्ठ ७३
६. Dr K.C Jain : Jainism in Rajasthan, p. 45 F. No. 6
७. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1927-28, No. 11
८. प्रशस्ति सग्रह, पृष्ठ ७२
९. Dr K.C. Jain : Jainism in Rajasthan p. 45 F N. 10
१० Annual Report of Rajputana Museum, Ajmer, 1925-26, No -11 & 1933-34, No. 13
११. Dr. K.C. Jain : Jainism in Rajasthan p. 46 F. No. 1 to 5
१२. वीरवाणी, पृष्ठ २९-३०
१३. Dr. K.C Jain : Jainism in Rajasthan p 47 F. No. 2

ने जयपुर का सिरमोरिया जैन मन्दिर बनवाया था। माधोसिंह के राज्यकाल मे कन्हैयाराम ने 'वैद्यो का चैत्यालय' नामक जयपुर का जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।

बालचन्द्र छाबडा का पुत्र रायचन्द्र जगतसिंह का मुख्यमन्त्री था, जिसने तीर्थयात्रार्थ संघो का नेतृत्व किया तथा भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के परामर्श पर १८०१ ई० मे जूनागढ मे यत्र प्रतिष्ठा की[1] और १८०४ ई० में जयपुर मे वडी सख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा[2] समारोह सम्पन्न किया। जगतसिंह के दीवान बखतराम ने जयपुर मे यति यशोदानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध जैन-मन्दिर तथा दुर्गापुरा मे रोड़पुरा का मन्दिर बनवाये थे। इसने अपनी जागीर अनतपुरा में भी एक मन्दिर बनवाया था, जो चाकसू के निकट है।

जयपुर राज्य के सामंतो ने भी जैन-धर्म की उन्नति मे योगदान दिया। जोबनेर के सरदार विजयसिंह के शासन मे जैसा ने मूर्तिया प्रतिष्ठित १६६४ ई० मे की थी।[3] मालपुरा मे मारौठ के शासक अर्जुन गौड के शासन मे दशलक्षण यंत्र की प्रतिष्ठा १६५३ ई० मे हुई थी।[4] मूलसंघ के यशकीर्ति के परामर्श पर साहजीतमल एव नथमल ने १६०४ ई० मे आदिनाथ का मन्दिर रेवासा मे बनवाया था।[5] बैराट पर अकबर के अधीनस्थ इन्द्रराज शासन कर रहा था, उसने १५८७ ई० के अभिलेखानुसार विमलनाथ का मन्दिर बनवाया था।[6] तक्षकगढ (टोडारायसिंह) मे सोलकी शासक सूर्यसेन के समय उनियारा के निकट आनवा मे संघवी कालु ने १५३६ ई० मे मूर्तिया प्रतिष्ठित की थी[7] तथा राव रामचन्द्र के शासनकाल मे यशोधर चरित्र की दो प्रतिया १५५३[8] एव १५५५ ई०[9] मे 'खी गई थी। टोडारायसिंह के महाराजा जगन्नाथ के समय १६०७ ई० मे 'आदिनाथ पुराण' की प्रति आदिनाथ मन्दिर मे लिखी गई थी।[10] तथा राजसिंह के मन्त्री वादिराज ने यहाँ १६७२ ई० मे 'वाग्भटालकाराव चूरि कविचन्द्रिका' लिखी थी।[11]

चाकसू जैनधर्म के प्राचीन केन्द्रो मे एक है, जहा विभिन्न ग्रन्थो की प्रतिया १५२५ ई० से १५५६ ई० तक लिखी गई थी।[12] इन प्रतियो मे लिखी गई प्रशस्तियो से तत्कालीन शासको का ज्ञान होता है। १७२६ ई० मे जयपुर के निकट बासखोह मे हृदयराम ने स्थानीय शासक चौहडसिंह के समय मूर्तियो की प्रतिष्ठा की थी।[13]

---

१. Dr. K. C. Jain, Jainism in Rajasthan p. 47 F. N. 3
२. वही F. N. 4 ३. वही p. 48 F. N. 1 ४. वही F. N. 2
५. Annual Report of the Rajputana Museum. Ajmer, 1934-35 No. 11
६. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1909-10 pp. 44
७. वीरवाणी, ४, पृ० १०६–१० ८. कासलीवाल : प्रशस्तिसंग्रह पृ० १६८
९. वही, पृ० १६३ १०. वही, पृ० ८६
११. जैनग्रंथ प्रशस्तिसग्रह, संल्यक १४१
१२. कासलीवाल : प्रशस्ति संग्रह, पृ० ६३, ५४, ६६, १७५ एव ६४
१३. Dr. K. C. Jain : Jainism in Rajasthan, p. 49 F. N. 11

अलवर :

अजवगढ़,[1] नौगामा[2] एव राजगढ़[3] में ग्यारहवीं शताब्दी के जैन वास्तु अवशेष मिले हैं। फिरोज तुगलक के समय मुस्लिम बने खानजादास-शासको के काल मे भी जैन-धर्म की उन्नति के प्रतीक १५–१६वी शताब्दी के वास्तु-नमूने हैं। मध्यकालीन तीर्थमालाओ[4] मे अलवर के रावण-पार्श्वनाथ को स्थलरूप मे तीर्थ माना गया है। अलवर के निकट पारानगर के भग्नावशेषो से यह स्थल प्राचीन जैन केन्द्र ज्ञात होता है। जैन साधुओ ने अलवर की पवित्रता के कारण मध्य युग मे धार्मिक साहित्य का मृजन किया था।[5] यहाँ १५६७ ई० मे साधुकीर्ति ने 'मौन एकादशी'; १६४२ ई० मे शिवचन्द्र ने 'विदग्धमुखमण्डनवृत्ति'; १६२५ ई० मे लालचन्द्र ने 'देवकुमार चौपाई'; विनयचन्द्र ने १८२१ ई० मे 'महिपाल चौपाई आदि की रचना की थी तथा १५४३ ई० मे हसदूत लघुसघत्रयी और १५४६ ई० मे लघुक्षेत्रसमास की प्रति लिखी गई थी। खानजादास शासको के समय तिजारा और वहादुरपुरा मे कुछ ग्रंथो की प्रतिया १५–१६वीं शताब्दियो मे लिखी गई थी।[6]

१५१६ ई० के जैनशिलालेख से विदित होता है कि वहुद्रव्यपुर मे श्रीमाल संघ ने आदिनाथ चैत्य वनवाकर आचार्य पुन्यरत्न सूरि के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।[7] अलवर मे एक श्रावक ने १५३१ ई० मे सुमतिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा[8] सिद्धसूरि से करवाई थी तथा १६१६ ई० मे काष्ठासंघ के भट्टारक भूषण ने एक मूर्ति का प्रतिष्ठा समारोह किया था।[9] आगरा निवासी ओस-वाल हीरानन्द के द्वारा अलवर मे रावण-पार्श्वनाथ का मन्दिर वनवाने का उल्लेख १६२८ ई० के अभिलेख मे है।[10]

राजस्थान में जैन मन्दिर एव मूर्तियां राजपूत शासको के कारण मुस्लिम विध्वसको से सुरक्षित रही, फिर भी इन आक्रामको ने कई मन्दिरो को भूमिसात कर दिया तथा मूर्तियो और शास्त्र भण्डारो को नष्ट किया। जैन-मन्दिरो को मुस्लिमो ने तोड़-जोड़ कर मस्जिदो मे परिणित किया, जिसके श्रेष्ठ उदाहरण अजमेर स्थित 'ढाई दिन का झोपडा'; साचोर स्थित जामा मस्जिद, जालोर की मस्जिद, शाहवाद (कोटा) की मस्जिद आदि प्रमुख है। राजस्थान के विभिन्न नगरो मे कुतुबुद्दीन ऐवक, इल्तुतमीश, अलाउद्दीन एवं नासीरउद्दीन खिलजी मुगल राजकुमार कामरान, औरंगजेव आदि ने कई जैन-मन्दिरों को नष्ट करवाया था, जो जैन धर्म की उन्नति एव प्रसार मे वाधक हुआ। अंग्रेजो के शासन काल मे राजस्थान प्रदेश के विभिन्न रजवाड़ो ने पूर्ववत जैनधर्म के प्रति सहिष्णुता एव उदारता की नीति रखी, जिसके कारण राजस्थान जैनो का जनसख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश वना रहा।

---

१. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1918–19 Nos. 4, 9 & 10
२. वही, 1919–20, Nos. 3 & 4 ३. Archaeological Survey Reports, XX, p. 124
४. जैन सत्यप्रकाश, १०, पृ० ६६ ५. अरावली, १, संख्यक १२
६. श्री प्रशस्ति सग्रह पृ० ६६, १०८, ११५, १२५ तथा ३५, ५४
७. Archaeolgical Survey Reports, XX पृ० 119
८. Nahar : Jain Inscriptions, No. 1464 ९. भट्टारक सम्प्रदाय, संख्यक ६८६
१०. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1919–20 No. 15

[५]

राजस्थान में जैन संघ, गण एवं गच्छ

कालप्रवाह के साथ जैनधर्म विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। महावीर के जीवनकाल मे भी चातुर्याम धर्म मे विश्वास रखने वाले पार्श्वनाथ के अनुयायी विद्यमान थे, जो अन्ततः महावीर द्वारा सस्थापित सघ मे समाविष्ट हो गये थे। जैनों के मुख्य दो विभाग दिगम्बर और श्वेताम्बर राजस्थान मे बडी संख्या में निवास करते है। जैन साहित्य एवं अभिलेखो से जैनधर्मावलम्बियों के विभिन्न संघ, गण एव गच्छ के उल्लेख मिलते है। संघ एवं गण शब्द राजनीतिक इकाई के द्योतक है। भगवान महावीर और गौतमबुद्ध गणतन्त्र राज्यो से सम्बद्ध थे, फलतः उन्होने अपने धार्मिक संगठन को भी उसी आदर्श पर संस्थापित किया था। गण के प्रधान को तत्कालीन भारत मे राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्र मे गणधर कहा जाता था। जैनधर्म के अनुयायी विभिन्न संघ एव गण मे सगठित हो गये। कालान्तर मे गण को गच्छ नाम से अभिहित किया जाने लगा।

कल्पसूत्र[1] एवं कुषाणयुगीन अभिलेखो[2] से विभिन्न जैन गणो का ज्ञान होता है। कल्पसूत्र के अनुसार प्रथम गण—गोदास की चार शाखाएं एव कुल थे; द्वितीय गण उद्देह की स्थापना आर्य-रोहण ने की थी, जिसकी चार शाखाए एव छः कुल थे; तृतीय गण उडुवाटिक की भी चार शाखाएं एव तीन कुल थे; चतुर्थ गण वेशवाटिक की स्थापना कार्मर्द्धि ने की थी तथा इसकी भी चार शाखाए एवं कुल थे; पञ्चम गण चारण की चार शाखाएं एव सात कुल थे; षष्ठ गण मानव की चार शाखाएं एव तीन कुल थे तथा सप्तमगण कौटिक की स्थापना सुस्थित ने की थी और इसकी सात सात शाखाए एवं चार कुल थे। कौटिक गण के आभिलेखिक उल्लेख उपलब्ध है, इनमे माध्यमिका शाखा का उद्भव चित्तौड़ के निकट वर्तमान नगरी के प्राचीन नाम माध्यमिका से हुआ था, जहाँ सुस्थित के द्वितीय शिष्य प्रियग्रंथ ने इसकी स्थापना की थी।[3] सख्या मे ८४ गच्छ माने जाते थे, जिनकी सख्या करीब १५० तक पहुँच गई है; जो परम्पारिक मात्र है। वास्तव मे विभिन्न समय मे विभिन्न गच्छो की स्थापनाएं हुई थी; इनमे सिरोही, जैसलमेर, मारवाड एव मेवाड प्रदेश मे स्थान, कुल, महानपुरुप, पुण्यकर्म आदि नामो से प्रसिद्ध गच्छो का आधिक्य ज्ञात है।

दिगम्बर संघ एवं गण

आरम्भिक अभिलेखों से विदित होता है कि राजस्थान के दिगम्बर आचार्य किसी संघ या गण से सम्बद्ध नही थे, या नाम देने की परम्परा नही थी। रूपनगर के ९६१ ई० के स्तम्भलेख मे मेघसेनाचार्य का[4] तथा १०१९ ई० के स्तम्भलेख[5] मे पद्मसेनाचार्य का उल्लेख है। झालरापाटन के १००९ ई० के स्तम्भलेख[6] मे नेमिदेवाचार्य एवं वलदेवाचार्य वर्णित है। अलवर के नौगामा[7] मे दिगम्बर

१. Luders : Epig. Notes, I. A. XXXIII p. 109,
२. Epigaphia Indica, Vol. II, pp. 382.
३. Kalpsutra, S B. E Vol. XXII p. 293
४. Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1910–11 p. 43
५. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer 1912–13 No. 2
६. वही, 1919–20 No. 3   ७ वही, 1919–20 No: 4

जैन-मूर्ति-लेखों मे आचार्य विजयकीर्ति के शिष्य नरेन्द्रकीर्ति (१११८ ई०) का और ११३८ ई० के मूर्तिलेख मे आचार्य गुप्तनन्दि का उल्लेख है। राजस्थान के परवर्ती अभिलेखो मे संघ, गण एवं गच्छ के उल्लेख मिलते हैं। मूलसघ, कण्ठा संघ, द्राविड संघ, माथुर संघ आदि की स्थापना दक्षिण भारत मे हुई थी, जहा से आचार्यो के साथ-साथ यह परम्परा भी उत्तर भारत मे प्रचारित हो गई।

मूलसंघ :

दिगम्बर जैनो का सबसे प्राचीन सघ—मूलसघ है, जिसके प्रणेता परवर्ती अभिलेखो से कुन्दकुन्दाचार्य ज्ञात होते हैं,[1] यद्यपि पट्टावलियो[2] मे माघनन्दी माने गये है। चतुर्थ एव पञ्चम शताब्दी के दो अभिलेखो मे[3] कुन्दकुन्द एव मूलसंघ के छः आचार्यो का उल्लेख है, जिसके आधार पर कुन्दकुन्दाचार्य का समय द्वितीय शताब्दी माना जाता है। इन आरम्भिक अभिलेखो मे मूलसघ एव कुन्दकुन्दान्वय का एक साथ उल्लेख नही है, अतएव प्रथम शताब्दी मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर भेद के समय से मूलसंघ का अस्तित्व प्रकट है। गुप्तिगुप्त के प्रभाव से स्थापित बलात्कार गण तथा पद्मनन्दि के चमत्कार से सरस्वती गच्छ के नाम से प्रख्यात गण का मूलसघ से सम्बन्ध ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेखो से ज्ञात होता है।[4] राजस्थान मे चौदहवी से उन्नीसवी शताब्दी के बीच के अभिलेखो से मूलसघ के आचार्यो की लोकप्रियता तथा उनके उपदेशानुसार लिखित शास्त्र-प्रतियो, निर्मित मन्दिरो और प्रतिष्ठित मूर्तियो के उल्लेख उपलब्ध है। मूलसघ के परवर्ती आचार्यो का केन्द्र १०८३ से कोटा रियासत का बारा माघचन्द्र द्वितीय ने (५३ वे आचार्य) स्थापित किया था। ७७वे आचार्य वसन्तकीर्ति (१२०८ ई०) के समय केन्द्र अजमेर हो गया, इसके पूर्व बारा से ६४वे आचार्य ने मूलसघ का केन्द्र चित्तौड से स्थानातरित कर ७४वे आचार्य ने बघेरा स्थापित कर लिया था। अजमेर से ८४वे आचार्य पद्मनन्दि के द्वारा मूलसघ का भट्टारक केन्द्र वागड़ प्रदेश मे ईडर स्थापित हो गया क्योंकि अजमेर से आचार्य प्रभाचन्द्र द्वितीय वागड प्रदेश मे मूर्तियो की प्रतिष्ठा करने जा नही सके थे, फलत. वागड प्रदेश के जैन श्रावको ने पद्मनन्दि को सूरि पद प्रदान कर १३२८ ई० मे धार्मिक प्रधान (भट्टारक) दे दी।[5]

भट्टारक दिगम्बर जैनो हेतु धार्मिक शासक की बतौर थे। पद्मनन्दि के जीवनकाल मे ही उनके दो शिष्यो मे भेद हो गया और शुभचन्द्र ने चित्तौड मे भट्टारक गद्दी स्थापित की[6] और सकलकीर्ति गुरु के उत्तराधिकारी हुए। चित्तौड मे भट्टारक जिनचन्द्र के दो शिष्यो मे प्रभाचन्द्र चित्तौड रहे और रत्नकीर्ति ने नागौर मे गद्दी स्थापित करली।[7] नगौर मे पुनः विभेद उत्पन्न हुआ तो भट्टारक धर्मचन्द्र वही बने रहे और रत्नकीर्ति द्वितीय अजमेर मे सस्थापित हो गये।[8] चित्तौड का भट्टारक केन्द्र चन्द्रकीर्ति ने चात्सु स्थानातरित कर दिया, जो कालान्तर मे सागानेर, आम्बा और आम्बेर स्थानातरित होते हुए अन्ततः जयपुर मे यह स्थापित हो गया।[9] पद्मनन्दि के पूर्ववर्ती स्थानीय भट्टारको का इतिवृत्त एव कृतित्व अज्ञात है।

---

१. जैन शिलालेख सग्रह, प्रथम खण्ड संख्यक ५ २. Indian Antiquary XX, p. 341
३ जैन शिलालेख सग्रह, द्वितीय खण्ड, सख्यक ९० एव ९४ तथा ९५ मे छः आचार्य ४६६ ई० मे वर्णित
४. वही सख्यक २०८ ५. Dr. K. C. Jain : Jainisum in Rajasthan p. 74–75
६. वही ७. वही ८. वही ९. वही

ईडरपट्ट :

पट्टावलियों के अनुसार पद्मनन्दि १३२५ ई० मे बागड़ के भट्टारक बने, जबकि मूर्ति लेखो से ज्ञात होता है कि ये १४१५ ई० तक जीवित थे। दिगम्बर पुरातत्व संग्राहलय उज्जैन के पांच मूर्ति लेखो[1] से १२५२ ई० में लाटवागड संघ के भट्टारक कल्याणकीर्ति के द्वारा मूर्तियां प्रतिष्ठित करवाने का उल्लेख है जिन्हे बागडान्वय कहा गया है, अतएव वागड प्रदेश मे भट्टारक गद्दी के संस्थापक पद्मनन्दि प्रथम भट्टारक नही थे क्योकि एक मूर्तिलेख मे[2] कल्याणकीर्ति को स्पष्ट रूप से भट्टारक कहा गया है। सम्भवत: वागड़ की यह भट्टारक गद्दी मूलसघ से इतर थी और मूलसघ के अनुयायियो ने अपने भट्टारक के अभाव मे पद्मनन्दि को जैन श्रावको ने भट्टारक रूप मे सूरिमन्त्र देकर १३२५-२८ ई० मे ईडर मे प्रतिष्ठित किया होगा। पद्मनन्दि और उनके पट्टधर सकलकीर्ति ने कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई थी।[3] भट्टारक सकलकीर्ति की उल्लेखयुक्त १४३९ ई० की एक मूर्ति दिगम्बर संग्रहालय, उज्जैन मे है।[4] सकलकीर्ति के पट्टधर भुवनकीर्ति और इनके पट्टधर ज्ञानभूषण ने भी कई मूर्तियां प्रतिष्ठित करवाई थी। भट्टारक विजय कीर्ति (१५१३ ई०), शुभचन्द्र (१५१५-५६ ई०) गुणकीर्ति, वादिभूषण, (१६०४ ई०) रामकीर्ति, पद्मनन्दि द्वितीय, देवेन्द्रकीर्ति क्षेमकीर्ति (१६३६ ई०) आदि ईडर के भट्टारको के उल्लेखयुक्त मूर्तिलेख एवं शास्त्र प्रतिया मिली है।

चित्तौड़पट्ट :

पद्मनन्दि के शिष्य शुभचन्द्र द्वारा स्थापित चित्तौड के भट्टारक पट्ट के भट्टारको ने मूर्तियो की प्रतिष्ठा एव शास्त्रो की प्रतिया लिखवाकर जैन-धर्म की अनुपम सेवा की थी। शुभचन्द्र के पट्टधर जिनचन्द्र के उपदेश से गुजरात के शहर मुंडासा मे जीवराज पापडीवाल ने १४६१ ई० मे वहुसंख्यक मूर्तियो की प्रतिष्ठा कर दूर-दूर तक बँटवाई थी, इनमे से कुछ राजस्थान के मन्दिरो मे है। चित्तौड़ पट्ट के भट्टारकों मे चित्तौड से प्रभाचन्द्र, धर्मचन्द्र ललितकीर्ति, चात्सु से चन्द्रकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति, नरेन्द्रकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति, जगतकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति द्वितीय, आम्बेर से महेन्द्रकीर्ति क्षेमेन्द्रकीर्ति आदि ने मूर्तियो की प्रतिष्ठा, शास्त्रो की प्रतियां एवं मन्दिर निर्माण हेतु अपने अनुयायियो को प्रोत्साहित किया।[5] चित्तौड पट्ट के भट्टारको ने अपनी विद्वता एव लोकप्रियता से जैनधर्म के उत्थान मे अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान किया था।

नागौरपट्ट :

जिनचन्द्र के दो शिष्य—प्रभाचन्द्र एवं रत्नकीर्ति मे से रत्नकीर्ति ने नागौर मे अलग भट्टारक पट्ट स्थापित किया था, परन्तु इनकी मृत्यु १५१५ ई० मे अजमेर मे हुई थी, जहा इनकी छत्री बनाई गई थी। रत्नकीर्ति के पट्टधर भुवनकीर्ति हुए, जिनके पट्टधर धर्मकीर्ति के अनुयायी ने १५४२ ई० मे धर्मपरीक्षा की प्रति लिखवाई थी।[6] नागौर पट्ट के भट्टारको मे विशालकीर्ति, लक्ष्मी-

---

१. मूर्ति संख्यक—१७, २१, १३०, १६३ एव २२७ २. मूर्ति संख्यक, १६३

३. Dr K C. Jain Janism in Rajasthan p 75 (४) मूर्तिसख्यक ४७

४. Dr. K. C. Jain . Jainism in Rajasthan p 83–85

५. प्रशस्ति सग्रह, पृ० २१ ६. वही पृ० १०८

चन्द्र, महत्त्वकीर्ति, नेमीचन्द्र, यशकीर्ति, भानुकीर्ति, भूषणकीर्ति, यशकीर्ति आदि से सम्बद्ध उल्लेख अधिक मिले हैं। भूषणकीर्ति के दो शिष्य—धर्मचन्द्र एवं रत्नकीर्ति थे। इनमे धर्मचन्द्र तो पट्टधर हुए तथा रत्नकीर्ति द्वितीय ने अजमेर में स्वतन्त्र भट्टारक गद्दी स्थापित की। धर्मचन्द्र के पश्चात् नागौर पट्ट के भट्टारको मे देवेन्द्रकीर्ति अमरेन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति तृतीय आदि के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होने कई पुण्य कार्य सम्पादित करवाये थे।

अजमेर पट्ट :

नागौर पट्ट के भट्टारक भूषणकीर्ति के शिष्य रत्नकीर्ति द्वितीय ने अजमेर मे भट्टारक पट्ट की स्थापना की थी, जिसके अनुयायी सघी जेसा ने १६६४ ई० मे जोवनेर मे मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी।[१] रत्नकीर्ति के पट्टधर विद्याधर हुए। अजमेर पट्ट के भट्टारको मे महेन्द्रकीर्ति, विजयकीर्ति, अनन्तकीर्ति, भुवनभूषण विजयकीर्ति द्वितीय, त्रिलोककीर्ति, भुवनकीर्ति, रत्नभूषण आदि द्वारा निर्मित छतरियों व चबूतरो और मूर्तिप्रतिष्ठा के विवरण उपलब्ध हैं।[२]

काष्ठासंघ :

'दर्शनसार'[३] के अनुसार कुमारसेन ने ६९६ ई० मे काष्ठासंघ की स्थापना की थी। राजस्थान मे काष्ठासंघ से सम्बद्ध प्रतिष्ठित मूर्तियां वाहर से लाई गईं अथवा अग्रवालो ने स्थापित करवाई थी। उदयपुर के निकट धुलेवा का ऋषभदेव-मन्दिर काष्ठासंघ के भट्टारक धर्मकीर्ति के अनुयायी साहावीजा ने १३७४ ई० मे पुनर्निर्मित करवाया था।[४] उज्जैन के दिगम्बर जैनसंग्रहालय मे १४४९ ई० मे प्रतिष्ठित मूर्ति के पाद पीठ पर श्री काष्ठासंघे वागड सघे भट्टारक धर्मकीर्ति का उल्लेख है।[५] भट्टारक यशकीर्ति के अनुयायी ने १५१५ ई० मे एक सभागृह एव एक देवालय बनवाया था। काष्ठासघ के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के समय भोज ने नवनिर्मित मन्दिर का प्रतिष्ठा समारोह किया था तथा भूपता ने १६६७ ई० मे लघु देवालय बनवाया था।[६] राजस्थान मे प्राचीन वागड़ प्रदेश (डूंगरपुर, बांसवाडा एव प्रतापगढ़) काष्ठासघ के अनुयायियों का केन्द्र था।

माथुर संघ :

'दर्शनसार' के [illegible]सार माथुर सघ की स्थापना रामसेन ने काष्ठा संघ के दो वर्ष वाद की थी।[७] यह सघ माथुर [illegible]मान मदुरा से सम्बन्धित दक्षिण भारत का जैनसघ था, परन्तु राजस्थान मे ग्यारहवों एव बारहवी शताब्दियो मे माथुर सघ के आचार्यो ने मूर्तिया प्रतिष्ठित करवाई थीं। बघेरा के मूर्ति लेख मे इस [illegible]घ के पडित महासेन का ११५८ ई० मे उल्लेख है।[८] सागनेर मे प्राप्त ११६७ ई० मे प्रतिष्ठित मूर्ति लेख[९] तथा मारोठ मे प्राप्त ११७५ ई० के दो मूर्ति लेखो मे पडिताचार्य यशकीर्ति

१ Ajmer Historical and Descriptive by Haribilas Sharda p. 48

२. Dr. K. C Jain : Jainism in Rajasthan, p. 86-87

३. दर्शनसार पृ० ३८

४. Dr. K. C. Jain : Jainism in Rajasthan p. 72

५. मूर्ति सल्यक–३४

६. उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४१

७. दर्शनसार, पृष्ठ १७

८. वीरवाणी, ६, पृष्ठ ३५५

९. वही, ५, पृष्ठ ४१

का उल्लेख है ।[1] यशकीर्ति के पूर्ववर्ती माथुर सघ के आचार्य ललितकीर्ति और उनके गुरु पडिताचार्य धर्मकीर्ति का उल्लेख दिगम्बर सग्रहालय, उज्जैन का एक ११७१ ई० के मूर्ति लेख में है ।[2] ११७० ई० के बिजोलिया आदि अभिलेख[3] माथुर संघ के एक महामुनि गुणभद्र तथा रूपहेली के मन्दिर स्तम्भ पर ११७६ ई० में पद्मश्री[4] का उल्लेख है । बारहवी शताब्दी के बाद से राजस्थान मे माथुर सघ के अनुयायियो का ज्ञान नही होता, सम्भवत: तत्पश्चात्, माथुर सघ का अस्तित्व राजस्थान मे शेष न रहा ।

श्वेताम्बर गच्छ :

राजस्थान मे अभिलेखो एव प्रशास्तियो से विभिन्न गच्छो का ज्ञान होता है तथा कुछ गच्छो का उद्भव एव उत्थान स्थल सिरोही, मेवाड, मारवाड़ आदि प्रदेश रहे प्रतीत होते है ।

बृहद गच्छ :

उद्योतनसूरि अथवा सर्वदेव सूरि को आबू पर्वत पर स्थित तेली ग्राम के वटवृक्ष की छाया मे समारोहपूर्वक सूरि पद प्रदान किया गया था, फलत: निर्ग्रन्थ गच्छ को वट गच्छ और बृहद गच्छ कहा जाने लगा ।[5] सिरोही के कोटरा से १०८६ ई०[6] और मारवाड़ के नाडोल से ११५८ ई०[7] के बृहदगच्छ से सम्बन्धित आरम्भिक अभिलेख मिले है । १३वी १४वी शताब्दी तक सिरोही और मारवाड प्रदेश मे तथा १४वी एव १५वी शताब्दियो मे उदयपुर व जैसलमेर क्षेत्र मे यह अत्यन्त लोकप्रिय था ।

खरतर गच्छ :

दुर्लभराज के दरबार मे चैत्यवासियो को परास्तकर जिनेश्वर सूरि ने १०१७ ई० मे 'खरतर' विरुद प्राप्त किया था, फलत; उनका गच्छ खरतर कहलाया ।[8] राजस्थान के बाहर इसका उद्भव हुआ, परन्तु यहा इसकी कई शाखाये प्रचलित हो गई, जिनमे १४वी से १९वी शताब्दियो के बीच जैसलमेर प्रदेश मे खरतर गच्छ की लोकप्रियता अधिक रही । खरतर गच्छ के दस गच्छ भेद हुए[9], इनमे प्रथम भेद जिनवल्लभ सूरि द्वारा ११०७ ई० मे मधु खरतर शाखा के प्रादुर्भाव से हुआ । जिनसिंह सूरि ने १२७४ ई० लघु खरतर शाखा की स्थापना की, जो तृतीय गच्छ-भेद था । धर्मवल्लभगणी ने १३६५ ई० मे चतुर्थ गच्छ-भेद के द्वारा वेगड़ शाखा की स्थापना की । मरु देश मे आचार्य शाति सागर ने १५०७ ई० मे पष्ठ गच्छ भेद द्वारा आचारीय खरतर शाखा की स्थापना की । भावहर्षोपाध्याय ने सप्तम गच्छ-भेद द्वारा भावहर्ष खरतर शाखा की तथा आचार्य जिनसागर सूरि ने अष्टम गच्छ-भेद द्वारा १६२९ ई० मे लघुवाचार्यीय खरतर शाखा की स्थापना की थी । रगविजयगणि ने १६४३ ई० मे रगविजय खरतर शाखा नवम् गच्छ-भेद द्वारा तथा दशम् गच्छ-भेद द्वारा श्रीसारोपाध्याय ने श्रीसारीय

---

१. Dr. K. C Jain : Jainism in Rajasthan, p 72 F. N. 2, 3

२. मूर्ति सख्यक २७३ ३ Epigraphia Indica, XXIV p. 84

४. Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1925-26, No. 3

५. श्रमण भगवान महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली पृष्ठ २

६. प्राचीन लेख सग्रह १, संख्यक ३ ७ Nahar : Jain Inscriptions No. 833 & 834

८. Indian Antiquary, Vol IX, p 248, ९. वही, XI p. 250.

खरतर शाखा की स्थापना की थी। खरतर गच्छ की विभिन्न शाखाओं के आचार्यों द्वारा राजस्थान मे मूर्ति प्रतिष्ठा, तीर्थ यात्रा, मन्दिर निर्माण एव शास्त्र-प्रतिया-लेखन का कार्य सम्पादित करवाया गया। जिनवर्धन सूरि ने १४१७ ई० मे पीप्पालक गच्छ की स्थापना की थी, जो खरतर गच्छ की शाखा थी।

तपागच्छ :

जगचन्द्र सूरि जीवनपर्यन्त आयम्बिल करके मेवाड के शासक जैत्रसिह द्वारा १२२८ ई० मे 'तपा' विरुद से अलकृत हुए थे, फलतः निर्ग्रन्थ गच्छ का तपागच्छ नाम पड़ गया।[१] इनके शिष्य विजयचन्द्र सूरि ने वृद्ध पौसालिक तपागच्छ की स्थापना की थी तथा देवेन्द्रसूरि ने लघु पौसालिक तपागच्छ की स्थापना की। सिरोही, मेवाड एवं जैसलमेर क्षेत्र मे तपागच्छ के अनुयायी अधिक हैं। कालान्तर मे खरतरगच्छ की तरह तपागच्छ की भी कई शाखाये ज्ञातव्य हैं। आचार्य महाराज विजयसेन के पश्चात् तपागच्छ के पाच भेद प्रभावशाली आचार्यो के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रथम शाखा आचार्य महाराज देवसूरि के नाम से देवसूरि गच्छ; द्वितीय शाखा आचार्य आनन्दसूरि के नाम से आनन्दसूरि गच्छ; तृतीय शाखा आचार्य सागर सूरि के नाम से सागर गच्छ, चतुर्थ शाखा विमल-सूरि के नाम से विमलगच्छ तथा पञ्चम शाखा पन्नयास सत्य विजयजीगणि के द्वारा सवेगीगच्छ नाम से प्रसिद्ध हुई।[२]

नागौरी तपागच्छ के आचार्य श्री साधुरत्नसूरि के द्वारा १५१५ ई० में दीक्षित पार्श्वचन्द्र ने अपने नाम पर पार्श्वनाथ गच्छ की स्थापना की थी।[३] इसी प्रकार साधु कृष्णर्षि ने कृष्णर्षि गच्छ की स्थापना की थी, जिसके आरम्भिक उल्लेख १४२६ ई० के जीरावला अभिलेख[४] तथा १४६८ ई० नागौर अभिलेख[५] मे है। कृष्णर्षि गच्छ की लोकप्रियता जैसलमेर मे पन्द्रहवी शताब्दी मे ज्ञात होती है।[६] सोलहवी शताब्दी मे तपागच्छ की एक शाखा कमल कलश भी सिरोही प्रदेश मे अभिलेखो[७] से विदित होती है। नाडलाई मूर्ति लेखो से तपागच्छ की एक शाखा कुटुवपुरा गच्छ का ज्ञान होता है।

आञ्चल गच्छ :

श्री विजयचन्द्र उपाध्याय द्वारा विधिपक्ष गच्छ की स्थापना की गई थी, जिसका नाम ११६६ ई० मे आञ्चल गच्छ कुमारपाल से सम्बद्ध अनुश्रुति के अनुसार पडा।[८] पन्द्रहवी शताब्दी के

---

१. श्रमण भगवान महावीर, जिल्द ५, भाग २ स्थविरावली पृष्ठ ७५।
२. श्रमण भगवान् महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली, पृष्ठ १७६।
३. वही
४. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक १३८ एव १४१।
५. Nahar : Jain Inscriptions Pt. II No 1275
६. वही, Pt. III.
७. वही, Pt. I, No. 970 & 971.
८. श्रमण भगवान् महावीर जिल्द ५, भाग-२, स्थविरावली पृ० ६५।

अभिलेखों से जैसलमेर, उदयपुर, जीरावला एवं नगर में इसके अनुयायियो तथा आचार्यों द्वारा कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करने के उल्लेख मिले है।[1]

पूर्णिमिया गच्छ एवं सार्ध पूर्णिमिया गच्छ :

सम्भवतः पूर्णिमा से इसे पूर्णिमिया गच्छ कहा जाने लगा होगा, परन्तु इसे सार्ध पूर्णिमिया-गच्छ नाम से ११७९ ई० से अभिहित किया जाने लगा। जैसलमेर और सिरोही प्रदेश में पन्द्रहवीं शताब्दी मे इस गच्छ की लोकप्रियता अभिलेखो से विदित होती है। इस गच्छ के अनुयायियो के अभिलेख जोधपुर, नागौर, अजमेर और उदयपुर मे भी मिले हैं।[2]

पूर्णिमिया गच्छ के दो आचार्य शीलगुणसूरि एव देवभद्रसूरि आञ्चल गच्छ मे सम्मिलित हो गये थे, परन्तु ११५७ ई० अथवा ११९३ ई० मे इन्होने आगमिक गच्छ के नाम से अपनी अलग सम्प्रदाय की स्थापना की थी।[3] जैसलमेर, अजमेर, जयपुर, नागौर, बाडमेर एव ओसिया में अभिलेखों से पन्द्रहवी शताब्दी मे आगमिक गच्छ की उन्नति ज्ञात है।

कुल से सम्बद्ध गच्छ :

चन्द्र कुल ही कलान्तर मे चन्द्र गच्छ मे परिवर्तित हो गया। इस गच्छ के अभिलेख ११८२ ई० का जालोर[4] से तथा ११२५ एव १४३५ ई० के सिरोही रियासत मे मिले हैं। इसी प्रकार नागेन्द्र कुल ही नागेन्द्र गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हो गया था, इसका राजस्थान मे अस्तित्व १०३१ ई० के ओसिया अभिलेख[5] से ज्ञात होता है। तेरहवी से सोलहवी शताब्दी के बीच नागेन्द्र गच्छ के अनुयायियो द्वारा सम्पन्न पुण्यकर्मो का ज्ञान जैसलमेर, पाली, नागौर, सिरोही और उदयपुर मे प्राप्त अभिलेखो से होता है। सम्भवतः निवृत्ति गच्छ भी निवृति कुल से उद्भूत हुआ क्योकि सिरोही प्रदेश के आरम्भिक अभिलेखो मे निवृति कुल का उल्लेख है, जबकि १४१२ ई० की उदयपुर की शीतलनाथ की धातु प्रतिमा-लेख[6] मे निवृत्ति गच्छ का विवरण है।

विख्यात आचार्यो द्वारा संस्थापित गच्छ

आचार्य पिपपालाचार्य द्वारा सस्थापित पिपपालाचार्य गच्छ का अस्तित्व सिरोही रियासत मे ११५१ ई० से ज्ञात होता है। महेन्द्रसूरि के नाम से स्थापित महेन्द्रसूरि गच्छ का उल्लेख तेरहवीं शताब्दी के अजारी अभिलेख[7] से होता है। सिरोही प्रदेश मे आम्रदेवाचार्य-गच्छ के अजारी एवं लोताणा से ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेख मिले हैं, जिनसे इसका सम्बन्ध निवृत्ति कुल से ज्ञात होता है।[8]

---

१. Dr. K C. Jain : Jainism in Rajasthan p. 59.
२. वही, p. 60.
३. श्रमण भगवान् महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली, पृ० ६६।
४. Nahar · Jain Inscriptions No. 899.
५. वही, न० ७९२।
६. प्राचीन लेख सग्रह, सख्यक १०६।
७. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ४२५।
८. वही, सख्यक ३९६, ४७०, ४७१, ४७२ एवं ४७३।

मारवाड मे मेडता के १५१५ ई० के अभिलेख[1] मे प्रभाकर-गच्छ का उल्लेख है, जिसकी स्थापना प्रभाकर नामक आचार्य ने की होगी। कड़ाग्राशाह के नाम से १५०५ ई० मे कड़ीमति गच्छ की स्थापना हुई थी, इसका उल्लेख ओसिया के १६२६ ई० के अभिलेख[2] मे है।

धर्म घोप-गच्छ की स्थापना धर्मघोपसूरि के नाम से हुई होगी, इससे सम्बद्ध १४वीं से १६वी शताब्दियो के अभिलेख जैसलमेर, उदयपुर एवं नागौर मे मिले हैं।[3] भावदेवसूरि के नाम से प्रख्यात भावदेवाचार्य गच्छ तथा भावदार एवं वड़ाहड़-गच्छ का अस्तित्व जैसलमेर मे १३वी से १५वी शताब्दियो के अभिलेखो से ज्ञात होता है।[4] राजस्थान मे इस गच्छ का सर्वप्रथम उल्लेख ११५७ ई० के सीवेग अभिलेख[5] में है। मल्लधारी गच्छ की लोकप्रियता जैसलमेर, उदयपुर और सिरोही प्रदेश[6] के तेरहवी से सोलहवीं शताब्दी के अभिलेखो से ज्ञातव्य है। विद्याधरसूरि के नाम से विख्यात विद्याधर गच्छ के चौदहवी से सत्रहवी शताब्दी के अभिलेख ओसिया, नागौर, नाणा एवं जैसलमेर से मिले हैं।[7] विजय गच्छ से सम्बन्धित अभिलेख १६४२ ई० का भारज[8] से तथा १६६१ ई० का बालोतरा[9] से मिले हैं। उन्नीसवी शताब्दी मे अलवर के विजय-गच्छीय अनुयायी ने मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।[10] रामसेनीय गच्छ का अस्तित्व राजस्थान मे १४०१ ई० के नागौर अभिलेख[11] से ज्ञात होता है है तथा मेवाड क्षेत्र में इस गच्छ के अनुयायियो का ज्ञान इसी शताब्दी के अभिलेखो[12] से होता है। आचार्य यशसूरि के नाम से प्रख्यात यशसूरि गच्छ का राजस्थान मे अस्तित्व ११८५ ई० के अजमेर अभिलेख से सूचित होता है।[13]

स्थानीय गच्छ :

पूर्व मध्य काल मे सिरोही राज्य में जैन धर्म लोकप्रिय था, फलतः इस राज्य के विभिन्न स्थानो के नाम पर कुछ गच्छ प्रसिद्ध हुए। ग्राम मडार से मडाहड गच्छ प्रसिद्ध हुआ। यहा इस गच्छ का १२३० ई० का आरंभिक अभिलेख[14] मिला हैं। सिरोही राज्य में इस गच्छ के कई अभिलेख[15] मिलते हैं। जैसलमेर और उदयपुर से भी मडाहड गच्छ के १४वी एवं १५वी शताब्दी के अभिलेख[16] प्रकाश मे आये हैं। इसी प्रदेश के नाणा ग्राम से नानवाल गच्छ एवं भानकीय गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके ११ शताब्दी के कई अभिलेख सिरोही राज्य में मिले है[17] तथा १३वी से १५ शताब्दी के अभिलेख

---

१. Nahar : Jain Inscriptions No. 764
२. वही, न० ८६६.   ३. वही pt. I to III,   ४. वही Pt. III
५. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, सख्यक ३१६।
६. वही, सख्यक ८२, एवं १४२।
७ वही, संख्यक ३४८ तथा Nahar : Jain Inscriptions No. 798, 1313 & 2278
८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्यक ६२०।
९ Nahar . Jain Inscriptions, No. 738.
१०. वही, No. 1000.   ११. वही, No. 1236.
१२. वही, No. 1017 और 1080   १३. वही, No. 530
१४. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्यक ६६।   १५. वही।
१६ Nahar : Jain Inscriptions Pt I to III.   १७. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह।

जैसलमेर से[1] और १५वी एव १६वीं शताब्दी के अभिलेख मेवाड[2] में भी मिले है। वृहद गच्छ की एक शाखा इस राज्य के जीरावली ग्राम से जीरावली गच्छ प्रसिद्ध हुई तथा यहीं से १४वी शताब्दी के अभिलेख[3] मिले है। ब्राह्मण गच्छ का प्रादुर्भाव इस राज्य के वर्मान ग्राम से हुआ था, जिसका प्राचीन नाम ब्राह्मण महास्थान था। ब्राह्मण गच्छ के १२वी से १६वी शताब्दी के अभिलेखो से यह प्रदेश इस गच्छ का केन्द्र विदित होता है। वर्मान मे इस गच्छ के श्रावको द्वारा ११८५ ई० मे बना महावीर मन्दिर है।[4] पाली से प्राप्त १०८७ ई० के अभिलेख[5] मे इस गच्छ का उल्लेख है। ब्राह्मण गच्छ के अनुयायियो के १४वी एव १५वी शताब्दी के मेवाड़ में तथा १५वी एव १६वी शताब्दी के जैसलमेर मे अभिलेख मिले है। सिरोही राज्य के काछोली ग्राम के नाम पर काछोली गच्छ प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि यह पूर्णिमा गच्छ की ही शाखा थी। सिरोही प्रदेश मे इसके १४वी एव १५वी शताब्दी के उल्लेख[6] मिले है।

मारवाड़ के ओसिया से उपकेश गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जहां से १२०२ ई० का इस गच्छ से सम्बन्धित अभिलेख[7] मिला है, यद्यपि आरम्भिक अभिलेख सिरोही राज्य के अजारी ग्राम से ११३७ ई०[8] का प्रकाश में आया है। उपकेश गच्छ की लोकप्रियता १३वी से १६वी शताब्दी के जैसलमेर, उदयपुर एवं सिरोही राज्य से प्राप्त बहुसंख्यक अभिलेखो से ज्ञात होती है। मारवाड के कोरण्ट ग्राम से कोरण्टक गच्छ का उद्भव हुआ, जिसका १०३१ ई० का आरम्भिक अभिलेख सिरोही राज्य के पीण्डवाड़ा से मिला है।[9] यह गच्छ सिरोही राज्य एवं जैसलमेर मे १६वी शताब्दी तक प्रसिद्ध रहा। यशोदेवसूरि ने मारवाड़ के साडेराव मे सण्डेरक गच्छ की स्थापना की थी, जिसके अनुयायी सम्पूर्ण राजस्थान मे फैले है। नाडोल मे १२वी शताब्दी मे यह अस्तित्व मे था।[10] १४वी से १६वी शताब्दी तक मेवाड़ मे तथा १५वी शताब्दी मे जैसलमेर मे सण्डेरक गच्छ की प्रधानता थी। मारवाड़ के ही हतिकुण्डी से हस्तिकुण्डी गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका १३६६ ई० के उदयपुर अभिलेख[11] मे उल्लेख है। १३वी से १६वी शताब्दी तक जैसलमेर एव उदयपुर मे प्रसिद्ध चैत्रवाल गच्छ और चैत्रगच्छ का उद्भव मारवाड़ के चैत्रवाल नगर से हुआ होगा।[12] पल्लिवाल गच्छ और पल्लि गच्छ के नाम से विख्यात गच्छ की उत्पत्ति पाली से हुई थी, जिसके उल्लेख पाल्लि गच्छ के नाम से १४०५ ई० के जैसलमेर अभिलेख और १४५१ ई० के जयपुर अभिलेख मे है[13] तथा पल्लिवाल

१ Nahar : Jain Inscriptions Pt. III.
२. वही, Nos. 1111, 1143 & 1031.
३. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ७४ एवं ११४
४. वही, सख्यक ११० ५. Nahar : Jain Inscriptions, No. 811.
६. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह।
७. Nahar : Jain Inscriptions pt. I No. 791.
८. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ४०४।
९. वही, संख्यक ३६६। १०. प्राचीन लेख संग्रह, सख्यक ५ एवं २३।
११. वही, संख्यक ४३।
१२. Dr. K. C Jain · Jainism in Rajasthan, p. 65.
१३. Nahar : Jain Inscriptions, Nos. 2478 & 577.

गच्छ नाम से विवरण पन्द्रहवी शताब्दी के अजमेर से प्राप्त अभिलेखो में है ।[1] वादिदेवसूरि के अनुयायी पद्मप्रभसूरि का १११७ ई० में नागौर में कठोर तप करने से नागौरिया तप विरुद्ध प्रसिद्ध हो गया था, फलत: नागौर नाम से उनका गच्छ नागपुरीय गच्छ कहा जाने लगा ।

श्री पार्श्ववर्धनाथ कुल की शाखा हर्षपुरीय गच्छ सम्भवत; अजमेर और पुष्कर के बीच हर्सोर नामक स्थान मे स्थापित हुआ होगा । इस गच्छ के अभयदेवसूरि के अनुरोध पर शाकम्भरी के चौहान शासक पृथ्वीराज प्रथम ने ११०५ ई० मे रणथम्भोर के जैन मदिर पर स्वर्ण कलश प्रतिष्ठित किया था तथा इनके शिष्य मलधारी हेमचन्द्र का जयसिंह सिद्धराज पर अत्यत प्रभाव था । नागौर से इस गच्छ का १४९८ ई०[2] का अभिलेख मिला है । मारवाड़ के मण्डोवर में ही जिनमहेन्द्रसूरि ने १७४५ ई० मे खरतर गच्छ की एक शाखा मण्डोवर गच्छ की स्थापना की थी ।[3]

मेवाड के ग्राम भटेवर मे भर्तृपुरीय गच्छ की स्थापना की गई थी, इस ग्राम का प्राचीन नाम भर्तृपुर था । इस गच्छ का उल्लेख तेरहवी शताब्दी के अभिलेख मे है ।[4] रत्नपुरीय गच्छ की स्थापना मडाहड गच्छ की शाखा के रूप मे रत्नपुर (मेवाड़) मे हुई थी, इसका उल्लेख उदयपुर की १४५३ ई० मे प्रतिष्ठित धातु प्रतिभा लेख मे है ।[5] भरतपुर राज्य के कामा ग्राम से काम्यक-गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ था, १०४३ ई० के बयाना शिलालेख[6] मे इस गच्छ के विष्णुसूरि और महेश्वरसूरि का उल्लेख है । दिल्ली के निकट रुद्रपल्लि मे ११४७ ई० मे जिनशेखराचार्य ने रुद्रपल्लीय गच्छ की स्थापना की थी[7], इसका प्रसार पन्द्रहवी शताब्दी मे नागौर, बालोतरा और जैसलमेर मे ज्ञातव्य है ।

खरतर गच्छ के जिनवर्धसूरि ने १४१७ ई० मे पीप्पालक गच्छ की स्थापना की थी[8], परन्तु पीप्पालक नामक ग्राम का पहिचान नही हो सकी है । इसी प्रकार जैनो की हुम्वड जाति और हुम्वड गच्छ की स्थापना किसी हुम्वड नामक स्थान से हुई थी, इस गच्छ का उल्लेख १३९६ ई० के उदयपुर अभिलेख[9] मे है । जल्येपिर गच्छ की उत्पति भी अज्ञात जोराउद्र ग्राम से हुई थी, इसका उल्लेख ११५९ ई० के अजारी अभिलेख[10] मे है । भीमपल्लीय गच्छ का उद्भव भी किसी भीमपल्लीय ग्राम मे हुआ था, जो पूर्णिमा गच्छ की शाखा थी तथा जोधपुर के १५४१ ई० के अभिलेख मे इसका उल्लेख है ।[11] इसी प्रकार तपागच्छ की एक शाखा कुटुवपुरा गच्छ की उत्पत्ति किसी कुटुवपुरा ग्राम मे हुई थी; इस गच्छ द्वारा नाडलाई मे १५१२, १५१३ एव १५१४ ई० मे मूर्तिया प्रतिष्ठित हुई थीं ।[12]

---

१. वही, Nos 533 & 539. २. वही, न० १२९५ ।
३ Indian Antiquary, XI, p 249
४. Annual Report of the Rajputana Musuem, Ajmer, 1923-24, No. 9.
५. प्राचीन लेख सग्रह, सख्यक ४९, १२४ एव २५६ ।
६. Indian Antiquary, XIV, p. 8 ७ वही, XI, p २४८
८. वही, p २४९ ९. Nahar : Jain Inscriptions, No. 1059.
१० अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्यक ४०८ ।
११ Nahar . Jain Inscriptions, No 604. १२. वही, Nos. 849, 850 & 851.

अन्य गच्छ :

मारवाड़ मे १५०८ ई० के जोधपुर अभिलेख से सिद्धान्ती गच्छ[१]; नागौर के १४७७ ई० के अभिलेख से जापडाण गच्छ[२]; रैनपुर के उन्नीसवी शताब्दी के स्तम्भ लेख से कवल गच्छ[३] तथा जोधपुर के ही मुनिसुव्रत मन्दिर मे १४४२ ई० के अभिलेख से तावडार गच्छ[४] का अस्तित्व ज्ञात होता है।

जैसलमेर राज्य मे ११०५ ई० और १२८१ ई० के जैसलमेर-अभिलेखो[५] मे वाटपीय गच्छ, वारहवी और तेरहवी शताब्दी के लेखो से सरवाल गच्छ[६] तथा १३६४ ई० के मूर्ति लेख[७] से बाहड गच्छ के ईश्वरसूरि का उल्लेख है।

जयपुर मे चाञ्चाल गच्छ का १४७२ ई० के मूर्तिलेख[८], राज गच्छ के पद्मनन्द का १४५२ई से मूर्ति लेख[९] तथा छहितेरा गच्छ का १५५५ ई० के अभिलेख[१०] से अस्तित्व विदित होता है।

मेवाड मे १३१७ ई० के उदयपुर अभिलेख से प्राया गच्छ[११], ११४४ ई० के मूर्तिलेख से देवाभिदित गच्छ[१२] तथा १४३६ ई० अभिलेख से निट्टाति गच्छ[१३] के अनुयायियो द्वारा पुण्यकर्म सम्पादित करने के उल्लेख है।

वारहवी शताब्दी के सिरोही राज्य[१४] और पन्द्रहवी शताब्दी मे जैसलमेर[१५] मे लोकप्रिय थारापद्रीय गच्छ एव थिराद्र गच्छ; सिरोही के कोटरा से प्राप्त ११५१ ई० के अभिलेख से पिप्पल गच्छ[१६], जो १४वी से १६वी शताब्दी तक जैसलमेर मे प्रचारित रहा[१७], सिरोही राज्य के रोहिड़ा से प्राप्त १४३६ ई० के अभिलेख[१८] से मधुकर गच्छ, जिसके अलवर से १४७० ई०[१९] और जैसलमेर से १५०६ ई०[२०] अभिलेख मिले है, तथा जयपुर और नागौर मे १४वी एव १५वी शताब्दियो मे लोकप्रिय वोकडिया गच्छ[२१] भी राजस्थान के जैन धर्मानुयायियो से सम्बद्ध रहे है।

जैनाचार्यो, भट्टारको, पडितो एव साधुओ ने जैन समाज के उत्थान हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किये। मध्य काल मे जहां एक ओर मुस्लिम आक्रामको ने मन्दिरो, शास्त्रभण्डारो एवं मूर्तियो को

१. वही, नं० ५६७
२ वही नं० १२८८
३. Nahar : Jain Inscriptions, No. 717
४. वही न० ६१६।
५. Nahar : Jain . Inscriptions, Nos. 2218 & 2232
६. वही, Nos. 2220-22 & 2415
७ वही, न० 2269
८ वही, न० ११५६
६ वही न० ११७४
१० वही, न० ११६४
११ वही, न० १०४२
१२. वही, न० १६६८
१३. वही, न० १०७८
१४ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, संख्यक ६, ४५४ एवं ४६६।
१५ Nahar : Jain Inscriptions
१६ Nahar : Jain Inscriptions, No 966.
१७. वही, Pt. III.
१८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, संख्यक ५७५।
१६. Nahar : Jain Inscriptions, Pt I
२०. वही, Pt. III
२१. वही नं० ११६७, ११६६ एव १२४६

नष्ट किया तथा दूसरी ओर मराठो ने लूटमार की, फिर भी जैनाचार्यो एव भट्टारको ने जैन धर्म की उन्नति के अथक प्रयत्न किये। आचार्यों के अतिरिक्त भट्टारक सकलकीर्ति एव शुभचन्द्र भी अद्वितीय विद्वान थे, फलत: जैन साहित्य का सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओ मे सृजन हुआ। शास्त्रो की प्रतियो के सरक्षण हेतु कई शास्त्र भण्डार स्थापित किये गये तथा जैन साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि ग्रन्थो की प्रतियाँ भी लिखवाकर सगृहीत की गईं। इनके प्रभाव से विभिन्न मन्दिरो का निर्माण तथा असंख्य मूर्तियो की प्रतिष्ठाए सम्पादित हुईं। भट्टारको ने कई हिन्दू एव मुस्लिम शासको द्वारा अहिंसा पर अमल हेतु फर्मान निकलवाये। जैन तीर्थो की यात्रा हेतु सघ निकलवाये और तीर्थो की सुव्यवस्था करवाई।

चैत्यवासी प्रथा :

राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा का भी प्रभाव रहा है। जैन साधुओ हेतु वर्षा के चातुर्मास के अतिरिक्त एक स्थान पर निवास करना वर्जित है, जोकि श्रमण सस्कृति का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, परन्तु बौद्धो की तरह जैनो मे भी यति एव भट्टारक के रूप में विरागी पुरुष चैत्यवासी के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। आचार्य धर्मसागर[1] ने अपनी पट्टावली मे चैत्यवासी प्रथा का आरम्भ ३५५ ई० से निश्चित किया है, परन्तु मुनिकल्याण विजयजी[2] के अनुसार यह प्रथा प्राचीन है और इसका सुव्यवस्थित रूप ३५५ ई. मे स्पष्ट हुआ। वर्तमान मे श्वेताम्बरो मे यति अथवा श्रीपूज्य तथा दिगम्बरो मे भट्टारक मठवासी हैं, जिन्हे सम्मिलित रूप से चैत्यवासी कहा जाता है।

राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा के उल्लेख आठवी शताब्दी से उपलब्ध है। जैनाचार्य हरिभद्र-सूरि और जिनवल्लभसूरि ने लोगो के समक्ष मन्दिरो मे निवास करने, उनकी सम्पत्ति का स्वय के लिये प्रयोग करने, रगीन एव सुगंधित वस्त्र पहिनने, सुस्वादु भोजन करने और साधुओ को भिक्षा देने, सचित्त जल, फल और फूल का उपयोग करने, शिष्य बनाने हेतु बच्चो को क्रय करने आदि को चैत्यवासी साधुओ के कर्म निरूपित किये हैं। चैत्यवासियो के विरुद्ध वनवासियो ने शास्त्रार्थ किये, परन्तु राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा की उन्नति होती रही।

श्वेताम्बर चैत्यवासियो ने मन्दिर निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठा को न केवल प्रोत्साहित किया बल्कि स्वय ने भी इन कार्यों को सम्पन्न किया। जीरापल्ली गच्छीय रामचन्द्रसूरि ने १३५४ ई. म जीरापल्ली में देवकुलिका[3] बनवाई थी। हेमतिलकसूरि ने अपने गुरु के हितार्थ १३८६ ई. मे वर्मान म मन्दिर का रगमण्डप बनवाया था।[4] पिप्पलाचार्य गच्छीय वाचक सोमप्रभसूरि ने १३६७ ई० में सुमतिनाथ की प्रतिभा अजारी मे निर्मित करवाई थी।[5] वीरप्रभसूरि ने १४१८ ई० मे एक मण्डप वीरवाडा ग्राम में बनवाया था।[6] काच्छोलीवाला गच्छीय विजयप्रभसूरि ने १४६४ ई० गुणसागर-सूरि के हितार्थ सिरोही के अजितनाथ मन्दिर मे देवकुलिका बनवाई थी।[7] जीरापल्ली के आदिनाथ मन्दिर में तिलकसूरि के हितार्थ भद्रेश्वरसूरि ने देवकुलिका निर्मित करवाई थी।[8] नाणक गच्छीय

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३५१, २. वही

३. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, संख्यक ११६।

४. वही, सख्यक ११३ ५. वही, सख्यक ४३२

६. वही, सख्यक २७८ ७. वही, सख्यक २४६-२४८ ८. वही, सख्यक ११६

पार्श्वदेवसूरि ने वेलरा ग्राम मे लगिका[1] तथा नन्नसूरि ने वसन्तगढ मे आदिदेव की मूर्ति बनवाई थी।[2]

दिगम्बर साहित्य मे चैत्यवासी प्रथा के उद्भव के सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी उपलब्ध नही है, परन्तु दक्षिण भारत मे आठवी शताब्दी से इस प्रथा के उल्लेख मिलते है। राजस्थान में इन भट्टारको के पास जागीर मे ग्राम और बाग थे तथा ये मन्दिर और मूर्ति निर्माण के अतिरिक्त साधुओं को भोजन भी देते थे। चैत्यवासी होते हुए भी आरम्भिक भट्टारक नग्न रहते थे, जो सम्भवतः श्वेताम्बर यति अथवा श्री पूज्यो से भिन्नता प्रदर्शित करने हेतु आवश्यक रहा हो। वर्तमान में भट्टारक भोजन करते समय वस्त्र त्याग देते है, जबकि शेष समय धारण करते है। सोलहवी शताब्दी मे भट्टारक श्रुतसागर ने लिखा है कि कलिकाल मे मुस्लिम नग्न यतियो के साथ दुर्व्यवहार करते थे, फलतः मण्डपदुर्ग मे बसन्तकीर्ति ने चर्या के समय वस्त्र पहिनने की अनुमति दे दी थी।[3] पट्टावली मे मूलसघ के चित्तौडपट्ट के भट्टारको मे एक बसन्तकीर्ति थे, जिनका समय १२०७ ई० ज्ञात है।[4] इस समय मुस्लिमो के आक्रमण अविरल थे, फलत. भट्टारकों ने चर्या के समय बाहर जाने पर वस्त्र पहिनने आरम्भ कर दिये होगे। चित्तौड, चात्सु, जालौर, अजमेर, जयपुर आदि स्थान महत्त्वपूर्ण भट्टारक पट्ट रहे है।

धार्मिक प्रधानता के अतिरिक्त भट्टारक आत्मकल्याणार्थ पुण्यकर्म सम्पादित करवाते थे तथा आचार्यों एव पडितो को नियुक्त कर शासित करते थे। ये अपने श्रावको से विभिन्न प्रकार से धन प्राप्त करते तथा वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक अनुष्ठानो, मूर्ति प्रतिष्ठा, प्रतियां लेखन हेतु भट्टारक अपने अधीनस्थ आचार्यो एवं पंडितों की नियुक्तिया भी करते थे।

अमूर्तिपूजक :

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनो परम्पराओ मे अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय का राजस्थान मे व्यापक प्रभाव है।

श्वेताम्बर परम्परा :

अमूर्तिपूजक श्वेताम्बर सम्प्रदायो का विवरण इस प्रकार है—

लोका पथ :

अहमदाबाद मे लोकाशाह यति ज्ञानजी के उपासरा मे शास्त्रो की प्रतिया लिखकर जीवन निर्वाह करते थे। शास्त्रो की प्रतिया लिखते-लिखते उन्हे विश्वास हो गया कि उनमे मूर्तिपूजा का प्रावधान नही है। इस तथ्य पर ज्ञानजी आदि से विवाद के पश्चात् लोकाशाह ने अपने नाम से १४५१ ई० मे लोकापथ की स्थापना की। लोका ने मूर्तिपूजा एवं प्रतिष्ठा का विरोध और पौषध, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान एवं ब्रह्मचर्य मे विश्वास प्रचारित किया। मुस्लिमो द्वारा मन्दिरो और मूर्तियो को नष्ट होने के कारण लोकापंथ की लोकप्रियता बढने लगी। चैत्यवासियो के विलासपूर्ण जीवन और धन संचय के प्रति घृणा ने भी लोकापथ के विकास मे सहयोग दिया। लोकाशाह ने ३२ सूत्रो को अपना आधार निरूपित कर आवश्यक सूत्र को अपने सिद्धान्तो के अनुसार प्रचारित

१. वही, सख्यक ३३७ २. वही, सख्यक ४४५

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३६३ ४. Indian Antiquary XX p. 347

किया। सिरोही के निकटवर्ती भाण से लोंका की भेंट हुई, जिसने बिना गुरु के संन्यास ग्रहणकर १५२१ ई० मे रूपऋजी तथा १५३० ई० मे वृद्ध वरसिह को अपना शिष्य बना लिया और इस प्रकार लोंकाशाह के अनुयायियो ने लोका सम्प्रदाय मे साधुओं को दीक्षित कर पंथ को व्यवस्थित रूप प्रदान किया।

स्थानकवासी सम्प्रदाय :

लोकापथ के कुछ अनुयायियो ने भगवान् महावीर के समान कठोर तप को विशेष महत्त्व दिया तथा सूरत के एक गृहस्थ लवजी ने साधु बनकर तदनुरूप तपस्या की। लवजी की कठोर तपस्या से प्रभावित होकर कई लोकापथी उनके अनुयायी हो गये और इस नवीन सम्प्रदाय को 'स्थानकवासी' संज्ञा दी। राजस्थान के सभी नगरो मे स्थानकवासी सम्प्रदाय के श्रावक बहुसंख्यक हैं।[1]

तेरापंथी सम्प्रदाय :

स्थानकवासी साधु (उनके लिये श्रावको द्वारा निर्मित) स्थानको मे वर्षावास करते हैं। इस तथा कुछ अन्य सैद्धान्तिक मान्यता भेद के कारण श्री भीखणजी ने अपना एक अलग सम्प्रदाय संस्थापित किया। इस सम्प्रदाय के साधु स्थानक के स्थान पर श्रावकों के घर ठहरते हैं। इस अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय केअनुयायी राजस्थान मे काफी हैं।[2]

दिगम्बर परम्परा :

अमूर्तिपूजक दिगम्बर सम्प्रदायो का विवरण इस प्रकार है—

तेरापंथी सम्प्रदाय :

अमूर्तिपूजक दिगम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन तारण स्वामी ने किया था, जिनका जन्म १४४८ ई० तथा मृत्यु १५१५ ई० मे हुई थी। लोंकाशाह की तरह तारण स्वामी ने भी मूर्तिपूजा का विरोध किया। इसके अनुयायी तारण द्वारा लिखित चौदह ग्रन्थो की पूजा करते हैं। राजस्थान मे भी उनके अनुयायी है।

भट्टारक विरोधी सागानेर निवासी पडित अमरचन्द बड़जात्या ने मूर्तिपूजक तेरापथी सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जो सत्रहवी शताब्दी मे सम्पूर्ण राजपूताना में लोकप्रिय हो गया। इसका मूल नाम विधिमार्ग था, परन्तु विरोधियो द्वारा प्रदत्त तेरापंथी नाम से ही यह सम्प्रदाय प्रसिद्ध हो गया। भट्टारको की जीवन प्रक्रिया के विरोधी, इस सम्प्रदाय का विस्तार आगरा निवासी सुधारक पंडित बनारसीदास के समय अधिक हुआ। जीवन निर्माण से सम्बद्ध तेरह सिद्धान्तों के कारण भी इसका नाम तेरापंथी निरूपित किया जाता है।[3] तेरापंथियो ने भट्टारकों की निन्दा की तथा उनकी धार्मिक श्रेष्ठता को अस्वीकार किया तथा मूर्तिपूजा में फलो, फूलो, चन्दन और प्रक्षाल का प्रयोग अनुचित निरूपित किया क्योंकि इनके प्रयोग मे हिंसा होती है।

---

१. इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० का एक लेख 'राजस्थान में स्थानकवासी परम्परा' आगे के पृष्ठो मे [१६६-७४] दिया गया है। —सम्पादक

२. इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे मुनि श्री नथमलजी का एक लेख 'राजस्थान मे तेरापथ सम्प्रदाय का अभ्युदय' आगे के पृष्ठो [१७५-७८] मे दिया गया है। —सम्पादक

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३९७

गुमानपंथी सम्प्रदाय :

जयपुर निवासी पं० टोडरमल के पुत्र गुमानराम के नाम से यह सम्प्रदाय गुमानपथी नाम से प्रसिद्ध हुआ। १८वी शताब्दी में विकसित इस सम्प्रदाय को शुद्धाम्नाय भी व्यावहारिक पवित्रता के कारण कहा जाता है।

अन्य सम्प्रदाय

बीसपंथी सम्प्रदाय :

भट्टारकों के अनुयायियो ने बीसपंथी सम्प्रदाय नाम, विरोधी तेरापंथियो से श्रेष्ठता प्रदर्शित करने हेतु दिया था। भट्टारकों द्वारा प्रतिपादित मान्यताएं और जल, दीपक, फूल और चन्दन द्वारा मूर्तिपूजा को इसके अनुयायी मान्य करते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी जयपुर, अजमेर, नागौर, मारोठ आदि में अधिक हैं।

तोतापंथी सम्प्रदाय :

भट्टारक विरोधी तेरापंथी और भट्टारक पक्षीय बीसपंथियो में पारस्परिक समझौतावादी इस सम्प्रदाय को 'साढ़ी सोलह पंथी' भी कहा गया, क्योकि दोनो सम्प्रदायो के सिद्धान्तो के सम्मिश्रण को इन्होने अपनाया। यह सम्प्रदाय नागौर तक सीमित है।

[६]

विभिन्न जैन जातियाँ एवं गोत्र

उत्तर भारत की विभिन्न जैन जातियों और गोत्रों की उत्पत्ति राजस्थान मे हुई। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई अनुश्रुतियां प्रचलित है, जो प्राचीनता की द्योतक हैं, यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से इन जातियो की उत्पत्ति की प्राचीनता सातवीं शताब्दी से पूर्व नही ले जायी जा सकती। राजस्थान मे जैन जातियों एव गोत्रो की उत्पत्ति का समय आठवी से तेरहवीं शताब्दी के बीच ज्ञात होता है, जबकि हरिभद्र सूरि, जिनवल्लभ सूरि, हेमचन्द्र सूरि आदि ने अहिंसा को प्रतिष्ठित कर राजपूतो, ब्राह्मणो और वैश्यो को बड़ी सख्या मे जैन धर्म में दीक्षित किया था। जैनाचार्यों के अतिरिक्त जैन शासको और विमल एव वस्तुपाल जैसे महापुरुषो ने भी जैन धर्म को जैन धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने के कई लोकोपकारी कार्य किये फलतः विभिन्न स्थानों, कुलो एवं जातियों के लोगो ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तथा तदनुसार जैनों मे कई जातियों एवं गोत्रों का प्रादुर्भाव हुआ।

ओसवाल :

भारत के सभी महत्त्वपूर्ण नगरों में ओसवाल जाति प्रतिष्ठित है। इस जाति का उत्पत्ति-स्थल जोधपुर से उत्तरपश्चिम में ५२ कि० मी० पर स्थित ओसिया है। नाभिनन्दनोद्धार प्रबन्ध और उपकेशगच्छ चरित के अनुसार पार्श्वनाथ की परम्परा के सप्तम पट्टधर रत्नप्रभसूरि ने वीर निर्वाण संवत् ७० (ई० पू० ४५७) में ओसवंश की स्थापना की थी। भाटों के मत मे रत्नप्रभ सूरि के उपदेशों से विक्रम सवत् २२२ (१६५ ई०) मे ओसवाल जाति की स्थापना उपकेशनगर में हुई थी, परन्तु ये दोनो मत अतिरंजित प्रतीत होते हैं। रत्नप्रभ सूरि द्वारा राजा उप्पलदेव और उनकी प्रजा को जैन धर्म में दीक्षित करने की घटना, आठवी शताब्दी में ओसिया के किसी प्रतीहार शासक को प्रजा सहित जैन धर्मानुयायी बनाने का पुण्यकर्म किसी जैनाचार्य के द्वारा सम्पन्न होने का अनुश्रुतिपूर्ण विवरण है।

गोत्र :

जैन धर्म स्वीकार कर लेने के बाद भी ओसवालों में वैभिन्य बना रहा, जिससे परम्परानुसार उनकी १८ गोत्रे बनी थी जो कालान्तर मे शाखा-प्रशाखाओं के रूप मे १४४४ हो गईं। यति श्रीपाल ने ओसवालो की ६०६ गोत्रे वर्णित की हैं[1] तथा अठारहवी शताब्दी के कवि रूपचन्द्र ने ४४० मानी हैं।[2] ओसवालो की ये गोत्रे स्थान सूचक, वैयक्तिक और कर्मानुसार प्रसिद्ध हुई है।

कुछ गोत्रे अपने उत्पत्तिस्थल के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जैसलमेर मे भणसाल के रावलसागर के दो राजकुमार श्रीधर एवं राजेन्द्र को जिनदत्त सूरि ने वासक्षेप प्रदान किया था, फलतः राजकुमार एवं उनके उत्तराधिकारी और सम्बन्धी भणसाली[3] गोत्रीय कहलाने लगे। काछोली गोत्र की उत्पत्ति सिरोही राज्य के काच्छोल ग्राम से हुई थी। खरतरगच्छ के जिनवल्लभ सूरि ने उदयपुर के महाराणा के कांकरावत ग्राम के निवासी सामन्त भीमसी को जैन धर्म मे दीक्षित किया था, फलतः उनके कुल को काकरिया गोत्रीय कहा जाने लगा।[4] कोरण्ट गोत्र मारवाड़ के कोरण्ट ग्राम से; पूगल निवासी ओसवालो के अन्यत्र बस जाने पर पूगल गोत्र, मेडता ग्राम के निवासियो से मेड़तवाल गोत्र, कन्नोज से आकर बस जाने से कनौजिया गोत्र आदि की उत्पत्ति तेरहवीं से पन्द्रहवी शताब्दियों के बीच होने का ज्ञान अभिलेखो से होता है।

ओसवालो की कुछ गोत्रे धन्धे के नाम से प्रसिद्ध हुईं। राथड़ राव चुण्डा ने थाकरसी को खजाने का प्रभारी बनाया था, फलतः वे कोठारी कहलाने लगे तथा कोषपाल का कार्य करने वाले लोग खजान्ची कहलाये। भण्डारियो के अनुसार उनके मूल पुरुष डाड़ाव[5] ने ६१२ ई० मे सण्डेरक गच्छीय यशोभद्र सूरि से जैन धर्म स्वीकार किया था तथा वे भण्डार के प्रभारी थे, फलतः उनके वंशज भण्डारी कहे जाने लगे। घी का धन्धा करने वाले ओसवाल के वंशज घीया गोत्रीय प्रसिद्ध हुए। वैद गोत्रीय लोगो के मूलपुरुष ने उदयपुर की महाराणी की आँख की चिकित्सा की थी, फलतः उसे प्राप्त वद्य विरुद के कारण उसके वशज 'वेद' कहलाये।[6] धन्धे के कारण ही चण्डालिया, बम्बी और महाजनी गोत्रो की उत्पत्ति हुई थी।

ओसवालों मे कुछ गोत्रें प्रसिद्ध पुरुषो के नाम से भी आरम्भ हुईं। आदित्यनाग गोत्र[7] दान-पुण्य एव जन-कल्याण के कार्यों मे प्रसिद्ध आदित्यनाग से आरम्भ हुई। लालसिंह पँवार को ११११० ई० मे जैन धर्म मे दीक्षित कर जिनवल्लभ सूरि ने लालानी गोत्र की स्थापना की।[8] लालसिंह का ज्येष्ठ पुत्र बलशाली (बण्ठ) था फलतः उसके वशज बाँठिया कहलाये। गदाशाह के वशज गदहिया कहलाये।[9] लूणिया गोत्र की उत्पत्ति लूणसिंह द्वारा जिनदत्तसूरि से जैन धर्म स्वीकार कर लेने से हुई। जगदेव पंवार को पूर्णतलगच्छ के हेममचन्द्र सूरि ने जैन बनाया,[10] फलतः उसके दो पुत्रों

---

१. जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६५६ २. जैन भारती, ५, अक ११
३. Nahar : Jain Inscriptions, III, p. 28 ४. History of Osawalas, p. 353
५. Some distinguished Jainas, p. 36 ६. History of Osawalas, p. 166
७. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, पृ० ११०६ ८. जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६२६
९. वही, पृ० ६२८ १०. Nahar : Jain Inscriptions, No. 2186

सूर से सुराणा तथा साँवला से[1] साखला गोत्रे प्रसिद्ध हुईं । जिनदत्तसूरि से दो भाइयो—दुगड़ एव सुगड़ ने जैन धर्म को स्वीकार किया, फलतः उनके वशज दुगड और सुगड गोत्रीय कहलाये ।[2] देलवाड़ा के शासक सागर के पुत्र वोहिथ से वोथरा गोत्र;[3] जिनकुशल सूरि से चौहान डूंगरसिंह ने जैन धर्म स्वीकार किया था, फलतः उसके वशज डागा तथा दूधेरा नामक पुरुष के वशज दूधेरिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

ओसवालों की कुछ गोत्र सम्पन्न किये गये विशिष्ट कर्म के कारण भी आरम्भ हुई थी—यथा तीर्थयात्रा के लिये संघ निकालने वाले लोग सिंघवी कहलाये । ग्यारहवी शताब्दी मे नाग व्यान्तर द्वारा नारायण को वर दिया गया था, फलतः वरडिया गोत्र का प्रादुर्भाव हुआ ।[4] काकू नामक व्यक्ति को नगर सेठ का विरुद मिला था, फलतः उसके वंशज सेठिया प्रसिद्ध हुए ।[5] पासु रत्न परीक्षा मे कुशल था, फलतः उसके वशज पारख कहलाये ।[6] युद्ध भूमि से पलायन नही करने वाले के वशज नाहटा तथा माण्डलगढ के सुल्तान द्वारा झाजसिंह को राजदरबार मे कटार ले जाने की अनुमति देने से उसके वशज कटारिया कहलाये ।[7] जिनदत्त सूरि से खरतसिंह राठोड़ ने जैन धर्म स्वीकार किया था, इसके पुत्र अम्बदेव ने चोरों को पकड लिया, फलतः वह और उसके वंशज चोरड़िया प्रसिद्ध हुए ।[8]

श्रीमाल :

श्रीमाल जाति का मूल स्थान श्रीमाल था, जिसकी पहिचान जालोर जिले के भीनमाल से की जाती है । जैन धर्मानुयायी होने के बाद निष्क्रमण कर यत्र तत्र वसने से, ये लोग मूल स्थान से श्रीमाल प्रसिद्ध हुए । श्रीमाल जाति का सबसे आरम्भिक उल्लेख भारद्वाज गोत्रीय श्रीमाल टोडा का ७३८ ई० से सम्वद्ध है ।[9] उदयरत्न द्वारा रचित पञ्चपट रास से ज्ञात होता है कि शक सवत् ७०० मे रत्नप्रभ सूरि श्रीमाल नगर पधारे थे और यहाँ उन्होने श्रीमाल जाति की स्थापना की ।[10] एक अनुश्रुति के अनुसार उदयप्रभसूरि ने श्रीमाल के ब्राह्मण धर्मानुयायी राजा विजयन्त और ६२ सेठों को जैनधर्मानुयायी बनाकर श्रीमाल जाति की स्थापना की थी ।[11] उपर्युक्त उल्लेखो से श्रीमाल जाति का अस्तित्व तथा उत्पत्ति सातवी अथवा आठवी शताब्दी में होने की पुष्टि होती है ।

कालान्तर मे, श्रीमाल दो वर्गों मे विभक्त हो गये—लघु शाखा और वृहद् शाखा । श्रीमाल जाति की कई गोत्रो का विवरण अभिलेखों मे उपलब्ध है । अम्बिका गोत्र की उत्पत्ति जैनदेवी अम्बिका से है । ऐलहर,[12] गोत्रलिया,[13] घेवरिया,[14] गौतम,[15]

---

१. जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६६७ २. वही, पृ० ६३८ ३. वही, पृ० ६३९–४१
४. वही, पृ० ६२२ ५. वही, ६३४ ६. वही, पृ० ६२८
७. वही, पृ० ६३४ ८. History of Osawalas, p. 509
९ जैन साहित्य संशोधक एव जैनाचार्य आत्माराम शताब्दी स्मारक ग्रंथ, गुजराती विभाग, पृ० २०४
१०. प्राग्वाट इतिहास, प्रस्तावना, पृ० १२ ११. श्री जैन गोत्र संग्रह, सं० १३–२३
१२. Nahar : Jain Inscriptions, No. 1676 १३. वही, स० ४१२
१४. वही, सं० ४१३ १५ वही, सं० २४६४

हुई हैं, जिनके प्रादुर्भाव का समय मध्ययुग रहा होगा। इन्होने कई मंदिर, मूर्ति प्रतिष्ठा एवं शास्त्र प्रतियाँ लेखन वागड के मूल संघ और काष्ठा संघ के भट्टारको की प्रेरणा से सम्पादित किये थे। पन्द्रहवी शताब्दी में भट्टारक ज्ञानभूषण ने नागद्रारास लिखकर नागदा जाति के इतिहास को प्रकाशित किया था। नरसिंहपुरा और जैसवाल दिगम्बर जातियो की उत्पत्ति मध्यकाल मे मेवाड के नरसिंहपुरा और जैसलमेर मे हुई थी, फलत: जैनाचार्यो ने इनको स्थान सूचक नाम प्रदान किया होगा।

हुम्वड़ :

अन्य जातियो की तरह हुम्वड जाति भी किसी स्थल से सम्बद्ध रही होगी। राजस्थान मे प्राचीन वागड प्रदेश हुम्वड़ जाति का केन्द्र है। इस जाति का उत्पत्ति काल अन्यो की तरह आठवी शताब्दी माना जाता है। हुम्वड जाति की तीन शाखाए—लघु शाखा, बृहत शाखा, वर्षावत शाखा तथा १८ गोत्र[1]—खरजु, कमलेश्वर, काकदेश्वर, उत्तरेश्वर, मंत्रेश्वर, भीमेश्वर, भद्रेश्वर, गंगेश्वर, विश्वेश्वर, साखेश्वर, अम्वेश्वर, चाचनेश्वर, सोमेश्वर, रजियानो, ललितेश्वर, कासवेश्वर, बुधेश्वर और मघेश्वर विभिन्न स्रोतो से विदित होती है।

धर्कट :

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो मे धर्कट जाति का अस्तित्व है। धम्मपरीक्षा के लेखक हरिषेण इसी जाति के थे, इनका समय दसवी शताब्दी माना जाता है।[2] १२३० ई० के देलवाडा अभिलेख[3] तथा आबू के दो अभिलेखो[4] मे धर्कट जाति का उल्लेख है, फलत. इस जाति का उत्पत्ति प्रदेश राजस्थान ही प्रतीत होता है, यद्यपि वर्तमान मे यह जाति दक्षिण भारत मे अवस्थित है। हरिषेण द्वारा उल्लेखित सिरिउजपुरिय धक्कड कुल के आधार पर नाथूराम प्रेमी[5] धर्कट कुल को टोक के सिरोज से तथा अगरचद नाहटा[6] धकड़गढ से सम्बन्धित मानते हैं क्योकि धकडगढ से ही महेश्वरी जाति की धाकड शाखा की उत्पत्ति मानी जाती है। दो प्रशस्तियो के आधार पर नाहटाजी ने धकडगढ की स्थिति श्रीमाल के निकट मानी है।[7]

श्रीमोढ :

श्रीमोढ वनिये वर्तमान मे भी वैभवशाली हैं। श्रीमोढ ब्राह्मण अपने को श्रीमोढ नामक स्थान से सम्बन्धित मानते हैं। दोनो जातियो का उद्गम स्थल अणहिलवाड के दक्षिण मे स्थित प्राचीन नगर मोढेरा है। सोलकी सम्राट कुमारपाल के गुरु तथा प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र सूरि का जन्म श्रीमोढ जाति मे ही हुआ था। इस जाति के अभिलेख बारहवी शताब्दी से मिलते हैं।[8]

जैनो की उपर्युक्त सभी जातियो तथा गोत्रो के लोग वर्तमान राजस्थान मे अपनी सास्कृतिक धरोहर एव सस्कार को जीवित रखे हुए हैं। राजस्थान को इस बात का गौरव प्राप्त है कि अधिकाश जैन जातियो और गोत्रो का यह उत्पत्ति प्रदेश रहा है तथा यहाँ के निवासी भारत के सम्पूर्ण प्रमुख नगरो में प्रतिष्ठापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं।

---

१ प्रशस्ति सग्रह, पृ० १२४
२. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८
३. अनेकात, ३, पृ० १२४
४. वही, पृ० १२४
५. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८
६. अनेकात. ४, पृ० ६१०
७. जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह, सख्यक ५२ एव ६३
८ Dr. K. C Jain : Jainism in Rajasthan, p 109

१९ | राजस्थान में स्थानकवासी-परम्परा

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

वीरभूमि-धर्मभूमि :

राजस्थान की वीर भूमि जो आज धर्म भूमि बनी हुई है, उसमे जैन संतो का बडा योगदान रहा है। जैन सन्तो और श्रावको ने इस प्रांत के धार्मिक जागरण मे बडा उल्लेखनीय योगदान दिया है। ओसवाल समाज का तो उत्पत्ति स्थान ही राजस्थान माना जाता है। जोधपुर, उदयपुर, जयपुर और बीकानेर आदि भूतपूर्व राज्यो की शासन-व्यवस्था मे परम्परा से जैनो का बडा हाथ रहता आया था। सर्वत्र जैन आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। देश हित मे जैनो का त्याग अजोड रहा है। भामाशाह का त्याग इतिहास मे आज भी अमर स्मृति बनाये हुये है। राजस्थान के पश्चिमी अंचल मे श्वेताम्बर जैनो और पूर्वी अचल मे दिगम्बर जैनो का, सर्वतोमुखी विकास मे प्रमुख भाग रहा प्रतीत होता है।

स्थानकवासी समाज के संतो ने भी इधर काफी काम किया। गुजरात से सम्बन्धित होने के कारण लोकागच्छ की परम्परा राजस्थान मे बहुत शीघ्र फैल गई। जालोर, सिरोही होते नागौर, बीकानेर और जैतारण मे लोकागच्छ की गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गई। क्रियाउद्धार[1] के क्रातिकारी माध्यम द्वारा बाह्याडम्बर के विरोध मे एक देशव्यापी लहर उठी। गुजरात से उद्भूत वह लहर राजस्थान मे आसन जमा बैठी। सोलहवी-सतरहवी सदी मे यहां लोकागच्छ के अतिरिक्त पोतियाबंध परम्परा का भी प्रसार होने लगा था।

उस समय स्थानकवासी सन्त जो बावीस सम्प्रदाय या ढूंढिया नाम से पुकारे जाते थे का प्रसार अल्प-स्वल्प था। जहा-तहा यति वर्ग साधुओ के प्रवेश को हर प्रकार मे रोकना चाहता था, फिर भी यत्र-तत्र जो आडम्बर विरोधी तत्त्व थे, सन्तो के त्याग, तप के प्रभाव ने उनके मन में आदर उत्पन्न किया और उनके सहयोग मे शनैः-शनैः सन्तो का प्रचार क्षेत्र बढने लगा।

---

१. प्रमुख क्रियोद्धारक थे—पूज्य आचार्य सर्वश्री जीवराजजी, लवजी, धर्मसिहजी, धर्मदासजी, हरजी और धन्नाजी।

—सम्पादक

राजस्थान में स्थानकवासी-परम्परा :

राजस्थान में सद्धर्म का प्रचार करने वाले मुख्य पाच संत थे। पूज्य श्री जीवराज जी म०, पूज्य श्री हरजी जी म०, पूज्य श्री धन्ना जी म०, श्री पृथ्वीचन्द जी म० और पूज्य श्री मनोहर जी म०। इनमे पूज्य श्री जीवराज जी म० १७वी सदी के प्रारंभकालीन सन्त माने जाते हैं। 'मरुधर पट्टावली' के अनुसार आपने पीपाड़ मे पाच साथियों के साथ क्रियाउद्धार किया। स्पष्ट परिचय के अभाव में आपकी गुरु-शिष्य-परम्परा और विशिष्ट घटनाओं का निश्चित पता लगाना कठिन है। कुछ लेखक आपको कुंवरजी गच्छ के जगाजी के शिष्य वतलाते हैं, जबकि श्री जीवराज ऋषि कृत 'चौबीसी' (स्तुति) मे आपका सोमजी के शिष्य होना प्रमाणित होता है। फिर भी इतना निश्चित है कि आप बडे प्रभावशाली, आचारनिष्ठ सन्त थे। आपका शिष्य समुदाय अल्प समय मे ही विभिन्न गणो के रूप मे सारे प्रान्त मे फैल गया। उनमे से पूज्य श्री अमरसिंह जी म०, पूज्य श्री नानकराम जी म०, पूज्य श्री शीतलदास जी म०, पूज्य श्री स्वामीदास जी म० और पूज्य श्री मनजी जी म० के साधु-साध्वी आज भी विद्यमान है।

पूज्य श्री अमरसिंह जी म० स० बडे प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। आपने बडे-बडे राजा-महाराजाओ को प्रतिबोध दिया। दिल्ली के वादशाह को प्रतिबुद्ध कर आपने रजवाड़ों मे हिंसाबंदी के हुक्म प्रसारित करवाये। आपने स० १८११ मे स्थानकवासी सम्प्रदायों का मेड़ता मे एकीकरण किया। आपके साधु-समुदाय मे पूज्य श्री जीतमल जी म० बड़े विद्वान, कलाप्रिय, कवि और उर्दू-फारसी के ज्ञाता थे। आपकी परम्परा मे अभी प्रवर्तक पं० श्री पुष्कर मुनि जी म० सा०, श्री देवेन्द्र मुनि जी म० सा० आदि सन्त और श्री महासती श्री शीलकंवर जी आदि सतिया हैं। भण्डारी श्री रघुनाथदास जी आपके भक्त थे।

पूज्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा मे श्री नानकराम जी म० और श्री स्वामीदासजी म० दोनो बड़े विद्वान सन्त हुए हैं। पूज्य श्री नानकराम जी म० बडे क्रिया पात्र थे। अजमेर के आस-पास के क्षेत्रो मे आपका अधिक विराजना रहा। आपके साधु-परिवार में श्री मावोजी म० बडे कठोर क्रियापात्र थे। मास-मास की तपस्या आप बहुत वार किया करते थे। परिषह सहन के लिए आप शीतकाल मे प्रातः और गर्मी की ऋतु मे दोपहर को विहार करते थे।

पुष्कर मे उस समय जैन साधुओ को पण्डे लोग आने नहीं देते थे। एक वार श्री मावोजी म० को पुष्कर जाते देखकर पण्डो ने घेर लिया और कहा—बाबाजी ! आराम से जीना हो तो पीछे लौट जाओ, नही तो हम तुम्हारी हड्डिया विखेर देंगे। इस पर महाराज श्री नाग-पहाड मे ध्यान लगा कर बैठ गये। २५ दिन तक उपवास मे रहे। अन्त में पुष्कर निवासियो को सूचना मिली कि पण्डो के सताने से एक जैन सत पहाड मे तपस्या कर रहे हैं और इसी पाप के फलस्वरूप हमारे नगर मे बीमारी चल पडी है। तब सब लोगो ने महाराज के पास जाकर क्षमा मांगी और उनको नगर मे पधारने की विनती की। इस पर तपस्वी महाराज ने शान्त भाव से गांव मे आकर पारणा किया। लोगो पर बड़ा प्रभाव पडा।

मावोजी के अनन्तर भी कई प्रभावशाली सन्त हुए। आपकी परम्परा मे वयोवृद्ध श्री पन्नालाल जी म० सा० राजस्थान मे बीसवी सदी के सन्त हो गए हैं। आपने अपने ओजपूर्ण उपदेश

और तपोबल से कई जगह देवी-देवों के नाम से होने वाली पशु हिंसा बन्द की और समाज-सुधार के कार्य किये। आपने समाज में धर्म-प्रवृत्ति को निरन्तर जागृत रखने हेतु स्वाध्याय संघ की स्थापना की। श्री नानकराम जी म० की सम्प्रदाय में सैंकड़ों साधु-साध्वी हुए। अभी पं० श्री हगामीलाल जी म० सा०, एवं प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी म० सा० आदि सन्त विद्यमान हैं।

श्री स्वामीदास जी म० की परम्परा मे कई विद्वान एवं प्रभावशाली सन्त हुये हैं। श्री बखतावरमल जी म० उनमें बडे चमत्कारी सन्त थे। गोडवाड प्रान्त मे उनका बडा प्रभाव था। वे अच्छे साधक और वचनसिद्ध पुरुष थे। वर्तमान मे आपकी परम्परा मे मुनि श्री कन्हैयाल जी 'कमल' आदि संत हैं।

पूज्य श्री शीतलदास जी म० की परम्परा भी राजस्थान और प्रमुखतः मेवाड़ मे धर्म का प्रचार-प्रसार करती रही है। पूज्य श्री प्रतापमल जी म० इस परम्परा मे प्रभावशाली सत हुए हैं। तपस्वी श्री वेणीदास जी म० ने करीब ५० वर्ष तक छाछ के आधार पर तप किया। एक बार आपने बनेड़ा के नगर द्वार मे खडे रहने का व्रत किया। आपका अभिग्रह था कि बनेड़ा के राजा अपने पोते के साथ आवे और भवर जी कहें—"वेणा ! बेठणो व्हे तो बैठ, नहीं तो चल जा," तो बैठना अन्यथा खडे रहना। तपस्वी जी का वह सकल्प कुछ दिनो पश्चात पूरा हुआ। नगर मे धर्म की प्रभावना हुई। वर्तमान मे इस परम्परा की महासती जसकवर जी म० अच्छा धर्म प्रचार कर रही हैं। बेगूं के पास जोगणिया देवी के नाम पर होने वाली हजारो मूक प्राणियों की हिंसा बद कराने मे उनके उपदेश का बडा प्रभाव रहा। इस परम्परा के उ०प्र० श्री मोहन मुनिजी और मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' धर्म-प्रचार का अच्छा कार्य कर रहे है।

पूज्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा मे दूसरी शाखा श्री नाथूराम जो म० की रही है। अलवर, कोटा, भरतपुर, बीकानेर आदि मे अच्छा धर्म-प्रचार किया। इस परम्परा मे सन्तो की तरह, महासत महाकवर जी, महासती भूर सुन्दरी जी आदि कई सतिया भी अच्छी धर्म प्रचारिकाए एव विदुषिया हुई है। वर्तमान मे इस परम्परा के 'मुत्तागमे' के सम्पादक मुनि पुप्फ-भिक्खू और विश्वधर्म सम्मेलन के प्रवर्तक प० मुनि सुशीलकुमार जी धर्म-प्रचार मे बहुत अच्छा योगदान दे रहे हैं। बीसवी सदी के दूसरे चरण के बाद इस समुदाय के साधुओ का अधिकांशत: राजस्थान के बाहर भ्रमण होता रहा है।

पूज्य श्री जीवराज जी म० के समान राजस्थान मे दूसरी सन्त-परम्परा पूज्य श्री धन्ना जी म० की रही है। पूज्य श्री धन्ना जी म० राजस्थान स्थित सांचोर मालवाडा के निवासी थे। आपका जन्म पोरवाल वश के बाघामूथा जो वहा के कामदार थे, उनके यहां हुआ। आप बाल्यकाल से ही धार्मिक रुचि वाले थे। सत्सग से आप कुछ वर्ष पोतियाबध की श्रद्धा मे भी रहे। फिर पूज्य श्री धर्मदास जी म० का उपदेश श्रवण कर आपने पूरी तरह ससार त्याग कर मुनि धर्म स्वीकार किया। आपका राजस्थान क्षेत्र मे व्यापक प्रचार रहा। आपके ७ विद्वान शिष्य हुए। उन्होने चतुर्मुखी भ्रमण कर मारवाड के गाव-गाव मे धर्म का सन्देश पहुचाया। आप बडे तपस्वी और रसविजयी सन्त थे। एकान्तर तप के साथ आपने पांचो ही विगय का त्याग कर रक्खा था। स० १७३२ की एक प्रशस्ति से यह प्रमाणित होता है कि आपका मेड़ता के आसपास अच्छा धर्म-प्रचार हो चुका था। यह चतुर्मास भी आपने मेडता मे किया और स० १७८४ मे आपने समाधिपूर्वक देहत्याग भी मेडता मे ही किया।

पूज्य श्री धन्ना जी म० के शिष्यो मे पूज्य श्री भूधर जी म० बहुत ही प्रभावशाली महापुरुष हुए हैं। आप बड़े तपस्वी क्षमाशूर और प्रतापवान थे। आपका जन्म सोजत के मुणोत श्री माणकचन्द जी के यहां हुआ। वर्षों आपने राजकीय सेवा की। पूज्य श्री धन्ना जी म० के सत्संग से प्रतिबोध पाकर आप दीक्षित हुए। आपने देश-प्रदेश मे घूम-घूम कर धर्म का बड़ा उद्योत किया। मरुधरा के सेवाधिकारी भण्डारी खीवसी की प्रेरणा से आप दिल्ली पधारे और वहा आपने शाहजादी के प्राण बचाये। आपके सत्य ज्ञान से प्रभावित हो, भण्डारीजी ने जैन-धर्म स्वीकार किया, और सोजत के कोट के मोहल्ले का स्थान जो मस्जिद मे परिवर्तित था, समाज को धर्म ध्यानार्थ दिलाकर, उसे स्थानक रूप में बदल दिया। आपके अनेको विद्वान शिष्य हुए। उन्होने मारवाड़ के कौने-कौने मे घूमकर जालौर, साचोर, सिवाना, बालोतरा, पाली, पीपाड़, जोधपुर, फलोदी, बीकानेर, थली सर्वत्र साधु-धर्म का प्रभाव जमाया और हजारो लोगों को सत्य-धर्म में दीक्षित किया। आपके ९ शिष्यों मे पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म०, पूज्य श्री कुशला जी म० और पूज्य नारायण जी म० बड़े प्रभावक महापुरुष हुए।

पाच-पाच की तपस्या करते हुए आप मेड़ता चातुर्मास हेतु पधारे और वही पर सं० १८०४ की विजयदशमी के दिन स्वर्गवासी हो गये।

पूज्य श्री भूधर जी म० के पट्टधर पूज्य श्री रघुनाथ जी म० और पूज्य श्री जयमल्ल जी म० सघ का संचालन करने लगे। साधु-साध्वियो के विशाल समुदाय का सुयोग्य रीति से शासन करते हुए चारो भाइय का परिवार खूब फला-फूला।

पूज्य श्री भूधर जी म० के शिष्यो मे श्री रघुनाथ जी म० बड़े भाग्यशाली और प्रतापी थे। आप अमर होने की अभिलाषा लिए चामुण्डा को अपना सिर चढ़ाने जा रहे थे। पर पूज्य श्री भूधर जी के उपदेश से प्रभावित हो, आपने सयम धर्म स्वीकार किया। आपके शासनकाल मे लगभग २२५ साधु-साध्विया श्रुत-चारित्र-धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। गुरुदेव पूज्य श्री भूधर जी म० के स० १८०४ मे स्वर्गगमन के बाद पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म० और पूज्य श्री कुशलजी म० आदि शिष्य एवं शिष्यानुशिष्य हजारो साधु-साध्विया विशेष तत्परता से धर्म व सम्प्रदाय की सेवा मे जुट गये।

पूज्य श्री जयमल जी म० ने गुरुदेव के स्वर्गवासान्तर ही आजीवन शयन—निद्रा लेना छोड़ दिया। पूज्य श्री कुशल जी म० सा० भी गुरु भाई का पूरा साथ देते रहे। विद्वान और प्रभावशाली सन्तों ने पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री चौथमल जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म०, पूज्य श्री महानन्द जी म०, पूज्य श्री रूपचन्द जी म० और पूज्य श्री कुशल जी म० के अलग-अलग सघाड़ा चलने लगे।

पूज्य श्री रघुनाथ जी म० की परम्परा मे पूज्य श्री टोडरमल जी म०, श्री दीपचन्द जी म०, श्री सन्तोष जी म०, श्री रतनमल जी म०, श्री भानमल जी म० और श्री वुद्धमल जी म० अच्छे तपस्वी और विद्वान सन्त हुए। श्री रूपचन्द जी म० की परम्परा में श्री जेठमल जी म० बड़े चर्चा-वादी थे। उन्होने अहमदाबाद मे चर्चाकर 'समकितसार' ग्रन्थ की रचना की। वर्तमान मे इस परम्परा के मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म० सा० विद्यमान हैं।

पूज्य श्री जयमल जी म० सा० की परम्परा मे पूज्य श्री रायचन्द जी म० सा०, श्री आसकरण जी म० सा० आदि अच्छे कवि और विद्वान सन्त हुए है। पूज्य श्री जयमल जी म० परम-विरागी, तपस्वी, कवि एवं विविध शास्त्रो के ज्ञाता थे। वर्तमान मे आपकी परम्परा के स्वामी ब्रजलाल जी म०, श्री मिश्रीलाल जी म० 'मधुकर', श्री जीतमल जी म०, श्री लालचन्द जी म०, आदि संत विद्यमान है।

पूज्य श्री कुशल जी म० की परम्परा में पूज्य श्री गुमानचन्द जी म०, पूज्य श्री रतनचन्द जी म०, पूज्य श्री हमीरमल जी म०, स्वामी कनीराम जी म०, पूज्य श्री कजोड़ीमल जी म०, स्थविर श्री नन्दराम जी म० और तपस्वी श्री बालचन्द जी म० बडे प्रभावशाली सन्त थे।

आचार्य श्री रतनचन्द जी म० के समय जोधपुर नरेश श्री विजयसिंह जी और श्री तखतसिंह जी के राज्यकाल मे मेहता अखैचन्द जी, लखमीचन्द जी दीवान थे, जो पूज्य श्री के परम भक्त थे।

श्री कनीराम जी म० बडे वादलब्धि वाले थे। पूज्य श्री महा तेजस्वी सन्त थे। उनके बाद आचार्य श्री विनयचन्द जी म० बहुश्रुत व परम स्मृतिधर थे। श्री नन्दलाल जी म० भी बडे विद्वान लेखक थे। उनके समय मे पूज्य श्री लाल जी म०, पूज्य श्री माधव मुनि जी म० सा०, पूज्य श्री ज्ञानचन्द जी म० आदि कई विशिष्ट सन्त और महासती श्री वरजू जी, महासती श्री आणंदा जी, महासती श्री महाकंवर जी, महासती श्री झमकू जी, महासती श्री नन्दकवर जी, महासती श्री रंगू जी, महासती श्री रिद्धू जी, महासती श्री केशर जी, महासती श्री छोगा जी, महासती श्री इन्द्रकवर जी, महासती श्री ज्ञानकंवर जी, महासती श्री मल्लाव जी, महासती श्री जडाव जी, महासती श्री अमरकवर जी, महासती श्री धनकवर जी, महासती श्री केशर जी आदि सतिया भी अच्छी प्रभाव-शालिनी हुई हैं।

पूज्य श्री शोभाचन्द जी म०[1] वड़े शान्त सरल एव विनयमूर्ति, निराडम्बरी आचार्य थे। आपके आचार्यकाल मे स्वामी जी श्री चन्दनमलजी म० विद्वान एवं प्रभावशाली सत थे।

पूज्य श्री हरजी म० की मुख्य दो परम्पराए है। एक कोटा समुदाय की परम्परा और दूसरी पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० की परम्परा। कोटा समुदाय की परम्परा के श्री गणेशमल जी म०, ने जो 'खादीवाले' के नाम से प्रसिद्ध हैं, दक्षिण मे विशेष धर्म-प्रचार किया। श्री रामकुमार जी म० के शिष्य श्री रामनिवास जी म० का माधोपुर विशेष विचरण-क्षेत्र रहा है। पूज्य हुकमीचन्द जी

---

१. इस लेख के लेखक आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० इन्ही के शिष्य हैं। आप वर्तमान मे इस परम्परा के आचार्य हैं। आपकी प्रेरणा से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अन्तर्गत स्वाध्यायी संघ नैतिक शिक्षण और धर्म-जागरण का अच्छा कार्य कर रहा है। आपकी ही प्रेरणा से गठित अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति ने जीवन को सयमित, संस्कारी और व्यसन-मुक्त बनाने की दिशा मे सराहनीय कार्य किया है। वर्तमान मे इस परम्परा मे पं० श्री लक्ष्मीचन्द जी म० ने स्थानकवासी परम्परा के कवियों पर अच्छा कार्य किया है। साध्वी श्री मैनासुन्दरी जी ओजस्वी व्याख्याता हैं।
—सम्पादक
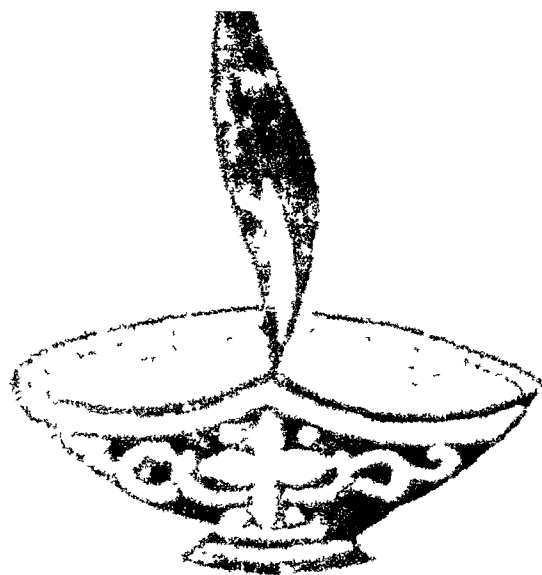
२० | राजस्थान में तेरापंथ सम्प्रदाय का अभ्युदय

मुनि नथमल

विक्रम की उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध (सवत् १८१७) मे एक विचार क्रान्ति घटित हुई। फलस्वरूप आचार्य भिक्षु की प्रतिभा ने तेरापंथ को जन्म दिया। उस समय पूज्य रघुनाथजी स्थानकवासी परम्परा के सुप्रसिद्ध आचार्य थे। सत भीखणजी उनके पास दीक्षित हुए। कुछ विचार-भेद के कारण वे उस परम्परा से मुक्त हो गए। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति, अनासक्ति, विरक्ति, तपस्या और चतुर्मुखी प्रतिभा से जनता आकर्षित हुई। तेरापंथ का उद्भव हो गया।[1]

जैन धर्म की दो मुख्य शाखाएँ—श्वेताम्बर और दिगम्बर पहले से प्रचलित थी। श्वेताम्बर शाखा में संवेगी और स्थानकवासी ये दो प्रशाखाए थी। तेरापथ के उद्भव के बाद तीन प्रशाखाएं हो गई। शाखा-प्रशाखा का होना विकास का स्वाभाविक क्रम है। मेरी दृष्टि मे शतशाखी वृक्ष विशाल और रमणीय होता है। तेरापंथ ने जैन परम्परा की विशालता और रमणीयता में वृद्धि की है। आचार्य भिक्षु ने जिस संगठन की स्थापना की, उसकी अपनी कुछ मौलिक विशेषताए है। उसकी तीन मुख्य आधार शिलाए है—निष्कर्म, हृदय-परिवर्तन, सापेक्षता।

निष्कर्म :

शरीर-धारणा के लिए कर्म की अनिवार्यता है। शुद्ध चेतना के जागरण के लिए निष्कर्म की अनिवार्यता है। कर्म और निष्कर्म का सन्तुलन ही धर्म का मर्म है। कोरा कर्म होता है, वहां स्पर्धा और सघर्ष के स्फुलिंग उछलते हैं। कोरा निष्कर्म होता है, वहां सघ नही होता, परम्परा नही होती। परम्परा, संघ और साधना तीनो की समन्विति के लिए कर्म और निष्कर्म दोनो की समन्विति अपेक्षित है। आचार्य भिक्षु ने स्पर्धा और सघर्ष के वातावरण को देख निष्कर्म को प्रधानता दी। इसीलिए उनके अध्यात्मवादी या निवृत्तिपरक विचारो को समझने में कुछ कठिनाइया

---

१ प्रारम्भ मे श्री भिक्षुगणी अपने साथी साधुओ सहित १३ की सख्या मे थे। राजस्थानी भाषा मे तेरह को तेरा कहा जाता है। इस दृष्टि से यह पंथ तेरापथ नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाद में आचार्य भिक्षु ने इसे आध्यात्मिक अर्थ देते हुए कहा—हे प्रभो! यह तेरा अर्थात् तुम्हारा ही पंथ (रास्ता) है। दूसरा अर्थ उन्होने यह लगाया कि पांच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति, इन तेरह नियमो का जो पालन करे, वह तेरापंथ। —सम्पादक

हुई थी। आचार्य भिक्षु ने आचार्य कुंदकुंद की आध्यात्मिक परम्परा को नए सन्दर्भ में उज्जीवित किया। स्थूल व्यवहार के स्तर पर चलने वाले लोग उसकी गहराई तक नही पहुँच सके। उन्हे यह धारा व्यवहार का उन्मूलन करने वाली लगी। इसलिए उसका विरोध भी हुआ। किन्तु सचाई यह है कि आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ के माध्यम से अध्यात्म की तर्कशुद्ध पद्धति प्रस्तुत की। सुप्रसिद्ध विद्वान डा० सनकरी मुखर्जी ने एक प्रसंग मे कहा—'आचार्य भिक्षु मारवाड़ में जन्मे, यदि वे जर्मनी में जन्मे होते तो उनका दर्शन काट से कम महत्त्व का नहीं होता।'

आचार्य भिक्षु ने निष्कर्म को केवल सैद्धातिक रूप मे ही प्रतिष्ठित नही किया। उसे व्यवस्था के स्तर पर भी प्रतिष्ठा दी। कर्म की बहुलता कामना की बहुलता से जुडी रहती है। निष्काम और निष्कर्म अलग-अलग नही होते। निष्कर्म होगा, वहां निष्काम होगा और निष्काम होगा, वहां निष्कर्म होगा। 'पद के लिए उम्मीदवार नहीं बनूंगा'—यह व्यवस्थासूत्र निष्कर्म और निष्काम दोनो की फलश्रुति है। पद कार्य के लिए है, सेवा के लिए है, प्रतिष्ठा के लिए नहीं है—इस सिद्धान्त के आधार पर तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्री जयाचार्य ने पद के समर्पण की व्यवस्था की। 'अग्रणी साधु-साध्वी चातुर्मास के बाद आचार्य के पास आयें तब पद का समर्पण करदें'। इस व्यवस्था के अनुसार लगभग सवा सौ अग्रणी साधु-साध्वियां आचार्य के पास उपस्थित होते ही इस व्यवस्था को दोहराते है—'मैं, मेरे सहगामी साधु (या साध्वी) तथा पुस्तकें आपके चरणो मे प्रस्तुत हैं, आप जहां रखेंगे, वहीं हम रहेंगे। यह समर्पण या ममकार-विसर्जन की अन्तः प्रेरणा तेरापंथ को नई शक्ति और नई स्फूर्ति प्रदान करती है।

हृदय-परिवर्तन :

आचार्य भिक्षु ने यह स्वीकार किया कि साध्य और साधन दोनो की शुद्धि हुए बिना धर्म नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त की व्याख्या मे हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त विकसित हुआ। हृदय-परिवर्तन के लिए विराट् प्रेम का होना जरूरी है। जिसके हृदय मे क्रूरता छिपी रहती है, वह हृदय-परिवर्तन करने मे सफल नहीं होता।

गोकुलदास नानजी भाई गांधी ने लिखा है कि आचार्य भिक्षु का साध्य-साधन की शुद्धि और हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त बीज श्रीमद्रायचन्द्र के पास पहुंचा और श्रीमद् के माध्यम से वह महात्मा गांधी तक पहुंचा। मेरी दृष्टि मे साधन शुद्धि पर आचार्य भिक्षु और महात्मा गांधी ने जितना विशद चिन्तन किया है, उतना अ [illegible] चिन्तकों ने नहीं किया।

आचार्य भिक्षु ने मर्यादा का विधि-पत्र लिख साधुओं की स्वीकृति के लिए उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने कहा—'जिन्हें इन मर्यादाओं मे विश्वास हो, वे इन विधि-पत्र को अपनी स्वीकृति दें और जिन्हें विश्वास न हो, वे सकोचवश इसे स्वीकार न करें।' यह हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त सर्वत्र मान्यता प्राप्त कर चुका है। वैचारिक परिवर्तन राजनीतिक परिवर्तन से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

[illegible] :

जैन धर्म में [illegible] साधना की पद्धति बहुत पहले से मान्य है। इसीलिये जैन परम्परा [illegible] बहुत महत्त्व रहा है। आचार्य भिक्षु ने इस [illegible]

आधार पर संघ की व्यवस्था की। तेरापंथ की साधु-संस्था ने सेवा के क्षेत्र से अनेक कीर्तिमान स्थापित किये। समता और सापेक्षता एक-दूसरे के पूरक हैं। तेरापंथ ने अपनी व्यवस्था मे समता को इतना विकसित किया कि उसे जानकर श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा था—'तेरापंथ की संघ-व्यवस्था में सवा सोलह आना समाजवाद है।' धर्म का मूल समता है। भगवान् महावीर ने इसे सर्वाधिक महत्त्व दिया था। यह कटु सत्य है कि श्रावक समाज ने इस व्यवस्था का अनुगमन नहीं किया।

आचार्य भिक्षु की वाणी अनुभव की वाणी थी। उन्होने अनेक ग्रन्थ लिखे। वे राजस्थानी साहित्य के गौरव ग्रन्थ है। उनके चतुर्थ उत्तराधिकारी जयाचार्य ने लाखों पद्य लिखे। उनका गद्य साहित्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। आचार्य तुलसी और उनके शिष्य मण्डल ने अनेक रचनाए की है। उन्होने साहित्य जगत् को प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी में अनेक ग्रंथ दिये है। एक साथ इतनी बड़ी संख्या मे साधु-साध्वियो की साहित्यिक प्रतिभा का विकसित होना कोई नियति का योग ही है।

अणुव्रत आन्दोलन :

आचार्य भिक्षु ने धर्म की व्यापकता स्वीकार की। भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर उन्होने कहा—धर्म वेशातीत और सम्प्रदायातीत है। इस स्वीकृति ने तेरापंथ के वर्तमान नवम् आचार्य,[1] आचार्य तुलसी को अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तन की प्रेरणा दी। अणुव्रत आन्दोलन किसी सम्प्रदाय और उपासना पद्धति से आबद्ध नही है। वह शुद्ध अर्थ मे धर्म की आचार-सहिता है। वह सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। इस आन्दोलन ने धर्म-समन्वय के मच की भूमिका निभाई है और सब सम्प्रदायों के लोगो ने इसे अपनाया है।

अनुशासन का प्रतीक मर्यादा महोत्सव :

तेरापंथ के आचार्य अनुशासन को अत्यधिक महत्त्व देते रहे है। उनके अनुसार अनुशासन-युक्त सघ ही वास्तव में संघ होता है। जो अनुशासनयुक्त नही होता, वह कोरा अस्थियो का ढेर मात्र होता है। तेरापथ के श्रमण-श्रमणी संघ ने भी अपनी अनुशासन प्रियता के द्वारा सघ को शक्तिशाली बनाया है। प्रति वर्ष चातुर्मास के बाद आचार्य के पास आना, मर्यादाओं का पुनरावर्तन करना और आचार्य के निर्देशानुसार पुन: विहार करना—समर्पण के सजीव चित्र है, जो भाग्य से ही किसी विरल संगठन की भित्ति पर आलेखित होते हैं। तेरापंथ विक्रम सवत् १८२० से प्रति वर्ष मर्यादा का महोत्सव मना रहा है।

अध्यात्म ज्योति :

अनुशासन यंत्र है। वह व्यक्ति की चेतना को नियत्रित कर अन्तर की ज्योति को आवृत्त कर देता है। व्यवहार की भूमिका मे उसका मूल्य हो सकता है पर सत्य की भूमिका पर उसे मूल्य

---

१. नौ आचार्यो का क्रम इस प्रकार है—

१. श्री भिक्षुगणी, २. श्री भारमल स्वामी, ३. श्री रायचन्द स्वामी, ४. श्री जीतमल स्वामी, (जयाचार्य) ५. श्री मघवागणी, ६. श्री माणकगणी, ७. श्री डालगणी, ८. श्री कालूगणी, ९. श्री तुलसीगणी

—सम्पादक

[illegible] नहीं होता। वह मुक्त होता है अन्तर्मुखी वृत्ति का, जो अनुशासन को आंतरिकता प्रदान करती है। आचार्य श्री तुलसी ने ध्यानात्मक साधना (या योग साधना) के विकास की दिशा में कुछ विशिष्ट प्रयत्न किए हैं। जैन परम्परा में ध्यान के नये उन्मेष लाने में, ये प्रयत्न बहुत मूल्यवान होंगे।

कला-कौशल :

'सत्य' हमारे अन्तर में होता है, 'शिवं' हमारे परिपार्श्व में होता है और 'सुन्दर' हमारे बाहर में अभिव्यक्त होता है। कोई भी संगठन परिपूर्ण नहीं होता। विश्व की कोई भी रचना पूर्ण नहीं होती। अपूर्णता में पूर्णता की दिशा में बढ़ने का प्रयत्न ही 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की उपलब्धि है। तेरापंथ के साधु-साध्वी समाज ने कला के क्षेत्र में विशेष प्रगति की है। सूक्ष्माक्षर की लिपि, सिलाई, रंगाई, धर्मोपकरणों का निर्माण—इन्हें आध्यात्मिक मूल्य न दिया जाय, फिर भी एकाग्रता और कौशल का मूल्य [illegible] किया जा सकता।

हमने साधना के पक्ष में आध्यात्मिक और संगठन के पक्ष में व्यावहारिक जीवन जीना स्वीकार किया है, इसलिए हमारे संघ ने दोनों क्षेत्रों में समन्वित गति की है। तेरापंथ का विकास राजस्थान के लिए गौरव और जैन परम्परा के लिये महत्त्वानुभूति का विषय है। कोई भी तटस्थ इतिहासकार इस वास्तविकता को स्वीकृति दिये बिना रह नहीं सकता।

तृतीय खण्ड
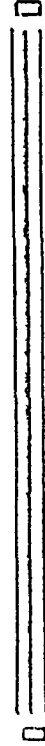
राजस्थान का सांस्कृतिक विकास
और
जैनधर्मानुयायी

तृतीय खण्ड
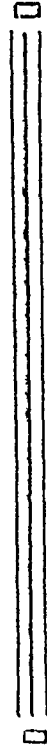
राजस्थान का सांस्कृतिक विकास
और
जैनधर्मानुयायी

२१ | राजस्थान में जैन-धर्म की सांस्कृतिक भूमिका

श्री रावत सारस्वत

नया चिन्तन : नया बोध :

ब्राह्मण धर्म की रूढ़िग्रस्तता ने जब दर्शन और धर्म के क्षेत्र में नये चिन्तन को प्रेरणा दी तब सागर मथन से उद्भूत रत्नों की भाति भ० महावीर का तत्व चिन्तन एक क्रांतिकारी विचार के रूप मे प्रकट हुआ जिसने भारतीय समाज की गुणग्राह्यता को आकृष्ट किया और समाज की वरिष्टतम स्थितियो के विभिन्न समुदाय उस नव्य धारा मे दीक्षित हुए।

प्रायः इसी समय से राजस्थान मे जैन-धर्म का प्रसार रहा है। कालक्रम से राजस्थान की ऐतिहासिक घडियों के साथ जैन धर्मावलम्बियों के सम्बन्ध खोजने के प्रयत्न किये जा सकते हैं। पर गुप्तकाल से पहिले की ऐतिहासिक सामग्री अत्यल्प मात्रा मे मिलने के कारण ऐसे प्रयास मे विशेष सफलता मिलना दुष्कर है फिर भी लगभग आठवी—नवी शताब्दी से इस निरंतर साहचर्य के साक्ष्य प्रचुर मात्रा मे प्राप्य है।

प्राच्य ग्रंथागार :

जैन-धर्म के सास्कृतिक वैभव की स्थूल सिद्धियाँ तो हमारे वे प्राच्य ग्रंथागार हैं, जहाँ प्राकृतिक और मानवी दोनो प्रकार के आक्रमणो से सुरक्षित कर, जैन पडितो ने उपाश्रयो, मन्दिरो आदि मे इस अति महत्वपूर्ण साहित्य को छिपाये और सभाले रखा। इसके साथ ही वे जैन मूर्तियाँ, देवालय और धातु तथा शिलाओ पर उत्कीर्ण काल लिपियां भी है जो राजस्थान के इतिहास और संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। विशेषतः जैसलमेर, जालौर, बीकानेर, आमेर और अन्य अनेक प्राचीन नगरो, कस्बो तथा गाँवों मे—जहाँ-जहाँ किसी श्रद्धालु जैन-धर्मी का निवास था अथवा किसी विद्या-व्यसनी जैन मुनि का विहार-स्थल रहा, वहाँ-वहाँ इस विशाल हस्तलिखित भण्डार की रत्नावलियाँ

सुरक्षित रूप से प्राप्य हैं। सच पूछें तो शायद ही कोई ऐसा जैनधर्मियों का गात्र रहा हो जहाँ कुछ-न-कुछ मात्रा मे जैन साहित्य और जैन संस्कृति के अन्य उपादान नही प्राप्य हों।

देवमूर्तियां और कलाप्रियता :

आवू, राणकपुर, नाकोड़ाजी, ऋषभदेव, श्रीमहावीरजी, सांगानेर, आमेर, राजोरगढ़, जयपुर, लाडनूं, वीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, जालोर आदि अनेकानेक ऐतिहासिक स्थलों पर और कालोपेक्षित सहस्रो खण्डहरों मे जैन देवालय और देव मूर्तिया प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यह वडी प्रसन्नता का विपर्य है कि जहाँ-जहाँ जैन देवालय हैं उन्हे विधिपूर्वक और रख-रखाव से संभाला और सुरक्षित किया गया है। इसी प्रकार अनगिनत देवमूर्तियां भी प्रतिष्ठा प्राप्त की हुई पूजित और अर्चित है।

प्रायः सुनने और देखने मे आता है कि खुदाई आदि के समय भूमिगत जैन मूर्तियाँ प्रकट होती हैं और उन्हे देवोचित प्रतिष्ठा के साथ देवालयों में समारोह पूर्वक आसीन किया जाता है। स्पष्ट है कि इन मूर्तियो को भावनाशील एवं श्रद्धालु धर्मावलम्बियों ने आततायियो के भय से, क्षति-ग्रस्त होने से वचाने के उद्देश्य से, स्वय भूमिगत किया होगा। अन्य देवालयों मे विध्वस्त और विकृत मूर्तियो को देखने से इस धारणा मे संदेह का कोई भ्रम नहीं रह पाता।

ग्रंथागारो, मूर्तियो और देव भवनो के सगठन और निर्माण के साथ-साथ जैन धर्मावलम्बियो ने अपने भौतिक वल-वैभव और कलाप्रेम के कारण वड़े-वडे भव्य भवन, उद्यान, तड़ाग, बावड़िया और अनेक अन्य विहार-स्थल भी खडे किए। जैनेतर साहित्य और कलाओं को भी उनका प्रश्रय मिला— ऐसे दृष्टान्त कम मात्रा मे नही है।

धर्म-श्रवण और तीर्थयात्रा :

एक और उल्लेखनीय तथा अति महत्त्वपूर्ण पक्ष जीवन पद्धति से सम्बन्धित है, जिसमे जैनाचार्यों के नियमित धर्मोपदेशो के प्रभाव से श्रावक समाज और सभी अवस्था के नर-नारियों का तप-नियम-सयम की प्रक्रिया के साथ गतिशील होना प्रमुख है। जिस समाज मे वीतराग व्यक्तियो का सम्मान और उनके ज्ञान एवं अनुभव से लाभान्वित होने की भावना होती है, वह समाज कभी भी अध.पतन के कगारो की ओर नही जा सकता। यही कारण है कि भौतिक प्राप्तियो मे लिप्त रहते हुए भी जैन धर्मावलम्वी आज भी अपेक्षाकृत रूप से अधिक वैभव सम्पन्न और सुसंस्कृत तथा सुखी है। इस सारी स्थिति के पीछे परोक्ष रूप से इस प्रवचन-श्रवण और साधुओ के प्रति सम्मान की परम्परा भी एक मुख्य कारण है। मनुष्य, जो कुछ निरंतर सुनता है, पढ़ता है, वही उसके मस्तिष्क के अर्द्ध-चैतन्य क्षेत्रो मे समाकर, उसे अज्ञात रूप से प्रेरित करता है। इसलिए सुनने और पढ़ने का महत्त्व चिन्तन-मनन तथा क्रिया-प्रक्रिया की सारी गलियो में व्याप्त हो जाता है।

ऋषि, मुनि एव देव दर्शनार्थ तीर्थ यात्रा को जो धार्मिक महत्त्व प्रायः सभी धर्मों मे दिया

गया है, उसकी परम्परा में जैन-धर्म भी पीछे नही है। सैकड़ों वर्षों के उपाख्यानो तथा यात्रा-विवरणों से इन जैन यात्रा संघो की जानकारी मिलती है। इन साहसपूर्ण यात्राओं के वर्णन बड़े मनोरंजक हैं।

साहित्य, संगीत और ज्ञान-विज्ञान :

लोक भाषा, साहित्य और संगीत को प्रोत्साहित और प्रवर्द्धित करने का सराहनीय कार्य भी जैनों के द्वारा सम्पन्न हुआ। धार्मिक प्रवचनो को लोक तक पहुचाने के लिए लोक द्वारा सहज बोधगम्य भाषा का माध्यम अपनाने की व्यावहारिकता जैन धर्माचार्यों की सूझ थी। संस्कृत की जकड़ी हुई रूढियो मे फँसे पंडित अपने ज्ञान को हवा महलो मे ही समेट कर उसे पांडित्य प्रदर्शन और साधन सुविधा सम्पन्न लोगों तक ही सीमित बना पाये। संस्कृत-ज्ञान को जन साधारण तक पहुचाने के लिए भाषा सरिता की नई धाराओ में अवगाहन नही किया गया। जैन आचार्यों ने न केवल लोक भाषा को अपनाया और उसमे प्रवचन व साहित्य सृजन किया, अपितु उन्होने लोक साहित्य की सामग्री और लोक गीतों की धुनो को आधार बनाकर भी हित-साधन किया। ऐसे भूले-बिसरे लोक गीतों की हजारो धुने जैन साहित्य मे ढालों के रूप में सुरक्षित हो गई है। इन सबसे हमारी सास्कृतिक परम्परा के पद चिह्न विगत काल के अंधकार मे भी सरलता से पहिचाने जा सकते हैं।

साहित्येतर विद्याओं में भी आयुर्वेद, ज्योतिष, तत्र-मंत्र, इतिहास, सगीत, भूगोल, भाषा तथा अन्य अनेक विषय भी जैन विद्वानो द्वारा समुन्नत और प्रबुद्ध होते आये हैं। तत्कालीन समाजों के अविच्छिन्न और उपादेय घटको के रूप मे जैन-धर्म के विविध समुदाय सदैव अपना योगदान करते रहे हैं। उनकी इसी सक्रिय रुचि का परिणाम है कि विभिन्न विषयो मे उनकी गति रहती आई है।

साक्षरता और ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के पुनीत कार्य मे तो शायद ही कोई दूसरा वर्ग हो जिसने इतनी सेवायें की हों। नियमित स्वाध्याय, हस्तलिखित पुस्तको की प्रतियो का लेखन, अध्यापन, प्रवचन आदि बातें इस दिशा मे अनुकरणीय कही जा सकती है जो सैकड़ों वर्षों से बिना व्यवधान के चली आई हैं।

राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रसमृद्धि :

जैन समाज के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति बहुसंख्यक भूतपूर्व रियासतों मे समय-समय पर दीवानगी तथा अन्य उच्च एवं महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे हैं। उन्होने तत्कालीन नरेशों को अपने बुद्धि-कौशल एवं व्यवहार चातुर्य से राज्य-संचालन मे मदद दी है। राज्य के द्रव्य संबधी संकटो में तो उनका सहयोग सदैव सराहनीय रहा है। इसके साथ ही तत्कालीन धर्माचार्यों ने भी देशी राज्यों के हित मे मुगल सम्राटो तक को प्रभावित किया है, जो एक सर्वज्ञात तथ्य है। राजपूतो के ही मुख्य थोक से धर्म परिवर्तित कर जैन बनने वाले अनेक जैन परिवारों ने युद्धो में भी अपना कौशल दिखाया है और अनेक लड़ाइयो मे विजय प्राप्त की है।

इस प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जैन समाज का योगदान उल्लेखनीय कहा जा सकता है। जहाँ तक उद्योग-व्यवसाय का संबंध है, यह तो उनकी बपौती ही रही है। बहुसंख्यक जैनों के

कारण देशी राज्यो में समृद्धि का दौर दौरा बना रहा है। सोने-चांदी और जवाहरात का धंधा करने वाले धनी सेठ प्रायः इसी समाज के रहते आये हैं।

सांस्कृतिक सौष्ठव :
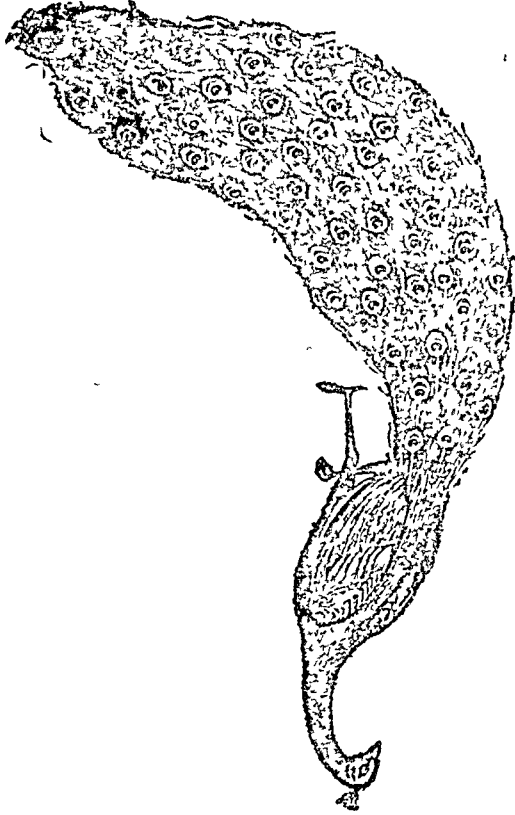
जीवन के शाश्वत सत्य को पहिचानने और उसे काम मे, व्यवहार में, वचन मे और लक्ष्यो में समादृत और समाहित करते रहने का जो कार्य जैन-धर्म ने निस्पादित किया है, वह किसी भी धर्म के लिए एक आदर्श है। राजस्थान की धरती की गंध लिए, यहा के सांस्कृतिक सौष्ठव की सभी विशेषताओ के साथ जैन-धर्म ने राजस्थान मे एक ऐसी सांस्कृतिक भूमिका का निर्वाह किया है, जो हर युग मे चिरस्मरणीय रहेगी।

१

पुरातत्त्व और कला

२२ | जैन मूर्तिकला

डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवाल

पिछले २५ वर्षों मे पुरातात्विक शोध, खोज एवं खनन द्वारा राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। बीकानेर क्षेत्र मे सिन्धु सभ्यता से सम्बद्ध कई स्थान खोजे गये। इनमे कालीबंगा के प्राचीन टीले से प्राप्त मूर्तियां बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युग की कोई जैन प्रतिमा अभी तक नही मिली है। यह स्थिति बाद में भी दिखाई देती है। अजमेर क्षेत्र मे "बरली" के ईसा पूर्व के शिलालेख के विषय मे कुछ विद्वान यह धारणा रखते है कि यह भगवान् महावीर के निर्वाण के ८४ वर्ष बाद का था जबकि कुछ लोगो की यह धारणा है कि इसमे ८४ खम्भों वाले भवन का उल्लेख किया गया है।

इसके बाद की शुंग-कुषाण या गुप्तयुगीन कोई जैन मूर्ति राजस्थान मे कही भी उपलब्ध नही हुई है। इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है कि उस समय इस प्रदेश मे प्रतिमाये अविद्यमान थी। सम्भवतः भावी शोध-खोज द्वारा इस दिशा मे कुछ प्रकाश पड सके।

उदयपुर जिले में "जगत" नामक ग्राम से हमे शिर विहीन मातृका की एक मूर्ति मिली थी जिसे उदयपुर संग्रहालय मे तुरन्त सुरक्षित कर दिया गया। यहा मातृका के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है व बाएं हाथ से शिशु गोद मे पकड़ रखा है। ये दोनो अभिप्राय जैन देवी अम्बिका मे देखने को मिलते हैं यद्यपि जगत ग्राम की इस मूर्ति मे कोई ऐसा चिन्ह उपलब्ध नही है जिसके कारण इसे जैन संज्ञा दी जा सके। यह मूर्ति छठी शताब्दी ईसवी मे बनी होगी।

धातु मूर्तिकला :

गुजरात से इसी समय की कतिपय जैन धातु प्रतिमायें मिली हे जो बड़ोदा संग्रहालय की शोभा बढा रही है। कोई आश्चर्य नही कि निकट भविष्य मे राजस्थान से भी तत्कालीन प्रतिमाये मिल जावें। तारानाथ ने मरु प्रदेश के कलाविद "शृंगधर" का उल्लेख किया है जो महाराज शीलादित्य का आश्रित था। इस श्रुति के आधार पर पश्चिम राजस्थान मे कला-कौशल की जानकारी मिलती है।

सिरोही जिले मे 'वसन्तगढ़-पिण्डवाडा' नाम के स्थान पर कई जैन धातु प्रतिमाये मिली थी जो भारतीय शिल्प की अनुपम थाती सिद्ध हो रही है। इनमे शारदा सरस्वती की मूर्ति बहुत भव्य है जहां देवी के मुकुट के मध्य मे सूर्य का चक्र बना है व बाजू मे मकराकृतियां लम्बी नाक, चौडा माथा, मोटे होठ, लम्बी आखे मूर्ति की शोभा बढाने मे पूर्णतया समर्थ हैं। यह जैन मूर्ति अकोटा से प्राप्त सरस्वती प्रतिमा की तुलना मे किसी भी प्रकार कम आकर्षक नही है। कला सौष्ठव की दृष्टि से यह ईसा की सांतवी शती मे बनी होगी।

सम्वत् एवं अभिलेख सहित अन्य जिनाकृति तो बहुत अलौकिक है। यह भी वसतगढ से मिली थी। कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडे हुये जिन भगवान की चरण चौकी पर सम्वत् ७४४ का लेख खुदा है जिसमे यह स्पष्ट अंकित है कि इन दो पवित्र जिनाकृतियो के निर्माण का श्रेय शिल्पी 'शिव-नाग' को प्राप्त है जो साक्षात् पितामह अर्थात् ब्रह्मा समान कुशल था। इसी के साथ एक अन्य मूर्ति मिली है जो कायोत्सर्गमुद्रा स्थित भगवान आदिनाथ की है जिनके सिर पर घुंघराले बाल है जो कन्धो पर लटक रहे है। ये दोनो धातु मूर्तिया ईसा की ७वी शती की कला की साक्षी हैं व राजस्थान के जैन कला कौशल का बखान करती हैं। इस वर्ग की अन्य प्रतिमाये आज भी सिरोही मे सुरक्षित है।

राजस्थान मे जैन धातु मूर्तिकला को पर्याप्त प्रश्रय मिला। पूर्व मध्य, मध्य एव उत्तर मध्य युग मे तो बहुत सी जैन मूर्तियां बनी जो आज राजस्थान के कोने-कोने मे पूजान्तर्गत है। अहाड, बीकानेर व जोधपुर के राजकीय संग्रहालयो मे सुरक्षित जैन मूर्तिया भी इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं। इन प्रारम्भिक मूर्तियों मे चौकी पर ग्रह सख्या आठ होती थी जो कालान्तर मे 'नौ' होने लगी। ईसा की १५वी शती मे डूंगरपुर नगर का तो जैन मूर्ति निर्माण मे बहुत योगदान रहा। अचलगढ दुर्ग पर इस समय की बनी कई विशाल धातु मूर्तियां पूजान्तर्गत है जिनके शिलालेखो द्वारा उनके शिल्पी बन्धुओ का भी उल्लेख मिलता है।

जोधपुर नगर से ३४ मील दूर 'ओसिया' ग्राम के प्राचीन मन्दिर सर्व प्रख्यात हैं। इनमे ८वी शती ईसवी का महावीर मन्दिर प्रतिहार 'वत्सराज' के राज्य काल मे बना था। इसके बाह्य भाग की प्रतिमायें पर्याप्त मात्रा मे बची हे जिनमे एक मूर्ति 'चक्रेश्वरी' की भी है। अभी हाल मे जीर्णोद्धार कार्य द्वारा यहा कई जिनाकृतिया खुदाई से निकली हैं जो स्थानिक जैन विद्यालय के स्टोर मे रखी हैं। इनमे दो जीवत स्वामी की हें।

गत वर्ष भरतपुर नगर के पास "कुम्हेर" नामक ग्राम से भी चक्रेश्वरी की भव्य मूर्ति मिली थी जो वहा तहसील कार्यालय मे सुरक्षित करदी गई हे। जोधपुर मे ही 'घपियाला' ग्राम का नाम सम्वत् ९१८ के शिलालेख मे 'रोहिंसकूत' मिलता हे। यहा 'खोखी माता की साल' का निर्माण प्रतिहार नरेश द्वारा कराया गया था। इसकी ताक मे प्राकृत भाषा का महत्त्वपूर्ण शिलालेख जड़ा है जिसके एक ओर सिंहारूढ अम्बिका की आकृति बनी हे। राजस्थान की अम्बिका देवी मूर्तियो मे यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार डीडवाना से प्राप्त काले पत्थर की बनी विष्णु मूर्ति भी उल्लेखनीय है जहा चतुर्बाहु देव पद्मासन मे विराजमान हैं उनके नीचे के दोनो हाथों में वनमाला है। ऐसी ही एक

प्रतिहार युगीन मूर्ति 'आबानेरी' स्थल पर भी पडी है। यहां विष्णु के हाथो मे शंख, चक्र, गदा व पद्म का सर्वथा अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन विचार धारा के प्रभाव से विष्णु की ऐसी ध्यानस्थ मूर्तियां राजस्थान मे बनाई गई थी जो हर वर्ग के अनुयायियो द्वारा पूजी जाती हो। यह सब समन्वय का सूचक है। मारवाड़ के एक मध्यकालीन शिलालेख मे 'ब्रह्म-श्रीधर-शकरा. ये जिन जगति विश्रुत' द्वारा भी यह स्पष्ट है। यहां ब्रह्मा विष्णु व महेश को 'जिन' संज्ञा प्रदान की गई है। विविधता मे एकता का भाव यहां स्पष्टरूपेण झलकता है।

सच्चिका देवी :

इसी श्रृंखला मे यह भी स्मरणीय है कि ईसा की १२वी शती मे राजस्थान के जैन बन्धु महिषमर्दिनी दुर्गा को 'सच्चिका' देवी के नाम से पूजते थे। कुछ वर्ष पूर्व हमे जोधपुर संग्रहालय मे ऐसी संगमरमर की मूर्ति देखने को मिली थी जिसकी चौकी पर सम्वत् १२३४ का लेख खुदा था। इसमे देवी महिषमर्दिनी को सच्चिका सम्बोधित कर यह बताया गया कि इसकी प्रतिष्ठा एक जैन साध्वी द्वारा की गई थी। 'ओसिया' ग्राम के प्रख्यात सचियामाता मन्दिर के गर्भगृह मे आज भी महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति जैन बन्धुओ द्वारा पूज्य है। इसके पीछे की ताको मे चामुण्डा-चण्डी-भैरव-शीतला की मूर्तियो के अतिरिक्त प्रधान ताक मे महिषमर्दिनी की प्रतिमा जड़ी है, जिसके नीचे सम्वत् १२३७ का शिलालेख यह बताता है कि देवी का नाम 'सच्चिका' था। उपकेश गच्छ पट्टावलि नामक ग्रन्थ मे भी इसका सविस्तार वर्णन उपलब्ध है कि किस प्रकार जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि ने हिंस देवी को 'सच्चिका' सज्ञा प्रदान कर जैन धर्म की ओर प्रेरित किया था। 'लोदरवा' (जैसलमेर) के जैन मन्दिर मे पूजान्तर्गत एक गणेश प्रतिमा की चौकी के शिलालेख मे भी सच्चिका-पूजन का उल्लेख किया गया है। इस दृष्टि से ओसिया व जोधपुर संग्रहालय की सच्चिका की प्रतिमाये भारतीय शिल्प की महत्त्वपूर्ण निधियां है। ओसियां का सचियामाता मन्दिर तो ओसवाल बन्धुओ का इष्ट स्थल है।

कला-सौष्ठव :

जैन कला सौष्ठव की दृष्टि से मारवाड़ मे 'धाणाराव' से ३ मील दूरस्थ 'राता महावीर' का १०वी शती का जिनालय विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इसके वाह्य भागो पर जड़ी हुई विद्यादेवी व अन्य जैन मूर्तिया देलवाडा, आबू की तुलना मे किसी भी प्रकार कम आकर्षक नही है। आबू के मन्दिर मे एक शिला पर दो शिल्पी सरस्वती शारदा के दोनो ओर नमस्कार मुद्रा मे खड़े दिखाई देते है। दोनो ही सरस्वती के अमर उपासक थे। इन कुशल कारीगरो द्वारा ही राजस्थान मे आबू के मन्दिर का निर्माण हुआ था। दूसरी ओर पाली जिले मे १५वी शती मे महाराणा कुम्भा के राज्य-काल मे चतुर्मुख प्रासाद का निर्माण राणकपुर मे हुआ था जो आज भी जैन शिल्प का अनुपम भण्डार है।

राजस्थान के भरतपुर क्षेत्र से 'सर्वतोभद्र' आदिनाथ की दिगम्बर मूर्ति विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इसमे 'समवसरण-विधि' के अनुपम जटाधारी आदिनाथ भगवान को ही चारो ओर प्रदर्शित किया है जो राजस्थान की पूर्व मध्ययुगीन कला की महत्त्वपूर्ण देन है। अब यह मूर्ति भरतपुर सग्रहालय मे सुरक्षित है। इसी प्रकार प्रताप सग्रहालय उदयपुर की कुबेर मूर्ति महत्त्वपूर्ण है जो ईसा की ८वी ९वी शती की कृति है। यह 'पारेवा' पत्थर को उकेर कर बनाई गई है। यहा कुम्भोदर कुबेर

के पीछे गजवाहन विद्यमान है । उनके दाहिने हाथ मे बिजौरी फल व बाये मे नकुलाकृति वाली रुपयो की थैली है जिसे नोली कहा जाता है । कुबेर के शीर्ष मुकुट के बीच लघु जिनाकृति व उसके भी ऊपर एक अन्य लघ्वाकृति से इस मूर्ति के जैनभाव की पुष्टि होती है । यहां शिल्पी ने इन जिनाकृतियो को उकेर कर इसे जैन बन्धुओं के लिए इष्ट रूप मे प्रस्तुत किया है जो राजस्थानी जैन मूर्तिकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

नागौर जिले में 'खीवसर' से प्राप्त व जोधपुर संग्रहालय मे सुरक्षित एक विशालकाय प्रस्तर मूर्ति तो अलौकिक है । यह ईसा की १०वी ११वी शती में बनी थी । यहां भगवान महावीर को सिर पर मुकुट व शरीर पर अन्य आभूषणो सहित दर्शाया गया है जो उनके 'जीवतस्वामी' स्वरूप का प्रतीक है । इस आशय की एक पांचवी-छठी शती की धातु मूर्ति बड़ौदा संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है। जैन साहित्य मे इस वर्ग की प्रतिमाओ को जीवंतस्वामी कहा गया है । ऐसी एक प्रस्तर मूर्ति सिरोही के जिनालय मे गर्भगृह के बाहर विद्यमान है व एक धातु मूर्ति जोधपुर नगर मे पूजान्तर्गत है । पश्चिम भारत की ये विशिष्ट मूर्तिया जैन शिल्प की महत्त्वपूर्ण निधिया है । ऐसी कुछ मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर मे भी रखी है ।

इन फुटकर उदाहरणो द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानो से प्राप्त जैन मूर्तिया भारतीय कला के क्षेत्र मे कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है । निश्चय ही भावी शोध-खोज द्वारा इस दिशा मे उत्तरोत्तर नवीन तथ्यों के प्रकाश में आने की पूर्ण सम्भावना है। राजस्थान के सैकड़ो जैन मन्दिरों में तो भारतीय कला की असख्य कृतिया सरक्षित की जा चुकी हैं जो कलाविदो के आकर्षण का केन्द्र बन गई हैं ।

२३ | जैन मन्दिर : शिल्प और स्थापत्य

●

श्री पूर्णचन्द्र जैन

सांस्कृतिक विरासत :

विश्व के इतिहास मे भारत का बहुत ऊंचा व बड़ा स्थान है। वह उसकी प्राचीनता से अधिक, विश्व-मानव को उसने जो बड़ी देन दी, उस कारण है। अभी तक जिसे हम दो-अढ़ाई हजार वर्ष का इतिहाससम्मत काल मानते थे, मोहनजोदड़ो व हरप्पा की खुदाई ने उसे पांच-सात हजार वर्ष प्राचीन तो सिद्ध कर दिया है। एक लेखक के शब्दों में अब हम भी सुमेर, अवकाद और वेबिलोनियनो के मुकाबले मे अपने खण्डहरों की बुजुर्गी से भी अपना बड़प्पन प्रमाणित कर सकते है। कहना नही होगा कि भारतीय संस्कृति के इतिहास मे उसकी तीन—जैन, वैदिक और बौद्ध धाराओ का ही बड़ा भाग है तथा इस दृष्टि से जैन-संस्कृति विश्व के इतिहास में अपनी विशेषता रखती है।

भारतीय धर्म और सस्कृति की परम्परा मे श्रमण-संस्कृति का अपनी प्राचीनता, अपने विशिष्ट तत्वज्ञान तथा दर्शन और अपनी कलाप्रियता तथा साहित्यिक अस्मिता, राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र के लिए की गई सेवाओ आदि के कारण विशेष महत्व का गौरवमय स्थान है। हिंसा, काम आदि मानवीय मानसिक व चित्त की दुर्बलताओं पर तप, साधना और सयम द्वारा विजय पाने के सिद्धांत पर आधारित जैन सस्कृति की भारतीय सस्कृति पर बड़ी छाप है। इसका पुनर्जीवन और पुनरोदय पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी द्वारा पूर्वी भारत मे मगध व बिहार मे हुआ। लेकिन वाद मे इसका विकासक्षेत्र मुख्यतः पश्चिमी ओर दक्षिण भारत रहा। मुसलमान काल मे और उससे पूर्व भी पुष्प (पुष्य) मित्र जैसे राजाओं की धर्मान्धता तथा शंकराचार्य जैसे विद्वानो की एकांग दृष्टि और कट्टरता के कारण जैनों को स्थानान्तरण करना पड़ा। जैन जहा-जहा और जब-जब पहुंचे वहां-वहां और उस-उस समय मे उन्होने अपनी शिल्प, स्थापत्य, चित्र, साहित्यसृजन आदि सम्वन्धी कला-भावना, धर्माराधना तथा सेवा और तन, मन, धन की उत्सर्ग भावना का विशेष उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया है। गहराई से देखेगे तो भारतीय शिल्प, स्थापत्य, भारतीय चित्रकला, भारतीय वाङ्मय और साहित्य मे जैन-वीरो और कर्म-वीरो की बहुत बड़ी देन रही है, और जैन संस्कृति की शिल्प, स्थापत्य, साहित्य आदि की सामग्री के इतिहास से ही भारतीय संस्कृति का एक शृंखलाबद्ध इतिहास बन सकता है। इस ओर कम दृष्टि गई है। इस कारण भी भारत का इतिहास क्रमवद्ध नही-सा मिल रहा है।

पश्चिम भारत मे वर्तमान मालवा प्रदेश, गुजरात और राजस्थान जैन-धर्म और सस्कृति के विस्तार-विकास के क्षेत्र रहे है। राजस्थान मे मुख्यत: मारवाड़, मेवाड, मेवात, हाडौती आदि क्षेत्र है। मारवाड मे जोधपुर व बीकानेर के उत्तरी भाग जागल प्रदेश आदि शामिल है जिनकी राजधानी कभी अहिच्छत्रपुर (वर्तमान नागौर) थी। इसीके पास सपादलक्ष क्षेत्र था। आज का जैसलमेर, माड, वल्ल व भवाणी नाम से प्रसिद्ध था। मेवाड़ को मेदपाट तथा उसके कुछ हिस्से व श्रीमाल-भिन्नमाल आदि को प्राग्वाट कहते थे। चित्तौड़ या चित्रकूट के आसपास का क्षेत्र शिवी कहलाता था, जिसकी राजधानी माध्यमिका थी। अलवर आदि क्षेत्र मेवात मे थे जिसको उत्तरीय कुरू भी कहा जाता था। प्राग्वाट के कुछ क्षेत्र गुजरात मे भी थे और एक तरह गुजरात व राजस्थान बहुत कुछ मिलेजुले थे।

राजस्थान के सस्कृतिक विकास मे जैन सस्कृति का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। शासन और राजनैतिक क्षेत्रो को देखे, साहित्य के क्षेत्र को देखे अथवा शिल्प-स्थापत्य आदि क्षेत्र को तो राजस्थान के सर्वागीण विकास और निर्माण मे जैन क्षत्रिय शासको, वैश्य महामात्यो, अमात्यो, मत्रियो, दण्ड-नायको और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मे से जैनधर्म स्वीकार कर दीक्षा-सस्कार ग्रहण करने वाले श्रमण, साधु, यति, साध्वी वर्ग का उस बारे मे बहुत उज्ज्वल गौरवमय हाथ रहा है। आततायियो मे सघर्ष करने मे, कला और साहित्य के सृजन, सरक्षण और प्रोत्साहन मे, अकाल आदि से उत्पन्न सकटकाल के समय तन-मन-धन से राहत व सेवा कार्य मे, कूटनीतिक और राजनीतिक सम्बन्धो के बनाने-बिगाड़ने मे, इस प्रकार समग्र मानवीय, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में जैनियो का हाथ रहा था। हरिभद्रसूरि, रत्नप्रभसूरि, जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्रआचार्य, बप्पभट्टसूरि, सप्रति, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, धरणाशाह, ठक्कर फेरू, भामाशाह आदि इसके ज्वलत उदाहरण है। जैन आचार्य और साधुओ ने राजाओ सहित समग्र जनता को धर्मोपदेश दिया था। कई गच्छपति अनेक क्षत्रिय वशो के कुल-गुरु थे और शासन को जनहितकारी व धर्मपरायण बनाने में इनका बड़ा हाथ रहा था। तीर्थों और मन्दिरों की प्रतिष्ठापना के लिये भी यह लोग प्रेरक शक्ति थे।

तीर्थ और मन्दिर :

अन्य धर्मों और सस्कृतियो की भाति जैन धर्म व सस्कृति के भी अनेक तीर्थ और मन्दिर है। राजस्थान के जैन मन्दिर भी जैन सस्कृति के उत्कर्ष, प्रकर्ष और जैन धर्मानुयायियो की उपासना, दानशीलता, वैभवशालिता आदि के प्रतीक है। इन मन्दिरो के निर्माण में धर्म-गुरुओ व धर्माचार्यों की प्रेरणा तो मुख्य रही ही है, साथ ही गृहस्थ या श्रावक की सेवा भावना और कलाप्रियता का भी उसमे बहुत बडा स्थान है। अकाल या ऐसे अवसरो पर पीड़ित जनता को सहायता पहुँचाने की भावना भी कभी-कभी रही होगी। अपने वैभव व सत्ता के प्रदर्शन की भावना का कितना हाथ रहा यह कहना कठिन है, किन्तु पिछले पाच-सात शताब्दियो में मूर्तियो व मन्दिरो के लेखों में जिस प्रकार व्यक्ति के नाम, वश आदि की प्रशस्ति के आलेखन का क्रम चला है, उससे यह इन्कार सर्वथा नहीं किया जा सकता है कि वैभव व सत्ता के प्रदर्शन का लोभ इन कला-कृतियो के निर्माण में कार्य नहीं कर रहा था। कलाकार, जिसकी आत्म-विस्मृति या तल्लीनता, आख-हाथ-अगुलियां आदि की एकाग्रता, तन्मयता और साधना ने धर्म व सस्कृति की प्रतीक इस सौन्दर्य-सृष्टि का निर्माण किया, उसकी नामावली या वंशावली की प्रशस्ति का अभाव या उसका कहीं-कहीं पर प्रसगोपात उल्लेख मात्र भी उपर्युक्त बात की सम्पुष्टि करना है। लेकिन यह बात जैन मूर्तियो, लेखो, कलास्थानो पर ही नहीं, अन्य कला-

कृतियो, स्थापत्य व शिल्प के गौरवशाली गिने जाने वाले स्थानो आदि के सम्बन्ध मे भी लागू है।

जैन धर्म या श्रमण-संस्कृति का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है और उसकी प्राप्ति के लिये सादे जीवन, कठोर तपश्चर्या, धर्माचरण, संयम-साधना, भक्ति-उपासना आदि की श्रद्धा के द्वारा कर्म-क्षय का ही मार्ग बताया गया है। यह जहा एक ओर देश मे चारो तरफ फैले वैष्णव, शैव, तान्त्रिक आदि की भक्ति व उपासना पद्धति के प्रभाव का परिणाम है वहा दूसरी ओर यह भी वतलाता है कि जैन धर्म और संस्कृति समाज के प्रति उदासीन नही रही है। एक लेखक के शब्दो मे इसीलिये कलाकारो ने अपने मानसिक भावों द्वारा मन्दिरो को ऐसा अलकृत किया कि साधक आंतरिक सौन्दर्य की उपासना के साथ बाहरी पृथ्वीगत सौन्दर्य, नैतिक और पारस्परिक अन्तश्चेतना जगानेवाले उपकरणो के द्वारा वीतरागत्व की ओर बढ़ सके। फिर भी यह विचारणीय है कि जैन मन्दिरों मे भी जो आडम्बर, शृंगार, चमत्कार प्रदर्शित करने व फल-परचे देने की प्रवृत्ति बढ रही है, वह जैन दर्शन और धर्म भावना के कितनी अनुकूल व कितनी प्रतिकूल है।

शिल्प और स्थापत्य :

जो भी हो, राजस्थान के जैन मन्दिर अपनी उत्कृष्टतम स्थापत्य, शिल्पकला, वैभव व समृद्धि-पूर्ण भूमिका, शान्त व पवित्र भावनाओ को जगानेवाले अपने अन्तर्बाह्य वातावरण, ग्रंथसाहित्य आदि के संरक्षण और साधना के केन्द्रस्थान होने के कारण भारत की सस्कृति के इतिहास मे अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन मन्दिरो की गणना कराना तो यहां कठिन है, पर उनके कुछ सक्षिप्त उल्लेख की जरूर आवश्यकता है। इन मन्दिरों मे अधिकाश क्या, लगभग सभी ही जगह उत्तर भारत मे प्रचलित रही आर्य या नागर शैली की स्थापत्य व शिल्पकला है। कही-कही दक्षिण की द्राविड शैली का भी मिश्रण है। कला-पूर्ण, बढिया खुदाई, कुराई और जडाई से अलंकृत तोरणद्वार, शिखर, गुम्बज, ध्वज, आदि की विशेपता बाहर से ही वतला सकती है कि यह जैन मन्दिर है। मूल-नायक की मूर्तियां अधिकाश बढिया सफेद पत्थर की हैं। कई जगह काले, लाल व पीले पत्थर की और बालुका की भी मूर्तिया हैं और सोने, चादी, ताम्बे आदि धातुओ तथा हीरा, पन्ना, स्फटिक आदि मूल्यवान पत्थर या जवाहिरातो की भी छोटी मूर्तिया हैं। मूर्तियों के लिये पीतल, कासा, शीशा आदि व मिश्र धातुए ठीक नही मानी जाती, पर कई मन्दिरो मे पीतल की वडी-छोटी मूर्तिया भारी संख्या मे हैं।

मूर्तिया अधिकाश पद्मासनस्थित हैं, लेकिन कई जगह अर्द्ध पद्मासन और खडी कायोत्सर्ग की मुद्रा मे स्थित मूर्तियां भी हैं। मन्दिरो के अन्दर के विभिन्न भाग, द्वार-मंडप, शृंगार-चौकी, गूढ-मडप, गर्भगृह आदि अत्यधिक कलापूर्ण और भाव-चित्रादि से अलकृत वने हुए है। मूलवेदी के वाहर के सभामंडप की छत मे कही-कही तो एक जीवित सात्विक सौन्दर्यसृष्टि, पुष्पावली-वल्लरी आदि के समूह और वाद्य-यन्त्र धारण की हुई तथा नृत्य मुद्रा मे स्थित पुतलिकाओ द्वारा करदी गई है, जिसे देखकर इस देश के ही नहीं, विदेश व दूर-दूर के कलाविद भी मन्त्रमुग्ध रह जाते हैं। मूल-मन्दिरो में तीर्थंकरो की ही मूर्तिया रहती है, लेकिन वाहर और प्रकोष्ठ मे अम्विका, चक्रेश्वरी, सरस्वती, क्षेत्रपाल, भैरव व भोमिया की मूर्तिया, मन्दिर के वाहर-भीतर स्थापित की जाने लगी और पूजी जाने लगी। राणकपुर आदि कुछ एक मन्दिरो के द्वार-स्तम्भो, शिखर-मडप आदि मे नग्न स्त्री-पुरुषो की मूर्तिया या तक्षण-कृतिया भी हैं, वह भी इस प्रभाव का परिणाम ही दीखता है। इस प्रकार की कारीगरी का कुछ लोग जीवन के समग्र दर्शन व चित्रण की दृष्टि से औचित्य मानते हैं पर

यह तर्क समाज हित की दृष्टि से उपयोगी व उचित नही माना जा सकता ।

जैन तीर्थो मन्दिरो और विशेषतः स्थापत्य व शिल्पकला की उत्कृष्टता की दृष्टि से तथा ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए चित्रकूट (चित्तौड), जावालिपुर (जालोर), जैसलमेर, नागौर, राणकपुर, अर्बुदाचल (कुंभारिया, जीरावला सहित), हस्तिकुंड (हटूंडी), धुलैवा (केसरिया नाथ), नवलेश्वर, वरकाणा, घाणेराव, पिंडवाडा, महावीरजी, सागानेर, आमेर, अजमेर, आदि स्थान प्रसिद्ध हैं । आबू पर्वत पर विक्रम १०८८ सवत्सर में बनवाया हुआ विमलशाह का 'विमलवसही' प्रासाद और १२८७ मे वस्तुपाल तेजपाल मन्त्रीश्वर की ओर से शोभनदेव शिल्पी द्वारा निर्मित 'लुणिगवसही' प्रासाद तो जगत् प्रसिद्ध हे । प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टाड ने इन मन्दिरो को देखकर सन्त साइराक्यूज की भाति कहा था कि एराका ! (Eraka) अर्थात् मैं ढूंढता था वह मिलगया । राणकपुर मे धरणाशाह द्वारा बनवाया गया सहस्र से ऊपर कलापूर्ण स्तम्भो की छटावाला मन्दिर भी भारत की उत्कृष्ट कला का एक नमूना है । उसी प्रकार कुंभारिया के मन्दिर मे भी शिल्प के उत्कृष्ट नमूने हैं । इतिहासज्ञ फार्वस के कथन के अनुसार यहा किसी समय बड़ा नगर रहा था जिसमें ३६० जैन मन्दिर थे, किन्तु नगर भूकम्प से नष्ट हो गया । अभी वहा ५ जैन मन्दिर है, जो आलीशान और ऐतिहासिक है तथा आबू के देलवाडा मन्दिर जैसी दिग्मूढ़ करने वाली वहां की स्थापत्यकला है ।

जोधपुर के पास मडोर पर भी एक हजार वर्ष पुराना जैन मन्दिर बताया जाता है । जैन मन्दिरों मे अनेक स्थानो पर उनके साथ ही ग्रन्थ-भडार भी है जिनमे अलभ्य, अति प्राचीन ताडपत्रादि के व अन्य हस्तलिखित ग्रन्थरत्न संग्रहित है । जैसलमेर का जैन ग्रन्थ-भण्डार तो प्रसिद्ध ही है, जो यवन आक्रमणो के समय सुरक्षा की दृष्टि से पाटन आदि स्थानो से लाया गया था । ऐसे ग्रन्थ-भण्डार नागौर, अजमेर, जयपुर, बीकानेर आदि जगहो पर अनेक मन्दिरो मे है, जहा ग्रन्थ, चित्र, ताम्रपत्र, लेख आदि काफी सामग्री किसी समय रक्षा, उपयोग, ज्ञानवृद्धि आदि की दृष्टि से एकत्रित की गई होगी, किन्तु आज उपेक्षा व प्रमाद के कारण अरक्षित पडी है, और कीडे-मकोडे, चूहे-दीमक द्वारा जिसके नष्ट होने की आशका है ।

मुसलमानो से रक्षा के लिये कई जगह जैन मन्दिरो के पास मस्जिदो की मीनारें भी खडी की गई हैं । इन्हे धर्मसमन्वय की प्रतीक मानना तो गलत होगा, किन्तु इनसे रक्षा करने के एक तरीके की दूरदर्शिता तो प्रकट ही हे । फिर भी कई मन्दिरो, जैसे चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ आदि पर जैन मूर्तियो का जगह-जगह अंग-भंग व खण्डन किया गया है । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ बड़े प्रसिद्ध जैन मन्दिरों के लिये जैन-सम्प्रदायो मे आपस में ही झगड़े व तनातनी है और कही-कही पर जैनेतर लोगो ने भी जैन मन्दिरो पर अपना कब्जा कर लिया हे और अपने या सम्प्रदाय के आराध्य देव की मूर्ति की स्थापना कर उसे अपना मन्दिर बना लिया है । भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य की रक्षा की दृष्टि से राजस्थान के जैन मन्दिरो का बडा ऐतिहासिक तथा गौरवमय स्थान है । जैनियो पर तो इनके सरक्षण और इन सम्बन्धी प्रमाणिक विस्तृत विवरण के सग्रह की दुहरी जिम्मेदारी है, लेकिन जैनेतर लोगो पर भी इस अलभ्य निधि की ओर पूरा ध्यान देने का उत्तरदायित्व है ।

---

२४ | राजस्थान के प्रमुख जैन मन्दिर

[१]
श्वेताम्बर जैन मन्दिर[1]

श्री जोधसिंह मेहता

देलवाड़ा आबू के जैन मन्दिर—वि० सं० १०८८ मे विमलवसहि ने देलवाड़ा मे १८ करोड़ ५३ लाख रुपयों की लागत से सूत्रधार कीर्तिधर से अपने नाम से, 'विमलवसहि' नामक मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर मे भगवान श्री ऋषभदेव की मूर्ति विराजमान है। यह मन्दिर बहुत ही कलापूर्ण है। इसमे स्थान-स्थान पर २५६ शिलालेख खुदे हुए हैं। सबसे प्राचीन लेख स० १११६ का है। विमलवसहि मन्दिर के मुख्य द्वार के सामने विमलशाह की हस्तिशाला है जिसमे समवसरण, सगमरमर के १० हाथी और विमल मन्त्री की अश्वारोही मूर्ति है।

लूणवसहि का मन्दिर—विमलवसहि मन्दिर के पार्श्व मे दूसरा मन्दिर 'लूणवसहि' है। इस मन्दिर को वस्तुपाल तेजपाल ने बनवाया था। इस मन्दिर का नाम उन्होने बड़े भाई के नाम पर रक्खा। स० १२८७ मे आचार्य श्री विजयसेनसूरि ने इस मन्दिर मे भगवान नेमिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।

अन्य दर्शनीय मन्दिरो मे भगवान् श्री महावीर स्वामी का मन्दिर, गुर्जर श्री भीमाशाह का पीत्तलहर मन्दिर और भगवान् चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर मुख्य हैं। पीत्तलहर मन्दिर मे १०८ मन पीतल की भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति है।

देलवाड़ा आबू के मन्दिर अपनी कलात्मकता एवं महीन कारीगरी के लिए विश्वविख्यात है।

अचलगढ़ के मन्दिर—देलवाड़ा से ४ मील दूर आबू पर्वत पर ४,६०० फीट ऊंचाई पर अचलगढ स्थित है। यहा पर आदिनाथ भगवान् का दो मंजिला चौमुखा मन्दिर है। इसमे विराजमान मूर्तिया पच धातु से निर्मित हैं। चतुर्मुख मन्दिर सबसे उन्नत शिखर पर है। इसके नीचे के स्थान पर भगवान् श्री ऋषभदेव का स० १७२१ का अन्य मन्दिर हैं। दूसरा मन्दिर गढ के दरवाजे के पास भगवान् कुन्थुनाथ का स० १५२७ का है। यहा मूल नायक भगवान् की कॉसे की मूर्ति है तथा अन्य पंच धातु प्रतिमाएँ हैं। गढ के नीचे तलहटी मे भगवान् शान्तिनाथ का विशाल और कलामय मन्दिर है जिसे गुजरात के राजा कुमारपाल ने बनवाया था।

---

१. पाठको की जानकारी के लिये यह विवरण लेखक के विस्तृत लेख के आधार पर सक्षिप्त करके प्रस्तुत किया जा रहा है।
—सम्पादक

मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी के मन्दिर—आबू रोड से २८ मील दूर पिंडवाड़ा है जहा से मारवाड़ की छोटी और बडी पचतीर्थी की जाती है। यहा श्री महावीर भगवान् के बावन जिनालय वाले मन्दिर मे धातु की दो बड़ी कायोत्सर्ग मे खडी जिन मूर्तिया हैं। एक पर वि० स० ७४४ का प्राचीन खरोष्ठी लिपि का लेख है। छोटी पंचतीर्थी मे नाणा, दियाणा, नादिया, बामनवाडजी और अजारी के तीर्थ स्थल आते हैं।

मारवाड़ की बड़ी पंचतीर्थी के मन्दिर—इसका केन्द्र स्थल सादडी (मारवाड) है। राणकपुर, मुंछाला महावीरजी, नारलोई, नाडोल और वरकाणा पार्श्वनाथजी, ये पाचो तीर्थ सादडी के सन्निकट हैं।

राणकपुर—सादडी से ६ मील दूर स्थित यह मन्दिर अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। यह १४४४ कलाकृत स्तभो पर आश्रित है। इसमे ८४ भोयरे और ७२ देवकुलिकाये हैं। इसका निर्माण सेठ धरणाशाह ने करवाया। मूलनायक आदीश्वर भगवान् के सामने की दीवाल पर एक शिलालेख है जिसमे मेवाड के राणा बप्पा रावल से लेकर ४१ पीढी तक की वशावली का चित्रण है। यहा पर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा मे बडी कलात्मक मूर्ति है। तीन मजिल का यह चौमुखा मन्दिर ४८०० वर्ग फीट क्षेत्र मे विस्तृत है। यहाँ नेमिनाथ और सूर्य देवता के मन्दिर भी हैं, जो स्थापत्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

नारलोई—यहां कुल ११ मन्दिर हैं। आदीश्वर भगवान् का १००० वर्ष पुराना मन्दिर स्थापत्य-कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

नाडोल तीर्थ—यहा प्राचीन, कलात्मक एव विशाल पद्मप्रभुजी का मन्दिर है। यहा कभी ९९९ जैन मन्दिरों का घटनाद होता था। कहा जाता है कि यहा वि० सं० ३०० मे आचार्य श्री मानदेवसूरि ने प्रसिद्ध लघु शाति स्तव की रचना की थी।

वरकाणा पार्श्वनाथ तीर्थ—इस मन्दिर का निर्माण वि० स० १२११ के पूर्व का माना जाता है। यहा प्रतिवर्ष पौष कृष्णा दशमी को मेला भरता है।

राता महावीरजी—जवाई बाध रेलवे स्टेशन से १४ मील पूर्व मे यहा २४ जिनालयवाला श्री महावीर जी का मन्दिर है। इसमे राता (लाल) रग की मूर्ति है।

कोरटा तीर्थ—यह तीर्थ एरनपुरा छावनी से ६ मील है। यहा शिखरबंध भगवान् महावीर का मन्दिर है।

सिरोही—बामणवाडजी से करीब ८ मील पर यह क्षेत्र है। इसमे १८ जैन मन्दिर हैं। १५ मन्दिर एक ही मोहल्ले मे होने से यह बस्ती देहराशरी कहलाती है। इनमे चौमुखा जी का मन्दिर प्रसिद्ध है।

मीरपुर तीर्थ—यह तीर्थ सिरोही से अणादरा के मार्ग पर है। यहा पहाड़ के नीचे प्राचीन [illegible] तीर्थस्थान है।

सुवर्णगिरि तीर्थ—यह तीर्थ स्थान जालोर जिले मे है। इसे सोनागढ़ भी कहते हैं। यहा भगवान् महावीर का [illegible] मन्दिर है।

नाकोड़ा तीर्थ—यह बालोतरा रेलवे जंकशन से ६ मील दूरी पर है। यहा मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति है। इस मन्दिर मे दो बडे भोहरे है जिसमे १२वी से १७वी शताब्दी की मूर्तिया है। यहां ऋषभदेव, शान्तिनाथ भगवान् के विशाल कलामय मन्दिर है। यहां के अधिष्ठायक देव नाकोड़ा भैरवजी बहुत प्रसिद्ध और चमत्कारी हैं।

भिन्नमाल—प्राचीन काल मे हजारो शिखर बध जैन मन्दिर यहा पर थे। इस समय यहां चार जैन मन्दिर प्रसिद्ध हैं। श्री शातिनाथ भगवान् का मन्दिर, श्री पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर, श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर और श्री शातिनाथ भगवान् का दूसरा मन्दिर।

सांचोर—राणीवाडा स्टेशन से ३० मील दूर सांचोर तीर्थ है। यहा भगवान् महावीर का भव्य मन्दिर है।

कापरड़ा तीर्थ—यह जोधपुर से ३२ मील पर है। यहा भगवान् श्री स्वयभूपार्श्वनाथ के मन्दिर की स्थापना वि० स० १६७८ मे हुई थी। जैतारण निवासी भाणजी भडारी ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह भारत का एक मात्र जैन मन्दिर है जो चतुर्मुख के साथ-साथ चार मजिल का है।

पाली—इस नगर मे ९ जैन मन्दिर हैं। जिनमे से नवलखा पार्श्वनाथ का मन्दिर बावन जिनालय वाला प्रसिद्ध है।

घांघाणी तीर्थ—यह जोधपुर से दक्षिण पूर्व मे २० मील की दूरी पर है। यहा पद्मप्रभु जी का मन्दिर है। यह तीर्थ २२०० वर्ष पुराना माना जाता है। यह भूमि से ७२ फीट ऊचा है।

ओसियाजी—जोधपुर से ४० मील दूर स्थित ओसिया मे भगवान् महावीर का प्रसिद्ध गगनचुम्बी मन्दिर है। ओसवाल जैनियो की उत्पत्ति का मूल स्थान यही ओसिया नगरी माना जाता है।

नागौर—यहाँ सात जैन मन्दिर है जिनमे से वि० सं० १५१५ का घूमट बंध श्री शांतिनाथ भगवान् का मन्दिर प्राचीन है।

फलोधी तीर्थ—यह मेड़ता रोड जकशन से २ फर्लांग दूर है। यहां मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की श्याम वर्णीय मनोज्ञ प्रतिमा है। यहा वि० सं० १२२१ का लेख मिलता है।

जैसलमेर—यहा के किले पर आठ मन्दिरों मे लगभग ६००० जिन मूर्तियां है। यहा का सबसे प्रसिद्ध चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर है। यहा १८ उपाश्रय और ७ ज्ञान भंडार है। जिनमे श्री जिनभद्र सूरि ज्ञान भंडार वृहत और प्रसिद्ध है।

जैसलमेर की पंचतीर्थी मे जैसलमेर, अमरसागर, लोद्रावा पोकरन और ब्रह्मसागर के मन्दिर गिने जाते हैं।

बीकानेर—यहाँ लगभग ३० जैन मन्दिर हैं। जिनमें भगवान् अजितनाथ का मन्दिर प्राचीन गिना जाता है। यहां पर ४-५ ज्ञान भंडार है।

जोधपुर—यहा पर छोटे-बड़े १७ मन्दिर हैं, जिनमे से सं० १६०० का शिखरबंद भगवान् श्री केशरियानाथ का मन्दिर प्रसिद्ध है। दूसरा मन्दिर भैरो बाग मे भगवान् श्रीपार्श्वनाथ जी का है। जूनी मण्डी में भगवान् महावीर का सवत् १८०० का जैन मन्दिर है। यहां पर एक ग्रंथ भंडार भी है।

मेवाड़ के जैन तीर्थ—मेवाड की पचतीर्थी में श्री केसरियाजी, नागद्रह, देलवाड़ा, दयालशाह का किला और करेडा माने जाते हैं। मेवाड़ मे करीब ३५० जैन मन्दिर है जिनमे से मुख्य इस प्रकार हैं।

उदयपुर—यहा कुल ३६-३७ मन्दिर हैं। इनमे बावन जिनालय वाला श्री शीतलनाथ जी का मन्दिर, भगवान वासूपूज्य जी का काच का मन्दिर, ऋषभदेव जी का मन्दिर और सहस्रफणा पार्श्वनाथ जी का मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

आघाटपुर (आहाड़) तीर्थ—उदयपुर शहर से २ मील दूर आहाड़ है। यहा ऋषभदेव भगवान, शातिनाथ भगवान, शंखेश्वर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर हैं। ये १००० वर्ष पुराने भव्य और कलाकृत हैं। इसी प्राचीन नगरी मे राणा जैत्रसिंह (सं० १२७०–१३०८) के समय में हेमचन्द्र श्रेष्ठि ने सब जैन आगमो को ताड़पत्र पर लिखवाया था।

श्री केसरिया जी—उदयपुर से ४० मील दक्षिण मे धुलेव गांव में यह तीर्थ स्थित है। यहा भगवान ऋषभदेव की श्याम मूर्ति बहुत प्राचीन और मनोज्ञ है। चैत्र कृष्णा अष्टमी को यहा बडा भारी मेला लगता है, जिसमें भील लोग काफी मात्रा में आते हैं। ये लोग केसरियाजी को कालाजी कहते हैं। यहा का सबसे प्राचीन शिलालेख स० १४३१ का है। मन्दिर का स्थापत्य भव्य और कलामय है।

श्री अदबदजी या नागद्रह (नागदा) तीर्थ—उदयपुर से १३ मील दूर एकलिंगजी के बस मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है। यहा मूलनायक श्री शातिनाथ भगवान की अद्भुत और विशाल मूर्ति है जो ६ फीट ऊंची है, जिसको अदबद जी कहते हैं। यहा खुमाण रावल का अनोखा मन्दिर भी है। यहा 'सास-बहू' का वैष्णव मन्दिर स्थापत्यकला की दृष्टि से सर्वोत्तम है।

देलवाड़ा—यह उदयपुर से १८ मील दूर है। यहा पाँच मन्दिर हैं। इस तीर्थ के अधिकतर मन्दिर और शिलालेख पन्द्रहवीं-सोलहवी शताब्दी के हैं। यहा के मन्दिरों का स्थापत्य देलवाडा आबू के विश्वविख्यात मन्दिरों के स्थापत्य से मिलता है।

दयालशाह का किला—उदयपुर से ४३ मील दूर बस मार्ग पर राजनगर कस्बे मे एक ऊंची पहाड़ी पर यह स्थित है। यहा वीर मन्त्री दयालशाह ने नौ मंजिला चतुर्मुख जिन प्रासाद निर्माण कराया और इसमें ऋषभदेव भगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। मन्दिर की कारीगरी महीन और मनोहर है। यहा पर 'राज प्रशस्ति' नामक २५ सर्ग का पाषाण शिलालेख है जो भारत का सबसे बड़ा शिलालेख है। राणा राजसिंह ने जितना धन राजसमन्द बंधवाने में व्यय किया, उतना ही धन उनके मंत्री दयालशाह ने इस मन्दिर के निर्माण में व्यय किया था।

करेड़ा पार्श्वनाथ—भोपालसागर स्टेशन से करीब १ मील पर करेड़ा पार्श्वनाथ नामक प्राचीन बावन जिनालय वाला विशाल मन्दिर है। इस मन्दिर के कुछ लेख १२वी

र १९वी सदी तक के हैं। यहा पौष वदी १० को प्रतिवर्ष वडा मेला लगता है। स्थापत्य कला की ष्टि से इस मन्दिर की अपनी विशेषता है।

चित्तौड़गढ़—यह प्राचीन तीर्थ चित्रकूट के नाम से विख्यात है। इस दुर्ग पर बनी शृंगार ावरी जिसका असली नाम अष्टापदावतार शान्ति जिन चैत्य है। इसमे चौबीस जैन तीर्थंकरो की ाष्टापद रचना बनी हुई है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह बेजोड है। सतवीस देवरा—पहले त्ताईस जिनालयो का मन्दिर था। वि० सं० १५०५ मे कर्माशाह की देख-रेख मे इसका निर्माण हुआ था। मूलनायक ऋषभदेव की श्याम मूर्ति यहाँ विराजमान है। जैन कीर्तिस्तम्भ सात मंजिला और ८० फुट ऊचा है। चौदहवी सदी का यह स्मारक जैन शिल्प कला का अद्भुत नमूना है। इसके पास भगवान् महावीर का सुन्दर मन्दिर है।

चंवलेश्वर पार्श्वनाथ :—भीलवाड़ा से २६ मील दूर चंवलेश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ है। यहा भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति अति प्राचीन है। पौष वदी दशमी को यहां मेला भरता है।

बिजोलिया :—भीलवाडा से लगभग ४४ मील दूर बिजोलिया ग्राम है यहा भूतल मे आच्छादित भगवान् पार्श्वनाथ का मंदिर है।

कुंभलगढ़ :—कर्नल टॉड ने यहां के तीन मंजिले कलाकृत जैन मन्दिर का वर्णन किया है जिसका जीर्णोद्धार महाराजा फतेहसिंहजी ने करवाया था। इसके अतिरिक्त यहां दुर्ग पर तीन मन्दिर और हैं—बावनजिनालय का वि. सं. १५१५ का, वि. स. १६०८ का, व सुन्दर खुदाई वाला मोलेरा का जैन मन्दिर जिसमे पीतल की मूर्तिया हैं।

अजमेर :—यहाँ पाच श्वेताम्बर मन्दिर है जिनमे मे २ बडे मन्दिर संभवनाथ भगवान् के लगभग स० १८०० के है। शेष दो मन्दिर श्री गौडी पार्श्वनाथ के और ऋषभ भगवान् के सं. १८५० के है। यहा ढाई दिन का झोपडा प्रसिद्ध स्थान है। वहा पर भी पहले जैन मन्दिर था। नगर के बाहर विशाल दादाबाड़ी है, जहा खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि की छतरी है।

किशनगढ़ :—यहा पाच मन्दिर है। दो मन्दिर भगवान् श्री आदिनाथ और श्री शान्तिनाथ के स. १६९८ के हैं। कस्बे के बाहर दादावाड़ी है।

जयपुर :—यहा पर ९ श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं। उनमे से भगवान् श्री ऋषभदेवजी का, श्री केसरियाजी का, श्री सुमतिनाथजी क। (स १७८४), भगवान् श्री पार्श्वनाथजी का (स. १८००) और श्री महावीर स्वामी के मन्दिर प्रसिद्ध है।

आमेर :—यहां श्री चन्द्रप्रभ स्वामी का शिखरबध स १८७७ का मन्दिर है।

अलवर :—यहा पर दो श्वेताम्बर जैन मन्दिर है, जिनमे से एक स. १८०० का श्री संघ द्वारा निर्माण करवाया हुआ विशाल पार्श्वनाथ मन्दिर है। इसके भोंहरे में बड़ी-वडी विशालकाय मूर्तिया हैं। दूसरा आधुनिक जैन मन्दिर वस स्टेण्ड के पास है।

श्री नागेश्वर तीर्थ :—झालावाड जिले मे नागेश्वर (उन्हैल) गांव के बाहर श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ है। इस तीर्थ मे नीले वर्ण की फण वाली खडी श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की नौ फीट की सैकडो वर्ष पुरानी प्रतिमा है।

[२]

दिगम्बर जैन मन्दिर[1]

पं० अनूपचन्द

सांवलाजी का मन्दिर, आमेर :—इसमे भ. नेमिनाथ की श्याम पाषाण की स० ११२० की मूर्ति है। कहा जाता है कि इसे हेमराज छावडा ने बनवाया था। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के समय मे यहा भट्टारक गादी स्थापित हुई। इसके साथ ही यहाँ विशाल शास्त्र भंडार भी स्थापित किया गया।

संघीजी का मन्दिर, सांगानेर :—यह मन्दिर १२वी शताब्दी का बना हुआ है। अपनी स्थापत्य एव वास्तुकला के लिये यह प्रसिद्ध है।

गोदीकों का मन्दिर, सांगानेर :—यहा सगमरमर की वेदी मे कुराई का बारीक कार्य दर्शनीय है।

चाकसू की नसियां :—चाकसू से डेढ मील दूर पहाड़ी पर जैन नसिया हैं। इस छोटी-सी पहाडी पर मन्दिर, चरण-चिह्न आदि हैं। सम्वत् १६२२ मे भट्टारक जगत्कीर्ति ने चाकसू में पट्ट स्थापित किया।

पाटोदी का मन्दिर, जयपुर :—यह बीस पथ आम्नाय का प्रमुख मन्दिर है जो चौकड़ी मोदीखाने मे स्थित है। इसका निर्माण जोधराज पाटोदी ने करवाया था। यहां भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित है। आमेर के पश्चात् जयपुर के इसी मन्दिर मे भट्टारक गादी की स्थापना स० १८१५ मे हुई, जिस पर क्षेमकीर्ति प्रथम भट्टारक हुए। इस मन्दिर मे एक विशाल और महत्त्व-पूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ भण्डार भी है। यहा स्वर्णाक्षरी, रजताक्षरी तथा ताड़पत्रीय ग्रंथो की प्रतियो का भी संग्रह है।

सिरमोरियो का मन्दिर, जयपुर :—इसका निर्माण सम्वत् १८१३ मे श्री केशरीसिंह कासलीवाल ने कराया था। इस मन्दिर की नीव जयपुर नरेश महाराजा माधवसिंह ने अपने हाथ से रखी थी। यह मन्दिर कला की दृष्टि से अद्वितीय है। इसमे सबसे प्राचीन मूर्ति श्वेत पाषाण की सम्वत् १२२७ की है।

बड़े दीवानजी का मन्दिर, जयपुर :—यह जैन सस्कृत कॉलेज के निकट है। इसे दीवान अमरचन्द के पिता शिवजीलाल ने बनवाया था। इसमे भगवान् ऋषभदेव की श्याम पाषाण की भव्य प्रतिमा है। इसी मन्दिर के प्रागण मे स्व० प० चैनसुखदासजी प्रतिदिन शास्त्र वाचन करते थे।

महावीर स्वामी का मन्दिर, जयपुर :—गोपालजी के रास्ते मे स्थित यह मन्दिर कालाडेहरा के मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। इसमे १२वीं शताब्दी की महावीर स्वामी की खडगासन प्रतिमा है। यहा भगवान् महावीर के पूर्वभवों का सचित्र वर्णन उपलब्ध है, साथ ही अच्छा शास्त्र भण्डार भी है।

---

१. यह संक्षिप्त विवरण लेखक के विस्तृत लेख के आधार पर तैयार किया गया है। —सम्पादक

संघीजी का मन्दिर, जयपुर :—इसमे काच की वेदी पर हरे पाषाण की पार्श्वनाथ प्रतिमा है। यहा भी शास्त्र भण्डार है।

पार्श्वनाथ मन्दिर(सोनियों का) जयपुर :—खवास जी के रास्ते मे स्थित इस मन्दिर मे सम्वत् १८६१ की भ० पार्श्वनाथ की विशालकाय खड्गासन प्रतिमा है। यहा प्राचीन ग्रंथों का अच्छा संग्रह है।

वधीचन्दजी का मन्दिर, जयपुर :—घी वालो के रास्ते मे स्थित यह मन्दिर गुमान पथ आम्नाय का है। यहा एक विशाल शास्त्र भण्डार है जिसमे पं. टोडरमलजी के स्वय के हाथ की 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' एव 'आत्मानुशासन' की मूल पाडुलिपिया उपलब्ध हैं। इस मन्दिर मे बैठकर प. टोडरमलजी ग्रंथ रचना किया करते थे।

तेरहपंथी बड़ा मन्दिर, जयपुर :—यह तेरापथ आम्नाय का मन्दिर है। इसमे अनेक प्राचीन प्रतिमाए है। इस मन्दिर मे दो विशाल शास्त्र भण्डार है। बडे मन्दिर के भण्डार मे २६२९ ग्रंथ तथा बावा दुलीचन्द के भण्डार मे ८५० ग्रंथो का सग्रह है। इसमे १६वी शताब्दी का सचित्र आदि पुराण है, जिसमे करीब ३०० चित्र है। यहा प सदासुख, जयचन्द छाबडा, जोधराज गोदीका आदि के स्वय के हाथ के लिखे हुए ग्रंथ हैं।

पांड्या लूणकरण का मन्दिर, जयपुर :—यह मन्दिर ठाकुर पचेवर के रास्ते मे स्थित है। इसमे हाथी, भैसे, चकवे, कबूतर आदि वाहनो पर बैठे शासन देवताओ की तथा चक्रेश्वरी और अम्बा माता की भव्य प्रतिमाए हैं। इसमे एक विशाल शास्त्र भण्डार भी है।

दि० जैन मन्दिर आदर्श नगर, जयपुर :—मुलतान से आये जैनियो के सहयोग से यह मन्दिर वना है। मन्दिर अत्यधिक सुन्दर और कलापूर्ण है। इसमे विशाल शास्त्र भण्डार भी है। इसमे एक कीर्तिस्तम्भ (महावीर स्तूप) भी वन रहा है।

राणाजी की नसियां :—जयपुर से ३ मील दूर खानिया नामक स्थान पर सगमरमर की विशाल नसिया हैं। इसी के प्रांगण मे आचार्य वीर सागर जी का स्मारक (चरण चिह्न) है।

चूलगिरि क्षेत्र :—राणाजी की नसिया के पीछे पहाड़ पर चूलगिरि क्षेत्र है। यहा भ० पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। मन्दिर के अहाते मे चारो ओर चौबीस तीर्थंकरो के चरण चिह्न तथा मूर्तियां हैं। यहा का प्राकृतिक दृश्य बडा मनोरम है। इस क्षेत्र की स्थापना आचार्य देशभूषणजी महाराज ने सन् १९६६ मे की थी।

जयसिंहपुरा खोर का दि० जैन मन्दिर —यह मन्दिर जयपुर से रामगढ रोड पर बंध की घाटी से डेढ मील दूर जयसिंहपुरा खोर मे है। इसका निर्माण स० १७८० मे कंवरपाल गोधा ने करवाया था। यहां भगवान् श्रेयासनाथ की सं० १६६४ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

रामगढ़ का मन्दिर : जयपुर से २८ मील दूर रामगढ का विशाल वाध है। वाध से ३ मील दूर रामगढ़ गांव के जैन मन्दिर मे भूगर्भ से प्राप्त १२वी शताब्दी की मनोज्ञ पाषाण प्रतिमाएं हैं।

पदमपुरा क्षेत्र :—जयपुर से २२ मील की दूरी पर शिवदासपुरा के निकट इस अतिशय क्षेत्र का प्रादुर्भाव वि० स० २००१ मे हुआ था। यहा पद्मप्रभु भगवान् की चामत्कारिक मूर्ति भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। यहाँ विशाल कलापूर्ण मन्दिर का निर्माण-कार्य चल रहा है।

भट्टारकजी की नसियां :—जयपुर से २ मील दूर टोक रोड पर रामबाग के पास ये नसिया स्थित हैं। इसमे भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, क्षेमेन्द्रकीर्ति तथा सुरेन्द्रकीर्ति के चरण प्रतिष्ठित है। इसकी स्थापना स० १८५३ व १८८१ मे हुई थी।

दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी :—यह प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। यहाँ भगवान् महावीर की मनोज्ञ और आकर्षक मूर्ति है। महावीर जयन्ती के अवसर पर यहाँ प्रतिवर्ष एक विशाल मेला लगता है। यह एक ऐसा तीर्थ स्थान है जहा बिना किसी जातिगत भेदभाव के यात्री दर्शनार्थ आते है। यहा दर्शनार्थियो से प्राप्त धनराशि का उपयोग, प्राचीन साहित्य के संरक्षण, प्रकाशन, छात्र-वृत्ति, विधवा सहायता, धर्म प्रचार आदि सद्कार्यों मे होता है। यहा तीन शिखरो वाला कलापूर्ण मन्दिर, मानस्तम्भ, आदि दर्शनीय स्थल है।

चमत्कार क्षेत्र आलनपुर :—सवाई माधोपुर स्टेशन से २ मील दूर आलनपुर गाव मे एक भव्य जिनालय है। इसमे भूगर्भ से प्राप्त बिचलौर की चमत्कार पूर्ण प्रतिमा है।

दीवानजी का मन्दिर, सवाई माधोपुर :—वि. स. १८२६ मे सवाई माधोपुर मे विशाल पच कल्याणक महोत्सव हुआ था। उसमें हजारो प्रतिमाए प्रतिष्ठित हुईं। उस समय की अनेक मूर्तिया इस मन्दिर मे है। यह तीन शिखर वाला मन्दिर है। यहा विशाल ग्रन्थ भण्डार भी है। यहां नसिया सहित ६ मन्दिर हैं जो कलापूर्ण है।

जैन मन्दिर, खण्डार :—सवाई माधोपुर से २० मील दूर खण्डार का किला है। इस किले का मन्दिर महत्वपूर्ण है। किले के रास्ते मे कुछ दूरी की चढाई पर चट्टान मे उकेरी गई अनेक छोटी प्रतिमाए भी हैं।

रणथम्भोर का जैन मन्दिर :—इस मन्दिर की पाषाण प्रतिमाएं १२वी शताब्दी से भी पूर्व की है।

पंचायती दि० जैन मन्दिर, भरतपुर :—यहा का पचायती दिगम्बर जैन मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ स० १२७२ की विशाल पाषाण प्रतिमाए है। इसके शास्त्र भडार मे ८०० हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है।

पंचायती जैन मन्दिर, करौली :—यह मन्दिर भी बडा प्रसिद्ध है। यहाँ काच का सुन्दर काम है। यहा अच्छा ग्रन्थ भण्डार भी है। बयाना की स्टेशन की नसिया भी उल्लेखनीय हैं। यहां सीमंधर स्वामी की १२वी सदी की प्रतिमा है।

पचायती बड़ा मन्दिर, कोटा :—यह मन्दिर रामपुरा मे स्थित है। यहा काफी प्राचीन मूर्तिया हैं। यह मन्दिर काच के काम के लिए प्रसिद्ध है।

झालरापाटन का शांतिनाथ मन्दिर :—यहा भगवान् शातिनाथ का विशाल मन्दिर। है

इसमें चारों ओर देवरियां बनी हुई हैं जिनमे अनेक धातु और पाषाण की मूर्तिया विराजमान हैं।

अतिशय क्षेत्र चांदखेड़ी :—झालरापाटन से कुछ दूरी पर चांदखेडी है। यहां नदी के किनारे मन्दिर मे भगवान् आदिनाथ की पाषाण प्रतिमा है। यह प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है।

जैन मन्दिर केशोरायपाटन (बूंदी):—यह मन्दिर बूंदी रोड रेल्वे स्टेशन से २ मील चम्बल नदी के किनारे स्थित है। यहा की प्रतिमाएं काफी प्राचीन हैं। यहा केशवराय (श्रीकृष्ण) का विशाल कलापूर्ण मन्दिर भी है।

इसके अतिरिक्त डूंगरपुर, सागवाड़ा, बासवाडा, गलियाकोट, सलूम्बर मे भी विशाल, कलापूर्ण, प्राचीन जैन मन्दिर हैं।

बीसा हुमड़ दि० जैन मन्दिर, उदयपुर :—यह मन्दिर विशालकाय और कलापूर्ण है।

धानमण्डी (उदयपुर) का अग्रवाल जैन मन्दिर, खण्डेलवाल मन्दिर, सभवनाथ मन्दिर, ग्रंथ भण्डारों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

सेठजी की नसियां, अजमेर :—यहा स्टेशन के नजदीक सेठजी की नसियां है। यहा की चित्रकारी का कार्य उल्लेखनीय है। चौक में विशाल मानस्तम्भ है तथा मन्दिर मे मनोज्ञ प्रतिमाएं। शहर मे सेठजी का काच का मन्दिर तथा भट्टारकीय बीस पथी मन्दिर और विशाल शास्त्र भण्डार महत्त्वपूर्ण हैं।

शांतिनाथ मन्दिर, आंवां (टोंक) :—आंवां नगर में भगवान् शातिनाथ का मन्दिर है। यहां सवत् १५९३ की प्रतिष्ठित शांतिनाथ भगवान् की श्वेत पाषाण प्रतिमा है। पास की पहाडी पर भट्टारक शुभचन्द्र, धर्मचन्द्र आदि की निषेधिकाएं हैं।

इसके अतिरिक्त केकडी के पास बघेरा में भी आकर्षक प्रतिमाएँ है।

अग्रवाल जैन नसियां, टोंक :—यहां भूगर्भ से प्राप्त १३वी शताब्दी की विशाल २६ प्रतिमाएं हैं जो दर्शनार्थियों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। यहा आचार्य जिनसेन के चरण भी हैं।

दीवान जी की नसियां तथा बीस पंथी मन्दिर, सीकर :—यहां दीवान जी की विशाल नसियां है। यहां छात्रावास व साधु-मुनियों के आवास की अच्छी व्यवस्था है। यहां बीस पंथी मन्दिर का बाह्य स्वरूप वडा भव्य है।

दि० जैन मन्दिर, लाडनूं :—यह भारत का कलापूर्ण जैन मन्दिर है।

भट्टारकीय मन्दिर, नागौर :—यह मन्दिर शास्त्र भण्डार के लिये प्रसिद्ध है। इसमे लगभग १२ हजार हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ हैं।

बड़ा मन्दिर नरायणा :—यहा १२वी-१३वी शताब्दी की मनोज्ञ और कलापूर्ण मूर्तिया हैं।

छोटा मन्दिर, नरायणा:—यहां सवत् ११३५ की पाषाण की बाहुवलि की ३½ फीट की प्रतिमा है। यहां संवत् ११०२ की श्वेत पाषाण की सरस्वती की भी मूर्ति है।

दि० जैन अतिशय क्षेत्र, तिजारा:—यहां पार्श्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है।

जैन मन्दिर, मौजमाबाद:—इस मन्दिर का निर्माण सवत् १६५० के आस-पास हुआ था। यह शिखरवन्द मन्दिर विशाल और कलापूर्ण है।

२५ | जैन चित्रकला

श्री परमानन्द चोयल

अजन्ता व राजस्थानी चित्रकला :

पर्सीब्राउन ने अजन्ता व राजस्थानी चित्रकला के बीच का काल, जो कि जैन चित्रकला का काल है, भारतीय कला का अन्धकार युग बताया है।[1] डब्ल्यू. जी. आर्चर भी यही बात दोहराते हैं जब वे ये शब्द लिखते हैं—'The early glowing rapture is totally wanting and it is as if we have entered a dark age of Indian Art.'[2] भारतीय कला समीक्षक श्री रायकृष्णदास ने तो यहा तक कह दिया है कि ये चित्र 'कुपड चित्रकारो' के बनाये हुये हैं।[3] काफी समय तक वे इसके नामकरण पर विवाद प्रस्तुत करते हैं, फिर मानवाकृतियो का नख-शिख वर्णन करते हुए इसके विकृत आलेखन की ओर ध्यान दिलाते है तथा अन्त मे अपने सम्पूर्ण आक्रोश के साथ इसका अपभ्रंश शैली नाम रख देते हैं।[4]

वास्तव मे इस तरह के विद्वान् अजन्ता के मानदण्डो से ही हर चित्र शैली को तोलने का प्रयत्न करते है; इसीलिये जैन चित्रकला के साथ जिस न्याय की अपेक्षा थी, ये लोग नहीं कर पाये है। जिन्होने चित्रकला प्रक्रिया, तकनीको एवं विधाओ का गहराई से अध्ययन किया है, जो आलोचना के नाम पर केवल ऐतिहासिक तिथियाँ ही नहीं गिनते रहे है तथा जो सौन्दर्य को आदमी-औरत के चेहरे मोहरों मे न देखकर कला तत्त्वो के माध्यम से सरचना मे पहचानने का प्रयत्न करते है, उनके लिये जैन चित्रकला एक नया ही अर्थ बोध उपस्थित करती है।

जैन चित्रकला :

जैन चित्रकला का काल ११वी शती से १६वी शती तक रहा है। इस बीच जैन धर्म से सम्बन्धित चित्र एवं अजैन चित्र बनते रहे, जिनकी शैली एक समान है। अतः जैन चित्रकला को, समग्र शैली-प्रसार के परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिये। विद्वानों ने जहा यह बात निभाई है, उनकी समालोचना का ढग वहा बिल्कुल बदल गया है। उदाहरण के लिये बासिल ग्रे का यह—कथन यह शैली १५वी-१६वीं

---

१. हेरिटेज ऑफ इण्डियन पेन्टिग   २ इण्डियन पेन्टिग

भारत की चित्रकला   ४. वही

शती में अपने चरमोत्कर्ष पर थी, अकबर काल मे यह इतनी शक्तिशाली थी कि अकबर ने अपने पुस्तकालय विभाग के लिये गुजराती कलाकारो को चुना था,[1] श्री रायकृष्णदास द्वारा जैन चित्रकला के कलाकारों के 'कुपड़' होने की बात के पूर्णतया विरुद्ध बैठता है। इसी सन्दर्भ मे बासिल ग्रे की निम्न पंक्तिया भी उल्लेखनीय है—[2]

"It showed from the beginning a livear, wiriness and vigour which was developed with great virtuosity, fine draughtsmanship which was combined rather strongly with bold massing of vibrant colours, red, blue and gold and with highly decorative designs in cloths and other textiles"

मारियो बुसाग्लि के मतानुसार जैन चित्रकला 'कुछ अर्थों मे एकदम नवीन एव पूर्ण क्रान्तिकारी शैली थी जिसने चित्रकला के विकास मे एक नया ही प्रकरण जोड़ा है।"[3]

रचना-प्रक्रिया एवं गठन :

हर काल की कला अपने मे प्राचीन व नवीन दोनो कलाओ के तत्व समेटे होती है। शैली का गठन एक जटिल प्रणाली है जिसमे कई प्रभावों का समावेश होता है, जैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि। इन अवस्थाओ के अनुसार ही शैली आदर्श, प्रतीकात्मक, लाक्षणिक अथवा ग्रामीण आदि स्वरूप धारण कर लेती है। जैन चित्रकला की समस्याये अजन्ता से भिन्न है; अत: उसका वाह्य स्वरूप भी अजन्ता से भिन्न होना स्वाभाविक है। फिर अजन्ता के चित्र भीत पर बड़े-वडे धरातलो मे धारावाहिक कथात्मक शैली की विशद योजना लेकर बनाये गये थे। भित्ति-चित्र परम्परा जैन काल मे लगभग लुप्त हो गई थी। भीत के स्थान पर वहुत छोटे आयताकार ताड़-पत्रो पर व १४वी शती मे कागज के निर्माण के वाद थोडी-सी बडे नाप की आयताकार पुस्तकों मे छोटे-छोटे चित्र वनने लगे थे। इसलिए दोनो शैलियो की रचना-प्रक्रिया एव गठन भिन्न प्रकार था। उनकी आवश्यकताये भिन्न थी।

अजन्ता काल मे भारत वाहरी प्रभावो से इतना आक्रान्त नही था जितना जैन काल मे हो गया था। मुगलो के हमले भारत मे मोहम्मद गजनी के समय से ही लगातार हो रहे थे। उसके कारण व उनके भारत में जमने की प्रवृत्ति के कारण उनकी सभ्यता व सस्कृति का यहा की कला पर प्रभाव पड़ने लगा था। लघुचित्रो व सचित्र पुस्तको का व्यापक रूप से प्रचलन भारत का इस्लाम के सम्पर्क में आने के वाद ही माना जाना चाहिये। लघुचित्रो (miniatures) पर आरम्भ मे अवश्य ही परसिया का प्रभाव पडा है।[4] अत जैन चित्रो की सृजन प्रक्रिया मे परम्परागत कला से आशातीत अन्तर हो आया है। फिर भी इस शैली में बीज रूप मे भारतीय परम्परा विद्यमान है।

मुनि श्री जिनविजयजी ने जैसलमेर के ज्ञान भण्डारो से जैन कला के वे नमूने खोज निकाले हैं जो अजन्ता-एलोरा-कला व जैन कला का सम्बन्ध जोड देते है। लकडी की क़रीब १४ सचित्र तख्तिया आपने ढूढ निकाली है, जिनमे कमल की वेल वाली पटली अत्यन्त विलक्षण है, जो अजन्ता

१. राजपूत पेन्टिग पृ० ३ २. राजपूत पेन्टिग, पृ० ३

३. इन्डियन मिनियेचर, पृ० ४३ ४ इण्डियन मिनियेचर, पृ० २२ मारियो बुसाग्लि

शैली की याद दिलाती है। एक चित्र मे मकर के मुख से निकलती कमल वेल बनाई है जो साची, अमरावती व मथुरा की कला-परम्परा से जैन कला को जोडती है।

सूक्ष्म दृष्टि से जाचने पर पता लगता है कि लघुचित्रण विधि में भी भित्ति-चित्रण परम्परा अश मात्र मे विद्यमान थी। रेखाओ का प्रयोग भी शास्त्रोक्त है, जैसा कि भित्ति-चित्रों मे देखने को मिलता है—स्पष्ट व प्रवाहात्मक। सिर्फ रग-ब्रुश के सचालन मे अन्तर आ गया है। अजन्ता का चित्र-धरातल बडा था। अतः रेखा खेंचते समय कलाकार को ब्रुश बहुत दूर से पकड़कर भुजा के पूर्ण घुमाव के साथ हाथ चलाना पड़ता था और आकृतियो मे छाया व प्रकाश के आधार पर शारीरिक बनावट (modelling) के अनुकूल रेखाओ को मोटा व पतला बनाना होता था जबकि जैन पुस्तक-चित्रों मे इसके विपरीत (अत्यन्त छोटे चित्र-स्थल के कारण) ब्रुश को बिलकुल आगे से लगभग बालों के पास से पकडकर हथेली व उगली के बल पर रेखाएं खेंचनी पडती थीं। आकृतिया सपाट तलो वाली होती थी जिनको बांधने के लिये लोच की आवश्यकता नहीं थी; फिर राजस्थानी व मुगल चित्रो के समान सास रोककर बारीक कारीगरीनुमा रेखायें खेंचने का न तो अवकाश था न श्रेय। इस कारण जैन चित्रो की रेखाए अपने मे भिन्न स्वरूप लिये हुए हैं। उनकी क्षिप्रता के अन्तर्गत ऐसा अटूट प्रवाह छिपा है कि उनकी कलात्मकता में किसी प्रकार भी सन्देह नही किया जा सकता। एक प्रकार की यह लिपि-शैली (calligraphic) थी जिसका अपना ही सौन्दर्य होता है।

जैन पुस्तक-चित्रो मे भारतीय कला का सर्व प्रथम परिवर्तित रूप दिखाई देता है। यहा भारतीय व ईरानी तत्त्व घुल मिल गये हैं। तत्कालीन अभिरुचि एव नवीन आवश्यकताओ ने कला का बाना बदल दिया था। छाया प्रकाश व शारीरिक गढन (modelling) का अब पूर्ण अभाव हो गया। आकृतिया सपाट व समतल हो गई, जिनमे लाल, नीले, पीले, चटकदार द्वैविधात्मक रंग भरे जाने लगे।[1] वैज्ञानिक दृष्टिक्रम (perspective) के बजाय मानसिक दृश्या का प्रयोग किया जाने लगा। सारे चित्र को विभिन्न तलो मे विभक्त कर दिया गया और मानसिक मनःस्थिति के अनुसार सयोजित कर दिया गया। इस प्रकार की अभिव्यक्ति मे आकृतियो के यथार्थ स्वरूप का अतिरंजन या विघटन हो गया जिनमे अमूर्त चित्ररचना के लक्षण झलकने लगे जैसा कि ७वी व ८वी शती की आइरिश कला, १२वीं शती की रोमन कला एव २०वी शती के आधुनिक काल की पिकासो की कला में दिखाई देता है।[2] इनकी रेखाएं स्वतन्त्र, एक दूसरे को क्रास करती, कोणात्मक तथा वेगवती थी। जैसे-जैसे कलाकार को तकनीकी अधिकार मिलने लगा, जटिल आकृतियां भी एक ही प्रवाह से युक्त अटूट रेखाओ में बंधने लगी। इनमे स्थिर व विश्रामास्थित आकृतियाँ प्रमुख हैं।

विघटन का तरीका मिलते ही मानवाकृति के विभिन्न अंगो को सुन्दरतम 'विजुअल' (visual) स्थिति मे प्रस्तुत करने की उत्प्रेरणा जागने लगी जैसा कि सवा चश्म चेहरे, लम्बी

---

१. प्रारम्भ मे पृष्ठभूमि में लाल रग भरा जाता था बाद में परसिया के अधिक सम्पर्क के कारण सोने का रग भरा जाने लगा। नीला रंग (लाजवर्द) भी परसिया से ही मंगाया जाता था।

२. इण्डियन पेंटिग पृ० ५-६ डब्ल्यू. जा. आर्चर

नुकीली नाक (एक ओर से देखने की स्थिति में–क्योंकि सम्मुख स्थिति के चेहरे मे नाक का नुकीलापन व लम्बाई की गरिमा दृश्या के कारण लुप्त हो जाती हैं), नाक से लेकर कान तक खिचे मोटे व लम्बे नयन जिनके मध्य टिकी छोटी-छोटी गोल पुतलियाँ, चेहरे की सीमान्त रेखा को पार करती पृष्ठ भूमि मे लटकती आंख[1], छोटी गोल ठुड्डी, उभरा वक्ष (सामने की स्थिति मे), क्षीण कटि व पूर्ण गोलाकार नितम्ब आदि के अंकन मे दिखाई देता है।

यह एक प्रकार का शैलीकरण (stylization) था जैसा कि मिश्र की कला मे भी भासित होता है। इसमे दो विपरीत स्थितियों के अंग को एक साथ सुस्पष्ट दिखाने की जिज्ञासा थी जो पिकासो व ब्राक की १९०५ के आस-पास की घनवादी कला जैसी थी।[2] इन चित्रो के रग भित्ति-चित्रों से समतोष्ण व विविध न होकर उष्ण व सीमित थे। तले सपाट व गहरे रगो मे पटे हुए। चटकीली लाल या सुनहरी पृष्ठभूमि के विरोध मे स्पष्ट स्थूल रेखाओं से मडित आकृतियां उभरने लगी। यथार्थ का सदर्भ टूट जाने से ये आकृतिया न रहकर अब रेखाओ से अनुबधित विरोधी रंगो के सुसंयोजित तले मात्र रह गये जैसा कि हेनरी मातिस की फॉवी कला मे देखने को मिलता है।[3]

जैन अथवा गुजराती चित्र सर्वप्रथम तालपत्रो मे बने मिलते हैं। ये सब चित्र पुस्तको मे बने मिलते हैं। मुगलकला व राजस्थानी कला के आरम्भ तक छिन्न चित्र व भित्ति चित्र बनाने की प्रथा समाप्त हो गई थी। यह शैली पोथियो की हस्तलिखित लिपि के अनुरूप थी मानो अक्षरो के स्वरूपो से ताल-मेल बैठाने के लिये ही इसकी रचना की गई हो।[4] आकृतियो की सरचना मे शायद जैन धर्म का भी आग्रह रहा हो। जैन धर्म के अनुसार आदमी-औरत, पशु-पक्षी कीड़े-मकोड़े, पेड़-पौधे आदि सभी मे जान होती है जिनमे असीम शक्ति होती है अतः इन सभी को एक धरातल पर गिना जाना चाहिये। इसीलिये चित्र धरातल मे आलेखन के समय सब प्रकार के अभिप्रायो के साथ एक समान अलकरण की भावना रही है। कलात्मकता की दृष्टि से जैन चित्रकला बिजन्टियम या रेवेरा की कला के समान गिनी जा सकती है जो एक ओर तो परम्परा से जुडी हुई है व दूसरी ओर उसका विरोध भी करती दिखाई देती है।[5]

जैन चित्रशैली :

जैन चित्र शैली के दो रूप दिखाई देते हैं—जैन व अजैन।[6] प्रारम्भ मे जैन धर्म से सबधित चित्र प्रकाश मे आये। ये श्वेताम्बर जैन धर्म से सबधित चित्र थे। निशीथाचूर्णि, अगसूत्र, कथारत्न-

१. यह आंख जो वास्तव में सवा चश्म चेहरे मे यथार्थ स्थिति मे बहुत ही कम दीखती है, परन्तु कलाकार आख के मूल सौंदर्य को प्रस्तुत करना चाहता था। चेहरे के सदर्भ से हटाकर, इसीलिये उसके मन मे दूसरी आख भी पूर्णाकार बनाने की प्रेरणा जागी। यहा वैज्ञानिक दृश्या का उल्लघन किया गया है तथा मानसिक दृश्या का प्रयोग अपनाया गया है।

२. इण्डियन मिनियेचर, पृ० ३७ मारियो बुसाग्लि।

३. फ्रेंच का कलाकार जिसने २०वी शती मे फॉवीवाद आन्दोलन चलाया था।

४. इण्डियन मिनियेचर, पृ० ४३ मारियो बुसाग्लि। ५. वही, पृ० ५१।

६. अजैन कथानको के चित्रण की शैली अजैन शैली कही जाती है पर ११वी से १७वी शती तक की चित्र शैली एक सी रही है, केवल शनै:-शनैः वह विकासोन्मुख होती रही।

नागर, सग्रहणीसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, कालका कथा, कल्पसूत्र व नेमीनाथ चरित्र आदि की एकाधिक सचित्र पोथिया रची जाने लगी। गुजरात व राजस्थान इनकी रचना के केन्द्र थे। राजस्थान में उदयपुर, बीकानेर तथा जोधपुर इन कलाकारों का स्थान था जिन्हे 'गुरुओं' की जाति का कहा जाता है। राजस्थान मे बहुत अल्प पारिश्रमिक लेकर जैनपोथियो मे चित्र बनाना इनका व्यवसाय था।[1] बीकानेर के मथेरन या मथेर भी जैन चित्र लिखते थे क्योकि उनके पास आज भी चित्र लिखने का सादा कागज मिल जाता है। इनका कहना है कि ये 'कल्पसूत्र' पर या चौबीस तीर्थंकरो की 'चौबीसी' पर चित्र लिखते थे।[2] नागोर, जालोर, जोधपुर, बीकानेर, खेरड़ी, उदयपुर आदि जगह जैन पुस्तकें अधिक लिखी गई। जोधपुर के एक जैन भण्डार मे पालम (दिल्ली) मे चित्रित पुस्तक मिली है। ऐसे ही पालम मे बने ग्रंथ श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, श्री सग्रामसिंह व श्री मोतीचन्द्र खजाची के सग्रहो मे है। गुजरात मे खभात, पाटण, अहमदाबाद व सूरत इसके केन्द्र थे।

राजस्थान व गुजरात से बाहर भी इस शैली का प्रसार रहा है जहां जैन व अजैन दोनों प्रकार की सचित्र पुस्तकें लिखी जाती रही हैं। सारा भाई माणिकलाल नवाब ने 'चित्र कल्प द्रुम' ग्रंथ मे अथक परिश्रम से विभिन्न क्षेत्रो के बने सैकड़ो दुर्लभ चित्रो को सकलित कर सुलभ बना दिया है। इसमे माडू मे (मध्यप्रदेश) रचित चित्र भी शामिल है, जौनपुर (उत्तर प्रदेश) के चित्र भी है। १४६५ ई० का जौनपुर मे वेणीदास गौड कायस्थ का रचित एक जैन ग्रंथ श्री नवाब ने खोज निकाला है। और भी जौनपुर के तीन कल्पसूत्रो पर आपने प्रकाश डाला है।[3] जौनपुर मे बना एक ग्रंथ स्वर्णाक्षरों मे लिखा हुआ है जो बड़ौदा के नरसिह जी के ज्ञान मन्दिर मे है।

अजैन चित्रो मे वसत विलास, लौरिक चदा, गीत गोविंद, बालगोपाल स्तुति, भागवत् पुराण, चौर पचाशिका आदि ग्रंथो का आलेखन गुजरात, मालवा, राजस्थान, पालम (दिल्ली) व उत्तर-प्रदेश में होता रहा है। १४५१ ई० को गुजरात के शासक अहमदशाह कुतुबुद्दीन के समय की ४३६ इच लम्बी व ९२ इंच चौड़ी वसंत विलास की खर्रेनुमा प्रति श्री एन. सी. मेहता ने खोज निकाली है। यह कालिदास की 'ऋतु संहार' रचना पर आवृत है तथा कथात्मक शैली मे इसका चित्रण हुआ है।[4] शैली की दृष्टि से अजैन चित्र भी एक ही परम्परा मे आते हैं। ये चित्र बाद के समय के हैं अतः इनकी शैली अधिक परिष्कृत होने लगी थी। गत्यात्मक कथानको के आग्रह के कारण यहा आकृतियों की जकड़न टूट गई है।

१२९९ ई० मे मुस्लिम सल्तनत के जम जाने के बाद भी स्थानीय अर्थ व्यवस्था व्यापारियो के हाथ मे थी। अतः चित्र रचना व पुस्तक निर्माण मे बाधा नही आई। अब ताल के स्थान पर नीले या सुनहरी पृष्ठभूमि बनाई जाने लगी। १५वीं शती के चित्रो मे परशिया की तुर्कमान शैली

---

1. आर्कलॉग, १९६६, अक २, जैन चित्रकला—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।
2. आर्कलॉग, १९६६, अक २, जैन चित्रकला—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।
3. भारत की चित्रकला—श्री रायकृष्णदास।
4. स्टडीज इन इंडियन पेंटिंग, पृ० १९, एन. सी. मेहता।

का स्पष्ट प्रभाव झलकता है।[1] जिसके लक्षण थे–छाया, प्रकाश का अभाव, दृश्या का उन्मुक्त प्रयोग, गहराई की कमी आदि। जैनों का परसिया से व्यापारिक सबंध था। इनके रंग विशेषतौर पर नीला, (लाजवर्दी-'लेपिज–लाजली') परसिया से मंगाये जाते थे।

विषय विभिन्नता के साथ ही रेखाओ मे भी विविधता व गोलाई आने लगी। कपडे झीने व पारदर्शक बनाये जाने लगे जो तरह-तरह के बेल बूंटों से सुसज्जित होते थे। अंकन मे धैर्य बढ़ने लगा। आकृतियो का 'स्पेस' मे उचित स्थान होने लगा तथा वे और भी स्पष्ट उभरने लगी—उनके आसनो में गति व वैविध्य आने लगा। रग की श्रेणिया (टोन्स) बढ़ गई तथा अब वे अधिक संतुलित तलो में संयोजित होने लगे। शैली का आग्रह १६वी शती में यथार्थ की ओर झुकता सा दिखने लगा, फिर भी तले एक दूसरे पर बनाना नही छूटा। आकृतिया वैसे ही सौदर्यमूलक सूत्र के अनुसार विघटित होती रही। अभी भी चित्र द्वैविधात्मक ही बनते थे। इस शैली की महत्ता आने वाली चित्रकला की भूमि तैयार करने मे थी। इस शैली ने भारतीय कला को नये आयाम दिये है– वे आयाम जिसके लिये यूरोप के कलाकार १६वी शती के अन्तिम चरण मे व २०वी शती के प्रारम्भ में प्रयत्न करते रहे। राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही जैन चित्र शैली की देन है। इसकी मौलिकता व शक्ति को भुलाया नही जा सकता।

---

१. इण्डियन पेंटिंग, डब्ल्यू. जी. आर्चर।

२६ | लोककला और लोकसंस्कृति

डॉ० महेन्द्र मानावत

जैनो लोग धर्मजीवी होते हैं। उनका सारा जीवन धार्मिक ताने-वाने से गुंथा हुआ होता है। व्रत, उपवास, अनुष्ठान, तपस्या, ईश-आराधना एवं अन्यान्य धार्मिक क्रियाकलापो तथा विश्वासो मे समर्पित भाव से अपने तन-मन-धन को लगाने मे ही उन्हे आनन्द की अनुभूति होती है। साहित्य, सगीत, सस्कृति एवं कला के उन्नयन तथा प्रचार-प्रसार मे जितना योग जैनियों का रहा है उतना अन्य किसी का नही। जैन ग्रन्थ-भण्डारो मे संरक्षित विपुल एवं समृद्ध सामग्री यदि विस्मृत कर दी जाय तो हमारे इतिहास की सास्कृतिक पीठिका का नक्शा ही नगण्य हो जायगा। जैन मन्दिरो का कलात्मक शिल्प और वास्तुकारीगरी की कही कोई समता नही। मन्दिरो के भितिचित्र, हस्तचित्र तथा काष्ठ-चित्रो के सरक्षण एवं विकास मे भी इनका वेजोड योग रहा है।

सांस्कृतिक अभिरुचि :

जैनी लोग प्रारम्भ से ही वणिक अधिक रहे हैं। अपने व्यापार द्वारा विपुल धन कमाकर अधिकाधिक पैसा अपने धर्म-कर्मों तथा सास्कृतिक अभिरुचियों मे खर्च करने को उनकी तवियत रहती है। लोक-संस्कार जितने उत्साह और आनन्दपूर्वक जैनियो में मनाये जाते हैं उतने अन्य जातियों मे नही। अन्य जातिया स्वत. मनोरजित होती है, स्वयं नाचती गाती हैं परन्तु जैनियो के यहा अन्यान्य कलापेशा जातिया जो-जो अपना हुनर कर्म करती हैं, वे अपनी-अपनी कला की उत्कृष्ट कृतिया ऐसे प्रसगो पर प्रस्तुत करती हैं। विवाह-शादी पर चित्रकार भाँति-भाँति के चितराम दीवालो पर अकित करता है। विवाह के लिये ये चित्र मांगलिक समझे जाते हैं इसीलिए इनके विना विवाह की शुरुआत हो ही नही सकती। यो अव तक की खोजो के अनुसार संसार की प्राचीन से प्राचीनतम कलाओ के उदाहरण भितिचित्रो के ही प्राप्त हुए है। ये भितिचित्र चाहे पुरातनगुफाओ के हो, चाहे धर्मस्थानो, राजप्रासादो अथवा सेठ श्रीमंतो की हवेलियो के हो, कलात्मक अंकनो मे सर्वाधिक महत्त्व इन्ही भित्तिचित्रो का रहा है। प्राचीन ग्रंथो मे ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जवकि श्रेष्ठिजन अपने उद्यानो मे विविध प्रकार की काष्ठ, प्रस्त, चित्र तथा लेप्य कारीगरी से आलीशान चित्रशालाएं वनवाते थे। श्रुताग 'नाया धम्म कहाओ' मे मणिकार श्रेष्ठिनन्द राजगृह के उद्यान मे एक इसी प्रकार की चित्रशाला वनवाता है जिसमे सैकड़ो स्तम्भ और नानाप्रकार की लकड़ी, चूना, रंग व मिट्टी तथा विविध प्रकार के द्रव्यो की आकृतियो का निर्माण कराता है।

विवाह के विविध प्रसगो पर गाने वजाने वाले कलावंत पनपे, ढोल बजाने वाला ढ़ोली, ढाकिया वजाने वाला बांकियादार तथा ताशेवालों को सरक्षरण मिला कारण कि गाजे-वाजे के बिना विवाहश्री का रंग ही फीका रह जाता है। इसी प्रकार कुंकुंम के तिलक के लिए कलात्मक चोपड़े, लड़की को देने के लिये कलात्मक बाजोट, दूल्हे के वादने के लिए कलात्मक तोरण, कलात्मक खाट, कलात्मक रोड़ीथंभ, कलात्मक पेटियो की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए खैरादियों को धन्धा मिला और उनकी सम्पूर्ण कलात्मक काष्ठकलाओ को सरक्षरण मिला। विविध नृत्यमुद्राओ तथा वाध्य-भंगिमाओ मे देवदासियो के सुन्दर कलात्मक अकन मदिरों मे तथा घरों मे सजावट के प्रसाधन बने। कठपुतलियों की हजारों वर्षों की परम्परा को जीवित रखने में भी जैनियों का ही विशेष योग रहा है। विवाह-शादियो तथा अन्यान्य मौको पर ये पुतली वाले अपनी पुतलियां लेकर आते और उनके विविध करतव दिखाकर इनाम-इकराम पाते थे। आज तो यहां की यह धरोहर विदेशो तक को लुभाने-चकित करने में कामयाव हुई है। प्रतिवर्ष विदेशो से आने वाले सैलानी इनके खेल देखकर दांतो तले अंगुली दबाते हैं। भारतीय लोककला मण्डल उदयपुर जैसी संस्था ने तो इन्ही पुतलियों के आधार पर पारम्परिक पुतलियो का सर्वोच्च अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया था।

लोक साहित्य का सृजन और संरक्षरण :

लोक साहित्य के सरक्षरण मे भी जैनियों का कम योग नही रहा। पवाड़े, फागू, चर्चरी, वेली, रास, हीयाली आदि की विपुल रचनाकर इन्होने लोक जीवन की इन समृद्ध विधाओं को विकसित और सरक्षित कर इन्हें लुप्त होने से बचाया। महाराणा कुम्भा के सम्मानित गुरु हीरानन्द सूरि पहुँचे हुए जैन कवि थे जिन्होंने सं० १४८५ मे विद्याविलास पवाड़ा बनाया जो लोककथा सम्बन्धी राजस्थानी का पहला काव्य माना जाता है। सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यान ढोलामारू के प्राचीन दोहों को एकत्र कर जैन कवि कुशललाभ ने ढोलामारू की चौपाई की रचना की। इसी प्रकार कवि हीरकलश की 'सिहासन बतीसी', हेमानन्द की 'वैताल पचीसी' तथा 'भोजचरित्र चौपाई' भी लोककथाओं पर आधारित हैं। राजा विक्रम की लोककथाओ के सम्बन्ध की रास की रचना मे मंगल मारिणक्य ने विशेष नाम कमाया। इससे भी अधिक कार्य हुआ लोककथाओं और लोकगीतो की देशियो के आधार पर लोकसाहित्य के विपुल सृजन का। समय-सुन्दर, राजलाभ, महिमसमुद्र, हीरकलश, हेमानन्द, समयप्रमोद, ज्ञानविलास, जिनहर्ष, जयनिधान, धर्मसी, हंस प्रमोद, देपाल आदि कवियों का हीयाली साहित्य आज भी उत्कृष्ट साहित्य की लोकधरोहर बना हुआ है। विवाह शादियों में आज भी पग-पग पर जँवाई को हीयालियो के अर्थ छुडाने पड़ते हैं। यदि जँवाई इनके अर्थ नही छुडा सकता है तो उसे गीत मे गालियां तक दी जाती हैं। मुकलावे पर जब जँवाई को ताले में दे दिया जाता है तो प्रातः वाहर वैठी औरते नानाप्रकार की हीयालिया गाती हैं जिनका भीतर से जँवाई को जवाव देना होता है। इसी प्रकार भोजन के समय भी कई प्रकार की आरसियां-पारसियां गाई जाती हैं।

लेखन-कला :

लेख लिखने के आधारपत्रों का भी अपना एक कलात्मक इतिहास है। इन आधारों में वल्कल, काष्ठ, दन्त, लोह, ताम्र, रजत आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन पर लेखन की पद्धतियां भी कई थी। इन पद्धतियो मे अक्षर खोदकर लिखने की उत्कीर्णन पद्धति, सीकर लिखने की स्यूत

पद्धति, बुनकर लिखने की व्यूत पद्धति, छेदकर लिखने की छिन्न पद्धति, भेदकर लिखने की भिन्न पद्धति, जला कर लिखने की दग्ध पद्धति, तथा ठप्पा देकर लिखने की संक्रान्तित पद्धति विशेष रूप मे प्रचलित थी। महीन से महीन लेखन लिखने की कला मे भी जैनियों में मुख्यतः जैनसाधु का मुकाबला कोई नही कर सकता।

लोकनाट्य : ख्याल-तमाशे :

नाटकों तथा ख्याल-तमाशो के क्षेत्र में भी जैनियों का उल्लेखनीय योग रहा है। रास चर्चरी, फागुसंज्ञक काव्य ग्रन्थो मे भी इनका उल्लेख मिलता है। ये नाटक गेय एवं अभिनेय होते थे, जो किन्ही मांगलिक प्रसंगों, उत्सवों, गुरु-आगमनों तथा मन्दिर की प्रतिष्ठा के मौकों पर खेले जाते थे। प्रदर्शको के साथ-साथ दर्शक भी एकरस होकर उनके साथ गाते थे। इन खेलो मे डडियों का प्रयोग विशेष रहता था तथा नृत्य के समय तालियो का वडा जोर था। फाग काव्य फागुन मे विशेष रूप से खेले जाते थे इसलिए इनका यह नाम चल पडा प्रतीत होता है।

नाटको तथा खेल तमाशो का यह जोर तो आज भी देखने को मिलता है। गन्धर्व जाति के लोग अपने सभी ख्याल जैन-मन्दिरो अथवा जैनियो की वस्ती में ही करते हैं। जैनियों के अतिरिक्त ये कही अपना मंच नही मांडते। इनका पड़ाव मन्दिरो में रहता है। जैनियों के वहीं ओसरे के अनुसार इनके खाने-पीने की व्यवस्था होती है और व्रत-नियमों में भी जैनियो की तरह ये बधे होते हैं। ये लोग रात्रिभोजन भी नही करते और वडे सात्विक होते हैं। इनके सभी ख्याल धार्मिक आख्यानो से सम्बन्वित होते हैं। इन्हे प्रदर्शित करने के लिए तख्तों का मंच वनाया जाता है जो तीन ओर से खुला होता है। इस पर एक साधारण सा चंदोवा तान दिया जाता है। प्रारम्भ में सभी पात्र स्तुति-वंदन के लिए मंच पर आते है। मच के एक ओर गाने वजाने वाले वैठ जाते हैं। इन्ही के पास इनका पोथीवाचक प्रेरक वैठा रहता है जो प्रत्येक पात्र से सम्वन्वित बोल सुनाकर पात्र को गाईड करता रहता है। ये लोग मुख्यतः श्रीपाल-मैनासुन्दरी, सुरसुन्दरी, चन्दनवाला, सोमासती अंजना, सत्यवान राजा हरिश्चन्द्र आदि का खेल करते हैं। अलवर, भरतपुर तथा जयपुर मे इन लोगो की अच्छी वस्ती है।

राजस्थान मे ख्यालो की वड़ी समृद्ध परम्परा रही है। ये ख्याल यहा गायकी, नृत्य-अदायगी तथा रंगशिल्प की दृष्टि से विभिन्न शैलियों मे प्रदर्शित किये जाते हैं। इनके सरक्षण मे भी जैनियो का भारी योग रहा है। जैनियो में कई अच्छे लेखक भी हुए हैं जिन्होने पारम्परिक रगतों मे ख्यालो की उत्कृष्ट रचना की। ये ख्याल आज भी यहां प्रदर्शित होते हे। तुर्रा-कलगी के ख्यालो के पीछे तो जैनियो ने सैकडो रुपयो की निछरावल तक करदी। सुप्रसिद्ध संत चौथमलजी महाराज ने ख्यालो की धुनो मे धार्मिक कथानको पर कई चरित्र लिखे जिन्हें वे अपने व्याख्यानों में नियमित रूप से गा-सुना कर लोगों को आनन्दमग्न कर देते थे। उनके व्याख्यान मे जात-पांत धर्म-कर्म का कोई भेदभाव नहीं रहता था। हजारों की तादाद मे सारा गांव उन्हें सुनने के लिए टूट पड़ता था।

उदयपुर मे ख्याल-तमाशो का एक समय वडा जोर था। जसवंत सागर ने अपने उदयपुर वर्णन मे इनका वड़े विस्तार से उल्लेख किया है। उसने यहां तक लिख दिया कि—

दूहा दसरावें दीवाली पै, तमाशा गणगोर।
एसहृ उदयापुर पछै, ख्याल नहीं इन ठोर॥

इसी उदयपुर में एक कवि देवीलाल हुए जिन्होंने कई ख्यालों की सरस रचना की। इनका एक गुटका कुछ वर्ष पूर्व मेरे देखने में आया था जो लगभग सौ वर्ष पुराना था। इसमे छोटे-छोटे कोई आठ ख्याल लिखे हुए थे। सौ-डेढ़-सौ वर्ष पूर्व के देवीलाल की भांति आज भी उदयपुर में एक देवीलाल और है—श्री देवीलाल सामर, जिन्होने न केवल ख्याल तमाशो की रचना ही की अपितु भारतीय लोक कलामडल की स्थापना कर न केवल राजस्थान मे, न केवल हिन्दुस्तान मे बल्कि विदेशों तक मे यहां की लोककला को प्रतिष्ठित कर बेनजीर मिसाल कायम कर दी। यहां के कला विषयक कई प्रकाशन भी अपने क्षेत्र के अग्रणी सिद्ध हुए है। अब तो विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन में भी इनका उपयोग होने लगा है।

लोक चित्रकारी :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है चित्रकारी के क्षेत्र में जैनियों का जो योग रहा है, वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। पाप-पुण्य धर्म-अधर्म, सत्य-झूठ सुकर्म-कुकर्म सदाचार-दुराचार से सम्बन्धित सैकड़ो-हजारो प्रकार के शिक्षात्मक चित्रों द्वारा समाज को सदाचार तथा सुसस्कृतमय बनाने में निश्चय ही निराली भूमिका निर्मित हुई है और इससे मनुष्य सरल तथा संयमी जीवन जीने की ओर प्रवृत्त हुआ फलतः अधिकाधिक सेवा तथा धर्माचरण की ओर उसका तन, मन तथा धन लगा। यही कारण है कि जितने भी धार्मिक कर्म प्रतिष्ठान हमे देखने को मिलते हैं उनमे से अधिकांश जैनियो द्वारा निर्मित-प्रवर्तित है।

कुछ वर्ष पूर्व जैनियों द्वारा निर्मित मुझे चित्रमय एक ऐसा सांपसीढ़ी का खेल प्राप्त हुआ जिसमें सभी ७२ खंडो के विविध नाम अंकित किये हुए है। इनमें सबसे ऊपर गजलोक शिवलोक, बैकुंठ तथा ब्रह्मलोक हैं। सीढ़ियों से प्राप्त होने वाले लोको में चन्द्रलोक, सूरजलोक- इन्द्रलोक, अमरापुर, तपलोक तथा दिगपाल लोक प्रमुख हैं। ये सीढिया भी हरिभक्ति, देवतपस्या पूजाव्रतधारी, माता-पिता की भक्ति, दयाभाव, परमारथ जैसे स्थान-खण्डो से प्रारम्भ होती है। सांपों के काटने वाले खडो मे परनारी मिथुन, विश्वासघात, झूठ-चुगली गौ-हत्या, अधर्मी, मिथ्यावान, पशुहत्या, ब्रह्महत्या जैसे खण्ड हैं जिनसे स्पष्ट है कि यदि मानव में उपर्युक्त दुर्गुण है तो उसकी दुर्गति स्वाभाविक है और यह पतन साँप के द्वारा उसे ठेठ तलातल, रसातल, नरक, पलीतयोनी जैसे स्थानों पर पहुचाता है जहां मनुष्य को भारी यातनाओ की चक्की मे पीसना पडता है। सांपसीढी जैसे सैकडों चित्रों में मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्म के अनुसार फल-चक्र मिलेंगे। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों के सम्बन्ध के भी अनेक चित्र मिलते है। तेरापंथी साधुओं ने चित्रकारी तथा लिपिकारी मे विशेष कौशल प्रकट किया है।

धर्मस्थानों का साहित्य :

कहने का तात्पर्य यह कि लोककला लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य का कोई क्षेत्र और कोई विधा ऐसी नही जिसे जैनियों का संरक्षण और सृजन में योग नही प्राप्त हुआ हो। जैनलेखको ने अपने-अपने समय की कथा, कहानियों एवं गीतों को धर्म का बाना पहनाकर जो संरक्षण दिया उससे तत्कालीन समाज, सभ्यता एवं संस्कृति का भी भलीप्रकार अध्ययन-अनुसंधान किया जा सकता है। धर्मस्थानो में धार्मिक लोकसाहित्य की आज भी इतनी विधाएं मिलती हैं कि उन्हें देख-सुनकर हमें चकित होना पड़ता है। इनमें से कुछ भजन तवन, ढ़ाले व्यावले, पालणे, लेखे, ओरे, गणधर,

विरहमान, सपने, वधावे, स्तुतिया, थोकडे, आख्यान, गरभचितारणीयें, चूंदड़ियां, कूकडे, पटोदिये, बारहमासे, तिथिगीत, चौक, सरवण, झामटडे गरबे, लावणियां आदि का संग्रह मैंने स्वयं ने किया है। अब तक इस संग्रह की ओर हमारा ध्यान नही के बराबर गया है। इस ओर अधिक सग्रह और सधान की आवश्यकता है।

लोककला के विविध रूप :

जैनियो का कला-सस्कृति के क्षेत्र मे ही नही अन्यान्य समाज, जाति तथा वर्ग विशेष के उन्नयन-विकास में भी भारी योग रहा है। भीलो के सुप्रसिद्ध गवरीनाट्य में अन्य भारत गाथाओं के साथ वेलावाणिया का भारत भी सुप्रसिद्ध है। इससे भी जैनियो की कलाभिरुचि और समाज सेवा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बाबा रामदेवजी के समय दला तथा लाखा बाणिया हुए जिनके लिखे कई भजन आज भी रामदेवजी की पूजक जातियो में सुनने को मिलते हैं। लोक सस्कृति के विशिष्ट स्वरूपो में थापो, भूमि अलकरणो तथा मेंहदी मांडनो के प्राचीन हस्त पन्ने भी जैनियो के सग्रहो में विपुल रूप में मिलते है। लगभग ढाई सौ वर्ष पुराने त्यौहारो के चौक पूरने से सम्बन्धित बहुरंगी मांडनें, पलगो के पायों पर के रागरागनियो के लोकचित्र, दरियो पर विविध नृत्य मुद्राए तथा पशु-पक्षियो की बड़ी सुन्दर बुनावट भी मेरे देखने में आई है। प्रतिदिन के प्रयोग-उपयोग में आने वाली हर छोटी से छोटी चीज को लोककलात्मक अकन देकर उसे अधिकाधिक आकर्षक और नयन-सुखी रूप देने में शायद ही जैनियो की कोई समता कर सके।
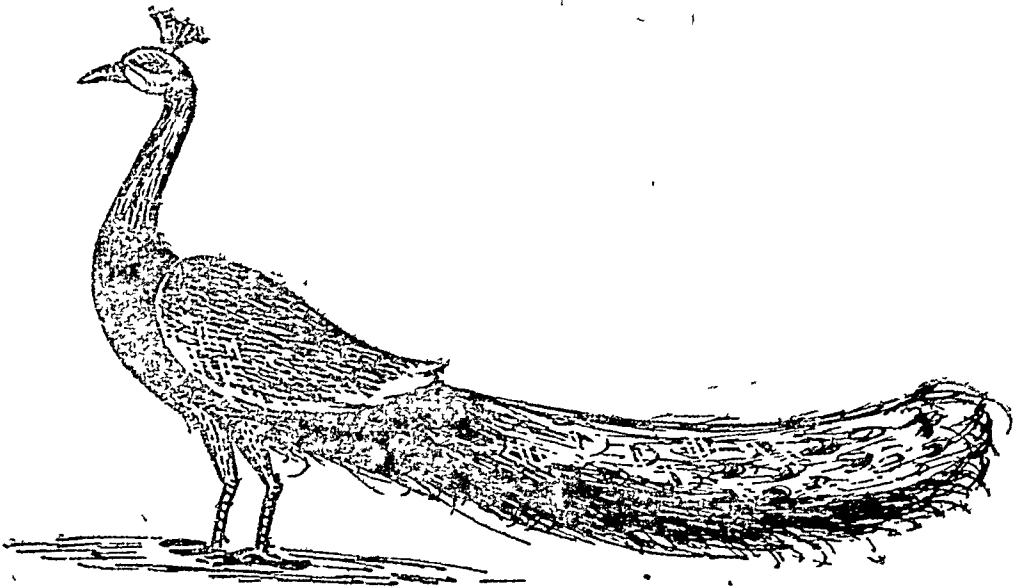
२

भाषा और साहित्य

२७ | जैन साहित्य की विशेषताएँ

डॉ० नरेन्द्र भानावत

(१) विविध और विशाल :

जैन साहित्य विविध और विशाल है। सामान्यतः यह माना जाता है कि जैन साहित्य मे निर्वेद भाव को ही अनेक रूपों और प्रकारो मे चित्रित किया गया है। यह सच है कि जैन साहित्य का मूल स्वर शान्त रसात्मक है पर जीवन के अन्य पक्षो और सार्वजनीन विषयो की ओर से उसने कभी मुख नही मोडा है। यही कारण है कि आपको जितना वैविध्य यहां मिलेगा, कदाचित अन्यत्र नही। एक ही कवि ने शृंगार की पिचकारी भी छोडी है और भक्ति का राग भी अलापा है। वीरता का ओजपूर्ण वर्णन भी किया है और हृदय को विगलित कर देने वाली करुणा की बरसात भी की है। साहित्य के रचनात्मक पक्ष से आगे बढकर उसने उसके बोधात्मक पक्ष को भी सम्पन्न बनाया है। व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र, तन्त्र इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति आदि वाग्मय के विविध अग उसकी प्रतिभा का स्पर्श कर चमक उठे हैं।

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण जैन साहित्य दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है (१) आगम साहित्य और (२) आगमेतर साहित्य। आगम साहित्य के दो प्रकार हैं। अर्थआगम और सूत्रआगम। तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट वाणी अर्थागम है। तीर्थंकरों के प्रवचन के आधार पर गणधरो द्वारा रचित साहित्य सूत्रागम है। ये आगम आचार्यों के लिये अक्षय ज्ञानभण्डार होने से 'गणिपिटक' तथा संख्या मे बारह होने से 'द्वादशांगी' नाम से भी अभिहित किये गये हैं। प्रेरणा की अपेक्षा से ये अग-प्रविष्ट कहलाते हैं। द्वादशांगी के अतिरिक्त जो अन्य उपाग, छेद, मूल और आवश्यक हैं वे पूर्वधर स्थविरो द्वारा रचे गये हैं और अनग प्रविष्ट कहलाते हैं।

आगमेतर साहित्य के रचयिता जैन आचार्य, विद्वान सन्त आदि हैं। इसमें गद्य और पद्य के माध्यम से जीवनोपयोगी सभी विषयो पर प्रकाश डाला गया है। यह वैविध्यपूर्ण जैन-साहित्य अत्यन्त विशाल है। हिन्दी के आदिकाल का अधिकांश भाग तो इसी से धनी है। यह साहित्य निर्माण की प्रक्रिया आज तक अनवरत रूप से जारी है। इसका प्रकाशन बहुत कम हुआ है। इसके प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। ज्यो-ज्यो यह विद्वानो की दृष्टि में आयेगा त्यो-त्यो साहित्य के इतिहास पर नया प्रकाश पडता जायेगा।

(२) विभिन्न काव्य रूपों का निर्माण :

जैन साहित्य की यह विविधता विषय तक ही सीमित नही रही उसने रूप और शैली मे भी अपना कौशल प्रकट किया। आगमेतर साहित्य को अभिव्यक्ति की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं (१) पद्य और (२) गद्य। ये विविध रूपो मे विकसित हुए। पद्य साहित्य के सौ से अधिक काव्य रूप देखने को मिलते हैं। सुविधा की दृष्टि से समस्त पद्य साहित्य के चार वर्ग किये जा सकते है। चरित काव्य, उत्सव काव्य, नीति काव्य और स्तुति काव्य। चरित काव्य मे सामान्यतः किसी धार्मिक पुरुष, तीर्थंकर आदि की कथा कही गई है। ये काव्य, रास, चौपाई, ढाल, पवाडा सधि, चर्चरी, प्रवन्ध, चरित, सम्वन्ध, आख्यानक, कथा आदि रूपो मे लिखे गये है। उत्सव काव्य विभिन्न पर्वो और ऋतु विशेष के वदलते हुए वातावरण के उल्लास और विनोद को चित्रित करते है। फागु, धमाल, वारहमासा, विवाहलो धवल, मगल आदि काव्य रूप इसी प्रकार के है। इनमे सामान्यतः लौकिक रीति-नीति को माध्यम वनाकर उनके लोकोत्तर रूप को ध्वनित किया गया है। नीति-काव्य जीवनोपयोगी उपदेशो से सम्वन्धित है। इनमे सदाचारपालन, कपायत्याग, व्यसनत्याग, ब्रह्मचर्य, व्रत, पच्छक्खाण, भावना, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, दया, सयम, आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। संवाद, कक्का, मातृका, वावनी, छत्तीसी, कुलक, हीयाली आदि काव्य रूप इसी प्रकार के हैं। स्तुतिकाव्य महापुरुषो और तीर्थंकरो की स्तुति से सम्वन्धित है। स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, वीनती, नमस्कार, चौवीसी, वीसी आदि काव्यरूप स्तवनात्मक ही है।

स्थूल रूप से गद्य साहित्य के भी दो भाग किये जा सकते है। मौलिक गद्य सृजन और अमौलिक गद्य, टीका, अनुवाद आदि। मौलिक गद्य सृजन धार्मिक, ऐतिहासिक, कलात्मक आदि विविध रूपो मे मिलता है। धार्मिक गद्य मे सामान्यत. कथात्मक और तात्विक गद्य के ही दर्शन होते है। ऐतिहासिक गद्य गुर्वावलि, पट्टावली, वशावलि, उत्पत्तिग्रन्थ, दफ्तर वही, टिप्पण आदि रूपो मे लिखा गया है। इन रूपो मे इतिहास-धर्म की पूरी-पूरी रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। आचार्यो आदि की प्रशस्ति यहा अवश्य है पर वह ऐतिहासिक तथ्यो की हत्या नही करती। कलात्मक गद्य वचनिका, दवावैत, वात, सिलोका, वर्णक, सस्मरण आदि रूपो मे लिखा गया है। अनुप्रासात्मक झकारमयी शैली और अन्तर्तुकात्मकता इस गद्य की अपनी विशेषता है। आगमों मे निहित दर्शन और तत्व को जनोपयोगी वनाने की दृष्टि से प्रारम्भ मे निर्युक्तिया और भाष्य लिखे गये। पर ये पद्य मे थे। वाद मे चलकर इन्हीं पर चूर्णिया लिखी गई। ये गद्य मे थी। निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि साहित्य प्राकृत अथवा सस्कृत मे ही मिलता है। आगे चलकर टीकायुग आता है। ये टीकाए आगमो पर ही नही लिखी गई वरन् निर्युक्तियो और भाष्यो पर भी लिखी गईं। ये टीकाए सामान्यत. पुरानी हिन्दी मे लिखी मिलती है। इनके दो रूप विशेष प्रचलित है टव्वा और वालाववोध। टव्वा मे सक्षिप्त रूप है जिसमे शब्दो के अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व मे लिख दिये जाते है। पर वालाववोध मे व्याख्यात्मक समीक्षा के दर्शन होते है। यहा निहित सिद्धान्त को कथा और दृष्टान्त दे-देकर इस प्रकार विवेचित किया जाता है कि वालक जैसा मन्द वुद्धि वाला भी उसके सार को ग्रहण कर सके। पद्य और गद्य के ये विभिन्न साहित्य रूप जैन-साहित्य की ही अपनी विशेपता है।

(३) लोकभाषा का प्रयोग :

जैन-साहित्यकार सामान्यतः साधक और सत रहे है। प्रवचन, व्याख्यान, लोकोपदेश उनके

दैनिक कार्यक्रम का अंग रहा है। साहित्य उनके लिए विशुद्ध कला की वस्तु कभी नहीं रहा, वह धार्मिक प्रचार और साधना का अंग बनकर आया है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति मे सरलता, सुबोधता और सहजता का सदा आग्रह रहा है। भाषा-विज्ञान का यह सामान्य नियम रहा है कि जब-जब साहित्यकारों ने किसी भाषाविशेष को व्याकरण के जटिल नियमो मे बाधा है तब-तब जन-साधारण ने सामान्य लोक-भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। जब वैदिक सस्कृत कठोर नियमो मे जकड़ दी गई तब प्राकृत लोकभाषा के रूप मे प्रचलित हुई। जैन-साहित्य के मूल-स्रोत सारे आगम प्राकृत भाषा मे ही रचे गये हैं। यह वह युग था जब इन जनपदीय भाषाओ का तिरस्कार किया जाता था और अधम पात्रो के मुख से सस्कृतादि नाटको मे प्राकृत के बोल उच्चरित करवाये जाते थे। पर महावीर ने इस बात की परवाह नहीं करते हुए अपनी अमरवाणी का उद्घोष प्राकृत के माध्यम से ही किया। जब प्राकृत को भी नियमो की कठोर कारा मे बन्दी बना दिया गया तब जैन-साहित्यकार अपनी बात अपभ्रंश मे कहने लगे। जब अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाए विकसित हुईं तो जैन-साहित्यकार अपनी बात इन्ही जनपदीय भाषाओ मे सहज भाव से कहने लगे। यह भाषागत उदारता उनकी प्रतिभा पर आवरण नही डालती वरन् भाषाओं के ऐतिहासिक विकासक्रम को सुरक्षित रखे हुए हैं।

(४) समन्वयात्मक सहज-सरल शैली :

जैन-साहित्यकार साहित्य को कलाबाजी नही समझते। वे उसे अकृत्रिम रूप से हृदय को प्रभावित करने वाली आनन्दमयी कला के रूप मे देखते हैं। जहा उन्होने लोक-भाषा का प्रयोग किया वहा भाषा को अलंकृत करने वाले सारे उपकरण ही लोक जगत् से ही चुने है। जैनेतर साहित्यकारो ने (विशेष कर चारणी शैली में लिखित साहित्य) जहां भाषा को विशेष प्रकार के शब्द चयन द्वारा, विशेष प्रकार के अनुप्रास प्रयोग (वयरण सगाई आदि) द्वारा और विशेष प्रकार के छन्दानुबन्ध द्वारा एक विशेष प्रकार का आभिजात्य गौरव और रूप दिया है वहा जैन-साहित्यकार भाषा को अपने प्रकृत रूप मे ही प्रभावशाली और प्रेषणीय बना सके है। यहां अलंकारो के लिए आग्रह नही। वे अपने आप परम्परा से युगानुकूल चले आ रहे है। शब्दो मे अपरिचित-सा अकेलापन नही, उनमें पारिवारिक सम्बन्धो का सा उल्लास है। छन्दों मे तो इतना वैविध्य है कि सभी धर्मों, परम्पराओ और रीति-रिवाजो से वे सीधे खिंचे चले आ रहे है। ढालो के रूप मे जो देशिया अपनाई गई है उनमें कभी तो "मोहन मुरली वागे छै" और कभी 'गोकुल नी गोवालणी मही वेचवा चाली'। लोकोक्तियो और मुहावरो का जो प्रयोग किया गया है, वे शास्त्रीय कम और लौकिक अधिक है। पर इस विश्लेषण से यह न समझा जाये कि उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण था या बिलकुल ही नही था। ऐसे कवि भी जैन जगत् मे हो गये है जो शास्त्रीय परम्परा मे सर्वोच्च ठहरते है, आलंकारिक चमत्कारिता, शब्दक्रीड़ा और छन्दशास्त्रीय मर्यादा पालन मे जो होड़ लेते प्रतीत होते है। पर यह प्रवृत्ति जैन साहित्य की सामान्य वृत्ति नही है। शैलीगत समन्वय भावना के दर्शन वहा स्पष्ट हो जाते है, जहां वे नायक को मोहन और नायिका को गोपी कह देते है। लगता है जिस समय वैष्णव धर्म और वैष्णव साहित्य का अत्यन्त व्यापक प्रचार था, उस समय जन-साधारण को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए जैन-साहित्यकारो ने अपने साहित्य मे कृष्ण, राधा, गोपी, गोप, गोकुल, मुरली, यशोदा, जमुना, आदि शब्दो को स्थान दे दिया। विभिन्न देशियां तो लगभग वैष्णव प्रभाव को ही सूचित करती हैं।

(५) नायक-नायिका की परिकल्पना :

जैन-साहित्य मे जो नायक आये है उनके दो रूप है मूर्त्त और अमूर्त्त । मूर्त्त नायक मानव है। अमूर्त्त नायक मनोवृत्ति विशेष। मूर्त्त नायक साधारण मानव कम, असाधारण मानव अधिक है। यह असाधारणता आरोपित नही, अर्जित है। अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के वल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी मे पहुंच गये है। ये विशिष्ट श्रेणी के लोग त्रेसठशलाका पुरुष के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त सोलह सतिया, स्थूलिभद्र, जम्वूस्वामी, सुदर्शन, गजसुकुमाल, श्रीपाल, धन्ना, आपाढ़-भूति, शालिभद्र, आदि आध्यात्म पुरुप भी आलेख्य योग्य है। ये पात्र सामान्यतः राजपुत्र या कुलीन वशोत्पन्न होते हैं। सासारिक भोगोपभोग की सभी वस्तुएं इन्हे सुलभ होती है। पर ये संस्कारवश या किसी निमित्त कारण से विरक्त हो जाते है और प्रवृज्या अंगीकार कर लेते है। दीक्षित होने के वाद इन पर मुसीव्रतों के पहाड टूटते है। पूर्व जन्म के कर्मोदय कभी उपसर्ग वनकर, कभी परीपह वनकर सामने आते है। कभी-कभी देवता रूप धारण कर इनकी परीक्षा लेते है, इन्हें अपार कष्ट दिया जाता है पर ये अपनी साधना से विचलित नही होते। परीक्षा के कठोर आघात इनकी आत्मा को और अधिक मजवूत, इनकी साधना को और अधिक स्वर्णिम तथा इनके परिणामो को और अधिक उच्च वना देते है। अन्ततोगत्वा सारे उपसर्ग शान्त होते हैं, वेशधारी देव परास्त होकर इन के चरणों मे गिर पड़ते हैं और पुष्पवृष्टि कर इनके गौरव मे चार चांद लगा देते है। ये पात्र केवल-ज्ञान के अधिकारी वनते है, लोक-कल्याण के लिए निकल पड़ते हैं और अन्ततः परमपद मोक्ष की प्राप्ति कर अपनी साधना का नवनीत पा लेते है। प्रतिनायक परास्त होते है पर अन्त तक दुष्ट वन-कर नही रहते। उनके जीवन मे भी परिवर्तन आता है और वे नायक के व्यक्तित्व की किरण से संस्पर्श पा अपनी आत्मा का कल्याण कर लेते है।

अमूर्त्त नायक मे 'जीव' या 'चेतन' को गिना जा सकता है तथा नायिका 'सुमति' को। अमूर्त्त प्रतिनायको मे 'मोह' सवसे वलशाली है और प्रतिनायिका मे 'कुमति' को रख सकते हैं। सामान्यतः रूपक के काव्यो मे ही अमूर्त्त नायक-नायिका की परिकल्पना की गई है। इनमे जीव को राजा वनाकर मोहरूपी शत्रु के साथ युद्ध करने का भाव खडा किया जाता है और अन्ततः चेतन राजा अपने आन्तरिक गुणो से शत्रु-सेना को परास्त कर मुक्ति-रूपी गढ़ का अधिपति वन वैठता है। सुमति-कुमति का द्वन्द्व भी युद्ध-रूपक ही है। यहा पात्रो की मनः स्थितियो का सघर्ष न दिखाकर सद्-असद् वृत्तियों का स्थूल संघर्षमात्र दिखाया गया है। अन्ततः असद् प्रवृत्तियां पराजित होती है और सद् प्रवृत्तिया फलती-फूलती हैं।

(६) सुखान्त-भावना :

जैन-साहित्य के मूल मे आदर्शवादिता है। वह संघर्ष मे नही, मगल मे विश्वास करता है। यहा नायक का अन्त मृत्यु मे नही होता, वह किसी से पराजित नही होता। यहा कथाओ का निर्माण ही धार्मिक दृष्टि से किया गया है। इसलिए प्रत्येक नायक को विपम परिस्थितियो मे डालकर अपने आचार, पुण्य, दान, दया, व्रह्मचर्य आदि गुणो के कारण अन्त मे हंसते हुए दिखाया गया है। यही कारण है कि अपरिग्रही, वैरागी, ससारत्यागी, भोगोपरत, नायक को कथा के अन्त मे परमपद दिला-कर वड़ा वैभवशाली, अनन्तवल, अनंतज्ञान, अनन्तशक्ति और अनन्त सौन्दर्य का धनी वताया है।

(७) उदारदृष्टि :

जैन-साहित्य का अधिकाश भाग आगमसिद्धान्त को ही प्रतिपादित करने मे लगा है। पर जैन-साहित्यकारो की दृष्टि यही तक सीमित रही हो, ऐसा कहना एकान्त सत्य होगा। सच तो यह है कि जैन-दर्शन की समन्वय भावना ने जैन-साहित्यकारो की दृष्टि को भी उदार बना दिया है यही कारण है कि एक ओर तो इन्होंने विष्णु के अवतार समझे जाने वाले राम और कृष्ण को भी सामान्य महापुरुष न मान कर विशिष्ट श्रेणी के महापुरुषों मे स्थान दिया है। राम-बलदेव श्रेणी मे है तो कृष्ण-वासुदेव श्रेणी में। यही नही जिन पात्रो को जैनेतर साहित्यकारों ने घृणित और वीभत्स दृष्टि से देखा है, उन पात्रो को भी यहां समुचित सम्मान दिया गया है। उदाहरण के लिए रावण को लिया जा सकता है। रावण यहां साधारण पुरुष नही है, वह प्रतिवासुदेव श्रेणी का विशिष्ट पुरुष है। दूसरी ओर जैनेत्तर आदर्श पात्रो को अपना वर्ण्य विषय बनाकर उनके व्यक्तित्व की महानता का गान किया है। दलपतिविजय कृत 'खुमाण रासो' इस प्रसग मे दृष्टव्य है। स्वतन्त्र ग्रन्थ निर्माण के साथ-साथ जैनेतर साहित्यकारो द्वारा रचित जैनेतर ग्रन्थो पर विस्तृत और प्रशसात्मक टीकाएं भी लिखी गई हैं। इस संदर्भ मे बीकानेर के पृथ्वीराज राठोड कृत 'क्रिसन रुकमणी री बेलि' पर जैन विद्वानों द्वारा लिखित ६/७ टीकाओ का उल्लेख किया जा सकता है। यही नही, जैन विद्वानो ने जैनेतर प्राचीन ग्रन्थों की रक्षा करने का भार भी अपने ऊपर लिया और बड़ी आदर भावना के साथ उनकी सुरक्षा की। आज जितने भी जैन भडार हैं उनमे कई प्राचीन महत्त्वपूर्ण जैनेतर ग्रन्थ संरक्षित है। इससे भी आगे बढ़कर जैन लेखको और साधुओ ने अमूल्य जैनेतर ग्रन्थों को लिपिवद्ध करना भी अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। यही कारण है कि 'बीसलदेव रासो' की समस्त पुरानी प्रतियां लगभग जैन लिपिकारों द्वारा लिखित उपलब्ध होती है।

(८) स्वान्तः सुखाय भावना :

सामान्यतः जैन-साहित्यकार पहले सन्त है, फिर भक्त और तव कवि। ये स्वान्तः सुखाय लिखते है। इनका अपना कुछ नही होता। न इनके पास सम्पत्ति होता है न रहने के लिए मकान। और तो और खाने के लिए भी ये गोचरी (मधुकरी वृत्ति) करते है। तव साहित्यरचना के प्रति इनका स्वार्थ क्यो कर होगा? ये किसी राज्याश्रय मे नही रहते ये तो लोकाश्रित होते है। इसलिए लोकहित या आत्महित ही इनकी साहित्य सृजना का मुख्य लक्ष्य है। जो श्रावक होते हैं वे भी व्रती-गृहस्थ होते है। उनकी साधना भी जनहिताय ही होती है।

(९) विराट् सांगरूपकों की सृष्टि :

जैन-साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इन साहित्यकारो ने अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट और प्रभावशाली वनाने के लिए विराट् सागरूपको की सृष्टि की। ये सागरूपक लौकिक और तात्विक उपमानों को लेकर निर्मित हुए है। इनमे चेतन-राजा, आध्यात्म-दीवाली, मन-माली, श्रद्धादीप, अध्यात्म-होली, संयमश्री आदि के रूपक वड़े सटीक है। पूरे के पूरे पद में इनका निर्वाह वड़ी खूबी के साथ किया हुआ मिलता है। हिन्दी कवियों मे गोस्वामी तुलसीदास रूपकों के वादशाह माने गये हैं। उनके ज्ञानदीपक और भक्ति-चिन्तामणि के रूपक वडे सुन्दर वन पडे हैं पर मुझे तो

के लिए समराइच्च कहा कुवलयमाला और सुरसुन्दरी चरित उल्लेखनीय है। इसके अलावा व्याकरण और नाटक साहित्य की भी रचना हुई है।

प्रमुख साहित्यकार :

१. हरिभद्रसूरि :—वे एक युगप्रधान व्यक्ति थे। इनका समय आठवी शताब्दी माना जाता है। वे चित्तौड के रहने वाले थे। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था और वे राजपुरोहित थे। वे आचार्य जिनभटसूरि के शिष्य थे और याकिनी महत्तरा के धर्म पुत्र थे। 'विरहांक' उनका उपनाम था। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्हे अनेक दर्शनो का ज्ञान था और उन्होने साहित्य के अनेक क्षेत्रो मे कार्य किया। वे उद्योतनसूरि के दार्शनिक गुरु थे। उन्होने प्राकृत और संस्कृत मे अनेक ग्रन्थो की रचना की। जिस तरह वे एक उत्तम दार्शनिक थे, उसी प्रकार एक कुशल कथाकार भी थे। उन्होने जैन धर्म के लिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। उनका विहार क्षेत्र चित्तौड़ के आस-पास राजस्थान और गुजरात का प्रदेश रहा है। उन्होने भिन्नलाल मे पोरवाड़ जाति को जैन बनाया था। उनकी प्राकृत रचनाए दर्शन, धर्म, आचार, कथासाहित्य-रूपकात्मक, व्यग्यात्मक और उपदेशात्मक, भूगोल, ज्योतिष, आगम इत्यादि से संबधित अनेक विषयो पर उपलब्ध होती हैं जिनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

धर्म सग्रहणी :—इस ग्रथ मे धर्म का स्वरूप निक्षेपो द्वारा वर्णित है। इसमे चार्वाक दर्शन का खडन भी है। जीव, ज्ञान, कर्म आदि पर अनेकान्त दृष्टि से विचार किया गया है और एकान्त-नित्यवाद, क्षणिकवाद और अज्ञानवाद का खडन किया गया है।

योगशतक :—निश्चय योग और व्यवहार योग को समझाते हुए बतलाया गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी मोक्ष है जिसको व्यवहार योग अर्थात् सम्यग्चारित्र से प्राप्त किया जाता है। पातजलयोग शास्त्र की तुलना मे इसका अध्ययन करने योग्य है।

सम्यक्त्वसप्तति :—इसमे सम्यक्त्व का स्वरूप समझाया गया है। आत्मा के लक्षण और अस्तित्व पर चर्चा है।

श्रावक प्रज्ञप्ति :—इसमे श्रावक धर्म का विवेचन है और यह सर्वप्रथम स्वतत्र रचना है। कोई इसे उमास्वामिकृत बतलाते हैं।

श्रावक धर्म विधि :—इसमे भी श्रावको की दैनिक विधि का प्रतिपादन है और सम्यक्त्व-मिथ्यात्व पर वर्णन है।

पंचवस्तु प्रकरण :—इसमे साधुओ के आचार का वर्णन है। दीक्षा की विधि, दिनचर्या, गच्छाचार, अनुज्ञा और सलेखना इसके विषय हैं।

पंचाशक प्रकरण :—इसमे ५०-५० गाथाओं के १६ विभाग हैं जिनमे श्रावक और मुनि आचार सबधी प्रायः सभी विषयों का समावेश हो गया है।

संबोध प्रकरण :—इसमे सच्चे देव और सच्चे गुरु के लक्षण बतलाये गये हैं। उस समय मे आचार की शिथिलता आ जाने के कारण कुगुरुओ और उनके दूषणो पर व्यग्यात्मक प्रहार किया गया है।

विंशतिविंशका :—इसमे दर्शन, धर्म, आचार से सम्बन्धित २० विंशिकाएं है। इसका ही एक भाग **योगविंशिका** है जिसमे योगशुद्धि का विवेचन किया गया है।

समराइच्च कहा : –यह धर्म कथाकार एक महान् ग्रन्थ है। इसमे कषायों के परिणाम वतलाये गये है। इसमे अवान्तर कथाएं भी है। पूर्वजन्म, कर्म, निदान, व्रत और धर्मोपदेश से परिव्याप्त है। गद्यात्मक ग्रन्थ होते हुए भी अनेक स्थानो पर पद्यात्मक अंश जड़े हुए है। कही-कही पर काव्यात्मक वर्णन भी मिलते है। यह अपने ढग का एक अपूर्व ग्रन्थ है जो उपदेशात्मक उपन्यास के रूप मे प्रथम ग्रन्थ है।

धूर्ताख्यान :—इसमे धूर्तों के पाँच आख्यान है। इसमें अतिरजित पौराणिक कथाओ पर विनोदात्मक ढंग से व्यंग्य किया गया है।

उपदेशपद :—यह कथासाहित्य का अनुपम भंडार है। इसमे आत्मोन्नति के उपदेश, लौकिक कथाये, दृष्टान्त, उदाहरण, रूपक, संवाद, सुभाषित और उक्तिया देखने को मिलती हैं।

लघुसंघयणी :—इसका दूसरा नाम जम्बूद्वीप सग्रहणी है। जिसमें जम्बूद्वीप का वर्णन है परन्तु अनुपलब्ध है !

लग्न शुद्धि :—यह एक ज्योतिष ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम लग्नकुण्डलिका है।

आगमिक टीकाएँ :—प्रज्ञापना, दशवैकालिक, अनुयोग द्वार, नन्दी सूत्र और आवश्यक की टीकाओ मे जो कथा भाग है उसे प्राकृत मे सुरक्षित रखा है।

महानिशीथ सूत्र :—उन्होंने महानिशीथ सूत्र का संशोधन भी किया था।

२. उद्योतनसूरि :—ये क्षत्रिय घराने के थे। इनके पिता का नाम वटेश्वर और प्रपिता का नाम उद्योतन था। वे श्वेताम्बर थे और तत्त्वाचार्य के शिष्य थे। उन्होने आचार्य वीरभद्र से सिद्धान्त मे और आचार्य हरिभद्र से प्रमाण और न्याय मे शिक्षा प्राप्त की थी। उनका अपरनाम दाक्षिण्य-चिह्न था। उन्होने जालौर (जाबालिपुर) मे अपना महा कथा ग्रन्थ 'कुवलयमाला' ई. स. ७७९ में पूरा किया था। यह काव्यात्मक शैली मे लिखा गया एक चम्पू ग्रन्थ है। इसमे कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला की प्रणय कथा है। इस मुख्य कथा के अतिरिक्त इसमें करीब २५ अवान्तर कथाओं का समावेश हुआ है। क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह के दुष्परिणामों को समझाने के लिए पांच विशेप पात्रो का सृजन किया गया है। इसमें कही-कही पर अपभ्रंश, पैशाची और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है। उस समय मे प्रचलित भारत की अनेक भाषाओं के नमूने इसमे विद्यमान है। सास्कृतिक सामग्री का यह अद्वितीय भण्डार है।

३. जयसिंहसूरि :—ये श्वेताम्बर थे और कृष्णमुनि के शिष्य थे। उन्होंने ई० सं० ८५८ मे नागौर मे 'धर्मोपदेशमाला विवरण, की रचना की थी। उनकी अन्य रचना 'श्री नेमिनाथ चरित' है। धर्मोपदेशमाला विवरण मे ९८ गाथाये है और इन शिक्षाप्रद गाथाओं पर गद्य मे १५० से भी अधिक कथाएं कही गई है। बीच मे कही-कही पर संस्कृत का भी उपयोग हुआ है। इन कथाओ के द्वारा दान, शील, तप, अहिसा, सत्य, संयम इत्यादि की महिमा बतायी गयी है।

१८. जिनकुशलसूरि :—ये सिवाणा के थे और जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्हे सन् १३२० मे नागौर मे वाचनाचार्य बनाया गया था। उन्होने 'जिनचद्रसूरि चतुःसप्ततिका' की ७४ गाथाओ मे रचना की थी। यह एक ऐतिहासिक चरित ग्रन्थ है।

१६. गुणसमृद्धिमहत्तरा :—राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारो में यदि किसी महिला (साध्वी) का नाम मिलता है तो मात्र गुणसमृद्धिमहत्तरा का है। वे जिनचन्द्रसूरि की शिष्या थी। उन्होने ५०४ गाथाओ मे 'अजनासुन्दरी चरित' सन् १३५० मे जैसलमेर मे लिखा था।

२०. जिनहर्षगरिण :—इन्होने १५वी शताब्दी मे चित्तौड़ मे 'रत्नशेखरी कथा' गद्य-पद्य मे लिखी थी। इसमें संस्कृत अपभ्रंश पद्य भी मिलते है। इस कथा मे तिथि और पर्वों के अवसर पर किये गये धार्मिक अनुष्ठान का फल बतलाया गया है। यह एक राजकुमार और राजकुमारी की प्रणय कथा है।

२१. हीरकलश :—इन्होने नागौर मे सन् १५६४ मे 'ज्योतिपसार' नामक प्राकृत ग्रन्थ का उद्धार किया था।

२२. भट्टारक शुभचन्द्र :—ये दिगम्बर थे और सागवाड़ा के भट्टारक थे। वे जिनभूषण के शिष्य थे और बलात्कारगण के थे। वे बड़े विद्वान् थे। उन्होंने 'शब्दचिंतामणि' नामक प्राकृत व्याकरण लिखा। 'अंगपण्णत्ति' उनका दूसरा ग्रन्थ है जिसमे अग, पूर्व और आगमिक साहित्य का विवरण है। उनका समय १६वी शताब्दी माना जाता है।

२३. समयसुन्दर :—इनका जन्म साचौर में हुआ था। वे पोरवाल थे। वे गुजराती-राजस्थानी के भापा-कवि थे। उन्होने सन् १६३० में 'गाथा सहस्री' की रचना की थी। इसमें ८५५ उपदेशात्मक धार्मिक गाथाओ का सग्रह प्राचीन जैन-अजैन साहित्य से किया गया है। उन्होने अपनी रचनाएं मेड़ता और जालौर मे की थी।

ज्ञान भण्डारों का योग :

राजस्थान के ज्ञान भण्डारो ने जैन शास्त्र और जैन साहित्य को सुरक्षित रखने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वहा पर अनेक प्राकृत रचनाएं भी सुरक्षित रही है। कुछ रचनाए तो अन्य स्थल पर अप्राप्य रही है और कुछ अप्रकाशित रही है। जिन-जिन प्राकृत ग्रन्थो की प्राचीनतम प्रतिया जैसलमेर के भण्डार मे मिलती हे उनके नाम इस प्रकार हे :—अंगविज्जा, विमलसूरि का पउमचरिय, सघदास कृत वसुदेवहिंडी, जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का विशेपावश्यकभाष्य, उद्योतनसूरि की कुवलयमाला, शीलाक का चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, कुतूहल की लीलावईकहा, जिनेश्वरसूरि का कथाकोपप्रकरण, जिनचन्द्रसूरि की सवेगरगशाला, साधारणकवि की विलासवती कथा, गुणसमृद्धि-महत्तरा का अजनासुन्दरीचरित इत्यादि।' जयसिंहसूरि के 'णेमिणाह चरिय' के कुछ अंश भी जैसलमेर भण्डार मे ही मुनि–जिनविजयजी को प्राप्त हुए थे। जैसलमेर के बृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना १५वीं शताब्दी मे जिनभद्रसूरि ने ही की थी। पद्मनन्दि के जम्बूद्दीवपण्णत्तिसंगहो की प्राचीनतम प्रति आमेर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित रहीहे। इस प्रकार राजस्थान के जैन ज्ञान भण्डारों की भी प्राकृत साहित्य को अपनी विशिष्ट देन रही है।

२६ | अपभ्रंश जैन साहित्य

डॉ० प्रेमसुमन जैन

अपभ्रंश साहित्य ७वी से १२वी शताब्दी तक देश के विभिन्न विभागों मे मुख्यतः जैनाचार्यों द्वारा लिया गया है। अपभ्रंश की अधिकांश रचनाओं का सम्बन्ध राजस्थान से है। क्योकि उनके लेखकों-जैनाचार्यों का कार्यक्षेत्र प्रमुखरूप से पश्चिमी भारत था। अपभ्रंश की उन कुछ प्रमुख रचनाकारो और उनकी रचनाओ का परिचय यहां प्रस्तुत है, जिनका किसी-न-किसी रूप में राजस्थान से सम्बन्ध रहा है।

१. हरिषेण :—राजस्थान मे चित्तौड़ जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। सस्कृत-प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् सिद्धसेन, ऐलाचार्य, वीरसेन एव हरिभद्रसूरि जैसे आचार्यों के कार्य-क्षेत्र होने का सौभाग्य चित्तौड को प्राप्त है। अपभ्रंश भाषा के प्रमुख विद्वान् हरिषेण भी इस नगरी की शोभा थे। उनके 'धम्मपरिक्खा' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि हरिषेण के दादा हरि मेवाड़ देश के रहने वाले थे और सिरि उजपुर के धक्कड कुल के थे। हरि के गोवर्द्धन नाम का एक पुत्र हुआ, जिसकी पत्नी का नाम धनवती था। इनके पुत्र आचार्य हरिषेण थे, जिन्होने वि० सं० १०४४ (६४३ ई०) मे 'धम्मपरिक्खा' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अचलपुर मे की थी। इस समय चित्तौड छोड़कर वे यहा आ बसे थे।

आमेर शास्त्र भण्डार मे 'धम्मपरिक्खा' की कई प्रतिया उपलब्ध है। इस ग्रन्थ मे ११ सधिया है, जिनमे, २३८ कडवक है। लेखक ने बुद्धि की सार्थकता प्रदान करने के लिए इस ग्रन्थ को लिखा है। इसमे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति के उत्तम साधन का प्रतिपादन है। अन्य धर्मों की इसमे समीक्षा की गयी है।[1]

२. धनपाल (प्रथम) :—कवि धनपाल ने राजस्थान के सांचोर नामक नगर में स्थित महावीर जिनालय सम्बन्धी एक रचना अपभ्रंश मे की है, जिसका नाम सत्यपुरीय महावीर उत्साह है। ये धनपाल महाराजा भोज के सभाकवि थे तथा संस्कृत, प्राकृत के भी पण्डित थे। इनकी इस रचना से महमूद गजनी द्वारा मूर्तिभजन की एक घटना का पता चलता है, जिसमे वह सफल नही हुआ था। यह रचना विक्रम की ११वी शताब्दी की प्रतीत होती है।

---

१. सोमानी, रामवल्लभ, महाकवि हरिषेण, वीरवाणी, अप्रैल १६६६, पृ० ५२-५५

३. धनपाल (द्वितीय) :—१०-११वीं शताब्दी मे अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि एक अन्य धनपाल हुए हैं। इन्होने 'भविसयत्तकहा' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। यद्यपि इनकी रचना मे किसी स्थान-विशेष का उल्लेख कवि की जन्म भूमि के रूप नही किया गया है किन्तु इस समय कवि राजशेखर के अनुसार समस्त मरुभूमि मे अपभ्रंश का प्रयोग होता था। अतः संभव है, ये धनपाल मारवाड़ प्रदेश में किसी नगर के निवासी रहे होंगे। धाकड़वंश का होने के कारण धनपाल को राजस्थान का माना जा सकता है। क्योंकि धाकड (धर्कट) राजस्थान की मूल जाति थी।[1]

४. धाहिल :—धाहिल १०वी शताब्दी के अपभ्रंश कवि थे। इनका सम्बन्ध महाकवि माघ के वंश से है। अतः ये श्रीमाल वंशी गुर्जर वैश्य थे। इनकी जन्मभूमि भिन्नमाल रही होगी। इन्होने 'पउमसिरी चरिउ' की रचना किस स्थान पर की इसका पता नही चलता। इनकी यह रचना धार्मिक होते हुए भी रम्य और रोमाण्टिक है।

५. लक्खण :—लक्खण कवि ने वि० सं० १२६५ में 'जिनदत्त चरिउ' की रचना की। इनकी वृत्ति से ज्ञात होता है कि ये त्रिभुवनगिरि के निवासी थे। इसकी पहिचान जयपुर के समीप 'तहणगढ' से की जाती है।

६. सिंह :—बारहवीं शताब्दी के सिंह कवि ने 'पज्जुन्नकहा' नामक अपभ्रंश काव्य की रचना बम्भणवाड मे की थी, जो सिरोही मे है।

७. विनयचन्द्र :—१३वी शताब्दी मे विनयचन्द्र नाम के दो अपभ्रंश के कवि हुए हैं। विनयचन्द्रसूरि ने 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' लिखी, जिसकी प्रति जैसलमेर भण्डार मे है तथा विनयचन्द्र ने 'उपदेशमाला कल्याण' कृति लिखी, जिसकी प्रतिया नागौर के ग्रन्थ भण्डार मे हैं। अत एक कवि का जैसलमेर और दूसरे का नागौर कार्यक्षेत्र रहा होगा। विनयचन्द्र ने चूनडी आदि भी लिखी है।

८ जिनदत्तसूरि :—जिनदत्तसूरि युग प्रधान जैनाचार्य थे। इन्होंने प्राकृत के ग्रन्थो के अतिरिक्त अपभ्रंश की तीन रचनाएं लिखी हैं—चर्चरी, उपदेश रसायन-रास और कालस्वरूप-कुलकम्। चर्चरी इन्होने वागड़ देश मे लिखी थी। इनका जन्म वि० सं० ११३२ में तथा मृत्यु वि० स० १२११ में अजमेर में हुई। अतः जीवन पर्यन्त ये राजस्थान में भ्रमण कर साहित्य-सृजन करते रहे। इनके जीवन एवं कार्य आदि के सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा ने विशेष प्रकाश डाला है।[2] जिनदत्तसूरि की ये तीनो रचनाए 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं।

९. जिनप्रभसूरि :—जिनप्रभसूरि ने अपभ्रंश में णाणप्पयास (ज्ञानप्रकाश) की रचना की है। इसमें ११३ पद्य हैं। 'कुलक' के नाम से प्रसिद्ध इस कृति में ज्ञान का प्रतिपादन है। इनकी अपभ्रंश की दूसरी कृति धम्माधम्मवियार है। इसमें १८ पद्य हैं, जिनमें धर्म, अधर्म का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इन्होंने 'सावगविहि' नाम की भी एक रचना की है जो दोहा-छन्द में अपभ्रंश के ३२ पद्यो की है। जिनप्रभसूरि संस्कृत-प्राकृत के भी अच्छे साहित्यकार थे। आपने दिल्ली पति महमूद तुगलक को भी अपनी प्रतिभा से प्रभावित किया था। अतः आप लगभग १४वीं शताब्दी के विद्वान् हैं। यद्यपि आपकी रचनाओ में रचना-स्थलो का संकेत नहीं है। किन्तु खरतरगच्छ की परम्परा में होने के कारण आप भी राजस्थान के रहे होंगे।

---

१. डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन : अपभ्रंश भाषा और साहित्य, पृ० ७४

२. द्रष्टव्य—युगप्रधान जिनदत्तसूरि

१० **अमरकीर्ति** :—अमरकीर्ति १३वीं शताब्दी (१२१७ ई०) के विद्वान् थे। आपकी 'चक्कम्मोवएस' एव 'पुरन्दरविधानकथा' अपभ्रंश कृतिया आमेर शास्त्र भण्डर मे उपलब्ध हैं। आपके ग्रन्थो में गोदहयनगर एवं महियड नामक स्थानों का उल्लेख है, जो पश्चिमी भारत के नगर थे। संभव है, आपका कार्यक्षेत्र राजस्थान एवं गुजरात रहा हो।

११. **श्रीचन्द्र** :—श्रीचन्द्र ११-१२वीं शताब्दी के अपभ्रंश कवि थे। आपकी 'कथाकोश' एवं 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' दो कृतियां प्राप्त है। इनमे श्रीमालपुर (सिरिवालपुर) नगर का उल्लेख है। इससे ये राजस्थानी कवि प्रतीत होते हैं।

१२. **यशकीर्ति** :—१५वीं शताब्दी के अपभ्रंश कवियो में यशकीर्ति प्रमुख कवि थे। आपने १४४० ई० मे 'हरिवंश पुराण तथा १४४३ ई० में 'पाण्डवपुराण' की रचना की थी। 'पाण्डवपुराण' हसराज के अनुरोध पर नागौर मे तथा 'हरिवशपुराण' जलालखा के राज्य इन्द्रपुर मे लिखा गया था।[1] इन दोनो ग्रन्थो की पाण्डुलिपिया आमेर और नागौर के शास्त्र भण्डारो में उपलब्ध है। यश: कीर्ति ने गुर्जरदेश के सिद्धपाल के अनुरोध पर 'चन्दप्पहचरिउ' की भी रचना की थी।

१३. **विबुध श्रीधर** :—श्रीधर १२वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। आपने 'पासनाहचरिउ', 'सुकुमालचरिउ' एव 'भविसयत्तचरिउ' ये तीन रचनाए अपभ्रंश में लिखी है। अतिम रचना इन्होने माथुरवंशीय नारायणसाहु की प्रेरणा से लिखी थी। एक ग्रन्थ मे वलड नगर का भी उल्लेख है। अत: राजस्थान और गुजरात दोनो समान रूप से इनका कार्यक्षेत्र रहा होगा।

अपभ्रंश के इन प्रमुख कवियो के अतिरिक्त धवल (पासनाहचरिउ), देवसेनगणि, (सुलोचनाचरिउ), हरिभद्र (सनत्कुमारचरिउ), लक्ष्मदेव (णमिणाहचरिउ), धनपाल (बाहुबलि-चरित), जयदेव (भावनासधि) आदि अन्य कवियो का सम्बन्ध भी राजस्थान एव गुजरात से रहा है। यहा के राजाओ और श्रीमन्तो की साहित्य के प्रति रुचि एवं संरक्षण-भावना के कारण सस्कृत, प्राकृत की भाति अपभ्रंश-साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध हुआ है।

राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध अपभ्रंश रचनाएं :

अपभ्रंश साहित्य की अधिकाश रचनाएं राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों मे ही प्राप्त हुई हैं। यह इस बात का द्योतक है कि राजस्थान अपभ्रंश भाषा की कृतियो के सृजन मे जितना समृद्ध है, उतना ही उनकी सुरक्षा और प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में भी। डॉ० कासलीवाल ने ऐसी सौ अपभ्रंश रचनाओ का विवरण दिया है, जो राजस्थान मे उपलब्ध है।[2] अभी हाल मे डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने समस्त राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारो मे उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य की ९६८ प्रतियो का विशेष विवरण अपने ग्रन्थ मे दिया है।[3]

---

१ Dr. Kasliwal, Jain Granth Bhandaras in Rajasthan, p 140

२ जैन ग्रन्थ भडारस् इन राजस्थान, परिशिष्ट, ३

३. डॉ० शास्त्री [illegible]

३० | संस्कृत जैन साहित्य

•

डॉ० प्रेमसुमन जैन

संस्कृत जैन साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि :

यद्यपि जैन आगमो की भाषा अर्द्धमागधी एव शौरसेनी प्राकृत तथा आगमोत्तर साहित्य की अधिकाश रचनाएं भी प्राकृत मे लिखी गई हैं। किन्तु जनसमुदाय की रुचि के प्रति जैन आचार्यों की जागरूकता के कारण संस्कृत भाषा को भी वही प्रतिष्ठा दी गयी है जो प्राकृत व अपभ्रंश को। जिस समय से समाज मे वैदिक एवं बौद्ध सस्कृत साहित्य का प्रभाव अधिक बढ़ा उसी समय से जैन साहित्य मे भी सस्कृत को स्थान मिलने लगा। धर्म एव दर्शन के क्षेत्र मे तर्क-पद्धति के विकास के कारण तथा वैदिक व बौद्ध आचार्यों से वाद-विवाद करने की दृष्टि से जैन आचार्यों ने सस्कृत को अधिक महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रवृत्ति ईसा की दूसरी सदी से आठवी सदी तक अधिक पायी जाती है। पश्चिमी भारत मे जैन विद्वानो मे आचार्य सिद्धसेन दिवाकर एवं हरिभद्र के सस्कृत ग्रन्थ इस प्रवृत्ति के परिणाम कहे जा सकते है।

८वी शताब्दी के बाद पश्चिम भारत मे लिखित जैन सस्कृत ग्रन्थो की रचना की पृष्ठभूमि मे यहा की राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति अधिक प्रभावशाली रही है सामान्यतया जैनाचार्यों ने जिन प्रेरक तत्त्वो के कारण जैन सस्कृत साहित्य का निर्माण किया है, उनमे प्रमुख है—(१) जैन-धर्म के सिद्धान्तो के प्रसार की भावना, (२) प्रभावशाली राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रावकों की प्रार्थना, (३) धार्मिक महापुरुषो का यशोगान। इनके अतिरिक्त एक कारण यह भी दृष्टिगत होता है कि बहुत से जैन आचार्य मूलतः ब्राह्मण थे। सस्कृत का अध्ययन वे बचपन से ही कर चुके थे अतः अपने ज्ञान एव प्रतिभा के विकास के लिए भी उन्होने जैन सस्कृत साहित्य के निर्माण को माध्यम चुना होगा।

प्रचार-प्रसार के साधन :

पश्चिमी भारत मे संस्कृत साहित्य के प्रचार-प्रसार मे जैन विद्वानो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने केवल संस्कृत मे जैन ग्रन्थ ही नही लिखे अपितु उनके प्रचार एवं प्रसार व सुरक्षा की पृष्ठभूमि भी तैयार की है। जिस प्रकार राजस्थान के राजाओ द्वारा राज्य के ग्रन्थ भण्डारो (पोथी खाना) को साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया गया था, उसी प्रकार जैन आचार्यों ने भी मन्दिरो व उपासरो मे जैन ग्रन्थ भण्डारो की स्थापना कर उन्हे संस्कृत शिक्षा व लेखन का केन्द्र

बना दिया था। इन ग्रन्थ भण्डारो में नये ग्रन्थ लिखे जाते थे, पुराने ग्रन्थो की प्रतिलिपिया तैयार की जाती थी तथा दूर-दूर से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो को लाकर पुस्तकालय को विकसित किया जाता था ताकि लेखको को एक ही स्थान पर संदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय। इस प्रकार पश्चिमी भारत का जैन संस्कृत साहित्य इन ग्रन्थ भण्डारों की समुचित सुविधाओ का ही परिणाम है।

जनसमुदाय मे सस्कृत भापा के प्रसार के लिए जैनाचार्यो ने इन ग्रन्थ भण्डारो मे शिक्षा केन्द्र खोल दिये थे, जिनमे बच्चो को प्रारंभ से ही संस्कृत और प्राकृत पढाई जाती थी। संस्कृत के अध्ययन मे जैन-अजैन की रचनाओ का भेद नही किया जाता था। इस क्षेत्र मे हेमचन्द्र, भट्टारक शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र, ज्ञानभूपण आदि आचार्यो का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनके सान्निध्य में सौ-सौ छात्र रह कर सस्कृत सीखते थे। संस्कृत शिक्षा के प्रचार मे उन श्रावकों का योगदान भी सराहनीय है जो आचार्यो और शिष्यो को सैकड़ो ग्रन्थो की प्रतिलिपि करा कर भेट करते थे ताकि उनका अध्ययन निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।[1]

जैन सस्कृत साहित्य के निर्माण एव प्रसार मे पश्चिमी भारत के राजाओ व राज्य मन्त्रियो का सरक्षण भी एक प्रमुख कारण रहा है। गुजरात के तो अनेक राजाओ व मन्त्रियो ने जैनाचार्यो के ग्रन्थ निर्माण के लिए सुविधाए ही नहीं बल्कि प्रेरणा भी दी है। सिद्धराज, कुमारपाल, वस्तुपाल आदि के नाम इस क्षेत्र मे स्मरणीय रहेगे। जैन संस्कृत साहित्य का विकास समय-समय पर आयोजित शास्त्रार्थ के कार्यक्रमो के कारण भी हुआ है, जिसमे अजैन, दिगम्बर, श्वेताम्वर सभी सस्कृत के आचार्य सम्मिलित होते थे। पश्चिमी भारत के कई जैनाचार्यो ने ऐसे वाद-विवादो मे विजयी होने के लिए अनेक चमत्कारिक संस्कृत ग्रन्थो की रचना की है। महाकवि समयसुन्दर का 'अष्टलक्षी' नामक ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है।

क्रमिक विकास :

जैन सस्कृत साहित्य के लेखन का प्रारम्भ आचार्य उमास्वाति के 'तत्वार्थसूत्र' से होता है, जिस पर आगे चलकर सस्कृत मे बृहत्काय टीकाए लिखी गई है।[2] किन्तु पश्चिमी भारत मे जैन सस्कृत साहित्य का लेखन कब से प्रारम्भ हुआ ? सर्वप्रथम संस्कृत रचना कौनसी है ? यह कहना कठिन है। क्योकि बहुत कम प्राचीन सूचनाओ मे उनके रचना-स्थल आदि का उल्लेख मिलता है। दूसरे पश्चिमी भारत के जैन सन्त गुजरात, राजस्थान, मालवा आदि स्थानो मे भ्रमण करते रहते थे। अतः उन्होने कहा पर रह कर ग्रन्थ रचना की इसका पता अन्य स्रोतो से लगाना पडता है। ऐतिहासिक सामग्री से ज्ञात होता हे कि चित्तौड अनेक जैन आचार्यो का कार्यक्षेत्र रहा है।[3] उनमे से ५वी सदी के आचार्य सिद्धसेन दिवाकर सस्कृत के प्राचीन लेखक कहे जा सकते हैं। सिद्धसेन दिवाकर ने जैन न्याय पर 'न्यायावतार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इनके बाद आठवी सदी के आचार्य हरिभद्र के पूर्व तक पश्चिमी भारत मे जैन संस्कृत साहित्य का कोई ग्रन्थ लिखा गया हो, ऐसा उल्लेख नही मिलता। आठवी सदी के बाद प्रचुर मात्रा मे जैनाचार्यो के द्वारा संस्कृत के ग्रन्थ लिखे गये हे।[4]

---

१. प्रभावकचरित—हेमचन्द्र प्रबन्ध आदि
२. भारतीय सस्कृति के विकास मे जैन धर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन
३. वीरभूमि चित्तौड़—श्री रामवल्लभ सोमानी, चतुर्थ अध्याय
४. जैनसिद्धान्तभाष्य, ६.२, १६१

आचार्य हरिभद्र चित्तौड़ के राजा जितारि के राजपुरोहित थे। आपने लगभग सौ ग्रन्थो की रचना की है।[1] जिनमे 'षट्दर्शनसमुच्चय', 'अनेकान्तजयपताका', 'अष्टक-प्रकरण' आदि प्रमुख संस्कृत ग्रन्थ है। जैन संस्कृत साहित्य के इतिहास मे आचार्य हरिभद्र प्रथम लेखक हैं जिन्होने जैनागमों एवं पूर्वाचार्यों की प्रसिद्ध कृतियो पर सस्कृत में टीकाएं लिखने का सूत्रपात किया है। आचार्य हरिभद्र की परम्परा को दसवी सदी के उत्तरार्द्ध (सं० ९६२) में श्रीमाल नगर (भीनमाल) के निवासी आचार्य सिद्धर्षि ने आगे बढ़ाया है। आपकी 'उपमितिभवप्रपचकथा' भारतीय सस्कृत साहित्य की अनुपम कृति है। सिद्धर्षिरचित 'श्रीचन्द्रकेवलीचरित', 'उपदेशमालाटीका' और 'न्यायावतारविवृत्ति' आदि अन्य रचनाए भी प्राप्त हैं।

ग्यारहवी सदी नें राजस्थान मे खरतरगच्छ के आचार्यों का प्राधान्य शुरू हो जाता है। जिनेश्वरसूरि (सं० १०८०) और बुद्धिसागरसूरि ने मौलिक सस्कृत ग्रन्थों के निर्माण को आगे बढाया। बुद्धिसागर ने 'पचग्रन्थवृत्ति' नामक जैनन्याय का ग्रन्थ लिखा। इस गच्छ के अन्य आचार्यों में जिनवल्लभसूरि का 'शृंगारशतक'[2] एव 'प्रश्नोत्तरघटीशतक' तथा जिनदत्तसूरि की संस्कृत रचनाए अधिक महत्त्वपूर्ण है। इन सभी आचार्यों ने प्राकृत मे भी अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। बारहवी सदी के विद्वानो में वादिदेवसूरि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका 'स्याद्वादरत्नाकर' जैनन्याय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये वाद-विवाद करने मे भी कुशल थे।

तेरहवी सदी के विद्वानो मे जिनपालसूरि (सं० १२१४-७७) विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि इन्होने ६ शास्त्रार्थों मे विजय प्राप्त की थी। इन्होने संस्कृत टीकाएं तथा स्तोत्र लिखे हैं। इनके शिष्यो मे जिनपाल, सुमतिगणि, पूर्णभद्र एवं जिनेश्वरसूरि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जिनपाल उपाध्याय का 'सनत्कुमार महाकाव्य' तथा पूर्णभद्र का 'धन्यशालिभद्रचरित' उत्कृष्ट काव्यात्मक कृतिया है। इसी समय दिगम्बर आचार्य आशाधर ने अनगार एवं सागारधर्मामृत तथा वाग्भट्ट ने 'नेमिनिर्वाण', 'काव्यानुशासन' आदि रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। १४वी सदी मे जैन विद्वानो के द्वारा सस्कृत के महाकाव्य अधिक लिखे गये तथा प्राचीन ग्रन्थो पर टीकाएं भी की गईं। लक्ष्मीतिलक (सं० १३११) का 'प्रत्येकबुद्धचरित', चन्द्रतिलक का (स० १३१२) 'अभयकुमारचरित', विवेकसमुद्र (१३३४) का 'नरवर्मचरित' एवं 'पुण्यसागरकथा' तथा जिनप्रभसूरि का 'श्रेणिकचरित' आदि इस युग की प्रसिद्ध संस्कृत रचनाएं कही जा सकती है। लगभग इसी समय नयचन्द्रसूरि ने 'हमीरमहाकाव्य' का निर्माण किया। सम्भवतः उन्होने इसकी रचना राजस्थान मे की थी।[3] यह कथात्मक एव ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

१५वी एव १६वी सदी के संस्कृत ग्रन्थो मे रचना-स्थल का उल्लेख नही है। किन्तु उनमे से अधिकाश पश्चिमी भारत मे लिखे गये होगे। १७वी सदी मे जैन विद्वानो द्वारा अधिक मात्रा मे संस्कृत साहित्य लिखा गया है। आचार्य समयसुन्दर (१६५०) ने लगभग पाच सौ छोटी-बडी रचनाएं की हैं जिनमे १४ संस्कृत के ग्रन्थ राजस्थान मे लिखे गये हैं। इस शतक मे तपागच्छीय जैन विद्वानों की सस्कृत सेवा महत्त्वपूर्ण है। हर्षकीर्ति व पद्मसुन्दर के सस्कृत ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

---

१. हरिभद्र के प्राकृत-कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
२. 'संस्कृत के ६० शतक'—वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० ५३४ पर अगरचन्द नाहटा का लेख द्रष्टव्य है।
३. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० ३५, श्री अगरचन्द नाहटा

१८वी सदी के जैन संस्कृत विद्वानो में उपाध्याय मेघविजय का योगदान महत्त्वपूर्ण है। आपका सप्तसंधान महाकाव्य विस्मयकारी है जिसमें रामकृष्ण एवं पांच तीर्थंकरों के चरित का एक साथ वर्णन है। यशोविजय इस युग के दूसरे उल्लेखनीय आचार्य हैं जिन्होंने संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा जैन-न्याय को पुनः व्यवस्थित रूप प्रदान किया है।

उन्नीसवी सदी में जैन विद्वानो द्वारा संस्कृत साहित्य बहुत कम लिखा गया है। संभवतः क्षेत्रीय भाषाओं एवं हिन्दी भाषा की लोकप्रियता इसका कारण रही हो। फिर भी जैन आचार्यों की संस्कृत के प्रति रुचि बनी रही है। तेरापंथी सम्प्रदाय के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि उनके प्रारम्भिक आचार्यों ने बडे परिश्रम के साथ संस्कृत का ज्ञान अर्जित किया एवं संस्कृत लेखन को अपने मुनि समुदाय मे जागृत किया। उसी का परिणाम है कि लगभग २०० संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन इस सम्प्रदाय के मुनियो द्वारा हो चुका है।[1] आज भी आचार्य तुलसी के शिष्य अन्य भाषाओं के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य की रचना में संलग्न हैं। अन्य जैन सम्प्रदायो के विद्वानों द्वारा भी वर्तमान युग में कुछ संस्कृत ग्रन्थ लिखे गये हैं

जैन संस्कृत साहित्य की प्रमुख विधाएं ·

पश्चिमी भारत के जैन विद्वानों ने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं मे संस्कृत के ग्रन्थ लिखे हैं। यद्यपि दार्शनिक एवं धार्मिक साहित्य का प्राधान्य अधिक है, फिर भी उन्होंने चरित, पुराण, काव्य, नाटक, स्तोत्र आदि विधाओं के माध्यम से धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, कोष, छन्द, अलंकार आदि अनेक विषयों के साहित्य का सृजन किया है, जो भारतीय साहित्य के इतिहास मे उल्लेखनीय है। इन सभी विधाओं से सम्बन्धित जैन संस्कृत साहित्य का यहा परिचय देना सम्भव नही है। इन विधाओं को जैन विद्वानो ने नया स्वरूप प्रदान किया है।

महाकाव्य : जैन विद्वानो द्वारा पौराणिक, ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय तीनों प्रकार के महाकाव्य लिखे गये है, जिन पर प्राचीन संस्कृत एवं प्राकृत महाकाव्यों का प्रभाव है। जैन संस्कृत महाकाव्यों की निजी विशेषताएं भी हैं। यथा—इनमे भाषा को अधिक सरल बनाया गया है तथा देशज शब्दो का उपयोग किया गया है। अवान्तर कथाओं का संयोजन किया गया है। नायक का साधारणीकरण दृष्टिगत होता है तथा काव्यरस की अपेक्षा धर्मभाव का प्राधान्य है। जैन सस्कृत महाकाव्यो की इन प्रवृत्तियो का क्षेत्रीय भाषाओं एवं हिन्दी के महाकाव्यों पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा।

पुराण : जैन विद्वानो ने सस्कृत में पुराण-साहित्य के लेखन मे भी पर्याप्त उत्साह दिखाया है। आचार्य रविषेण (६७८ ई०) ने सर्वप्रथम 'पद्मपुराण' लिखा। तदन्तर राजस्थान के अनेक जैन विद्वानो ने इसमे योगदान दिया है। आचार्य हेमचन्द्र, आसग, सकलकीर्ति, जिनदास, ब्रह्म जिनदास, शुभचन्द्र आदि के पुराण, संस्कृत साहित्य के अनुपम ग्रन्थ हैं।[2] किन्तु जैन सस्कृत पुराणो में तीर्थंकर के जीवनचरित के साथ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियो के जीवन का भी वर्णन होता है तथा इनकी वर्णन शैली एवं भाषा इतनी काव्यात्मक है कि इन्हे पुराण कहने के बजाय काव्य कहना अधिक उपयुक्त है। हरिवशपुराण (जिनसेन) को तो जैन संस्कृत साहित्य का महाभारत कहा जा सकता है।

---

१. भिक्षु स्मृति-ग्रन्थ

२. जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० १३८, डॉ० के० सी० कासलीवाल

चरित : जैन सस्कृत चरित-साहित्य को काव्य एव कथा-साहित्य के मध्य मे रखा जा सकता है। संस्कृत चरित-साहित्य के द्वारा भापा को प्रायः सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। जिससे जो व्यक्ति काव्य की क्लिष्ट भापा नही समझ सकते वे चरित ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा अपना मनोरजन एव ज्ञानवर्द्धन कर सके। लगभग ६वी सदी से १७वी सदी तक यह साहित्य संस्कृत मे पश्चिमी भारत मे लिखा जाता रहा, जिसकी अनेक प्रतिया ग्रंथ भण्डारो मे प्राप्त होती है। संस्कृत के चरित ग्रन्थो मे प्रायः तीर्थंकरों की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है।

कथा : सस्कृत मे कथा ग्रंथ प्राकृत की अपेक्षा कम लिखे गये है। लेकिन धार्मिक सिद्धांतो को समझाने के लिए कथाओ का सबसे अधिक उपयोग किया गया है। पश्चिमी भारत के जैन विद्वानो ने भी इस माध्यम को अपनाया है। महेन्द्रसूरि (११३० ई०) की 'नर्मदासुन्दरी कथा', नरचन्द्र सूरि का 'कथारत्नसागर', राजशेखर का 'कथासग्रह', सोमचन्द्र मणि (१४४७ ई०) का कथामहोदधि, सोमकीर्ति की 'सप्तव्यसन कथा' तथा गुणाकरसूरि की 'सम्यक्त्व कौमुदी' आदि रचनाए सस्कृत के अन्य कथा साहित्य से कम नही है। पंचतन्त्र की कथात्मक शैली का जैन संस्कृत साहित्य के इन कथाग्रंथो द्वारा पर्याप्त विकास हुआ है।

नाटक : जैन सस्कृत नाटको का लेखन अन्य विधाओ की अपेक्षा बाद मे प्रारभ हुआ है। सम्भवतः जैनाचार्य नाटक आदि विनोदो को धर्म की दृष्टि से हेय समझते थे। अतः उनके लेखन की ओर उनका प्रयत्न कम रहा। फिर भी १२वी सदी से जैन विद्वानों द्वारा सस्कृत के अनेक नाटक लिखे गये है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र के 'रघुविलास', नवलविलास' आदि जयसिंहसूरि का 'कम्मीरमदमर्दन' तथा मेघप्रभाचार्य का 'धर्माम्युदय' आदि पश्चिमी भारत मे लिखित जैन संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटक है। 'अनर्घराघव' नाटक पर तीन जैन विद्वानो ने सस्कृत टीकाएं भी लिखी है।[1] जैन सस्कृत नाटको द्वारा केवल मनोरजन ही नही होता अपितु धर्म-दर्शन के अनेक सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण भी होता है।

पश्चिमी भारत मे लिखित जैन सस्कृत साहित्य मे इन उपर्युक्त विधाओ के अतिरिक्त स्तोत्र, सुभापित, नीति, सन्देशकाव्य आदि विधाओ का पर्याप्त साहित्य मिलता है, जो यद्यपि काव्यात्मक दृष्टि से अधिक रसात्मक नही है फिर भी जीवन मे उसकी उपयोगिता अधिक है। जैन समाज मे भक्तिवाद के प्रचार मे इस प्रकार के साहित्य ने अधिक प्रभाव डाला है।

ज्योतिष एवं गणित : ज्योतिष एव गणित से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ जैन विद्वानो ने संस्कृत मे लिखे हैं। 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' एवं 'ज्योतिष्करण्ड' प्राकृत के इन ग्रन्थो पर मलयगिरि ने सस्कृत मे टीकाएं लिखी है। हरिभद्रसूरि ने 'लग्नसिद्ध', नरचन्द्र ने 'नारचन्द्रज्यातिश्शास्त्र' तथा 'हर्षकीर्ति' ने 'ज्योतिश्शास्त्र', जन्मपत्रीपद्धति 'लग्नविचार' नामक स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ लिखे हे। गणित के क्षेत्र में महावीराचार्य (८वी सदी) का 'गणितसारसग्रह', श्रीधराचार्य का 'गणितसार' तथा राजादित्य का 'व्यहारगणित' आदि रचनाये उल्लेखनीय है। ये ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष तथा गणित के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी हे।

---

१ जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० १७१, डॉ० कासलीवाल

जैनेतर संस्कृत ग्रन्थों पर टीकाएं :

पश्चिमी भारत के जैन विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों पर सस्कृत टीकाएं लिखकर संस्कृत साहित्य की अमूल्य सेवा की है। इससे एक ओर जहा प्रसिद्ध कवियो की संस्कृत रचनाएं समाज मे अधिक लोकप्रिय हुई है, दूसरी ओर उन कृतियो का मूल-स्वरूप भी सुरक्षित रह गया है। कालिदास, हर्ष, माघ, भारवि, भट्टि, सोमेश्वर आदि के प्रसिद्ध ग्रन्थो की अनेक पाण्डुलिपियां जैन ग्रन्थ भण्डारो मे प्राप्त है।[1] इन पर जिन जैन विद्वानो ने संस्कृत मे टीकाएं लिखी है उनमें प्रकाशवर्ष (किरातार्जुनीयम्), धर्ममेरु, सुमतिविजय, चारित्रवर्द्धन (रघुवश), गुणरत्न (काव्यादश), मल्लिनाथ, विनयचन्द्र (मेघदूत आदि), जिनराजसूरि (नेषधचरित) आदि टीकाकारो के नाम उल्लेखनीय है।[2] यह जैनविद्वानो का एक तरफ प्रयत्न था। यदि इसी प्रकार ब्राह्मण विद्वान् जैन-प्राकृत साहित्य के ग्रन्थो पर टीकाएं लिखते तो आज जैन साहित्य इतना उपेक्षित नही रहता।

राजपुरुषों एवं श्रावकों द्वारा संस्कृत-सेवा :

समय-समय पर पश्चिमी भारत मे अनेक राजपुरुष ऐसे हुए है जिन्होने जैन विद्वानो को राज्याश्रय एव अन्य सुविधाएं प्रदान कर उन्हे सस्कृत साहित्य के लेखन मे सहयोग प्रदान किया है। स्वय भी अनेक ग्रन्थो की रचना की है। इस क्षेत्र मे गुजरात के राजाओ एव राज्यमंत्रियो का प्रमुख योगदान रहा है। सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, वस्तुपाल-तेजपाल आदि के नाम उल्लेखनीय है। वस्तुपाल का निजी पुस्तकालय सस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थो से समृद्ध था। उसने विद्वानो की सुविधा के लिए तीन नगरो मे पुस्तकालय भी स्थापित किये थे।[3] समय-समय पर इन राजाओं द्वारा वादविवाद प्रतियोगिताएं आयोजित होती रहती थी जिनमे जैनविद्वान् भी भाग लेते थे और सस्कृत की रचनाओ द्वारा चमत्कार दिखाते थे। जैन गृहस्थो का मुक्त-हस्त से दिया गया दान संस्कृत साहित्य की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण था। कुछ श्रावको ने सस्कृत की रचनाए भी लिखी है, यथा—सेठपुत्र पद्मानन्द का 'वैराग्यशतक' तथा नेमिचन्द्र भण्डारी के ग्रन्थ आदि।

जैन विद्वानों द्वारा लिखित संस्कृत अभिलेख :

पश्चिमी भारत के कुछ जैन विद्वानो का राज्यो से घनिष्ठ सम्बन्ध था। राजाओ की सभा मे रहने के कारण वे उनके अभिलेख आदि लिखने का कार्य भी करते थे। कुमारपाल का चित्तौड़ अभिलेख (११५० ई०), बिजोलिया अभिलेख (११६८ ई०) तथा सून्था अभिलेख (१३१९ ई०) दिगम्बर जैन विद्वानो द्वारा सस्कृत मे लिखे गये है।[4] इस प्रकार के अन्य अभिलेख भी खोजे जा सकते है जो न केवल ऐतिहासिक महत्त्व के है, अपितु उनका काव्य पक्ष भी अध्ययन के योग्य है।

---

१. जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० २१७

२. मधुमती-जैनेतर सस्कृत साहित्य, श्री अगरचन्द्र नाहटा का लेख।

३ प्रबन्धकोष, पृ० १२९, वस्तुपालचरित, पृ० ८०

४. राजस्थान थ्रू द एजेज–डॉ० दशरथ शर्मा, पृ० ५२४

३१ | राजस्थानी जैन साहित्य

डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

राजस्थानी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने मे जैन साहित्यकारो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन साधु-साध्वियो का मुख्य दैनन्दिन कार्य-क्रम जनता को उनकी अपनी भाषा मे धर्मोपदेश देना रहा है। इस दृष्टि से वे जिस-जिस क्षेत्र में गये, उस-उस क्षेत्र की भाषा मे साहित्य रचना करते रहे। यही कारण है कि उनकी भाषा पर स्थानीय प्रभाव सर्वाधिक देखने को मिलता है। राजस्थानी साहित्य की पद्य और गद्य दोनो विधाओ मे सैकड़ों साहित्यसेवियो ने सहस्राधिक रचनाएँ की। उन सबका विवरण प्रस्तुत करना यहाँ संभव नही है। अतः प्रमुख साहित्यकारो का संक्षिप्त परिचय ही यहाँ दिया जा रहा है। साहित्य-रचना का यह क्रम तेरहवी शती से लेकर अद्यावधि यथावत् चालू है। युग प्रभाव से उसके कथ्य और शिल्प मे युगानुरूप परिवर्तन अवश्य आया है, पर मूल दृष्टि अध्यात्मप्रधान ही रही है।

१. शालिभद्र सूरि : ये राजगच्छ आम्नाय के प्रमुख आचार्य थे। देशी भाषा मे उपलब्ध रास ग्रंथो मे 'भरतेश्वर बाहु बलि रास' की गणना प्राचीनतम रास के रूप मे की जाती है। इसकी रचना संवत् १२४१ के फाल्गुन मास की पंचमी तिथि को पूरी हुई थी। इनका एक अन्य रास 'बुद्धि रास' भी प्रसिद्ध है।

२. आसिग (आसगु) : इनके द्वारा रचित रचनाओ मे 'जीव दया रास' और 'चन्दन बाला रास' प्रमुख हैं। चन्दन बाला रास का रचना काल १२५७ के आसपास का है। प्रमाणो द्वारा स्पष्ट हुआ है कि इन दोनो रासो की रचना राजस्थान मे हुई थी।

३. सुमतिगणि : ये जिनपति सूरि के शिष्य कहे जाते हैं। इनकी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमे से 'गणधर सार्ध शतक वृत्ति' संवत् १२९५ की रचित है। 'नेमिनाथ रास' आपकी प्रारंभिक रचना है।

४. देल्हड़ : ये श्वेताम्बर श्रावक प्रतीत होते हैं। इनकी रचनाओ मे 'गयसुकुमाल रास' का प्राचीनता की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। रचनाकार ने श्री देवेन्द्र सूरि की प्रेरणा से इसकी रचना की। श्री देवेन्द्र सूरि संभवतः तपागच्छ के संस्थापक जगच्चन्द्र सूरि के शिष्य थे। जगच्चन्द्र सूरि का समय १३०० वि० के सन्निकट है, अतः इस रास का रचनाकाल १३वीं शताब्दी माना जा सकता है।

५. जयसागर : ये दरड़ा गोत्रीय खरतरगच्छीय महोपाध्याय थे। इनका जन्म संवत् १४५० के आसपास हुआ। 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' इनकी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना है। राजस्थानी भाषा मे रचित 'जिनकुशल सूरि सप्ततिका' का तो आज भी लोग पाठ करते है। इनकी छोटी-बड़ी कई रचनाएँ हैं, यथा—चौबीस जिन स्तवन, वेग्रर स्वामी रास, अष्टापद तीर्थ बावनी, गौतमस्वामी चतुष्पादिका, नेमिनाथ विवाहलो, अजितनाथ विनती, नेमिनाथ भावपूजा स्तोत्र, वीर प्रभु विनती, श्रीमंधर स्वामी विनती आदि।

६. देपाल : इनका रचनाकाल संवत् १५०१ से १५३४ तक रहा है। ये नरसी मेहता के समकालीन थे। इनकी कुछ रचनाएँ इस प्रकार हैं—जावड भावड रास, चंदनबाला चरित्र चौपई, जंबू स्वामी पंच भव वर्णन चौपई, स्थूलभद्र फाग, पार्श्वनाथ जीराउला रास, थावच्चा कुमार भास, श्रेणिक राजा रास, नवकार प्रबन्ध, पुण्य-पाप फल चौपई आदि।

७. ऋषिवर्धन सूरि : ये आंचल गच्छ नायक जयकीर्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—नल दवयंती रास, जिनेन्द्रातिशय पचाशिका। इनका रचनाकाल संवत् १५१२ के लगभग रहा है।

८. मतिशेखर : ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—धन्नारास, नेमिनाथ वसंत फुलड़ा, कुरगडु महर्षि रास, मयणरेहा सती रास, इलापुत्र चरित्र, नेमिगीत आदि।

९. पद्मनाभ : ये १५-१६वी शताब्दी के प्रतिभाशाली विद्वान और प्रसिद्ध कवि थे। इनका चित्तौड़ से विशेष सम्बन्ध रहा। संघपति डूंगर के अनुरोध पर संवत् १५४३ मे इन्होंने बावनी (डूंगर-बावनी) की रचना की, जिसके विषय-नीति, व्यावहारिकता आत्म-दर्शन आदि हैं।

१०. धर्म सुन्दर गणि : ये खरतरगच्छीय जिनसागर सूरि की पट्ट-परम्परा में विवेकसिंह के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—सुमित्रकुमार रास, कुलध्वज कुमार रास, अवंति सुकुमाल स्वाध्याय, रात्रि भोजन रास, प्रभाकर गुणाकर चौपई, शकुन्तला रास, सुदर्शन रास आदि।

११. सहज सुन्दर : ये उपकेशगच्छीय उपाध्याय रत्नसूरि के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है—इलायचीपुत्र सज्झाय, गुण रत्नाकर छन्द, ऋषिदत्तारास, रत्नसार कुमार चौपई, आत्मराज रास, शुक साहेली कथा रास, जंबू अंतरंग रास, यौवन-जरा संवाद, परदेशी राजा नो रास, आंख-कान संवाद, गरभवेलि आदि।

१२. पार्श्वनाथ सूरि : ये नागपुरीय तपागच्छ के साधुरत्न के शिष्य थे। लोक भाषा में गद्य और पद्य दोनों में, प्रभूत रचनाओं की सृष्टि कर, इन्होंने जैन धर्म की महान् सेवा की। इनका जन्म संवत् १५३८ और स्वर्गवास १६१२ माना जाता है। इनकी छोटी-बड़ी कई रचनाएँ हैं। प्रमुख रचनाएँ हैं—साधु वंदना, पाक्षिक छत्तीसी, चारित्र मनोरथ माला, श्रावक मनोरथ माला, वस्तुपाल तेजपाल रास, आत्म शिक्षा, आगम छत्तीसी, गुरु छत्तीसी, विवेक शतक, आदीश्वर स्तवन विज्ञप्तिका, खंधक चरित्र सज्झाय, वीतराग स्तवन ढाल आदि।

१३. ठक्कुरसी . इनका समय सोलहवी शती रहा है। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान और कवि थे। इनके पिता का नाम देल्ह था जो स्वय अच्छे कवि थे। ये चाटसू के रहने वाले पहाडिया गोत्र के थे। अब तक इनकी ६ रचनाएँ उपलब्ध है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी, मेघमाला व्रतोद्यापन, कृपण गीत, शील बत्तीसी, पचेन्दिय वेलि (सवत् १५५०), गुणवेलि, नेमि राजमति वेलि, चिन्तामणि जयमाल, सीमधर स्तवन आदि।

१४. बूचराज : ये १६वी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हे—मयणजुज्झ, सतोष तिलक, जयमाल, चेतन पुद्गल, धमाल आदि।

१५ छीहल: ये सोलहवी शती के उत्तरार्द्ध के कवि है। ये अग्रवाल जैन थे। इनके पिता का नाम नाथू था। ये अपने समय के प्रसिद्ध जैन विद्वान और कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ है—पच सहेली (सवत् १५७५), आत्म प्रतिबोध जयमाल, उदर गीत, बावनी या छीहल बावनी (सवत् १५८४), पथी गीत या वेलि गीत।

१६ विनयसमुद्र . ये बीकानेर के रहने वाले व उपकेशगच्छीय वाचक हरसमुद्र के शिष्य थे। इनका रचना काल सवत् १५८३ से सवत् १६१४ तक रहा है। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि व विद्वान थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ है—विक्रम पचदण्ड चौपाई, अम्बड़ चौपाई (सवत् १५९९), मृगावती चोपाई, चित्रसेन पद्मावती रास, सग्राम सूरि चौपाई, चन्दनबाला रास, नमि राजर्षि सधि, इलापुत्र रास आदि।

१७ राजशील : ये खरतरगच्छीय साधु हर्ष के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ है—विक्रम खापर चरित चौपाई (सवत् १५६३), अमरसेन वयरसेन चोपाई (संवत् १५९४), उत्तराध्ययन छत्तीस गीत, सिंदुर प्रकरण बालावबोध (गद्य रचना) आदि।

१८. पुण्यसागर : ये खरतरगच्छाचार्य जिनहस सूरि के शिष्य थे। ये अपने समय के प्रौढ विद्वानो मे अग्रगण्य थे। स० १६५० मे इन्होने जैसलमेर मे जिनकुशलसूरि की पादुकाए प्रतिष्ठित की थी। इनकी आयु लगभग ८०-९० वर्ष की रही होगी। इनकी प्रमुख रचनाए है—सुबाहुसधि, (स १६०४), मुनिमालिका, प्रश्नोतर काव्यवृति, (१६४०), जम्बू द्वीप पन्नति वृत्ति (१६४५), नमि राजर्पि गीत, महावीर स्तवन, आदिनाथ स्तवन, अजित स्तवन, श्री जिनचन्द्रसूरि, अष्टकम् आदि।

१९. कुशललाभ : ये खरतरगच्छीय वाचक अभयधर्म के शिष्य थे। इनका जन्म स० १५८० के लगभग हुआ प्रतीत होता है। इनका रचनाकाल स० १६१६ से स० १६२६ तक रहा है। ये अपने समय के ख्यातिप्राप्त प्रौढ़ कवि थे। इनका जैसलमेर के युवराज कुमार हररावल से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इनकी मुख्य रचनाएं है—माधवानल कामकन्दला चौपाई (१६१६), ढोलामारवणी चौपाई तेजसार रास (१६२४), अगडदत्त रास (१६२५), भवानी छद, नवकारछद, जिनपालित जिनरक्षित संधि, पिंगल शिरोमणि, दुर्गा सात्तसी, आदि।

२०. मुनि मालदेव : ये भटनेर (हनुमानगढ) के थे और वडगच्छीय भावदेव के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६१२–१६१४ के आसपास प्रतीत होता है। इनका 'मन भमरा' और 'महावीर पारणा' आज भी लोकप्रिय हैं। इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं—पुरन्दर चौपाई, सुर सुन्दर

चौपाई, वीरागद चौपाइ, माल शिक्षा चौपाई, शीलबावनी, स्थूलिभद्र धमालि चौपाई, भोज प्रबन्ध, देवदत्त चौपाई, सत्य की चौपाई, अंजना सुन्दरी चौपाई, महावीर पंचकल्याण स्त०, मृगांक पद्मावती रास, पद्मावती पद्म श्री रास, अमरसेन वयरसेन चौपाई, आदि ।

२१. **हीरकलश :** ये खरतरगच्छीय सागरचन्द्रसूरि शाखा के विद्वान् और कवि थे । इनका जन्म सं० १५६५ मे और मृत्यु स० १६५७ के लगभग हुई । ये अपने समय के प्रख्यात कवि और ज्योतिष के पडित थे । इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है—सामायिक बत्तीस दोप कुलक (१६१५) दिनमान कुलक, जम्बू स्वामी चरित्र (१६१६), कुमति विध्वसन चौपाई, मुनिपति चौपाई (१६१८) सर्वजिन गणधर संख्या विनती, राजसिंह रत्नावती सधि, वृहद गुर्वावली (१६१६), वीर परम्परा नामावली, सोलह स्वप्न सज्झाय, समकित गीत, सप्त व्यसन गीत, खरतर आचरण गीत, आराधन चौपाई, मोती कपासिया संवाद, जोइसहीर, आदि ।

२२. **कनकसोम :** ये खरतरगच्छीय अमर माणिक्य के शिष्य थे । इनका रचनाकाल १६२५-१६५५ तक रहा है । इनकी प्रमुख रचनाएं हैं–जइतपद वेलि, जिनपालित जिन रक्षित रास, आषाढभूति चौपाई, हरिकेशी सधि, आर्द्रकुमार चौ०, मंगलकलश रास, थावच्चा सुकोशल चरित्र, कालिकाचार्य कथा, जिनचन्द्रसूरि गीत, नेमि फाग आदि ।

२३ **हेमरत्न सूरि :** ये पूनमियागच्छ वाचक पद्मराज के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६०३ से १६४५ तक रहा है । इनकी प्रमुखकृतियो मे से कुछ के नाम इस प्रकार है—शीलवती रास, महीपाल चौ०, अमरकुमार चौ०, गोराबादल चौ०, लीलवती रास, जगदम्बा बावनी आदि ।

२४. **ब्रह्म रायमल्ल :** ये अच्छे विद्वान् थे और भट्टारक अनन्तकीर्ति के शिष्य थे । इनका समय सत्रहवी शती रहा है । इनकी प्रद्युम्न रास, श्रीपाल रास, भविष्यदत्त कथा, हनुमत रास, सुदर्शन रास, नेमीश्वर रास आदि रचनाएं प्रमुख है ।

२५. **हर्षकीर्ति :** ये सत्रहवी शती के कवि थे । इनकी 'पंचगतिवेलि', प्रसिद्ध कृति है । अन्य कृतियो मे छह लेश्या कवित्त, कर्म हिंडोलना, नेमिनाथ राजमति गीत, नेमीश्वर गीत आदि के नाम उल्लेखनीय है । इनके द्वारा लिखे हुए कई पद भी मिलते हैं ।

२६. **विद्याभूषण :** ये रामसेन परम्परा के साधु थे । इन्होने सोजत नगर मे 'भविष्यदत्त रास' की रचना सवत् १६०० मे पूरी की ।

२७. **रत्नकीर्ति :** ये सूरत गद्दी के भट्टारक थे । स० १६४३ में इनका पट्टाभिषेक हुआ और सं० १६५६ तक ये भट्टारक रहे । राजस्थान से इनका काफी सम्बन्ध रहा । ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि एव साहित्यकार थे । इनकी उपलब्ध रचनाओ में प्रमुख हैं—नेमीनाथ फाग, नेमिनाथ बारहमासा, नेमिनाथ हिंडोलना एव नेमीश्वर रास । इनके कई पद भी मिलते हैं ।

२८. **गुणविनय :** ये महोपाध्याय जयसोम के शिष्य थे । इनका रचनाकाल संवत् १६५४ से १६७६ तक है । सस्कृत के अनेक ग्रंथो पर आपने टीकाएं लिखी हैं । इनकी कतिपय राजस्थानी रचनाओ के नाम इस प्रकार है—कयवन्ना संधि, कलावतीरास, अंजना प्रबन्ध, ऋषिदत्ता चौपाई, जीवस्वरूप चौ०, नलदमयती रास आदि ।

२९. **समयसुन्दर :** ये सत्रहवी शताब्दी के प्रमुख कवि थे । इनका जन्म संवत् १६३० के लगभग माना जाता है । इनके पिता का नाम रूपशी और माता का लालादे था । ये जिनचंद्र सूरि के

४५. दौलतराम कासलीवाल : ये अपने समय के उत्कृष्ट कवि, गद्य लेखक और महान् विद्वान् थे। इनका समय सं० १७४६ से १८२६ रहा है। इन्होने करीब १८ ग्रन्थों की रचना की। पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, पुण्यास्रव कथाकोश आदि इनकी गद्य कृतियां हैं और विवेक विलास, अध्यात्म बारहखड़ी एवं जीवंधर चरित इनकी प्रमुख पद्यात्मक कृतियां हैं।

४६. टोडरमल : ये जयपुर के निवासी थे। इनका समय सं० १७८० से १८२७ तक रहा प्रतीत होता है। अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं व्युत्पन्न मति के कारण ये अपने समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् थे। भापा-टीका लिखकर आपने ढूंढाड़ी गद्य को काफी समृद्ध बनाया। गोम्मटसार भापा, आत्मानुशासन भापा, त्रिलोकसार भापा, मोक्षमार्ग प्रकाशक आपकी प्रसिद्ध कृतियां हैं।

४७. खुशालचंद काला : ये सांगानेर के निवासी थे। इनका जन्म स० १७५५ के आसपास हुआ था। ग्रन्थ-रचना मे इनकी विशेप रुचि थी। हरिवंश पुराण, पद्म पुराण, यशोधर चरित, उत्तर पुराण, वर्धमान पुराण,जम्बू स्वामी चरित्र, चौवीस महाराज पूजा आदि इनकी प्रमुख रचनाए हैं।

४८. जयचन्द छावड़ा : इनका जन्म फागी गाम मे सं० १७९५ मे हुआ था। बाद मे ये जयपुर आकर रहने लगे। ये अच्छे विद्वान् थे। इनकी १६ से भी अधिक कृतिया हैं। प्रमुख रचनाओ के नाम इस प्रकार है—तत्वार्थ सूत्र भाषा वचनिका, सर्वार्थ सिद्धि भापा वचनिका, द्रव्य संग्रह भापा, समयसार भापा, अष्ट पाहुड भापा, आप्त मीमांसा भापा, देवागमस्तोत्र भापा, परीक्षा मुख भापा आदि। इन्होने प्राकृत एवं संस्कृत ग्रन्थो का भापानुवाद किया और इनके प्रचार मे महान् सहायक बने।

४९. रायचन्द : इनका जन्म स० १७९६ की आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम विजयचन्द धाड़ीवाल तथा माता का नदादेवी था। सवत् १८१४ की आपाढ़ शुक्ला एकादशी को १८ वर्ष की अवस्था मे इन्होने पीपाड़ शहर मे स्थानकवासी आचार्य श्री जयमल्ल जी से दीक्षाव्रत अगीकार किया। ६५ वर्ष की आयु में सं० १८६१ की चैत्र सुदी द्वितीया को इनका स्वर्गवास हुआ। ये अपने समय के प्रख्यात कवि और प्रभावशाली आचार्य थे। इनकी २०० से अधिक रचनाए उपलब्ध हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—आपाढभूति मुनि को पंचढ़ालियो, आठकर्मों पर चौपाई, आठ प्रवचन माता को चौढ़ालियो, एवन्ता ऋपि की ढाल, कलावती की चौपाई, करकडू की चौपाई, गौतमस्वामी को रास,चन्दनवाला की ढाल, जम्बू स्वामी की सज्झाय, मेतार्य मुनि को चौढ़ालियो आदि। इन्होने पच्चीसी सज्ञक अनेक रचनाएँ लिखीं। कुमारी स्नेहलता माथुर ने 'कवि रायचद और उनकी पच्चीसी सज्ञक रचनाएं' विपय पर लघु शोध प्रवन्ध प्रस्तुत किया है जो अब तक अप्रकाशित है।

५०. आसकरण : इनका जन्म जोधपुर राज्य के तिंवरी गाव में हुआ था। इनके पिता का नाम रूपचन्द बोथरा तथा माता का गंगादेवी था। इन्होने सम्वत् १८३० में आचार्य रायचन्द जी म० सा० के नेश्राय मे श्रमण दीक्षा अंगीकार की। इनकी छोटी बडी कई अध्यात्मिक भावपूर्ण रचनाएँ हस्तलिखित भंडारो मे सुरक्षित हैं। अब तक जिन रचनाओं की जानकारी मिली है उनमे मे

कुछ के नाम इस प्रकार हैं–दस श्रावकों की ढाल, केशी गौतम चर्चा ढाल, साधुगुण माला, भरत जी री रिद्धि, छोटी साधु वन्दना, गर्जसिंह जी का चौढाल्या, श्री धन्नाजी की सात ढालां, पूज्य रायचन्द जी म० के गुणो की ढाल आदि ।

५१. सबलदास : इनका जन्म सं० १८२८ मे भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को पोकरण मे हुआ । इनके पिता का नाम आनन्द राज जी लूणिया और माता का सुन्दर देवी था । १४ वर्ष की अवस्था मे बुचकला ग्राम मे इन्होने आचार्य श्री रायचद जी से मुनि दीक्षा धारण की । ६१ वर्ष की आयु मे सवत् १९०३ मे वैशाख शुक्ला नवमी को सोजत मे इनका स्वर्गवास हुआ । इनकी कई रचनाएं व पद आ० विनयचद्र ज्ञान भंडार मे सुरक्षित है ।

५२. दुर्गादास : इनका जन्म स० १८०६ मे मारवाड जक्शन के पास सालरिया गाव मे हुआ । इनके पिता का नाम शिवराज तथा माता का सेवादेवी था । १५ वर्ष की लघुवय मे संवत् १८२१ मे इन्होने स्थानकवासी आचार्य कुशलाजी म० के समीप दीक्षा अंगीकार की । ये एक समर्थ कवि थे । इनकी रचनाओ का अभी पूरा पता नही चला है । स्फुट रूप से पद, सज्झाय, ढालें आदि रचनाये मिलती है । 'गौतम रास' और 'ऋषभ चरित' इनकी अपेक्षाकृत बड़ी रचनाये है ।

५३. लालचन्द : इनका जन्म कोटा राज्यान्तर्गत कातरदा नामक गाव मे हुआ । ये कोटा परम्परा के आचार्य श्री दौलतराम जी म० के शिष्य थे । इनकी रचनाए यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं । जिन रचनाओ की अब तक जानकारी मिली है, इनमे मुख्य हैं—महावीर स्वामी चरित, जबू चरित, चन्द्रसेन राजा की चौपाई, अठारह पाप के सवैया, बीस विरहमान का स्तवन, विजय कवर, विजया कु वरी चौढालिया, लालचद बावनी आदि ।

५४. बखतराम साह : ये चाटसू (राजस्थान) के निवासी थे । इनके पिता का नाम पेमराम था । इन्होने 'मिथ्यात्व खडन' और 'बुद्धि विलास' की रचना की । 'मिथ्यात्व खंडन' स० १८२१ की रचना है । इसमे १४२३ दोहा चौपाई, छन्द है । इसी प्रकार 'बुद्धि विलास' सं० १८२७ की रचना है । इसमे १५२३ दोहा-चौपाई है । इन रचनाओं के अतिरिक्त इनके पद भी पर्याप्त सख्या मे मिलते है ।

५५. नवलराम . ये १८वी शताब्दी के कवि थे और बसवा (राजस्थान) के रहने वाले थे । महापडित दौलतराम कासलीवाल की प्रेरणा से इनको साहित्यिक रुचि हुई । 'वर्धमान पुराण' इनकी स० १८२५ की रचना है । इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओं मे 'जय पच्चीसी', विनती, रेखता आदि के नाम उल्लेखनीय है । अब तक इनके २०० से अधिक पद भी प्राप्त हो चुके हैं । इनके अधिकाश पद भक्तिपरक है ।

५६. रत्नचन्द्र : इनका जन्म स० १८३४ वैशाख सुद पचमी को जयपुर राज्य के कुड़ नामक गाव मे हुआ । इनके पिता का नाम लालचन्द्रजी और माता का हीरादेवी था । इनकी दीक्षा सम्वत १८४८ मे हुई और स० १८४९ से इन्होने काव्य रचना करनी प्रारम्भ कर दी । ये आचार्य श्री गुमानचन्द्रजी म० सा० के शिष्य थे । इनके द्वारा अनेक पद लिखे गये हैं, जो स्तुति, उपदेश और धर्म कथा, तीन भागो मे वाटे गये हैं । स्तुतिपरक पद्यो मे तीर्थंकरों की स्तुति की गई है । औपदेशिक भाग मे पुण्य-पाप, आत्मा-परमात्मा, बन्ध-मोक्षादि भावो का सुन्दर चित्रण किया गया है । धर्म कथा

[illegible] मे जीवन को उदात्त बनाने वाली पद्यात्मक कथाए है। इनकी रचनाओ का संग्रह सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर से 'श्री रत्नचन्द्र पद मुक्तावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनका सम्पादन पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा० ने किया है।

५७. बुधजन : ये जयपुर के रहने वाले थे। इनकी अब तक १७ रचनाए प्राप्त हो चुकी है। इनका रचनाकाल संवत् १८५४ से १८९५ रहा है। 'तत्वार्थ बोध' बुधजन सतसई, संबोध पंचासिका, पचास्तिकाय, बुधजन विलास, आदि इनकी प्रमुख रचनाए है। 'बुधजन विलास' मे इनकी स्फुट रचनाओ का संग्रह है।

५८ सदासुख कासलीवाल : इनका जन्म स० १८५२ के लगभग जयपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम दुलीचन्दजी था। ये पं० टोडरमल की परम्परा मे होने वाले प्रमुख विद्वान थे। इनका निधन स० १९२३ मे हुआ। इन्होने अधिकाश ग्रंथ भाषानुवाद के रूप मे ही लिखे है, जिनमे तत्वार्थ-सूत्र की अर्थ प्रकाशिका टीका, समयसार की हिन्दी गद्य टीका, रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका आदि प्रमुख है।

५९. चौथमल . ये आचार्य श्री रघुनाथजी के शिष्य मुनि श्री अमीचन्दजी के शिष्य थे। इनका जन्म स० १८०० मे मेड़ता के निकट भंवाल मे हुआ। इनके पिता श्री रामचन्द्रजी व माता गुमानबाई धर्मज्ञ थी। इन्होने स० १८१० मे दीक्षा अंगीकृत की। ७० वर्ष का संयम-पालन के बाद स० १८८० मे इनका निधन हुआ। ये सुमधुर गायक और कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाएं है— [illegible] री ढाला, जिनरिख-जिनपाल, सेठ सुदर्शन, नन्दन मणियार, सनतकुमार चौढालिया, महाभारत [illegible], रामायण, श्रीपाल चरित्र, दमघोष चौपाई आदि।

६०. जीतमल (जयाचार्य) · ये तेरापथ सम्प्रदाय के चतुर्थ आचार्य थे। इनका जन्म स० १८६० में रोहट (मारवाड़) नामक स्थान पर हुआ। इन्होने सम्वत् १८६९ मे ९ वर्ष की अल्पायु में प्रव्रज्या ग्रहण की। तेरापंथ सम्प्रदाय की नीव दृढ करने में इनका बडा हाथ रहा। इनका लगभग तीन लाख श्लोक परिमाण वाला विशाल साहित्य है। इनकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'भगवती सूत्र' का राजस्थानी मे रूपान्तरण है जो अनेक राग-रागनियो में है। इनका कथा-साहित्य भी बहुत विशाल है। [illegible] रचनाओ मे प्रमुख है—भिक्षु जसरसायन, हेमनवरसा आदि। इनकी समस्त कृतियों का [illegible] तेरापंथी महासभा, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। सं० १९३८ में इनका देहावसान जयपुर मे हुआ।

६१. [illegible]राम : ये पूज्य दुर्गादासजी म० के शिष्य मुनि श्री दुलीचन्दजी के शिष्य थे। इनका जन्म स० १८५८ में [illegible] (जोधपुर) मे हुआ। इनके पिता का नाम किसनदास तथा माता [illegible] था। स० १८७० में ये दीक्षित हुए। ये अत्यन्त सेवाभावी और चर्चावादी सत थे। स० [illegible] मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी 'सिद्धान्त सार' व 'ब्रह्मविलास' (इसमें ८७ [illegible]) [illegible] है। [illegible] पद भी लिखे है।

६२ [illegible] : इनका जन्म वि० १८९६ में हुआ। इनके पिता का नाम ताराचन्दजी और [illegible] था। इन्होने स० १९५? मे आचार्य श्री विनयचन्दजी म० सा० [illegible] ये सुमधुर गायक और सरस कवि थे। इनकी रचनाओ का संग्रह सम्यग्ज्ञान

प्रचारक मण्डल जयपुर से 'सुजानपद सुमन वाटिका' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन प० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा० ने किया है।

६३. **महाचन्द** : ये सीकर के रहने वाले थे और भट्टारक भानुकीर्ति की परम्परा मे पाण्डे थे। इनकी त्रिलोकसार पूजा सबसे बडी रचना है, जिसका रचनाकाल सम्वत् १६१५ है। इन्होने कितने ही पदो की रचना की थी। इनके अधिकाश पद भक्ति, स्तुति एव उपदेशात्मक है।

६४. **नेमिचन्द्र** : इनका जन्म वि० स० १६२५ मे आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को बगडुन्दा (मेवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम देवीलाल लोढा और माता का नाम कमलादेवी था। ये जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी म० सा० की परम्परा के छठे पट्टधर श्री पूनमचन्दजी म० सा० के शिष्य थे। ये आशु कवि थे और चलते-फिरते वार्तालाप में या प्रवचन मे शीघ्र ही कविता बना लिया करते थे। इनकी रचनाओं का एक सग्रह श्री पुष्कर मुनि ने 'नेमवाणी' नाम से सम्पादित किया है जिसका प्रकाशन तारक गुरु ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर) से हुआ है।

६५. **श्रावक कवि विनयचन्द्र** : इनका जन्म जोधपुर भोपालगढ़ के बीच एक छोटे से ग्राम देईकडा मे हुआ। इनके पिता का नाम गोकुलचद कुम्भट था। ये आचार्य श्री हम्मीरमलजी के निष्ठावान श्रावक थे। ये प्रज्ञाचक्षु थे। इनकी 'विनयचन्द चौबीसी' प्रसिद्ध रचना है जिसे कवि ने सं० १६०६ मे पूरी की थी। इनकी अन्य रचनाए है—पूज्य हमीर चरित्र, आत्मनिंदा, पट्टावली, फुटकर पद्य आदि।

६६. **माधव मुनि** : ये धर्मदासजी म० की परम्परा मे आचार्य श्री नन्दलालजी म० के शिष्य थे स० १६४० के लगभग इन्होने दीक्षा अगीकृत की। ये प्रखर चर्चावादी सन्त थे। स० १६८१ मे गाडोला (जयपुर) गाव के निकट इनका स्वर्गवास हुआ। ये सरस कवि थे। इनके कई पद मिलते हैं।

६७. **जेठमल** : ये जयपुर के निष्ठावान श्रावक और प्रतिष्ठित जौहरी थे। इनके पिता का नाम श्री भूधरसिंहजी था। ये प्रसिद्ध संगीतज्ञ और चित्रकार थे। 'जम्बू चरित' इनकी प्रसिद्ध रचना है जो प्रकाशित हो चुकी है। आपके कई पद भी रचित मिलते हैं जो बडे ही भावपूर्ण हैं।

साध्वी परम्परा की कवयित्रियाँ :

भारतीय धर्म परम्परा मे साधुओ की तरह साध्वियो का भी विशेष योगदान रहा हे। इन जैन साध्वियो ने साहित्य-निर्माण और उसके संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। यहां प्रमुख कवयित्रियो के सम्बन्ध मे संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

६८. **विनयचूला** : ये आगमगच्छीय हेमरत्नसूरि के समुदाय की शिष्या हे। इन्होने सम्वत् १५१३ के आसपास 'श्री हेमरत्नसूरि गुरुफागु' नामक ११ पद्यो की रचना की। इसमे अमरसिंहसूरि के पट्टधर हेमरत्न सूरि का परिचय दिया गया है।

६९. **पद्मश्री** : इनका सम्बन्ध आगमगच्छीय समुदाय से रहा हे। श्री मोहनलाल दलीचद देसाई ने 'जैन गुर्जर कविओ' भाग ३, खण्ड १ के पृष्ठ ५३५ पर इनकी एक रचना 'चारुदत्त चरित्र' का उल्लेख किया है। पुष्पिका मे लिखा है कि इसे आगमगच्छीय धर्मरत्न सूरि ने सं० १६२६ चैत्र वदि १४ के दिन लिपिवद्ध किया। यह २५४ छन्दो की रचना है।

७०. हेमश्री : ये वडतपगच्छ के नयसुन्दरजी की शिष्या थी। 'जैन गुर्जर कविश्रो' भाग १ के पृ० २८६ पर इनकी एक रचना 'कनकावती आख्यान' का उल्लेख मिलता है। यह ३६७ छन्दो की रचना है। इसकी रचना सम्वत् १६४४ वैशाख सुदी ७ मंगलवार को की गई।

७१. हेमसिद्धि : इनका सम्बन्ध खरतरगच्छ से था। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृष्ठ २१० और २११ पर इनके दो गीतो का पाठ दिया है। पहली रचना है—'लावण्य सिद्धि पहुतणी गीतम्' इस रचना मे साध्वी लावण्य सिद्धि का परिचय दिया गया है। दूसरी रचना 'सोमसिद्धि निर्वाण गीतम्' है। इसमे १८ पद्य हैं। यह रचना कवित्वपूर्ण है। इसमे कवयित्री का सोमसिद्धि के प्रति गहरा स्नेह और भक्तिभाव प्रकट हुआ है।

७२. विवेकसिद्धि : ये लावण्य सिद्धि की शिष्या थी। नाहटाजी ने ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृ० ४२२ पर उनकी एक रचना 'विमल सिद्धि गुरुणी गीतम्' प्रकाशित की है। इस रचना के अनुसार विमल सिद्धि मुलतान निवासी माल्हू गोत्रीय शाह जयतसी की पत्नी जुगतादे की पुत्री थी। बीकानेर मे इनका स्वर्गवास हुआ।

७३. विद्यासिद्धि : नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृ० २१४ पर इनकी रचना 'गुरुणी गीतम्' प्रकाशित की है। प्रारम्भ की पक्ति न होने से गुरुणी का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। बाद की पक्तियो से सूचित होता है कि ये गुरुणी साउसुखा गोत्रीय कर्मचन्द की पुत्री थी और जिनसिंह सूरि ने इन्हे पहुतणी पद दिया था। यह रचना सवत् १६९९ भाद्र कृष्णा २ को रची गयी।

७४. हरकू बाई : इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से रहा है। आचार्य श्री विनय चन्द्र ज्ञान भण्डार जयपुर मे पुष्ठा सं० १०५ मे ८८वी रचना 'महासती श्री अमरूजी का चरित्र' इनके द्वारा रचित मिलती है। इसकी रचना सवत् १८२० मे किशनगढ मे की गई। इन्ही की एक रचना 'महासतीजी चतरूजी सज्झाय' नाम से नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' मे पृष्ठ स० २१४, २१५, पर प्रकाशित की है।

७५. हुलासा : ये भी स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित हैं। आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर मे पुष्ठा स० २९८ मे ५०वी रचना 'क्षमा व तप ऊपर स्तवन' इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना सम्वत् १८८७ मे पाली मे हुई थी।

७६. सरूपां बाई : ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्रीमलजी म० से सम्बन्धित हैं। नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य सग्रह' मे पृ० १५६—१५८ पर इनकी एक रचना 'पूज्य श्रीमलजी की सज्झाय' प्रकाशित की है।

७७. जड़ावजी : ये स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री रत्नचद्रजी महाराज के सम्प्रदाय की प्रमुख रंभाजी की शिष्या थी। इनका जन्म सवत् १८९८ मे सेठो की रीया मे हुआ था। सम्वत् १९२२ मे ये दीक्षित हुई। नेत्र ज्योति क्षीण होने से सम्वत् १९५० से अन्तिम समय सम्वत् १९७२ तक ये जयपुर मे ही स्थिरवासी बन कर रही। इनकी रचनाओ का एक सकलन 'जैन स्तवनावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमे इनकी स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक और तात्विक रचनाए सग्रहित है। रूपक लिखने मे इन्हे विशेष सफलता मिली है।

७८. आर्या पार्वती : इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय से है। इनका जन्म आगरे के निकट खेड़ा भाडपुरी गाव मे चौहान राजपूत

बलदेवसिंह की पत्नी धनवती की कुक्षि से सम्वत् १९११ मे हुआ। जैन मुनि कुंवरसेनजी के प्रतिबोध से सम्वत् १९२४ मे इन्होंने साध्वी हीरादेवी के पास दीक्षा ग्रहण की। 'जैन गुर्जर कविओ' भाग ३, खण्ड १, पृष्ठ ३८९ पर इनकी निम्नलिखित चार रचनाओ का उल्लेख है—वृत मण्डली, अजित सेन कुमार ढाल, सुमति चरित्र, अरिदमन चौपाई। इनकी हस्तलिखित प्रतिया बीकानेर मे श्रीपूज्य जिनचारित्रसूरिजी के सग्रह मे है। इनकी कई गद्य कृतियां भी प्रकाशित है।

७९. भूरसुन्दरी : इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से है। इनका जन्म सम्वत् १९१४ मे नागौर के समीप बुसेरी नामक गाव में हुआ। इनके पिता का नाम अखयचदजी राका तथा माता का नाम रामा बाई था। ११ वर्ष की अवस्था मे साध्वी चम्पा जी से इन्होने दीक्षा अगीकार की। इनके प्रमुख प्रकाशित ग्रथ इस प्रकार है—भूर सुन्दरी जैन भजनोद्धार, भूर सुन्दरी विवेक विलास, भूर सुन्दरी बोध विनोद, भूर सुन्दरी आध्यात्म बोध, भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश, भूर सुन्दरी विद्या विलास। इनकी रचनाए मुख्यत· स्तवनात्मक और उपदेशात्मक है।

८०. रत्नकंवर : ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी रही हैं। सम्वत् १९९२ में ५१ ढालो मे निबद्ध इनकी एक रचना 'श्री रत्नचूड-मणिचूड चरित्र' प्रकाशित हुई है।

आज भी विभिन्न सम्प्रदायो मे कई जैन साध्वी कवयित्रियां काव्य-साधना मे लीन है। तेरापंथ सम्प्रदाय की हिन्दी कवयित्रियो के सम्बन्ध में एक निबन्ध उदयपुर से प्रकाशित होने वाली 'शोध पत्रिका' के जनवरी १९६९ अंक मे प्रकाशित हुआ है। इस निबन्ध में डॉ० नरेन्द्र भानावत ने साध्वी जयश्री, साध्वी मजुला, साध्वी स्नेह कुमारी, साध्वी कमल श्री, साध्वी रत्न श्री, साध्वी कानकुमारी, साध्वी फूलकुमारी, साध्वी मोहना, साध्वी कनक प्रभा, साध्वी यशोधरा, साध्वी सुमन श्री और साध्वी कनक श्री की काव्य-रचनाओ का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

जैन काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली इन साध्वी कवयित्रियो का हिन्दी कवयित्रियो मे एक विशिष्ट स्थान है। इन्होने अपनी काव्य-माधुरी से निर्मल, निर्विकार और सदाचारमय जीवन जीने की प्रेरणा दी है।

३२ | जैन चरित एवं चम्पू काव्य

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी

आठवीं शती से पूर्व न तो राजस्थान का प्रयोग एक प्रदेश-विशेष के अर्थ में मिलता है, न उस समय के प्रचलित 'मरु' से ही आधुनिक राजस्थान का समग्र चित्र उभरता है।[1] साहित्य-सृजन की दृष्टि से पन्द्रहवीं शती तक राजस्थान का जो बृहत्तर रूप सामने आता है, उसकी सीमा-रेखाएँ आगरा, यौधेय प्रदेश, सौराष्ट्र तथा राष्ट्रकूट तक फैली हुई दिखाई पड़ती हैं। इस शती से पूर्व की जैन कृतियों के सम्बन्ध में यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि इनमें से कितनी राजस्थान में लिखी गईं या कौन-कौन सी रचनाएं राजस्थानी जैन कवियों की देन हैं। कवियों के स्पष्ट इतिवृत्त के अभाव में केवल इस तथ्य को ही प्रमुखता नहीं दी जा सकती कि राजस्थान के किसी जैन-भण्डार में उपलब्ध होने के कारण ही वह राजस्थानी है, अथवा राजस्थान से बाहर उपलब्ध होने के कारण वह किसी राजस्थानी जैन कवि की रचना नहीं है। अधिकांश जैन रचनाएं जैन-मुनियों की देन हैं और ये मुनि किसी भी एक स्थान से बंध कर नहीं रहे, नही अपने भ्रमण में इन्होंने कोई प्रादेशिक सीमा का बन्धन स्वीकार किया।

जैन कवियों का मुख्य वर्ण्य त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों का चरित रहा है, किन्तु इसका क्षेत्र विस्तृत होते-होते जैन मुनियों और श्रावक-श्राविकाओं के चरित-वर्णन तक पहुँच गया है। जनरुचि को आकृष्ट करने के लिए उन्होंने धर्मकथाओं में काम कथाओं का समावेश किया और अत्यन्त निपुणता से धार्मिक प्रभाव की स्थापना के लिए साधन के रूप में उनका उपयोग किया।[2] जैन कवियों के लिए काव्य-सृजन भी धार्मिक-साधना का एक अंग था। जिन-वचन का ज्ञान, भावन और संवेग ही इनकी दृष्टि में धर्म है[3] तथा काव्य के सृजन, पठन या श्रवण से इन तीनों की ही सिद्धि होती है। शलाका पुरुषों का चरित धार्मिक-चरित है, अतः धर्म का ज्ञान, भावन और संवेग इनमें सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

---

१. 'मरु'—पउम चरिउ ३०।२, ८२।६

२ [illegible] हिनयस्स [illegible] सिगार कहा वसेण धम्म चेव परिक हेमि।

—वसुदेव हिण्डी

३ [illegible] जिणवर वयणाखोहयो जाय संवेग कारणो भावणामउओ सुह करणिज्जो धम्मोति। [illegible] ३ [illegible] ११।

प्राकृत जैन चरित-काव्य-परम्परा :

जैन चरित काव्यो का आरम्भ विमल सूरि के पउम चरिउ और हरिवस चरिउ से माना जाता है। पउम चरिउ ११८ पर्वों मे शलाका पुरुष राम का चरित प्रस्तुत करता है जैन परम्परा मे प्राकृत की यह रचना वही स्थान रखती है जो वैष्णर्व-परम्परा मे वाल्मीकि के रामायण को प्राप्त है। डॉ० जगदीशचन्द्र जैन के कथनानुसार इसमे आख्यायिका के गुण अधिक है।[१] विमल सूरि की दूसरी रचना अभी प्रकाश मे नही आई है। यह स्पष्ट है कि ईस्वी सन् की प्रथम शती से ही जैन चरित काव्य उपलब्ध होने लगते हैं। यद्यपि डॉ० जैन ने विमल सूरि के बाद ग्यारहवी शती के गुणपाल के जम्बुचरियं का ही विवरण दिया है, किन्तु कुवलयमाला की शरण ली जाय तो अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख करते हुए उद्योतन सूरि ने देवगुप्त के त्रिपुरुष चरित्र, प्रभंजन के यशोधर चरित तथा रविषेण के पद्मचरित नामक प्राकृत काव्यो की चर्चा की है।[२] पाचवी शती के ही प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध और शूद्रक कृत कामदत्ता उपलब्ध हैं। अतः कुवलयमाला के पूर्व का यह काल जैन-चरित काव्यों से शून्य नही है।

प्राकृत के चम्पू काव्यो मे प्रथम स्थान कुवलयमाला (७७९ ई०) को ही प्राप्त है। यह एक वृहत् चम्पू काव्य है। इसके गद्य भाग की अलंकृति एवं गाढ बद्धता इसे चम्पू काव्य ही सिद्ध करती हैं। कवि ने इसे कामार्थ-संभव धर्म कथा होने के कारण स्वयं सकीर्ण कथा कहा है।[३] जैन चरित एवं चम्पू काव्यो की भाति नानाविध जीव-परिणाम, भाव-विभाव आदि इसमे भी वर्णित हैं,[४] तथा इसका भी मूल भाव निर्वेद और रस शान्त ही है। आदि और अन्त मे जिन तथा सिद्धादिको की वन्दना तो है ही, अन्त मे कथाश्रवण का फल भी निर्दिष्ट है। इससे स्पष्ट है कि पौराणिक चरित-काव्यो का प्रभाव इस पर भी है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसके कई स्थल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते है।[५]

ग्यारहवी शती से कुछ पूर्व की रचना जम्बुचरियं है। गुणपाल की इस कृति मे सोलह उद्देश हैं और यह गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली मे लिखी गई है। वास्तव मे यह रचना प्राकृत-साहित्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करती है जो युग-भावना के कारण अपनी सरलता से प्राकृत और अपभ्रंश के चरित काव्यो को एक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। मिश्र शैली मे लिखे होने के कारण ही यह चम्पू काव्य नही है। इसकी तुलना संस्कृत की गद्य-पद्य मिश्रित पचतन्त्र, हितोपदेश और वैताल पंचविंशतिका आदि से की जा सकती है। कवि ने इसे धर्मकथा कहा है।[६] कुवलयमाला का इस पर प्रचुर प्रभाव है। परवर्ती जैन चरित काव्यो मे से पात्रों की जैन धर्म मे दीक्षा देनेवाली तथा त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों एवं स्थविरो के चरित प्रस्तुत करने वाली रचनाओ मे प्राकृत और अपभ्रंश की कडी जोड़ने वाली कृति के रूप मे ही यह मूल्यवान है।

---

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ५२८
२. कुवलयमाला–पृ० ३, प० २८ तथा ४।१
३. ता एसा धम्म कहा पि होउण कामत्थ संभवे संकिण्ण तण पत्ता। कु० मा. पृ. ४
४. कुवलयमाला ४।२१–२६ प०
५. वही, पृ० १५१–५४ तथा १६७–७६
६. जम्बुचरियं १।२१

कुवलयमाला और जम्बुचरिय के बीच मे केवल वसुदेव हिण्डी और समरादित्य कथा ही गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएं दिखाई पडती है। पहली पांचवी शती की रचना है और दूसरी हरिभद्रसूरि की आठवी शती की कृति है। वसुदेव हिण्डी मे अनेक जैन कथाये सकलित है और गद्य के बीच-बीच मे कही-कही पद्य उपलब्ध होते है, किन्तु मात्रा की दृष्टि से समरादित्य कथा मे आर्या, द्विपदी और विपुला आदि छन्दो का प्रयोग उससे अधिक है। दसवी से पन्द्रहवी शती तक अनेक कथा एव कथा कोष ग्रन्थ प्रस्तुत किए गये।[1] इनमे कही-कही पर पद्य-प्रयोग मिल जाता है किन्तु इन्हे चम्पू काव्य नही कहा जा सकता।

प्राकृत के अन्य चम्पू काव्यों मे पासनाह चरिय की रचना गुणचंद्र गणि ने ११११ ई० मे की थी। इसमे पाच प्रस्ताव है। इसका गद्य भाग प्रौढ और समस्त पदावली सम्पन्न है तथा इसके पद्यो मे छन्दो की विविधता दिखाई पडती है।

इन कतिपय प्राकृत चम्पू काव्यो के अतिरिक्त पद्यबद्ध अनेक प्राकृत चरित काव्य उपलब्ध होते हैं।[2] प्रायः सभी चरित काव्य जैन धार्मिक उद्देश्यो की पूर्ति करते है। ग्यारहवी से चौदहवी शती तक के इन चरित काव्यो मे से अधिकाश तीर्थकरों के चरित ही प्रस्तुत करते है। गणधरो और अन्य चरित्रो मे रत्नचूड़, सुदर्शना, जयन्ती, मनोरमा, पुहवीचन्द, मुनि सुव्रत, सणं कुमार, तथा मल्लिनाथ के चरित्र मुख्य है। शील एवं धर्म दृष्टि का प्रतिपादन इनका मुख्य लक्ष्य है। भाषा की दृष्टि से ये प्राकृतापभ्रंश की रचनाएं है।

संस्कृत के जैन चरित और चम्पू :

सस्कृत के जैन महाकाव्यो मे सातवी शती का एक मात्र काव्य धनजय कृत शत्रुञ्जय है। इसमे १४ सर्ग है और यह जैन दृष्टिकोण का प्रतिपादक होते हुए भी संस्कृत-काव्य-परम्परा का अनुसरण करता है।

विक्रम संवत् १०१६ मे सोम देव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू लिखा। कवि राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण तृतीय का समकालिक था जैन उत्तर पुराण इसका स्रोत है। कथा का अधिकांश भाग काल्पनिक है और पुनर्जन्म के विश्वास पर आधारित है। प्रारम्भिक चार आश्वासो मे कथा अविच्छिन्न गति से आगे बढती है, पर अन्तिम तीन आश्वास जैन धर्म के 'उपासकाध्ययन' का वर्णन करते है। इस कृति द्वारा सोमदेव के गहन अध्ययन, प्रगाढ़-पाडित्य, भाषा पर स्वच्छन्द प्रभुत्व एव काव्य-क्षेत्र मे नये-नये प्रयोगो की उनकी अभिरुचि का परिचय मिलता है।[3] कवि ने इसे चरित, महाकाव्य और चम्पू कहा हे।

ग्यारहवी शती के हरिचन्द द्वारा धर्मशर्माभ्युदय मे तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित २१ सर्गो मे प्रस्तुत किया गया और सभवतः इसी कवि द्वारा जीवधर चम्पू की रचना की गई। इसका स्रोत भी गुणभद्र का उत्तर पुराण है। धार्मिक भावना और कवित्व पूर्ण अभिव्यक्ति का इसमे मजुल समन्वय

---

१. द्रष्टव्य-प्राकृत सा० का इति० पृ० ३७१ से

२ वही—पृ० ५२८ से

३ चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० १०५ और २९५

हुआ है। कवि ने इस चरित को दुरितहन्ता कहा है और अन्त मे जीवन्धर द्वारा रत्नत्रय की उपलब्धि का उल्लेख किया है।[1]

बारहवी और तेरहवी शती के चरित काव्य मुख्यत: तीर्थकरो के चरित प्रस्तुत करते है, वाग्भट्ट द्वारा नेमि का चरित लिखा गया। अभयदेव कृत जयन्त विजय, अमरचन्द्र कृत बाल भारत, वीरनन्दी कृत चन्द्रप्रभ चरित, देवप्रभकृत पाण्डव चरित, वस्तुपाल कृत नरनारायणानन्द तथा बालचन्द्र सूरि कृत वसन्त विलास उल्लेखनीय रचनाए है।

तेरहवी शती मे ही आशाधर ने भरतेश्वराभ्युदय और उनके शिष्य अर्हद्दास ने पुरुदेव चंपू तथा मुनि सुव्रत काव्य लिखे। ये कृतिया सोनागिरि के भण्डार मे उपलब्ध हुई है। कुछ ही समय बाद लिखे गये भरतेश्वर बाहुबलि रास को ध्यान मे रखते हुए आशाधर के भरतेश्वराभ्युदय चंपू का महत्त्व बढ़ जाता है। इसी काल का एक जैनाचार्य विजय चपू भी उपलब्ध होता है, जिसके कवि का नाम ज्ञात नही है।

हेमचद्र ने बारहवी शती मे कुमारपाल चरित प्रस्तुत किया जिसके बीस सर्ग सस्कृत मे और आठ सर्ग प्राकृत में है। तेरहवी शती के नयनचंद्रसूरि ने हम्मीर महाकाव्य लिखा और इन दोनो ऐतिहासिक काव्यो ने सामान्य श्रावक-श्राविकाओं के चरित लिखने की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट किया।

तेरहवी से अठारहवी शती तक सस्कृत के अनेक चरित काव्य जैन कवियो द्वारा लिखे गए। ये चरित काव्य मुख्यतः पौराणिक चरित काव्य ही है, जो आदि पुराण या उत्तर पुराण को आधार मानकर लिखे गये। अनेक उपकथाओ का समावेश, उपदेश तत्त्व की प्रमुखता, वातावरण चित्रण की अपेक्षा सीधे कथा का आख्यान, वस्तु शैथिल्य, कर्म फल एवं जन्मान्तर वर्णन द्वारा चरित्रोत्थान की अभिरुचि, रत्नत्रय के साधन पर बल, कथारुढ़ि का अनुसरण तथा कथानक की रोचकता को सुरक्षित रखते हुए जैन सिद्धान्तो का प्रतिपादन आदि इन चरित काव्यो की विशेषताएं है। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने वर्धमान (स० १४२०) के वराग चरित से लेकर धर्मचद (सं० १७२६) के गौतम चरित तक ३५ बडे और ७ लघु चरित काव्यो का विवरण दिया है।[2] उन्ही के शब्दो मे—

'अहिंसा धर्म और कर्म संस्कारो की प्रबलता का विश्लेषण करने के लिए हनुमान, सुदर्शन, श्रीपाल और यशोधर की कथा वस्तु मे काट-छांट कर पौराणिक चरित काव्यो का प्रणयन इस युग की एक प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति है।' 'पौराणिक चरित काव्यों मे यत्र-तत्र अलकार, प्रकृति-चित्रण, कथा विस्तार एव पौराणिक मान्यताओ का निर्देश उपलब्ध होता है, पर लघु प्रबन्ध काव्यो मे केवल कथा का विस्तार ही उपलब्ध होता है। अलंकार और वस्तु वर्णन अत्यन्त सक्षेप मे अंकित रहते है। कथा का विभाजन लघु प्रबन्धो मे ६ सर्ग से कम ही है।'[3]

सस्कृत और प्राकृत के ये चरित काव्य जैन कवियो द्वारा रचित तो है ही, इनमे से अधिकाश वर्तमान राजस्थान तथा कुछ वृहत्तर राजस्थान या उसके कवियो की रचनाए है।

---

१. जीवंधर चपू १।१२ तथा अन्तिम श्लोक लम्भ ११।

२. बाबू छोटे लाल जैन स्मृति ग्रन्थ–पृ० १११–११४

३. वही पृ० ११४

हरिवंश पुराण की रचना ग्वालियर मे की। सधारू ने सं० १४११ में तथा रइधू ने सं० १४५० और सं० १५४६ के मध्य अपने चरित काव्य प्रस्तुत किए। राजस्थान से बाहर के इन दोनो कृतिकारो को राजस्थानी कवियो मे गिना जाता है। डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य में देपाल को सोलहवी शती का आदि कवि माना है।[1] वस्तुतः तेजपाल ने सं० १५०० मे अपना संभवनाथ चरित भादानक (सभवतः वर्तमान भादरा) मे लिखा। चरित काव्य की दृष्टि से देपाल की रचनाओ से इसे पहले गिना जाना चाहिए। सोलहवी शती के आरम्भ से ही जो कृतिया मिलती है, उनमें कवियो ने प्रायः कृति के रचना-स्थल का उल्लेख भी किया है। एक ही कवि की अनेक कृतियो में से कुछ में तो ऐसे संकेत निश्चित रूप से मिलते हैं और उनके आधार पर निर्णायक रूप में यह कहा जा सकता है कि ये कृतियाँ राजस्थान मे ही लिखी गई है।

सोलहवी शती के आरम्भ से ही चरित काव्यो को—रास, चौपई, चरित, प्रबन्ध अवली और ढाल या संधि के रूप में—प्रस्तुत किया गया है। ये चरित काव्य एक ओर तो पौराणिक चरितो या शलाका पुरुषों के चरित को प्रस्तुत करते है तो दूसरी ओर श्रावक-श्राविकाओ, गुरुओं मुनियो एवं ऐतिहासिक पात्रो तक उसका क्षेत्र विस्तृत कर देते है। हीरानन्द सूरि और कुशललाभ ने तो इन चरित काव्यो का क्षेत्र लोक-कथानको तक पहुंचा दिया है। सोलहवी शती और परवर्ती काल में चरित काव्य मुख्यतः चौपई या चौपाई तथा रास छन्दो मे लिखे गए। सन्धि और ढाल उनके बन्ध-कौशल रहे। चरित नामधारी काव्यो मे भी यही शैली अपनाई गई है। इन चरित काव्यो की संख्या सहस्रो मे है जिनकी सूची यहां प्रस्तुत नही की जा सकती। कुछ प्रमुख कवियो और उनकी कृतियो मे चरित काव्यो की संख्या एवं रचनाकाल आदि की एक झाकी ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है[2]—

नं०	कवि का नाम	रचना-काल (सं०)	ग्रन्थ-संख्या
१.	देपाल	१५०१–१५३४	५ रास, ४ चौपई, १ प्रबन्ध, १ फाग
२.	ऋषिवर्धन	१५१२	१ रास
३.	मतिशेखर	१५१४–१५३७	३ रास, १ चरित्र
४.	धर्म समुद्र गणि	१५६७–१५८४	५ रास, १ चौपई
५.	सहज सुन्दर	१५७०–१५९५	८ रास, १ चौपई, १ छन्द
६.	पार्श्व चन्द्र सूरि	१५५४–१६१२	१ रास, २ चौपई, २ बन्ध
७	मुनि पुण्य रतन (प्रथम)	१५८६	१ रास
८	विनय समुद्र	१५९९–१६३६	६ रास, ६ चोपई, १ चरित्र, १ संधि

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २५० ।

२. यह सूची डॉ० नरेन्द्र भानावत द्वारा संपादित श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, ग्रन्थ सूची भाग-१ के आधार पर प्रस्तुत की गई है। आरम्भ के १७ कवियो का विवरण डॉ० माहेश्वरी ने भी दिया है।

सं०	कवि का नाम	रचना-काल (स०)	ग्रन्थ-संख्या
९.	राजशील	१५६३–१५९४	२ चौपई
१०.	पुण्य सागर	१६०४–१६४५	१ रास, १ चौपई, १ संधि
११.	कुशल लाभ	१६१६–१६२५	२ रास, २ चौपई, १ संधि
१२.	मालदेव	१६१२	१ रास, १० चौपई, १ बन्ध
१३	हीर कलश	१६१५–१६५६	९ चौपई, १ चरित, १ गुर्वावली, १ संधि
१४.	कनक सोम	१६२५–१६५५	२ रास, २ चौ०, १ च०, १ संधि, १ कथा
१५.	हेमरत्न सूरि	१६१६–१६७३	५ चौपई
१६.	गुण विनय	१६५७–१६७६	५ रास, ७ चौपई, १ प्रबन्ध, १ सन्धि
१७.	समय सुन्दर	१६७२–१७२२	१ रास, ६ चौपई, १ चरित्र, १ ढाल
१८.	जयवन्त सूरि	१६४३	१ रास
१९.	जिनचन्द	१६६७	१ चौपई
२०.	केशराज	१६८०	१ चरित्र
२१.	मुनि श्री सार	१६८४	१ सन्धि
२२.	रिखलालचद	१६९३	१ चौपई
२३.	भुवन कीर्ति (प्रथम)	१७०६	१ रास, १ चरित्र
२४.	खेम हर्ष	१७०९	१ रास
२५	मोहन विजय	१७१२–१७८३	१ चौपई, ३ चरित्र
२६.	गजकुशल	१७१४	१ चौपई
२७	ज्ञान सागर	१७१४–१७२५	१ रास, १ चौपई, १ चरित्र
२८.	जिन हर्ष	१७१७–१७४०	३ चौपई, १ ढाल
२९.	न्याय सागर	१७२४	१ रास, १ ढाल
३०.	मानसागर	१७२४–१७४७	१ चौपई, १ चरित्र
३१.	भावप्रमोद गणि	१७२६	१ चौपई
३२.	मति कुशल (प्र०)	१७२८	१ चौपई
३३.	सुमतिवल्लभ (प्र०)	१७२९	१ चौपई
३४.	रायचन्द	१७३१	१ ढाल
३५.	जयरंगगणि	१७३१	१ चौपई
३६.	तत्त्वहंस	१७३१	१ चौपई, १ चौढालिया
३७.	यश विजय	१७३७	१ रास
३८.	विनय विजय	१७३८	१ चरित (गद्य)
३९.	लाभवर्धन	१७४२–१७६७	१ चतुष्पदी, १ चरित्र
४०	आनन्द-निधान	१७४८	१ चौपई प्रबन्ध
४१.	आनन्द सागर (प्र०)	१७४८	१ चौपई
४२.	समय सुजान	१७४९	१ सन्धि

२. इन चरित काव्यों का सृजन प्राकृत मे आरम्भ हुआ। अपभ्रंश मे उसे सर्वाधिक विस्तार मिला तथा अनेक कवियों ने संस्कृत में भी चरित काव्य प्रस्तुत किए। चम्पू काव्य का सृजन सस्कृत मे ही हुआ। प्राकृत मे कथा नामक काव्य तो चम्पू शैली के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, परन्तु चरित नामधारी काव्यों मे कुछ गद्य स्थल उपलब्ध होने पर भी वे चम्पू-काव्यत्व के स्तर को पूरा नही करते। चम्पू-काव्य-धारा के अवसान का मुख्य कारण राजस्थानी गद्य का १४वी शती तक प्रौढ़ रूप सामने न आना है। पन्द्रहवी शती के उपरान्त जब गद्य का विकास हुआ तो गद्यात्मक कृतियों मे पृथ्वीचन्द्रवाग्विलास, कालकाचार्य कथा आदि ने गद्य के स्वरूप को ही प्रौढ़ बनाया। मिश्र शैली की वचनिका, दवावैत और वार्ताओ के रूप मे आने वाली कृतियों में अजैन कृतिया ही मुख्य हैं। कान्हड़ दे प्रबन्ध आदि मे कुछ गद्य स्थलों के कारण वे चम्पू काव्य नही बन जाते।

३. जैन चरित काव्यो में विमल सूरि, स्वयभू, सोमदेव सूरि और पुष्प दन्त तथा हेमचन्द्र की कृतियों ने आधार भूमि तैयार की और परवर्ती कवियो ने उनसे प्रचुर प्रेरणा ली।

४. बारहवी शती से पन्द्रहवी शती के अन्त तक का काल चरित काव्यो की दृष्टि से सन्धि काल माना जा सकता है। संस्कृत के चरित काव्य तो शलाकापुरुषो, तीर्थंकरो या स्थविरो के चरित प्रस्तुत करते रहे किन्तु प्राकृत और प्राकृतापभ्रंश में चरित-क्षेत्र का विस्तार हुआ। इस कड़ी में चन्द्र प्रभ का विजयचन्द्र केवली चरित्र (११२७) उल्लेखनीय है। भरतेश्वर बाहुबली रास और स्थूलिभद्र फाग को प्रचुर लोकप्रियता मिली है।

५. स्वयंभू ने सर्वप्रथम रास का आदर्श आठवी शती मे प्रस्तुत किया और चरित काव्यो के लिए भी यह एक लोकप्रिय धारा बन गई। पन्द्रहवीं शती मे पौराणिक चरितों के लिए भी दोहे-चौपाई की शैली प्रमुख बन गई, किन्तु रास परम्परा की लोकप्रियता ज्यो की त्यो बनी रही।

६. सम्वत् १५०० के पूर्व की अधिकाश जैन-कृतिया भी राजस्थान मे ही लिखी गईं किन्तु अधिकांश के विवरण के अभाव मे उन्हें वृहत्तर राजस्थान की उपलब्धियों के रूप मे ही ग्रहण करना पड़ता है।

७. सोलहवी शती के बाद के उपलब्ध चरित काव्यो मे से अधिकाश कृतियो पर रचना-काल और रचना-स्थल का उल्लेख मिलता है और निर्णायक रूप मे इन कृतियों को राजस्थान का जैन चरित-काव्य कहा जा सकता है।

८. पन्द्रहवीं से बीसवीं शती तक के कवियो मे रचना परिमाण की दृष्टि से मतिशेखर, धर्म समुद्रगणि, सहज सुन्दर, पार्श्वचन्द्रसूरि, विनय समुद्र, मालदेव, हीरकलश, कनक सोम, हेमरत्न सूरि, गुण विनय, समय सुन्दर, जिनहर्ष, मोहन विजय, रायचन्द, आसकरण, सबलदास, विनयचद्र, चौथमल और जयमल को प्रथम वर्ग मे रखा जा सकता है। इनमें से प्रत्येक ने कई-कई चरित काव्य लिखे हैं।

९. पन्द्रहवी शती मे भाषा और काव्य-सृजन की शैली मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए और सोलहवी शती से बीसवी शती तक मुख्य रूप से—रास, चौपई, चरित, बन्ध या प्रबन्ध तथा सन्धि या ढाल के रूप में ही चरित काव्य लिखे जाते रहे हैं। अजैन कवियों के लौकिक और ऐतिहासिक

कथानको की ओर झुकने पर भी कुछ जैन कवियों को अपवाद रूप में छोड़कर अधिकांश इस ओर नही झुके ।[1]

१०. इन सभी चरित काव्यो का उद्देश्य दान, शील और भावना के साथ-साथ चरित्रोत्थान का स्वरूप उपस्थित करना ही रहा है, अतः इनका स्वर तो धार्मिक रहा ही है, सबका पर्यवसान भी निर्वेद या शान्त रस मे ही हुआ है ।

११. ऊपर दी गई सूची मे पचास छन्दो से बड़ी रचनाओ को ही लिया गया है फिर भी उनके विश्लेपण से पता चलता है कि चौपई या चतुष्पदिका के नाम से प्रस्तुत चरित काव्यो की संख्या सर्वाधिक (६१) है । उसके वाद के क्रम मे रास (५६) चरित (४१), ढाल (३४), सन्धि (८) तथा प्रबन्ध (६) या बन्ध को गिना जा सकता है । स्पष्ट है कि चरित काव्यो मे चौपई और रास को ही प्रमुखता मिली है । ये चरित रास है, उपदेश रसायन रास जैसे रास नही ।

१२. पौराणिक और लोकप्रिय स्थविरो के चरित्रो मे—राम, सीता, अजना और हनुमान तथा हरिवश, वलभद्र प्रद्युम्न, सुभद्रा, द्रौपदी और देवकी के चरित से सम्बन्धित काव्य मिलते हैं । लोकप्रियता की दृष्टि से अंजना का चरित्र आकर्पण का विषय रहा है । तीर्थंकरो मे नेमि इस काल मे भी अधिक वर्ण्य बने हैं । गणधरो एवं स्थविरो मे गौतमस्वामी, जम्बूस्वामी तथा गज सुकमाल तथा स्थूलिभद्र के चरित कवियो ने अधिक अपनाएँ है । शेप सभी चरित्र या तो मुनियो के है या श्रावक-श्राविकाओ के । इनमे राजा, सेठ, लोक कथानको के कुछ पात्र या धर्मवुद्धि जैसे कुछ काल्पनिक पात्र भी हैं । इन सभी कथानको मे उद्देश्य की एकरूपता बनी हुई है ।

इस प्रकार राजस्थान के जैन चरित एव चम्पू काव्यो मे भाषा और शैलीगत परिवर्तन तो युगानुसार होते गए हैं, पर जैन कवियो ने, विशेपतः राजस्थानी जैन कवियों ने चरित-काव्य-सृजन की अखण्ड परम्परा को कभी भी टूटने नही दिया है ।

---
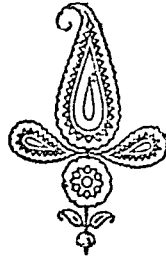
१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४६-४८ तक ४५ लोक कथानकों पर आश्रित कृतियों का उल्लेख किया गया है ।

३३ | राजस्थानी जैन कथा साहित्य

श्री श्रीचन्द्र जैन

जैन कथावाङ्मय :

जैन कथावाङ्मय का इतिहास उतना ही पुरातन है जितना जैन तत्त्वज्ञान और जैन सिद्धान्त का इतिहास है। अनेकानेक कथाएँ तो जैन वाङ्मय का सबसे प्राचीन भाग समझे जाने वाले आगमों मे ही वर्णित हैं। इन आगम-सूचित कथाओ की वस्तु का आधार लेकर, बाद मे होने वाले आचार्यों ने अनेक स्वतंत्र कथा ग्रन्थ रचे और मूल कथावस्तु मे फिर अनेक अवान्तर कथाओ का संयोजन कर इस साहित्य को खूब ही विकसित और विस्तृत बनाया। इन कथाग्रन्थों मे से कुछ तो पुराणो की पद्धति पर रचे हुए हैं और कुछ आख्यायिकाओं की शैली पर। उपलब्ध ग्रन्थो मे पुराण-पद्धति पर रचा हुआ सबसे प्राचीन और सबसे बड़ा प्राकृत कथा-ग्रन्थ 'वसुदेवहिंडी' है। इस ग्रन्थ की कथा के उपक्रम का आधार तो हरिवंश अर्थात् यदुवश मे उत्पन्न होने वाला वसुदेव दशार है जो संस्कृत पुराण, महाभारत और हरिवंश मे वर्णित कृष्ण वसुदेव का पिता है। परन्तु गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' की तरह इसमे सैकडो ही अवान्तर कथाएँ गुम्फित कर दी गई है, जिनमे प्रायः सब ही जैन तीर्थंकरो के तथा अन्यान्य चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषो के एव अनेक ऋषि, मुनि, विद्याधर, देव, देवी आदि के चरित भी वर्णित हैं। 'वसुदेवहिंडी' की कथाएँ प्राय. सक्षेप मे और साररूप मे कही गई है। इन कथाओ मे से कुछ कथाओ को चुन-चुनकर, पीछे के आचार्यों ने छोटे-बडे ऐसे अनेक स्वतन्त्र कथा ग्रन्थो की रचनाएँ की और उन सक्षिप्त कथाओ को और भी अधिक पल्लवित किया।[१]

राजस्थानी साहित्य :

इसी प्राचीन परम्परा को सभाले हुए अनेक राजस्थानी जैन कथाओ की रचना हुई तथा पद्यात्मक एव गद्यात्मक दोनों शैलियो मे रचित राजस्थानी कथाओ की भी पर्याप्त सख्या है। राजस्थानी भाषा अपभ्रंश की जेठी बेटी मानी जाती है। अतः कई शताब्दियों तक राजस्थानी रचनाओ पर अपभ्रंश का प्रभाव रहा और अपभ्रंश की परम्परा राजस्थानी साहित्य को सर्वाधिक रूप मे प्राप्त हुई है। तेरहवी शती मे राजस्थानी साहित्य का स्वतत्र विकास हुआ माना जाता है और तब से लेकर अब तक राजस्थानी साहित्य का निर्माण बराबर होता रहा है।[२]

---

१. जिनेश्वर सूरि विरचित कथाकोष प्रकरण, पृ० ६७—६८

२. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा : श्री अगरचंद नाहटा, पृ० ४४

यह तो हमे स्वीकार करना चाहिए कि राजस्थानी साहित्य के निर्माण मे चारणो एव जैन विद्वानो का प्रमुख रूप से सहयोग रहा है और आज भी इनकी साहित्यिक सेवा बड़े गौरव से स्मरण की जाती है। राज्याश्रित होने के कारण चारणो का राजस्थानी साहित्य विशेषतः तत्कालीन राज-स्तवनपरक है लेकिन जैन मुनियो एव जैन विद्वानो ने जनता के हित को प्रधानता देकर ऐसा राजस्थानी साहित्य लिखा जो सार्वभौमिक होने के कारण कालजयी तथा युग-परिचायक होकर भी युगपरिधि से सदा परे है। इस प्रकार का जैन राजस्थानी साहित्य कथात्मक है अवश्य, लेकिन सामान्य जनता इसे सुविधा से याद कर सके एव विभिन्न धार्मिक अवसरों पर इसे भक्ति विभोर होकर सामूहिक रूप मे गा सके, अतः ऐसे साहित्य का बाहुल्य है जो लघु होकर भी विभिन्न राग-रागनियों मे गुम्फित हो। फलतः रास, फागु, चर्चरी, विवाहला, सधि, धवल, वेलि, रेलुका, सम्वाद, बारहमासा, सिलोका, हियाली आदि बहुसख्यक है, ऐसे काव्य रूप हैं जिनमे आराध्यों की महिमा है, प्रणम्य सती देवियो की आराधना है, धार्मिक कथाओ का गुम्फन है, धर्म-जागृति की तीव्र लालसा है और पुण्य-प्रसार की उत्कठा है।

राजस्थानी जैन कथाओं का उद्देश्य :

मानव-मन अत्यत चपल होता है और उसे स्थिर रखने के लिए ही इंसान ने न मालूम कबसे कितने प्रयत्न किये हैं। साधु-सन्तो ने कथाओ के द्वारा एक ओर मनोरजन के प्रयास किये हैं तो दूसरी ओर धार्मिक साधना का प्रसार-प्रचार करके मानव की दुष्प्रवृत्तियो के दमनार्थ जो उपाय प्रस्तुत किये हैं वे स्तुत्य हैं। लौकिक जीवन की विविध वासनाओं का उल्लेख इन कथाओं मे विद्यमान है लेकिन इन्हे शनैः शनैः परिष्कृत करने के भी यहाँ उपाय बताए गए हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के स्वरूप की विशुद्ध व्याख्या करते हुए कथाकारों ने मानव को आकर्षक ढग से सांसारिक जीवन बिताते हुए मोक्ष के पथ का अनुसरण करने की पूर्ण प्रेरणा दी है। इन जैन कथाओ मे धर्म की सर्वत्र प्रमुखता है और भौतिकता के परित्याग के हेतु विविध सम्बोधन-प्रबोधन हैं। धार्मिक सिद्धान्त बडे गूढ़ होते है जो साधारण जनता की समझ में सुगमता से नही आ पाते। अतः विभिन्न क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए इन सत-साधुओ ने जनता की इस कमजोरी को पहिचाना और प्रचलित रूढियों के सहारे कई रोचक कथाओ की यथावसर सृष्टि की तथा गहन सिद्धान्तों को बड़ी सरलता से बोधगम्य बनाया। नारी के यहाँ अनेक रूप चित्रित किए गए हैं। वह स्वाभिमानी है, कठोर-आराधना-परायणा भी है, तथा सघर्षप्रिय भी है लेकिन कथाकारो ने नारी की सहज प्रवृत्तियो को उद्घाटित कर उसके प्रशस्त मानवीय स्वरूप को अधिक चित्रित किया है।

राजस्थानी जैन कथाओ की विशेषताएँ :

प्रथमतः तेरहवी शताब्दी से अब तक प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की रचनाएं मिलने के कारण भाषा के विकास की पूरी शृंखला मिल जाती है। दूसरी विशेषता है अनेक विधाओ या सज्ञाओं को अपनाना। तीसरी विशेषता है प्राचीन गद्य की प्रचुरता। चौथी विशेषता है ऐतिहासिक रचनाओ की अधिकता। जैनाचार्यों, मुनियो, श्रावको, तीर्थों आदि के सम्बन्ध में छोटी-बड़ी सैकडों रचनाएं हैं जिनमे जैन इतिहास के साथ राजस्थान और भारत के इतिहास एवं भूगोल पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। जैन मुनि वर्ष मे केवल वर्षा काल के चार महीनों तक एक जगह रहते हैं, अन्य

समय घूमते रहते हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में अनेक स्थानों, वहाँ के शासकों एवं निवासियों का उल्लेख मिल जाता है। ग्रन्थों की रचना एव लेखन-प्रशस्तियों में भी अनेक ऐतिहासिक सूत्र ऐसे प्राप्त होते हैं जिनका अन्यत्र कहीं मिलना संभव नहीं।

पाचवी विशेषता :—चारण कवियो की साहित्यिक शैली और भाषा रूढ़-सी है पर जैन रचनाओं में बोलचाल की सरल भाषा का उपयोग अधिक होने से भाषा के प्रान्तीय भेदो और बोलियो की अनेकता के उदाहरण मिल जाते है।

छठी विशेषता :—जैन रचनाओं का उद्देश्य जनसाधारण को नीति और धर्म की ओर आकर्षित और अग्रसर करने का रहा है। अतः नैतिक जीवन के उत्थान और धर्म की प्रेरणा, जैन एव अध्यात्म की प्रेरणा जैन रचनाओं से जितनी मिलती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। चारणादि कवियो ने वीर-रस और श्रृंगार-रस का साहित्य अधिक लिखा है और जैन कवियो ने शान्त रस का। इससे दोनों की रचनाए परस्पर पूरक सी है।

सातवी विशेषता :—लोक कथाओ और लोक गीतों की देशियो को अधिकाधिक अपनाकर लोक साहित्य का बहुत बड़ा सरक्षण किया गया है। हजारों विस्मृत लोक गीत और कथाएं जैन रचनाओ द्वारा ही सुरक्षित रह सकी है। जैनेतर साहित्य की सुरक्षा मे भी जैन लेखको का बडा भारी योगदान है।[1]

इसके अतिरिक्त अन्य कई विशेषताएं हैं जिनका उल्लेख सक्षेप मे इस प्रकार किया जा सकता है[2] :—

(१) यथार्थवाद एव आदर्शवाद का समन्वय, (२) अध्यात्मवाद का प्राधान्य, (३) आजीविका के साधनो का विवरण, (४) जीवन के लौकिक एवं पारलौकिक पक्षो का निरूपण, (५) पाप-पुण्य की रोचक व्याख्या, (६) विशुद्ध श्रृंगार का चित्रण, (७) प्रकृति की मनोरम अभिव्यंजना, (८) ऐतिहासिक तत्त्वो का निष्पक्ष निरूपण, (९) कल्पना का समुचित उपयोग, (१०) लोक-प्रचलित उदाहरणो की स्वीकृति एवं प्रयोग, (११) शान्त रस की व्यापकता, (१२) सासारिक वैभव की क्षण भंगुरता, (१३) कर्म सिद्धान्त का समर्थन, (१४) कौतूहल का पर्याप्त सम्मिश्रण, (१५) विविध विषयो की समुचित चर्चा, (१६) कहानी की सुखद समाप्ति, (१७) सूक्तियो का प्रयोग, (१८) पुरातन परम्पराओ आदि का उल्लेख, (१९) विविध यात्राओ का उल्लेख, (२०) रूपको एव प्रतीको का उपयोग, (२१) साधु-सन्तो की तपस्या का मार्मिक विवरण, (२२) उपसर्ग-सहन की क्षमता का चित्रण, (२३) स्थानीय रगत का पुट, (२४) सशक्त वातावरण की सृष्टि, (२५) सत्यं, शिवं, सुन्दर की व्यापक अभिव्यक्ति, (२६) कृत्रिमता का अभाव, (२७) श्रमण संस्कृति का प्रभावोत्पादक चित्रण, (२८) स्वप्न-विचार, रत्न-परीक्षा, बुद्धि-परीक्षण आदि की यथावसर चर्चा,

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा : राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा।

२. इस सम्बन्ध मे डॉ० नरेन्द्र भानावत का 'राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियां' पुस्तक मे 'राजस्थानी बात साहित्य—एक पर्यालोचन' निबन्ध द्रष्टव्य है, पृष्ठ २०–४३।

(२६) व्यसनो के परित्यागार्थ उपयुक्त प्रबोधन, (३०) ज्योतिष, योग, मंत्र-तंत्रादि की समयानुकूल उपयोगिता का समर्थन, (३१) नवरसो का समावेश।

राजस्थानी जैन कथाओं का वर्गीकरण .

सागर की तरंगो के समान ये कथाएं अनन्त हैं[1] अतः इन्हे किसी विशिष्ट परिधि मे आबद्ध करना कठिन है, फिर भी इन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(१) राज कथा, (२) चोर कथा, (३) महामात्य कथा, (४) सेन कथा, (५) भय कथा, (६) युद्ध कथा, (७) अन्न कथा, (८) पान कथा, (९) वस्त्र कथा, (१०) शयन कथा, (११) माला कथा, (१२) गंध कथा, (१३) ज्ञाति कथा, (१४) यान कथा, (१५) ग्राम कथा, (१६) निगम कथा, (१७) नगर कथा, (१८) जनपद कथा, (१९) स्त्री कथा, (२०) पुरुष कथा, (२१) शूर कथा, (२२) विशाखा कथा (बाजारू गप्पें), (२३) कुंभ स्थान कथा (पनघट की कहानिया), (२४) पूर्व-प्रेत कथा, (२५) निरर्थक कथा, (२६) लोकाख्यायिका, (२७) समुद्राख्यायिका-दीर्घ निकाय १।८।

राजस्थानी जैन कथाओं की प्ररूढ़ियां।

कथाओ के निर्माण मे प्ररूढियो का विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार गृह के आकार को स्थूल रूप देने के लिए ईंट, पत्थर, चूना, लकडी आदि की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार कथा के स्वरूप में स्थिरता लाने एवं उसे विशेष मनोरंजक बनाने के लिए तथा उसमे रोमांस की अभिवृद्धि के हेतु प्ररूढ़ियों का प्रयोग अत्यावश्यक माना गया है। प्ररूढ़ि को अभिप्राय भी कहते हैं। इसे अंग्रेजी मे मोटिफ नाम से अभिहित किया जाता है। डॉ० श्यामाचरण दुबे इस अभिप्राय को कथा का मूल भाव मानते हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे कथानक रूढि के रूप मे स्वीकार करते हैं।[2]

राजस्थानी जैन कथाओ की कतिपय प्ररूढ़ियाँ निम्नलिखित है :—

(१) विलीन होते हुए मेघ को, श्वेत केश को, शव को, बिजली की चमक को, वृद्ध को, नृत्य करती हुई स्त्री की मृत्यु को, या कोढी को देखकर विरक्त होना।
(२) अवधि ज्ञानी मुनि के द्वारा आयु की समाप्ति जानकर मुनि दीक्षा ग्रहण करना।
(३) जल यात्रा करते समय जहाज का भंग हो जाना तथा काष्ठ फलक के सहारे नायक-नायिका की प्राण रक्षा।
(४) शिकार खेलते हुए राजा का मूर्छित होना तथा घोडे का निर्जन वन मे पहुचना।
(५) भविष्यवाणी और आकाशवाणी की योजना।
(६) स्वप्न-दर्शन के माध्यम से प्रेम का प्रस्फुटन।
(७) शकुनापशकुन के द्वारा शुभाशुभ भविष्य का सकेत।
(८) मंत्र-तंत्र जादू-टोना आदि का प्रभाव।

---

१ देखिए—श्री अगरचन्द नाहटा के लेख—प्राचीन जैन राजस्थानी गद्य साहित्य (शोधपत्रिका) एव आदिकालीन राजस्थानी जैन साहित्य (परम्परा)।

२ जैन कथाओ का सास्कृतिक अध्ययन : श्रीचन्द्र जैन, पृ० ४२।

(६) स्वकीय पापों की आलोचना करते हुए विरक्त होना।
(१०) मंत्रों के द्वारा सर्प-दश का शमन होना।
(११) मन्त्रित पादुकाओ से आकाश मे उड़ना।
(१२) श्मशान मे पुत्र-जन्म।
(१३) राजकुमार के चुनाव में हाथी द्वारा माल्यार्पण।
(१४) जलदेवी द्वारा आशीर्वाद।
(१५) अग्नि कुंड में कूद कर निर्दोषता प्रमाणित करना।
(१६) सौतेली माता के दुर्व्यवहार से गृह-परित्याग।
(१७) शिशु को सन्दूक मे बद करके जल मे प्रवाहित करना।
(१८) साधु के आशीष से रोग का नष्ट होना।
(१६) गंधोदक से कुष्ठ रोग की समाप्ति।
(२०) पद-प्रक्षालन से पति की पहिचान।
(२१) पद-स्पर्श से बंद किवाड़ों का खुलना और इस प्रकार सच्चरित्रता प्रमाणित करना।
(२२) पूर्व पुण्य के द्वारा समस्त कलाओं में निपुणता प्राप्त करना।
(२३) मरणासन्न पशु-पक्षी का णमोकार मत्र सुनकर स्वर्ग मे जाना।
(२४) पशु-पक्षियो का मानव-वाणी मे बोलना।
(२५) विदेश मे पति की मृत्यु हो जाने पर घर के वृक्ष का सूख जाना।
(२६) भव्य पशु-पक्षियों (हिंसक) द्वारा मुनि-उपदेश से मांस-भक्षण का त्याग।
(२७) पुण्य के प्रभाव से आग का जल मे परिवर्तित हो जाना।
(२८) स्वमित्र के प्रबोधनार्थ स्वर्ग से देवता का मध्यलोक तथा अधोलोक में आना।
(२६) जल में लिखे गए मंत्र का पाँव से मिटाना तथा इस पाप से नरक जाना।
(३०) शास्त्राभ्यास तथा मुनि-दर्शन से जाति स्मरण ज्ञान होना।
(३१) चौपड खेलते हुए अंगूठी का अपहरण।
(३२) पौरुप की विविध परीक्षाएं।
(३३) साधु निन्दा से कोढी बन जाना एवं पश्चात्ताप से रोग-मुक्ति।
(३४) कुपित सिंह का मंत्र के प्रभाव से शांत हो जाना।
(३५) प्रभु स्मरण से विष का अमृत बनना।
(३६) पहेलिकाएं पूछकर बुद्धि की परीक्षा।
(३७) भक्तामर स्तोत्र से कारागार-मुक्ति।
(३८) अतिशयधारी मुनि के प्रभाव से छः ऋतुओं का एक साथ आविर्भाव।
(३६) शीलवती के उपसर्ग को दूर करने के लिए स्वर्ग से इन्द्र का मध्यलोक में आना।
(४०) मिथ्या भापण से स्वयं जीभ का कटकर गिरना।
(४१) किंजल्क जाति के पक्षी के प्रभाव से महामारी दुर्भिक्ष अपमृत्यु आदि रोगों का शमन।
(४२) सांकेतिक भापा का प्रयोग।

(४३) द्यूत मे पराजित होकर पति का गृह-त्याग तथा पत्नी की चतुराई से पति का स्वदेश आगमन ।
(४४) आराध्य की आराधना से सन्तान-प्राप्ति ।
(४५) विद्यालय मे सह पठन से युवक-युवती का प्रेम अकुरित होना ।
(४६) विशेष आकर्षण से विवाह के लिए हठ ।
(४७) रात मे किसी वृक्ष के नीचे लेटे हुए व्यक्ति का पेड़ पर बैठे हुए देवी-देवता के वार्तालाप का सुनना ।
(४८) पति द्वारा दीवाल अथवा वस्त्र पर कुछ संदेश लिखकर विदेश चला जाना ।
(४९) पुरुषवेश मे वधू का स्वपति की खोज मे परिभ्रमण ।
(५०) अधेरी रात मे शृगाल द्वारा विपत्ति के आगमन की सूचना ।
(५१) विविध लोक-विश्वासो का यथावसर उल्लेख ।
(५२) वृक्षो का वार्तालाप ।
(५३) अति मानवीय शक्ति का उपयोग ।
(५४) उबलते हुए तेल में हाथ डालकर अपनी सच्चाई सिद्ध करना ।
(५५) आत्म-दाह की धमकी ।
(५६) मेघ, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि के द्वारा सन्देश प्रेषण ।
(५७) जलते हुए दीपक का सहसा बुझ जाना और घर के प्रधान की मृत्यु होना ।
(५८) अशुभ कर्मोदय से काष्ठ की मोरनी का टगे हुए हार का निगलना ।
(५९) सुन्दरी के पद-प्रहार से वृक्षो का पुष्पित होना ।
(६०) पशु के द्वारा णमोकार मत्र का शुद्ध उच्चारण ।
(६१) साध्वी के अवलोकन मात्र से सूखे कूप का निर्मल जल से भर जाना ।

३४ | जैन आयुर्वेदिक साहित्य

श्री राजेन्द्रप्रकाश आ० भटनागर

जैन साधुओ और धनिको ने राजस्थान मे भारतीय कला, विज्ञान, शिक्षा और ज्ञान को अक्षुण्ण बनाये रखने मे अद्वितीय योगदान किया है। जैन यतियो ने 'उपासरो' के माध्यम से इस कार्य को जीवित रखा। ये 'उपासरे' शिक्षा और वैद्यक-चिकित्सा के लोकप्रिय केन्द्र थे। इनमें रहते हुए जैन यति शिक्षा देने के साथ-साथ चिकित्सा-कार्य द्वारा जनसामान्य को अनुप्राणित करते रहे है।

जैन आगम साहित्य मे वर्णित आयुर्वेद संबंधी सदर्भों का पर्यालोचन डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने अपने शोधप्रबध "जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज" मे पृष्ठ ३०७–३१८ पर किया है।

जैन आयुर्वेद की परम्परा :

जैन आयुर्वेद को 'प्राणावाय' कहा जाता है। जैन तीर्थंकरों की वाणी अर्थात् उपदेशों को विषयो के अनुसार स्थूलरूप से बारह भागो मे विभाजित किया गया है, इन्हे 'द्वादशांग' कहते है। इनमे से अतिम अंग 'दृष्टिवाद' कहलाता है। दृष्टिवाद के पांच भेद होते हैं—१. परिकर्म, २. सूत्र, ३. पूर्वगत, ४. अनुयोग और ५. चूलिका। पूर्व १४ है। इनमे से १२वें पूर्व का नाम 'प्राणावाय (प्राणायु) है। कायचिकित्सा आदि आठ अंगो मे सपूर्ण आयुर्वेद का प्रतिपादन, भूतशांति के उपाय, विषचिकित्सा और प्राण-अपान आदि वायुओ के शरीरधारण करने की दृष्टि से कर्म का विभाजन का जिसमे वर्णन किया गया है, उसे 'प्राणावाय' कहते है।

"कायचिकित्साद्यष्टागायुर्वेदः भूतिकर्मजागुलिप्रक्रमः।
प्राणापानविभागोऽपि यत्र विस्तरेण वर्णितस्तत् प्राणावायम् ॥"

—तत्त्वार्थराजवार्तिक, अ. १ सू. २०

इस 'पूर्व' में मनुष्य के आभ्यतर–मानसिक और आध्यात्मिक तथा बाह्य-शारीरिक स्वास्थ्य के उपायो जैसे यम-नियम, आहार-विहार और औषधियों का विवेचन है। साथ ही, दैविक, भौतिक, अधिभौतिक, जनपदध्वसी रोगों की चिकित्सा का विस्तार से विचार किया गया है।

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य ने अपने प्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थ "कल्याणकारक" में 'प्राणावाय' सज्ञक वैद्यक-ज्ञान के अवतरण और परम्परा का सुन्दर निदर्शन किया है।

जब भरत चक्रवर्ती आदि भगवान् आदिनाथ के समवसरण मे मनुष्यो के रोगरूपी दु:खो की मुक्ति का उपाय पूछने के लिए उपस्थित हुए, तब भगवान् ने उन्हें पुरुष, रोग, औषध और काल, इन चार वस्तुओ के रूप मे समस्त आयुर्वेद को बाटकर, उनके भेद-प्रभेद बताते हुए, सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान प्रकटित किया। इस ज्ञान को सर्वप्रथम गणधरो और प्रति-गणधरो ने सीखा। उनसे श्रुतकेवलियो ने और श्रुतकेवलियो से बाद मे होने वाले अन्य मुनियो ने क्रमश: प्राप्त किया।

'प्राणावाय' की इस प्राचीन परम्परा का आयुर्वेद के अन्य ग्रंथों में उल्लेख नही मिलता। 'प्राणावाय' के ग्रन्थो मे मद्य, मास व मधु का प्रयोग नही है। शल्यकर्म व हिंसा भी नही दिखाई देती। सभी योग वानस्पतिक व खनिज द्रव्यो से निर्मित है।

कालान्तर मे 'प्राणावाय' की परम्परा स्वतन्त्र नही रहकर, उसका साहित्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे ही समाविष्ट हो गया।

जैन आयुर्वेदिक साहित्य की विशेषताएँ :

प्रस्तुत निबन्ध में राजस्थान के जैनसम्प्रदायानुयायी साधुओं आदि के द्वारा भारतीय चिकित्सा-विज्ञान–आयुर्वेद सम्बन्धी रचे गये साहित्य के सम्बन्ध मे परिचय उपस्थापित करने का प्रयास किया गया है। यह साहित्य अधिकाशत: मध्ययुग में रचा गया। मुझे कोई हस्तलिखित ग्रन्थ वि० १६वी शती से पूर्व का निर्मित, उपलब्ध नहीं हुआ। इस साहित्य से सम्बन्धित विशेषताओ को निम्न बिन्दुओ में प्रकट किया जा सकता है—

(१) यह साहित्य (जैन साधुओं आदि के द्वारा निर्मित) प्राय: देशी भाषा–राजस्थानी, राजस्थानी मिश्रित गुजराती अथवा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी मे लिखा हुआ मिलता है। फिर भी कुछ ग्रन्थ सस्कृत मे रचित भी प्राप्त हुए है।

(२) ये ग्रन्थ अधिकाश में सग्रहात्मक हैं। कुछ मौलिक कृतियो की रचना भी हुई। सग्रहग्रन्थ विशेषकर चिकित्सा सम्बन्धी योगो के संकलन के रूप में है।

(३) इनमे से कुछ ग्रन्थ तो ऐसे है, जो मध्यकाल में राजस्थान के वैद्यक-व्यवसाय के मुख्य आधार बने रहे। राजस्थान में इन ग्रंथो का ही पठन-पाठन विशेष रूप से हुआ और वैद्य-समुदाय में इनके योगो का ही विशेष प्रचलन रहा। ऐसे अग्रणी और सर्वमान्य ग्रंथो मे हर्षकीर्तिसूरिकृत योग-चिंतामणि और हस्तिरुचिगणिकृत वैद्यवल्लभ विशेष उल्लेखनीय है।

(४) देशी भाषा में लिखे गये अनेक ग्रन्थों में लोक-प्रचलित औषधियों और उनके नामों का भी प्रयोग हुआ है। इससे तत्कालीन प्रचलित 'लोक-वैद्यक' का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। साथ ही, स्थानीय बोली मे प्रचलित अनेक वनौषधियों का नवीनरूप से ज्ञान भी होता है, जिनका उल्लेख प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में उपलब्ध नही होता। इस दृष्टि से यह समूचा साहित्य नि सदेह अधिक उपादेय है।

(५) इस साहित्य में कुछ नवीन औषधियों और योगो के प्रयोग वर्णित है, जो वस्तुत: अनुसधेय है।

(६) कुछ ग्रन्थो मे वैद्यक-औषधियों के साथ रोगों के इलाज में मान्त्रिक प्रक्रियाओं का भी उल्लेख मिलता है। सामुद्रिकविद्या, ज्योतिष, अंगविद्या और कामशास्त्र के वैद्यकविद्या की सम्पुष्टि में अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते है।

(७) इन ग्रन्थो मे प्राप्त योग प्राय: छोटे-छोटे, अचूक और अनुभूत है। अत: चिकित्साक्षेत्र में उनकी अधिक मान्यता और सफलता सिद्ध हुई है।

राजस्थान का जैन आयुर्वेदिक साहित्य :

यहां कालक्रम से जैन आयुर्वेद ग्रंथकार और ग्रंथों का परिचय दिया जा रहा है—प्रथम संस्कृत के, फिर राजस्थानी भाषा के ग्रंथो का।

आयुर्वेद के संस्कृत ग्रंथकार और ग्रंथ

१. आशाधर :—इनका नाम राजस्थान के आयुर्वेदज्ञ जैन विद्वानों में सर्वप्रथम मिलता है। ये बहुश्रुत प्रतिभासम्पन्न और महान् ग्रंथकर्ता के रूप मे जैन साहित्याकाश में जगमगाते नक्षत्र है। इनका न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार, योग, वैद्यक आदि अनेक विषयो पर अधिकार था। अपने ग्रंथो (त्रिषष्टि-स्मृति, जिनयज्ञकल्प आदि) मे इन्होने अपने स्थान और वश के विषय मे प्रशस्ति दी है इससे ज्ञात होता है कि ये मडलकर (मांडलगढ, जिला भीलवाड़ा) नामक दुर्ग के निवासी थे। ई० ११६३ मे जब गजनी के शासक मोहम्मद गोरी का अधिकार अजमेर प्रात पर भी हो गया तो मुसलमानो के आक्रमणो से रक्षा के लिए ये अनेक परिवारो सहित धारानगरी (मालवा) में आकर रहने लगे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण, माता का नाम रतनी, पत्नी का नाम सरस्वती और पुत्र का नाम छाहड था। ये व्याघ्रेरवालवशीय (बघेरवालवंशीय) जैन वैश्य श्रावक थे। जैन धर्म के उदय (उत्कर्ष) के लिए ये धार को छोडकर २० मील दूर 'नलकच्छपुर (नालछा) में आकर आजीवन रहे। आशाधर की रचनाओ मे मालवा के राजा विंध्यवर्मा, अर्जुनवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेव का उल्लेख मिलता है, जिनके द्वारा उन्हे सम्मान प्राप्त हुआ था। ये गृहस्थ रहते हुए भी संसार से उपरत रहे। नाथूराम प्रेमी ने इनका जन्मकाल वि. स. १२३५ के लगभग प्रमाणित किया है।[1] इनकी सब रचनाएं वि० स. १२६० से १३०० के बीच की मिलती है। इनका उपलब्ध अंतिमग्रन्थ 'अनगारधर्मामृत टीका' वि. स. १३०० का है।

आशाधर के २० से भी अधिक ग्रन्थ मिलते है जो अधिकांश मे जैन सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण पर है। इनके एक वैद्यक ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है। वाग्भट के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टांगहृदय' पर इन्होने 'उद्योतिनी' या 'अष्टागहृदयोद्योतिनी' नामक टीका सस्कृत मे लिखी थी। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। पीटर्सन ने अपनी सूची मे और ऑफ्रेक्ट ने अपने 'कॅटेलोगस केटेलोगोरम'[2] मे इस ग्रन्थ का उल्लेख तो किया है, परन्तु किसी हस्तलिखित प्रति का सदर्भ नही दिया है। 'अष्टांग-हृदय' पर हेमाद्रि (लगभग १२६० ई०) के बाद आशाधर ने ही टीका लिखी थी। निश्चित ही यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रहा होगा। यदि इसकी कही कोई प्रति मिल जाय तो 'अष्टागहृदय' के व्याख्या

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १३३
२. Catalogus Catalogorum, Part I, p. 36

साहित्य मे उससे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होगी । इस टीका का उल्लेख हरिशास्त्री पराड़कर[1] और पी० के० गोडे[2] ने भी किया है ।

२. हर्षकीर्तिसूरि :—(वि. स. १६६५ के आसपास) ये नागपुरीय (नागौरी) तपागच्छीय श्री चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य थे । इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का उत्तरार्ध ज्ञात होता है। इनके अधिकाश ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे मिलते हैं, कुछ ग्रन्थ देशी भाषा मे भी प्राप्त होते हैं। श्री मोहनलाल द० देसाई ने "जैन गुर्जर कविओ" भाग १, पृ० ४७० पर इनके अपने गुरु के नाम की सारस्वत व्याकरण की टीका, नवस्मरण की टीका, सिन्दुरप्रकर टीका, शारदीय नाम माला कोष, धातुतरगिणी, योगचितामणि, वैद्यकसारोद्धार, वैद्यकसार संग्रह, श्रुतबोधवृत्ति, विजयपहुत्त और वृहत् शाति पर वृत्ति, स० १६६३ मे अनित्कारिका विवरण और सं० १६६८ मे कल्याणमदिरस्तववृत्ति आदि सस्कृत मे रचे । अनेक ग्रन्थो का उल्लेख किया है ।

श्री देसाई ने इनके धातुरत्नमाला, योगचिंतामणि, वैद्यकसारोद्धार और वैद्यसारसग्रह नामक चार वैद्यक ग्रन्थो का उल्लेख किया है । वस्तुत: अंतिम तीन नाम एक ही ग्रन्थ के है । 'धातुरत्न-माला' की कोई प्रति हमारे देखने मे नही आयी । योगचिंतामणि के ही वैद्यकसारोद्धार और वैद्यकसार सग्रह अन्य नाम हैं । इसका रचनाकाल वि स. १६६६ से किंचित पूर्व होना चाहिए । इस ग्रन्थ मे फिरग, चोपचीनी, अफीम और पारद का वर्णन उपलब्ध होने से डॉ० जोली ने भी इसका यही काल माना है । (J Jolly, Indian Medicine, पृ० ४) यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है । इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वैद्य और रोगी के लक्षण, नाड़ी, मूत्र, नेत्र, मुख, जिह्वा, मल, स्पर्श और शब्द परीक्षाए, आयुर्विचार, आयुर्लक्षण, कालज्ञान, देशज्ञान, मानपरिभाषा, शारीरिक, सप्तकला, सप्त आशय, सप्त धातु, उपधातु और त्वचा का वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् क्रमशः प्रथमादि षष्ठ अध्यायो मे पाक (३४), चूर्ण (६१), गुटिका (५६), क्वाथ (६४), घृत (२१), तेल (२२) के अन्वर्थ योगों का सग्रह किया गया है । सातवें मिश्रकाधिकार मे गुग्गुलुप्रकरण, (८ योग), शखद्राव, गधकविधि, शिलाजतु, स्वर्णादि धातु मारण, मृगांकरस, ताम्र, बंग, नाग, सार, मडूर, अभ्रक का मारण और गुण, धातुसत्वपातन, पारद शोधन, आदि रसशास्त्र सबधी विषय, सिद्धरसौपधिया (२५), आसव-अरिष्ट (६), लेप (३७), पचकर्म, रक्तमोक्ष, वाष्पस्वेदन, विपचिकित्सा, स्त्रीचिकित्सा, गर्भनिवारण, गर्भपातन प्रभृति विविध विषय, तथा अ त मे कर्मविपाकप्रकरण दिया गया है । ग्रन्थ की प्राचीनतम ह०प्र० वि० सं० १६६६ की मिली है । कुछ ह० प्रतिया सटीक, बालावबोध और सस्तबक प्राप्त होती हैं । इससे ग्रन्थ की उपयोगिता अधिक प्रतीत होती है ।

३. हंसराज मुनि :—ये खरतरगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे । इनका काल सत्रहवी शती ज्ञात होता है । इन्होने नेमिचन्द्र कृत प्राकृत 'द्रव्यसग्रह' पर बालावबोध लिखा था । इनकी अन्य रचना 'ज्ञानद्विपंचाशिका-ज्ञानबावनी' भी मिलती है । इनका भिषक्चक्रचित्तोत्सव जिसे 'हंसराजनिदानम्' भी कहते है, चिकित्सा विषयक ग्रन्थ है ।

यह ग्रंथ हसराजकृत भाषाटीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुआ है

१. हरिशास्त्री पराड़कर, अष्टागहृदय, उपोद्घात, पृ. २६
२. पी० के० गोडे, अष्टागहृदय, (बम्बई १६३९), इंट्रोडक्शन, पृ. ६

४. **हस्तिरुचि** :—ये तपागच्छीय रुचि शाखा के यति थे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार ज्ञात होती है—लक्ष्मीरुचि, विजयकुशल, उदयरुचि, हितरुचि, हस्तिरुचि। ये प्रकाण्ड विद्वान् और प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इनका काल विक्रम की १८वीं शती का मध्य प्रतीत होता है। श्री देसाईजी ने इनके 'चित्रसेनपद्मावतीरास' (वि. स. १७१७) का उल्लेख किया है (जैन गुर्जर कविओ, भाग २, पृ. १८६)। इनके निम्न दो आयुर्वेदिक ग्रंथ बताये जाते है :—

(१) **वैद्यवल्लभ** :—यह मूलत: संस्कृत मे रचा गया था फिर इसका राजस्थानी में अनुवाद किया गया। लेखक ने इसका प्रणयनकाल, वि. स. १७२६ लिखा है। इसमे आठ अध्याय है—ज्वर, स्त्रीरोग, कासक्षयादिरोग, धातुरोग, अतिसारादिरोग, कुष्ठादिरोग, शिर:कर्णाक्षिरोग, स्तभन। यह चिकित्सा संबधी सग्रह ग्र थ है। पश्चिमी भारत मे यह बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसकी लोकप्रियता इस तथ्य से ज्ञात होती है कि इस ग्रंथ की रचना के तीन वर्ष बाद ही अर्थात् सं० १७२९ मे मेघभट्ट नामक विद्वान् ने इस पर संस्कृत टीका लिखी थी। यह टीकाकार शैव था। मेघ की सस्कृत टीका के अतिरिक्त इस ग्रंथ पर हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती मे अनेक स्तवक और विवेचन लिखे गये है। भाषाटीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से यह छप चुका है।

(२) **वंद्या (ध्या) कल्प चौपाई** :—नागरीप्रचारिणी सभा के खोजविवरण पृ० ३३ पर इनकी इस रचना का उल्लेख है। इसके अंतिम भाग मे "कहि कवि हस्ति हरिनो दास" लिखा गया है। अत: यह किसी अन्य की रचना प्रतीत होती है।

५. **विनयमेरुगणि** :—ये खरतरगच्छीय जिनचन्द की परम्परा मे वाचक सुमतिमेरु के भ्रातृ-पाठक थे। इनका काल वि० १८वी शती प्रमाणित होता है। इनके शिष्य मुनि मानजी के राजस्थानी मे लिखे हुए कई वैद्यकग्रंथ (कविप्रमोद, कविविनोद आदि) मिलते है। ये बीकानेर क्षेत्र के रहने वाले थे। इनका एक वैद्यकग्रंथ 'विद्वन्मुखमंडनसार संग्रह' मिलता है। यह योगसंग्रह है। ग्र थ अपूर्ण रूप मे मुझे प्राप्त हुआ था (मस्तक रोगाधिकार तक)। रोगो की चिकित्सा इसका प्रतिपाद्य विषय है।

६. **रामलाल महोपाध्याय** :—ये बीकानेर के निवासी तथा धर्मशील के शिष्य थे। ये जैनानुयायी थे, क्योकि ग्र थ के प्रारम्भ मे 'जिन' को नमस्कार किया है और ग्रंथारम्भ मे जिनदत्तसूरि, कुशलसूरि के नाम स्मरण किये है। इनके रामनिदानम् (अपरनाम रामऋद्धिसार) ग्रंथ मे संक्षिप्त रूप से सब रोगो के निदान का वर्णन किया गया है। इसमे कुल श्लोकसंख्या ७१२ है।

७. **दीपकचन्द्र वाचक** :—ये खरतरगच्छीय वाचक थे। संभवत: इनको जयपुर मे जयसिंह महाराजा द्वारा राज्याश्रय प्राप्त था। इनके गुरु का नाम दयातिलक था। इनके दो वैद्यक ग्रंथ मिलते है। एक सस्कृत मे पथ्यलघननिर्णय तथा द्वितीय बालतत्र भापावचनिका। प्रथम ग्रंथ का रचनाकाल सं० १७९२ माघ सुदी १ है। इसका संशोधन शकर नामक ब्राह्मण ने स० १८८५ मे किया था। यह पथ्यापथ्य संबंधी ग्रंथ है। अर्थात् किस रोग मे कितने दिन अनाहार रखा जाय और कौनसा पथ्य दिया जाय। ये सभी पथ्य देशज-मारवाड क्षेत्र के है।

८. **महेन्द्र जैन** :—ये सभवत: मेवाड के निवासी थे। इनके पिता का नाम कृष्ण वैद्य था। वि. सं. १७०९ मे इन्होंने 'द्रव्यावली समुच्चय' नामक ग्रंथ 'धन्वन्तरिनिघण्टु' के आधार पर उदयपुर (मेवाड) मे रचा था। यह संस्कृत मे है और निघण्टु (द्रव्य-औषधि का परिचयात्मक) ग्र थ है।

आयुर्वेद के राजस्थानी ग्रंथकार और ग्रंथ

१. रामचन्द्र :—ये खरतरगच्छीय यति थे। इनके गुरु का नाम पद्मरंग गणि था। पद्मरंग के गुरु पद्मकीर्ति हुए और पद्मकीर्ति के गुरु जिनसिंह सूरिराज हुए। जिनसिंहजी दिल्ली के शाहसलेम (सलीमशाह सूर) के काल मे मौजूद थे और अपने उपदेशो से बादशाह को दयावान बना दिया था। उनको मुगल सम्राट अकबर और सलीम दोनो के द्वारा सम्मान प्रदान किया गया था। रामचंद्र यति औरंगजेब के शासनकाल मे मौजूद थे। इसका समय वि. स. १७२०-५० माना जाता है।

वैद्यक और ज्योतिष पर इनका अच्छा अधिकार था। इनके पूर्व गुरु भी वैद्यक में निष्णात थे। वैद्यक पर 'रामविनोद' और वैद्यविनोद' की तथा ज्योतिष पर 'सामुद्रिक भाषा' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इनके काव्यसंबंधी चार ग्रंथ भी मिलते हैं—'समेदशिखरस्तवन' (स० १७५०), बीकानेर आदिनाथस्तवन' (स० १७३०), दश पच्चक्खाण स्तवन' (स० १७२१) मूलदेव चौपाई (स० १७११)। ये सब ग्रन्थ राजस्थानी-हिन्दी मे पद्यमय है। कुछ फुटकर भक्तिपरक पद्य भी मिलते हैं।

(१) रामविनोद :—(वि. सं १७२०) यह चिकित्साविषयक ग्रन्थ है। यह कृति सं. १७२० मिगसर सुदी १३ बुधवार को समाप्त हुई थी। इसे सक्कीनगर (सिन्ध) मे बनाया गया था।

(२) वैद्यविनोद :—इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति सं. १७२६ बसंत ऋतु वैशाख पूर्णिमा को हुई थी। उस समय औरंगजेब का शासनकाल था।

यह ग्रन्थ मरोटकोट (बीकानेर राज्य) मे रचा गया था। यह शार्ङ्गधरसंहिता का पद्यमय भाषानुवाद है। इसमे कुल २५२५ पद्य है। यह ग्रन्थ तीन खण्डो मे विभक्त है, उनकी पद्यसंख्या क्रमशः ४५६, १२९२, ७७७=२५२५ है। सामान्य जनता के सुखबोध के लिए लेखक ने इसकी रचना की थी।

(३) नाड़ी परीक्षा और (४) मानपरिमाण :—रामचंद्र यति की ये दोनो रचनाएं पृथक् मे भी मिलती है, किन्तु रामविनोद की किसी-किसी प्रति मे मानपरिमाण के पद्य उसी मे सम्मिलित मिलते है। अत. ये दोनो रचनाएं स्वतन्त्र न होकर 'रामविनोद' के ही अंश या पृथक्-पृथक् अध्याय है।

(५) सामुद्रिक भाषा :—यह स० १७२२ माघ कृष्णा ६ की रचना है। इसमें कुल २११ पद्य हैं। इसमे राजस्थानी भाषा में सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार स्त्री और पुरुष के लक्षणों का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ मे दो प्रकाश हैं—प्रथम में, ११७ पद्यो में नरलक्षण और द्वितीय में, ९४ पद्यो में नारीलक्षण बताये गये है। यह ग्रंथ मेहरा नामक स्थान पर रचा गया था।

२. जिनसमुद्रसूरि :—ये श्वेताम्बरी बेगडगच्छ शाखा के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम जिणचंदसूरि और उनके गुरु का नाम जिनेश्वरसूरि था। ये जैसलमेर क्षेत्र के निवासी थे। इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का अंतिम काल ज्ञात होता है। इनके शिष्यो का नाम महिमहर्ष आदि था। इनकी रचनाएं राजस्थानी और अपभ्रंश भाषा में मिलती है। इनका वैद्यक पर एक ग्रंथ 'वैद्यचिन्तामणि' मिलता है। भर्तृहरिवैराग्यशतक की 'सर्वार्थसिद्धिमणिमाला' नामक अपभ्रंशटीका तथा 'तत्त्वप्रबोधनाटक' भी मिलते हैं। अन्य छोटी रचनाएं 'नेमनाथ बारहमास' आदि भी मिलती

है। इनके वैद्यचिन्तामणि ग्रंथ के अन्य नाम 'वैद्यकसारोद्धार' और 'समुद्रसिद्धान्त' या 'समुद्रप्रकास-सिद्धान्त' दिये गये है। यह एक सग्रहग्रन्थ है। इसमें रोगो के निदान और चिकित्सा का पद्यबद्ध समुच्चय किया गया है।

३. **लक्ष्मीवल्लभ** :—ये खरतरगच्छीय शाखा के उपाध्याय लक्ष्मीकिर्ति के शिष्य थे। ये बीकानेर के रहने वाले प्रतीत होते हैं। ये अठारहवी शती के द्वितीय पाद मे मौजूद थे। इनकी अधिकाश रचनाएं वि. सं. १७२० से १७५० के बीच मे लिखी गई थी। इनका अन्य नाम 'राजकवि' भी मिलता है।

श्री देसाईजी ने 'जैनगुर्जर कवियो' भाग १ पृ. २४३ पर इनकी रचनाओं का उल्लेख किया है—यथा रतनहास-चौपाई' १७२५, 'अमर कुमार चरित्ररास' 'विक्रमादित्य पंचदंड रास' स. १७२७, 'रात्रिभोजन चौपाई' सं. १७३८। इनकी वैद्यक पर दो कृतियाँ मिलती है—कालज्ञान और मूत्रपरीक्षा कालज्ञान शभुनाथकृत सस्कृत के 'काल ज्ञानम्' का पद्यबद्ध भाषानुवाद है। इसका रचनाकाल सं० १७४१ है। ग्रन्थ मे कुल पाच समुद्देश (अध्याय) और कुल १७८ पद्य है। मूत्रपरीक्षा लेखक की अतिसक्षिप्त कृति है (पत्र १), कुल पद्य ३७ है। प्राप्त हस्तलिखित प्रति का लेखनकाल सं० १७५१ है। सभवतः यह किसी सस्कृत ग्रंथ का भाषानुवाद है।

४. **मुनि मान** :—ये खरतरगच्छीय भट्टारक जिनचंद के शिष्य वाचक सुमतिसुमेर के शिष्य थे और बीकानेर के रहने वाले थे। वैद्यक पर इनकी दो रचनाए प्रसिद्ध है—कविविनोद और कवि-प्रमोद। इनकी अन्य रचना 'वैद्यकसार संग्रह' भी बतायी जाती है।

कविविनोद रोगों के निदान और औषधि के सम्बन्ध मे लिखा गया है। इसमें दो खण्ड हैं, प्रथम मे कल्पनाएं है तथा दूसरे में चिकित्सा दी गई है। इसका निर्माण लाहौर मे सम्वत् १७४५ में किया गया था। कविप्रमोद बहुत बड़ी कृति है (कुल पद्य २९४४)। इसमे नौ उद्देश (अध्याय) हैं। इसका रचनाकाल सम्वत् १७४६ है। यह स्वयं कवि द्वारा इसी नाम से संस्कृत मे प्रणीत ग्रन्थ का पद्यमय भाषानुवाद है। वाग्भट, सुश्रुत, चरक, आत्रेय, खरनाद, भेड के ग्रन्थों का सार लेकर इसका प्रणयन किया गया था। यह कवित्त और दोहा छंदो मे बनाया गया है।

५. **जोगीदास** :—ये बीकानेर निवासी थे तथा बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह और सुजानसिंह द्वारा राज्याश्रित व सम्मानित श्वेताम्बर जैन जोसीराय मथेन के पुत्र थे। जोसीराय को सुजानसिंह के शासनकाल मे वर्षासन, सासणदान और शिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था। स्वय जोगीदास सुजानसिंह के पुत्र महाराजा जोरावरसिंह के शासन मे सम्मानित हुए थे। इनका अन्य नाम 'दास कवि' भी मिलता है। इन्होने वैद्यकसार की रचना बीकानेर के महाराजा जोरावर-सिंह की आज्ञा से स० १७६२ मे बीकानेर मे की थी।

६. **समरथ** :—ये श्वेताम्बर खरतरगच्छ के सागरचन्द्रसूरि सन्तानीय मतिरत्न के शिष्य थे। दीक्षितावस्था का इनका नाम 'समयमाणिक्य' रखा गया। ये बीकानेर क्षेत्र के निवासी थे। इनके अनेक ग्रन्थ मिलते है, यथा केशवदास की ब्रजभाषा मे रचित 'रसिकप्रिया' पर सस्कृत मे टीका (सं० १७५५), 'बावनीगाथा', 'मल्लिनाथ पंचकल्याणकस्तवन' आदि। वैद्यक पर 'रसमंजरी भाषा' टीका' मिलती है। यह ब्राह्मण वैद्यनाथ के पुत्र शालिनाथ द्वारा प्रणीत संस्कृत के 'रसमंजरी' ग्रंथ की

पद्यमय भापाटीका है। इसका रचना काल सं० १७६४ है। यह रसविद्या सम्बन्धी ग्रंथ है। इस मे कुल १० अध्याय हैं।

७. दीपचन्द्र वाचक :—संस्कृत ग्रंथों के संदर्भ मे इनका परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। अहिच्छत्रानगर (वर्तमान नागौर) के निवासी रामचन्द्र के पौत्र और महिधर के पुत्र कल्याणदास ने संस्कृत मे 'वालतन्त्र' की रचना की थी। 'वालतन्त्र भापावचनिका' नाम से इसकी भाषाटीका इन्होने की। इसमे बालचिकित्सा का वर्णन कुल १५ पटलों मे हुआ है।

८. चैनसुख यति :—ये खरतरगच्छीय जिनदत्तसूरि शाखा के लाभनिधान के शिष्य थे। इनका निवास स्थान फतहपुर (सीकर) था। इनके शिष्य चिमनीरामजी ने फतहपुर मे सं० १८६८ मे इनकी छतरी (समाधि) बनाई थी। फतहपुर (शेखावटी) मे इनकी परम्परा के यति आज भी विद्यमान है। ये अच्छे वैद्य थे। इनके वैद्यक पर दो ग्रन्थ राजस्थानी मे मिलते है—'सतश्लोकी भापा टीका और 'वैद्यजीवनटवा' सतश्लोकी भापा टीका वोपदेवकृत 'सतश्लोकी' का गद्य मे (राजस्थानी) भापा टीका है। इसकी रचना महेश की आज्ञा से इन्होने रतनचन्द्र के लिए की थी। इसका रचनाकाल सं० १८२० है।

९. पीताम्वर :—ये विजयगच्छीय आचार्य विनयसागरसूरि के शिष्य थे। विनयसागरसूरि अच्छे उपदेशक और रससिद्ध कवि थे। ये मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के शासनकाल मे विद्यमान थे। यह काल मेवाड़ के सास्कृतिक इतिहास मे स्वर्णकाल माना जाता है और इस काल मे साहित्य, संगीत, शिल्प व चित्रकला का विशिष्ट विकास हुआ। सं० १७२५ मे औरंगजेब के मेवाड़ पर आक्रमण से मेवाड़ को दुर्दिन देखने पडे। विनयसागरसूरि के लिए पीताम्वर के ग्रन्थ मे-'वैद्यविद्या विशारद' आदि विरुद प्रयुक्त होने से उनका अच्छा चिकित्सक होना प्रमाणित होता है। पीताम्वर मेवाड़ के ही निवासी थे। और उन्होंने अपना ग्रन्थप्रणयन भी उदयपुर मे किया था। इनका एक ही ग्रन्थ मिलता है, जो गुटके के रूप मे संकलित है। इस प्रकलन का नाम स्वय लेखक ने 'आयुर्वेदसार-संग्रह' स्वीकार किया है। इसका रचनाकाल सं० १७५९ है। इसमे शताब्दियों से अनेक कुशल अनुभवी आचार्यों द्वारा अनुभूत प्रयोगों का संग्रह किया गया है। सम्पूर्ण प्रयोग वानस्पतिक हैं और सरलता से प्राय: सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं। कुछ रस-प्रयोग (रस व धातुओ से निर्मित प्रयोग) भी दिये गये हैं। जिन विशिष्ट विद्वानो से योग प्राप्त हुए थे, उनके नाम भी सकलनकर्ता ने उल्लेखित किये हैं, जैसे खीमसी, जोशी भगवान्‌दास, ठाकुरशी नाणावाल, बालगिरि आदि। परीक्षित प्रयोगो को लौकिक भापा (मेवाडी) मे प्रस्तुत करना इस संकलन का प्रयोजन था। इसमे मेवाड़ के राज-परिवार मे प्रयुक्त होने वाले योग भी संगृहीत किये गये हैं। ठाकरसी नाणावाल और जोशी भगवानदास ये दोनो उस समय मे उदयपुर के विख्यात चिकित्सक और रसायनशास्त्री थे। ये दोनो ही गुंसाई भारती के शिष्य और राजवैद्य थे। यह ग्रन्थ उदयपुर मे रचा गया है। अत: इनमे विशेपरूप से मेवाड़ मे प्राप्त होने वाली वनस्पतियो का प्रचुर प्रयोग दर्शाया गया है, जैसे 'गांठियांझाड'। यह वातनाशक व अस्थिसंधानक है और एकलिंगजी के समीप राठासन की पहाडी पर बहुत होती है। लेखक ने धानुस्तम्भन प्रयोगो मे 'सिंहवाहनी गुटिका' का प्रयोग लिखा है, जिसे महाराणा कुम्भा सेवन करते थे। इसमे द्रव्य साधारण है, परन्तु यह उत्तम गुणकारी है। इसी प्रकार राजा जगन्नाथ की 'कामेश्वर गुटिका' भी वर्णित हैं। विपनाशक प्रयोगो मे 'बाघवालविपनाश' के प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

१०. ज्ञानसार :—ये खरतरगच्छीय जिनलाभसूरि के शिष्य रत्नराज के शिष्य थे। इनका जन्म वि० सं० १८०१ मे बीकानेर राज्यान्तर्गत जागूल के समीप जैगलेवास नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम उदयचन्द्रजी सांड और माता का नाम जीवनदे था। इनकी दीक्षा स० १८१२ में खरतर जिनलाभसूरि के शिष्य रायचन्द्र (रत्नराजगणि) के पास हुई थी। इन्होने अपने अनुभव और परिश्रम से ही शास्त्राभ्यास किया। यह एक मस्त योगी, कवि और आध्यात्मिक पुरुष थे। बीकानेर के राजा सूरतसिंह, जयपुर नरेश प्रतापसिंह, जैसलमेर के रावल गजसिंह और जोरावरसिंह इनके भक्त और अनुरागी थे। स० १८९९ के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ था। इनका प्रसिद्ध नाम 'नारायणी बावा' था। सदासुख, हरसुख आदि इनके शिष्य थे। इनकी रचनाएं प्रायः हिंदी में और क्वचित् राजस्थानी मे मिलती हैं। वैद्यक के वाजीकरण पर इनका 'कामोद्दीपन ग्रन्थ' राजस्थानी-हिन्दी में मिलता है। इस ग्रन्थ की रचना इन्होने सं० १८५६ वैशाख शुक्ल ३ को जयपुर मे महाराजा प्रतापसिंह (माधवसिंह के पुत्र) के शासनकाल में गुरु रत्नराज की प्रेरणा और आग्रह से की थी।

११. पं० लक्ष्मीचंद जैन :—ये नैनचन्द के शिष्य, मोतीराम के शिष्य, श्रीलाल के शिष्य थे। ये जैन श्रावक थे और पचारी शहर के निवासी थे। इनकी एक वैद्यककृति 'लक्ष्मीप्रकाश' के नाम से मिलती है। इस कृति की यह विशेपता है कि इसमें प्रयुक्त लगभग सभी योग स्वानुभवमूलक हैं; जिसकी सूचना लेखक ने स्थान-स्थान पर दी है। इसमें प्रथम रोग का निदान, पूर्वरूप लक्षण का और फिर शास्त्रीय चिकित्सा का वर्णन है। जिन व्यक्तियों से लेखक को योग प्राप्त हुए थे, उनका भी उल्लेख उसने किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण में वाग्भट, माधवनिदान, भावप्रकाश, योग चिंतामणि आदि ग्रन्थो की सहायता ली गई है। इस ग्रन्थ का रचना काल वि. सम्वत् १९३७ है।

१२. मलूकचन्द :—ये खरतरगच्छीय जैन श्रावक थे। सम्भवतः इनका बीकानेर क्षेत्र निवास स्थान था। श्री अगरचद नाहटा ने इनका समय १९वीं शताब्दी माना है। इनकी 'वैद्यहुलास' कृति मिलती है। यह यूनानी चिकित्सा शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तिब्ब सहाबी' का भाषा मे पद्यमय अनुवाद है। इसमें कुल ५१८ पद्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान के जैन यतिमुनियो की आयुर्वेद को महान् देन रही है। अनेक व्यक्तिगत ग्रंथागारों में अभी भी जैनानुयायियो द्वारा रचित सैकड़ों आयुर्वेदिक ग्रंथ खोजे जा सकते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में उनमें से कतिपय ग्रंथो और उनके रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया गया है।

३५ | हस्तलिखित जैन ग्रंथ भंडार

•

श्री अगरचन्द नाहटा

जैनधर्म का राजस्थान में खूब प्रचार रहा है। गाव-गांव में साधु-साध्वी विचरते थे। आगे चल कर चैत्यवासी आचार्य, भट्टारक व यति तो कई ग्राम नगरो में स्थायी रूप से रहने लगे। उन यति एवं मुनियो ने बहुत बडा साहित्य निर्माण किया और लाखो हस्तलिखित प्रतियां अपने हाथ से लिखी और श्रावक-श्राविकाओ को उपदेश देकर लहियो से लिखवाईं। उन हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह का काम 'ज्ञानभडार' के रूप मे प्रसिद्ध है। जहां-जहां जैनाचार्य और यति, मुनि रहते थे उनके पास हस्तलिखित, प्रतियो का संग्रह होता ही था। इसलिये राजस्थान में हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह रूप ज्ञानभंडार हजारो की संख्या मे थे। पर मुद्रण युग मे छपी हुई पुस्तके बिना परिश्रम व थोडे ही मूल्य मे अच्छे रूप मे मिल जाने लगी। तब हस्तलिखित प्रतियो का पठन-पाठन रूप उपयोग कम होता चला गया। फलतः बहुत से लोगों ने कोड़ियों के मोल अपना सग्रह बेच डाला। इसी तरह लाखो प्रतिया राजस्थान से अंग्रेजो के राज्य मे अन्य प्रदेशों और विदेशों मे चली गईं। मुसलमानी साम्राज्य के समय अनेक ग्रंथ भडार नष्ट हो गये। उचित सारसंभाल के अभाव मे हजारो प्रतियां चूहो और दीमकों की भक्ष्य बन गईं। वर्षा और सर्दी के प्रभाव से हजारो प्रतियो के पत्र चिपककर थेपड़े बन गये। उन्हे जलाने के काम मे ले लिया गया। इसी तरह हजारों प्रतियां पानी मे भिगोकर कूटे के काम मे ले ली गईं। इतना जबर्दस्त विनाश होने के उपरान्त भी राजस्थान मे अभी लाखो हस्तलिखित प्रतियां बच गई हैं। ज्ञानभडारो का संरक्षण जैनाचार्यों और श्रावको ने बहुत सावधानी से किया। नई प्रतियां लिखवाते ही रहे और यति लोग स्वयं भी लिखते रहते थे। इसी का परिणाम है कि इतना बड़ा संग्रह राजस्थान में ही बचा हुआ है। जैसलमेर में अन्य प्रातो से लाकर भी ग्रंथ सुरक्षित किये गये थे।

राजस्थान मे दिगम्बर[1] और श्वेताम्बर दोनो संप्रदायों के अनेकों विशाल ग्रंथ भडार है। इनमे से श्वेताम्बर ज्ञान भंडारो का ही यहां सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। इन भडारो मे कुछ तो व्यक्ति विशेष के पास है, कुछ संघ की देखरेख मे हैं। व्यक्तिगत सग्रह बहुत से बिक गये और

---

१. दिगम्बर ग्रंथ भण्डारों की विशेष जानकारी के लिए डॉ० कासलीवाल का 'जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान' ग्रंथ द्रष्टव्य है।

—सम्पादक

अब भी विकते ही जा रहे है। सघ की देखरेख वाले भंडार व्यक्तिगत संग्रही की अपेक्षा अधिक बचे रहे हैं। गत ५० वर्षों मे मेरी जानकारी मे ही बीकानेर के कई सग्रह अब नही रहे। २० वर्ष पहिले हमारा 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। उसकी विस्तृत भूमिका मे हमने बीकानेर के करीब ३० श्वेताम्बर हस्तलिखित ज्ञान भण्डारो का सक्षिप्त विवरण दिया था। राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथ भण्डारो के सम्बन्ध मे मेरा एक विस्तृत लेख 'मरुभारती' में प्रकाशित हुआ था। जैसलमेर और बीकानेर के ज्ञानभण्डारो के सम्बन्ध मे तो हमारे स्वतंत्र लेख भी प्रकाशित हो चुके है। जयपुर के डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने तो राजस्थान के ग्रंथ भण्डारो पर शोध प्रवन्ध ही लिख डाला है जो जैन साहित्य शोध सस्थान श्री महावीरजी तीर्थ क्षेत्र कमेटी जयपुर से (अग्रेजी मे) प्रकाशित हो चुका है। दिगम्बर ग्रंथ भण्डारो की सूचिया तैयार करने व प्रकाशित करने का काम भी उक्त सस्था से काफी अच्छे रूप मे हुआ है। श्वेताम्बर ग्रंथ भण्डारों मे विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार जयपुर की सूची का एक भाग प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन डॉ० नरेन्द्र भानावत ने किया है। बहुत वर्ष पहिले रत्न प्रभाकर ज्ञान भण्डार ओसियां की एक सूची प्रकाशित हुई थी। चूरु की सुराणा लाइब्रेरी की सूची बनी जरूर थी, पर प्रकाशित नही हो सकी। अन्य राजस्थान के श्वेताम्बर ज्ञान भण्डारो की सूची प्रकाशित नहीं हुई। कई महत्वपूर्ण ज्ञानभण्डारो की सूचियाँ हमने भी तैयार की है। स्वर्गीय हरिसागर सूरिजी ने भी बीकानेर के क्षमा कल्याण ज्ञानभण्डार व उदयपुर के खरतरगच्छीय ज्ञानभण्डार की सूची बनाई थी। जैनेतर एवं राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ सग्रहालयों मे भी हजारो जैन प्रतिया है जिनमे से कुछ की सूची जैनेतर ग्रंथों के साथ प्रकाशित भी हो चुकी है। कई ग्रंथ भण्डारो की सूची अभी तक बनी ही नही है। कइयों की पुराने ढंग की सूची बनी हुई है जिसमे केवल ग्रंथ का नाम व पत्र संख्या ही लिखी रहती है। कही-कही रचयिता का नाम भी लिख दिया जाता है। आवश्यकता है विवरणात्मक सूची बनाने और प्रकाशित करने की।

अब सर्वप्रथम बीकानेर के ही जैन ज्ञानभण्डारों यानि हस्तलिखित प्रतियो के संग्रहालयों का विवरण दिया जा रहा है क्योकि अपना निवास स्थान होने से उसकी ही सबसे अधिक जानकारी मुझे है। मेरी दृष्टि मे राजस्थान मे हस्तलिखित प्रतियों का सग्रह सबसे अधिक मैंने ही किया है फलत: बीकानेर मे १ लाख हस्तलिखित प्रतिया संग्रहीत है, जो राजस्थान के अन्य किसी भी नगर या स्थान मे नही है। हस्तलिखित प्रतियो की खोज और संग्रह का मुझे गत ४५ वर्षों से व्यसन सा पड गया है। इसी के फलस्वरूप ६० हजार हस्तलिखित प्रतिया मैने अपने अभय जैन ग्रंथालय मे अब तक संग्रह करली है और वह संग्रह दिनो दिन बढता ही जा रहा है। क्योकि उचित दामों मे जहां कही से भी जितनी भी हस्तलिखित प्रतिया मुझे मिलती है उनको खरीद कर अपने ग्रंथालय मे सुरक्षित रखने मे मैं आगे पीछे नही देखता। वास्तव मे ऐसी ही धुन से इतना बड़ा काम हो सकता है।

अभय जैन ग्रंथालय मेरे बडे भाई अभयराजजी नाहटा, जिनका केवल २२ वर्ष की आयु मे ही जयपुर में स्वर्गवास हो गया था, उनकी स्मृति मे स्थापित किया गया है। इस ग्रंथालय के विकास की कुछ जानकारी 'सम्मेलन पत्रिका' मे प्रकाशित की जा चुकी है। इस ग्रंथालय मे केवल जैन ग्रंथ ही नही है। वेद, पुराण, उपनिषद्, काव्य, नाटक, छंद, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रतंत्र आदि सभी विषयो के ग्रथो का सग्रह किया गया है। राजस्थान से ही नही मध्य प्रदेश पंजाब और दक्षिण भारत से भी विविध लिपियों व विविध भाषाओ के ग्रंथ संग्रहीत किये गये है। इनमे बहुत से ऐसे भी ग्रंथ है जिनकी

विश्वभर में अन्य कोई प्रति प्राप्त नहीं हैं। दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की संख्या तो सैकड़ों नही हजारो पर हैं। जहा कही भी जो भी महत्त्व की रचना मिली उसकी फोटू कॉपी और नकल करवाकर के सग्रहीत करने का प्रयत्न किया गया है। वैसे साधारण और अपूर्ण ग्रंथ भी वहुत से हैं। फुटकर पत्र भी हजारो हैं। तो गुटके भी हजार से अधिक संख्या मे हैं जिनमे से १–१ गुटके में छोटी-मोटी १०–२० ही नही, पचासो और सैकड़ों रचनायें भी लिखी हुई है। अपने सारे जीवन की यहीं सबसे बड़ी उपलब्धि मैं मानता हूं। एक भी हस्तलिखित पत्र इधर-उधर पड़ा देखता हूं तो मुझे इतना दर्द होता है कि उसको लेने व सुरक्षित रखने मे मैं नही चूकता। सोचता हूँ प्रति के लिखने वाले ने कितना श्रम और समय लगाया और किस आशा के साथ अपनी इच्छित सामग्री उपयोग और परोपकार के लिये लिखकर रखी, वह यो ही वर्बाद हो जाय तो इससे बड़ी कृतघ्नता व मूर्खता क्या होगी। इसकी मैं कल्पना ही नही कर सकता।

वीकानेर मे खरतरगच्छ का प्रभाव वहुत अधिक रहा है। यहां के ओसवालों की २७ गवाड़ मानी जाती हैं। उसमे १३ गवाड़ तो केवल खरतरगच्छ के अनुयायियों की ही थी। बाकी १४ में भी खरतरगच्छ वालो के साथ-साथ तपागच्छ, पायचंदगच्छ, कवलागच्छ और लौकागच्छ सभी का समावेश हो जाता है। खरतरगच्छ के दो श्रीपूज्यो की गद्दी वीकानेर मे है। पहली गद्दी के श्रीपूज्यजी भट्टारक कहलाते हैं और दूसरी गद्दी के आचार्य। संवत् १६८६ मे जिनराजसूरि और जिनसागरसूरि से खरतरगच्छ की ये दोनो शाखायें अलग हुईं। पहली शाखा का स्थान 'वड़ा उपासरा' है और ठीक उसी के पीछे आचार्य शाखा का उपासरा है। इन दोनो उपासरो में पहले सैकडो यति रहते थे। १७वीं शताब्दी मे भी यहा अच्छा ज्ञानभण्डार था। वीकानेर के महाराजा रायसिहजी ने भी कुछ जैन हस्तलिखित प्रतिया अकवर प्रतिवोधक युग प्रधान जिनचन्द्रसूरिजी को वहरायी थी। सवत् १६४९ मे लाहौर मे वहराई हुई ऐसी कुछ प्रतियां हमारे देखने मे आई हैं, जो वीकानेर के ज्ञानभण्डार मे रखी गई होगी। पर वह प्राचीन ज्ञानभण्डार सुरक्षित नही रह सका इधर-उधर हो गया। वडा उपासरा श्रीपूज्यजी के सग्रह मे करीव ४००० हस्तलिखित प्रतियां थीं। वे 'राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान' मे वीकानेर की शाखा मे दे दी गई हैं। सवत् १९५८ मे हिमतूजी (हितवल्लभगणी) ने वड़ी दीर्घ दृष्टि से वड़े उपासरे मे एक ज्ञानभण्डार स्थापित किया। इसमे ९ यतियों का सग्रह है जिनमे महिमा भक्ति और दानसागर इन दो यतियो का तो परम्परागत वडा सग्रह करीव ३–३ हजार, कुल ६ हजार प्रतियो का है। इसके अतिरिक्त वर्द्धमान, अभयसिंह, जिनहर्षसूरि, अवीरजी, भुवनभक्ति, रामचन्द्र, मेहरचन्द्र आदि की प्रदत्त प्रतिया करीव ४ हजार मिलाकर इस वृहद् ज्ञानभण्डार में करीव १० हजार हस्तलिखित प्रतियां सुरक्षित हैं। यह खरतरगच्छ संघ का भण्डार है, जिसका मैं भी एक ट्रस्टी हूँ। कई महिने तक निरन्तर परिश्रम करके इसकी विवरणात्मक सूची मैंने वनाई, जिसका संशोधन पूज्य श्री पुण्य विजयजी जैसे जैन ज्ञानभण्डारो के मर्मज्ञ विद्वान् के हाथ से हो चुका है। प्रतियो पर सफेद मोटा कागज लपेटकर के सुन्दर अक्षरो में नाम-पत्र सख्यादि लिखे हुए हैं। एक ताडपत्रीय प्रति भी है। १५-१६वीं शताब्दी की कई महत्त्वपूर्ण संग्रह प्रतियां हैं। १७वीं से २०वी के पूर्वार्द्ध तक की तो हजारों प्रतियां हैं ही। कई गुटके भी वड़े महत्त्वपूर्ण हैं। विद्या प्रेमी ९ यतियो के परम्परागत संग्रह होने के कारण यह खरतरगच्छीय वृहद् ज्ञानभण्डार वडे महत्त्व का है।

मुनि जिनविजयजी की प्रेरणा से वीकानेर के कुछ महत्त्वपूर्ण श्वेताम्बर ज्ञानभण्डार

राजस्थान सरकार के संरक्षण में दे दिये गये है । राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा के रूप में यह जैन यतियों का संग्रह अभी स्टेडियम मे रखा हुआ है जिसमें २१ हजार हस्तलिखित प्रतियां हैं। बीच मे जब मेरे ग्रंथालय का मकान वन रहा था और प्रतियो को रखने की असुविधा थी तो मैंने राजस्थानी चित्रकला के प्रेमी व सग्राहक श्री मोतीचन्दजी खजान्ची को हस्तलिखित प्रतियां सग्रह करने की प्रेरणा दी और उन्होने थोडे ही वर्षों में करीब ८ हजार प्रतिया संग्रहीत कर ली। जिसे उन्होंने राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उक्त सग्रह में दे दी हैं। इसी तरह बड़े उपासरे के श्रीपूज्यजी का महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार जिसमे करीब ४ हजार प्रतियां हैं और दूसरा इसी तरह का बड़ा महत्त्वपूर्ण संग्रह उपाध्याय जयचन्दजी का (श्री जैन लक्ष्मी मोहनशाला ज्ञानभण्डार) तथा अन्य कई यतियों का सग्रह राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान को बीकानेर मे ही संरक्षण के लिये दे दिया गया है। यह सग्रह भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसकी सूची का भी १ भाग तो प्रकाशनार्थ तैयार किया हुआ पड़ा है। प्रतिष्ठान के सचालको को उसे शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहिये।

बीकानेर के विश्वविख्यात अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे भी हजारों जैन हस्तलिखित प्रतिया हैं। इस लाइब्रेरी के अन्य कई विभागो के तो सूचीपत्र छप भी गये हैं। उनमें भी बहुत से जैन ग्रंथ हैं, पर एक स्वतंत्र जैन विभाग है उसकी सूची अभी तक प्रकाशित नही हुई है, ठीक से बनी भी नहीं है। पहले केवल ग्रंथों के नाम व पत्र सख्या की सूची बनी थी वह भी कही इधर-उधर हो गई। महाराजा अनूपसिहजी के विद्या प्रेम से आकर्षित होकर बडगच्छ, पायचंदगच्छ, खरतरगच्छ आदि के आचार्यों एवं यतियो ने हजारो प्रतियां महाराजा को दे दी थी। वे महत्त्व की तो हैं ही पर उसमें कुछ जैन ग्रंथ ऐसे भी है जो अन्यत्र कही भी नही मिलते।

वडे उपाश्रय मे श्रीपूज्यजी और अन्य कई यतियो के पास कुछ हस्तलिखित सग्रह अब भी हैं ही। आचार्य शाखा के उपाश्रय का कुछ सग्रह तो इधर-उधर हो गया। फिर भी कुछ बचा होगा। जिनकृपाचद्रसूरिजी का महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार भी उनके यति-शिष्य ने बेच दिया। बीकानेर के अन्य ग्रंथ भण्डार इस प्रकार हैं:—

गोविन्द पुस्तकालय :—गोविन्दरामजी भीखनचंदजी भसाली की कोटड़ी में एक ग्रंथालय है। जिसमें गोविन्दरामजी ने मुद्रित ग्रंथो के साथ-साथ करीब १७०० हस्तलिखित प्रतियां भी सग्रह कर रखी हैं।

सेठिया जैन लाइब्रेरी :—अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था के अंतर्गत यह पुस्तकालय छात्रावास और जैन औषधालय से ऊपर के बड़े हॉल मे रखा हुआ है। इसमें मुद्रित ग्रंथों का तो बहुत अच्छा संग्रह है ही पर करीब १५०० हस्तलिखित प्रतियां भी हैं। स्वर्गीय भैरोदानजी सेठिया ने बहुत सी हस्तलिखित प्रतिया तो स्वय ने लिखवाई थीं और बहुत सी पुरानी भी खरीद ली थी।

क्षमा कल्याणजी का ज्ञानभण्डार :—सुगनजी के उपाश्रय मे १९वीं शताब्दी के संवेगी उपाध्याय क्षमा कल्याणजी के सग्रह की करीब ७०० हस्तलिखित प्रतिया इस ज्ञानभण्डार में हैं।

हेमचन्द्रसूरि पुस्तकालय :—आसानियों बाठियों की गवाड मे पायचन्दगच्छ के श्रीपूज्यजी के उपासरे के संग्रह में करीब १२०० हस्तलिखित प्रतियां हैं।

कुशलचन्द्रगरिण पुस्तकालय :—रामपुरियों की गवाड मे अवस्थित पायचन्दगच्छ के उपाश्रय मे स्थित इस पुस्तकालय मे मुद्रित ग्र थो के साथ-साथ करीब ४५० हस्तलिखित प्रतिया है।

पन्नीवाई के उपाश्रय का ज्ञानभण्डार :—राव गोपालसिंहजी के जसवंत भवन के पास की गली के उपासरे मे करीब ३०० हस्तलिखित प्रतिया है।

छतिवाई उपासरे का ज्ञानभण्डार :—नाहटो की गवाड़ के सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर से संलग्न उपासरे मे करीब ३०० प्रतिया है।

कोचरों के उपाश्रय का ज्ञानभण्डार :—इसमे करीब ३० बंडल हस्तलिखित ग्रंथ हैं। जिसकी सूची वनी हुई नही है।

इनके अतिरिक्त बोथरो की गवाड में जेठीवाई के ज्ञानभण्डार मे करीव ५०० हस्तलिखित प्रतियां है। इसी गवाड़ मे मगलचन्दजी मालू के यहा भी शताधिक प्रतिया है। इमी तरह मानमलजी कोठारी, शिवचन्दजी भावक और रामपुरिया-परिवार आदि के पास तथा कुछ यतियो के पास हस्तलिखित प्रतिया हैं। कुल मिलाकर वीकानेर मे १ लाख से भी अधिक हस्तलिखित प्रतिया हैं।

हस्तलिखित प्रतियों का सग्रह बीकानेर के बाद जोधपुर और जयपुर का उल्लेखनीय है। जोधपुर मे राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का प्रधान कार्यालय और भवन है। उसमे करीव ४० हजार हस्तलिखित प्रतियां है। जिसमे हजारो प्रतिया जैनो की लिखी हुई है। इसी तरह राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी मे भी १५,००० से अधिक हस्तलिखित प्रतियां है और जोधपुर महाराजा के पुस्तक प्रकाश मे भी अच्छा सग्रह है। जिनमे जैन प्रतिया भी काफी है।

स्वतंत्र जैन ज्ञानभण्डारो के रूप मे भी जोधपुर में कई अच्छे सग्रह हैं। जिनमे केशरियानाथजी मन्दिर और अन्य एक जैन मन्दिर का ज्ञानभण्डार अच्छा है। स्थानकवासी सप्रदाय के जैन रत्न पुस्तकालय और मुनि मगलचन्दजी का सग्रह तो मेरी जानकारी मे हैं। पर मरुधर केशरीजी का ज्ञानभण्डार भी अच्छा होना चाहिये पर मैं उसे देख नही पाया। स्वर्गीय कानमलजी नाहटा ने भी मुझे कहा था कि स्थानकवासी सप्रदाय का एक अच्छा संग्रह उनकी देखरेख मे है। पर उसे भी मैं देख नही पाया। राजवैद्य चाणोद के गुरसां उदैचन्दजी के यहा भी पहले सग्रह था पर अब शायद नही रहा। वैसे और भी कई जैन मन्दिरो व स्थानको आदि मे संग्रह होगा।

जयपुर मे वहा के महाराजा की लाइब्रेरी पोथीखाना वहुत बडी है। उसमे १८,००० हस्तलिखित प्रतिया होने का सुना था। पर प्रतियो को दिखाने की कोई व्यवस्था नही हे न पूरी सूची ही देखने को मिली। वहा के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा मे जयपुर के श्रीपूज्य धरणेन्द्रसूरिजी ने अपना संग्रह दे दिया है जिसमे २ हजार से अधिक प्रतिया है।

जयपुर के स्वतत्र जैन ज्ञानभण्डारो मे दिगम्बर जैन मन्दिरो के शास्त्र भण्डार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिनकी सूची श्री महावीरजी तीर्थ कमेटी के शोध-सस्थान द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। आमेर का भट्टारकीय भण्डार भी उक्त शोधसस्थान मे ही रखा हुआ है।

श्वेताम्वर शास्त्र भण्डारो मे सर्वाधिक उल्लेखनीय लाल भवन (चौड़ा रास्ता) का आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार है। इसमे स्थानकवासी आचार्य श्री हस्तीमलजी म० की प्रेरणा व प्रयत्न से

इधर कुछ वर्षों मे ही बहुत बडा व अच्छा सग्रह हो गया है। इसमे ३० हजार हस्तलिखित प्रतिया है। यहां के ज्ञानभण्डार की सूची का एक भाग तो प्रकाशित भी हो चुका है। इसका सम्पादन डॉ० नरेन्द्र भानावत ने किया है।

जयपुर के पुराने सग्रहो मे खरतरगच्छ का पचायती भण्डार कुदीगर भैरु के खरतरगच्छ उपाश्रय मे है। इसमे करीब ३,००० हस्तलिखित प्रतियां थी। अब कितनी रही यह पुरानी सूची से मिलान करने पर ही निश्चय हो सकेगा। सग्रह बहुत अच्छा है। हरिसागरसूरिजी आदि ने इसकी सूची भी अच्छे रूप में बनाई थी। इसी उपासरे मे और सामने के शिवजीराम भवन मे स्वर्गीय मुनि श्री कान्ति सागरजी की हस्तलिखित प्रतियों का सग्रह है। खरतरगच्छ के श्रीमालों के उपाश्रय में भी सग्रह है पर मैं उसे देख नही पाया। इसी तरह तपागच्छ उपाश्रय मे भी कुछ सग्रह हैं।

दिगम्बर संप्रदाय का सबसे बडा और महत्त्वपूर्ण नागौर का भट्टारकीय शास्त्र भण्डार है। कुछ वर्ष पहले तो यह बंद पडा था। डॉ० एल० पी० टैसीटोरी ने इसको देखने का काफी प्रयत्न किया था। पर तत्कालीन भट्टारकजी ने शास्त्र भण्डार खोला ही नही और आगे दीवार और खड़ी कर दी। कुछ वर्ष पहिले जैन ज्ञानभण्डारो के महान् उद्धारक पूज्य मुनि पुण्यविजयजी बीकानेर से नागौर पधारे तब मैं भी वहां गया था उस समय मैने भट्टारकजी से अनुरोध किया कि वे अपना शास्त्र भण्डार पूज्य मुनिश्री को दिखादें। मेरे लेखो व साहित्य प्रेम से वे प्रभावित थे। फलत: उन्होने शास्त्र भण्डार दिखाने की स्वीकृति दे दी। मैं मुनिश्री पुण्य विजयजी को लेकर वहा पहुँचा। वर्षों से बन्द उस शास्त्र भण्डार को खोलने पर हमे बड़ा हर्ष हुआ कि हस्तलिखित प्रतियो के बडे-बडे गठ्ठर इस तरह कसकर के बाधकर रखे हुए हैं कि उनमे १ भी प्रति खराब नही हुई। इस सुरक्षित ज्ञान-भण्डार मे प्राचीन व महत्त्वपूर्ण करीब १२,००० हस्तलिखित प्रतिया व १ हजार गुटके हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय का मेरी जानकारी में एक शास्त्र भण्डार (इतना बडा) और कोई नही है। भण्डार खोलने के बाद दिगम्बर जैन मन्दिर मे सलग्न सरस्वती मन्दिर बना करके उसमे यह रखा गया और सूची भी बनवाई गई। इस सूची के प्रकाशित होने पर अपभ्रंश आदि ग्रंथो की बहुत हा महत्त्वपूर्ण जान-कारी प्रकाश मे आयेगी। यहा की हस्तलिखित प्रतियो की लेखन प्रशस्तिया भी ऐतिहासिक दृष्टि से बडे महत्त्व की है।

भट्टारको के पास परम्परागत बहुत ही महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार रहा करते थे। जिनमे से आमेर के भट्टारकीय भण्डार का उल्लेख ऊपर किया गया है। इसी तरह का अन्य भट्टारकीय भण्डार अजमेर के दिगम्बर जैन मन्दिर मे भी सुरक्षित है। उसमें भी कई दुर्लभ और महत्त्व के ग्रथ हैं। अजमेर मे श्वेताम्बर जैन मन्दिर और जैन स्थानक आदि मे भी हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है। अभी दादाबाडी मे खरतरगच्छ की लखनऊ गद्दी के श्रीपूज्यजी का जिनदतसूरि सेवा सघ को दिया हुआ ज्ञानभण्डार भी रखा हुआ है जिसकी सूची मैंने और मेरे भतीजे भवरलाल ने ३ दिनरात लगाकर बना डाली है। करीब १२०० प्रतिया हैं। स्थानकवासी मुनि श्री हगामीलालजी के संग्रह की सूची अभी बनी नही है।

बीकानेर राज्य के अन्य कई स्थानो पर भी उल्लेखनीय श्वेताम्बर जैन ज्ञानभण्डार हैं। जिनमें से सरदार शहर के तेरहपथी सभा और श्रीचन्द गणेशदास गधैया की हवेली में बहुत अच्छा सग्रह हैं। उपकेश (कवला)गच्छ के श्रीपूज्यजी और यति प्रेमसुन्दरजी आदि के संग्रह इन दोनो ज्ञान-

भण्डारो मे पहुच गये। ये संग्रह भी महत्त्वपूर्ण हैं। तेरहपथी सभा की सूची तो पहले बनी हुई थी। गधइयो के यहा की सूची भी अब प्रायः बन गई है। सरदार शहर के अन्य १-२ व्यक्तियो के पास भी हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है पर उनकी सूची शायद बनी हुई नही हैं।

चूरू में सुराणा लाइब्रेरी और खरतरगच्छीय यतिजी का ज्ञानभण्डार बहुत अच्छा है। सुराणा लाइब्रेरी की तो बहुत वर्ष पहले सुभकरणजी सुराणा ने कलकत्ते में सूची बनाई भी थी। पर वह प्रकाशित नही हो पाई। खरतरगच्छीय यतिजी के मन्दिर के निकटवर्ती उपाश्रय के संग्रह की सूची तो बनी हुई है। पर प्रतियो को देखने व उपयोग करने की सुविधा ट्रस्टियो की ओर से नही दी जाती। ट्रस्टियो से अनुरोध है कि वे उपयोग करने की सुविधा शीघ्र प्रदान करें। सुजानगढ़ में भी ३ उल्लेखनीय सग्रह है। जिनमे से पन्नेचन्दजी सिंघी के मन्दिर का ज्ञानभण्डार और दानचन्दजी के ग्रंथालय का संग्रह तो सुव्यवस्थित है पर वहा के प्रसिद्ध वैद्य लौंकागच्छीय यति रामलालजी के पास लौंकागच्छ व श्रीपूज्यजी का ज्ञानभण्डार अच्छा है पर हम उसे देख नही पाये। खरतरगच्छ के यतिजी के उपासरे मे भी शायद कुछ संग्रह हो। रतनगढ में यतिजी का अच्छा संग्रह था। वह अब वैदो की लाइब्रेरी में होगा। राजलदेसर मे भी उपकेशगच्छ के यतिजी के पास कुछ संग्रह मैंने देखा था पर अब किसके पास रहा यह मालूम नही। बीदासर के खरतरगच्छीय यतिजी के यहा भी कुछ हस्तलिखित बंडल थे। लाडनूं में तेरहपंथी सम्प्रदाय का परम्परागत हस्तलिखित प्रतियो का संग्रह है।

जोधपुर राज्य मे कई स्थानो में श्वेताम्बर ज्ञानभण्डार अच्छे है। पाली में खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के श्रीपूज्यजी का अच्छा सग्रह था। वहा के जैन स्थानक, खरतरगच्छ व तपागच्छ मन्दिर उपासरे में तीन भण्डार हैं और बुबकियाजी के पास सग्रह था। बालोतरा मे खरतरगच्छ की भावहर्षीय शाखा का अच्छा ज्ञानभण्डार था। पर अब बिक चुका है। यहा के खरतरगच्छीय अन्य यतिजी के पास अब भी संग्रह है। बाडमेर के खरतरगच्छीय मन्दिर या उपाश्रय में तथा यति नेमचन्दजी के यहा संग्रह है। घाणेराव मे हिमाचलसूरिजी का अच्छा ज्ञानभण्डार है पर सूची बनी हुई नही हैं। लोहावट में खरतरगच्छ के आचार्य हरिसागरसूरिजी का अच्छा ज्ञानभण्डार है, उसकी सूची भी बनी हुई है। इसमे कई प्रतिया नई लिखाई हुई है। बहुत सी खरीद करके सग्रह की हुई है। ओसियां के वर्द्धमान-जैन-विद्यालय में स्थित रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार की हस्तलिखित प्रतियो की सूची छपी हुई है। फलोदी में संघ और साध्वीजी के छोटे तीन ज्ञानभण्डार हैं। मेड़ता में पंचायती ज्ञानभण्डार पहले बहुत अच्छा था। अब भी कुछ बचा हुआ है, पर सूची बनी हुई नही है। स्थानक में भी थोड़ी सी हस्तलिखित प्रतिया होगी।

सिरोही मे तपागच्छ के उपासरे आदि मे कुछ प्रतिया है। सिरोही राज्य के तपागच्छ के श्रीपूज्यजी का ज्ञानभण्डार अच्छा होना चाहिये। पर मैंने देखा नही है।

कोटा मे खरतरगच्छ उपाश्रय, महो० विनयसागरजी, सेठजी, विजयगच्छ के श्रीपूज्यजी, के ज्ञानभण्डार हैं जिसमे खरतरगच्छ का ज्ञानभण्डार और विनयसागरजी का अच्छा है।

श्वेताम्बर ज्ञानभण्डारो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध जैसलमेर का जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार है, जिसका कुछ वर्ष पहिले मुनि जिनविजयजी ने बडे अच्छे रूप मे उद्धार करके नई सूची भी प्रकाशित करवादी

है। ताडपत्रीय और कागज की प्राचीनतम और दुर्लभ ग्रंथो की प्रतियां यहीं हैं। थाहरुसा, तपागच्छ, खरतरगच्छ आचार्य शाखा के उपाश्रय और लोकागच्छ के उपाश्रय मे भी अच्छा सग्रह है।

फतेहपुर के खरतरगच्छीय यतिजी और झुंझुनूं के खरतरगच्छ के उपाश्रय मे कई हस्तलिखित प्रतियां हैं। किशनगढ के श्वेताम्बर जैन मन्दिर में एवं स्थानक मे भी कुछ हस्तलिखित बंडल रखे हुए हैं।

आहोर मे राजेन्द्रसूरिजी का ज्ञानभण्डार बहुत अच्छा है। सोजत आदि अन्य कई स्थानों मे भी होगे। पीपाड़ का जयमल ज्ञानभण्डार, यति चतुरविजयजी का संग्रह भी उल्लेखनीय हैं, और भी कई ज्ञानभण्डार ऐसे हैं जिनकी पूरी जानकारी नही मिल सकी है।

राजस्थान के सबसे अधिक ज्ञानभण्डार जोधपुर और बीकानेर राज्य मे है। दिगम्बर भण्डारों के सम्बन्ध मे तो इधर मे काफी जानकारी प्रकाश में आ चुकी है। जैन साहित्य शोध-संस्थान, जयपुर से मुझे राजस्थान के दिगम्बर ग्रंथ भण्डारों की जो सूची प्राप्त हुई है। उसके अनुसार ६८ ज्ञानभण्डारो की सूचिया अब तक बन चुकी हैं, जिनमे सबसे अधिक शास्त्र भण्डार, जयपुर मे ही हैं। करीब २०,००० हस्तलिखित प्रतियां जयपुर के दिगम्बर शास्त्र-भण्डारो मे हैं। उनके अतिरिक्त अजमेर, अलवर, दूनी, आवा, बूंदी, नैणवा, डबलाना, इन्द्रगढ, फतेहपुर, भरतपुर, डींग, कामा, टोडारायसिंह, कोटा, बयाना, बैर, उदयपुर, वसवा, भादवा, डूंगरपुर, मालपुरा, करौली, दौसा, नरायणा, सांभर, माधवपुर, खण्डार, महावीरजी, उणियारा, अलीगढ, (टोंक) आदि स्थानों मे छोटे-वड़े अनेको शास्त्र-भण्डार हैं। लेख विस्तारभय से केवल स्थानो का उल्लेख मात्र करके ही सतोष करना पडता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तीन उपसम्प्रदाय हैं। मूर्ति पूजक, स्थानकवासी और तेरापथी, इनमे से तेरापंथी सम्प्रदाय के ज्ञानभण्डार तो बहुत ही कम है। लाडनूं, सुजानगढ़, सरदारशहर, चुरू, रतनगढ़, मे हस्तलिखित प्रतियो का अच्छा सग्रह है। इनमे से लाडनूं का तो तेरापथ के आचार्य श्री तुलसीजी की देखरेख मे है। बाकी शास्त्र सग्रह तेरापंथी सभा एव श्रावको के सग्रह मे हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय का राजस्थान मे अच्छा प्रभाव रहा है। गत २००-२५० वर्षों मे इस सम्प्रदाय के मुनियों एवं आर्यिकाओ ने हजारो प्रतियां स्वय लिखी व इधर-उधर से यतियो आदि के जो भी ग्रंथ-संग्रह प्राप्त हुए, उनको अपनी देखरेख में सुरक्षित रखा। इनमे से कई शास्त्र-भण्डारो की सूचियां बन गई हैं। पर बहुत से अभी बिना सूची के पडे हैं। मरुधर केशरी मुनि मिश्रीमलजी से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि स्थानकवासी मुनि जयमलजी व रघुनाथजी के समुदाय के बहुत से महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ-सग्रह हैं। मरुधर केशरीजी के देखरेख मे ही उन्होने जोधपुर, सोजत आदि मे जो ज्ञानभण्डार बतलाये, उनमे १० से २० हजार हस्तलिखित प्रतिया होगी पर अभी तक प्रयत्न करने पर भी मैं उनकी देखरेख के एक भी भण्डार को देख नही पाया। आवश्यकता है -- उन सब ज्ञानभण्डारो की सूचियां बनाकर प्रकाशित करवाई जायें। आचार्य श्री हस्तीमलजी ने इस दिशा मे अच्छा काम किया है। उनसे पूछने पर डॉ० नरेन्द्र भानावत ने जो भण्डारो के नाम भेजे हैं वे इस प्रकार हैं—रघुनाथ ज्ञानभण्डार, सोजत सिटी, जयमल ज्ञानभण्डार, पीपाड सिटी, जयमल ज्ञानभण्डार

जोधपुर, जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर, मंगलचन्दजी ज्ञानभण्डार, जोधपुर, ऋषि-परम्परा सम्बन्धित ज्ञानभण्डार, प्रतापगढ, जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी ज्ञानभण्डार, अलवर, जैन दिवाकरजी से सम्बन्धित ज्ञानभण्डार, ब्यावर, नानकरामजी की सम्प्रदाय से सम्बन्धित ज्ञानभण्डार लाखनकोटडी, अजमेर, स्थानकवासी ज्ञानभण्डार भिनाय। इनके अतिरिक्त फलोदी, बालोतरा, बाडमेर, पिंडवाडा, सादडी, किशनगढ, तोहावट आदि मे भी ज्ञानभण्डार है।

इनके अतिरिक्त हमने कुछ ज्ञानभण्डार कई वर्ष पहले देखे थे, जैसे भीनासर के बहादुरमल जी बाठिया व चम्पालालजी वैद का सग्रह, देशनोक मे डोसीजी के पास, छापर मे पूनमचन्दजी व मोहनलालजी दुधेडिया के पास, अलाय व किशनगढ के जैन मन्दिर मे, मेडता मे पंचायती भण्डार, मारवाड जकशन मे यतिजी के पास, गढ सिवाने मे खरतरगच्छ ज्ञानभण्डार, झुंझुनू के जैन उपासरे मे, उदयपुर मे हाथीपोल की जैन धर्मशाला, शीतलनाथ मन्दिर आदि मे, चित्तौड मे राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के शाखा कार्यालय में। जैतारण में पहले अच्छा ज्ञानभण्डार था। अब इसकी क्या स्थिति है, पता नही। किशनगढ के जैन मन्दिर में कुछ बडल पडे हैं। चोहटण के महात्मा के पास कुछ प्रतिया हैं। जसोल आदि में कई यतियो के पास अच्छा संग्रह सुना है।

इस तरह राजस्थान के जैन ग्रंथ भण्डारो में अब भी लाखो हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित हैं। राजस्थान के जैन समाज, प्रातीय सरकार एवं विश्वविद्यालय आदि जैन-जैनेतर सभी हस्तलिखित ज्ञानभण्डारो के सर्वे का काम बडे पैमाने पर कई वर्षों तक करें, तो सैकडो अज्ञात कवियो, हजारों अप्रकाशित ग्रंथो व अज्ञात रचनाओ की जानकारी प्रकाश में आयेंगी एवं भारत भर के विश्व-विद्यालयो के शोधकार्य के लिये एक नया द्वार खुल जायेगा।

३६ | ग्रन्थों की सुरक्षा में राजस्थान के जैनों का योगदान
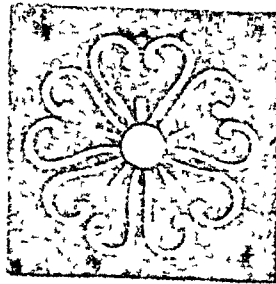
डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

सारे देश मे हस्तलिखित ग्रन्थो का अपूर्व सग्रह मिलता है। उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक सभी प्रान्तो मे हस्तलिखित ग्रन्थो के भण्डार स्थापित है। इनमे सरकारी क्षेत्रों मे पूना का भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, तजोर की सरस्वती महल लायब्रेरी, मद्रास विश्वविद्यालय की ओरियन्टल मेन्यूस्क्रिप्टस लायब्रेरी और कलकत्ता की बगाल ऐशियाटिक सोसाइटी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक क्षेत्र मे अहमदाबाद का एल० डी० इन्स्टीट्यूट, जैन सिद्धान्त भवन आरा, पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई, जैन शास्त्र भण्डार कारजा, लीबडी, सूरत, आगरा, देहली आदि के ग्रन्थ भण्डारों के नाम लिये जा सकते है। इस प्रकार सारे देश मे इन शास्त्रो भण्डारो की स्थापना की हुई है। जो साहित्य सरक्षण एव सकलन का एक अनोखा उदाहरण है।

लेकिन हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह की दृष्टि से राजस्थान का स्थान सर्वोपरि है। मुस्लिम शासन काल मे यहा के राजा-महाराजाओ ने अपने-अपने निजी सग्रहालयों मे हजारों ग्रन्थो का संग्रह किया और उन्हे मुसलमानो के आक्रमण से अथवा दीमक एवं सीलन से नष्ट होने से बचाया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान सरकार ने जोधपुर में जिस प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान की स्थापना की थी उसमे एक लाख से भी अधिक ग्रन्थो का संग्रह हो चुका है जो एक अत्यधिक सराहनीय कार्य है। इसी तरह जयपुर, बीकानेर, अलवर जैसे कुछ भूतपूर्व शासको के निजी संग्रह मे भी हस्तलिखित ग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण संग्रह है जिनमे संस्कृत ग्रन्थो की सर्वाधिक संख्या है। लेकिन इन सबके अतिरिक्त राजस्थान मे जैन ग्रन्थ भण्डारो की संख्या सर्वाधिक है और उनमे संग्रहीत ग्रन्थो की संख्या तीन लाख से कम नही है।

ग्रथो की सुरक्षा एवं संग्रह की दृष्टि से राजस्थान के जैनाचार्यों साधुओ, यतियो एवं श्रावको का प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। प्राचीन ग्रन्थो की सुरक्षा एवं नये ग्रन्थो के संग्रह मे जितना ध्यान जैन समाज ने दिया उतना अन्य समाज नही दे सका। ग्रन्थो की सुरक्षा मे उन्होने अपना पूर्ण जीवन लगा दिया और किसी भी विपत्ति अथवा संकट के समय ग्रन्थो की सुरक्षा को प्रमुख स्थान दिया। जैसलमेर, जयपुर, नागौर, बीकानेर, उदयपुर एवं अजमेर मे जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भण्डार हैं वे सारे देश मे अद्वितीय हैं तथा इनमे प्राचीनतम पाण्डुलिपियो का संग्रह है। इन शास्त्र भण्डारो मे

ताडपत्र एवं कागज पर लिखे हुए प्राचीनतम पाण्डुलिपियो का संग्रह मिलता है। संस्कृत भाषा के काव्य, चरित, नाटक, पुराण, कथा एवं अन्य विषयों के ग्रन्थ ही इन भण्डारों में संग्रहीत नही है किन्तु प्राकृत तथा अपभ्रंश के अधिकांश ग्रन्थ एवं हिन्दी राजस्थानी का विशाल साहित्य इन्ही भण्डारों मे उपलब्ध होता है। यही नहीं कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो इन्ही भण्डारो में उपलब्ध होते हैं, अन्यत्र नही।

ग्रन्थ भण्डारों मे बडे-बडे पंडित लिपिकर्ता होते थे जो प्रायः ग्रन्थो की प्रतिलिपिया किया करते थे। जैन भट्टारकों के मुख्यालयों पर ग्रन्थ लेखन का कार्य अधिक होता था। इस दृष्टि से आमेर, नागौर, अजमेर, सागवाड़ा, जयपुर, कामा आदि के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थ लिखने मे काफी परिश्रम करना पडता था। पीठ झुके हुए, कमर एवं गर्दन नीचे किये हुए, आखें झुकाये हुए कष्ट पूर्वक ग्रंथों को लिखना पड़ता था। इसलिये कभी-कभी प्रतिलिपिकार निम्न श्लोक लिख दिया करते थे ताकि पाठक, ग्रन्थ का स्वाध्याय करते समय अत्यधिक सावधानी रखें।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार प्राचीनतम पाण्डुलिपियो के लिये प्रमुख केन्द्र हैं। जैसलमेर के जैन शास्त्र भण्डार मे सभी ग्रन्थ ताड़पत्र पर है जिसमे सवत् १११७ में लिखा हुआ 'ओघ निर्युक्ति वृत्ति' सवसे, प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसी भण्डार मे उद्योतन सूरि की कृति 'कुवलयमाला' संवत् ११३९ की कृति है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे यद्यपि ताड़पत्र एवं कागज पर ही लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं लेकिन कपडे एवं ताम्रपत्र पर भी लिखे हुए ग्रन्थ मिलने हैं। जयपुर के एक शास्त्र भण्डार मे कपड़े पर लिखे हुए प्रतिष्ठा-पाठ की प्रति उपलब्ध हुई है जो १७वी शताब्दी की लिखी हुई है और पूर्णतः सुरक्षित है। इन भण्डारो मे कपडो पर लिखे हुए चित्र भी उपलब्ध होते हैं जिनमे चार्ट के द्वारा विषय का प्रतिपादन किया गया है। प्रायः प्रत्येक मन्दिर मे ताम्रपत्र एवं सप्तधातु पत्र भी उपलब्ध होते हैं।

इन भण्डारो मे ग्रन्थ लेखक के गुणो का भी वर्णन मिलता है जिसके अनुसार इसमे निम्न गुण होने चाहिये—

सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वभाषा विशारदः।
लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै ॥
मेधावी वाक्पटु धीरो लघुहस्तो जितेन्द्रियः।
परशास्त्र परिज्ञाता, एवं लेखक उच्यते ॥

ग्रन्थ लिखने मे किस-किस स्याही का प्रयोग किया जाना चाहिये, इसकी भी पूरी सावधानी रखी जाती थी ताकि अक्षर खराब नही हो, स्याही नही फूटे तथा कागज एक दूसरे के नही चिपके। ताडपत्रो के लिखने मे जो स्याही काम मे ली जाने वाली है, उसका वर्णन देखिये—

सहवर भृंगः त्रिफला, कासीस लोहमेव नीली।
समकज्वाल बोलयुता, भवति मसि ताडपत्रानां ॥

जैसलमेर के ग्रन्थ भण्डार मे कई महत्त्वपूर्ण पाडुलिपिया सुरक्षित हैं। महाकवि दण्डी के 'काव्यादर्श' की पाण्डुलिपि सम्वत् ११६१ की उपलब्ध है जो इस ग्रन्थ की अब तक उपलब्ध ग्रन्थो मे

सबसे प्राचीन है। अन्य प्राचीनतम पाँडुलिपियो मे अभय देवाचार्य की विपाक सूत्र वृत्ति (सन् ११२८), जयकीर्ति सूरि का छन्दानुशासन (सन् ११३५), अभय देवाचार्य की भगवती सूत्र वृत्ति (सन् ११३८), विमल सूरि द्वारा विरचित 'पउम चरिय' (सम्वत् ११९८) मुख्य हैं। 'पउम चरिय, की यह पाण्डुलिपि महाराजाधिराज श्री जयसिंह देव के शासनकाल मे लिखी गयी थी। वर्द्धमान सूरि की व्याख्या सहित 'उपदेश पद प्रकरण' की पाण्डुलिपि जिसका लेखन अजमेर मे सम्वत् १२१२ में हुआ था, इसी भण्डार मे संग्रहीत है। चन्द्रप्रभ स्वामी चरित (यशोदेव सूरि) की भी प्राचीनतम पाण्डुलिपि इसी भण्डार मे सुरक्षित है, जिसका लेखन काल सम्वत् १२१७ है तथा जो ब्राह्मण गच्छ के पण्डित अभय कुमार द्वारा लिपिबद्ध की गयी थी। इसी तरह 'भगवती सूत्र (सम्वत् १२३१), व्यवहार सूत्र (सम्वत् १२३६), महावीर चरित (सम्वत् १२४२) तथा 'भव भावना प्रकरण' की सम्वत् १२९० की भी प्राचीनतम प्रतियां इसी भण्डार मे संग्रहीत हैं। ताडपत्र के समान कागज पर उपलब्ध होने वाले ग्रन्थों मे भी इन भण्डारो मे प्राचीनतम पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती है जिनका सरक्षण अत्यधिक सावधानी पूर्वक किया गया है। नये मन्दिरो मे स्थानान्तरित होने पर भी जिनको सम्हाल कर रखा गया तथा दीमक, सीलन आदि से बचाया गया। इस दृष्टि से मध्य युग मे होने वाले भट्टारको का सर्वाधिक योगदान रहा।

जयपुर के दि० जैन तेरहपथी बड़ा मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 'समयसार' की सम्वत् १३२९ की पाण्डुलिपि है जो देहली मे गयासुद्दीन बलबन के शासनकाल मे लिखी गयी थी। योगिनीपुर जो देहली का पुराना नाम था उसमे इसकी प्रतिलिपि की गयी थी। सम्वत् १३९१ मे लिखित महाकवि पुष्पदन्त के 'महापुराण' के द्वितीय भाग 'उत्तर पुराण' की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भंडार जयपुर मे सग्रहीत है। यह पाण्डुलिपि भी योगिनीपुर मे मोहम्मद साह तुगलक के शासनकाल मे लिखी गयी थी।

यहा एक बात और विशेष ध्यान देने की है और वह यह है कि जैनाचार्यों एव श्रावको ने अपने शास्त्र भण्डारो मे ग्रन्थो की सुरक्षा मे जरा भी भेद भाव नही रखा। जिस प्रकार उन्होंने जैन ग्रन्थो की सुरक्षा एव उनका सकलन किया उसी प्रकार जैनेतर ग्रन्थों की सुरक्षा एव संकलन पर भी विशेष जोर दिया। घोर परिश्रम करके जैनेतर ग्रन्थो की प्रतिलिपियां या तो स्वय ने की अथवा अन्य विद्वानो से उनकी प्रतिलिपि करवायी। आज बहुत से तो ऐसे ग्रन्थ है जिनकी पाण्डुलिपियाँ केवल जैन शास्त्र भण्डारो मे ही मिलती हैं। इस दृष्टि से आमेर, जयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा, बून्दी एव अजमेर के जैन शास्त्र भण्डारो का अत्यधिक महत्त्व है। जैन विद्वानों ने जैनेतर ग्रन्थो की सुरक्षा ही नही की किन्तु उन पर वृत्तिया, टीका एव भाष्य भी लिखे। उन्होने उनकी हिन्दी मे टीकायें लिखी और उनके प्रचार-प्रसार मे अत्यधिक योग दिया। राजस्थान के इन जैन-शास्त्र भण्डारो मे काव्य, कथा, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित विषयो पर सैकडो रचनायें उपलब्ध होती है। यही नही, स्मृति, उपनिपद एव सहिताओ का भी भण्डारो मे सग्रह मिलता है। जयपुर के पाटौदी के मन्दिर मे ५०० से अधिक ऐसे ही ग्रन्थो का संग्रह किया हुआ उपलब्ध है।

मम्मट के 'काव्य प्रकाश' की सम्वत् १२१५ की एक प्राचीनतम पाण्डुलिपि जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे ही सग्रहीत है। यह प्रति शाकभरी के कुमारपाल के शासनकाल मे अणहिलपट्टन

मे लिखी गयी थी। सोमेश्वर कवि की 'काव्यादर्श' की सम्वत् ११८३ की एक ताडपत्रीय पाण्डुलिपि भी यहीं के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। कवि रूद्रट के 'काव्यालंकार' की इसी भण्डार मे सम्वत् १२०६ की ताडपत्रीय पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। इस पर नभि साधु की संस्कृत टीका है। इसी विद्वान् द्वारा लिखित टीका की एक प्रति जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इसी तरह कुन्तक के 'वक्रोक्ति जीवित', वामन के 'काव्यालंकार', राजशेखर के 'काव्य मीमासा' उद्भट कवि के 'अलंकार संग्रह', की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया भी जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर, अजमेर एव नागौर के शास्त्र भण्डारो में सग्रहीत हैं। कालिदास, माघ, भारवि, हर्ष, हलायुध एव भट्टी जैसे संस्कृत के शीर्षस्थ कवियो के काव्यो की प्राचीनतम पान्डुलिपिया भी राजस्थान के जैन शास्त्र भन्डारो मे संग्रहीत हैं। यह नहीं, इन भण्डारो मे कुछ काव्यो की एक से भी पाण्डुलिपिया हैं। किसी-किसी भण्डार मे तो यह संख्या २० तक भी पहुँच गयी है। जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे कालिदास की 'रघुवंश' की १४वी शताब्दी की प्रति है। इन काव्यो पर गुणरतनसूरि, चरित्रवर्द्धन, मल्लिनाथ, समयसुन्दर, धर्ममेरू, शान्तिविजय जैसे कवियो की टीकाओ का उत्तम संग्रह हैं। 'किरातार्जुनीय' काव्य पर प्रकाशवर्ष की टीका की एक मात्र प्रति जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है। प्रकाशवर्ष ने लिखा है कि वह कश्मीर के हर्ष का सुपुत्र है। उदयनाचार्य की 'किरणावली' की एक प्रति टीका सहित आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे उपलब्ध है। 'साख्य सप्तति' की पाण्डुलिपि भी इसी भण्डार मे संग्रहीत है, जो सम्वत् १४२७ की है। इसी ग्रन्थ की एक प्राचीन पाण्डुलिपि, जिसमे भाष्य भी है, जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध है और वह सम्वत् १२०० की ताड़पत्रीय प्रति है। इसी भण्डार में 'साख्य तत्व कौमुदी' (वाचस्पति मिश्र) तथा ईश्वरकृष्ण की 'साख्य सप्तति' की अन्य पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध होती है। इसी तरह 'पातंजल योगदर्शन भाष्य' की पाण्डुलिपि भी जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित हैं। 'प्रशस्तपाद भाष्य' की एक १२वी शताब्दि की पाण्डुलिपि भी यहीं के भण्डार में मिलती है।

अलकार शास्त्र के ग्रन्थो के अतिरिक्त कालिदास, मुरारी, विशाखदत्त एवं भट्टनारायण के सस्कृत नाटको की पाण्डुलिपिया भी राजस्थान के इन्हीं भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' नाटक, मुरारी कवि का 'अनर्घराघव', कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक, महाकवि सुबधु की 'वासवदत्ता' आख्यायिका की ताडपत्रीय प्राचीन पाण्डुलिपिया जैसलमेर के भण्डार मे एव कागज पर अन्य शास्त्र भण्डारो मे संगृहीत हैं।

अपभ्रंश का अधिकाश साहित्य जयपुर, नागौर, अजमेर एव उदयपुर के शास्त्र भण्डारो मे मिलता है। महाकवि स्वयंभू का 'पउमचरिउ' एवं 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्राचीनतम पाण्डुलिपियाँ जयपुर एव अजमेर के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत हैं। 'पउमचरिउ' की सस्कृत टीकायें भी इन्हीं भण्डारो में उपलब्ध हुई हैं। महाकवि पुष्पदन्त का 'महापुराण' 'जसहरचरिउ', 'णाय कुमार चरिउ' की प्रतिया भी इन्हीं भण्डारो मे मिलती है। अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियो मे 'उत्तर पुराण' की सम्वत् १३६१ की पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है और वह जयपुर के ही एक भण्डार मे सग्रहीत है। महाकवि नयनन्दि की 'सुदसण चरिउ' की जितनी सख्या मे जयपुर के शास्त्र भण्डारो मे पाण्डुलिपिया संग्रहीत हैं, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। नयनन्दि ११वीं शताब्दि के अपभ्रंश के कवि थे। इनका एक अन्य ग्रन्थ 'सयल विहिविहाण' काव्य की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के आमेर शास्त्र

भण्डार मे संग्रहीत है। इसमे कवि ने अपने से पूर्व होने वाले कितने ही कवियो के नाम दिये है। इसी तरह शृंगार एव वीर रस के महाकवि वीर का 'जम्बूसामि चरिउ' भी राजस्थान में अत्यधिक लोकप्रिय रहा था और उसकी कितनी ही प्रतिया जयपुर एवं आमेर के शास्त्र भण्डारों मे उपलब्ध होती है। अपभ्रंश मे सबसे अधिक चरित काव्य लिखने वाले महाकवि रइधू के अधिकाश ग्रन्थ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध हुये है। रइधू ने २० से भी अधिक चरित काव्य लिखे थे और उनमे आधे से अधिक तो विशालकाय कृतिया है। इसी तरह अपभ्रश के अन्य कवियों मे महाकवि यशःकीर्ति, पडित लाखू, हरिषेण, श्रुतकीर्ति, पद्मकीर्ति, महाकवि श्रीधर, महाकवि सिंह, धनपाल, श्रीचन्द, जयमित्रहल, नरसेन, अमर कीर्ति, गणि देवसेन, माणिक्यराज एव भगवतीदास जैसे पचासों कवियो की छोटी-वडी सैकडो रचनाये इन्ही भण्डारो मे सग्रहीत है। १८वी शताब्दी मे होने वाले अपभ्रंश के अन्तिम कवि भगवतीदास की सम्वत् १७०० की कृति 'मृगाकलेखाचरित' की पाण्डुलिपि भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर मे सग्रहीत है। भगवतीदास हिन्दी के अच्छे विद्वान थे, जिनकी २० से भी अधिक रचनायें उपलब्ध होती है।

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के समान ही जैन ग्रन्थ भण्डारों में हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के ग्रन्यो की पूर्ण सुरक्षा की गयी। यही कारण है कि राजस्थान के इन ग्रन्थ भण्डारो मे हिन्दी एवं राजस्थानी भापा की दुर्लभ कृतिया उपलब्ध हुई है और भविष्य मे और भी होने की आशा है। हिन्दी के वहुचर्चित ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' की प्रतियाँ कोटा, बीकानेर, एवं चूरू के जैन भण्डारो मे उपलब्ध हुई है। इसी तरह 'वीसलदेव रासो' की कितनी ही पाण्डुलिपिया अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर एवं खरतरगच्छ जैन शास्त्र भण्डार कोटा मे उपलब्ध हो चुकी है। प्रसिद्ध राजस्थानी कृति 'क्रिसन रुकमणि री बेलि' पर जो टीकाये उपलब्ध हुई है, वे भी प्राय. सभी जैन शास्त्र भण्डारो मे संरक्षित है। इसी तरह 'बिहारी सतसई', 'रसिकप्रिया', 'जैतसीरासो', 'वैताल पच्चीसी', 'विल्हण चरित चौपई की प्रतिया राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत है। हिन्दी की अन्य रचनाओ मे राजसिंह कवि के 'जिनदत्त चरित' (सम्वत् १३५४) सधारू कवि के 'प्रद्युम्नचरित' (सम्वत् १४११) की दुर्लभ पाण्डुलिपियां भी जयपुर के जैन शास्त्र भण्डारों मे संग्रहीत है। ये दोनो ही कृतिया हिन्दी के आदिकाल की कृतिया है, जिनके आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास की कितनी ही विलुप्त कडियो का पता लगाया जा सकता है। कबीर एवं गौरखनाथ के अनुयायियों की रचनायें भी इन भण्डारों मे संग्रहीत है जिनके गहन अध्ययन एवं मनन की आवश्यकता है। 'मधुमालती कथा', 'सिंहासन बत्तीसी', 'माधवनल प्रवन्ध कथा', 'ढोलामारू रा दूहा' की प्राचीनतम पाण्डुलिपियां भी राजस्थान के इन जैन भण्डारो मे सग्रहीत है।

वास्तव मे देखा जाये तो राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो ने हिन्दी एवं राजस्थानी के जितने ग्रन्थो को सुरक्षित रखा है, उतने ग्रन्थो को अन्य कोई भी भण्डार नही रख सके है। जैन कवियो की सैकड़ो गद्य-पद्य रचनाये इनमे उपलब्ध होती है जो काव्य, चरित, कथा, रास, वेलि, फागु, धमाल, चौपई, दोहा, वारहखड़ी, विलास, गीत, सतसई, पच्चीसी, वत्तीसी, सतावीसी, शतक आदि के नाम से उपलब्ध होती है। जयपुर के लाल भवन स्थित आचार्य श्री विनयचद्र ज्ञानभण्डार में स्थानकवासी परम्परा के शताधिक कवियों की सैकड़ो पाडुलिपियां सुरक्षित हैं जो मध्य युगीन काव्य-रूपो के अध्ययन की दृष्टि से वड़ी महत्त्वपूर्ण है।

१३वी शताब्दी से लेकर १६वी शताब्दी तक निवद्ध कृतियो का इन भण्डारो में अम्वार लगा है, जिनका अभी तक प्रकाशित होना तो दूर रहा, वे पूरी प्रकाश में भी नही आ सकी हैं। अकेले ब्रह्म जिनदास ने पचास से भी अधिक रचनायें लिखी हैं, जिनके सम्वन्ध में विद्वत जगत् अभी तक अन्धकार मे ही है। अभी हाल में ही महाकवि दौलतराम की दो महत्त्वपूर्ण रचनाओ—'जीवन्धर स्वामी चरित' एवं 'विवेक विलास' का प्रकाशन हुआ है। कवि ने १८ रचनाये लिखी हैं और वे एक से एक उच्चकोटि की हैं। दौलतराम १८वी शताब्दी के कवि थे और कुछ समय उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के दरबार में रह चुके थे।[1]

पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त इन जैन भण्डारो मे कलात्मक एवं सचित्र कृतियो की सुरक्षा भी हुई है। कल्पसूत्र की कितनी ही सचित्र पाण्डुलिपिया, कला की उत्कृष्ट कृतियां स्वीकार की गयी हैं, कल्पसूत्र की एक ऐसी ही प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। कला प्रेमियो ने इसे १५वीं शताब्दी की स्वीकार की है। आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर मे एक 'आदिनाथ पुराण' की सवत् १४६१ की पाण्डुलिपि है। इसमें १६ स्वप्नो का जो चित्र है, वह कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी तरह राजस्थान के अन्य भण्डारो मे 'आदि पुराण', 'जसहर चरिउ', 'यशोधर चरित', 'भक्ताभर स्तोत्र', 'णमोकार माहात्म्य कथा' की जो सचित्र पाण्डुलिपियां हैं, वे चित्रकला की उत्कृष्ट कृतिया हैं। ऐसी कृतियो का सरक्षण एव लेखन दोनो ही भारतीय चित्रकला के लिये गौरव की बात है।

---

१ देखिये—दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।

३७ | जैन पत्र और पत्रकार

डॉ० भँवर सुराणा

जैन पत्र :

स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान मे समाचार पत्र निकालना, समाचार पत्रो को सम्वाद भेजना अथवा समाचारपत्र मंगा कर पढ़ना और पढाना वडे साहस का कार्य था। बाईस देशी राजाओ और उनके अधिकारियो का यह दृष्टिकोण था कि यदि जनता मे ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा उत्पन्न हो गई तो उनके उत्पीड़क, शोषक रूप के प्रति विद्रोह जागृत होगा, जिसका परिणाम उनके अपने स्वार्थों और अधिकारो पर आघात के रूप मे होगा। राजस्थान के जातीय-धार्मिक पत्रो ने समाज सुधार के प्रयत्न किये, तत्सम्बन्धी साहित्य सृजा और उसके माध्यम से लोगों के मन में स्वतन्त्रता की अलख जगाई। समाज सुधार के साथ ही साथ उन्होने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का, संघर्ष का स्वर मुखर किया, प्रतिवोध दिया और स्वशासन के प्रति जनता मे जागरण का शख फूंका।

इन जातीय पत्रो ने राजस्थान में लेखको, कवियों का एक ऐसा समुदाय निर्मित किया जो किसी भी प्रदेश के लेखको तथा कवियों की तुलना मे अधिक सक्षम और सशक्त अभिव्यक्ति मे सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकता है।

राजस्थान मे सबसे पुराने जीवित समाचार पत्रों मे 'जैनगजट' अजमेर का नाम आता है जो जैन दर्शन से सम्वन्धित लेखादि के अतिरिक्त जैन समाज की, विशेष रूप से दिगम्बर जैन समाज की गतिविधियो के सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित करता है। इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सन् १८९५ ई० मे प्रारम्भ हुआ था।

१९२३ मे श्री दुर्गाप्रसाद ने 'अहिंसा प्रचारक' साप्ताहिक का अजमेर से प्रकाशन प्रारम्भ किया था। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का मुखपत्र 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' भी ब्यावर व अजमेर से १९२४ मे प्रकाशित हुआ। ब्यावर मे धीरजभाई तुरखिया के सम्पादन मे जब यह पत्र निकलता था तब इसमे हिन्दी और गुजराती मे धर्म-दर्शन सम्बन्धी लेख एवं समाचार

प्रकाशित होते थे। मुनियों के चातुर्मास, तपस्या तथा प्रवचनों के प्रकाशन पर अधिक जोर दिया जाता था। साधवाचार एव व्यवहार के विभिन्न प्रश्नो पर विचार-विमर्श एवं मत-विमत भी प्रकाशित किये जाते थे। मूलतः इस पत्र का उद्देश्य श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज के विभिन्न सम्प्रदायों-आम्नायो के अनुयायियों और मुनियो, आचार्यों को सघवद्ध करने का प्रयत्न करना था जिसमे वह बहुत सफल रहा।

'खण्डेलवाल जैन हितेच्छु' खण्डेलवाल जैन समाज का १६२५ मे प्रकाशित मुख पत्र था जिसका प्रकाशन स्थल खण्डेलवाल जैन महासभा के अध्यक्ष व मन्त्री के चुनाव के साथ बदल जाता रहा है। कभी वह अजमेर से, कभी जयपुर से, कभी अलवर से तो कभी किशनगढ़ से उसका प्रकाशन होता था। समाज सुधार, रूढियो पर प्रहार इस पत्र का लक्ष्य रहा है। साथ ही साथ समाज की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के माध्यम के रूप में भी उसका प्रयोग किया जाता रहा है। कविता और कहानी भी उसमे प्रकाशित किये जाते रहे हैं।

आबूरोड से प्रकाशित 'मारवाड़ जैन सुधारक' के सम्बन्ध में विशेष विवरण प्राप्त नही है। वह १६२५ मे प्रकाशित हुआ था और उसका वार्षिक मूल्य दो रुपया था। उसी वर्ष अजमेर से 'जैन-जगत' के प्रकाशन का भी उल्लेख मिलता है। उसका भी वार्षिक मूल्य २) रुपया था।

जयपुर से रायसाहब केसरलाल अजमेरा जैन द्वारा १६३२ मे 'सुधारक' मासिक प्रकाशित किया गया। उसका भी मूल स्वर वही रहा जो पिछले पत्रो का था।

अजमेर से श्री मानमल जैन ने १६४१ मे 'वीरपुत्र' मासिक प्रकाशित किया था। इस मासिक पत्र मे जैन-धर्म से सम्बन्धित कथाओं को सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया जाने के अतिरिक्त कविताओं तथा चित्रो के माध्यम से भी जैन इतिहास को प्रस्तुत किया जाता था। इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपया था तथा वह मोटे टाइप में बहुरग में प्रकाशित होता था। दीपावली तथा महावीर जयती पर उसके विशेषाक भी प्रकाशित होते थे। आर्थिक दृष्टि से यह मासिक पत्र श्री जैन पर अत्यधिक बोझ ही बना रहा यद्यपि वे सभी सम्प्रदायों से सहयोग कर चलने के हामी थे। श्री जैन ने स्वतन्त्रता सग्राम में भी अपना दायित्व निभाया और दो बार जेल गये थे।

सन् १६४३ मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से श्री जैनरत्न विद्यालय भोपालगढ़ से 'जिनवाणी' मासिक का प्रकाशन हुआ जो बाद मे जोधपुर से प्रकाशित होने लगा। सर्वश्री चम्पालाल कर्णावट, शान्तिचन्द्र मेहता, चांदमल कर्णावट, पारसमल प्रसून आदि इसके प्रारम्भिक सम्पादकों में से थे। इसमें हिन्दी के साथ अंग्रेजी का भी एक विभाग रहता था। जैन दर्शन, इतिहास व साहित्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण पत्र था। श्री विजयमल कुम्भट का इसे बड़ा सहयोग रहा। सन् ५८ के लगभग यह जयपुर से प्रकाशित होने लगा। श्री भंवरलाल बोथरा इसके व्यवस्थापक थे। जयपुर आने पर डॉ० नरेन्द्र भानावत ने अपने सम्पादन में इसे साहित्यिक स्तर प्रदान किया। इसके प्रबन्ध सम्पादको में श्री नथमल हीरावत व श्री प्रेमराज बोगावत का विशेष सहयोग रहा।

निम्बाहेड़ा से १६५२ में 'शाश्वतधर्म' मासिक का प्रकाशन श्री सोभागसिंह गोखरू ने प्रारम्भ किया। अब यह मन्दसौर से प्रकाशित होता है। १६५४ में 'वीरपुत्र' के सम्पादक-प्रकाशक मानमल

जैन ने 'ओसवाल' का प्रकाशन किया। उसी वर्ष श्री सी० एल० कोठारी ने अजमेर से ही 'जैन कल्याण' मासिक प्रकाशित किया। १९६३ मे जयपुर से महावीर प्रसाद कोटिया ने 'जैन सगम' प्रकाशित किया। माणक चोरडिया ने अजमेर से १९६४ मे 'ओसवाल समाज' मासिक प्रस्तुत किया। फतहचन्द महात्मा ने चित्तौड़गढ से 'महात्मासदेश' मासिक प्रकाशित किया। उसे दो वर्ष पश्चात् ही 'महात्मा वन्धु' के नाम से प्रकाशित किया। १९६७ में अजमेर से 'जैन दर्शन' और साहित्य के सम्बन्ध मे मिश्रीलाल ने 'श्रेष्ठी समाज' त्रैमासिक का प्रकाशन किया। १९५२ मे जोधपुर से श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज के श्री पदमसिंह जैन ने 'तरुण जैन' साप्ताहिक का प्रकाशन किया जो अपने सम्प्रदाय का मुख्य समाचार पत्र था। उस पत्र से इन्दौर तथा अन्य स्थानो के पत्रकार भी सम्बन्धित रहे। 'तरुण जैन' मे जैन धर्म सम्बन्धी कविताएं, लेख आदि भी प्रकाशित होते थे। इस समय में लाला पदमसिंह जैन के पुत्र फतहसिंह उसको सचालित कर रहे है। इस पत्र से लम्बे समय तक मैं भी लेखक के रूप मे सम्बन्धित रहा। इन्ही दिनो बिलाडा (मारवाड़) से विजयमोहन जैन एवं अन्य मित्रों ने 'वीर लौकाशाह' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया जिसमे मुख्यतः जैन मुनियों, आचार्यों के प्रवास-वर्षावास के समाचार प्रकाशित होते थे। बीकानेर से १९५५ मे बख्शी चम्पालाल जैन ने अहिंसा-पशुबलि निषेध के पक्ष को लेकर 'अभय सन्देश' का प्रकाशन किया। १९५६ मे जालोर से 'मरुधर केसरी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो आजकल प्रकाशित नहीं होता है। १९६४ मे जोधपुर से 'जैन प्रहरी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। वह भी आजकल बन्द है।

पाक्षिक पत्रो मे जैन धर्म-तत्त्व दर्शन से सम्बन्धित 'अहिंसा' (जयपुर) पं० इन्द्रचन्द्र शास्त्री के संपादन मे १९५३ मे प्रकाशित हुआ। १९५६ मे श्री सुमेरमल कोठारी ने चूरू से 'सुमति' का प्रकाशन किया। श्री जुगराज सेठिया व अन्य लोगो ने बीकानेर से 'श्रमणोपासक' पाक्षिक १९६३ मे प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। यह अ० भा० साधुमार्गी जैनसघ का मुख पत्र है और नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। मुनियो-आचार्यों के प्रवचन, धर्म सम्बन्धी लेख, दर्शन सम्बन्धी लेख, मुनियो-आचार्यों सम्बन्धी समाचार, समाज की गतिविधियो से सम्बन्धित समाचारो का प्रकाशन इस पत्र की विशेषता है। वर्तमान मे डॉ० शान्ता भानावत इससे सम्बन्धित है। बालोतरा से १९६४ मे एक पाक्षिक पत्र 'श्री नाकोडा अधिष्ठायक भैरव' लक्षमणदास के सम्पादन मे प्रकाशित हुआ। जयपुर से प्रकाशित 'वीरवाणी' (आद्य सम्पादक श्री चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ) सम्पादक श्री भंवरलाल न्यायतीर्थ, भीलवाडा से प्रकाशित 'धर्मज्योति' (मासिक), लाडनूं-जैन 'विश्वभारती' की त्रैमासिक 'अनुसधान पत्रिका' (अब तुलसीप्रज्ञा) सं० डॉ० महावीर राज गेलडा, लाडनूं से ही प्रकाशित 'युवादृष्टि', सं. कमलेश चतुर्वेदी, विजयसिंह कोठारी जोधपुर से प्रकाशित 'शांति ज्योति', पहले जयपुर से और अब दिल्ली से प्रकाशित मासिक 'कथालोक', महावीरजी से मुमुक्षु महिला आश्रम से प्रकाशित 'महिला जागरण', महावीरजी से ही प्रकाशित 'श्रेयोमार्ग', जयपुर से प्रकाशित श्री रामरतन कोचर द्वारा सम्पादित 'वल्लभ सन्देश' (मासिक), जोधपुर से प्रकाशित 'जैन शासन' आदि अन्य उल्लेखनीय पत्र हैं। अभी हाल ही मे जोधपुर से 'विश्वेश्वर महावीर' (मासिक) प्रकाशित होने लगा है। इसके प्र० सम्पादक है श्री प्रकाश जैन बांठिया।

जैन पत्रकार :

राजस्थान में क्रान्ति का अलख जगाने वाले पं० अर्जुनलालजी सेठी को कौन भुला सकता

है ? महामना बाल गगाधर तिलक के 'केसरी' से उनका बहुत निकट का सम्पर्क रहा है। उनके शिष्यों मे से कई फासी के फन्दे को चूम गये। जोधपुर के राजा द्वारा 'दस नम्बरी' घोषित स्वतन्त्रता के यज्ञ मे आहूति देने वाले श्री आनन्दराज सुराणा, श्री जयनारायणजी व्यास के 'तरुण राजस्थान' के मूल सहयोगी थे। राजद्रोह के मुकदमो और काल कोठरियो मे रख कर उनको जो यातनाये दी गईं उनकी कल्पना मात्र से ही आज मन और मस्तिष्क सिहर उठता है। चित्तौड़गढ के श्री भीमराज घड़ोल्या मेवाड़ मे स्वतन्त्रता के लिये चलाये जा रहे आन्दोलनो के समाचार, रियासत से बाहर के समाचार-पत्रो मे प्रकाशनार्थ भेजते थे और परिणामस्वरूप उनको राज्यसेवा से निष्कासित कर दिया गया। काकाजी शोभालालजी गुप्त अजमेर मे स्वतन्त्रता से पूर्वकाल मे अनेक पत्रों से सम्बद्ध रहे। उसके पश्चात् वे वर्षों 'दैनिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली से सम्बद्ध रहे। अजमेर के श्री जीतमलजी लूणिया गाधीवाद की ओर उन्मुख हुए और गाधीजी तथा नेहरूजी से सम्बन्धित अनेक प्रकाशनों का उन्होने सम्पादन किया। अजमेर के ही श्री मोहनराज भण्डारी 'दैनिक नवज्योति' के साथ ही साथ 'मीरा' आदि अनेक पत्रो से सम्बन्धित रहे। 'आजाद', अजमेर के सम्पादक घीसूलाल पाड्या ने समाजसुधार के कार्यों मे अपने पत्र के माध्यम से अधिक रुचि ली। श्री जीवनसिंह चौधरी ने भीलवाड़ा से 'दो-अक्टूबर' साप्ताहिक निकाला और अब भी उसे चला रहे है। 'जनता साप्ताहिक' से श्री यशवतसिंह नाहर लम्बे अर्से तक सबद्ध रहे। जोधपुर मे 'ललकार' साप्ताहिक गुरुकुल प्रेस से श्री विजयमल कुंभट के संचालन मे निकलता था और उसके सम्पादक थे श्री शातिचन्द्र मेहता। आजकल यह पत्र श्री गोविन्दसिह लोढा प्रकाशित कर रहे हैं और श्री मेहता चित्तौड़गढ से 'ललकार' अलग से प्रकाशित कर रहे हैं। श्री पदमसिह जैन का 'तरुण जैन' साप्ताहिक समाज सुधार की दिशा मे प्रमुखपत्र था। आजकल उनके पुत्र फतहसिह जैन उसका सम्पादन कर रहे है। जोधपुर मे श्री श्रीपाल सिंघी 'अभयदूत-साप्ताहिक' और 'कृषिलोक' प्रकाशित कर रहे हैं। श्री माणक चोपडा 'जनगण दैनिक' निकाल रहे है और श्री शातिलाल सिंघी 'कन्ट्रोलर' के सम्पादक हैं। उदयपुर मे श्री कृष्णमोहन खाब्या 'कोलाहल' साप्ताहिक चला रहे हैं और श्री बहादुरसिह सरूपरिया 'साधना' इन्फोरमेशन सर्विस चला रहे हैं। भारतीय लोक कला मण्डल के मासिक पत्र 'रंगायन' का सम्पादन डॉ० महेन्द्र भानावत कर रहे हैं। यही से 'लोककला' अर्धवार्षिकी का भी प्रकाशन होता है जिसके सम्पादक हैं श्री देवीलाल सामर और डॉ० महेन्द्र भानावत। इनमे विशेष रूप से लोककलाओ पर अधिकृत सामग्री का प्रकाशन किया जाता है। चित्तौडगढ मे श्री रघुवीर जैन प्रांत के अनेक समाचारपत्रो तथा 'समाचार भारती' के प्रतिनिधि हैं। वही से श्री गणेशलाल कूकडा 'उजाले की ओर' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन कर रहे हैं। भीलवाड़ा मे श्री जीवनसिंह बाफना 'प्राग्वाट' साप्ताहिक के सम्पादक-संचालक हैं। देवगढ से प्रकाशित 'शारदा' से श्री शकर जैन व श्री हीरालाल कटारिया सम्बद्ध रहे।

जयपुर मे जैन पत्रकारो की परम्परा बहुत पुरानी है। रायसाहब केसरीमल अजमेरा जैन ने अग्रेजी–हिन्दी मे राजस्थान हेरल्ड प्रकाशित किया था। श्री सिद्धराज ढढ्ढा, श्री जवाहरलाल जैन और श्री पूर्णचन्द्र जैन वर्षों 'लोकवाणी' व 'युगान्तर' से सम्बद्ध रहे। श्री गुलाबचन्द काला का 'जयभूमि'—साप्ताहिक अनेक पत्रकारो का दीक्षास्थल था। श्री प्रवीणचन्द्र छाबड़ा, श्री मिलापचंद डडिया आदि ने वही पत्रकारिता के पहले पाठ पढे। श्री कमलकिशोर जैन 'राष्ट्रदूत' में कार्यरत रहे, सम्प्रति अभी राजस्थान सरकार मे जन सम्पर्क विभाग मे संयुक्त निदेशक है। श्री सोभागमल जैन

अभी भी 'राष्ट्रदूत' मे उपसम्पादक के पद पर है। श्री मोतीचद कोचर 'लोकवाणी' के सम्पादकीय विभाग मे रहे अब प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया के वरिष्ठ सवाददाता हैं। श्री ईश्वरमल बाफना 'लोक-जीवन' साप्ताहिक से सम्बन्धित रहे है। श्री मिलापचंद डडिया आजकल इकोनोमिक टाइम्स के सवाददाता है। उन्होने 'समृद्धि' साप्ताहिक भी प्रकाशित किया था और एक फीचर सर्विस सिंडिकेट इंडियाना भी प्रारम्भ की थी। श्री महावीर प्रसाद जैन 'फायनेन्सियल एक्सप्रेस' के सवाददाता हैं। श्री राजमल साघी 'समाचार-भारती' के राजस्थान के ब्यूरोप्रमुख हैं। श्री सरदार मल जैन 'ग्रामराज' साप्ताहिक के सम्पादक हैं। श्री निर्मलकुमार सुराणा 'युगचरण' साप्ताहिक के सम्पादक हैं और श्री फतहचंद जैन 'पूर्वोदय' के। श्री तेजसिंह झीरीवाल 'वीकली स्टेटमेन्ट' के सम्पादक हैं और श्री ज्ञानचंद्र चोरड़िया' 'अन्तर्मन की ओर' के सम्पादक। श्री धनपतिसिंह टुंकलिया आकाशवाणी मे उपसमाचार सम्पादक है और श्री एम. आर. सिंघवी समाचार-सम्पादक के पद पर। श्री सत्यप्रकाश जैन आकाशवाणी पर विशेष सवाददाता हैं और बख्शी भागचद आकाशवाणी में रिपोर्टरकम अनाउन्सर है। 'राजस्थान पत्रिका' दैनिक मे श्री कर्पूरचद्र कुलिश, श्री विजय भंडारी, श्री कानमल ढढ्ढा कार्यरत हैं। श्री विद्याविनोद काला जवाहरातो से सम्बन्धित एक मासिक पत्र प्रकाशित करते है। श्री भँवरमल सिंघी का नाम समाज सुधार से सम्बन्धित पत्रो के साथ जुडता आया है। श्री मनोहरलाल काला ने जयपुर मे ही 'उदय' का सम्पादन किया। महेन्द्र जैन वर्षों कथालोक का संपादन करते रहे है। 'परिवारिका' त्रैमासिक की सम्पादिका सुश्री कमला जैन थी। महेन्द्र मधुप संप्रेषण, राजधर्म-रोहतक से सम्बद्ध रहे हैं। श्री जिनेन्द्रकुमार जैन दैनिक 'यंगलीडर' के सम्पादक हैं। श्री कैलाशचन्द्र बैद 'वीर अर्जुन' के प्रतिनिधि है। 'बल्लभ सन्देश' श्री रामरतन कोचर प्रकाशित कर रहे हैं। प्रतापचन्द पाटनी ने 'चित्र संवाद' निकाला था। शिवराज जैन 'युग की आवाज' के सम्पादक थे। 'ज्वाला' साप्ताहिक मे श्री गुमानमल जैन कार्यरत हैं। कोटा के श्री नाथूलाल जैन, हीरालाल जैन कांग्रेस तथा प्रजामण्डल से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन और प्रसारण से सम्बन्धित रहे हैं। श्री बाघमल बाठिया ने कोटा से 'मशाल' और 'चोइस' पत्र प्रकाशित किये। कानोड़ के श्री विपिन जारोली और श्री उदय जैन 'वसुमति' से सम्बद्ध रहे है। भीलवाड़ा के श्री सुभाष नाहर 'नीरा' के सम्पादक थे। कोटा मे उम्मेदमल नाहटा ने 'स्वदेश' का प्रकाशन किया।

विलाड़ा के श्री विजयमोहन जैन ने साप्ताहिक 'वीर लौकाशाह' प्रकाशित किया जो आजकल बन्द है। श्री चिमनसिंह लोढा और गजेन्द्र कुमार जैन ने ब्यावर से 'वीर राजस्थान' साप्ताहिक और 'झलक' प्रकाशित किया था। बीकानेर मे श्री नेमीचन्द आचलिया अजमेर से प्रकाशित 'राजस्थान' से सम्बद्ध थे। बीकानेर मे राजा के विरुद्ध लेख लिखने पर उनको भीषण कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। जोधपुर मे श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा जगदीश ललवाणी 'लहर' के सम्पादक रहे। अजमेर मे श्री प्रकाश जैन 'लहर' मासिक का सम्पादन कर रहे है। बीकानेर मे श्री शुभू पटवा 'सप्ताहान्त' साप्ताहिक प्रकाशित कर रहे हैं। श्री अगरचन्द नाहटा—'राजस्थान भारती' व अन्य कई पत्रो के सम्पादक मंडल से सम्बद्ध रहे हैं। जोधपुर में श्री नेमीचन्द्र जैन 'भावुक', 'नव निर्माण', चेतन प्रहरी' 'साहित्य प्रवाह' पत्रो से सम्बद्ध रहे हैं। सयुक्त राजस्थान समाचार वाहिनी का भी उन्होने श्रीगणेश किया था। आजकल वे नवभारत टाईम्स तथा हिन्दुस्तान समाचार के सवाददाता हैं। उदयपुर की सुश्री प्रमिला सरूपरिया 'तूलिका' पत्रिका से सम्बद्ध रही है। बोरून्दा के कोमल कोठारी 'वाणी'

अब 'लोकसंस्कृति' के सम्पादक हैं। आप साहित्य और पत्रकारिता दोनों क्षेत्रों में समान रूप से जाने-माने विद्वान हैं। जोधपुर के प्रेम भडारी 'सहकार संवाद' तथा 'कविताएँ' के सम्पादक रहे हैं। बीकानेर मे श्री ज्ञानप्रकाश जैन ने 'शुचि' का प्रकाशन किया था। मिश्रीमल जैन तरगित ने जोधपुर से 'चुलबुला' मासिक प्रकाशित किया था। कोटा की 'चिदम्बरा' के सम्पादक मडल मे श्री अनूपचन्द जैन रहे हैं। उदयपुर के श्री संग्रामसिंह मुरडिया ने 'टैगोर' मासिक प्रकाशित किया था। जोधपुर से माणक मेहता 'जलते दीप' दैनिक और साप्ताहिक प्रकाशित करते है। वही से देवराज मेहता ने 'नया राज्य' भी प्रकाशित किया। भीलवाडा के डालचन्द बोर्दिया ने 'ग्राम समाज' निकाला। उदयपुर मे भूपेन्द्रसिंह कोठारी ने 'युगदृष्टा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। केकड़ी से सुगनचन्द जैन ने 'केकडी पत्रिका' निकाली। जोधपुर के रतनरूपचन्द भण्डारी 'ब्रेवेडो' और सुरेन्द्रसिंह लोढा 'जन प्रहरी' प्रकाशित कर रहे हैं। शिवगज के प्रकाश लोढा 'अर्बुद देव' प्रकाशित करते है। बाडमेर से मीठालाल चोपड़ा 'चोपड़ा साप्ताहिक' प्रकाशित कर रहे है। उदयपुर व कलकत्ता से ओंकारलाल बोहरा 'विशाल राजस्थान' व 'विशाल भारत' का प्रकाशन कर रहे हैं। बालोतरा के मदनेश बाफना 'सीमात टाईम्स' के सम्पादक है। पाली से माणकचन्द राका ने 'हलकारा' प्रकाशित किया। उदयपुर की श्रीमती रूपकुमारी मेहता ने पाक्षिक 'गोरा बादल' निकाला। कोटा के क्रान्तिचन्द्र जैन कई दैनिक पत्रो के सवाददाता हैं। डूंगरपुर मे 'वागडवाणी' पाक्षिक श्री गम्भीरचन्द जैन प्रकाशित करते है। उगमलाल कोठारी 'नेता' तथा शान्तिलाल जैन 'उदयपुर टाईम्स' उदयपुर से प्रकाशित कर रहे हैं।

राजसमन्द के श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट 'सस्थान' से सम्बद्ध है। जोधपुर के श्री पदम मेहता ने 'जय जननी' साप्ताहिक प्रकाशित किया। कानोड के श्री विपिन जारोली 'काव्यांजलि' वार्षिक का प्रकाशन करते है तथा वे 'वीरभूमि' चित्तौड़गढ़ से भी सम्बद्ध है। छोटी सादड़ी के श्री सूर्यभानु पोरवाल राजस्थान के अनेक पत्रो को सवाद भेजते रहते है।

जयपुर से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से 'जिनवाणी' मासिक का प्रकाशन, 'जैन दर्शन और साहित्य' को जनसाधारण तक पहुंचाने की दृष्टि से होता है। डॉ० नरेन्द्र भानावत वर्षों से इससे सम्बद्ध रहे है, वे वर्तमान मे इसके मानद सम्पादक है और सम्पादक है श्रीमती (डॉ०) शाता भानावत। इसे साहित्यिक स्तर का पत्र बनाने मे इनका विशेष योग रहा है। इस मासिक पत्र के स्वाध्याय, सामायिक, तप, ध्यान, श्रावक धर्म, साधना आदि विशिष्ट विषयों पर महत्त्वपूर्ण विशेषाक प्रकाशित हो चुके है जिनमे अधिकारी विद्वानो और सतो ने इन विषयो का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके सामान्य अंको मे साधु-सन्तो के चातुर्मास, स्वाध्याय सघो का विवरण व जैन समाज की सास्कृतिक गतिविधियो के प्रमुख समाचार भी प्रकाशित किए जाते है।

जयपुर की राजस्थान जैन सभा पिछले १३ वर्षों से प्रति वर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन करती है। उसके संस्थापक सम्पादक प्रसिद्ध जैन विद्वान् पं० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ थे। पिछले वर्षों में इसके सम्पादन मे श्री प्रकाश पाटनी आदि ने भी सहयोग दिया। वर्तमान मे श्री भवरलालजी पोल्याका उसका सम्पादन करते है। जयपुर के श्री पदमचन्द साह 'तीर्थंकर समाचार समिति' से सम्बद्ध है। राजसमन्द के श्री देवेन्द्र कुमार हिरन 'मेवाड़ कान्फ्रेंस' प्रकाशित करते है। श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर प्रतिवर्ष पर्युषण के अवसर पर

'मणिभद्र' प्रकाशित करता है। श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर द्वारा गत तीन वर्षो से 'महावीर निर्वाण स्मारिका प्रकाशित होती रही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जैन पत्रों तथा पत्रकारो मे दो धाराये काम करती रही है। एक धारा के पत्र और पत्रकार मूलतः जैन-धर्म, दर्शन और समाज तथा जैन सस्कृति से ही सम्बद्ध है अथवा रहे है। दूसरी धारा से सम्बन्धित पत्र और पत्रकार राष्ट्रीय, राजनीतिक और सामाजिक परिवेश मे लोक जागरण, सास्कृतिक चेतना और समसामयिक प्रश्नों से जुडे हुए है। प्रथम धारा से सम्बद्ध पत्रो एवं पत्रकारो ने जैन समाज, उसकी धार्मिक प्रवृत्तियो, नैतिक शिक्षण, आचरण शुद्धता, समाज सुधार आदि प्रश्नो पर तो अपनी प्रतिबद्धता दिखाई ही है, उन्होने जैन साहित्य और दर्शन को जन-जन तक पहुचाने मे भी बहुमूल्य सहायता दी है। इन दोनो धाराओ के सम्मिलित प्रयास से राजस्थान के जनजीवन के परिष्कार मे जैन पत्रो एव पत्रकारो ने जो योग दिया है, वह कभी भुलाया नही जा सकेगा।

३८ | आधुनिक जैन साहित्य की प्रवृत्तियाँ

श्री महावीर कोटिया
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

साहित्य की मूलभूत प्रेरणा और जैन साहित्य :

समाज, धर्म और साहित्य—तीनो परस्पराश्रित है। जिस प्रकार साहित्य को उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से अलग करके नही समझा जा सकता, उसी प्रकार समाज विशेष की आध्यात्मिक विचारधारा को समझे बिना भी उसके साहित्य का अध्ययन अधूरा है। तात्पर्य यह कि साहित्य की भावभूमि गहरे रूप मे धार्मिक विचारधारा से प्रभावित रही है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं मे जो विपुल जैन साहित्य उपलब्ध है, उस सबमे धार्मिक विचारधारा तथा मान्यताओ का प्रस्तुतिकरण मुख्य रहा है। चाहे काव्य-रूप कुछ भी रहा हो—पुराण, काव्य, नाटक, कथा-कहानी, चरित—सभी प्राथमिक रूप मे धार्मिक है। धार्मिक सिद्धान्तों के साये मे ही वहा कहानी विकसित हुई है, उस पर काव्य रचना हुई है और उसकी सीमा मे ही काव्य के विविध तत्वो का विकास हुआ है। जैन साहित्यिक कृतियो मे शान्त-रस-राजत्व इसी पृष्ठभूमि पर समझा जा सकता है। वहा सभी भावों का समापन निर्वेद मे हुआ है और सभी रसो की पूर्णाहुति शान्तरस मे।

हिन्दी जैन-साहित्य का प्रारम्भ और उसकी प्रवृत्तियां :

हिन्दी भाषा मे जैन-साहित्यिक रचनाएँ १२वी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध से उपलब्ध है। तब से लेकर अब तक के जैन-साहित्य पर अगर हम दृष्टिपात करे तो प्राचीन साहित्य मे और इधर के कुछ वर्षो मे प्रकाशित साहित्य मे प्रवृति-मूलक अन्तर स्पष्ट दिखाई देते है। पुराने साहित्य की कतिपय विशेषताएँ है—(क) मुख्यत प्रबन्ध काव्यात्मक होना। इनमे छोटी प्रबन्ध रचनाएँ—जो रास, फागु, वेलि, चउपई, चरित आदि नामो से अभिहित की गई है, अधिक महत्वपूर्ण एव मौलिक हैं। (ख) वृहदकाय छन्दबद्ध रचनाएँ, जो पुराण तथा चरित संज्ञक है, प्राय सस्कृत ग्रन्थो के पद्यानुवाद है। (ग) पद्यानुवाद की तरह ही गद्यानुवाद की प्रवृत्ति भी प्राचीन जैन-साहित्य की एक प्रमुख प्रवृति रही है। (घ) जैन-कवियो द्वारा भक्तिपरक मुक्तक पदो की रचना तथा (ङ) तीर्थंकरो के भक्ति परक, लयात्मक, छन्दबद्ध पूजा-काव्य की रचना।

आधुनिक जैन-साहित्य :

परन्तु पिछले लगभग ५ दशक के जैन-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमे इसके एक नये

स्वरूप के ही दर्शन होते है। जैन-साहित्य का यह नया स्वरूप समानान्तर भारतीय-साहित्य मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने मे पूर्णतः समर्थ है। अपनी प्राचीन धार्मिकता की परम्परा से जुडा होने पर भी आज यह साहित्यिक गुणो से अधिक सम्पन्न है। आधुनिक जैन-साहित्यकार कथा-सूत्रो के लिए तथा अपनी भावात्मक व वैचारिक प्रेरणा के लिए अपने परम्परागत साहित्य का ऋणी है; परन्तु अधुनातन साहित्यिक प्रवृत्तियो को अपनाते हुए वह अपने परम्परागत साहित्य को जन-साधारण के निकट ले आया है। यह आज के जैन-साहित्यकार की उपलब्धि है। इससे पहले का जैन-साहित्य जैन-धार्मिको की संकुचित-सीमा में ही आबद्ध होकर रह गया था। उसका पठन-पाठन भी जैन-धार्मिक स्थलो पर ही होता रहा है; जैनेतर समाज उसके विपुल दाय से अनभिज्ञ ही रहा; परन्तु आज यह स्थिति वदल रही है। जैन-साहित्यकारो द्वारा उपन्यास, एकाकी, कहानी आदि के नये सांचे में ढाला जाकर और नया नाम धारण करके आज यह साहित्य जनसाधारण मे सुलभ हो रहा है और समसामयिक साहित्य के समानान्तर खड़ा हो रहा है। आज के जैन-साहित्य के लिए 'मात्र धार्मिक साहित्य' का लेबल बेमानी है; आज यह पहले साहित्य है, पीछे और कुछ।

जैन साहित्य की नई प्रवृत्तियां :

इधर जो जैन-साहित्य प्रकाशित हो रहा है, उसके आधार पर हम आधुनिक जैन-साहित्य की कतिपय प्रवृत्तियों की ओर आसानी से सकेत कर सकते है। यहा पहले हम इन प्रवृत्तियो का उल्लेख कर रहे है और साथ ही लेख के परिशिष्ट भाग के रूप मे आधुनिक साहित्य-प्रकाशन की एक सूची (विधा के अनुसार) दे रहे है। यह सूची प्रवृत्तियों का स्वरूप स्पष्ट कराने की दृष्टि से है।

प्रमुख प्रवृत्तियां :

(१) प्रबन्ध काव्य—महाकाव्य तथा खण्ड काव्यो की रचना—प्राचीन जैन-साहित्य से कथानको का चयन कर—विशेषत. जैन-परम्परा मे मान्य त्रिषष्ठि शलाका पुरुषो के पुराणों तथा चरित साहित्य मे वर्णित कथानको को आधार रूपो मे लेकर आधुनिक महाकाव्यो तथा खण्ड-काव्यो की रचना की गई है।

(२) प्राचीन जैन कथाओ को आधुनिक कहानी के शिल्प में प्रस्तुत करना—आगमो, चरित-ग्रन्थो, पुराणो आदि मे इतस्तत उपलब्ध अनेक जैन-कथाओ को आधुनिक कहानी के रूप मे प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे बहुत से कहानी संकलन इधर प्रकाशित हुए है। जैन विचारधारा का आधार लेकर कुछ कहानिया स्वतन्त्र रूप से भी लिखी गई है।

(३) जैन आगमिक पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रसगो के आधार पर नाटको एव रंग-मचीय व रेडियो एकांकियो की रचना।

(४) प्रसिद्ध जैन-आख्यानो, शलाका पुरुषो व ऐतिहासिक जैन-विभूतियो को आधार बनाकर उपन्यास रचना। ऐसे कतिपय उपन्यास इधर के कुछ वर्षों मे प्रकाशित हुए हैं।

(५) लघु-उपन्यास लेखन की एक नई प्रवृति पिछले कुछ ही वर्षो मे हिन्दी साहित्य मे प्रमुख रूप से उभर कर सामने आ रही है। पाकेट बुक प्रकाशन ने इस प्रवृति को अधिक लोकप्रियता प्रदान की है। जैन-साहित्य मे भी यह प्रवृत्ति पनप रही है।

(६) जैन-सिद्धान्तो, जैन-तीर्थंकरो आदि से सम्बन्धित स्वतत्र मुक्तक कविताओ की रचना।

(७) जैन-सिद्धान्तो, जैन विचारधारा तथा दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले तथा उनकी आधुनिक व्याख्या करने वाले निबन्धो की रचना। इस प्रकार का विपुल जैन-साहित्य पत्र-पत्रिकाओ तथा स्वतत्र संग्रहो के रूप मे प्रकाशित हुआ है।

(८) प्राचीन जैन-साहित्य इसके पुरस्कर्ताओ तथा जैन साहित्यिक प्रवृत्तियों पर शोधपरक प्रबन्ध व अन्य समीक्षात्मक एव परिचयात्मक पुस्तको का प्रणयन। इस प्रकार का साहित्य भी विपुल मात्रा मे प्रस्तुत किया गया है। इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने का एक प्रमुख कारण विश्वविद्यालयो में जैन विषयो को लेकर डॉक्टरेट करने वाले अनेक विद्यार्थी हैं।

(९) प्रवचनात्मक साहित्य की एक नई प्रवृत्ति भी साहित्यिक क्षेत्र मे आजकल उभर रही है। विशिष्ट व अधिकारी विद्वानो के विषय विशेष पर भाषण आयोजित करना तथा उनका सकलन प्रकाशित करना एक आम बात हो गई है। आचार्य रजनीश का सम्पूर्ण साहित्य इसी कोटि का है। गांधीजी के साहित्य का भी एक बड़ा भाग इसी तरह का है। जैन साहित्य मे भी यह प्रवृत्ति प्रमुख रूप मे उभर रही है। साधु-सन्तो के प्रवचन सुसम्पादित होकर पत्र-पत्रिकाओं मे प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं तथा उनके सकलन भी प्रकाशित हो रहे है। इसमे एक दृष्टि यह भी है कि जो बहुत से श्रद्धालु श्रावक किन्ही परिस्थितियोवश प्रत्यक्ष प्रवचनो का लाभ नही उठा पाते, वे इन्हें पढकर उसकी पूर्ति कर लेते हैं।

(१०) फिल्मी तर्ज पर गेय गीतो व भजनो की रचना की प्रवृत्ति। इस तरह के गीत तथा भजन मन्दिरो मे व धार्मिक समारोहों मे प्रचुरता से गाए जाने लगे है।

(११) आगम ग्रन्थो अन्य प्राचीन महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक ग्रन्थों, ग्रन्थ सूचियो, प्राचीन कवियो के पद संग्रहो तथा ग्रन्थावली-सम्पादन आदि की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृति भी आधुनिक जैन-साहित्य मे परलक्षित हो रही है।

(१२) प्रभावशाली जैनाचार्यों एव तपस्वी मुनियो की जीवनियो का प्रकाशन भी आधुनिक जैन-साहित्य मे लोकप्रिय विधा के रूप मे स्थान पाने लगा है।

राजस्थान प्रदेश का आधुनिक जैन साहित्य :

ऊपर हमने आधुनिक हिन्दी जैन-साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो का सक्षेप मे सकेत किया है। ये प्रवृत्तिया आज के समग्र जैन-साहित्य का प्रतिनिधित्व करती है। सम्पूर्ण देश मे इस प्रकार का विपुल जैन-साहित्य पिछली कुछ दशाब्दियो मे प्रकाशित हुआ है तथा हो रहा है। प्रस्तुत लेख की सीमा राजस्थान प्रदेश है, अतः यहा हम राजस्थान प्रदेश के आधुनिक जैन-साहित्य की एक सूची दे रहे हैं। इस सूची के निर्माण मे मुख्यत: निम्न तथ्यो को हमने ध्यान मे रखा :है—(क) साहित्यकार, राजस्थान मे पैदा हुआ हो अथवा रह रहा हो। (ख) कृति का प्रकाशन राजस्थान मे हुआ हो। (ग) सूची मे केवल प्रकाशित ग्रन्थो (अप्रकाशित शोध प्रबन्धों को भी) का ही समावेश किया गया है। (घ) सूची-निर्माण उपर्युक्त प्रवृत्तियों के आधार पर है अर्थात् प्रत्येक प्रवृत्ति के शीर्षकान्तर्गत उस प्रवृत्ति से सम्बन्धित प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थो का नामोल्लेख किया गया है।[1]

---

१. हमे जिन ग्रन्थो की सूचना व जानकारी प्राप्त हो सकी, उन्ही को इस सूची मे सम्मिलित किया जा सका है। बहुत से ग्रन्थो का नामोल्लेख सूचना के अभाव मे रह गया है।

इस सूची के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एक ओर जहां आधुनिक जैन-साहित्य मे सृजनात्मक ललित साहित्य, यथा-नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी एवं प्रबन्ध काव्यो की रचना तथा प्रकाशन सीमित मात्रा मे हुआ है, वहा सम्पादित साहित्य, प्रवचन-साहित्य, निबन्ध आदि का प्रणयन तथा प्रकाशन पर्याप्त मात्रा में सभव हो सका है।

प्रमुख प्रकाशित ग्रंथों की विधापरक सूची

१. प्रबन्ध काव्य :

आचार्य श्री तुलसी—भरत मुक्ति, अग्नि परीक्षा, आपाढ़भूति, श्री कालूयशोविलास। श्री गणेश मुनि—विश्व ज्योति महावीर। श्री नैनमल जैन—पवनाजना। मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज—पाण्डव यशोरसायन, संकल्प विजय, मरुधर केसरी ग्रंथावली भाग १-२। श्री मोतीलाल मार्तण्ड—ऋषभ चरितसार। श्री चन्दन मुनि—रयणवाल कहा (प्राकृत)। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—जैन आचार्य चरितावली।

२. कविता-सग्रह :

श्री गणेश मुनि शास्त्री—वाणी-वीणा, महक उठा कवि सम्मेलन, सुबह के भूले, गीतो का मधुवन, संगीत रश्मि, गीत झंकार। डॉ० नरेन्द्र भानावत—माटी कुंकुम, आदमी मोहर और कुर्सी, श्री कन्हैयालाल सेठिया—मेरा युग, दीपकिरण, प्रतिबिम्ब, प्रणाम, मर्म, मीझर कूंकू। आचार्य श्री तुलसी—श्री कालू उपदेश वाटिका। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल'—श्रमण सस्कृति के ढाई हजार स्वर, प्यासे स्वर, मन के मोती, प्रकाश के पथ पर, फूल और अगारे, विधि के खेल। मुनि श्री बुद्धमल जी—मन्थन, आवर्त्त। मुनि श्री मोहनलाल शार्दूल—पथ के गीत, आदमी की राह, मुक्तधारा। मुनि मोहन 'सुजान'—प्यास और दर्पण। मुनि रूपचन्द—कला-अकला, अर्द्ध विराम खुले आकाश में, गुलदस्ता, इन्द्र धनुष। मुनि मोहनलाल 'आमेट'—तथ्य और कथ्य। मुनि चन्दनमल—मञ्जूषा। साध्वी श्री कनक प्रभा—सरगम। साध्वी श्री मञ्जुला—चेहरा एक हजारो दर्पण। साध्वी श्री संघमित्रा—साक्षी है शब्दो की, बूद बन गई गगा। साध्वी सुमन श्री—सांसो का अनुवाद, सशय का चौराहा। मुनि श्री नथमल—फूल और अंगारे। मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी—उपदेश बावनी, बुध विलास। श्री केवल मुनि—गीत गुञ्जार, मेरे गीत, मधुर गीत, गीतावली, गीत-लहरिया, गीत-सौरभ। श्री प्रकाश जैन—अन्तर्यात्रा। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—गजेन्द्र मुक्तावली भाग १-२। मुनि दुलीचन्द—खुली आवाज, मंगलमुक्ता। मुनि मधुकर—गुंजन। मुनि वत्सराज—आँख और पाख।

३ उपन्यास :

श्री महावीर कोटिया—आत्मजयी, कूणिक, (दोनो लघु-उपन्यास)। श्री ज्ञान भारिल्ल—तरगवती, शूली और सिहासन, भटकते-भटकते। आचार्य अमृतकुमार—कपिल। कमला जैन 'जीजी'—अग्नि पथ। डॉ० प्रेम सुमन जैन—चितेरो के महावीर।

४. कहानी सग्रह, प्रेरक प्रसग एव गद्य काव्य :

श्री गणेश मुनि शास्त्री—प्रेरणा के विन्दु, जीवन के अमृत कण। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—धार्मिक कहानिया। डॉ० नरेन्द्र भानावत—कुछ मणिया : कुछ पत्थर। श्री देवेन्द्र

मुनि—खिलती कलिया : मुस्कराते फूल, प्रतिध्वनि, फूल और पराग, बोलते चित्र, बुद्धि के चमत्कार, अमिट रेखाएं, महकते फूल। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी प्रथम—जैन कहानिया भाग १ से २५। श्री मधुकर मुनि—जैन कथामाला भाग १-६। श्री भगवती मुनि निर्मल—लो कहानी सुनो, लो कथा कह दूं। मुनि श्री छत्रमल—कथा कल्पतरु। श्री रमेश मुनि—प्रताप कथा कौमुदी भाग १-४, महावीर के पावन प्रसग। मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल'—भगवान् महावीर के प्रेरक सस्मरण (पद्यबद्ध)। श्री महावीर कोटिया—बदलते क्षण। श्री शान्तिचन्द्र मेहता—सौंदर्य-दर्शन। श्री चन्दन मुनि—अन्तर्ध्वनि। मुनि श्री चन्द्र 'कमल'—पद-चिह्न, रश्मियाँ। मुनि बुधमल्ल—आंखो ने कहा।

५. नाटक व एकांकी :

डॉ० नरेन्द्र भानावत—विष से अमृत की ओर। महेन्द्र जैन—महासती चन्दन बाला।

६. जीवनी साहित्य :

श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल, डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री—पूज्य श्री जवाहरलाल जी महा० की जीवनी, सोलह सती। प० रत्न मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज—मुक्ति के पथ पर, (सुजानमलजी महा० सा० की जीवनी), तपस्वी मुनि श्री बालचन्द्र जी महाराज। प० दुखमोचन झा—अमरता का पुजारी (आचार्य श्री शोभाचन्द जी महा० की जीवनी), आदर्श विभूतियाँ। श्री हीरा मुनि—जय शोभाचन्द। श्री राजेन्द्र मुनि—रा० केसरी पुष्कर मुनि जी महाराज। आर्या प्रेमकुंवर—महासती श्री जसकुंवर: एक विराट व्यक्तित्व। मुनि समन्तभद्र—विश्व चेतना के मनस्वी सत, (मुनि श्री सुशील कुमार जी की जीवनी)। श्री मधुकर मुनि—ज्योतिर्धर जय। मुनि नथमल—आचार्य भिक्षु दी मैन एण्ड हिज फिलॉसफी, आचार्य तुलसी : लाइफ एण्ड फिलॉसफी। श्री देवकुमार जैन—पूज्य गणेशाचार्य जीवन-चरित्र। श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा—युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि। मुनि श्री 'महेन्द्रकुमारजी 'कमल'—दिव्य तपोवन (तपस्वी श्री वेणीचन्द्र जी म० की जीवनी)।

७ निबन्ध, समालोचना, शोध प्रबन्ध आदि :

आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १-२। श्री गणेश मुनि शास्त्री—आधुनिक विज्ञान और अहिंसा, अहिंसा की बोलती मीनारे, इन्द्रभूति गौतम—एक अनुशीलन। डा० हुकमचन्द भारिल्ल—तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पं० टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व। डॉ० नरेन्द्र भानावत—भगवान् महावीर : आधुनिक सदर्भ मे (स०), साहित्य के त्रिकोण, राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तिया, राजस्थानी वेलि साहित्य। श्री देवेन्द्र मुनि—भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, ऋषभदेव—एक परिशीलन, भगवान पार्श्व—एक समीक्षात्मक अध्ययन, भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण, धर्म और दर्शन, साहित्य और सस्कृति, सस्कृति के अचल मे, चिन्तन की चादनी, अनुभूति के आलोक मे, विचार रश्मिया, विचार और अनुभूतिया। श्री पुष्कर मुनि—ओंकार : एक अनुचिन्तन। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि दौलतराम कासलीवाल—व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, शाकम्भरी प्रदेश के सास्कृतिक विकास मे जैन धर्म का योगदान, जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान। मुनि श्री नथमल—जैन दर्शन : मनन और मीमासा, जैन तत्त्व-दर्शन, उत्तराध्ययन एव दशवैकालिक का समीक्षात्मक अध्ययन, मै : मेरा मन : मेरी

शान्ति, चेतना का ऊर्ध्वारोहण, भिक्षु विचार दर्शन, श्रमण महावीर, सत्य की खोज : अनेकान्त के आलोक मे । श्री उमेश मुनि 'अणु'—श्रीमद् धर्मदास जी म० और उनकी मालव शिष्य परम्पराएँ । डॉ मोहनलाल मेहता—जैन धर्म-दर्शन, जैन आचार जैन साईकोलॉजी, जैन कल्चर, जैन फिलॉसफी, जैन साहित्य का वृहद इतिहास भाग २-३ ।

मुनि विद्यानन्द—पिच्छि-कमण्डलु । मुनि दुलहराज—लॉर्ड महावीर . लाइफ एण्ड टीचिंग, एपीटोम ऑफ जैनिज्म । मुनि शुभकरण—उडीसा मे जैन धर्म । प० उदय जैन—वीर विभूति । डॉ० शान्ता भानावत—महावीर री ओलखाण (राजस्थानी भाषा मे) मुनि श्री नगराज—जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान, आगम और त्रिपिटक; एक अनुशीलन, अहिंसा-विवेक, महावीर और वुद्ध की समसामयिकता, अणुव्रत. जीवन दर्शन, अहिंसा-पर्यवेक्षण । मुनि बुद्धमल—तेरापथ का इतिहास, श्रमण सस्कृति के अञ्चल मे । आचार्य श्री तुलसी—धर्म : एक कसौटी, एक रेखा; मेरा धर्म . केन्द्र और परिधि, अणुव्रत के सन्दर्भ मे, भगवान महावीर । श्री श्रीचद रामपुरिया—तीर्थंकर वर्द्धमान, अर्हत् अरिष्टनेमि और वासुदेव कृष्ण । डॉ० के० सी० जैन—लॉर्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स, जैनिज्म इन राजस्थान । श्री चादमल सीपाणी—इतिहास की खोज । श्री गोपीचन्द धाड़ीवाल—धर्म और संसार का स्वरूप, अध्यात्म विज्ञान योग प्रवेशिका । प० भद्रंकर विजय जी गणि—परमेष्ठि नमस्कार । मुनि कल्याण विजय जी—वीर निर्वाण सवत् और जैन-काल-गणना, भगवान् महावीर । पं० महेन्द्र कुमार—जैन दर्शन । मुनि सुखलाल—अणुव्रत की कसौटी पर । श्री उदय मुनि—प्रिय निबन्धोदय भाग १-२, आगमो में तीर्थंकर चरित्र । श्रीमती उषा बापना—सत कवि जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व । प० चैनसुखदास—जैन दर्शनसार, भावना विवेक । प० इन्द्रलाल शास्त्री—धर्म-सोपान, अहिंसा तत्त्व, तत्त्वालोक, आत्म वैभव । मुनि श्री कान्तिसागर—खण्डहरो का वैभव, खोज की पगडंडिया । डॉ० नेमिचद शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १–२, आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन, भारतीय ज्योतिष, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग १–४ । श्री अगरचंद नाहटा—प्राचीन काव्यो की रूप परम्परा, राजस्थानी साहित्य की गौरवमयी परम्परा । डॉ० कमलचंद सोगानी—जैन इथिक्स । महोपाध्याय विनयसागर—खरतर गच्छ का इतिहास । डॉ० प्रेमसुमन जैन—कुवलयमालाकहा का सास्कृतिक अध्ययन । डॉ० हरीश—आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य । डॉ० बी० एल० जैन—सकलकीर्ति–एक अध्ययन ।

डॉ० श्यामशकर दीक्षित—तेरहवीं–चौदहवी शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्य । डॉ० शाता जैन—जैन मिस्टीसिज्म । डॉ० छगनलाल शास्त्री–भिक्षु साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन । डॉ० लालचद जैन—ब्रजभाषा के जैन प्रबन्ध-काव्य । डॉ० मदन गोपाल शर्मा—सधारु कृत 'प्रद्युम्न चरित' काव्य के सन्दर्भ मे प्रद्युम्न चरित काव्य-परम्परा का तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन । डॉ० सत्यनारायण स्वामी—महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ । डॉ० ब्रजनारायण पुरोहित—तेरापन्थ सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य । डॉ० ईश्वरप्रसाद शर्मा—महाकवि जिन हर्ष : एक अनुशीलन । कु० शकुन्तला बाकीवाला—जयपुर क्षेत्रीय जैन रास-काव्य । कु० स्नेहलता माथुर—संत कवि रायचंद्र की पच्चीसी संज्ञक रचनाएँ । श्रीमती कुसुम पाटनी—महाकवि दौलतराम : व्यक्तित्व और कृतित्व । कु० मधु माथुर—सन्तकवि तिलोक ऋषि : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

८. प्रवचन साहित्य :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज—जवाहर किरणावली भाग १-३५, जवाहर विचार-सार। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—आध्यात्मिक आलोक भाग १ से ४, आध्यात्मिक साधना भाग १-२, प्रार्थना प्रवचन। श्री पुष्कर मुनि—जिन्दगी की मुस्कान, साधना का राज मार्ग, रामराज, मिनख पणारो मोल। आचार्य श्री तुलसी—प्रवचन डायरी भाग १-४। श्री मधुकर मुनि—साधना के सूत्र, अन्तर की ओर भाग १-२। महासती श्री उमराव कुँवर जी,-'अर्चना' अर्चना और आलोक। साध्वी श्री मैना'सुन्दरी जी—दुर्लभ अंग चतुष्ट्य। आचार्य श्री गणेशी लाल जी महाराज—जैन संस्कृति का राजमार्ग, आत्मदर्शन। आचार्य श्री नानालाल जी महाराज—पावस प्रवचनभाग १-४, ताप औरतप, समता-दर्शन और व्यवहार। मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीलाल जी—जैन धर्म मे तप: स्वरूप और विश्लेषण, प्रवचन प्रभा, प्रवचन सुधा, धवलज्ञान धारा, साधना के पथ पर, जीवन ज्योति। जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमल जी जैन दिवाकर दिव्य ज्योति भाग १-२१। श्री समरथमल जी महाराज—समर्थ समाधान भाग १-२। श्री हीरालाल जी म० हीरक प्रवचन भाग १-१०।

९. प्राचीन साहित्य सम्बन्धी सम्पादित ग्रंथ :

मुनि श्री जिनविजय जी—विविध गच्छीय पट्टावली सग्रह, खरतरगच्छ पट्टावली सग्रह। प० मुनि श्री लक्ष्मीचद जी महाराज—सुजान पद सुमन वाटिका, श्री रत्नचद्र पद मुक्तावली। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—पट्टावली प्रबन्ध संग्रह। डॉ० नरेन्द्र भानावत—आचार्य श्री विनयचद्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची भाग १, राजस्थानी गद्य : विकास और प्रकाश। डॉ० कस्तूर-चद कासलीवाल, अनूपचंद न्यायतीर्थ—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग १-५। डॉ० कासलीवाल—प्रशस्ति-संग्रह, हिन्दी पद सग्रह। प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ—प्रद्युम्न चरित, अर्हत् प्रवचन। डॉ० माता प्रसाद गुप्त, डॉ० कासलीवाल—जिणदत्त चरित। श्री अगरचंद नाहटा—बीकानेर जैन लेख सग्रह, समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, सीताराम चौपई, ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, कविवर धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली, श्री ज्ञानसार ग्रन्थावली, श्री जिनहर्ष ग्रन्थावली। भवरलाल नाहटा—समयसुन्दर रासत्रय, जिनराज सूरि कृति कुसुमाञ्जलि, विनयचद्र कृति कुसुमाञ्जलि। मुनि दुलहराज—भरत बाहुबलि महाकाव्य। मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज—कर्म ग्रन्थ। श्री मधुकर मुनि—जयवाणी। श्रीचद्र रामपुरिया—तेरापन्थ आचार्य चरितावली भाग १-२, भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर भाग १-२, नव पदार्थ। मुनि कल्याण विजय जी—पट्टावली पराग संग्रह, तपागच्छ पट्टावली। डॉ० प्रेमसुमन जैन—प्राकृत चयनिका, अपभ्रंश काव्य धारा। महोपाध्याय विनयसागर—प्रतिष्ठा लेख सग्रह। श्री मोहनलाल बांठिया, श्रीचंद चोरड़िया—लेश्याकोश, क्रियाकोश। श्री धन मुनि 'प्रथम'—वक्तृत्व-कला के बीज, भाग १ से ९। श्री प्रेमराज बोगावत, प्रेम भडारी—भक्तामर, रत्नाकर पच्चीसी व सामायिक पाठ।

•••

३

प्रशासन और राजनीति

३९ | देशी रियासतों के शासन-प्रबन्ध में जैनियों का सैनिक व राजनीतिक योगदान

●

डॉ० देव कोठारी

पृष्ठभूमि :

जैनधर्म मूलतः अहिंसावादी होने के कारण उसके अनुयायियो पर प्राय. यह आक्षेप लगाया जाता रहा है कि उनमे सैनिक और राजनीतिक योग्यता का अभाव है और यह एक धर्म भीरु जाति है, जो तलवार उठा कर शौर्य प्रदर्शित नही कर सकती है एवं कूटनीतिक दॉव-पेचों द्वारा राष्ट्र रक्षा व उसके निर्माण के पुनीत कार्य मे हिस्सा नही बटा सकती है। व्यापार-वाणिज्य के माध्यम से धन अर्जित करने के सन्दर्भ मे ही इस जाति का प्राय: मूल्याकन किया जाता रहा है, किन्तु वीर प्रसविनी राजस्थान वसुन्धरा के स्वर्णिम इतिहास के कई ऐसे कहे-अनकहे पृष्ठ है, जिन पर इतिहासज्ञो की दृष्टि नही पडी है, फलस्वरूप जैनधर्म के अनुयायी वीरो व नरपगुवो के बाहुबल, कुशाग्र बुद्धि, विवेक, कूट-नीतिक दूरदर्शिता एव सर्वस्व न्यौछावर करने की उनकी त्यागमय लालसा को इतिहास मे उचित तथा प्रामाणिक स्थान नही मिल पाया है।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास मे जैन धर्मानुयायी अनेक ऐसे पराक्रमी पुरुषो के सन्दर्भ प्राप्त होते है, जिन्होने अनेक युद्धो का योग्यतापूर्वक नेतृत्व या सचालन ही नही किया, अपितु अनेक राज्यो की स्थापना, सुरक्षा व स्थायित्व मे मदद की तथा अशाति, विपत्ति और अस्थिरता के समय मे कई प्रसिद्ध राज्यो एवं उनके तत्कालीन शासको की सत्ता को अपने प्राणो की आहुतिया देकर भी कायम रखा। ऐसे समय मे अगर ये चाहते तो उस समय की परिस्थितियो का लाभ उठाकर किसी भी राज्य के स्वयं स्वामी हो सकते थे और अपने वश या नाम से नवीन राज्यो की स्थापना कर सकते थे, लेकिन राष्ट्र-रक्षार्थ उन्होने कभी विश्वासघात नही किया। अपनी बुद्धि और बाहुबल के द्वारा उन्होने जो कुछ किया, अपने स्वामी या राज्य की रक्षार्थ किया। तात्पर्य यह कि स्वामी-भक्ति, राजनीति, कूटनीति, अर्थनीति, युद्धनीति आदि के द्वारा इन जैन वीरो ने तत्कालीन राज्य-प्रबन्ध व इतिहास-निर्माण मे अपनी सम्पूर्ण योग्यता व कुशलता के द्वारा अपूर्व तथा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिससे प्रभावित होकर समकालीन व परवर्ती राजा-महाराजाओ ने उन्हे तथा उनके परिवार को खास रुक्को व ताम्रपत्रो के द्वारा गाव, जमीन आदि भेट की, उन्हे रक्षक के रूप मे सम्बोधित किया तथा उनकी सेवाओ की मुक्तकठ से प्रशसा की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान की देशी रियासतों विशेषकर मेवाड और मारवाड़ (अर्थात् जोधपुर व बीकानेर) राज्यों के राज्य प्रबन्ध मे जैन मतावलम्बियों के सैनिक व राजनीतिक योगदान की विपुल सामग्री रुक्कों, ताम्रपत्रो, पट्टे-परवानो, शिलालेखो, काव्य ग्रन्थो, गीतों, वंशावलियो, ख्यातो, वातो तथा भाटो की वहियों मे विद्यमान हैं, जिसका अगर शोधपरक व तटस्थ दृष्टि से मूल्याकन प्रस्तुत किया जाये तो मेवाड, जोधपुर, बीकानेर तथा अन्य राज्यो के इतिहास की अनेक लुप्त कड़ियां जुड़ सकती है ।

इनकी इन्ही योग्यताओ से प्रभावित होकर मेवाड़ व मारवाड ही नही राजस्थान के अन्य राज्यो के तत्कालीन शासको ने जैनियो को सर्वोच्च पदों पर आरूढ़ किया तथा राज्य प्रवन्ध की दैनन्दिन गतिविधियो से वे निश्चित होकर रहे । इनके प्रति शासकों के अगाध विश्वास का अनुमान इन्ही तथ्यो से लगाया जा सकता है कि जैनियो को पीढी-दर-पीढी अपने पदो पर आसीन रखा, खजाने की चाविया उनके पास रहने दी, सामरिक महत्त्व के किलो व गढो को उनके नेतृत्व मे सौंपा, सेनानायकों के पद पर नियुक्त कर शत्रु के विरुद्ध सघर्ष मे सैन्य सचालन का दायित्व दिया, सुलह व सन्धि वार्ताओ तथा राज-काज के अन्य छोटे-मोटे कामो मे भी जैन समुदाय की सेवाएं बड़े पैमाने पर प्राप्त की ।

इन सेवाओ मे जैन समुदाय की विभिन्न जातियो का योगदान रहा है, जिनमे मेहता, कावडिया, सिघी-सिघवी, भण्डारी, कोठारी, बच्छावत, मुहणोत, लोढा, बाफना, गाधी, वोलिया, गलूडिया, कोचर मेहता, वेद मेहता, कटारिया मेहता, राखेचा, समदड़िया मूथा, आदि प्रमुख हैं ।

शासन व्यवस्था के विभिन्न पद :

राज्य प्रवन्ध के सुचारु व कुशल सचालन के लिये मेवाड व मारवाड मे शासन-व्यवस्था को विभिन्न पदो के अधीन विभाजित कर रखा था, यथा—

(१) प्रधान	(२) दीवान	(३) फौजवक्शी
(४) किलेदार	(५) मुत्सद्दी	(६) अन्य

इन सब मे प्रधान का पद सर्वोच्च था । आगल भाषा मे प्रधान को Prime-minister कह सकते हैं । ये राजा या महाराजा के प्रति सीधा उत्तरदायी तथा राजा के वाद राज्य का कर्त्ता-धर्त्ता होता था । इसलिये अत्यन्त विश्वासपात्र, बुद्धिमान, सतुलित, गभीर, विवेकशील, चतुर, नीति-निपुण एवं दूरदर्शी व्यक्ति को ही इस पद पर नियुक्त किया जाता था किन्तु राजा की इच्छा के अनुसार इसे नियुक्ति के वाद हटाया भी जा सकता था । ऐसी स्थिति मे जैनियो का इस पद पर नियुक्त होना उनकी विलक्षण प्रतिभा का ही परिचायक था ।

दीवान का पद प्रधान से नीचे या अधीन होता था । दीवान को आग्ल भाषा मे Ministe[r] के नाम पर से पुकार सकते है । प्रधान का पद सम्पूर्ण राज्य मे एक ही होता था, जवकि दीवा[न] विभिन्न कार्यों व विभागो के अनुसार एकाधिक हो सकते थे । ये भी शासक के प्रति ही उत्तरदाय[ी] होते थे, किन्तु इनका सीधा सम्बन्ध प्रधान से होता था । कालान्तर मे धीरे-धीरे प्रधान व दीवान की उपर्युक्त परम्परा समाप्त हो गई और प्रधान व दीवान का पद एक ही माना जाने लगा अर्थात् प्रधान व दीवान शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये ।

फौजबक्शी को Commander-in-Chief या सेनापति अथवा सेनानायक कहा जा सकता है। इस पद के अधीन सेना का भार रहता था। यत्र-तत्र युद्धो मे सेना का सचालन, राज्य तथा प्रजा की सुरक्षा करना इनका मुख्य कार्य था।

किलेदार किसी गढ या किले (Fort) के प्रभारी (Incharge) होते थे। किले की सुरक्षा एवं सम्पूर्ण प्रबन्ध-व्यवस्था करना किलेदार का प्रमुख कार्य होता था। किले व किले के निवासियो की सुरक्षा के लिये इनके पास भी सेना होती थी। अत्यन्त विश्वासपात्र, रणकुशल एव अनुभवी व्यक्ति को ही किलेदारी का दायित्व दिया जाता था।

मुत्सद्दी, एक प्रकार से प्रशासनिक व्यक्ति होता था, जिसमें हिसाब-किताव, कानून-कायदे, कार्यालयी कार्य की दक्षता एव सैनिक गुणो का होना आवश्यक था।

अन्य प्रकार के पद वे थे, जिनमे हाकिम, अहलकार, कामदार आदि सम्मिलित थे। समस्त पदो पर नियुक्ति-वियुक्ति समकालीन शासक के विश्वास पर निर्भर होती थी।

सैनिक व राजनीतिक योगदान :

उपर्युक्त समस्त पदो पर जैनियो का प्रभुत्व सर्वाधिक था, यह राजस्थान के इतिहास व इतिहास से सम्बन्धित सामगी के विवरण से स्पष्ट है। इस निबन्ध मे मेवाड़ (चित्तौड़गढ-उदयपुर) तथा मारवाड (जोधपुर-बीकानेर) के विशेष सन्दर्भ के साथ अन्य राज्यो में इन्ही जैन प्रधानो, दीवानो, फौजबक्शियो, किलेदारो व मुत्सद्दियो द्वारा राज्य प्रबन्ध मे उनके द्वारा किये गये सैनिक व राजनीतिक योगदान का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे महापुरुषो की अब तक ज्ञात संख्या लगभग दो सौ है, अतः सबका वृत्तान्त यहा प्रस्तुत करना सभव नही है, इसलिये कतिपय प्रमुख चरित्रो के सक्षिप्त विवरण के साथ साथ अन्यो की राज्यानुसार मात्र सकेतात्मक सूचना ही दी जा रही है—

(क) मेवाड़ राज्य

राजस्थान का दक्षिणी भाग अर्थात् उदयपुर, चित्तौडगढ़ व भीलवाडा जिले का क्षेत्र मेवाड के नाम से अभिहित किया जाता है। मेवाड का प्राचीन इतिवृत्त तथा उसकी शौर्य गाथाएं इतिहास प्रसिद्ध हैं। पहले मेवाड की राजधानी चित्तौडगढ थी, किन्तु महाराणा उदयसिंह (वि० स० १५९४–१६२८) के समय मे उदयपुर नगर बसाकर इसे मेवाड की राजधानी बनाया गया, तब से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक उदयपुर ही मेवाड़ की राजधानी रहा। इस मेवाड के राज्य प्रबन्ध मे जैनियों के सैनिक व राजनीतिक योगदान का महत्त्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है, यथा—

जालसी मेहता : मेवाड के इतिहास मे जालसी मेहता का उल्लेख विक्रम की चौदहवी शताब्दी के आरम्भ मे मेवाड उद्धारक एवं अनन्य स्वामीभक्त के रूप मे मिलता है। उस समय मेवाड पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार था और उसने जालोर के मालदेव सोनगरा को चित्तौड दुर्ग सुपुर्द कर रखा था।[1] हमीर तब सिसोदे गांव का स्वामी था। उसने अपने पैतृक दुर्ग चित्तौड़ को पुनः अपने अधिकार मे करने के उद्देश्य से मालदेव के अधीनस्थ इलाके को लूटना एवं उजाडना आरम्भ किया। अल्लाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् जब दिल्ली सल्तनत की दशा बिगडने लगी और उधर से किसी

१. ओझा—राजपूताने का इतिहास (उदयपुर खण्ड), प्रथम भाग, पृ० ४९९

प्रकार की मदद की आशा न देखी तो मालदेव ने अपनी पुत्री का विवाह हमीर से कर दिया,[1] ताकि वह उसके अधीन प्रदेश को लूटना व उजाड़ना बन्द करदे। नव-विवाहिता पत्नी ने हमीर को सलाह दी कि अपने पिता से इस अवसर पर वह किसी तरह का धन आदि नहीं मागे अपितु उसके दूरदर्शी कामदार जालसी मेहता को माग ले, जिससे उसकी मनोकामना पूरी हो सकती है। हमीर ने ऐसा ही किया और मालदेव से जालसी को माग लिया।[2]

कुछ समय पश्चात् हमीर की इस रानी से क्षेत्रसिंह (जो बाद मे महाराणा खेता कहलाया) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियो की सलाह के अनुसार चित्तौड के क्षेत्रपाल की पूजा (बोलवा) के निमित्त महाराणी को अपने पुत्र क्षेत्रसिंह के साथ चित्तौड़ जाना पड़ा।[3] जालसी मेहता भी उस समय साथ मे था। इस समय तक मालदेव की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र जेसा सोनगरा चित्तौड का स्वामी था। जालसी ने यह उपयुक्त अवसर देखा, उसने कूटनीति से काम लेकर लोगो को जेसा सोनगरा के विरुद्ध उभारना आरभ किया, जब जालसी को विश्वास हो गया, वातावरण हमीर के पक्ष मे हो गया है, एव स्थिति अनुकूल है तो उसने हमीर को पूरी तैयारी के साथ अपने विश्वस्त सैनिकों को लेकर चित्तौड आने का गुप्त सदेश भेजा। योजना के अनुसार हमीर चित्तौड पहुंचा। किले का दरवाजा खोल दिया गया एव घमासान युद्ध के बाद चित्तौड़ पर हमीर का अधिकार हो गया।[4] जालसी महता की इस राजनीतिक दूरदर्शिता एव सैनिक कुशलता से प्रसन्न होकर हमीर ने उसे अच्छी जागीर दी तथा उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।[5] इस प्रकार जालसी के सहयोग से हमीर वि. स. १३८३ मे मेवाड का महाराणा बना और उसके बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति तक मेवाड़ पर इसी सिसोदिया वश का आधिपत्य रहा, जिसमे महाराणा कुंभा, सागा, प्रताप और राजसिंह जैसे शक्तिशाली व इतिहास प्रसिद्ध शासक हुए।

भारमल : कावडिया भारमल व उसके पूर्वज अलवर के रहने वाले थे। महाराणा सागा (वि. स. १५६६–१५८४) ने भारमल की सैनिक योग्यता तथा राजनीतिक दूरदर्शिता से प्रसन्न होकर तत्कालीन सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रणथम्भोर के किले का किलेदार नियुक्त किया।[6] बाद मे जब हाडा सूरजमल (बूंदीवाले) को रणथम्भोर की किलेदारी मिली,[7] उस समय भी भारमल के हाथ मे एतबारी नोकरी और किले का कुल कारोबार रहा।[8] महाराणा उदयसिंह (वि. स० १५९४–१६२८)

---

१. ओझा–राजपूताने का इतिहास (उदयपुर खण्ड), प्रथम भाग, पृ० ५०३
२. (i) कर्नल जेम्स टाड–एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, हिन्दी सस्करण, पृ० १५९
   (ii) कविराजा श्यामलदासकृत 'वीर विनोद' मे (प्रथम भाग पृ० २९५ पर) जालसी का नाम मोजीराम मेहता दिया गया है, जो अशुद्ध है। (द्रष्टव्य–ओझा–राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ५०६)
३. बाबू रामनारायण दूगड–मेवाड का इतिहास, प्रकरण चोथा, पृ० ६८
४. कर्नल टॉड कृत एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, (हिन्दी) पृ० १५९–६०
५. ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३२४
६. वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० २५२
७. ओझा–राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ६७२ एव १३०२
८. वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० २५२

ने भारमल की सेवाओ से प्रसन्न होकर वि. सं. १६१० मे अपना प्रमुख सामन्त बनाकर एक लाख का पट्टा दिया था।[1] इस प्रकार एक किलेदार के पद से प्रमुख सामन्त के पद पर पहुँचना निश्चय ही भारमल की स्वामिभक्ति एव योग्यता का परिचायक था।

भामाशाह एवं ताराचन्द : ये दोनो भाई भारमल के पुत्र थे। हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में महाराणा प्रताप (वि. सं. १६२८–५३) की सेना के हरावल के दाहिने भाग की सेना का नेतृत्व करते हुए लड़े थे एवं अकबर की सेना को शिकस्त दी थी।[2] भामाशाह की राजनैतिक एव सैनिक योग्यता को देख कर महाराणा प्रताप ने उसे अपना प्रधान बनाया। इसने महाराणा प्रताप की सैनिक टुकड़ियो का नेतृत्व करते हुए गुजरात मालवा, मालपुरा आदि इलाको पर आक्रमण किये एव लूटपाट कर प्रताप को आर्थिक सहायता पहुँचाई।[3] लूटपाट से प्राप्त धन का ब्योरा वह एक वही मे रखता था और उस धन से राज्य खर्च चलाता था। उसके इस दूरदर्शी एव कुशल आर्थिक प्रबन्ध के कारण प्रताप इतने लम्बे समय तक अकबर के शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध सघर्ष कर सके थे। महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल (वि. स १६५३–१६७६) मे भामाशाह तीन वर्ष तक प्रधान पद पर रहा और अन्त मे प्रधान के पद पर कार्य करते हुए ही इसका देहावसान हुआ।

ताराचन्द भी एक कुशल सैनिक एवं अच्छा प्रशासक था। यह भी मालवा की ओर प्रताप की सेना लेकर शत्रुओं को दबाने तथा लूटपाट कर आतंक पैदा करने के लिये गया था। एक बार जब वह मालवा की ओर से लौट रहा था तो उसे व उसके साथ के सैनिको को अकबर के सेनापति शाहबाज खा व उसकी सेना ने घेर लिया। ताराचन्द बड़ी वीरतापूर्वक लड़ता हुआ बस्सी (चित्तौड़ के पास) तक आया किन्तु यहां पर वह घायल होकर गिर पड़ा। बस्सी के स्वामी देवड़ा साईंदास इसे अपने किले में ले गया एवं वहा घावो की मरहम पट्टी की व इलाज किया।[4] प्रताप ने ताराचन्द को गोडवाड़ परगने मे स्थित सादड़ी गाव का हाकिम नियुक्त किया, जहां पर रहकर इसने नगर की ऐसी व्यवस्था की कि शाहबाज खां जैसा खूंखार योद्धा व सेनापति भी इस नगर पर कब्जा न कर सका। इसी तरह ताराचन्द यहां रहकर नाडोल की ओर से होने वाले अकबर की सेना के आक्रमणो का भी बराबर मुकाबला करता रहा।[5] सादड़ी में इसने अनेक निर्माण कार्य कराये, एवं प्रसिद्ध जैन मुनि हेमरत्न से 'गोरा बादल पद्मिनी चौपाई' की रचना कराई।

रंगोजी बोलिया : महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह (वि. स. १६५३-७६) की राज्य सेवा में नियुक्त रंगोजी बोलिया ने अमरसिंह एव बादशाह जहागीर के मध्य प्रसिद्ध मेवाड़-मुगल सन्धि कराने में प्रमुख भूमिका निभाई तथा मेवाड़ व मुगल साम्राज्य के मध्य चल रहे लम्बे संघर्ष को सम्मानजनक ढंग से बन्द करा कर अपनी दूरदर्शिता व कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया। सन्धि सम्पन्न हो जाने के बाद महाराणा अमरसिंह ने प्रसन्न होकर रंगोजी को चार गाव, हाथी

---

१. (i) महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, पृ० ११४
(ii) ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ७२ पर भारमल को महाराणा उदयसिंह द्वारा प्रधान बनाने का उल्लेख है।

२. महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, पृ० ११४, ३. वही, पृ० ११५

४. ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १३०३

५. मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १७५-७६

पालकी आदि भेट दिये व दीवान के पद पर आसीन किया। इस पद पर कुशलतापूर्वक कार्य करते हुए इसने मेवाड़ के गावों का सीमांकन कराया और मेवाड़ के गावो के जागीरदारों की रेख भी निश्चित की। जहांगीर ने भी प्रसन्न होकर रंगोजी को ५२ बीघा जमीन देकर सम्मानित किया।[1] रंगोजी ने मेवाड़ व मुगल साम्राज्य के मध्य सन्धि कराने मे जो अहम भूमिका निभाई, उस सम्बन्ध के डिंगल गीत प्रसिद्ध हैं।

सिंघवी दयालदास : यह मेवाड़ के प्रसिद्ध व्यापारी सिंघवी राजाजी एवं माता रयणादे का चतुर्थ पुत्र था। एक बार महाराणा राजसिंह (वि. सं. १७०६-३७) की इनकी ही एक राणी ने हत्या करवा कर अपने पुत्र को मेवाड़ का महाराणा बनाने का षडयन्त्र रचा। षडयन्त्र का एक कागज दयालदास को मिल गया उसने तत्काल महाराणा राजसिंह से सम्पर्क कर उनकी जान बचाई। दयालदास की इस वफादारी से प्रसन्न होकर महाराणा ने इसको अपनी सेवाओ मे रखा तथा अपनी योग्यता से बढ़ते-बढ़ते यह मेवाड का प्रधान बन गया।[2] जब औरंगजेब ने वि. स १७३६ मे मेवाड़ पर चढ़ाई कर सैकड़ो मन्दिर तुड़वा दिये[3] और बहुत आर्थिक नुकसान पहुँचाया तो इस घटना के कुछ समय बाद महाराणा राजसिंह ने दयालदास को सेना देकर बदला लेने के लिये मालवा की ओर भेजा। दयालदास ने अचानक धार नगर पर आक्रमण कर उसे लूटा, मालवे के अनेक शाही थानों को नष्ट किया आग लगाई और उनके स्थान पर मेवाड के थाने बैठा दिये। लूट से प्राप्त धन को प्रजा मे बांटा एव अन्य बहुत सा धन ऊँटो पर लाद कर दयालदास मेवाड़ को लौट आया।[4] तथा महाराणा को नजर किया।

महाराणा जयसिंह (वि. स. १७३७-१७५५) के शासनकाल मे वि. सं. १७३७ मे चित्तौड़गढ के पास शाहजादा आजम एव सेनापति दिलावर खा की सेना पर रात्रि के समय दयालदास ने भीषण आक्रमण किया, किन्तु मुगल सेना संख्या मे अधिक थी, दयालदास बड़ी बहादुरी से लड़ा किन्तु जब उसने देखा कि उसकी विजय अनिश्चित है तो मुसलमानो के हाथ पड़ने से बचाने के लिये अपनी पत्नी को अपने ही हाथो मौत के घाट उतार दिया और उदयपुर लौट आया, फिर भी उसकी एक लड़की, कुछ राजपूत तथा सामान मुसलमानो के हाथ लग गया।[5] ऐसे वीर और पराक्रमी दयालदास की योग्यता एवं कूटनीतिज्ञता का विस्तृत वर्णन राजपूत इतिहास के ग्रन्थो के अतिरिक्त फारसी के समकालीन हस्तलिखित ग्रन्थो, यथा—"वाकया सरकार रणथंभोर" एवं "औरंगजेबनामा" मे भी मिलता है। जैन-धर्म के उत्थान मे भी दयालदास द्वारा सम्पन्न किये गये महान् कार्यों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

मेहता अगरचन्द : महाराणा अरिसिंह द्वितीय (वि. सं. १८१७-२९) का शासनकाल मेवाड़ के इतिहास मे गृहकलह तथा संघर्ष का काल माना जाता है। ऐसे संकटमय समय मे मेहता पृथ्वीराज के बड़े पुत्र मेहता अगरचन्द ने मेवाड़ राज्य की जो सेवाएं की वे अद्वितीय है। अगरचन्द के

---

१. [illegible] (त्रैमासिक), भाग १२, अंक ३, पृ० ४१-४७

२. ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० १३०५

३. वही, पृ० ८७०-७१

४. कवि मान कृत राजविलास (महाकाव्य), विलास ७, छन्द ३८

५. (i) वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६५०
   (ii) ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ८६५

दूरदर्शिता, कार्यकुशलता तथा सैनिक गुणों से प्रभावित होकर महाराणा अरिसिंह ने इसे माडलगढ (जिला भीलवाड़ा) जैसे सामरिक महत्त्व के किले का किलेदार एवं उस जिले का हाकिम नियुक्त किया,[1] इसकी योग्यता को देखकर उसके बाद इसे महाराणा ने अपना सलाहकार तथा तत्पश्चात् वि. स. १७९६ मे दीवान के पद पर आरूढ किया और बहुत बडी जागीर देकर सम्मानित किया। मेवाड़ इस समय मराठों के आक्रमणों से त्रस्त तथा विपम आर्थिक स्थिति से ग्रस्त था। अगरचन्द ने अपनी प्रशासनिक योग्यता व कूटनीति के बल पर इन विकट परिस्थितियों पर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की।[2] महाराणा अरिसिंह की माधवराव सिन्धिया के साथ उज्जैन मे हुई लडाई मे अगरचन्द वीरतापूर्वक लडता हुआ घायल हुआ एव कैद कर लिया गया। बाद मे रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह द्वारा भेजे गये बावरियो ने उसे छुडाया। माधवराव सिन्धिया द्वारा उदयपुर को घेरने के समय तथा टोपल मगरी व गंगार की लडाइयों मे भी अगरचन्द महाराणा के साथ रहा। अरिसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि. सं. १८२९-१८३४) के समय मेवाड़ की विकट स्थिति सभालने मे यह बड़वा अमरचन्द के साथ रहा। महाराणा भीमसिंह (वि स० १८३४-१८८५) ने इसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया। अम्बाजी इगलिया के प्रतिनिधि गणेशपन्त के साथ मेवाड़ की हुई विभिन्न लड़ाइयो मे भी अगरचन्द ने भाग लिया।[3] अगरचन्द द्वारा मेवाड़ के महाराणाओं एवं मेवाड राज्य के लिये की गई सेवाओ से प्रसन्न होकर उपर्युक्त तीनों महाराणाओं ने समय-समय पर अगरचन्द को विभिन्न रुक्के प्रदान किये, उनसे तथा "मेहताओ की तवारीख" से अगरचन्द के सैनिक व राजनीतिक योगदान की पुष्टि होती है।

मेहता मालदास : ड्योढीवाले मेहता वश मे मेहता मेघराज की ग्यारहवी पीढ़ी में मेहता मालदास को एक कुशल योद्धा, वीर सेनापति एव साहसी पुरुष के रूप मे सदा स्मरण रखा जायेगा।[4] मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह (वि सं. १८३४-१८८५) के शासनकाल मे मराठो के आतक को समाप्त करने के उद्देश्य से तत्कालीन प्रधान सोमचन्द गाधी ने जब मराठों पर चढाई करने का निश्चय किया तो इस अभियान के दूरगामी महत्त्व को अनुभव कर मेहता मालदास के सेनापतित्व मे मेवाड व कोटा की संयुक्त सेना मराठों को परास्त करने के लिए भेजी गई। उदयपुर से कूच कर यह सेना निम्बाहेडा निकुम्भ, जीरण आदि स्थानों को जीतती हुई जावद पहुँची, जहां पर नाना सदाशिवराव ने पहले तो इस सेना का प्रतिरोध किया किन्तु बाद मे कुछ शर्तों के साथ जावद छोड कर चला गया। होल्कर राजमाता अहिल्याबाई को मेवाड़ के इस अभियान का पता चला तो उसने तुलाजी सिंधिया एवं श्री भाई के अधीन पाच हजार सैनिक जावद की ओर भेजे। नाना सदाशिवराव के सैनिक भी इन सैनिको से आ मिले। मन्दसौर के मार्ग से यह सम्मिलित सेना मेवाड की ओर बढी। मेहता मालदास के सेनापतित्व मे सादड़ी के राजराणा सुल्तानसिंह, देलवाडे का राजराणा कल्याणसिंह, कानोड़ का रावत जालिमसिंह और सनवाड़ के बावा दौलतसिंह आदि राजपूत योद्धा भी मुकाबला करने के लिये आगे बढे। वि. सं० १८४४ के माघ माह मे हडक्यारवाल के पास भीषण भिडन्त हुई। मालदास ने

१. ओझा-वही, पृ० १३१४
२. शोध प्रत्रिका, वर्ष १८, अंक २, पृ० ८१-८२
३. ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१४-१५
४. शोधपत्रिका, वर्ष २३, अंक १, पृ० ६५-६६

अपनी सेना सहित मराठों के साथ घमासान संघर्ष किया और अन्त में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ रणागण में शहीद हो गया[१]। मेहता मालदास के इस पराक्रम की कथाएं आज भी मेवाड़ में प्रचलित हैं।

मेहता मालदास अदम्य योद्धा और श्रेष्ठ सेनापति ही नही योग्य प्रशासक भी था[२] समकालीन कवि किशना आढ़ा कृत 'भीम विलास'[३] तथा पीछोली एवं सीसारमा स्थित सुरह व शिलालेख[४] मे मेहता मालदास के कार्यो का उल्लेख उपलब्ध होता है।

मेवाड़ के राज्य प्रबन्ध में जैनियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान के अन्तर्गत उपर्युक्त कतिपय महत्त्वपूर्ण जैन पुरुषो का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त भी अनेक जैन महापुरुष हुए हैं, जिनके मूल्यवान योगदान का मेवाड़ सदा ऋणी रहा है, उपर्युक्त के साथ उनका संकेतात्मक उल्लेख निम्न है :—

प्रधान एवं दीवान

(१) नवलखा रामदेव :—महाराणा क्षेत्रसिंह (वि. स. १४२१-३९) एवं महाराणा लक्षसिंह (वि. सं. १४३९-५४) के समय मे प्रधान।

(२) नवलखा सहणपाल :—महाराणा मोकल (वि. सं. १४५४-९०) तथा महाराणा कुंभा (वि. सं. १४९०-१५२५) के समय मे प्रधान।

(३) तोलाशाह :—महाराणा सागा (वि. सं. १५६६-८४) के समय में प्रधान।

(४) कर्माशाह :—महाराणा रत्नसिंह द्वितीय (वि. सं. १५८४-८८) के समय मे प्रधान।

(५) बोलिया निहालचन्द :—वि. सं. १६१० मे चित्तौड़ मे महाराणा उदयसिंह (वि. सं. १५९४-१६२८) के समय प्रधान।

(६) कावड़िया भामाशाह :—महाराणा प्रताप (वि. सं. १६२८-५३) एवं अमरसिंह (वि. सं. १६५३-७६) के काल मे प्रधान।

(७) कावड़िया जीवाशाह .—अपने पिता भामाशाह की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह (वि. सं. १६५३-७६) के समय मे प्रधान।

(८) रंगोजी बोलिया :—महाराणा अमरसिंह एवं महाराणा कर्णसिंह (वि. सं. १६७६-८४) के समय मे दीवान।

(९) कावड़िया अक्षयराज :—महाराणा कर्णसिंह के समय में प्रधान।

(१०) सिंघवी दयालदास :—महाराणा राजसिंह (वि. सं. १७०९-३७) एवं महाराणा जयसिंह (वि. सं. १७३७-४५) के समय मे प्रधान।

(११) शाह देवकरण :—महाराणा जगतसिंह द्वितीय (वि. सं. १७९०-१८०८) के समय मे प्रधान।

---

१. ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ९८७-८८
२. टॉड—एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३५०
३. भीम विलास, छन्द सं. २९२-९७, हस्त प्रति सं. १२३, साहित्य संस्थान, उदयपुर
४. द्रष्टव्य—वीरविनोद, पृ० १७७४-७५ एवं १७७७-७८

(१२) मेहता अगरचन्द :—महाराणा अरिसिंह (वि. सं. १८१७-२९), महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि. सं. १८२९-३४) तथा महाराणा भीमसिंह (वि. सं. १८३४-८५) के समय मे प्रधान।

(१३) मोतीराम बोलिया :—महाराणा अरिसिंह (वि. सं. १८१७-२९) के समय मे कुछ समय तक प्रधान रहे।

(१४) एकलिंगदास बोलिया :—महाराणा अरिसिंह के समय मे कुछ समय तक दीवान, किन्तु उम्र छोटी होने से आपके काका मौजीराम कार्य देखते थे।

(१५) सोमचन्द गांधी :—महाराणा भीमसिंह (वि. सं. १८३४-८५) के समय मे प्रधान रहे।

(१६) सतीदास गांधी :—अपने बड़े भाई सोमचन्द की मृत्यु के बाद महाराणा भीमसिंह के समय मे ही प्रधान।

(१७) शिवदास गांधी :—महाराणा भीमसिंह के समय मे ही प्रधान।

(१८) मेहता देवीचन्द :—मेहता अगरचन्द के पौत्र थे महाराणा भीमसिंह ने वि. सं. १८५६ में प्रधान बनाया।

(१९) मेहता रामसिंह :—वि. सं. १८८१ मे महाराणा भीमसिंह ने अंग्रेज सरकार की सलाह पर प्रधान नियुक्त किया।

(२०) मेहता शेरसिंह :—महाराणा भीमसिंह के समय थोडे-थोड़े समय के लिये तीन-चार वार प्रधान रहे। तथा महाराणा स्वरूपसिंह (वि. सं. १८९९-१९१८) के समय मे भी रहे।

(२१) मेहता गोकुलचन्द :—महाराणा स्वरूपसिंह (वि. सं. १८९९-१९१८) के समय में शेरसिंह के वाद ये प्रधान रहे।

(२२) कोठारी केसरीसिंह :—महाराणा स्वरूपसिंह के समय में वि. सं. १९१६-२६ तक प्रधान रहे।

(२३) मेहता पन्नालाल :—महाराणा शंभूसिंह (वि. सं. १९१८-३१) ने वि. सं. १९२६ मे प्रधान बनाया।

(२४) कोठारी बलवन्तसिंह :—महाराणा फतहसिंह (वि. सं. १९४१-८७) के समय में महकमाखास का प्रधान।

(२५) मेहता भोपालसिंह :—महाराणा फतहसिंह के समय में कोठारी बलवन्तसिंह के त्यागपत्र देने के बाद।

किलेदार एवं फौजबक्शी

(१) मेहता जालसी :—महाराणा हमीर प्रथम के समय में।

(२) मेहता चीलजी :—महाराणा सांगा (वि. सं १५६६-८४), बनवीर (वि. सं. १५९३-९७) तथा महाराणा उदयसिंह (वि. सं. १५९४-१६२८) के समय में चित्तौड़गढ का किलेदार।

(३) कावड़िया भारमल :—महाराणा सांगा के समय में रणथम्भोर का किलेदार।

(४) मेहता मालदास :—महाराणा भीमसिंह (वि. सं. १८३४-८५) के समय में फौज-बक्शी।

इसी प्रकार बोल्या रूद्रभान, सरदारसिंह तथा मेहता नाथजी भी फौजबक्शी रह चुके हैं।

(ख) जोधपुर राज्य

मारवाड में जोधपुर राठौड राजपूतो का प्राचीन राज्य माना जाता है। इसकी राजधानी पहले मण्डोर और तत्पश्चात् जोधपुर रही। सैनिक व राजनीतिक दृष्टि से इस राज्य की सेवा करने वालो में जैनियो का योगदान संख्या व गुण दोनो ही दृष्टियो से सर्वाधिक रहा।

राव समरा एवं नरा भण्डारी :—नाडोल के चौहान वंशी शासको के वंशज राव समराजी भण्डारी (जिनके पूर्वजो ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था) का तथा इनके पुत्र राव नरा भण्डारी का जोधपुर राज्य की स्थापना में वही गौरवपूर्ण स्थान है जो मेवाड़ में जालसी मेहता का है।

जब मण्डोर के शासक राव रणमल की चित्तौड़गढ मे वि. सं. १५०० में हत्या कर दी गई[१], तो उसका पुत्र राव जोधा अपने सात सौ सैनिको को लेकर मेवाड से भाग निकला, किन्तु चूण्डा के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना ने उसका पीछा किया और उस पर अनेक आक्रमण किये, जिसमे जोधा के कई सैनिक मारे गये[२]। जीलवाडा नामक गांव तक पहुँचते-पहुँचते जोधा के साथ केवल सात सैनिक शेष रह गये।

जीलवाडा में जोधा की राव समरा भण्डारी से भेंट हुई। समरा ने जोधा के संकट को अनुभव कर उसका साथ देने का निश्चय किया तथा अपने पुत्र नरा भण्डारी के साथ पच्चास वीर योद्धा देकर जोधा को मारवाड़ की ओर रवाना कर दिया। समरा स्वयं वही रह कर मेवाड़ की सेना का प्रतिरोध करने लगा। अन्त में अपने तीन सौ वीर सैनिको के साथ लड़ता हुआ मारा गया[3]।

नरा भण्डारी के साथ जोधा किसी तरह मण्डोर पहुँचा किन्तु मेवाड़ की सेना ने आक्रमण कर मण्डोर को भी अपने अधिकार मे कर लिया। जोधा थली प्रदेश के काहूनी गाव मे जाकर रहने लगा[४]। जोधा के इस विपत्तिकाल में राव नरा भण्डारी बराबर उसके साथ रहा एवं सेना के संगठन में जुट गया। पर्याप्त सेना इकट्ठी हो जाने के पश्चात् मण्डोर पर आक्रमण किया गया। घमासान युद्ध के बाद वि. स. १५१० में जोधा का मण्डोर पर अधिकार हो गया[५]। इस युद्ध में नरा भण्डारी ने अपूर्व शौर्य का परिचय दिया। बाद में जोधा ने जब मेवाड़ पर आक्रमण किया, उस समय भी नरा उसके साथ रह कर बहादुरी से लड़ा था।

राव नरा भण्डारी के सहयोग से जोधा ने मण्डोर विजय के पश्चात् वि. स. १५१५ मे पास ही की चिडियाटूंक पहाडी पर नये गढ़ की नींव डाली तथा उसकी तलहटी मे अपने नाम से जोधपुर नगर बसाया[६]। उस प्रकार जोधपुर राज्य की स्थापना मे राव समरा एवं नरा भंडारी की अविस्मरणीय सेवाओ को भुलाया नही जा सकता हे।

---

१. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२३-२५

२. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग पृ० २३५-३६

३. इस घटना से सम्बन्धित डिंगल मे एक गीत प्रसिद्ध है—

राव जोधारे कारणे समरे माजी कीध चढ़।
चवाण वेढ़ दिवाणसुं, नाडले नाडूलगढ़ ।।

४. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २३६, ५. वही, पृ० २३९

६. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४१

भण्डारियों की ख्यात एवं जोधपुर की ख्यात मे राव नरा भण्डारी के वीरतापूर्ण कार्यों की प्रशंसा की गई है। राव जोधा ने भी नरा के सहयोग एवं सेवाओं का बड़ा सम्मान किया। उसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया तथा साठ हजार की जागीर के रूप में भण्डारियों की ख्यात के अनुसार रोहट, वीसलपुर, मजल, पलासणी, धूधाड, जार्जीवाला और बनाड़ नामक सात गाव उसे भेंट मे दिये।

मुहणोत नैणसी :—मुहणोत नैणसी का जन्म वि. स. १६६७ की मार्ग शीर्ष शुक्ला ४ को हुआ[१]। इसके पिता का नाम जयमल और माता का नाम सरूपदे था। नैणसी के तीन भाई और थे- सुदरदास, आसकरण और नरसिंहदास।

नैणसी ने दीवान पद प्राप्ति से पूर्व जोधपुर राज्य की ओर से कई महत्त्वपूर्ण लडाईयो, मे भाग लिया तथा सेना का नेतृत्व किया। वि० सं० १६६४-६५ मे फलोधी की लड़ाई[२], वि. सं. १७०० मे राडधरा की लडाई[३], वि. स. १७०३ मे सोजत के रावत नारायण का दमन[४], तथा वि स. १७०६ मे पोकरण पर अधिकार[५] करने मे नैणसी के अतुल्य शौर्य व कुशल सैन्य-सचालन को नही भुलाया जा सकता। नैणसी की इस योग्यता एवं सेवाओं से प्रसन्न होकर जोधपुर के तत्कालीन शासक महाराणा जसवन्तसिंह प्रथम (वि. सं १६६४-१७३५) ने मियाँ फरासत खां को वि. स. १७१४ मे हटाकर नैणसी को अपने राज्य का दीवान बनाया[६]। वि. सं. १७२३ तक वह इस पद पर योग्यतापूर्वक कार्य करता रहा।

महाराजा जसवन्तसिंह को मुगल सम्राट औरगजेब की ओर से प्रायः अन्यत्र युद्धों मे भाग लेना पडता था अथवा किसी प्रान्त का सूबेदार बनकर अपने राज्य से बाहर रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति मे मुहणोत नैणसी ही राज-काज देखता था। उस समय नैणसी के पास प्रायः सब अधिकार थे। यहा तक कि वह किसी को जागीर तक दे सकता था किन्तु महाराजा जसवन्तसिंह पत्रों द्वारा समय-समय पर राज्य कार्य सम्बन्धी निर्देश अवश्य दे दिया करते थे।

जनता के सुख-दु ख की बाते भी नैणसी गौर से सुनता था। वि सं. १७१८ के पौष मास मे मेड़ता परगने के लगभग दस गावो के जाट एकत्रित होकर नैणसी के पास आये और तत्कालीन लाग व बेगार की पद्धति के बारे मे विरोध प्रकट किया। नैणसी ने उनके विरोध को गौर से सुना और सच्चाई को अनुभव कर लाग व बेगार माफ कर दी तथा तत्काल मेडता परगने के हाकिम भण्डारी राजसी के पास तत्सम्बन्धी हुक्म भेजा।

नैणसी तलवार और कलम दोनो का धनी था। इसने तत्कालीन जोधपुर राज्य का व्यापक सर्वेक्षण कराया। जोधपुर के साथ ही अन्य राज्यो के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक तथ्यों व आंकड़ो को

---

१ रामनारायण दूगड–मुहणोत नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, (परिचय) पृ० १

२ बदरीप्रसाद साकरिया—मुंहता नैणसी की ख्यात, भाग चतुर्थ, पृ० २७

३. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४१८, ४. वही, पृ० ४२०

५ साकरिया–मुंहता नैणसी की ख्यात, भाग चतुर्थ, पृ० २७, ६ वही, पृ० २८

एकत्र किया। इस सम्बन्ध में नैणसी के दो ग्रन्थ ख्यात व विगत के रूप में भी उपलब्ध हैं।[1]

सिंघी इन्द्रराज : महाराजा भीमसिंह (वि० सं० १८४९–६०) के अन्तिम दिनो मे उपद्रवी सरदारों का दमन करने,[2] जालौर पर जोधपुर का आधिपत्य जमाने,[3] भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह को जोधपुर का राज्य दिलाने[4] तथा महाराजा मानसिंह (वि० सं० १८६०–१९००) को वाद की विपत्तियो मे लगातार सहयोग देते हुए अपने प्राणो का भी उत्सर्ग कर देने वाले योग्य योद्धा व दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ के रूप मे सिंघी इन्द्रराज का जोधपुर राज्य के इतिहास में अद्वितीय स्थान है।

मानसिंह को जोधपुर की गद्दी पर आरूढ़ कराने में सिंघी इन्द्रराज द्वारा की कई बहुमूल्य सेवाओ से प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह ने उसे मुसाहिव के पद पर नियुक्त किया।[5] जब मेवाड की राजकुमारी कृष्णाकुमारी से विवाह के प्रश्न को लेकर उदयपुर, जोधपुर तथा जयपुर राजघरानो मे टकराहट पैदा हो गई और स्थिति युद्ध तक आ पहुंची तो उस समय सिंघी इन्द्रराज ने सम्पूर्ण स्थिति को वडी बुद्धिमानी से सम्भाला। महाराजा मानसिंह पचास हजार की विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर चढाई करने के लिए जोधपुर से रवाना हुए तो सिंघी इन्द्रराज ने मानसिंह को रोक लिया और स्वयं बीस हजार सैनिकों का नेतृत्व ग्रहण कर कृष्णाकुमारी का टीका जयपुर जाने से रोकने हेतु आगे बढ़ा। इसकी सूचना जव टीका ले जाने वालो के पास पहुँची तो वे शाहपुरा (मेवाड) जाकर रुक गये। इन्द्रराज शाहपुरा पर चढ़ आया किन्तु शाहपुरावालों ने टीका पुनः उदयपुर भेजने की शर्त के साथ इन्द्रराज को वहां से रवाना कर दिया।[6] कुछ समय पश्चात् सिंघी इन्द्रराज ने जयपुर के दीवान रायचन्द से मिल कर और कूटनीति का सहारा लेकर जोधपुर व जयपुर के मध्य समझौता करा लिया। समझौते के अनुसार राजकुमारी कृष्णा कुमारी से दोनों में से कोई भी विवाह न करेगा तथा जोधपुर के महाराजा मानसिंह की कन्या का विवाह जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ तथा जगतसिंह की वहन का विवाह मानसिंह के साथ किया जायेगा।[7]

परन्तु यह समझौता अधिक दिनों तक टिक न सका और जयपुर का महाराजा जगतसिंह विशाल सेना लेकर चढ़ आया। इधर महाराजा मानसिंह ने झूठी शिकायतों को सच मान कर सिंघी इन्द्रराज को कैद कर लिया।[8] किन्तु जव जयपुर की सेना के आक्रमणों से जोधपुर नगर की रक्षा करना असम्भव हो गया तो महाराजा मानसिंह ने इन्द्रराज को कैद से रिहा कर समयोचित प्रबन्ध

---

१. ये दोनो ग्रन्थ 'मुंहता नैणसी री ख्यात' एव 'मारवाड़ रा परगणा री विगत' के नाम से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हो चुके हैं। ख्यात का हिन्दी अनुवाद भी नागरी प्रचारिणी सभा काशी से छप चुका है।

२. ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७७२,   ३. वही, पृ० ७७५-७६

४. रेउ-मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४०१-४०२

५ ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७७८

६. वही, पृ० ७८८-८९   ७. वही, पृ० ७८९

८. (i) ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७९१
   (ii) जगदीशसिंह गहलोत—मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ० १८९

करने की आज्ञा दी।[1] सिंघी इन्द्रराज ने फिर कूटनीति से काम लिया। उसने जोधपुर के गढ़ को मानसिंह के अधिकार मे रख कर शहर को जयपुर की सेना के हवाले कर दिया। अमीर खां पिंडारी को तीस हजार रुपये देकर इन्द्रराज ने अपनी ओर मिला लिया और भण्डारी पृथ्वीराज तथा अमीर खा को सेना के साथ जयपुर पर आक्रमण करने व ढूंढाड में लूट-खसोट करने भेजा। कुछ समय बाद इन्द्रराज भी सेना लेकर इनसे आ मिला।[2] इन्होंने संयुक्त रूप से जयपुर आदि को लूटा। इसकी सूचना जब महाराजा जगतसिंह को जोधपुर मे मिली तो वे जोधपुर का घेरा छोड़ कर जयपुर की ओर लौट चले। इन्द्रराज और अमीर खां विजयी होकर जब जोधपुर लौटे तो महाराजा मानसिंह ने इन्द्रराज का बड़ा सम्मान किया। खास रुक्का देकर गौरव बढ़ाया, प्रधान का पद दिया एवं जागीर दी।[3]

यही नहीं, सिघी इन्द्रराज ने धौकलसिंह व सवाईसिंह के मामले में शुरू से ही महाराजा मानसिंह का साथ दिया तथा बीकानेर की लड़ाई मे भी जोधपुर की सेना का नेतृत्व किया। परन्तु इन्द्रराज पर महाराजा मानसिंह के इस अत्यधिक विश्वास एव निर्भरता को देख कर अन्य राजपूत सरदार उससे अप्रसन्न रहने लगे। उन्होने अमीर खा पिंडारी को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया तथा इन्द्रराज की हत्या करवा दी।[4] महाराजा मानसिंह इस घटना से इतना अधिक दुःखी हुआ कि उसने राज्य-कार्य करना और बाहर आना-जाना तक छोड़ दिया।[5] इन्द्रराज की स्वामिभक्ति व सेवाओं के बदले मे महाराजा ने उसके पुत्र सिंघी फतहराज को पच्चीस हजार की जागीरी, दीवानगी तथा महाराजकुमार की बराबरी का सम्मान और तत्सम्बन्धी रुक्का प्रदान किया। तथा उन्होंने इन्द्रराज की स्मृति में राजस्थानी मे काव्य की रचना करके उसके प्रति श्रद्धाजलि भी अर्पित की—

गेह छुटो कर गेड़, सिंह जुटो फूटो समद ।
अपनी भूप अरोड, अड़ियां तीनुं इन्दड़ा ॥
गेह सांकल़ गजराज, धहै रह्यो सादुल़ धीर ।
प्रकटी वाजी बाज, अकल प्रमाणे इन्दड़ा ॥
पड़तो घेरो जोधपुर, अड़तां दल़ा अथंभ ।
आप डीगता इन्दड़ा, थे दीयो भुज थंभ ॥

जोधपुर राज्य के इतिहास में उपर्युक्त प्रकार के जैन महापुरुषो की संख्या लगभग १४१ है। इन सवका विवरण यहा प्रस्तुत करना सम्भव नही है। मात्र सक्षिप्त सकेतात्मक विवरण इस प्रकार है—

---

१. रेउ-मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४०९, २. वही, पृ० ४१०-११
३. (i) वही, पृ० ४१२ (ii) ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ६०-६१
(iii) ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ८०५
४. रामकर्ण आसोपा—मारवाड का मूल इतिहास, पृ० २७६-७७
५. गहलोत—मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ० १९३

प्रधान एवं दीवान

१. भण्डारी नराजी—समराजी का पुत्र । वि. स. १५१६ मे दीवान व बाद में प्रधान रहे, राव जोधा के समय मे ।

२. मुहणोत महाराजजी—अमरसीजी का पुत्र । राव जोधा के समय मे दीवान तथा प्रधान रहे ।

३. भण्डारी नाथाजी—नराजी का पुत्र । वि. स. १५४४–४५ मे राव जोधा के समय मे प्रधान रहे ।

४. भण्डारी ऊदाजी—नाथाजी का पुत्र । वि. सं. १५४८ मे राव सातल के समय मे दीवान व प्रधान रहे ।

५. भण्डारी गोराजी—ऊदाजी का पुत्र । राव गागा (वि. स. १५७२–८८) के समय मे दीवान व प्रधान ।

६. भण्डारी धनोजी—डावरजी का पुत्र । राव चन्द्रसेन (वि. स. १६१६–३७) के समय मे दीवान ।

७. भण्डारी लूणाजी—गोराजी का पुत्र । वि. सं. १६५१–५४ तक दीवान व प्रधान, मोटाराजा उदयसिंह (वि. स. १६४०–५१) तथा महाराजा सूरसिंह (वि. स. १६५१–७६) के समय में ।

८. भण्डारी मानाजी—ऊनरजी का पुत्र । मोटाराजा उदयसिंह एवं महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान व प्रधान ।

९. भण्डारी इसीरजी—मोटाराजा उदयसिंह के समय मे दीवान ।

१०. भण्डारी रायचन्दजी—जोधाजी का पुत्र । मोटाराजा उदयसिंह के समय में दीवान ।

११. कोचर मुथा वेलाजी—जाजरजी का पुत्र । महाराजा सूरसिंह के समय में दीवान ।

१२. भण्डारी ईसरदासजी—महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान ।

१३. भण्डारी लालाजी—मानाजी का पुत्र । वि. सं. १६७१–७५ मे महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान व प्रधान ।

१४. भण्डारी पृथ्वीराजजी—महाराजा सूरसिंह के समय में वि. सं. १६७५-७६ में प्रधान ।

१५. भण्डारी लूणाजी—गोराजी का पुत्र । वि. सं. १६७६-८१ मे प्रधान ।

१६. सिंघवी [illegible]जी—महाराजा गजसिंह (वि. १६७६-१६९४) के समय मे दीवान ।

१७. मुहणोत जयमलजी—नैणसी के पिता । वि. सं. १६८६ मे दीवान ।

१८. सिंघवी सुखमलजी—वि. स. १६९०-९३ तक दीवान । महाराजा गजसिंह और [illegible] के समय में ।

१९. भण्डारी [illegible]जी—[illegible]जी का पुत्र । वि. स. १६९४ से १६९७ तक [illegible] महाराजा [illegible] के समय में दीवान ।

२०. **सिंघवी रायमलजी**—शोभाचन्दजी का पुत्र। वि. सं. १६९७ की पौष कृष्णा ५ से दीवान।

२१. **भण्डारी ताराचन्द नारायणोत**—वि. सं. १७१४ में दीवान।

२२. **मुहणौत नैणसी**—जयमल का पुत्र। महाराजा जसवन्तसिंह के समय में वि. स १७१४ से १७२३ तक।

२३. **भण्डारी विट्ठलदासजी**—भगवानदास का पुत्र। वि. सं. १७६२ में दीवान तथा वि. सं. १७६५ की श्रावण शुक्ला १३ से वि. स. १७६६ की कार्तिक वदी ६ तक दीवान व प्रधान। महाराजा अजीतसिंह के समय में।

२४. **भण्डारी खीवसीजी**—रासा भण्डारी का पुत्र। महाराजा अजीतसिंह के समय मे, वि. सं. १७६६ से १७७० के मध्य दीवान व प्रधान।

२५. **भण्डारी रघुनाथजी रायचन्दोत**—वि. सं० १७६७ में दीवान तथा वि. सं० १७७० के चैत्र वि. सं. १७८१ की फागुन वदी १२ तक दीवान।

२६. **भण्डारी माईदासजी**—देवराज का पुत्र। वि. सं. १७६९ मे दीवान।

२७. **समदड़िया मूथा गोकुलदासजी**—वि. सं. १७६९ मे दीवान एवं वि. सं. १७८१ में।

२८. **भण्डारी रघुनाथसिंहजी**—रायचन्द का पुत्र। वि स. १७८२ से ८५ तक पुनः दीवान।

२९. **भण्डारी अमरसिंहजी**—खींवसीजी का पुत्र। वि. सं. १७८५ की आषाढ सुदी १४ से वि. सं. १७८८ तक तथा वि. सं. १७९९ की कार्तिक सुदी १ से वि. सं. १८०१ के ज्येष्ठ तक। महाराजा अभयसिह वि. सं. (१७८१-१८०६) के समय मे दीवान।

३०. **सिंघवी अमरचन्दजी**—सायमलजी का पुत्र। वि. सं. १७९३ आसोज सुदी १० से वि. स. १७९४ चैत्र सुदी ७ तक। महाराजा अभयसिंह के समय मे दीवान।

३१. **भण्डारी गिरधरदासजी**—रतनसिंह का भाई। वि. सं. १८०१ के ज्येष्ठ से वि. सं. १८०४ के भाद्रपद तक। महाराजा अभयसिंह के समय मे दीवान।

३२. **भण्डारी मनरूपजी** - पोमसीजी का पुत्र। वि. सं. १८०४ के भाद्रपद से वि स. १८०६ के मार्गशीर्ष तक। महाराजा अभयसिंहजी के समय में दीवान।

३३. **भण्डारी सूरतरामजी**—मनरूपजी का पुत्र। वि. सं. १८०६-७ में दीवान।

३४. **भण्डारी दौलतरामजी**—थानसीजी का पुत्र। वि. सं. १८०६-७ मे दीवान।

३५. **भण्डारी सवाईरामजी**—रतनसिंह का पुत्र। वि. सं. १८०७ की आश्विन शुक्ला १० से वि. सं. १८०८ के श्रावण कृष्णा २ तक। महाराजा बख्तसिंह (वि. स. १८०८-०९) के समय मे दीवान।

३६. **सिंघवी फत्तेचन्दजी**—सरूपमल का पुत्र। वि. सं. १८०८ के श्रावण कृष्णा २ से वि. सं. १८१८ की आश्विन कृष्णा १४ तक। तथा वि. सं. १८२३ की चैत्र शुक्ला ५ से वि. सं. १८३७ की आश्विन शुक्ला १० तक। कुल २५ वर्ष तक दीवान। महाराजा विजयसिंह के समय में।

३७. **भण्डारी नरसिंहदासजी**—मेसदास का पुत्र। वि. सं. १८१६ के ज्येष्ठ सुदी ५ से १८२० की ज्येष्ठ सुदी ५ तक। महाराजा विजयसिंह (वि. सं. १८०६-५०) के समय मे दीवान।

३८. **मुहणोत सूरतरामजी**—भगवतसिंह का पुत्र। वि. सं. १८२० की ज्येष्ठ शुक्ला ५ से वि. सं. १८२३ की आश्विन शुक्ला ६ तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे दीवान।

३६. —दीवान पद खालसे रहा, किन्तु वि. स. १८३७ से १८४७ तक दीवान का सारा कार्य सिंघवी फतेचन्द के पुत्र ज्ञानमलजी देखते थे।

४०. **सिंघवी ज्ञानमलजी**—फतेचन्द का पुत्र। वि. स. १८४७ की मार्गशीर्ष शुक्ला २ से माघ शुक्ला ५ तक दीवान। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

४१. **भण्डारी भवानीदासजी**—जीवनदास का पुत्र। वि. स. १८४७ के माघ शुक्ला ५ से वि. सं. १८५१ की वैशाख कृष्णा १४ तक दीवान। महाराजा विजयसिंह तथा भीमसिंह (वि. स. १८५०-६०) के समय मे।

४२. **भण्डारी शिवचन्दजी**—शोभाचन्द का पुत्र। वि. सं. १८५१ की वैशाख कृष्णा १४ से वि. स. १८५४ की आश्विन शुक्ला १४ तक तथा वि. सं. १८५५ की कार्तिक शुक्ला ११ से वि. सं. १८५६ की वैशाख शुक्ला ११ तक दीवान। महाराजा भीमसिंह के समय में।

४३. —वि. स. १८५४ आश्विन शुक्ला १ से १८५५ की श्रावण कृष्णा ६ तक दीवान पद खालसे रहा, किन्तु कार्य जोधराजजी के पुत्र सिंघवी नवलराजजी देखते थे।

४४. **सिंघवी नवलराजजी**—जोधराज का पुत्र। वि सं. १८५५ के श्रावण कृष्णा ६ से कार्तिक कृष्णा ६ तक दीवान। महाराजा भीमसिंह के काल मे।

४५. **मुहणोत सरदारमलजी**—सवाईराम का पुत्र। वि. सं. १८५६ वैशाख शुक्ला ११ से वि. स. १८५८ के आश्विन शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा भीमसिंह के समय मे।

४६. —वि. सं. १८५८ के आश्विन शुक्ला ३ से वि. सं. १८५६ के भाद्रपद कृष्णा २ तक दीवान का पद खालसे रहा किन्तु काम सिंघवी जोधराजजी देखते थे।

४७. **भण्डारी गंगारामजी**—जसराज का पुत्र। वि. सं. १८६० के मार्ग शीर्ष कृष्णा ७ से ज्येष्ठ कृष्णा ४ तक दीवान।

४८. **मुहणोत ज्ञानमलजी**—सूरतराम का पुत्र। वि. स. १८६० के ज्येष्ठ कृष्णा ४ से वि. सं. १८६२ के आश्विन शुक्ला ४ तक दीवान। महाराजा मानसिंह (वि. सं. १८६०-१६००) के समय में।

४६. **कोचर मेहता सूरजमलजी**—सोजत निवासी। वि. सं. १८६२ के आश्विन शुक्ला ४ से वि. सं. १८६४ के आश्विन शुक्ला ८ तक। महाराजा मानसिंह के समय में दीवान।

५०. **सिंघवी इन्द्रराजजी**—भीवराज का पुत्र। वि. सं. १८६४ के आश्विन शुक्ला ८ से वि. सं. १८७२ के आश्विन शुक्ला ८ तक। महाराजा मानसिंह के शासन काल मे दीवान।

५१. —वि. सं १८७२ के कार्तिक शुक्ला १ से माघ शुक्ला ३ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम मेहता अखेचन्दजी देखते थे।

५२. **सिंघवी फतेराजजी**—इन्द्रराजजी का पुत्र। अलग-अलग समय मे कुल सात बार महाराजा मानसिंह के समय मे दीवान रहे, यथा—वि. सं. १८७२ के माघ शुक्ला ३ से भाद्रपद शुक्ला १३ तक। वि. सं. १८७३ की कार्तिक शुक्ला १२ से वैशाख शुक्ला १४ तक। वि. सं. १८७६ की आषाढ़ वदी ६ से वि. सं. १८८१ की चैत्र सुदी ४ तक। वि. सं १८८५ के कार्तिक कृष्णा १ से वि. सं. १८८६ के श्रावण कृष्णा ३० तक। वि. सं. १८८७ से वि. सं. १८८८ के चैत्र शुक्ला ६ तक। वि. सं. १८६२ के माघ कृष्णा १० से वैशाख शुक्ला १३ तक। वि. सं. १८६४ के आश्विन शुक्ला ७ से वि सं. १८६५ के चैत्र शुक्ला १ तक।

५३. **मेहता अखेचन्दजी**—खीवसी का पुत्र। वि. स० १८७३ के वैशाख शुक्ला ५ से वि. स० १८७४ श्रावण शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा मानसिंह के समय में।

५४. **मेहता लक्ष्मीचन्दजी**—अखेचन्द का पुत्र। ये महाराजा मानसिंह और महाराजा तख्तसिंह (वि. सं० १६००-२६) के समय मे कुल चार बार दीवान पद पर अलग-अलग समय मे रहे, यथा—वि० स० १८७४ श्रावण शुक्ला ३ से वि. सं० १८७६ वैशाख शुक्ला १४ तक। वि. सं० १८६६ चैत्र शुक्ला १ से वि. सं० १६०० के फाल्गुन कृष्णा ३ तक। वि. सं० १६०० के ज्येष्ठ से वि. सं० १६०२ के कार्तिक शुक्ला ६ तक। वि स० १६०३ आश्विन शुक्ला ३ से वि. सं० १६०७ आश्विन कृष्णा ७ तक।

५५. —वि. स० १८७६ वैशाख शुक्ला १४ से आषाढ कृष्णा ६ तक दीवान पद खालसे रहा, किन्तु काम सोजत निवासी मेहता सूरजमलजी करते थे। इसी तरह वि. सं० १८८१ की चैत्र शुक्ला ४ से वि. सं० १८८२ की पौष शुक्ला २ तक दीवान पद खालसे रहा। काम सिंघवी फोजराजजी देखते थे।

५६. **सिंघवी इन्द्रमलजी**—जोरावरमलजी का पुत्र। वि. सं० १८८२ की पौष शुक्ला २ से वि. सं० १८८५ कार्तिक कृष्णा १ तक दीवान। महाराजा मानसिंह के समय मे।

५७. —वि. स १८८६ के श्रावण से १८८७ तक दीवान पद खालसे किन्तु काम सिंघवी गुलराजजी के पुत्र फोजराजजी देखते थे।

५८ **सिंघवी गंभीरमलजी**—फतेमल का पुत्र। वि स० १८८८ चैत्र शुक्ला ६ से वि. स० १८८६ चैत्र कृष्णा १३ तक, वि. सं० १८६२ से १८६४ तक, वि. सं० १८६५ से वि. सं० १८६७ तक तथा वि. सं० १६०० मे कुल चार बार अलग अलग समय मे तथा महाराजा मानसिंह के काल मे दीवान रहे।

५६. **मेहता जसरूपजी**—नाथजी के कामदार थे। वि सं० १८८६ चैत्र कृष्णा १३ से वि. सं० १८६० कार्तिक शुक्ला ४ तक दीवान। मानसिंहजी के समय में।

६०. —वि. सं० १८६० कार्तिक शुक्ला ४ से वि. स० १८६१ श्रावण कृष्णा १४ तक दीवान पद खालसे रहा। काम भण्डारी लखमीचन्दजी देखते थे महाराजा मानसिंह के समय मे।

६१. **भण्डारी लखमीचन्दजी**—कस्तूरचन्द का पुत्र। वि. स० १८६१ श्रावण कृष्णा १४ से वि. सं० १८६२ माघ कृष्णा १० तक। वि० सं० १८६४ श्रावण कृष्णा ४ से आश्विन शुक्ला ४ तक तथा वि. सं० १८६७ वैशाख शुक्ला १२ से वि. सं० १८६८ चैत्र कृष्णा १४ तक। कुल तीन बार दीवान महाराजा मानसिंह के समय मे रहे।

६२. सिंघवी इन्द्रमलजी—जीतमल का पुत्र। वि. सं० १८९७ आश्विन कृष्णा १२ से वैशाख शुक्ला १२ तक दीवान महाराजा मानसिंह के समय मे।

६३. कोचर बुधमलजी—मेहता सूरजमल का पुत्र, सोजत निवासी। वि. सं० १८९८ चैत्र कृष्णा १४ से वि० सं० १८९९ भाद्रपद शुक्ला १२ तक, मानसिंह के समय मे दीवान रहे।

६४. सिंघवी सुखराजजी—वनराज का पुत्र। वि. सं० १८९९ भाद्रपद शुक्ला १२ से मार्गशीर्ष कृष्णा ६ तक। मानसिंह के समय मे दीवान।

६५.   —वि. सं० १९०२ कार्तिक शुक्ला ९ से माघ कृष्णा ९ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम सिंघवी फौजराज, भण्डारी शिवचन्द, मेहता गोपालदास आदि देखते थे।

६६ भण्डारी शिवचन्दजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि. स० १९०२ माघ कृष्णा ९ से वि. स० १९०३ आश्विन शुक्ला ३ तक महाराजा तख्तसिंह (वि. सं० १९००–२९) के समय मे दीवान।

६७. मेहता मुकुन्दचन्दजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि. सं० १९०७ आश्विन शुक्ला ७ से कार्तिक कृष्णा ४ तक। वि. सं० १९०९ मार्गशीर्ष कृष्णा १ से वि. सं० १९१० माघ शुक्ला ९ तक। वि. सं० १९१६ आषाढ कृष्णा ८ से वि. सं० १९१९ श्रावण कृष्णा १ तक तथा वि. सं० १९२० से वि. सं० १९२२ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा ९ तक। कुल चार बार दीवान। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

६८. रावराजमल लोढ़ा—राव रिधमल का पुत्र। वि. सं० १९०७ चैत्र कृष्णा १० से वि. सं० १९०८ भाद्रपद शुक्ला १३ तक दीवान। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

६९.   —वि. सं० १९०८ भाद्रपद शुक्ला १३ से पौष शुक्ला २ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम मेहता मुकुन्दचन्द, सिंघवी फोजराज, मेहता विजयसिंह आदि देखते थे। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

७०. मेहता विजयसिंहजी—कृष्णगढ़ निवासी मेहता करणमल का पुत्र। वि. सं. १९०८ पौष शुक्ला २ से वि. सं० १९०९ आश्विन कृष्णा १ तक। वि. सं० १९१३ पौष शुक्ला १० से वि. सं० १९१५ पौष शुक्ला ९ तक। वि. सं० १९२५ कार्तिक शुक्ला ५ से मार्गशीर्ष शुक्ला ५ तक दीवान अलग-अलग समय मे। तख्तसिंह के काल मे।

७१. रा. ब. मेहता विजयसिंह—वि. सं० १९२९ कार्तिक शुक्ला १४ से वि. स० १९३१ फाल्गुन शुक्ला ९ तक। तथा वि. स० १९३३ माघ शुक्ला १५ से १९४९ भाद्रपद शुक्ला १३ तक महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (वि. सं० १९२९-५२) के काल मे दीवान।

७२. मेहता गोपाललाल तथा मेहता हरजीवनदास गुजरात वाले—वि. सं० १९१५ मे महाराजा तख्तसिंह के समय मे दीवान। अकेले मेहता हरजीवनदास वि. सं० १९३१-३२ मे भी दीवान रहे महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय के समय मे।

७३. रा. ब. लोढा सरदारमलजी—वि. सं० १९३३ भाद्रपद शुक्ला ८ से माघ शुक्ला १५ तक महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के समय में दीवान।

७४. मेहता सरदारसिंहजी—विजयसिंह का पुत्र। वि. सं० १९४९ भाद्रपद शुक्ला १३ से

वि. सं० १६५८ आषाढ़ शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा जसवन्तसिंह तथा सरदारसिंह (वि. सं० १६५२-६७) के समय मे।

७५. —दीवान पद निम्नानुसार खालसे रहा—वि. सं० १६१० मे किन्तु काम मेहता गोपालदास, मेहता हरजीवनदास एवं मेहता शंकरलाल देखते थे। वि. सं० १६१३ मे पौष मास मे किन्तु काम मेहता विजयसिह, राजमल लोढा, मेहता हरजीवन देखते थे। वि. सं०१६-१६ के श्रावण चैत्र मे किन्तु काम मेहता हरजीवनदास, सिंघवी रतनराज, आदि देखते थे। वि. सं० १६२३ कार्तिक से वि. सं० १६२४ के भाद्रपद तक किन्तु काम वेद मेहता, प्रतापमल, मेहता मुकुन्दचन्द, मेहता गोपाललाल तथा भण्डारी पचानदास देखते थे। वि. स० १६२५ ज्येष्ठ से १६२६ आश्विन तक, काम मेहता विजयमलजी देखते थे। वि. सं. १६२६ में किन्तु काम मेहता हरजीवनदास, विजयसिंह, सिंघवी, समरथराज आदि देखते थे।

फौज बक्शी

१. **मुहणोत सूरतरामजी**—वि. सं० १८०८ श्रावण कृष्णा ३ से वि. सं० १८१३ की श्रावण कृष्णा १३ तक। महाराजा बख्तसिंह एवं विजयसिंह के समय मे।

२. **भण्डारी दौलतरामजी**—थानसिंह का पुत्र। वि. सं० १८१३ श्रावण कृष्णा १३ से वि. सं० १६१६ तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

३. **सिंघवी भींवराजजी**—लखमीचन्द का पुत्र। वि सं० १८२४ फाल्गुन कृष्णा ११ से वि. सं० १८३० तक तथा वि सं० १८३२ भाद्रपद शुक्ला १४ से वि. सं० १८४७ ज्येष्ठ शुक्ला ४ तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

४. **सिंघवी हिन्दूमलजी**—चन्द्रभाण का पुत्र। वि० सं० १८३० चैत्र कृष्णा १२ से वि. सं० १८३२ भाद्रपद शुक्ला १४ तक। महाराजा विजयसिंह के समय में।

५. **सिंघवी अखेराजजी**—भींवराज का पुत्र। वि. सं० १८४७ ज्येष्ठ से वि. सं० १८५१ श्रावण शुक्ला ११ तक तथा वि. सं० १८५६ चैत्र कृष्णा ६ से वि. सं० १८५७ की प्रथम ज्येष्ठ सुदी १२ तक कुल दो बार। महाराजा विजयसिंह एव भीमसिंह के समय मे।

६. **भण्डारी शिवचन्दजी**—वि सं० १८५१ श्रावण शुक्ला ११ से वि. सं० १८५५ श्रावण कृष्णा १४ तक। महाराजा भीमसिंह के समय मे।

७. **भण्डारी भवानीरामजी**—दौलतराम का पुत्र। वि. सं० १८५५ श्रावण कृष्णा १४ से वि. सं० १८५६ चैत्र कृष्णा ६ तक महाराजा भीमसिंह के काल मे।

८. **सिंघवी मेघराजजी**—अखेराज का पुत्र। वि. सं० १८५७ प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला १२ से वि. सं० १८७२ कार्तिक कृष्णा १४ तक तथा वि. स० १८७६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा १२ से वि. सं० १८८२ माघ शुक्ला १२ तक महाराजा भीमसिंह एवं मानसिंह के समय में।

९. **भण्डारी चतुर्भुजजी**—वि. स० १८७२ कार्तिक कृष्णा १४ से वि. सं० १८७४ द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ तक महाराज मानसिंह के शासनकाल मे।

१०. **भण्डारी अगरचन्दजी**—शिवचन्द का पुत्र। वि. सं० १८७४ द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ से वि स० १८७६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा १२ तक महाराजा मानसिंह के समय मे।

११. सिघवी फौजराजजी—गुलराज का पुत्र। वि. स० १८९३ श्रावण शुक्ला १ से वि सं० १९१२ आषाढ़ कृष्णा ३ तक। महाराजा मानसिंह एवं तख्तसिंह के समय में।

१२. सिंघवी देवराजजी—पिता फौजराजजी की मृत्यु के पश्चात् यह फौज बख्शी नियुक्त हुआ किन्तु कार्य मुहणोत विजयसिंह तथा मेहता कालूराम वि. सं० १९१२ आषाढ़ कृष्णा ३ से वि. सं० १९१९ श्रावण कृष्णा १ तक देखते थे। वि सं० १९१९ आषाढ़ सुदी ४ से वि. सं० १९२८ कार्तिक कृष्णा ६ तक स्वय देखते थे, महाराजा तख्तसिंह के समय में।

१३. सिंघवी समरथराजजी—सुखराज का पुत्र। वि. सं० १९२९ मार्गशीर्ष शुक्ला ३ से वि. सं० १९३१ चैत्र कृष्णा ६ तक महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के काल में।

१४. सिंघवी करणराजजी—सूरजराज का पुत्र। वि. सं० १९३१ चैत्र कृष्णा ६ से वि. स० १९३४ आश्विन शुक्ला ५ तक महाराजा जसवतसिह द्वितीय के काल मे।

१५. सिंघवी किशनराजजी—करणराज का पुत्र। वि. स० १९३४ आश्विन शुक्ला ५ से वि. सं० १९३५ भाद्रपद कृष्णा ३ तक जसवन्तसिंह द्वितीय के समय मे।

१६. सिंघवी बच्छराजजी—भींवराज का वशज। वि. सं० १९४५ से १९५६ तक। महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय तथा सरदारसिंह के शासन काल मे।

(ग) बीकानेर राज्य

जोधपुर राज्य के संस्थापक राव जोधा के पुत्र बीका ने नवीन राज्य की स्थापना से प्रेरित होकर तथा अपने पिता की स्वीकृति से चाचा कांधल एवं नापा साखला के सहयोग से जागलू प्रदेश को जीता और रातीघाटी पर वि सं० १५४२ मे गढ की नीव डाली व उसके आसपास मे अपने नाम से बीकानेर नगर बसाया।[1]

बच्छावतों की ख्यात मे लिखा मिलता है कि बीका जब नवीन राज्य की स्थापना के लिये जोधपुर से जांगलू की ओर रवाना हुआ तो उस समय वील्हा का सातवा वशधर बच्छराज (या वत्स-राज) नामक एक जैन मुत्सद्दी भी उसके साथ था। बच्छराज एक कुशल योद्धा एवं धुरंधर राजनीतिज्ञ था। वह मण्डोर के राव रणमल तथा जोधपुर के राव जोधा के साथ रहकर भी काम कर चुका था। बच्छराज की इस योग्यता के फलस्वरूप बीका को नवीन राज्य स्थापना एव उसके प्रारंभिक संचालन मे काफी सहयोग मिला। इससे प्रभावित होकर राव बीका ने उसे अपना मत्री बनाया, 'पर भूमि पंचानन' की उपाधि से विभूषित किया तथा बच्छराज के नाम से 'बच्छासर' नामक गाव बसाया। इसी बच्छराज के नाम से इसके वंशज आगे चलकर बच्छावत के रूप मे प्रसिद्ध हुए।

ओझाजी के अतिरिक्त बीकानेर राज्य के विभिन्न इतिहासों मे उक्त ख्यात का उपर्युक्त विवरण उपलब्ध नही होता अपितु बीका जब नवीन राज्य की स्थापना के उद्देश्य से जोधपुर से वि. स० १५२२ मे रवाना हुआ तो कामदारो के रूप मे वेदलाला, लाखणसी, कोठारी चौथमल तथा बच्छराज के दोनो पुत्र—बच्छावत मेहता वरसिंह व नारसिंह आदि जैनवीरो का उसके साथ रवाना

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ९६

होने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[1] किन्तु डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने बच्छावतों की ख्यात के उपर्युक्त वृतान्त का अवश्य समर्थन किया है और यह भी लिखा है कि वरसिंह, वेद मेहता लाला तथा लाखणसी आदि को बीका ने बीकानेर राज्य के दायित्वपूर्ण पदों पर भी नियुक्त किया था ।[2]

इन दोनो ही विवरणों से यह स्पष्ट है कि बीकानेर राज्य की स्थापना मे बच्छराज तथा वेदलाला, लाखणसी, कोठारी चौथमल, बच्छावत नारसिंह, वरसिंह आदि जैन महापुरुषो के रूप में राव बीका को काफी सहयोग प्राप्त हुआ ।

मेहता कर्मचन्द बच्छावत :

उपर्युक्त बच्छराज की चौथी पीढ़ी मे संग्रामसिंह हुआ । यह संग्रामसिंह भी बीकानेर के महाराजा कल्याणमल (वि. सं० १५९८-१६३०) का तथा महाराजा रायसिंह (वि. सं० १६३०-६८) का दीवान रहा । इसकी मृत्यु के पश्चात् महाराजा रायसिंह ने उसके पुत्र कर्मचन्द को दीवानगिरी की खिलअत दी तथा सिरोपाव, हाथी, पालकी आदि भेंट स्वरूप प्रदान की । वि. सं० १६२८ के श्रावण शुक्ला ११ को कर्मचन्द के यहां रायसिंह मोठ जीमने गया, उस समय कर्मचन्द ने रायसिंह को पाच हजार रुपये नजर किये ।[3] महाराजा कल्याणमल तक बीकानेर राज्य के सम्बन्ध मुगल साम्राज्य से अधिक अच्छे नही थे । उन दिनो मुगल सत्ता से बिगाड़ रखना राज्य के हित मे नही था । कर्मचन्द इस तथ्य की गहराई को अनुभव करता था, अतः उसने महाराजा रायसिंह को दिल्ली की बादशाहत से सम्बन्ध सुधारने की सलाह दी ताकि राज्य को स्थायित्व व शान्ति प्राप्त हो सके ।[4] रायसिंह ने सलाह की उपयोगिता स्वीकार की और बादशाह अकबर से सम्बन्ध सुधारने का प्रयास किया, जिसमें काफी सफलता प्राप्त हुई । मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की पुत्री जसमादे से रायसिंह के विवाह के अवसर पर विवाह की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व कर्मचन्द ने ही निभाया ।[5] वि. सं० १६४५ मे बीकानेर के वर्तमान किले का निर्माण कार्य आरभ कराया जो वि. सं० १६५० में पूर्ण हुआ । इस निर्माण कार्य की देख-रेख का सम्पूर्ण दायित्व भी महाराजा रायसिंह ने कर्मचन्द को ही सौपा ।[6]

कर्मचन्द कुशल प्रशासक ही नही, अपितु योग्य योद्धा भी था । नागपुर से मिर्जा इब्राहिम जब ससैन्य बीकानेर पर आक्रमण करने आया तब कर्मचन्द ने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला कर उसे पुनः लौटने के लिए मजबूर कर दिया । गुजरात की चढाई और मिर्जा मुहम्मद हुसैन को हराने मे भी कर्मचन्द महाराजा रायसिंह के साथ रहा । सोजत, जालोर तथा सिन्ध की विजय में भी कर्मचन्द का योगदान काफी स्मरणीय व महत्त्वपूर्ण रहा ।

कर्मचन्द पर बादशाह अकबर की भी विशेष कृपा थी । किन्ही कारणो से महाराजा रायसिंह जब कर्मचन्द से अप्रसन्न हो गया तो यह दिल्ली जाकर अकबर के पास ही मृत्यु पर्यन्त रहा ।[7]

---

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५२, २. वही पृ० ७५२
३. डॉ० दशरथ शर्मा—दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ९१
४. वही, पृ० ९१–९२, ५. वही, पृ० १०७
६. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १७९
७. ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१३

कर्मचन्द के जीवन और कार्यों का वर्णन प्रमोद माणिक्य गणि के शिष्य जयसोम द्वारा रचित "कर्मचन्द्रवशोत्कीर्तनकं काव्यम्" मे विस्तार से मिलता है।

वेद मेहता महाराव हिन्दूमल :

राव बीका द्वारा बीकानेर राज्य की स्थापना में एक प्रमुख सहयोगी वेद मेहता लाखणसी का सातवा वंशधर तथा वेद मेहता मूलचन्द का पुत्र हिन्दूमल बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह (वि. सं० १८४४-८५) और रत्नसिंह (वि. स० १८८५-१६०८) का समकालीन एक प्रतिभा सम्पन्न और दूरदर्शी प्रशासक था। इसी की प्रबन्ध-कुशलता के फलस्वरूप जब तक यह जीवित रहा, बीकानेर मे पोलिटिकल एजेन्ट रखने की आवश्यकता अनुभव नही हुई। इसने राज्य के प्रत्येक कार्य को बड़े मनोयोग, बुद्धिमानी और चतुराई से निपटाया।

यह महाराजा सूरतसिंह के समय मे वि. सं० १८८४ में सर्वप्रथम राज्य-सेवा मे प्रविष्ट होकर दिल्ली मे वकील नियुक्त हुआ। दिल्ली मे सम्पन्न कार्यों व इसकी योग्यता से प्रसन्न होकर महाराजा रत्नसिंह ने इसे अपना दीवान बनाया तथा 'राजमुद्रा' लगाने जैसा विश्वसनीय व महत्वपूर्ण कार्य भी इसी ही सौपा[1] वि. सं० १८८६ के श्रावण मास मे अंग्रेज अफसर जार्ज क्लार्क जब शेखावाटी मे आया तो हिन्दूमल ने उस समय उससे भेंट कर बीकानेर राज्य मे होने वाली लूटमार की बडी समस्या को सुलझाया, गढ़ियो को नष्ट करवाया एवं उनके स्थान पर थाने बिठवाये।[2] वि. सं० १८८८ मे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद अकबरशाह (द्वितीय) की ओर से महाराजा रत्नसिंह के पास जब खिलअत भेजी गई, उस अवसर पर किले के बाहर आयोजित समारोह मे वेद मेहता हिन्दूमल की सेवाओ से प्रसन्न होकर महाराजा रत्नसिंह ने उसे 'महाराव' का खिताब दिया एव उसकी हवेली पर मेहमान होकर उसको सम्मानित किया।[3]

वि. सं० १८६१ मे अंग्रेज गवर्नर जनरल के एजेन्ट कर्नल एल्विस का एक पत्र महाराजा को प्राप्त हुआ, जिसमे बीकानेर राज्य के सीमा सम्बन्धी प्रबन्ध व निर्णय हेतु महाराजा रत्नसिंह को बुलवाया किन्तु महाराजा स्वय नही गया और मेहता हिन्दूमल को भेज दिया।[4] हिन्दूमल ने सीमा सम्बन्धी झगडों का निपटारा करवाया, जिसमे राज्य मे शान्ति स्थापित हुई। वि. सं० १६०२ में सिक्ख युद्ध के समय हिन्दूमल भी बीकानेर की सेना के साथ था। उस समय उसके द्वारा की गई सेवाओ से प्रसन्न होकर तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर जनरल सर हेनरी हार्डिंग्ज ने उसको शिमला मे आमन्त्रित कर खिलअत प्रदान की।[5]

महाराजा रत्नसिंह का वि. सं० १८६६ मे उदयपुर के महाराणा सरदारसिंह की राजकुंवरी के साथ विवाह के अवसर पर हिन्दूमल भी महाराजा के साथ गया। उस समय वहां हिन्दूमल की कार्यकुशलता से प्रभावित होकर महाराणा ने उसे 'ताजीम' का सम्मान दिया तथा मेवाड के पोलिटिकल अफसरो के पास जो मुकदमे आदि चल रहे थे उनको तय कराने का दायित्व उसे सौपा गया, जिसे उसने बड़ी तत्परता व कुशलता से पूर्ण किया। इसी प्रकार महाराणा सरदारसिंह 'गया-यात्रा'

---

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४१४,
२. वही, पृ० ७५६
३. वही. पृ० ४२० एव ७५६,
४. वही, पृ० ४२२,
५. वही, पृ० ४२७ एव ७५६-५७

सम्पन्न करते हुए वि. सं० १८९७ मे बीकानेर लौटे और महाराजा रत्नसिंह की राजकुंवरी से विवाह किया तो महाराणा एव महाराजा दोनो ने ही हिन्दूमल की हवेली पर जाकर उसका आतिथ्य ग्रहण किया। कर्नल सदरलैड का वि. सं० १९०४ मे जब बीकानेर आगमन हुआ तो हिन्दूमल बीमार होते हुए भी महाराजा के साथ वह उसकी पेशवाई को गया। वापस लौटते हुए उसकी हालत अधिक बिगड गई एव ४२ वर्ष की अल्प आयु मे ही उसकी मृत्यु हो गई।[1]

हिन्दूमल अपने विनम्र स्वभाव, कार्यकुशलता व प्रशासनिक योग्यता के कारण महाराजा रत्नसिंह का ही नही अपितु अंग्रेज अधिकारियो का भी प्रिय बन गया। इसकी मृत्यु पर कप्तान जैक्सन ने वि. सं १९०४ की माघ शुक्ला ७ के पत्र मे शोक प्रकट करते हुए हिन्दूमल की योग्यता की काफी प्रशंसा की।[2] महाराजा रत्नसिंह ने अपने प्रिय दीवान की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिये 'हिन्दूमल कोट' नामक स्थान बनवा दिया।[3]

इसी प्रकार बीकानेर राज्य के शासन-प्रबन्ध में अनेक जैनियों ने सैनिक व राजनीतिक योगदान देकर अमूल्य सेवाए दी है। स्थानाभाव के कारण उन सबका वृत्तान्त यहां प्रस्तुत करना सभव नही है। अत: उपर्युक्त जैन महापुरुषों के साथ उनका निम्नानुसार संक्षिप्त उल्लेख ही किया जा रहा है—

दीवान

१. बच्छराज या वत्सराज—राव बीका के समय मे दीवान।

२. वेद मेहता लाखणसी—राव बीका के समय मे तथा बीकानेर राज्य के आरम्भ काल मे दीवान।

३. मेहता करमसी बच्छावत—राव लूणकरण (वि. सं० १५६१–८३) के समय में दीवान। यह बच्छराज का पुत्र था।

४. मेहता वरसिंह बच्छावत—करमसी का छोटा भाई। रावजेतसिंह (वि. सं० १५८३-९८) के समय मे दीवान।

५. मेहता नगराज बच्छावल—वरसिंह का पुत्र। राव जेतसिंह के समय मे दीवान।

६. मेहता संग्रामसिंह बच्छावत—नगराज का पुत्र। राव कल्याण मल (वि. स० १५९८-१६३०) के समय में।

७. मेहता कर्मचन्द बच्छावत—संग्रामसिंह का पुत्र। राव कल्याणमल तथा महाराजा रायसिंह (वि. सं० १६३०-६८ के समय मे दीवान।

८. वेद मेहता ठाकुरसी—उपर्युक्त वेद मेहता लाखणसी का पांचवां वंशधर। महाराजा रायसिंह के समय मे।

---

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५६-५७

२. पाउलेट—गजेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट, पृ० ८५

३. (i) ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५७

(ii) यह स्थान बीकानेर सभाग और श्रीगंगानगर जिले मे पाकिस्तान की सीमा पर स्थित है।

९. मेहता भागचन्द व लक्ष्मीचन्द—मेहता कर्मचन्द बच्छावत के पुत्र। महाराजा सूरसिंह (वि. स० १६७०-८८) के समय मे वि. सं० १६७०-७१ के वर्ष मे।

१०. अमरचन्द सुराणा—महाराजा सूरतसिंह (वि. स० १८४४-१८८५) के समय मे।

११. वेदमेहता महाराव हिन्दूमल—महाराजा रत्नसिंह (वि. सं० १८८५-१९०८) के समय मे।

१२. मेहता किशनसिंहजी—महाराजा डूंगरसिंह (वि. स० १९२९-४४) के समय मे वि. स० १९३५ मे एक वर्ष तक।

१३. इसी प्रकार राखेचा मानमल जी तथा कोचर मेहता शहामलजी का उल्लेख भी बीकानेर राज्य के इतिहास मे दीवान के रूप मे मिलता है।

(घ) किशनगढ़ राज्य

किशनगढ़ अजमेर जिले मे स्थित है। जोधपुर के महाराजा उदयसिंह (वि. सं १६४०-५१) के छोटे पुत्र किशनसिंह ने बादशाह जहागीर के शासनकाल मे अपने बाहुबल से सेठोलाव स्थान को जीतकर वि. स० १६६८ की माघ शुक्ला पंचमी को गुन्दोलाव झील के सुरम्य तट पर अपने नाम से किशनगढ़ की स्थापना की तथा इसे अपने नवीन राज्य की राजधानी बनाया।[1] इस राज्य की स्थापना से लेकर आगे के काल में जो-जो जैन दीवान हुए, उनका सक्षिप्त विववरण इस प्रकार है—

१. मुहणोत रायचन्द्रजी—ये उपर्युक्त किशनसिंह के साथ जोधपुर से आये। किशनगढ राज्य व नगर बसाने मे काफी सहयोग दिया। महाराजा किशनसिंह (वि. सं० १६६२-७२) के समय मे प्रथम जैन दीवान बने तथा वि. सं० १७२० तक दीवान पद पर कार्य करते रहे।

२. मेहता कृष्णसिंह मुहणोत—महाराजा मानसिंह (वि. सं० १७१५-६३) के समय मे दीवान रहे।

३. मेहता आसकरण मुहणोत—महाराजा राजसिंह (वि. स० १७६७-१८०५) के समय मे दीवान रहे।

४. मेहता रामचन्द्र मुहणोत—महाराजा बहादुरसिंह (वि. स० १८०६-३८) के समय मे।

५. मेहता हठीसिंह मुहणोत—महाराजा बहादुरसिंह के समय मे दीवान रहे।

६. मुहणोत हिन्दूसिंह—महाराजा बहादुरसिंह के समय मे माईदासजी के साथ दीवानगी की।

७. मेहता जोगीदास मुहणोत—महाराजा बिड़दसिंह (वि सं० १८३८-४५) तथा प्रतापसिंह (वि. स० १८४५-५४) के समय मे दीवान रहे।

८. मेहता चेनसिंह मुहणोत—महाराजा प्रतापसिंह के समय में दीवान रहे।

९. मेहता शिवदास मुहणोत—महाराजा कल्याणसिंह (वि. सं० १८५४-८९) के समय मे दीवान रहे।

१०. मेहता करणसिंह मुहणोत—वि. सं० १८७७-१८९६ के मध्य दीवान रहे। इनके द्वितीय पुत्र मेहता विजयसिंह तथा पौत्र सरदारसिंह भी जोधपुर मे दीवान रहे।

११. मेहता मोखमसिंह—मेहता करणसिंह का पुत्र। वि. सं० १८९६ से वि. सं० १९०८ तक दीवान रहे।

---

१. किशनगढ़ राज्य और महाराजा सुमेरसिंह, पृ०, १७-१८

उपर्युक्त मुहणोत परिवार के अतिरिक्त बोथरा परिवार के सदस्य भी दीवान रहे। मेहता उम्मेदसिंह, मेहता रघुनाथसिंह, मेहता माधवसिंह आदि जैन वीरो ने किशनगढ़ राज्य मे फौजबख्शी के पद पर भी कार्य किया।

(ङ) सिरोही राज्य

सिरोही दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान मे स्थित और गुजरात की सीमाओ से मिला हुआ चौहान राजपूतो की देवड़ा शाखा का प्रसिद्ध राज्य है। यहां पर जैन मतावलम्बी सिंघी परिवार के लोगो ने लम्बे समय तक दीवानगी की। दीवान पद पर कार्य करने वाले ऐसे महापुरुष निम्न है—

सिंघी श्रीवंतजी, सिंघी श्यामजी, सिंघी सुन्दरजी, सिंघी अमरसिंहजी, सिंघी हेमराजजी, सिंघी कानजी, सिंघी पोमाजी, सिंघी जोरजी, सिंघी कस्तूरचन्दजी, रायबहादुर सिंघी जवाहरचन्दजी। इन सबमे सिंघी कानजी, कस्तूरचन्दजी तथा जवाहरचन्दजी ने अलग-अलग समय मे तीन-तीन बार दीवान पद पर कार्य किया। एक बार बाफना चिमनलालजी दबानीवाले भी दीवान रहे।

(च) अन्य

राजस्थान के अन्य राज्यों में भी जैन मतावलम्बी दीवान व फौजबख्शी पद पर आसीन रहे है, यथा—

प्रतापगढ़ देवलिया मे सुजानमलजी बांठिया दीवान पद पर, झालावाड़ में सुराणा गंगाप्रसादजी महाराणा पृथ्वीसिंह के समय मे फौजबख्शी तथा इन्हीं गंगाप्रसादजी के पुत्र सुराणा नरसिंह दासजी फौजबख्शी एवं बांसवाड़ा राज्य में कोठारी परिवार के अनेक सदस्य दीवान पद पर आसीन रहे है।

इसी तरह राजस्थान के अन्य विभिन्न राज्यों, जागीरदारो व ठाकुरो के यहा पर भी मुंशी कामदार, मुत्सद्दी, अहलकार, वकील, सैनिक आदि पदों पर अनेक जैनियो ने बड़ी योग्यता पूर्वक कार्य किया है, जिनकी सूची बहुत लम्बी होने के कारण यहां देना संभव नही है।

४० | जयपुर के जैन दीवान

●

पं० भंवरलाल जैन

जयपुर-निर्माण से पूर्व जयपुर राजवश के पूर्वजो का इस ढूंढाड़ प्रान्त मे एक हजार वर्ष से दौरदौरा रहा है। विक्रम की १०-११वी शती से यह कछवाहा वश मध्यप्रदेश से आकर राजस्थान मे वसा है और विभिन्न स्थानो पर इन्होने अपनी राजधानियाँ वनाई है। तभी से जैनो का इनके साथ विशेष सम्पर्क रहा है। नरवर—ग्वालियर से आकर इस वश ने सर्वप्रथम दौसा मे जो उस समय धवलगिरि के नाम से विख्यात था—अपनी राजधानी वनाई। दौसा के वाद खोह रेवारियान—जो शातिनाथजी की खोह के नाम से प्रसिद्ध है—वहाँ राजधानी वनी। इसके वाद रामगढ पर अधिकार हुआ और फिर आमेर में। यह सव स्थान परिवर्तन ११-१२वी शताव्दी मे हो गया। तत्पश्चात् विक्रम संवत् १७८४ में जयपुर वसाया गया। इस सुन्दर नगर को वसाने वाले अद्भुत प्रतिभाशाली महाराजा सवाई जयसिंह थे जिनका शासन काल वि० सं० १७५६ से १८०० तक था। वे जैनों के काफी सम्पर्क में थे। कर्नल टाड ने अपने ग्रंथ मे लिखा है—जैनियों को ज्ञान-शिक्षा मे श्रेष्ठ जानकर जयसिंहजी उन पर अत्यन्त अनुग्रह रखते थे। ऐसा भी प्रकट होता है कि उन्होंने जैनियो के इतिहास और धर्म के सम्वन्ध मे स्वयं शिक्षा प्राप्त की थी। [पृष्ठ ६०१]

उक्त राजवंश जव नरवर से इधर आया तव कई जैन घराने इनके साथ आये प्रतीत होते हैं। पहले भी इस प्रान्त में जैन काफी थे व्यापार वढ़ा हुआ था। महाराजा सोढदेवजी सं० १०२३ मे दौसा में राज्य गद्दी पर वैठे—उस समय निरभैराम छावड़ा नामक जैन दीवान थे—ऐसा उनके वशजो मे ज्ञात हुआ है। इनके वाद इस वंश में कई जैन दीवान हुए हैं।

११वी शती से लेकर शताधिक जैन दीवान हुए हैं—पर उनका कोई क्रमवद्ध इतिहास नहीं मिलता। लेखक को अव तक करीव ५५ जैन दीवानो की जानकारी मिली है पर वे सव १६वी शताव्दी के वाद के हैं। पहले की खोज अपेक्षित है। यहाँ प्रमुख जैन दीवानों का परिचय दिया जा रहा है।

रामचन्द्र छावड़ा :—इनका दीवान-काल वि० सं० १७४७ से १७७६ तक था। इनके पिता और दादा भी दीवान रह चुके हैं। इन्होने राज्य की महत्त्वपूर्ण सेवायें की है। अन्तिम मुगल सम्राट् औरगजेव की मृत्यु के पश्चात् उनके लड़को में राज्यगद्दी के लिए लड़ाई हुई। विजयी के विपक्ष मे रहने के कारण तथा अन्य कारणो से आमेर पति जयसिंह से वहादुरशाह ने नाराज होकर स० १७६४ मे आमेर पर अपना प्रवन्धक नियुक्त कर दिया और जयसिंह को आमेर छोड़ उदयपुर चला जाना

पड़ा। उनके साथ दीवान रामचन्द्र आदि भी थे। दीवान रामचन्द्र राज्य खोकर कैसे बैठते? कुछ फौजें एकत्र की, कुछ और उपाय किये और स्वय आमेर के प्रबन्धकों पर टूट पडे और उन्हें मार भगाया। दीवानजी वीर थे और स्वाभिमानी भी। विभिन्न इतिहासकारो ने फौज आदि के सम्बन्ध मे विभिन्न रूप से वर्णन करते हुए रामचन्द्र के नेतृत्व को स्वीकार किया है और मुगलो से आमेर खाली कराने का श्रेय इन्हें ही दिया है। मुगल दरवार मे इससे रामचन्द्र के प्रति नाराजगी स्वाभाविक थी। शाहजादा जहाँ दाराशाह ने १७ जुलाई, सन् १७०९ के अपने पत्र मे उदयपुर वालो को लिखा था कि जयसिंह के नौकर रामचन्द्र दीवान ने नालायक और वेहूदा कार्यवाही की—बादशाही नौकरो से लड़ाई की। अतः जयसिंह उसे निकाल दे। इससे दीवान रामचन्द्र का आमेर पर कब्जा करना स्पष्ट है।

दीवान रामचन्द्र जयसिंहजी के अधिक प्रिय थे। उस समय और भी दीवान थे, पर प्रमुख रामचन्द्र ही थे।

दीवान रामचद्र के दादा बल्लूशाह थे। मुगल बादशाह औरगजेब के समय मे छत्रपति शिवाजी के पास महाराजा रामसिंहजी की तरफ से बल्लूशाहजी ने सुलह की बातचीत की थी और शिवाजी को कैद कर लेने पर उन्हे छुड़ाकर लाने मे पूरा सहयोग दिया था। यह सवत् १७२३ की घटना है।

बल्लूशाह के पुत्र एवं रामचन्द्र के पिता विमलदास भी दीवान थे जो जाटों के साथ युद्ध मे काम आये थे। लालसोट के पास इनकी छत्री वनी थी, ये वीर योद्धा थे। रामगढ मे विमलपुरा नामक मोहल्ला इन्ही के नाम से बसा था। इनकी हवेली वहाँ थी।

दीवान रामचन्द्र धार्मिक व्यक्ति थे। आमेर और रामगढ़ के बीच साहीवाड ग्राम मे आपने सवत् १७४७ मे एक मंदिर बनवाया था जो आज मौजूद है। जब रामचन्द्रजी राजा जयसिंहजी के साथ उज्जैन में रहते थे तो वहाँ भी एक मदिर बनवाया और जब दिल्ली मे रहते थे तो वहाँ भी मन्दिर बनवाया। संवत् १७७० मे भट्टारक देवेन्द्र कीर्त्ति के पट्ट महोत्सव मे आप अगुआ थे। इनका जीवन धार्मिक था। राज्य सेवा के विशेष अवसरो पर इन्हे राज्य से इनामें, जागीर आदि मिले है। सांभर पर जयपुर जोधपुर में तनाजा होने पर आपने ही आधा-आधा हिस्सा का बंटवारा कर झगड़ा मिटाया था। फलतः आपको सालाना नमक मिलने का पट्टा भी दिया गया था।

दीवान किशनचन्द :—ये रामचन्द्रजी के पुत्र थे। राज्य सेवा मे विशिष्ट कार्य करने से सं० १७६७ मे इन्हे ९०० वीघा जमीन मिली। जयपुर की ओर से बसवा और बाद मे टोंक के प्रबन्धक रहे। स० १८१८ मे इन्हे और जागीरे मिली और स० १८१५ मे इनका स्वर्गवास हो गया।

दीवान भीमसिंह :—ये किशनचन्दजी के लडके थे। सं० १८५५ से सं० १८५९ तक प्रधान दीवान रहे। वैसे स० १८१६ से सं० १८६७ तक इनका राज्य सेवा काल था। सं० १८६७ मे इनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार इस वंश ने पांच-छः पीढी तक उच्च पद पर रहकर राज्य की सेवा की।

महामंत्री मोहनदास :—ये मिर्जा राजा जयसिंह के महामंत्री थे। मिर्जा राजा का राज्यकाल सं० १६७८ से सं० १७२४ तक का था। मोहनदासजी के पूर्वज एवं वंशज में अनेक व्यक्ति दीवान हुए हैं। वड़जात्या गोत्रीय मोहनदास संघी कहलाते थे। इनके पूर्वजो मे संघी उदा का नाम सर्वप्रथम

मिलता है। 'करकंडु चरित' की प्रशस्ति मे इनका नाम आया है। इनके पौत्र डालू ने सं० १६६३ में व्रत के उद्यापन में यह ग्रंथ भेंट किया था। उदा के पुत्र मल्लिदास के लिए 'संघभार' धुरन्धर 'संघही' शब्दों का प्रयोग शिलालेखों में हुआ है। इनके नाम कहीं मालीजै भौंसा, कहीं मल्लिदास, कहीं मालू और कहीं श्रीमाला मिलते हैं। ये बड़े प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। इन्हीं के नाम से इनका वंश आज भी मालावत कहलाता है।

मल्लिदास के लड़के डालू थे जो राज्य मे दीवान थे। ये बड़े ईमानदार और स्वाभिभक्त थे। किसी के बहकावे मे आकर राजा नाराज हो गये और इन पर जुर्माना कर दिया। डालू के भाई खेतसी थे और उनके लड़के मोहनदास। इनका जन्म सं० १६४५–५० के बीच होना सभव है। स० १६६३ मे इनका विवाह हुआ। ये बड़े विचक्षण थे। इनका राज्य सेवा काल मिर्जा राजा जयसिंह के राज्यकाल के प्रारभ से ही था और सं० १७१६ के बाद तक रहा। सं० १७१४ मे इन्होंने आमेर मे तीन शिखर का विशाल मंदिर बनवाना प्रारंभ किया और स० १७१६ मे उसकी प्रतिष्ठा हुई। इसका शिलालेख म्युजियम में मौजूद है। ये बड़े धर्मात्मा, कुशल राजनीतिज्ञ और सफल प्रशासक थे।

दीवान कल्याणदास :—ये मोहनदास के लड़के थे। औरंगजेब द्वारा शिवाजी की पकड़, कैद और छद्मवेश मे निकलने आदि की सारी प्रतिदिन की घटनाये दीवान परकालदास आगरा से इन्हे आमेर में लिख भेजते थे।

दीवान अजीतदास :—ये मोहनदास के तृतीय पुत्र थे। ये सं० १७७० मे आयोजित भट्टारक देवेन्द्र कीर्त्ति के पट्टोत्सव मे सम्मिलित हुए थे। जयपुर बसने के साथ ये जयपुर मे आ गये और सं० १७८८ में विशाल मंदिर बनवाया।

दीवान संघी हुकमचन्द :—उक्त वंश मे चार पीढी बाद संघी हुकमचन्द और संघी झूंथाराम का नाम मिलता है जो प्रख्यात व्यक्ति थे। संघी हुकमचन्द फौज के इंचार्ज थे और स० १८८१ से सं० १८९२ तक इनका राज्य सेवा काल माना जाता है। इनको राव बहादुर का खिताब था। ये बडे बहादुर और वीर थे। जयपुर राजा के नाबालगी मे ये संरक्षक भी थे। इन्होने एक मन्दिर बनवाया जो संघीजी की नसिया के नाम से जाना जाता है। इनके पुत्र बिरधीचन्द भी दीवान थे, जिनका सेवा काल सं० १८८८ के आसपास था।

संघी झूंथाराम :—ये संघी हुकमचन्द के छोटे भाई और बडे प्रतिभा सम्पन्न, मेधावी राजनीतिज्ञ और शासन की अद्‌भुत योग्यता वाले व्यक्ति थे। इनका जीवन राजनैतिक उथलपुथल में ही बीता। ये कठोर और ईमानदार शासक थे। इनके मंत्रित्व काल मे कोई चोरी नही होती थी। गिरी हुई कोई भी चीज या तो स्वयं मालिक लेता या पुलिस। ये अपराधो पर कडी सजायें देते थे।

अंग्रेजों के साथ जयपुर की सधि सन् १८१७ मे हुई जिसके अनुसार वार्षिक खिराज (टैक्स) देना तय हुआ। उस समय मुसाहिब रावल बैरीसालसिंह थे। संघीजी को यह गुलामी पसन्द नहीं थी। अंग्रेज तीन बार पहले भी प्रयत्न कर चुके थे—पर सफलता न मिली। अब की रावलजी को पक्ष मे लेकर यह सधि हुई जिससे रावलजी से भी कई लोग नाराज रहने लगे। राजा जगतसिंह के युद्ध मे रत रहने, शराबी और भोगविलासी होने तथा अंग्रेजों के टैक्स आदि के कारण खजाना खाली हो

गया और सन् १८१८ मे राजा का अपुत्र अवस्था में स्वर्गवास हो गया। फलतः और लोग अपना हक जमाने लगे। पर भटियानी रानी गर्भवती थी। सन् १८१९ मे जयसिंह तृतीय का जन्म हुआ और राजमाता राज्य कार्य देखने लगी। वह स्वतन्त्रता प्रेमी थी। अग्रेजो का दखल उसे पसन्द नही था। सघी भी इसी प्रकृति के थे। आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने हेतु सघीजी को राजस्व मंत्री बनाया गया पर मुसाहिब रावलजी के साथ इनकी नही बनी। वे अंग्रेजो के हिमायती थे और ये अंग्रेजों के विरोधी, फलतः दोनों मे अनबन बढ़ती गई और राजनैतिक पार्टियां बन गईं। राजमाता ने रावलजी को बहुत समझाया। पर उन्हे अंग्रेजो का बल था। संघीजी के विरुद्ध अंग्रेजों को भड़काया गया। राजनैतिक सघर्ष मे कभी कोई शक्तिशाली बनता और कभी कौन। सघी मुख्य मत्री बना। उसने शेखावटी के झगडे निपटाने का प्रयत्न किया, राजस्व बढ़ाया और जनता मे अमन किया। पर ज्योही राजमाता मरी और संयोगवश जयसिंह तृतीय भी १७ वर्ष की अवस्था मे काल कवलित हो गये; सघी के विरोधियो को मौका मिला और इन्हें बदनाम किया गया—राजा का हत्यारा बताया। पर जयसिंहजी की रानी चन्द्रावतजी ने इसे झूठा इल्जामा माना और संघी को ईमानदार और योग्य व्यक्ति पाया। सघी ने त्यागपत्र दिया पर स्वीकार नही किया। चन्द्रावतजी भी स्वतत्रता प्रेमी थी। पर अग्रेजो के कुचक्र चलते रहे और वे कूटनीति से ताकत मे आते रहे। अग्रेजो के जमाने मे आजादी के दीवानो की जो स्थिति सारे देश मे हुई, वही संघी और उनके साथियो की भी हुई। राजा की हत्या का अपराध लगाया पर उसमे विरोधियों को सफलता नही मिली। राज्य विद्रोह के षड्यंत्र का अपराध जो देश प्रेमियो के लिए लगाया जाता था उसी के तहत सं० १८९२ मे इन्हे किले मे नजर कैद किया गया। वही लगभग सं० १८९५ मे चुनारगढ़ किले मे उनका स्वर्गवास हो गया।

इस प्रकार अग्रेजो और उनके पक्षपातियो का एक कांटा निकल गया। कई इतिहासकारो ने सघी को बदनाम किया है पर वे इतिहासकार अंग्रेजों से या विरोधियों से प्रभावित थे। निष्पक्ष इतिहासकार सघी को ईमानदार ही पायेगे।

दीवान श्योजीराम एवं अमरचन्द :—जयपुर के इतिहास मे दीवान अमरचन्द बड़े प्रख्यात हो गये है। देश और जनता की सेवा मे हंसते-हंसते प्राणो की बलि देने वाले इस अमर शहीद का नाम सदा याद रहेगा। इनके पिता श्योजीराम भी दीवान थे। तीन राजाओ (१) महाराजा पृथ्वीसिंह (सं० १८२४ से १८३५), (२) प्रतापसिंह (स० १८३५ से १८६०) और (३) जगतसिंह (सं० १८६० से १८७५) के शासन काल मे सं० १८३४ से १८६७ तक श्योजीरामजी के दीवान होने का उल्लेख मिलता है। ये बडे धर्मात्मा और वीर पुरुष थे। मनिहारो के रास्ते मे स्थित बड़े दीवानजी का जैन मन्दिर तथा दि० जैन संस्कृत कॉलेज भवन इन्ही का बनाया हुआ है।

दीवान अमरचन्दजी का दीवान काल सं० १८६० से १८९२ तक का है। इन्होने बचपन से धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। ये विलक्षण प्रतिभाशाली और शान्त स्वभाव के थे। गरीबों के सेवक, समाज सुधारक और मूक दानी थे। विवाह मे लड़की वालो को निकासी के समय मूठ (मुट्ठीभर रकम) देने का रिवाज उस जमाने मे था। गरीब लोगो को इससे परेशान देख आपने दो आने देने का रिवाज चालू किया जो गत २५ वर्ष पूर्व था। आज तो मूठ देने का रिवाज ही उठ गया। इन्होने कई ग्रंथ लिखाये। लालजी साड के रास्ते मे स्थित छोटे दीवानजी का मदिर इन्ही का बनाया हुआ है। ये राज्य और जनता के खैरख्वाह थे और साथ ही स्वतन्त्रता प्रेमी। अंग्रेजी राज्य जयपुर मे न

जमने देने में इनका सहयोग था। संघी भूंथाराम के सहयोगी थे। फलतः अंग्रेज और अंग्रेजों के हिमायती इनके विरोधी हो गये। इन्हें गिरफ्तार किया गया और अन्त मे देशप्रेमियो को जो सजा दी जाती है, वह अमरचन्द को दी गई। फांसी के तख्ते पर लटककर सदा के लिए अमर हो गये, पर आजादी के अंकुर बढ़ते रहे।

दीवान राव कृपाराम पांड्या :—जयपुर के इतिहास मे इस वंश की महान् सेवायें है। इनके पूर्वज चाढमलजी बड़े प्रतापी नररत्न थे। चम्पावती नाम चाटसू इन्ही के नाम से पडा—ऐसा विख्यात है। ये चाटसू के रहने वाले थे और वहाँ चौधरी थे। इस वश में दीवान राव जगरामजी की मुगल दरबार मे पहुँच थी। ये जयपुर के सं० १७७० से १७९० तक दीवान थे।

इनके पुत्र राव कृपाराम बड़े विलक्षण व्यक्ति थे। इनका दीवान काल तो सं० १७८० से १७९० तक ही था पर ये मुगल दरबार मे आमेर की ओर से प्रतिनिधि थे। बादशाह का इन पर काफी अनुग्रह था। लक्ष्मी की इन पर दया थी। इतिहासकार कर्नल टाड् इन्हें दिल्ली पति का कोषाध्यक्ष मानता है। जयपुर निर्माण में इन्होने एक करोड़ रुपये दिये थे। इनकी पुत्री के विवाह मे महाराजा जयसिंहजी हथलेवा मे कुछ गांव की जागीर देना चाहते थे पर स्वयं धनिक, बादशाह तथा राजा के कृपा पात्र होते हुए भी समाज को महत्त्व दिया और मात्र दो रुपये हथलेवा मे राजाजी से दिलवाये, जो रिवाज आज भी प्रचलित है। मुगल दरबार में अत्यधिक पहुँच होने से रजवाडो के बहुत से काम ये करवा देते थे। अतः सभी रजवाड़ो में इनकी धाक थी।

आमेर राज्य की ओर से कई बार विशेष सेवाओं के कारण इन्हें इनामें मिली हैं। मुगल दरबार से इन्हें मनसबदारी मिली थी। जयसिंहजी और उनके भाई विजयसिंहजी का झगड़ा इन्हीं ने निपटाया था। ये धार्मिक और अपने इष्ट के पक्के थे। सूर्य का इन्हें इष्ट था। जयपुर की गलता घाटी की चोटी पर जो सूर्य का मन्दिर है, वह इन्ही का बनाया हुआ है। आमेर आदि कई जगह इन्होंने सूर्य के मन्दिर बनवाये थे। भानु सप्तमी को जो सूर्य रथ जयपुर मे निकलता है, वह इन्हीं का चलाया हुआ है। सं० १८०४ मे इनका स्वर्गवास हो गया।

इनके भाई राव फतहराम सं १७९० से १८१३ तक, फतहराम के पुत्र भवानीराम स० १८४३ से १८५५ तक तथा भवानीराम के पुत्र जोखीराम भी दीवान हुए है। इस वश ने काफी राज्य सेवा की है।

दीवान बालचन्द छाबड़ा :—जयपुर के दीवानो मे बालचन्द और उनके पुत्र रामचन्द काफी विख्यात हुए है। बालचन्दजी का दीवान काल सं० १८१८ से १८२९ तक था। जयपुर मे उस समय सांप्रदायिक तत्त्व उभर रहे थे। श्यामराम नामक एक साप्रदायिक व्यक्ति राजा के मुँह लगा हुआ था। उसने जैन दीवानो के साथ राजनैतिक विरोध को साम्प्रदायिक रूप देकर जैन समाज पर काफी जुल्म ढाये। सं० १८१७ मे ढूढाड़ प्रान्त मे अनेक जैन मन्दिर साप्रदायिकता की लहर मे नष्टभ्रष्ट हुए। राजस्थान पुरातत्व विभाग से प्रकाशित 'बुद्धि विलास' मे इस घटना का सही वर्णन मिलता है। दीवान बालचन्द उदार थे। साम्प्रदायिक विद्वेष मे न पड़कर नव निर्माण की ओर उन्होने ध्यान दिया और अनेक नये मन्दिर खडे करवा दिये। सं १८२१ मे विशाल इन्द्र ध्वज पूजा महोत्सव इनके

सहयोग से हुआ जिसमे दूर-दूर से काफी यात्री आये। इससे सकुचित विचार वाले और भी चिढे और सं० १८२६–२७ मे पुनः साप्रदायिक आग फैली जिसमे पण्डित टोडरमलजी आदि विद्वानो की आहुति लगी।

दीवान बालचन्दजी के पुत्र जयचन्दजी और रायचन्दजी भी बडे प्रतिभाशाली सज्जन थे। जयचन्दजी का दीवान काल स० १८२५–१८५५ तक रहा। इनके पुत्र कृपारामजी और ज्ञानचन्दजी भी दीवान हुए।

दीवान रायचन्दजी छाबड़ा :—दीवान बालचन्दजी के तृतीय पुत्र रायचन्दजी कुशल राजनीतिज्ञ, वीर और बडे धर्मात्मा हुए हैं। इनका राज्य सेवाकाल सं० १८५० से १८६४ तक का है। सं० १८६२ मे उदयपुर महाराजा की लड़की कृष्णा कुमारी से विवाह करने के सम्बन्ध मे जयपुर-जोधपुर मे काफी तनाव हुआ। युद्ध के लिए कूच हो गया। पर जयपुर के दीवान रायचन्द और जोधपुर के दीवान श्री इन्द्रराज सिंघवी के बीचबचाव और प्रयत्न से युद्ध टला। पर यह सुलह स्थायी नही रही और पोकरण के ठाकुर द्वारा जोधपुर की गद्दी पर धौकलसिह को बिठाने के प्रयत्न मे पुनः युद्ध भड़का। दीवान रायचन्द ने जगतसिहजी को काफी मना किया कि हमे ठाकुर पोकरण का पक्ष लेकर जोधपुर पर चढाई नही करना चाहिए पर जगतसिह ने नही मानी। फलतः युद्ध मे विजय तो हुई पर काफी धन वर्बाद हो गया और जयपुर सकट मे पड़ गया। शेखावटी आदि के कई झगड़े उस समय चल रहे थे जिन्हे रायचन्दजी ने निपटाये।

जोधपुर युद्ध के समय सब फौजे जोधपुर थी तो जोधपुर की ओर से अमीरखा पिंडारी ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया और लूटखसोट करने लगा। जगतसिहजी ने जब यह सुना तो वे जयपुर रवाना हुए। पर मार्ग मे अमीरखा तथा मारवाड़ वालो से पिंड छुड़ाना मुश्किल हो गया। फौजें थकी हुई थी। लुटेरे बडा जुल्म करने लगे। राजा हतोत्साह हो किंकर्तव्यविमूढ हो गया तो दीवान रायचन्द ने वणिक बुद्धि से काम किया और एक लाख रुपया पिंडारी को देकर जगतसिहजी को सकुशल जयपुर पहुँचाया और पिंडारी को वापस लौटाया।

रायचन्दजी जहाँ गूढ नीतिज्ञ, वीर योद्धा और कुशल प्रशासक थे वहाँ वे बडे धर्मात्मा भी थे। इन्होने सं० १८६१ मे विशाल पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई। इनका स्वर्गवास स० १८६४ मे हो गया। इनके दत्तक पुत्र दीवान सघी मन्नालाल ने दीवानगिरी की और फौजबख्शी रहे।

दीवान विजैराम तोतूका :—ये सवाई जयसिह के समय मे दीवान थे। जयसिहजी की बहिन का विवाह मुगल बादशाह अपने साथ करना चाहता था। राजा द्वारा इन्कार करना बडा मुश्किल था। पर जब राजा जयपुर मे नही थे, दीवान विजैराम ने बूंदी के हाडा बुधसिहजी के साथ उनका विवाह कर दिया। मुगल बादशाह नाराज हुए पर रणवाकुरे बूंदी के हाडो और जयपुर से वैर मोल लेना उचित न समझा। मन मसोस कर रह गये। सवाई जयसिहजी दीवान विजैराम से बडे खुश हुए और ताम्र पत्र देते हुए उसमे लिखा कि 'शावाश ३, तुमने कछावा वश का धर्म रखा, महान् कार्य किया। हमें जो रोटी मिलेगी, उसमे आधी तुम्हें बाटकर खायेगे और हमारे वशज इस वायदे से नही फिरेंगे।' इन्होने और भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

यहाँ जानकारी की दृष्टि से जयपुर राज्य मे हुए जैन दीवानो की संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत की जा रही है[1] :—

१. मोहनदास—मिर्जा जयसिंह के महामंत्री, सं० १७१४ के शिलालेख के आधार पर।
२ कल्याणदास पुत्र मोहनदास—सं० १७७० मे मौजूद थे।
३. विमलदास छाबड़ा—आमेरपति बिशनसिंह (सं० १७४६–५६) के दीवान थे।
४. रामचन्द्र छाबडा—स० १७४७ से १७७६ तक दीवान रहे।
५. फतहचन्द छाबडा—सं० १७६५ से १७७१ तक दीवान रहे।
६. किशनदास छाबडा—सं० १७६७।
७. भीवचन्द छाबड़ा पुत्र किशनदास—सं० १८५५ से १८५९ तक।
८. जगराम पाड्या—सं० १७७४ से १७९०।
९. ताराचन्द बिलाला पुत्र केशवदास—सं० १७७३ से १७९० तक।
१०. राव कृपाराम पाड्या पुत्र जगराम—सं० १७८० से १७९० तक।
११. फतहराम पाड्या पुत्र राव जगराम—सं० १७९० से १८१३।
१२. भगतराम पाड्या पुत्र राव जगराम—सं० १७९२ से १८००।
१३. विजयराम छाबड़ा पुत्र तोलूराम
१४. नैनसुख तेरापंथी—सं० १७६९ से १७७०।
१५. श्रीचन्द छाबडा—स० १७७० से १७७१।
६. कन्हीराम वैद पुत्र खेमकरण—सं० १८०७ से १८२०।
१७. केसरीसिंह कासलीवाल—सं० १८०८ से १८१७।
१८. रतनचन्द साह—सं० १८२३ से १८२५।
१९. आरतराम खिन्दूका पुत्र ऋषभदास—सं० १८१४ से १८३५।
२०. मौजीराम छावड़ा
२१. बालचन्द छाबडा पुत्र मौजीराम—स० १८१८ से १८२६।
२२ नैनसुख खिन्दूका पुत्र मुकन्ददास—सं० १८२१ से १८२६।
२३. जयचन्द साह पुत्र रतनचन्द—सं० १८२४ से १८३५।
२४. मोतीराम संघी गोधा पुत्र नन्दलाल—सं० १८२५ से १८३४।
२५. अमरचन्द सोगाणी पुत्र भमाराम—स० १८२९ से १८३४।
२६. जयचन्द छावडा—सं० १८२९ से १८५५।
२७. जीवराज संघी—सं० १८३० से १८४०।
२८. मोहनराम पुत्र जीवराज संघी—सं० १८३४ से १८६७।
२९. भागचन्द पुत्र सीताराम—सं० १८४२ से १८४६।
३०. श्योलालजी खिन्दूका पुत्र रतनचन्द—सं० १८३४ से १८६७।
३१ भगतराम बगडा पुत्र सुखराम—सं० १८४२ से १८८५।

---

१. यह विवरण जयपुर जैन डायरेक्टरी (पृ० १–१८ से १–२०) से साभार उद्धृत किया गया —सम्पा

३२. भवानीराम पांड्या पुत्र फतेहराम—सं० १८४३ से १८५५ ।
३३. सदासुख छाबड़ा पुत्र जयचन्द—सं० १८५७ से १८६४ ।
३४. राव जाखीराम पुत्र भवानीराम
३५. अमरचन्द पाटणी—सं० १८६० से १८९२ ।
३६. श्योजीलाल छाबड़ा पुत्र चैनराम—सं० १८६५ से १८७५ ।
३७. मन्नालाल छाबड़ा पुत्र रामचन्द—सं० १८६६ से १८६९ ।
३८. कृपाराम छाबडा पुत्र जयचन्द—सं० १८६९ से १८७५ ।
३९. लिखमीचन्द छाबड़ा पुत्र जीवनराम—स० १८६९ से १८७४ ।
४०. लखमीचन्द गोधा पुत्र भगतराम—सं० १८७४ से १८८१ ।
४१. नोनदराम खिन्दूका पुत्र आरतराम—सं० १८७४ से १८८१ ।
४२. अमोलकचन्द खिन्दूका पुत्र नोनदराम—सं० १८८२ से १८८६ ।
४३. संघी झूंथाराम पुत्र मोतीराम—सं० १८८१ से १८९१ ।
४४. संघी हुकमचन्द पुत्र मोतीराम—सं० १८८१ से १८९१ ।
४५. बिरधीचन्द पुत्र हुकमचन्द संघी—सं० १८९६ से १८९९ ।
४६. सम्पतराम खिन्दूका पौत्र आरतराम—सं० १८९१ से १८९६ ।
४७. मानकचन्द ओसवाल—स० १९०६ से १९१२ ।
४८. संघी नन्दलाल गोधा पुत्र अनूपचन्द—सं० १८१३ से १८२८ ।
४९. किशोरदास महाजन—सं० १७४९ से १७७९ ।
५०. गगाराम महाजन्द पुत्र कालूराम—स० १८४० से १८४५ ।
५१. कृपाराम छावड़ा रामचन्द के भतीजे—सं० १८६९ से १८७५ ।
५२. रायचन्द्र
५३. प्यारेलाल कासलीवाल—सं० १९७६ से १९७९ ।
५४. नथमल गोलेछा—माधोसिहजी के समय मे दीवान थे ।

४१ | स्वतंत्रता-संग्राम एवं प्रशासन में जैनियों का योगदान

•

डॉ० भँवर सुराणा

राजस्थान की दुहरी-तिहरी गुलामी की अवस्था में स्वतत्रता-संग्राम मे भाग लेने वालो का साहस और सगठन क्षमता सदा सर्वदा वन्दनीय-अभिनन्दनीय रहेगी। राजस्थान मे स्वतत्रता संग्राम को दिशा देने और उसके लिये मर मिटने वाले दीवानो को तैयार करने वालो मे पं० अर्जुनलाल सेठी का नाम सदा स्मरण किया जाता रहेगा। उन्होने वैलूर मे साढ़े सात वर्षों की जेल काटी और स्वय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जेल से बाहर आने पर उनका हार्दिक स्वागत किया। उन दिनों कहावत मशहूर थी "अग्रेजो मे लार्ड कर्जन, भारत मे लार्ड अर्जुन।" अग्रेजी, फारसी, संस्कृत, अरबी पाली और हिन्दी के विद्वान् और जैन-दर्शन ज्ञाता पं० सेठी ने जयपुर मे 'वर्द्धमान् विद्यालय' के माध्यम से देश की स्वतंत्रता के लिये मर मिटने वाला निष्ठावान वर्ग तैयार किया जिसमे माणकचन्द, मोतीचन्द (शोलापुर), जयचन्द, जोरावरसिंह सम्मिलित थे। रास विहारी बसु, चन्द्रशेखर आजाद आदि से उनका सम्पर्क था और शहीद अशफाकुल्ला तथा क्रातिवीर शौकत उस्मानी आदि को उन्होने लम्बे अर्से तक अपने पास छिपाये रखा। आरा और निमेन काडो मे उनका नाम लिया गया। दिल्ली षड्यन्त्र केस मे उनको नामजद किया गया। सरकार ने उन्हे खतरनाक मान कर सन् १९१४ मे नजरबन्द कर दिया। सारे देश ने उनकी नजरबन्दी का एक स्वर से विरोध किया पर सरकार ने उन्हे जयपुर मे बदल कर वैलूर जेल मे भेज दिया। उन्होने सरकार द्वारा दुर्व्यवहार पर भूख हडताल की और अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा। सन् १९२० में जेल से छूटने के बाद सेठीजी ने सन् १९२१ मे अजमेर मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भाग लिया। मध्यप्रदेश मे उन्होने १८ महिने का कारावास भुगता। वहां से लौट आने पर पुनः वे अजमेर आये और उसे अपना कार्यक्षेत्र बनाया। काग्रेस के उग्रवादी और गाधीवादी खेमो की लडाई से सेठीजी इतने खिन्न हो गये कि उन्होने अपना सब कुछ छोडकर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये अनथक प्रयत्न किया और अन्ततः उनकी इच्छा के अनुसार २३ दिसम्बर, १९४१ को देहावसान हो जाने पर उनको एक कब्र मे दफना दिया गया।

श्री सेठीजी की ही परम्परा के दूसरे तेजस्वी पुरुष श्री मोतीलाल तेजावत थे। उदयपुर जिले के एक छोटे से ग्राम कोलियारी मे उनका जन्म हुआ और वही ठिकाने मे कामदार के रूप मे कार्य करते हुए उन्होने किसानो-गरीबो पर जागीरदारो के अत्याचार एवं अन्याय के वीभत्स रूप के दर्शन किये। श्री तेजावत ने उन जुल्मो के प्रतिरोध मे ठिकाने की नौकरी छोड़ दी और 'एकी-एकता'

आन्दोलन मे इन किसानो व गरीबो-भीलो के आन्दोलन का सूत्रपात किया । राशमी के पास तीर्थस्थल मातृकुन्डिया मे उन्होने किसानो को जुल्म के विरुद्ध आन्दोलन के लिये तैयार किया और महाराणा फतहसिंह को एक 21 सूत्रीय ज्ञापन पेश किया जिसमे से महाराणा ने १८ मागे मान ली । तेजावत जी की संगठन क्षमता अद्भुत थी और उसी के कारण उन पर बार-बार ठिकानेदारो और उनके कारिन्दो ने मारने के लिये हमले किये । भीली क्षेत्र सिरोही, दाता, पालनपुर, इडिर, विजयनगर मे वे एक छत्र नेता थे । विजयनगर राज्य के नीमडा ग्राम मे जब राज्य के प्रतिनिधियो से बातचीत चल ही रही थी, राज्य की सेना ने षडयन्त्रपूर्वक अचानक गोलिया बरसाना प्रारम्भ कर दिया । निहत्थे लोग थे । लगभग १,२०० लोग वही मर गये । तेजावत जी स्वय पांव मे गोली व छर्रे लगने से घायल हुए । जलियावाला बाग से भी दर्दनाक यह घटना थी । घायल अवस्था मे ही तेजावत को भील उठा ले गये और उनको आठ वर्ष तक राज्यो की कोपदृष्टि से बचाकर 'गुप्त वास' मे रखा ।

सरकार ने एक अन्य व्यक्ति का सिर काट कर यह प्रचार किया की तेजावत जी का सिर काट दिया है । यह उनके आन्दोलन को कमजोर करने की एक चाल थी । उनकी खोज में उदयपुर, सिरोही, इडिर आदि राज्यो की सरकारो ने कई गावो को आग लगादी । उनकी खोज मे पुलिस के स्थान पर रियासती सेना भेजी जाती थी, पर वे हाथ नही आये । अन्ततः गाधीजी के आश्वासन पर उन्होने इडिर मे आत्मसमर्पण किया किन्तु रियासती शासक तो जले भुने बैठे थे । उदयपुर में उनको सन् १६२६ से १६३६ तक जेल मे रखा और उसके बाद भी उन्हे नजरबन्द रखा गया । १६३८ का प्रजा मण्डल आदोलन तथा १६४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन मे उनको जेल भेजा गया और १६४५ तक उनको नजरबन्द रखा गया । १६४७ मे भारत के स्वतंत्र होने तक वे पुलिस के घेरे मे रखे जाते थे, न वे कही आ जा सकते थे और न कोई कार्य ही जीवनयापन के लिये कर सकते थे । आजादी के संग्राम का यह अनन्य योद्धा ५ दिसम्बर, १६६३ को अपनी इहलीला समाप्त कर गया ।

जोधपुर रियासत के श्री आनन्दराज सुराणा का नाम प्रान्त मे स्वतंत्रता संग्राम मे भाग लेने वालो मे अग्रगण्य माना जाता रहेगा । उनको स्वतंत्रता के लिये सतत् सघर्षरत रहने की सीख अपने पिता श्री चान्दमल सुराणा से विरासत मे मिली थी । उनके राष्ट्रीय विचारो को बीकानेर के महाराजा गगासिंह सहन नही कर सके और उन्हे न केवल नौकरी से ही निकाल दिया गया, अपितु बीकानेर से निर्वासित भी कर दिया गया । जयनारानण व्यास तथा भवरलाल सर्राफ के सहयोग से एक राजनीतिक सम्मेलन का वे आयोजन कर रहे थे । जोधपुर का सामन्ती शासन उसे बर्दाश्त नही कर पाया और इन नेताओ को बाडमेर, सिवाना और नागौर के किलो में ठूंस दिया । तीनो को राजद्रोह के अपराध मे पाच-पाच वर्ष की कठोर श्रमसहित सजा ठोक दी गई । अन्ततः सन् १६३१ में गाधी-इरविन समझौते से उनको काल कोठरी से मुक्ति मिली । देशी राज्य लोक परिषद्, कांग्रेस और १६४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन मे उन्होने सक्रिय भाग लिया । आनन्दराज जी के संबधियो को भी पुलिस ने परेशान करने मे कोई कसर नही रखी । आनन्दराज जी ने पुलिस के चगुल से बच कर गाजियाबाद, अजमेर, उदयपुर, जयपुर, हावड़ा आदि अनेक स्थानो पर छिप कर फरारी का समय बिताया । सन् १६४५ में जब उनका वारण्ट रद्द हो गया, वे दिल्ली लौटे और कांग्रेस में काम करने लगे । १६५५ से ५७ तक वे दिल्ली मे कांग्रेसी विधायक रहे ।

जयपुर के श्री कर्पूरचद पाटनी का नाम स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियो मे सदैव श्रद्धा और

सम्मान के साथ लिया जाता रहेगा । पं० अर्जुनलाल सेठी की छत्रछाया मे शिक्षित-दीक्षित श्री पाटनी राजस्थान-मध्यप्रदेश की खादी संस्थाओ के साथ ही साथ हरिजन-सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्य करते रहे । जयपुर राज्य के अन्नकर विरोधी आन्दोलन के वे प्राण थे । जयपुर मे प्रजामंडल की स्थापना मे उनका बहुमूल्य योगदान रहा । जयपुर मे सत्याग्रह करने पर उनको ६ माह की सजा दी गई । पं० हीरालाल शास्त्री की आत्म कथा 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र' के अनुसार पाटनी जी ने स्वय को सदैव पद से दूर रखा । उन्होने जयपुर राज्य की लोकप्रिय सरकार मे मत्री पद लेने से इन्कार कर दिया था ।

माडलगढ (भीलवाडा) जिले मे जाये जन्मे श्री शोभालाल गुप्त, श्री विजयसिंह पथिक के विजौलिया आन्दोलन से बाल्यकाल से ही प्रभावित हुए । अजमेर मे विद्यार्थीकाल से उन्होने असहयोग आन्दोलन को अपनाया । राजस्थान सेवा संघ के वे आजीवन सदस्य बने और 'तरुण राजस्थान' के संपादक के रूप मे १९२४ मे राजद्रोह के अपराधी बनकर एक वर्ष की सश्रम सजा काटी । महात्मा गाधी के साबरमती आश्रम मे कुछ दिन रहने के बाद अजमेर मे अ ग्रेजी शासन के विरुद्ध भाषण देने पर एक वर्ष की सजा उनको दी गई । रचनात्मक कार्यो मे लगने के बाद सन् १९४० मे वे 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में आ गये । अगस्त १९४२ मे उनको गिरफ्तार कर दो वर्ष के लिये जेल भेजा गया ।

मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रथम अध्यक्ष (मास्टर) बलवतसिंह मेहता प्रताप सभा, भारत सेवक समाज आदि से भी सम्बद्ध रहे है । लाहौर कांग्रेस (१९२९), कराची कांग्रेस (१९३०) मे प्रतिनिधि बनकर गये । श्री मेहता अजमेर मे राजनीतिक गतिविधियो मे भाग लेते रहे । नौजवान भारत सभा, भारत अनुशीलन समिति आदि क्रातिकारी सगठनो के सक्रिय सदस्य श्री मेहत्ता ने मेवाड में सन् १९३२ मे कर विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व किया । मेवाड प्रजामंडल के आदोलनो, १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन आदि मे बार–बार गिरफ्तार हुए और आदिवासियो के आन्दोलनो मे उन्होने सक्रिय भाग लिया । स्वतन्त्रता के पश्चात् उद्योग मन्त्री पद पर भी श्री मेहता रहे हैं ।

राजस्थान के रचनात्मक राजनीतिक कार्यकर्ताओं में श्री भूरेलाल बया का नाम उल्लेखनीय है । साइमन कमीशन के विरोध में उठ खड़े हुए श्री बया ने बम्बई में नमक सत्याग्रह मे भाग लिया । आर्थर रोड तथा यरवदा जेल मे सजा काटी । बम्बई कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता, 'संदेश' मासिक के सम्पादक श्री बया वर्षों गाधीजी के सानिध्य मे रहे और उसके बाद मेवाड़ प्रजामडल के आन्दोलनो में भागीदार बने । आदिवासियो और किसानो के सत्याग्रहो मे भाग लिया और आजादी के पश्चात् श्री माणिक्यलाल वर्मा तथा श्री हीरालाल शास्त्री के साथी मत्री बने । खादी ग्रामोद्योगो मे विशेष रुचि के कारण रचनात्मक संस्थाओ से अब भी सम्बद्ध हैं ।

स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान देने वालो में श्री मोतीलाल तेजावत के पुत्र श्री मोहनलाल तेजावत को नही भुलाया जा सकता । भारत छोड़ो आन्दोलन मे उन्हे ६ महिने की सजा दी गई और वे सतत् मेवाड़ प्रजामडल से सम्बद्ध रहे । ऐसे ही दूसरे सेनानी हैं श्री रोशनलाल बोर्दिया । १९३२ के कर विरोधी आन्दोलन और १९३८ के मेवाड प्रजामण्डल के आन्दोलनो मे वे गिरफ्तार कर लिये गये । १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में भी उन्होने भाग लिया और १९४८ मे उत्तरदायी

शासन की मांग के आन्दोलन मे पुलिस की गोली से आहत हुए। उदयपुर के ही श्री चिमनलाल बोर्दिया भारत छोड़ो आन्दोलन और नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रो की होली आदि मे गिरफ्तार किये गये और उदयपुर मे कर विरोधी प्रदर्शन मे भाग लिया। कानोड़ के श्री उदय जैन मेवाड़ प्रजामंडल के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे सामन्ती व्यवस्था से लोहा लेने के अतिरिक्त 'भारत छोड़ो आन्दोलन' मे गिरफ्तार किये गये और उदयपुर मे उन्होने जेल काटी। मेवाड़ प्रजामडल के ही एक अन्य कार्यकर्ता श्री हीरालाल कोठारी को १९४२ मे गांधी जयंती समारोह आयोजित करने के अपराध मे ६ माह के लिये नजरबन्द किया गया। नाथद्वारा के श्री कज्जूलाल पोरवाल को भारत रक्षा कानून मे ६ माह के लिये नजरबन्द रखा गया। उनके ही एक साथी फूलचन्द पोरवाल को भी उतने ही समय तक नजरबन्द रखा गया। 'भारत छोडो आन्दोलन' मे ही श्री रतनलाल कर्णावट को उदयपुर तथा इसवाल जेल में १३ माह तक नजरबन्द रखा गया। छोटी सादडी के श्री पूनमचन्द नाहर १९३८ व १९४२ के आन्दोलनो मे जेल गये और सामन्ती अत्याचारो का विरोध करते रहे। श्री सूर्यभानु पोरवाल भी १९४२ के आन्दोलन मे नजरवन्द रहे।

भीलवाड़ा के श्री उमरावसिंह ढाबरिया आजादी से पहले मेवाड प्रजामंडल के आन्दोलनों से सम्बद्ध रहे। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के सदस्य श्री ढाबरिया १९४२ के आन्दोलन मे नजरवन्द रहे। आजादी के वाद वे समाजवादी दल मे सम्मिलित हुए और विधान सभा के सक्रिय सदस्य रहे। आजादी के बाद दर्जनो बार वे जेल मे गये। कानोड़ के श्री तख्तसिंह बावेल, सुखलाल उदावत, माधवलाल नन्दावत, अम्वालाल नन्दावत, भंवरलाल डूगरवाल, चान्दमल भानावत १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन तथा मेवाड़ प्रजामण्डल के कार्यकलापो से सम्वद्ध रहे है।

कुशलगढ़ के श्री डाडमचन्द दोपी ने भारत छोड़ो आन्दोलन मे भाग लिया और दोहद के जिलाधीश भवन पर तिरंगा राष्ट्रीय ध्वज फहराकर आठ महिने की साबरमती मे सजा भोगी। श्री झब्बा लाल कावडिया, श्री उच्छवलाल मेहता, भैरूलाल तलेसरा, खेमराज श्रीमाल, कन्हैयालाल जैन, कन्हैयालाल मेहता, वापूलाल लखावत, कातिलाल शाह, पन्नालाल शाह, शातिलाल सेठ, गुमानमल लखावत, सुजानमल शाह, किशनलाल दोषी, शोभागमल दोषी आदि प्रजामण्डल के प्रमुख कार्यकर्ता थे।

कोटा के श्री नाथूलाल जैन विद्यार्थी काल से ही आजादी की लड़ाई मे भाग लेते रहे है। कांग्रेस मे भाग लेने के कारण उनको होल्कर कालेज और इन्दौर राज्य से निर्वासित कर दिया गया। अगस्त आन्दोलन मे उसका सचालन किया। भूमिगत साथियों को सहायता देना, प्रचार बुलेटिन निकालना आदि उनके जिम्मे था। १९४२ में अजमेर व कोटा मे नजरबन्द रखे गये। 'दीन बन्धु' पत्र का संचालन करते हुए वीकानेर व कोटा के तत्कालीन शासको से निरन्तर लोहा लिया और कई वार जमानतें दी। प्रजामडल और काग्रेस से निरन्तर सबद्ध रहे। श्री जैन आजकल राजस्थान लोक सेवा आयोग के सदस्य है।

कोटा के ही श्री बागमल वाठिया असहयोग आन्दोलन तथा उत्तरदायी शासन के लिये आदोलन करने वालो मे सक्रिय थे। उन्होने कोटा मे डेढ़ माह से अधिक की जेल भुगती। कोटा के ही श्री मोतीलाल जैन, कोटा राज्य प्रजामंडल के स्तम्भ रहे हैं। किसानों पर अत्याचार के विरुद्ध

उन्होंने आन्दोलनो को नेतृत्व दिया और उन्हे सगठित किया । अगस्त क्राति मे उन्हे २ माह २४ दिन नजरवन्द रखा गया । एक सभा की अध्यक्षता करने पर उन्हे कोटा मे गिरफ्तार किया गया । वे कोटा राज्य प्रजामंडल के प्रधानमन्त्री और अध्यक्ष रहे । कोटा के श्री हीरालाल जैन ने सरकारी नौकरी छोडकर देश सेवा का व्रत लिया और प्रजामंडल से जुड गये । १९४२ मे उन्होंने कोटा मे शासन ठप्प करने वाले आन्दोलन मे भाग लिया । १९४६ मे काग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की और उग्रपंथी 'जयहिन्द' साप्ताहिक निकाला । गोआ आन्दोलन में १९५५ मे उन्होने भाग लिया । सम्प्रति समाजवादी दल से सवद्ध हैं ।

जयपुर के स्वतंत्रता सग्राम मे भाग लेने वालो में श्री गुलाबचन्द कासलीवाल, डॉ० राजमल कासलीवाल (आजाद हिन्द फौज) जस्टिस दौलतमल भडारी, वशीलाल लुहाड़िया (एडवोकेट), मुक्तिलाल मोदी, रूपचन्द सोगानी, विजयचन्द जैन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । श्री सिद्धराज ढड्ढा भारत छोडो आन्दोलन मे दो वर्ष वनारस जेल में रहे । राजस्थान मन्त्रिमण्डल के सदस्य रहे और वर्तमान मे सर्व सेवा सघ से सम्बद्ध है ।

श्री जवाहरलाल जैन, श्री पूर्णचन्द्र जैन, श्री अरविन्दकुमार सोनी, उमरावमल आजाद, कपूरचन्द छावडा, गेन्दीलाल छावडा. दीपचन्द वक्षी, दूनीचन्द जैन (वहावलपुर), नथमल लोढा, भवरलाल वोथरा, भंवरलाल सामोदिया, मिश्रीलाल जैन, मिलापचन्द जैन, राजरूप टाक, रतनचन्द काण्टिया, वसन्तीलाल वगीचीवाला, ज्ञानप्रकाशकाला, कपूरचन्द पाटनी (जोवनेर), कैलाशचन्द वाकीवाला, फूलचन्द जैन (विधायक) भवरलाल अजमेरा आदि जयपुर राज्य प्रजामण्डल, काग्रेस आदि के आन्दोलनो में भागीदार बने और समय-समय पर कृष्णमन्दिर की यातनायें भी सही। श्री रामचन्द्र कासलीवाल, सोहनलाल सोगाणी, सुभद्रकुमार पाटनी आदि ने भी इन आन्दोलनो में सक्रिय भाग लिया ।

जोधपुर मे श्री अभयमल जैन ने आजादी की अलख जगाई और श्री जयनारायण व्यास के साथ मिल कर राजनीतिक चेतना को प्रज्वलित किया । अनेक आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप वे कई वार जेल गये । मारवाड लोक परिषद् के सस्थापको में से एक श्री जैन ने 'भारत छोडो आन्दोलन' में भाग लेकर दो वर्ष की सजा काटी । श्री मानमल जैन भी उनके ही साथी थे । उन्होने १९३२ में व्यावर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के डिक्टेटर के रूप मे भाग लिया और जेल गये । देशी राज्य प्रजा परिषद, मारवाड लोक परिषद्, प्रजामण्डल आदि सभी संस्थाओ से संवद्ध श्री जैन ने उनके सभी आन्दोलनो में भाग लिया । श्री उगमराज मुहणोत क्रातिकारियो से सवद्ध रहे और छात्रावस्था मे ही एक बम केस में उन्हे पकड कर डेढ वर्ष की सजा दी गई । (अभी वे जन सम्पर्क अधिकारी, वाड़मेर हैं ।)

लाडनू के श्री चम्पालाल फूलफगर, विलाड़ा के श्री पुखराज, फलौदी के श्री सम्पतलाल सिंघी, लू कड़, सरदारशहर के श्री नेमीचन्द आचलिया, सिरोही के श्री धर्मचन्द सुराणा, श्री दुलीचद सिंघी, श्री रूपराज सिंघी, श्री शोभाराम सिंघी, श्री हजारीमल जैन आदि अनेक वे लोग हैं, जिन्होंने सामन्ती अत्याचारो का विरोध किया, राष्ट्रीय आन्दोलनो में भाग लिया, जेल गये और जिनका परिवार सदैव कष्ट पाता रहा ।

पाली जिले में सादडी के निवासी श्री फूलचन्द वाफना, कोटा के श्री रिखबचन्द धाडीवाल

आदि ने स्वतंत्रता संग्राम को ही अपना जीवन समर्पित किया और लोक परिषद्, प्रजामंडल किंवा कांग्रेस के आन्दोलनो मे भाग लेकर जेल जाते रहे। रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वासी श्री बाफना, श्री हीरालाल शास्त्री के मंत्रिमडल में स्वायत शासन मंत्री रहे और श्री धाड़ीवाल भी बाद में मंत्री रहे। भीलवाड़ा के श्री मनोहरसिंह मेहता, अजमेर के श्री जीतमल लूणिया, लडनूं के श्री मानमल जैन आजादी की लड़ाई के प्रमुख सिपाही रहे है।

अन्य जिलो के प्रमुख स्वतंत्रता-सग्राम के सेनानी इस प्रकार हैं :—

भीलवाड़ा—रोशनलाल चोरड़िया, अजमेर—श्री मूलचन्द जैन, श्री टीकमचन्द जैन, श्री कालूराम लोढा, श्री वृद्धिचन्द हेड़ा, हरदयाल मिश्रीलाल जैन, अमोलकचन्द सुराणा, जैन (किशनगढ़), वीरसिंह मेहता, मोतीलाल जैन। उदयपुर–हुक्मराज मेहता। भरतपुर–श्री रामचद जैन (कुम्हेर), श्री रामस्वरूप जैन (डीग), नेमीचद जैन। जयपुर—श्री कपूरचन्द जैन, दौलतमल जैन, श्री सरदारमल गोलेछा, श्री सोहनमल लोढ़ा, श्री सुभाषचन्द जैन। पाली—श्री तेजराज सिंघवी। सिरोही—श्री भारतमल बोबावत, श्री धनराज सिंघी। कोटा—श्री दौलतमल जैन, सोभागचन्द्र, देवीचन्द। जोधपुर—श्री सुगनचन्द भंडारी, श्री ऋषभराज जैन, इन्द्रमल जैन, पारसमल खिवसरा, करोडीमल मेहता, सम्पतमल लूंकड़, पी० एम० लूंकड़, इन्द्रमल जैन, रिखबराज कर्णावट। चूरू—बद्रीप्रसाद सरावगी। चितौड़गढ़—श्री फतहलाल चडालिया, श्री भीमा राज घाड़ोलिया आदि।[1]

वर्तमान निर्वाचित प्रतिनिधि :—राजस्थान से लोक सभा में श्री मूलचन्द डागा, श्री अमृत नाहटा तथा श्री नरेन्द्र कुमारी सांघी वर्तमान मे सदस्य है। राजस्थान मन्त्रिमण्डल में श्री चन्दनमल बैद (वित्तमन्त्री) जैन समाज के प्रमुख अंग है। वर्तमान विधायकों मे श्री यशवंतसिंह नाहर, श्री शातिलाल कोठारी, श्री वृद्धिचन्द जैन, श्री फूलचन्द जैन, श्री मोहनराज जैन, श्री गुमानमल लोढ़ा, श्री प्रद्युम्न सिंह, श्री पुखराज कालानी, आदि के नाम उल्लेखनीय है।

पिछली विधान सभाओं एवं लोक सभा मे श्री माणकचन्द सुराणा, श्री उमरावसिंह ढाबरिया, श्री फूलचन्द बाफणा, श्री प्रेमसिंह सिंघवी, श्री रिखबचन्द धाड़ीवाल, श्री जसवन्तराज मेहता, श्री लक्ष्मीमल्ल भडारी, श्री बलवन्तसिंह मेहता, श्री प्रतापसिंह आदि के नाम सदैव स्मरण किये जाते रहेगे।

प्रशासनिक एवं अन्य अधिकारी : स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के प्रशासकों में श्री भगवतसिंह मेहता का नाम सदैव आदर से लिया जाता रहेगा। डॉ० मोहनसिंह मेहता, श्री सत्यप्रसन्नसिंह भण्डारी, श्री गोकुललाल मेहता, श्री जगन्नाथसिंह मेहता, श्री नारायणदास मेहता, श्री देवेन्द्रराज मेहता, श्री रणजीतसिंह कूमट, श्री अनिल बोरदिया, श्रीमती ओतिमा बोरदिया, श्री मीठालाल मेहता, श्री जसवतसिंह सिंघवी, श्री पी० एन० भंडारी, श्री बाबूलाल पानगड़िया, श्री हिम्मतसिंह गलूंडिया,

---

१. इस लेख की सामग्री (स्व०) श्री सुमनेश जोशी के ग्रन्थ 'राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी', जयपुर जैन डायरेक्ट्री, राजस्थान सरकार द्वारा प्रसारित सूचना आदि से ली गई है। लेखक उनके प्रति आभार प्रकट करता है।

श्री हिम्मतसिंह सरुपरया, श्री कन्हैयालाल कोचर, श्री अर्जुनराज भंडारी, श्री पदमचन्द सिंघी, श्री प्रवीणचन्द जैन, श्री सम्पतराज सिंघवी, श्री सवाईसिंह सिंघवी, श्री बी० सी० जैन, श्री हरकराज भंडारी, श्री मनोहरसिंह मोगरा, श्री हीरालाल सिंघवी, श्री चन्द्रराज सिंघवी, श्री गुलाबसिंह दरड़ा, श्री नानालाल बया, श्री जोरावरसिंह पोखरना आदि अनेक जैन समाज के व्यक्तियों ने अपनी छाप प्रशासक के रूप में छोडी है। न्यायिक सेवाओं में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में सर्वश्री इन्द्रनाथ मोदी, श्री दौलतमल भण्डारी, श्री सोहननाथ मोदी, श्री लहरसिंह मेहता, श्री चांदमल लोढा आदि की सेवायें विशेष उल्लेखनीय हैं। पुलिस विभाग में उदयपुर रेंज के उपमहानिरीक्षक श्री ज्ञानचन्द सिंघवी ने पुलिस तथा सीमा सुरक्षा-दल में अपनी उल्लेखनीय सेवाओं का परिचय दिया है। श्री कनकमल मेहता, डॉ० महेन्द्रकुमार दोषी, श्री दुर्गाप्रसाद जैन, श्री साहबलाल अजमेरा, श्री कन्हैयालाल मेहता, श्री हिम्मतसिंह मेहता, श्री विज्ञान भारिल्ल आदि अनेक अधिकारियों ने भी अपने-अपने विभागों में अपनी कार्यदक्षता व क्षमता का निर्णायक उपयोग किया है। भारतीय विदेश सेवा में श्री जगत मेहता का नाम सदैव सम्मान से लिया जाता रहेगा।

४

उद्योग और वाणिज्य

४२ | राजस्थान की आर्थिक समृद्धि में जैनियों का योगदान

•

श्री बलवन्तसिंह मेहता

पृष्ठभूमि :

जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव भारत में सर्व प्रथम असि, मसि, कृषि और शिल्प जैसे लौकिक कर्मों के जनक माने जाते हैं और उन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा तथा भरत ने ही सर्व प्रथम राज्य, दण्ड व विवाह व्यवस्था का आयोजन किया।

असि कर्मकर्ता क्षत्रिय, मसि कर्मकर्ता ब्राह्मण और कृषि कार्यकर्ता वैश्य कहलाये तथा इन तीनों ही कर्मों मे जिनकी स्वाभाविक प्रवृति और गति नही थी, वे कर्मकार शूद्र कहलाये। आदि तीर्थंकर ने इन चारो ही वर्णों को समान माना और इनमे ऊंच-नीच का कोई भेद नही रखा, जैसा कि भगवान महावीर ने भी कहा है—

कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ कम्मुणा ॥

आज जो संसार में धन कमाने की होड़ाहोड़ चल रही है और व्याप्त वेकारी फैल रही है तथा कर्म मे अकुशलता वढ़ रही है उसका एक मात्र उपाय वर्ण व्यवस्था और आश्रम पद्धति है। जो भारतीय आर्यों की बहुत बड़ी देन है। जैन धर्म ने जाति पांति के भेदभाव व ऊंच-नीच की भावना को दूर कर कर्म द्वारा उसके शुद्ध स्वरूप मे उसे प्रतिष्ठित किया। इसी तरह आश्रम व्यवस्था मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सबके लिये सब ही अवस्थाओ में उसके द्वार खोल दिये और स्त्रियों तथा शूद्रों तक के लिए कोई अपवाद नही रखा।

भारत की आर्थिक समृद्धि में आरम्भ से ही जैन जगत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही तथा वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर भी जैन समाज ने व्यापार, वाणिज्य, कृषि और पशुपालन आदि सभी अंगों में सर्वांगीण वृद्धि की है। देश की आर्थिक स्थिति और समृद्धि के प्रमुख स्तम्भ जैन, देश के हर भाग के आर्थिक क्षेत्रों के संयोजक व संचालक रहे हैं।

कृषि :

आरम्भ से ही कृषि जैनियों का उद्योग रहा है। कृषि की विभिन्न उपजों का सुदूर क्षेत्रों तक व्यापक रूप से वे व्यापार-वाणिज्य करते थे। ऐसे कृपि सम्पन्न जैनियो में वाणिज्य ग्राम के आनन्द

गृहपति की धन-सम्पत्ति मे पांच सौ हलो की गिनती की गई है। एक हल के द्वारा सौ निवर्त्तन भूमि जोती जा सकती थी। 'उपासक दशाग' के अनुसार एक निवर्त्तन चालीस हजार वर्ग हाथ का माना जाता था। इससे स्पष्ट है कि गृहपति-श्रावक आरम्भ से ही कृषि भूमि के स्वामी रहे है। पर कृषि कर्म को फोडी कर्म मानने से कृषि मे भू-छेदन की हिंसा के कारण वैश्य-गृहपति श्रावक स्वय कृषि नही करते, किन्तु अपने खेतो मे किसानो से खेती करवाते थे। आज भी राजस्थान के गावों मे विरले ही ऐसे जैनी होगे जिनके घरू खेती न हो। शास्त्रों मे कई ऐसे गृहपतियो का वर्णन मिलता है जिनके पास हजार-हजार हल होने का उल्लेख पाया जाता है। जैन शास्त्रों के अनुसार वैश्य अन्न का विक्रय करते थे और किसान भी उनके माध्यम से अन्न का विक्रय करवाते थे। कृषि से सम्बद्ध होने के कई जातीय सम्बोधन आज भी जैन समाज मे विद्यमान हैं। वैश्यो द्वारा कृषि की सूचक अभी भी जैन समाज की 'खेतपालिया' जाति है। धान्यो को कोटि कुम्भो में भर कर कोठार में सचित करने वाले को 'नयतिक' कहा जाता था जो आज भी 'न्याती' के रूप मे सम्बोधित है। इसी प्रकार अन्न के भण्डारो के स्वामी को 'भण्डशाली',, 'सचेती' और 'कोठारी' कहा जाता था जो आज भी 'भंसाली', 'सचेती' और 'कोठारी' के रूप मे सम्बोधित हैं।

गो-रक्षा और गो-पालन :

कृषि के साथ गोरक्षा और गोपालन भी भारतीय अर्थ-संयोजन की आधारशिला तथा कृषि और व्यापार के पूरक रहे हैं। आरम्भ से ही गोरक्षा एव गोपालन का दायित्व वैश्य कर्तव्य के अन्तर्गत गिना गया है। वैश्य वर्ण और उसके कर्म के लिये गोधन की अनिवार्य उपादेयता थी। बैलों के बिना न कृषि हो सकती है न प्राचीन भारत मे व्यापारिक यातायात सम्भव था, क्योकि उस समय न तो व्यवस्थित सुपथ थे, न व्यापक यातायात के साधन। अतः वैश्य वर्ण को अपना स्थानातर व्यापार करने के लिए बैलो की सहायता लेनी पडती थी। गोधन से उन्हे कृषि के लिए प्रचुर मात्रा मे श्रेष्ठ खाद भी सुलभ हो जाता था तथा गायो के कारण उनका घृत-व्यापार भी चरम सीमा पर था। इसीलिये वैश्यो के पास सहस्रो की संख्या मे गोधन होता था जिसे 'गोकुल' कहा जाता था। जैन-साहित्य और प्राचीन ग्रंथो मे गृहपति-श्रावको के पास इस प्रकार के 'गोकुल' होने का उल्लेख मिलता है। राष्ट्र पिता गाधीजी ने गोरक्षा को हिन्दू धर्म का वहिर्मुख कहा है और वर्तमान में इसकी उपेक्षा पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की थी।

व्यापार-वाणिज्य :

व्यापार-वाणिज्य वैश्य वर्ण का मुख्य कार्य था। जैसे वैदिक सभ्यता में व्यक्ति की पहचान कर्म से होती थी वैसे ही वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर विशेष कार्य-व्यापार के कारण कई वैश्य जातियो का जन्म हुआ, जो व्यवस्था और कार्य बदल जाने पर भी आज भी उन्हीं प्राचीन नामो से सम्बोधित है।

'दुश्य' संस्कृत शब्द है जिसका प्रयोग महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण में वस्त्र के लिये किया है। यही शब्द प्राकृत मे 'दुसअ' हुआ और इस वस्त्र का व्यापार करने वाले 'दोपी' कहलाते थे, जो आज भी गुजरात, राजस्थान और मध्य प्रदेश मे बड़ी संख्या मे पाये जाये जाते हैं। कपास की कृषि के घर गुजरात मे कपास का व्यापार करने वाले वैश्यो को 'कपासि' कहा जाता था, जो आज भी वहा बहुतायत से पाये जाते है। इसी प्रकार कुम्मट वृक्ष के गोद का व्यापार करने वाले व्यापारी

प्राचीन काल में कूम्मट कहलाते थे, जो आज भी जैन समाज में एक पृथक गोत्र रूप में उपस्थित है। हिरन-हिरण्य का अर्थ अनगढ़ सोना है। इस तरह के सोने का व्यापार करने वाले 'हिरण' कहलाते थे। ये लोग सरकार का कर भी वसूल करते थे। यह जाति अभी भी जैन समाज मे है। सोने के आभूषणों का व्यापार करने वाले 'सोनी' कहलाते थे, जो आज भी है। सोने के 'कबड्डिया', 'फदिया', 'गदैया' नामक सिक्को के व्यापारी कावड़िया और फिरोदिया, गदैया कहलाते थे तथा सभी प्रकार के सिक्कों के व्यापारियों को 'नानावटी' कहा जाता था। ये सभी गोत्र जैन समाज मे अभी भी ज्यों के त्यो है। इसी प्रकार घी वेचने वाले लोगों को घीया कहा जाता था। आज भी इस नाम की जाति जैन समाज मे है। नमक के व्यापारी 'लूणिया' और 'हिंग' के हिंगड़ कहलाते थे, जो आज भी है।

संस्कृत मे जहाज को 'बोहित्थ' कहा गया है। जैनी व्यापारी जहाजों के द्वारा विदेशो मे भी व्यापार करते थे। जहाज के स्वामी एवं संचालक को 'बोथरा' और 'बोहितरा' कहा जाता था, ये जातियाँ जैन समाज मे अभी भी हैं। इसी प्रकार 'वोहरा' शब्द व्योहार का विकृत-प्राकृत शब्द है। शास्त्रों मे व्यवहार शब्द मुकदमें के तथा व्योहारी शब्द न्यायकर्ता के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। कालांतर में यही शब्द लेन-देन का व्यापार करने वालों के लिए प्रयुक्त होने लगा। यह 'बोहरा' जाति भी जैन समाज मे अभी भी है। इसी प्रकार तलेसरा, गाधी व पटुआ जातिया भी व्यापार विशेप के कारण वनी हुई हैं। व्यापार में विशेप सहयोगी कार्य से भी जातियां बनी है। जैसे हिरण की भांति वस्तुओं की गिनती कर, कर का निर्धारण करने वाले लोग हिरण्य गणक अथवा गन्ना कहलाते थे, जो आज भी गन्ना जाति के रूप मे है। ऐसे ही हीरे-जवाहरात का व्यापार करने वाले या इस परखपूर्ण व्यापार में परख करने वाले लोग 'पारख' कहलाते थे, जो आज भी इसी नाम से अभिहित है। बोहरा जाति जैन समाज के अतिरिक्त ब्राह्मण तथा मुसलमानों में व्यापारी वर्ग मानी जाती हे और गांधी जाति भी जैन समाज के अतिरिक्त पारसियों मे व्यापारी वर्ग के अन्तर्गत है।

कुछ जैन जातियों का जन्म क्षेत्रीय सम्वोधन के आधार पर भी हुआ है जो तब से अब तक उसी नाम से सम्बोधित है। पाणिनि ने अपने वैयाकरण में 'रंकू' जनपद का उल्लेख किया है। यहां 'रंकू' नाम की बकरियो के लम्बे बालों से बनने वाले कम्बल रांकब कहलाते थे और कम्बलो के वेचने वाले व्यापारी 'रांका' कहलाते थे। यह गोत्र आज भी जैन जाति में विद्यमान है। इसी प्रकार गोधेय, शिबी, मारभू, टांक, अच्छा, बूलीय आदि जनपदो एव गणराज्यो के आधार पर गोधा, शेबा, मारू, टांक, आच्छा, बोलिया आदि गोत्रों का उद्गम हुआ। क्षेत्रीय आधार के अन्य परवर्ती गोत्र है— सिरोया, खिवसरा, चोरड़िया, डूंगरपुरिया, सरूपरिया, बोर्दिया, जालोरी, डागी, पुंगलिया, नागौरी, ओसवाल, चडालिया, जावलिया, नृसिंहपुरा, पोखरना, श्रीमाल, भिन्नमाल, बघेरवाल, खण्डेलवाल। सिंघ क्षेत्र से आई वैश्य व्यापारिक जातियो में वियाणी, सोमाणी, इन्दाणी, कड़वाणी, ललवानी, चोखानी, वीराणी आदि है।

पदो के अनुसार बनी वैश्य जातियों में नाहटा, ठाकुर, तातेड, चौधरी, मेहता, नवलखा, टाटिया, सिंघवी, पगारिया (वेतन चुकाने वाला), गन्ना आदि है।

कार्य के आधार पर वनी एक प्रमुख जाति 'पटुवा' है। ये लोग कपड़ों पर जरी का पक्का काम या कसीदे का काम करने के कारण पटवा कहलाते थे। प्राचीन काल मे व्यापार का प्रमुख केन्द्र जैसलमेर इन पटवा लोगो का उद्गम् स्थल है। ये पटवा लोग जैन समाज की बापना गोत्र के अन्तर्गत आज भी है।

वैश्य वर्ण की इन सभी व्यापारकर्मी जाति-गोत्रों के अतिरिक्त जैन धर्म ने कुम्हार, लुहार, और बढ़ई को आर्य जातियों मे समादृत किया है तथा इन जातियो के घरों में जैन साधुओ के ठहरने और आहार लेने को उचित माना गया है। वैशाली की कम्मार शाला (लुहार की दुकान) में भगवान महावीर ठहरे थे। सद्दालपुत्र नामक पोलासपुर के कुम्भकार के यहां जैन श्रमणों के ठहरने का उल्लेख है। यह सद्दालपुत्र जैन धर्म का अनुयायी था तथा इसकी ५०० दुकानें थी जिन पर कई नौकर-चाकर काम करते थे।

प्रमुख श्रेष्ठि :

प्राचीन काल में राजस्थान मे चित्तौड़, आयड, मज्झमिका और बसन्तपुर देश के प्रसिद्ध व्यापार-केन्द्र थे। यहां के व्यापारी न केवल भारत मे वरन् आयात-निर्यात द्वारा देश-विदेश मे व्यापार करते थे। पूर्व मे चीन, वर्मा, श्याम तथा पश्चिम में अरब की खाडी व यूनान तक व्यापार होता था। राजस्थान मे विदेशी आयात का माल भृगुकच्छ (भड़ौच) से आता था।

दोपी गोत्र के चित्तौड़ के वैश्य व्यापारी तोलाशाह का व्यापार बगाल व चीन तक होता था। चीन मे तोलाशाह की पेड़िया थी। भड़ौच से तोलाशाह के आयातित माल को बन्जारे बैलो की बालद से चित्तौड मे लाते थे। शत्रुंजय का अंतिम उद्धार करने वाला कर्माशाह इसी तोलाशाह का पुत्र था। यह अपने पिता के ही समान बहुत बड़ा व्यापारी होने के साथ-साथ महाराणा रत्नसिंह का अमात्य भी था। इसी कर्माशाह ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह को युवराज अवस्था मे विपत्ति के समय १ लाख रुपया नकद और १ लाख रुपयो का सूती व रेशमी कपडा दिया था। इसी के उपलक्ष्य मे जब बहादुरशाह गुजरात का बादशाह बना, तब उसने कर्माशाह को शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार करने और भविष्य मे अपने द्वारा कोई जैन मन्दिर नही तोड़ने का वचन दिया।

इसी प्रकार जैसलमेर के प्रसिद्ध सेठ थिरूशाह भंसाली ने अतुल राशि व्यय करके शत्रुञ्जय का प्रथम उद्धार करवाया था। जैसलमेर के भसाली बहुत समृद्ध सेठ और बड़े-बड़े भण्डारो के स्वामी होते थे तथा इनका व्यापार ईरान और अफगानिस्तान तक होता था। ये सिंध नदी से जहाजो के द्वारा भी व्यापार करते थे।

थिरूशाह के ही समान जैसलमेर के राका तथा पटवा जाति के सेठों ने अतुल धन सम्पत्ति व्यय करके वहा ऐसे अद्भुत महल तथा मन्दिर बनवाये जिनका शिल्प और कोरनी (खुदाई) का कार्य भारतवर्ष मे अनुपम माना जाता है।

भारत का प्रथम जगतसेठ राजस्थान की ही देन था। नागौर निवासी इस सेठ का उड़ीसा, बगाल और बिहार के अर्थतन्त्र पर पूर्ण प्रभुत्व था। देश के पूर्वी राज्यों मे इसकी सैकड़ो दुकाने व पेड़िया थीं। यह सेठ बादशाह फर्रुखशियार और बगाल के नवाब सिराजुद्दोला की भी समय-समय पर विपुल आर्थिक सहायता करता था। यह अपने समय मे विश्व का प्रमुख सामुद्रिक व्यापारी था।

इस जगत् सेठ के बारे में एक बहुत रोचक सत्य-कथा है। एक बार विदेशो में माल निर्यात करके इसके व्यापारिक जहाज भारत में खाली लौट रहे थे। तभी समुद्र में तूफान उठने के लक्षण दिखायी दिये और विकराल लहरें जलपोतों को डगमगाने लगी। तब जहाज संचालको व नियन्त्रकों ने जहाज को सन्तुलित रखने के लिये जहाज में एक जल-शैल-खंड के पत्थर डाल लिये। इन पत्थरों को जहाज जब लेकर भारत पहुंचा तब इन पत्थरों का सन्धान किया गया और ये पत्थर रत्न शिलाएं

निकलें, जिनसे जगत सेठ को असख्य रत्नो की प्राप्ति हुई। इस अतुल धन-सम्पदा के फलस्वरूप बादशाह ने इस नागौरी सेठ को जगत् सेठ की उपाधि दी।

इस प्राचीन परम्परा मे एक महत्त्वपूर्ण नाम जैसलमेर के पटवा सेठ जोरावरमलजी का है। इनकी सारे देश मे चार सौ से अधिक पेढ़िया व दुकानें थी। जोरावरमलजी का स्थायी निवास उदयपुर था तथा इनका जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बूंदी, टोक व इन्दौर के राज्यो के खजानो पर पूर्ण प्रभुत्व था। ये इन राज्यो के खजाची थे। मेवाड़ जैसा ऐतिहासिक राज्य कई वर्षों तक इनके पास गिरवी रहा। इनके पौत्र राय बहादुर सर सिरेमल बापना कई राज्यो के दीवान रहे तथा इन्होने लदन के पहले गोल मेज सम्मेलन मे गाधीजी के साथ देसी रियासतो की ओर से भारत का प्रतिनिधित्व किया था। इन्होंने एक विशाल जैन तीर्थ सघ भी निकाला। इस विशाल धर्म संघ के अतिरिक्त सेठ जोरावरमलजी बापना ने अपने समय का २ करोड़ से अधिक रुपया दान-पुण्य मे व्यय किया तथा २ करोड़ से अधिक रुपया आवास व धार्मिक भवनो के निर्माण मे व्यय किया। इनके द्वारा जैसलमेर मे बनाये गये महल और इनकी हवेली आज भी शिल्प और कौरनी में बहुत प्रसिद्ध है, जिन्हे असख्य पर्यटक देखने जाते है।

इसके अतिरिक्त-आज भी देश भर मे जो ख्याति प्राप्त धनी व्यापारी है उनमें से अधिकाश मूलतः राजस्थान के ही निवासी है और आज भी ये अपने घर से सुदूर प्रान्तों तक जाकर व्यापार-वाणिज्य से देश की आर्थिक समृद्धि के भागीदार बने हुए हैं।

तोलाशाह और कर्माशाह जैसे प्रसिद्ध सेठो के निवास और व्यापार से स्पष्ट है कि प्राचीन-काल मे चित्तौड़गढ़ कितना महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। इसी चित्तौड मे भामाशाह के श्वसुर भोमा नाहटा, जो अतुल सम्पत्ति का स्वामी था तथा भामाशाह का पिता भारमल जो १८ करोड का स्वामी और भारत प्रसिद्ध सेठ था, जैसे धनी वैश्य रहते थे।

व्यापार-केन्द्र :

ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व चित्तौड़ के पास 'नगरी' नामक नगर व्यापार और जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। भारतवर्ष मे सबसे प्राचीन शिलालेख यही मिला है, जो जैन शिलालेख है। कालांतर मे इसी नगरी का नाम "मज्झमिका" पड़ा। यह मागधी का शब्द है जिसका अर्थ बड़ा और पवित्र नगर होता है। यहां के वस्त्र देश-देशान्तर मे प्रसिद्ध होने का उल्लेख करते हुए पाणिनि एवं पतंजली ने अपने भाष्यो मे यहां के लोगो तथा वस्त्र को 'माध्यमिकेय और 'माध्यमिक' लिखा है।

उदयपुर से कुछ दूर पूर्व मे स्थित वर्तमान आयड़ मोहनजोदड़ो कालीन सभ्यता का प्रमुख नगर गिना गया है। इसका तत्कालीन नाम "आघाटपुर" था तथा अर्धमागधी मे इसे "आहाड़" कहा गया है, जिसका अर्थ ही व्यापारियो को आकर्षित करने वाला नगर होता है। आयड़ मे कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश व पंजाब के व्यापारियो का जमाव था। दसवी शताब्दी तक दक्षिण से यहां हाथी बिकने को आया करते थे। जो 'अल्लट' के समय के शिलालेख से प्रमाणित होता है।

उद्योग :

राजस्थान मे उद्योग का सबसे प्राचीन केन्द्र बसन्तपुर है, जिसका उल्लेख जैन शास्त्रो में आता है तथा जो भारत भर मे सर्वाधिक प्राचीन केन्द्रो मे से है। इसी बसन्तपुर के जैन धर्म संघ ने सर्व प्रथम जैतक के नेतृत्व में जावर की खानो मे उत्खनन का कार्य प्रारम्भ किया था। जहा से,

चांदी, जस्ता और सीसा निकाला जाता था। जैतक संसार का पहला खनिज अभियता, श्रमिक नेता और सहकारवर्मी था। जैन धर्म के इस मुखिया ने जावर में चण्डिका देवी का विशाल मन्दिर बनवाया। जैतक ने १८ प्रदेशो से उत्खनन विशेषज्ञ बुलाये थे। वितल में उत्खनन करने के कारण इन्हें उस समय "वैतालिक" कहा जाता था। उसी के अपभ्रंश रूप में जैन समाज की वर्तमान "वेताला" जाति है।

ससार में सर्वप्रथम पीतल की देन इसी जावर खान की है। पीतल, ताम्बे और जस्ते के मिश्रण से बनता है और यही ये दोनो धातुएं एक साथ उपलब्ध थीं। इस पीतल की छठी शताब्दी की ढली हुई जैन मूर्तिया आज भी पिण्डवाड़ा के जैन मन्दिरों में देखी जा सकती हैं।

राजस्थान में सामोली का शिलालेख[1] (सं० ७०३) क्षत्रियो का प्रथम शिलालेख माना जाता है। इस शिलालेख मे राजा के बजाय जैतक की, तीन बार नाम के साथ जयकार की गई है और राजा शिलादित्य का नाम स्मरण भर है। अत. यह शिलालेख जैतक का ही है और शिलादित्य का उल्लेख केवल राजा होने के कारण हुआ है, क्योंकि उस शिलालेख में किसी राजकार्य का उल्लेख नहीं है वरन् जैतक के महाजन संघ के मुखिया, खनिज अभियन्ता, श्रम विचारक और सहकार धर्मिता का वर्णन है।

प्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्रसूरि ने वसन्तपुर का प्रमुख जैन तीर्थ एवं व्यापारिक केन्द्र के रूप में उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहा के देश-प्रसिद्ध व्यापारी दक्षिण मे क्षितिप्रतिष्ठानपुर और पूर्व मे चम्पा जैसे सुदूर भागो मे जाकर व्यापार करते थे और वे अत्यन्त धनाढ्य थे। लगभग १६वीं शताब्दी तक वसन्तपुर एक प्रमुख जैन व्यापारिक नगर था। अभी यह मेवाड़ की सीमा पर पिण्डवाड़े के पास सिरोही जिले मे है।

उपर्युक्त सभी तथ्यो से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि देश भर मे कृषि, गोरक्षा, व्यापार-वाणिज्य और उद्योगो के सचालक राजस्थान के जैन कितने व्यापक स्तर पर अपने उद्योग व्यापार का विस्तार करते थे और कितनी समृद्धि अर्जित करते थे कि बादशाहो और राजकोषो तक को आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे। इसके साथ ही हम इन धनाढ्य श्रेष्ठियो मे धर्मधुरीणता और लोकोपकार की भावना का प्राचुर्य पाते हैं। आज भी इनमें अपने कर्म और धर्म पर अविचल रहना व देश का आर्थिक दायित्व वहन करना पाया जाता है। अपने रक्त, वर्ण और कर्म की श्रेष्ठता और अनुपालन से आरम्भ से ही जैन भारतीय समाज मे सबसे समृद्ध व देश की आर्थिक स्थिति के संयोजक-नियोजक रहे हैं और इन्ही गुणों के कारण भविष्य मे भी रहेंगे।

---

१. जयति वट नगर (वसन्तपुर) विनिर्गत महाजनो जैंतक प्रमुखं येनास्य, लोक जीवन उत्पाद्य आरण्य कूप गिरौ एभिर्गुणैं युतं तत्र जैतक महत्तर अरण्य वासिना देवकुलं चक्रे महाजनादिष्ट।

४३ | पूर्व मध्यकालीन जैन श्रेष्ठि

श्री रामवल्लभ सोमानी

७वीं शताब्दी के आसपास राजस्थान मे अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई उल्लेखनीय नगर औद्योगिक केन्द्रो के रूप मे विकसित हुये। इन नगरो मे चित्तौड़, जालौर, भीनमाल, आबू, मडोर, ओसिया, पाली, लोद्रवा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्थल मार्ग से सिंध, ईरान आदि की ओर व्यापार की निरन्तर वृद्धि से प्रतिहार काल मे पश्चिमी राजस्थान का यह क्षेत्र बडा ही श्रीसम्पन्न था। कई उल्लेखनीय व्यापारी यहां निवास करते थे। दक्षिण भारत के राष्ट्रकूटो के लेखो मे भीनमाल से गये व्यापारियो का उल्लेख है। जैन साधुओं ने भी इसी काल मे बड़ी सख्या मे अजैन परिवारों को जैन धर्म मे दीक्षित किया था।

प्रतिहार काल की श्री सम्पन्नता का विवरण कुवलयमाला, समराइच्च कहा, शिशुपाल वध, उप मिति भव प्रपच कथा आदि ग्रंथो मे मिलता है। जैन अनुश्रुतियो के अनुसार वि० सं० ७६५ मे उदयप्रभ सूरि ने भीनमाल के करोडपति सेठ समधर को जैन धर्म मे दीक्षित किया। प्रतिहार राजा नागभट (प्रथम) भी लगभग इसी समय जालौर और भीनमाल के स्वामी हुये। ये जैन धर्म से बडे प्रभावित थे। आबू क्षेत्र मे कई साधुओ के विचरण के उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं। घटियाला का वि० सं० ६१८ का प्राकृत भाषा मे निबद्ध लेख बहुत ही उल्लेखनीय है। इससे पता चलता है कि प्रतिहार राजा जैन धर्म से प्रभावित थे। इस लेख से पता चलता है कि धनेश्वरगच्छ के जाम्बव और आम्रक नामक साधु और भाउड नामक श्रेष्ठि उस समय वहा के उल्लेखनीय व्यक्तियों मे से थे। इस लेख मे बढते हुये व्यापार की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। लेख मे "हट्ट" अर्थात् बाजार बनाने का उल्लेख है। इसके अवशेष आज भी वहां दृष्टिगत होते है। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है बढ़ते हुये व्यापार के कारण यह प्रदेश उस समय बड़ा उल्लेखनीय हो गया था। इस लेख मे मरु, माड, वल्ल, त्रमणी, गुजरात और सांचोर प्रदेशों का उल्लेख है। इन प्रदेशो से वहां का व्यापारिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सम्बन्ध रहा था। आज भी यहां खुदाई करने पर बाजार के भग्नावशेष मिलते हैं।

श्रेष्ठियों का प्रभाव :

जैन श्रेष्ठियों का राजाओ पर बड़ा प्रभाव था। अहिंसा के प्रचार अमारिकी घोषणा आदि इसके प्रमाण हैं। राजपूत राजाओ के राज्य मे श्रेष्ठि वर्ग की स्थिति बड़ी ही उल्लेखनीय रही है। नगर श्रेष्ठि को कई प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थी। 'समराइच्च कहा' मे दिये गये वृतान्त के अनुसार

नगर महन्त को पंचकुल का सदस्य माना जाता था। राजाओ द्वारा नगर सेठ की उपाधि देने के १२वी शताब्दी तक के वृतान्त मिलते है। वि० स० १२०६ के किराडू के शिलालेख से पता चलता है कि स्थानीय शासक ने नाडोल के श्रेष्ठि प्राग्वाट शुभंकर की प्रार्थना पर अमारि की घोषणा कराई और तत्सम्बन्धी सुरह लेख भी शिव मदिर में लगवाया। इसके अनुसार प्रत्येक मास की एकादशी, चतुर्दशी व अमावस्या को जीवहिंसा पर रोक लगाई गई। कुंभकार भी इन तिथियो को वर्तन पकाने का कार्य न करे, ऐसी आज्ञा भी जारी की गई। उक्त आज्ञा का उल्लघन करने पर ४ द्रम दड देने का प्रावधान किया गया था। इसी प्रकार का अन्य कई घोषणाये और भी करने के उल्लेख मिलते है। मेवाड मे महारावल तेजसिह और समरसिह के समय जैन धर्म का स्पष्टतः प्रभाव दिखाई देता है।

धार्मिक जीवन :

मध्यकाल मे जैन श्रेष्ठियो के जीवन पर धर्म का बड़ा प्रभाव रहा है। राजस्थान मे सैकडो लेख जैन श्रेष्ठियो के मिलते है। इनमे विभिन्न साधुओ के उपदेश से धार्मिक कार्यों के करने का उल्लेख मिलता है। लेखो मे "स्व श्रेव से" माता-पिता के निमित्त आदि शब्दो का भी प्रयोग मिलता है। लेखो मे सबसे उल्लेखनीय शब्द "न्यायोपार्जित द्रव्य के सदुपयोगार्थ" बोधक शब्द भी मिलते है। न्यायोपार्जित शब्द का अर्थ कठोर कमाई से पैदा किया हुआ धन हो सकता है। इन लेखो और ग्रंथ प्रशस्तियो मे ३ प्रकार के दान प्रायः देने के उल्लेख मिलते है. (१) ज्ञान दान, (२) अभय दान और (३) अर्थ दान। धार्मिक जीवन व्यतीत करने के कारण ही जैन श्रेष्ठि लोग विभिन्न व्यसनो से मुक्त रहते थे और अधिकाशतः मास, मदिरा आदि व्यसनो से मुक्त थे और व्रत आदि के पालन, आचार-विचार का अनुपालन करने से इस वर्ग ने वैश्यो के अन्य वर्ग को भी वडा प्रभावित किया। तपस्या का प्रभाव अन्य समाज के वर्ग पर भी स्पष्टत. दिखाई देता है।

संघ यात्रायें :

जैन श्रेष्ठियो मे सघ यात्राये निकालने का वडा प्रचार रहा था। मध्य काल मे ऐसी कई यात्राये धार्मिक तीर्थों के लिये की जाती रही है। श्रेष्ठि अपने नाम के आगे "सघपति" शब्द बड़े ही गौरव से लिखाते थे। वैष्णवो मे चारधाम की यात्राये की जाती है। इसी प्रकार जैनियो मे शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू आदि तीर्थों की यात्रायें प्रायः की जाती रही है। लोकागच्छ की स्थापना के वाद संघ यात्राए आचार्यों के चातुर्मास आदि स्थानो पर भी की जाने लगी। आबू के लेखो मे कई रोचक वृतान्त मिलते है। कई नगरो से यात्रार्थ आये श्रावको के उल्लेख है। राजाओ द्वारा लिये जाने वाले करो को मुक्त करने का भी उल्लेख है। आबू मे इस प्रकार के कर जो यात्रियो से लिये जाते थे वे महारावल लुम्भा ने वि० सं० १३७२ मे और महाराणा कुंभा ने वि० स० १५०६ मे क्षमा किये थे। शत्रुञ्जय यात्रा के निमित सुल्तान से "फरमान" लेना आवश्यक होता था। नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध चित्रकूट महावीरप्रसाद प्रशस्ति वि० स० १४९५, राणकपुर शिलालेख वि० स० १४९६, सोम सोभाग्य काव्य मे इस प्रकार के फरमान प्राप्त करके यात्राओ का रोचक वृतान्त मिलता है। सोम सौभाग्य काव्य मे कई सघ यात्राओ का वर्णन किया गया है।

ग्रंथ लेखन :

जैन श्रेष्टियो ने ग्रंथ लेखन को भी प्राथमिकता दी है। विभिन्न नगरों मे ग्रंथ भडारो की स्थापना की गई है। इनमे सुरक्षित कई ग्रथो मे प्रशास्तियाँ दी हुई रहती हैं जो कई वार इतिहास

के अध्ययन के लिये बड़ी ही उपयोगी सिद्ध होती है। वि० सं० १२०७ मे जब पाली पर कुमारपाल का आक्रमण हुआ और नगर मे लूटमार होने लगी तो प्रतिलिपिकार अधूरे और त्रुटित ग्रंथ को यह लिखकर छोड़ भागे कि "पाली नगर भंग हो गया है"। यह प्रति इसी स्थिति मे आज जैसलमेर भडार मे विद्यमान है। राजस्थान मे प्रतिलिपि किये ग्रथो मे १३वी से १६वी शताब्दी तक श्वेताम्बर श्रेष्ठियो का प्रायः उल्लेख मिलता है। इसके बाद दिगम्बरो के पूर्वी राजस्थान मे प्रायः उल्लेख मिलते हैं।

व्यापारिक दक्षता :

जैन श्रेष्ठियो मे दो प्रकार के वर्ग मिलते है : (१) राजमंत्री और (२) व्यापारी। राजमत्री अधिकांशतः राजसेवा मे रहते थे। व्यापारी वर्ग भी बडा ही उल्लेखनीय रहा है। समराइच्च कहा, कुवलयमाला, उपमिति भव प्रपच कथा, शत्रुञ्जयतीर्थोद्धार प्रबध आदि ग्रंथो मे इसका विस्तार से उल्लेख है। चित्तौड़ मे तोलाशाह कपड़े के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यापारी थे। 'कान्हडदे प्रबन्ध' मे जालौर मे इसी प्रकार के बड़े-बडे व्यापारियो के उल्लेख है। राजस्थान से बड़ी सख्या मे व्यापारी गुजरात की ओर मध्य काल से जाते रहे है। ऐसी मान्यता है कि वनराज चावडा ने जब गुजरात मे पाटन नगर की स्थापना की, तब भीनमाल क्षेत्र से कई व्यापारियो को वहा बसने को आमत्रित किया था। इन परिवारो मे महामात्य नन्नक का परिवार था जिसके वशज बिमलशाह ने कालान्तर मे आबू मे 'बिमलवसही' का निर्माण कराया था।

जैन धर्म के प्रसार मे भी इन श्रेष्ठियो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुपाल तेजपाल प्राग्वाट जैन श्रेष्ठि थे। इनका काल गुजरात और पश्चिमी राजस्थान मे बड़ा उल्लेखनीय है। इन्होने सैकड़ो ग्रथ लिखाये, कई मदिर बनवाये व मूर्तिया स्थापित कराई एव धर्म प्रचार के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य किये। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण धर्म प्रचार के निमित बडी संख्या मे अर्थ व्यय कर सकना इन श्रेष्ठियो के लिये संभव था। लोकाशाह के सम्प्रदाय के विकास मे भी इसी प्रकार भामा शाह और उसके भाई ताराचंद ने योगदान दिया था। इनके प्रचार का ही प्रभाव है कि आज मेवाड़ मे मंदिर मानने वाले जैन उपासको की सख्या अत्यन्त कम है।

आज भी जैन व्यापारी भारत के उल्लेखनीय व्यापारियो मे से है। पूर्व मध्यकालीन कुछ जैन व्यापारियो का उल्लेख निम्नांकित है :

(१) चंद्रावती निवासी धरणिग :

वस्तुपाल की पत्नी अनुपमा इनकी पुत्री थी। वि० सं० १२८७ मे जब आबू के लूणिगवसही की प्रतिष्ठा की गई और गौष्ठिको की व्यवस्था की गई तब उसमे इस परिवार को भी सम्मिलित किया गया। यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(२) कवींद्र वंधु यशोवीर :

ये जालौर के राजा उदयसिंह के मंत्री थे। इन्हें "कवीद्र वधु" की उपाधि दी हुई थी। ये वहुत विद्वान और शिल्प शास्त्र के ज्ञाता थे। 'प्रवध चिन्तामणि' के अनुसार इन्होने "लुणिगवसही" मे स्थापत्य सम्बन्धी कुछ दोप भी वताये थे जिसे शोभन शिल्पी ने भी स्वीकार किये थे। इनके

२ लेख आबू मे विमलवसही मे वि० स० १२४५ के लगे हुये हैं। अन्य २ लेख जालोर क्षेत्र से मिले हैं। इनके पिता का नाम उदयसिंह और माता का नाम उदयश्री था। लेख में इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। लक्ष्मी और सरस्वती का एक साथ वरद हस्त इन पर होने का उल्लेख है।

(३) श्रेष्ठि यशोराज :

जालोर दुर्ग निवासी श्रेष्ठि यशोराज श्रेष्ठि यशोवीर (उपर्युक्त नं० २ से भिन्न) का पुत्र था। यह श्रीमाली जैन था। यह चद्रगच्छ के आचार्य चद्रसूरि के शिष्य पूर्णभद्र सूरि का भक्त था। जालोर के वि० स १२३९ के शिलालेख मे इसका उल्लेख है। शिलालेख मे दिये गये वर्णन से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(४) नागपुरीय वरहुडिया परिवार :

वरहुडिया ओसवाल परिवार नागपुर का था। इसके द्वारा किये गये सद्कार्यो का विस्तार मे वर्णन मिलता है। यह लक्षाधिपति था। वि० स० १२९६ के आबू के शिलालेख से पता चलता है कि इस परिवार ने शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू, जालोर, तारंगा, पाटन, बीजापुर, लाठपल्ली, प्रह्लादनपुर आदि स्थानो की यात्रायें की और वहा कई देव कुलिकाए बनाई एवं मूर्तिया स्थापित की। कई ग्रंथ भी लिखाये। इस परिवार पर मधुसुदन ढाकी ने स्वाध्याय पत्रिका मे विस्तार से एक लेख लिखा है।

(५) नागड़ श्रेष्ठि परिवार :

आबू परमार राजा धारावर्ष का मंत्री नागर बहुत ही ख्यातिप्राप्त और श्रीसम्पन्न व्यक्ति था। वि० स० १२५२ के झाडोली ग्राम के लेख मे इसका विस्तार से उल्लेख है।

(६) वेसठ श्रेष्ठि परिवार :

इस परिवार का विस्तार से उल्लेख नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध नामक ग्रंथ मे मिलता है। वेसठ ओसिया का रहने वाला था। कुछ समय पश्चात् वह किराडू नगर मे जा बसा। वहा के परमार राजा जैत्रसिंह ने उसे नगर सेठ की उपाधि दी। किराडू गुजरात और सिंघ के मध्य व्यापार के प्रमुख मार्ग पर होने से यह परिवार शीघ्र ही अत्यन्त श्रीसम्पन्न हो गया और कालान्तर मे गुजरात की ओर चला गया। जहा इसके वंशज समरसिंह ने शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार कराया था।

(७) राल्हा परिवार :

चित्तौड के निवासी श्रेष्ठि राल्हा खरतरगच्छ के साधुओ का भक्त था। इसने वि० स० १२८७-८८ मे संघ यात्रायें की और कई हस्त लिखित ग्रंथ भी लिखाये। वि० स० १२९५ मे इसने नलकच्छपुर (नालछा) मे संघ यात्रा की और वहा 'कर्मविपाक' नामक ग्रंथ भी उस समय लिखाया जो इस समय जैसलमेर भंडार मे है। युगप्रधान गुर्वावली और उक्त ग्रंथ की प्रशस्ति से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(८) श्रेष्ठि समधा :

मेवाड के निवासी श्रेष्ठि समधा का उल्लेख कई ग्रंथ प्रशस्तियो, ताम्रपत्रो, शिलालेखो आदि मे है। जैसलमेर भडार मे सुरक्षित 'दस श्रावक चरित्र चूर्णि' वि० सं० १२०९ में इसकी

उल्लेख है। यह मेवाड़ के वर ग्राम का निवासी था। सम सामयिक राजमंत्री समधा का भी उल्लेख मिलता है जिसका उल्लेख वि० सं० १३१६ से लेकर १३२३ तक के कई लेखो मे मिलता है। इसकी साली धाधी नामक श्राविका ने वि० सं० १३५२ मे चित्तौड मे एक ग्रंथ लिखवाया था। इस प्रकार वर ग्राम के अभवी श्रावक के पुत्र समधर का मेवाड के राजमंत्री समधा से क्या सम्बन्ध था, बताना कठिन है।

(९) श्रेष्ठि धांधल।

जैसलमेर भंडार मे संग्रहीत "चंद्र दूत काव्य" की वि० सं० १३४३ की प्रशस्ति में एवं युगप्रधान गुर्वावली के वि० सं० १३३४ के वर्णन में इस परिवार का उल्लेख है। धांधल के पुत्रो के नाम रत्ना और भीम था। करेडा के जैन मंदिर मे वि० सं० १३१७ का धांधल श्रेष्ठि का शिला लेख है इसमे इसके पिता का नाम आसराज दिया गया है। बड़ोदा मे संग्रहित "निर्घंटुशेच" नामक ग्रंथ (वि सं० १३४३) भी इसी सौवर्णिक धांधल के परिवार का मान सकते है।

(१०) मंडोवर के श्रेष्ठि जेल्हा परिवार :

बीकानेर मे मंडोवर मूल नायक प्रतिमा आज भी विराजमान है। अतएव पता चलता है कि मंडोवर मे बड़ी संख्या मे जैन श्रेष्ठि रहते थे। इनमे श्रेष्ठि जेल्हा का परिवार बडा उल्लेखनीय है। आबू के विमलवसही के जीर्णोद्धार मे इसी परिवार ने वि० सं० १३७८ के आसपास बडा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इस परिवार के कई लेख आबू मे लग रहे हैं। १४ बार संघ यात्रा निकालने का उल्लेख होने से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्री सम्पन्न था।

११) रामदेव नवलखा परिवार :

महाराणा लाखा के समय देवकुलपाटक बहुत ही समृद्ध नगरो मे माना जाने लगा। यहां कई श्रेष्ठि परिवार रहते थे इनमे रामदेव नवलखा का परिवार उल्लेखनीय है। वि० स० १४३१ में बडा भारी दीक्षा महोत्सव करेडा (जिला चित्तौड़) मे कराया था। मेरुनन्दन उपाध्याय ने केलवाडा मे विज्ञप्ति लेख की प्रतिलिपि वि० स० १४४५ में की जिसमे इस परिवार का उल्लेख किया गया है। इसकी पत्नी का नाम मेलादेवी था जो वि० स० १४८६ तक जीवित थी। इसके दो पुत्र साहण और सारंग थे। इस परिवार ने कई प्रतिमाएं बनवाई। कई ग्रंथ लिखवाये।

(१२) वीसल श्रेष्ठि परिवार :

उपर्युक्त रामदेव श्रेष्ठि की पुत्री "खीमाई" की शादी ईडर निवासी वत्सराज के परिवार मे वीसल के साथ हुई थी। वत्सराज के ४ पुत्र थे—(१) गोविन्द, (२) वीसल, (३) अक्करसिंह और (४) हीरा। गोविन्द द्वारा निकाले गये संघ का विस्तार से उल्लेख 'सोम सौभाग्य' काव्य मे है। वीसल श्रेष्ठि को महाराणा लाखा ने मेवाड़ मे बसने को कहा था। यह देलवाडा मे रहता था और अपने समय का उल्लेखनीय व्यापारी था इसके २ पुत्र धीर और चम्पक नामक थे। क्रियारत्न-समुच्चय ग्रंथ की दस प्रतिया इस परिवार ने लिखाई थी और आचार्य सोमसुन्दर सूरि को आमंत्रित करके विशालराज को वाचक पद दिलाने हेतु बहुत बड़ा महोत्सव कराया। इसी प्रकार जिनकीर्ति को सूरि पद दिलाने हेतु भी उत्सव किया था।

(१३) श्रेष्ठि गुणराज परिवार :

गुणराज चित्तौड़ का रहने वाला था और गुजरात मे व्यापार करता था। इस परिवार का विस्तार से उल्लेख वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति, राणकपुर की प्रशस्ति, सोम सौभाग्य काव्य आदि मे है। श्रेष्ठि गुणराज ने विशाल संघ निकाला था। गुजरात के बादशाह ने भी इसे सम्मानित किया था।

(१४) धरणाशाह परिवार :

राणकपुर मदिर का निर्माता धरणाशाह बड़ा प्रसिद्ध है। इस परिवार वालो के कुछ लेख पिंडवाड़ा से भी मिले हैं। पिंडवाड़ा के वि० सं० १४६५ के शिलालेख के अनुसार श्रेष्ठि कुंरपाल के २ पुत्र रतना और धरणा थे। रतना का परिवार मोडू मे जाकर के रहने लगा। धारणाशाह ने आचार्य सोमसुन्दर सूरि के उपदेश से जगत्प्रसिद्ध राणकपुर के देवालय का निर्माण कराया। यह कार्य कराना एक व्यक्ति के लिये अत्यन्त कठिन है। ऐसा विशाल कार्य हाथ में लेना यह प्रकट करता है कि धरणा शाह परिवार काफी अधिक धनवान परिवार था।

इन परिवारो के अतिरिक्त जैसलमेर मे कई उल्लेखनीय परिवार थे। यहां खरतरगच्छ का प्रसिद्ध केन्द्र था। मडोर मे भी जैनियो की बहुत बड़ी बस्ती थी। डूंगरपुर मे श्रेष्ठि साल्हा शाह एक उल्लेखनीय व्यक्ति रहा था। इसका उल्लेख आतरी के शिलालेख, गुरुगुण रत्नाकर काव्य आदि मे हो रहा है।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल मे जैन श्रेष्ठियो की स्थिति काफी उल्लेखनीय थी।
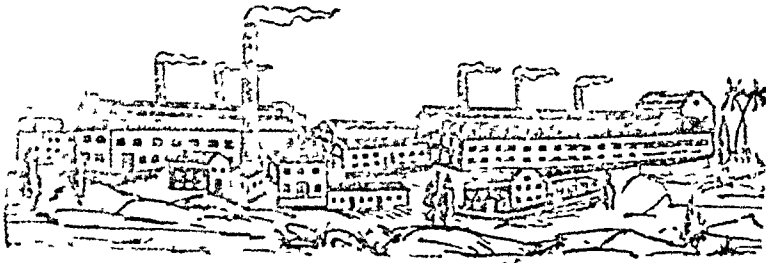
४४ | उन्नीसवीं सदी के राजस्थान के आर्थिक जीवन में कतिपय जैन परिवारों का योगदान

डॉ० कालूराम शर्मा

राजस्थान के इतिहास मे उन्नीसवी सदी सक्रमणकाल के रूप मे मानी जाती है। पिछली किसी एक सदी मे इतना अधिक परिवर्तन देखने मे नही आता है जितना उन्नीसवी सदी मे दिखाई पडता है। सदी के प्रारम्भ मे राजपूत राज्यो को जहा मराठो तथा पिंडारियो एवं पठानो की लूट-खसोट का सामना करना पड़ा वही सामन्तो एव शासकों के आपसी संघर्ष का विनाशकारी परिणाम भी भुगतना पड़ा। १८१८ ई० में राजपूताने के नाम मात्र के स्वतन्त्र राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आश्रित वन गये। फिर भी, शान्ति और व्यवस्था के कायम होने मे काफी वर्ष लग गये। सदी के अन्त तक अंग्रेजो ने राज्यों के आन्तरिक प्रशासन पर भी अपना पूर्ण नियत्रण स्थापित कर लिया।

राजनीतिक उथल-पुथल एव अव्यवस्था की इस सदी मे भी राजस्थान के सेठ-साहूकारों ने राज्यो के आर्थिक जीवन को पंगु नही होने दिया और व्यापार-वाणिज्य तथा लेन-देन के काम को सुचारू रूप से जारी रखा। यह वास्तव मे विस्मयजनक है। उनकी इस सफलता तथा उपलब्धि में जैन साहूकारो का योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा है।

व्यावसायिक दृष्टि से रुपयो का लेन-देन और व्यापार-वाणिज्य जैन साहूकारो का परम्परागत व्यवसाय था। कई जैन परिवार खालसा भूमि के राजस्व और सायर (चुंगी) का इजारा लेने का काम भी करते थे। साहूकार के रूप मे साधारण किसान से लेकर शासको तक को व्याज पर ऋण देना उनका मुख्य व्यवसाय था। इस सदी में जैन साहूकारो के कई घराने राज्यो के खजांची तथा बैंकर्स बने हुए थे। रीयां वाले सेठ मुहणोत जीवनदास के घराने ने कई वर्षों तक जोधपुर, उदयपुर, किशनगढ़, टोंक आदि राज्यो के लिये बैंकर्स का काम किया था। इन राज्यो के कामो में जो कुछ खर्च होता था, वह सेठ लोग दे देते थे और राज्यो की जो आमदनी होती थी वह सेठो के पास जमा करा दी जाती थी। साल के अन्त में हिसाव कर लिया जाता था। सेठ हमीरमल के समय में इस घराने ने अंग्रेजी सरकार के लिए भी खजाने तथा बैंकर्स का काम किया। सेठ चांदमल के समय में कोहाट, कुर्रम, मलाकान, पेशावर, जालंधर, होशियारपुर, सागर, सांभर, पचपद्रा, डीडवाना

आदि स्थानो पर ब्रिटिश खजाने का सारा काम-काज इसी घराने के अधिकार में था । १८७८-७९ में काबुल युद्ध के समय सेठ चांदमल ने अंग्रेज सरकार को एक करोड़ रुपये उधार दिये थे । इसी से इस घराने के ऐश्वर्य का पता चल जाता है ।

बोहरगत के मामले मे जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना का घराना भी काफी प्रतिष्ठित था । उनके पुत्र सेठ बहादुरमल के समय मे कोटा, बून्दी, टोक आदि रियासतो के खजाने का काम इसी घराने के हाथ मे रहा था । अंग्रेजो की देवली एजेन्सी के खजाने का काम भी कई वर्षों तक इसी घराने के पास रहा था । बहादुरमल के दत्तक पुत्र सेठ दानमल के समय में इस घराने की प्रतिष्ठा और भी अधिक हो गई थी । गुमानचन्द के दो अन्य पुत्रो–मगनीराम और जोरावरमल ने मिलकर सुप्रसिद्ध "मगनीराम जोरावरमल" फर्म की स्थापना की । इस फर्म ने कई राज्यो के खजाने का काम किया । उदयपुर राज्य में नियुक्त अग्रेज एजेन्ट कर्नल टॉड ने जोरावरमल को इन्दौर से बुलाकर उदयपुर राज्य का बैंकर तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त किया । जोरावरमल ने अपनी पूंजी तथा सूझ-बूझ से उदयपुर राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । उदयपुर राज्य की अग्रेज एजेन्सी के खजाने का काम भी सेठ जोरावरमल को ही सौपा गया । उनके पुत्र सेठ चादमल ने १८५७ मे अग्रेज सरकार को लाखो रुपये उधार देकर उसकी स्थिति को मजबूत बनाने मे योगदान दिया था ।

अजमेर के मेहता गभीरमल के घराने ने भी कई वर्षों तक कई राज्यो के लिए खजाने तथा बैंकर्स का काम किया था । मेहता प्रतापमल के समय मे इस घराने का राजस्थान की बहुत-सी रियासतो के साथ लेन-देन का काम होता था । अजमेर के मेहता लालचन्द का घराना भी प्रतिष्ठित बैंकर था । उनकी फर्म "लूनकरण रिद्धकरण" का कई राज्यो के साथ लेन-देन था । अजमेर के सेठ कमलनयन हमीरसिह लोढा के घराने की गिनती भी प्रतिष्ठित बैंकरो मे की जाती थी । जयपुर, जोधपुर, किशनगढ, टोक आदि राज्यो के साथ उनका लेन-देन था । इस घराने के सेठ समीरमल को अलवर, कोटा और जोधपुर रेजीडेन्सियो तथा देवली और एरनपुरा की अग्रेज सैनिक छावनियो के खजाने का काम भी सौपा गया था । जयपुर और बाद मे अजमेर बस जाने वाले सेठ पद्मसी नेनसी ढढ्ढा के घराने ने भी बैंकिग व्यवसाय मे काफी ख्याति अर्जित की । इस घराने का कई देशी रियासतो के साथ लेन-देन था । इसी घराने के सेठ अमरसी ने हैदराबाद दक्षिण मे "अमरसी सुजानमल" फर्म कायम की और दक्षिण के भारतीय शासको के साथ लेन-देन का काम शुरू किया था ।

जयपुर के सेठ गुमानसिह दानसिह कोठारी का घराना भी प्रतिष्ठित बैंकर था । इस घराने का इन्दौर, बीकानेर, उदयपुर, ग्वालियर आदि राज्यो के साथ कई वर्षो तक लेन-देन रहा । जयपुर के ही सेठ देवीचन्द कोठारी का घराना भी लेन-देन का काम करता था । इस घराने के सेठ कपूरचन्द के समय में जयपुर राज्य ने लाखो रुपये उधार लिये थे । चूरू के सेठ केशरीचन्द गुलाबचन्द कोठारी के घराने ने पहली बार ब्रिटिश राज्य मे अपनी बैंकिंग फर्म स्थापित की थी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ भी कई वर्षों तक लेन-देन किया ।

उन्नीसवी सदी के मध्यकाल तक वस्तुओ के आयात-निर्यात का लेन-देन मुख्यतया हुडियो के द्वारा ही किया जाता था । राजपूत राज्यो का आपसी लेन-देन और ब्रिटिश सरकार को दिये जाने

वाले खिराज का भुगतान भी हुंडियों के द्वारा ही किया जाता था। सामान्य सैनिक और राजकर्मचारी अपने-अपने घर रुपये भिजवाने के लिये भी हुंडियो का सहारा लेते थे। हुंडी-व्यवसाय मे जैन साहूकारों ने काफी अच्छी साख अर्जित की थी। कोटा राज्य का खिराज सामान्यत. मगनीराम जोरावरमल की हुंडियों के द्वारा ही जमा होता था। कई बार कोटा के शाह केशोराम शिवनाथ की हुडियों के द्वारा भी जमा कराया गया। अंग्रेज सरकार ने सेठ मगनीराम जोरावरमल को चार प्रतिशत कमीशन पर उदयपुर राज्य का खिराज हुंडियो के द्वारा अजमेर खजाने मे जमा कराने की आज्ञा दे रखी थी। जयपुर राज्य के सेठ गुमानसिंह दानसिंह कोठारी की हुंडियां इन्दौर, पूना, ग्वालियर, उदयपुर, अमरावती, बीकानेर, बम्बई आदि स्थानो के लिये की जाती थी। जयपुर के ही शाह देवीचन्द कोठारी की फर्म मालवा, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, फरुखाबाद आदि स्थानों के लिये हुंडियों का काम करती थी। चूरू के केशरीचन्द गुलावचन्द और उनके घराने की हुंडिया सारे उत्तरी भारत में सिकारी जाती थी। अजमेर में हुंडी का व्यवसाय करने वाले जैन साहूकारों में कमलनयन हमीरसिंह, पदमसी नैनसी और लूनकरण रिद्धकरण की फर्में मुख्य थी। उदयपुर में मेहता बदनमल की हुंडी व्यवसाय में काफी ख्याति थी। रीयां वाले सेठ मुहणोत जीवनदास के घराने तथा जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना के घराने ने इस क्षेत्र में अपूर्व कीर्ति अर्जित की।

मध्यकालीन राजस्थान के व्यापार-वाणिज्य की उन्नति मे उसकी भौगोलिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। देश के उत्तरी, उत्तर-पश्चिमी और दक्षिणी भारत के अधिकांश व्यापारिक मार्ग राजस्थान से होकर गुजरते थे। इस प्रकार, राजस्थान का भारत के दोनो प्रमुख क्षेत्रों से घनिष्ट व्यापारिक सम्पर्क बना रहा। अफ्रीका, यूरोप और एशिया के व्यापारी सिन्ध अथवा गुजरात के बन्दरगाहो से राजस्थान की प्रमुख मडियो तक आते थे और अपने सामान के बदले मे उत्तरी, उत्तर-पश्चिमी भारत और मध्यएशिया की वस्तुएं ले जाते थे। इसी प्रकार, मध्य एशिया के व्यापारी भी घोड़ों, सूखे मेवो तथा अन्य वस्तुओ के बदले मे पूर्वी एशिया का सामान ले जाते थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक राजस्थान के व्यापार-वाणिज्य की स्थिति पहले की भांति बनी रही और इसे बनाये रखने मे जैन साहूकारों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। उनका मुख्य कार्य कुटीर उद्योगों के उत्पादन तथा कृषि उत्पादन की वस्तुओ के निर्यात मे सहायता देना तथा स्थानीय आवश्यकता के अनुसार अन्य वस्तुओ का आयात करना था। उदाहरणार्थ, कोटा के शाह मोहनराम रिखबदास अफीम के बहुत बड़े व्यापारी थे जिनके यहा से कच्चे माल से पुख्ता माल तैयार होकर अन्य राज्यो को भेजा जाता था। पाली मारवाड़ के सेठ कचरदास लोढ़ा भी अफीम के बहुत बड़े व्यापारी थे। अफीम के व्यापारियों में सादड़ी के सेठ गंगाराम बापना भी अग्रिम पक्ति मे थे। रतलाम और इन्दौर मे भी उनकी दुकानें थी जिन पर बड़े पैमाने पर अफीम का व्यापार किया जाता था।

कपड़ा, कपास, अनाज, किराणा आदि के व्यापार-क्षेत्र में राजस्थानी जैन साहूकार सबसे आगे रहे। रीयां के नगर सेठ मुहणोत जीवनदास की पूना, अजमेर तथा दक्षिण भारत के अनेक स्थानो में दुकानें कायम थी। हमीरमल के समय मे इस घराने का व्यापार-वाणिज्य और भी अधिक विस्तृत हुआ तथा पंजाब और मध्यभारत में कई दुकानें खोली गईं। जोधपुर राज्य की तरफ से इस घराने को विशेष सुविधाएं प्रदान की गईं। उनके व्यापार-वाणिज्य पर आधा महसूल माफ था और उनकी घरेलू आवश्यकता के लिये आने वाले समस्त सामान की पूरी चुंगी माफ कर दी गई

थी। सेठ चांदमल के समय में इस घराने की लगभग ४०० दुकानें सम्पूर्ण भारत मे फैली हुई थी। व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना के घराने ने विशेष प्रतिष्ठा अर्जित की। उनके पाच पुत्रो–बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावरमल और प्रतापचन्द्र ने क्रमशः कोटा, झालरापाटन, रतलाम, उदयपुर और जैसलमेर, इन्दौर को अपना-अपना कार्यक्षेत्र बनाया और सम्पूर्ण भारत में सैकडो दुकाने कायम की। चीन मे भी इस घराने की दुकान थी।

अजमेर के जैन साहूकार भी इस क्षेत्र मे पीछे नही रहे। मेहता प्रतापमल के घराने की दुकाने कलकत्ता, हैदराबाद, पूना, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, इन्दौर, टोक, उज्जैन आदि स्थानो पर थी। मेहता लालचन्द की ग्वालियर, झासी, फरुखाबाद, मिर्जापुर, भोपाल, जयपुर आदि स्थानो पर सराफे की दुकानें थी। इस घराने की "लूनकरण रिद्धकरण" फर्म की २५–३० शाखाए उत्तरी-भारत मे फैली हुई थी। अजमेर की ही "कमलनयन हमीरसिंह" फर्म की दुकानें जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, फरुखावाद, टोक, सीतामऊ, कलकत्ता, बम्बई, कोटा, अलवर, सिरोज आदि अनेक स्थानो पर कायम थी। अजमेर की एक अन्य प्रसिद्ध फर्म "पद्मसी नैनसी" थी जिसकी शाखाएं दक्षिण-भारत मे मद्रास और पूर्व मे आसाम तथा उत्तर मे पजाब तक फैली हुई थी। चूरू के जैन साहूकारो मे "रुक्मानन्द वृद्धिचन्द" की फर्म काफी प्रसिद्ध रही। बाद मे इसका नाम "तेजपाल वृद्धिचन्द,' पड़ा। यह फर्म मुख्यतः कपडे और बैंकिग का कारोबार करती थी और राजस्थान तथा आसाम-बगाल मे इसकी कई शाखाए थी

उदयपुर के मेहता वदनमल ने न केवल भारत मे ही अपितु रगून, हागकाग आदि सुदूर-पूर्वी स्थानो मे भी अपने फर्म की शाखाए स्थापित की थी। इसी प्रकार, जयपुर के गुलाबचन्द वेद जौहरी इगलैण्ड से पन्ना मगाकर भारत मे वेचने तथा इगलैण्ड को जवाहरात भेजने का व्यवसाय करते थे। जयपुर के 'गुमानसिंह दानसिंह" (कोठारी) की इन्दौर, पूना, ग्वालियर, उदयपुर, बीकानेर, अमरावती आदि स्थानो पर कई शाखाए थी। बम्बई मे राजस्थानी साहूकारो की सर्वप्रथम शाखा खोलने का श्रेय भी उन्ही को है। जयपुर के एक अन्य जैन साहूकार देवीचन्द कोठारी की मालवा, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, फरुखावाद आदि स्थानो पर ५४ शाखाएं थी। सरदारशहर के सेठ चैनरूप दूगड के घराने की "चैनरूप सम्पतराम" फर्म की कलकत्ता के बाजार मे काफी प्रतिष्ठा थी। यह फर्म विदेशी कपड़े का सीधे इगलैण्ड से आयात करती थी। चूरू की ही एक अन्य फर्म "रुक्मानन्द-सागरमल" (बोथरा) जापान तथा इगलैण्ड से विदेशी कपड़े का आयात करती थी। चूरू के त्यागी जैन साहूकार चिमनाराम मोदी के घराने की दुकानें भी अनेक स्थानो में फैली हुई थीं। दिल्ली मे उनकी फर्म "जयदयाल भीमराज" के नाम से प्रसिद्ध थी तो कलकत्ते में "बैजनाथ बालचन्द" के नाम से विख्यात थी।

उन्नीसवी सदी में कई जैन साहूकारो का मुख्य व्यवसाय भूमि-कर और सायर वसूली का इजारा लेना था। इसके साथ-साथ वे लोग जमीदारी का काम-काज भी करते थे। १८५१ ई० तक उदयपुर राज्य की सम्पूर्ण सायर वसूली का ठेका सेठ जोरावरमल के पास रहा था। अजमेर और ब्यावर की सायर वसूली का इजारा भी काफी वर्षों तक जैन साहूकारो ने ले रखा था। जैसलमेर राज्य से भूमि-कर वसूली का इजारा कुछ वर्षों तक सेठ गणेशदास बहादुरमल के पास रहा था।

सिरोही के बापना परिवार की "सूराजी फूलचन्द" फर्म भी भूमि-कर उगाही तथा सायर वसूली के इजारे लेने का काम करती थी। उदयपुर के प्रेमचन्द बापना का घराना भी इजारेदारी का काम करता था।

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे राजस्थान की आर्थिक स्थिति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुये। अंग्रेजो ने राजपूताना को भी अपनी आर्थिक साम्राज्यवादी नीति में लपेट लिया। परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यो मे खानो का उत्खनन बन्द हो गया। नमक-उद्योग पर ब्रिटिश सरकार का एकाधिकार कायम हुआ। रेल मार्गों के खुल जाने से हजारो बनजारों का व्यवसाय सीमित हो गया। पुराने व्यापारिक केन्द्रों का महत्त्व भी जाता रहा। भूमि बन्दोबस्त और चुंगी की संशोवित व्यवस्था ने क्रमश: भूराजस्व और सायर वसूली की इजारा प्रथा को समाप्त कर दिया। राज्यों मे आधुनिक खजानो की स्थापना ने राज्यो के साथ लेन-देन और ब्याज के व्यवसाय को भी काफी सीमित कर दिया। इस प्रकार, धन-सम्पत्ति अर्जित करने के परम्परागत साधन सीमित होते गये परन्तु नये साधन उपलब्ध नही हुए। ऐसी स्थिति मे राजस्थानी व्यापारियों और सेठ-साहूकारों ने राजस्थान के बाहर ब्रिटिश प्रान्तो तथा अन्य देशी रियासतो मे अपना भाग्य आजमाने का प्रयत्न किया। यह क्रम बीसवीं सदी मे भी जारी रहा।

राजस्थान के बाहर भाग्य आजमाने जाने वाले व्यापारियो एवं साहूकारो में भी जैन साहूकारों की संख्या अधिक रही। सुदूर अनजाने प्रदेशों मे जाना और वहा बसना सरल काम नही था। फिर भी, जैन साहूकारों ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। बंगाल, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तों में उन्नीसवी सदी के बीतते न बीतते अनेक प्रसिद्ध जैन गद्दियों का आविर्भाव हो गया। प्रारम्भ में वे लोग बेनियन हुए। फिर मुत्सद्दी, मुनीम और दलाल हुए। किन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हम उन्हे प्रमुख बैंकर, कपड़े के बड़े व्यापारी, प्रधान जूट बेलर, अग्रिम पंक्ति के लोहे के व्यापारी, चाय बागानों के स्वत्वाधिकारी, अफीम के प्रतिष्ठित व्यापारी के रूप में देखते हैं। कलकत्ता की प्रसिद्ध फर्म "रुक्मानन्द वृद्धिचन्द" जो बाद में "तेजपाल वृद्धिचन्द" के नाम से विख्यात हुई, चूरू के जैन साहूकारों की ही थी। इसी प्रकार, "मैसर्स चैनरूप सम्पतराम" फर्म सरदारशहर के जैन साहूकार की थी। जोधपुर के सेठ लालचन्द बोथरा ने बंगाल में "लालचन्द अमानमल" फर्म स्थापित की। चूरू के बोथरा परिवार ने भी कलकत्ता में "रूक्मानन्द सागरमल" नामक फर्म स्थापित की। रतनगढ़ के सेठ माणकचन्द बैद ने कलकत्ता में "माणकचन्द हुक्मचन्द" नामक फर्म कायम की। चूरू के बेद उदयचन्द पन्नालाल और राजलदेसर (बीकानेर) के सेठों की "खड़गसिह लच्छीराम" फर्म कलकत्ते की प्रसिद्ध फर्मों में से एक थी। पाली मारवाड़ के कोठारी नरसिंह के पुत्रों ने बम्बई में "सागरमल निहालचन्द" फर्म स्थापित की। सेठ अमरसी ने हैंदराबाद दक्षिण में "अमरसी सुजानमल" नामक सुविख्यात फर्म कायम की। इन लोगों के अतिरिक्त अनेक ऐसे जैन परिवारों का उल्लेख मिलता है जो कि एक लोटा डोर लेकर कमाने के लिए बाहर निकल पड़े और हजारो मील की दूरी तय करके अनजान इलाकों में बस गये और वहां व्यापार-वाणिज्य द्वारा अच्छी सम्पत्ति अर्जित की और उन इलाको में राजस्थानी संस्कृति के साथ-साथ जैन धर्म का आलोक भी फैलाया।

राजस्थानी सेठ-साहूकारों ने शुरू में वाणिज्य को ही अपनाया। उद्योग और उत्पादन के क्षेत्र में वे काफी देर से उतरे। परन्तु इस क्षेत्र में भी जैन साहूकार अग्रणी रहे। जयपुर के कोठारी

४५ | बीकानेर राज्य के आर्थिक विकास में जैनियों का योगदान

श्री गिरिजाशंकर शर्मा

पृष्ठभूमि ·
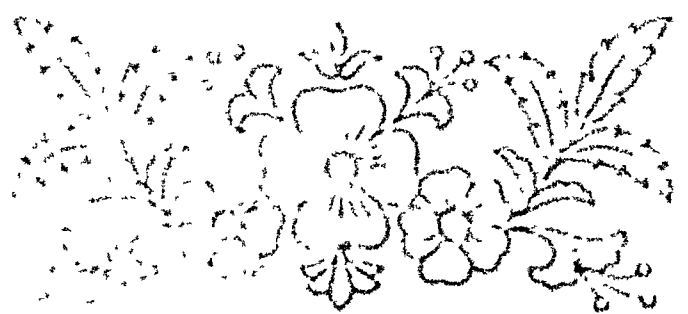
बीकानेर राज्य के इतिहास में जैन धर्मावलम्बियो का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। राज्य के स्थापना काल से लेकर राजस्थान मे इसके एकीकरण तक जैन घराने बीकानेर राज्य की प्रशासनिक, सैनिक एवं राजनैतिक सेवा मे सलग्न रह कर काफी ख्याति कमा रहे थे, तो दूसरी ओर इन्ही घरानो के अन्य लोग राज्य के वाणिज्य-व्यापार एव औद्योगीकरण मे भाग लेकर इसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने मे व्यस्त थे। जब राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना करने के लिये जोधपुर राज्य से कूच किया तो उनके साथ जैन धर्मावलवी ओसवाल जाति के बच्छावत मेहता वरसिंह, वैद मेहता लाला और लाखणसी व कोठारी चौथमल मुत्सद्धी के रूप मे आये।[1] राज्य की स्थापना के बाद इन लोगों को राज्य मे अनेक उच्च पदो पर नियुक्त किया गया। इनके बाद इनके वंशजों मे मुख्य रूप से कर्मचद, वैद मेहता अबीरचंद व मेहता हिन्दुमल तो अमात्य एव प्रधान अमात्य पदो को भी सुशोभित कर चुके थे। इन घरानों के अतिरिक्त सुराणा, राखेचा, एवं नाहटा आदि कई जैन धर्मावलंबियो के वंशजो ने राज्य के उच्च पदो पर रहकर सैनिक एव राजनैतिक सेवाएँ देने का अवसर प्राप्त किया था। यहा यह द्रष्टव्य है कि महाराजा सरदारसिंह के शासन तक (सन् १८७२) राज्य के उच्च एव दायित्वपूर्ण पदो पर वैश्य वर्ग विशेषत: जैन ओसवालो की प्रधानता रही।[2] इस समय तक प्रधान मत्री की अपनी अन्य जिम्मेवारियों के अतिरिक्त राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करना मुख्य जिम्मेवारी मानी जाती थी।[3] प्रस्तुत निबंध मे हम उक्त घरानो एव समय-समय पर राज्य के विभिन्न भागों में आकर बसने वाले वाणिज्य व्यापार मे सलग्न जैन धर्मावलम्बी लोगो का, राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने मे जो योगदान रहा उस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

सन् १८७४ में जिस समय केप्टिन पाउलेट ने राज्य का गजेटियर तैयार किया था, उस समय बीकानेर के अस्सी प्रतिष्ठित व्यापारिक घराने वैद मेहता लाला को अपना पूर्वज मानते थे तथा

---

१. पाउलेट—गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृष्ठ १।
२. गौरीशंकर हीराचंद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पृष्ठ ७५३।
३. गौरीशकर हीराचंद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पृष्ठ ७५४।

पाच अन्य व्यापारिक घराने कोठारी चौथमल को अपना पूर्वज मानते थे ।[1] थे दोनों राव बीका के साथ जोधपुर से आये थे । इनके अतिरिक्त बीकानेर के शासको ने राज्य मे अनेक गावो एवं कस्बो को बसाने के लिये समय-समय पर राज्य के बाहर के व्यापारियो को निमत्रण दिया और यहां बसने के लिये उन्हें अनेक सुविधाएं प्रदान की । इससे राजपूताने की अनेक रियासतो के व्यापारियो ने राज्य मे आकर अपना वाणिज्य व्यापार प्रारभ किया । इन व्यापारियों मे भी जैन धर्मावलवी ही सबसे अधिक आकर बसे ।[2] जैन लोग अधिकतर राज्य के सुजानगढ, सरदारशहर, रतनगढ, राजलदेसर, डूगरगढ व चुरू मे आकर बसे थे । इनमें ओसवाल, सरावगी व जैन धर्म को मानने वाले अग्रवाल मुख्य थे । राज्य मे सन् १६२१ मे कुल व्यापारियो की संख्या ४५,१३३ थी जिनमे से आधे से अधिक २५,००० के लगभग केवल जैन धर्मावलवी २४,५५१, सरावगी ४४६ व शेष अग्रवाल जैन ही थे ।[3] इस प्रकार राज्य मे अनेक जैन जाति के घराने यत्र तत्र बिखरे हुए थे, उनमे मुख्य घरानो के मूल नाम इस प्रकार हैं :—

बाघचार, बडेर, धाडीवाल, भाडावत, शाह, मन्नी, साड, बूचा, मरोहठी, सेठिया, मालू, लोकडी, नाडवैद, कोचर, सिरोहिया, बाफनिया, कोजतिया, भंडारी, भूरा, सजती, रबड, लोनिया, सोनावत, चजलानी, ललवानी, फलोदिया, पनूचा, अभानी, बक्शी, दफ्तरी, काबडिया, आचलिया, सिपानी, हीरावत, आसाती, भूपानी, नाहर, खटोल, रामपुरिया, दोगड़, मानोत, गोलछा, गलगलिया, खजाची, भंडसाली, नाहटा, छाजेड, चोपडा, भादानी, मूड़ा, सुखानी, लढानी, वैद, बच्छावत, बडरिया, बेगानी, सावनसुखा, कोठारी, पारख, डड्ढा, बाठिया, कात्तेला, दसानी, लोढ़ा, लालानी, पटवा, डागा, जैसलमेरी, डागाराजानी, पारखजेठानी, पारख पंसारी, सिंघी, सुराना, गुडिया, चोरडिया, सेठी, बोथरा, सनावत, चडालिया, गद्दैया, जलेबी चोर, डोसी, छुरिया, सांकालिया, कुंडलिया, गुडावत, झावक, सुजानी, राखेचा, पुगलिया, रतानी, काकरिया, कठोतिया व बाफना ।[4]

राज्य की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था एवं जैन व्यापारी :

बीसवी सदी के प्रारभ तक राज्य मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का आधार गावो एव कस्बो मे रहने वाले साहूकार एव महाजन ही थे, जो वैश्य जाति के प्रधान थे । सन् १६२१ तक राज्य मे ४७३४ व्यक्ति साहूकारी एव महाजनी के कार्य मे व्यस्त थे जिनमे भी ओसवाल जाति के लोग ही सर्वाधिक थे ।[5] प्रारभकाल से ही बीकानेर कृषि एव पशुपालन प्रधान राज्य था, तथा इसकी कुल

---

१ पाउलेट—गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृष्ठ १ ।

२ बीकानेर की परवाना वही, सवत् १८००–१६००, जो राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सुरक्षित है । इसके अनुसार विलाडा से रामचंद्र सुखानी, किशनगढ से मुहनोत आनन्दसिंह, फकीरदास व बुधाराम तथा अन्य ओसवाल व्यापारियो को राज्य मे आने का निमंत्रण दिया गया था । राज्य के शासक जैन सेठो को गाव अथवा कस्बो को बसाने के लिये चौधरी का पद भी इनायत किया करते थे । डूंगरगढ के भादानी व सुजानगढ़ के कठोतिया क्रमशः वहाँ के चौधरी थे ।

३. सेंसस, बीकानेर स्टेट, सन् १६२१, पृष्ठ २६ ।

४. मुंशी सोहनलाल—तवारीख राज बीकानेर, पृष्ठ ४१ ।

५. सेंसस, बीकानेर स्टेट, सन् १६२१, पृष्ठ ३३ ।

जनसंख्या का २/३ भाग केवल गांवो मे रह कर ही अपना जीवन यापन करता था। किन्तु कम एव अनियमित वर्षा तथा नियमित अकालो के कारण ग्रामीण लोग अपना जीवन निर्वाह कठिनाई से किया करते थे। उनको अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु आर्थिक मदद के लिये, गांव अथवा पास के कस्वो के साहूकारों अथवा महाजनो पर ही मुख्य रूप से निर्भर रहना पड़ता था क्योंकि राज्य मे इस समय तक राज्य की ओर से इस सम्बन्ध मे कोई विशेष व्यवस्था न थी।[1] कृषक एवं पशुपालक बीज, हल एवं पशु खरीदने से लेकर अपनी अन्य दैनिक आवश्यकताओ के लिये इन्ही साहूकारो एव महाजनो से रुपया उधार प्राप्त किया करते थे।[2] साहूकार एवं महाजन ही मात्र ऐसा व्यक्ति था जिसे नियमित अकाल के कारण कृषक की फसल नष्ट होने का अनुमान होते हुए भी रुपया देने मे संकोच नही होता था, यही नहीं वह कृषक एवं पशुपालक के अनुत्पादक खर्चों के लिये रुपया उधार दे दिया करता था। दूसरी ओर हम देखते है, राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये भू-राजस्व ही सबसे महत्त्वपूर्ण साधन था। राज्य मे नियमित भू-प्रबंध से पूर्व गावो से भू-राजस्व वसूल करने मे इन वैश्य जाति के महाजन एव साहूकारो का योग कम न था। राज्य के ग्रामीण अंचलो में भू-राजस्व वसूल करने की मुख्य जिम्मेदारी गाव से सम्बद्ध हवलदार एव चौधरी की होती थी। अधिकांशतः ये लोग भू-राजस्व की रकम ग्रामीण लोगो से सीधी वसूल न कर गांव के महाजन से एकमुश्त रकम प्राप्त करके गांव उसको सुपुर्द कर दिया करते थे तथा महाजन ग्रामीण लोगो से अपने पुश्तेनी लेनदेन के सम्बन्धो के कारण दी गयी रकम धीरे-धीरे वसूल कर लिया करते थे।[3] हालाकि गाव के इन साहूकारों एवं ग्रामीण महाजनो की ऊँची ब्याज दर लेने के कारण आलोचना की जाती है किन्तु उस समय की राज्य की परिस्थितियो का अध्ययन किया जाय तो यह कहने मे कोई सकोच न होगा कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करने मे जितना इस वर्ग के लोगों ने योग दिया था उतना अन्य किसी ने नही।

राज्य का वाणिज्य-व्यापार एवं जैन व्यापारी :

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करने मे ओसवाल जैन व्यापारी जिस प्रकार योग दे रहे थे, उसी प्रकार राज्य के वाणिज्य व्यापार मे भी उनका योग कम न था। प्रारंभ से ही राज्य का व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्त्व था। राजगढ़, चूरू व सुजानगढ आदि महत्त्वपूर्ण स्थान थे। इनमे से राजगढ तो बहुत बड़ा व्यापारिक स्थान था और भारत के उत्तरी भागों के सभी भागो से काफिले यहां आकर ठहरते थे। पजाब और काश्मीर की चीजे हांसी और हिसार होकर सीधी यहां आती थी और पूर्वी भागो से दिल्ली, रेवाड़ी और दादरी होते हुए यहा रेशम, बढिया कपड़ा, नील, चीनी,

---

१. राज्य मे सन् १९३० तक कृषको को देवी विपत्तियो के समय करों मे कुछ छूट अवश्य दी जाती थी किन्तु राज्य की ओर से उनकी अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये नकद भुगतान की विशेष व्यवस्था नही थी। इस समय तक किसी प्रकार की सहकारी समितियाँ भी सामने नही आईं जो कृषको को ऋण दे सके।

२. राज्य मे सैकड़ो ओसवाल साहूकारो को राज्य की तरफ से साहूकारी कार्यों को करने के पट्टे भी मिले हुए थे।

३. फेगन—सैटलमेंट रिपोर्ट, बीकानेर, पृष्ठ २०।

लोहा, तबाकू आदि आती थी। हाडौती और मालवा की तरफ से अफीम आता था जो राजपूताने की सभी रियासतो को जाता था। सिन्धु घाटी के प्रसिद्ध व्यापारिक स्थानो शिकारपुर और मुलतान से खजूर, गेहू, चावल, लूंगी और फल आते थे। मारवाड मे पाली से विदेशो से समुद्री मार्ग से आयातित माल जैसे मसाले, दवाइया, नारियल आता था।[1] राजगढ से अनेक व्यापारी अपना माल रीणी होते हुए बीकानेर लाते थे तो कुछ लोग यहा से चूरू, रतनगढ एव सुजानगढ होकर फलोदी, नागौर और पाली की ओर चले जाते तथा अनेक व्यापारी यहां से पूगल होते हुए भावलपुर पहुचा करते थे। इसके अतिरिक्त भिवानी से मारवाड जाने वाले व्यापारी भी अपने माल के साथ शेखावटी की अपेक्षा बीकानेर राज्य मे से ही गुजरा करते थे क्योकि बीकानेर मे केवल एक जगह राजगढ अथवा सुजानगढ में ही जकात देनी होती थी तथा इसके विपरीत शेखावटी मे वहां के ठाकुर इसे अनेक स्थानो पर वसूल किया करते थे। यहां यह द्रष्टव्य है कि उक्त व्यापार का कुछ भाग तो स्थानीय लोगो की आवश्यकता पूरी करता था परन्तु अधिकाश माल यहा से दूसरे स्थानो पर चला जाता था। इससे राज्य को राहदारी के रूप मे अच्छी आमदनी होती थी। चुरू, रतनगढ, सरदारशहर, सुजानगढ, डूगरगढ एवं भादरा आदि के कस्बे जो कि राज्य के मुख्य व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे, मे जैन व्यापारियों की सख्या सर्वाधिक थी। इन कस्बो के बाद राज्य की राजधानी मे भी इनकी सख्या काफी अधिक थी अतः ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि उक्त व्यापार को सम्पन्न करवाने मे अन्य जाति के व्यापारियो की अपेक्षा जैन धर्मावलवियो का सहयोग ही सर्वाधिक था।[2]

इस समय तक ओसवाल लोग अफीम का सौदा, घी, गल्ला, कपडा, व्याज वट्टे व आढ़त का काम ही मुख्य रूप से किया करते थे तथा राज्य से माल का आयात भी किया करते थे।[3] परन्तु ज्योही ब्रिटिश भारत मे नयी व्यापारिक मडिया स्थापित हुई और यहां व्यापार मे लाभ के अधिक अवसर दिखायी दिये तो राजपूताने के अन्य व्यापारियो की भांति यहा के व्यापारियो का ध्यान भी उस ओर गया। दूसरी ओर राज्य मे बार-बार अकाल, जागीरदारो द्वारा सेठ-साहूकारो को तग करने एव महाराजा सूरतसिंह के समय गृह युद्ध एव बाहर के अनेक युद्धो के कारण असुरक्षा की भावना, ब्रिटिश नीति के कारण राज्य का परम्परागत व्यापार एवं व्यापारिक मार्गों के नष्ट हो जाने, राज्य मे कर भार अधिक होने एव अत मे शासको द्वारा अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन ने यहा के व्यापारियो को अपने जीवनयापन के लिये ब्रिटिश भारत मे एवं दक्षिण भारत की रियासतो मे जहा उन्हे उक्त सभी कठिनाइयों से छुटकारा मिलना सभव था, निष्क्रमण कर दिया।[4] इस प्रकार जैन जाति के ओसवाल एव सरावगी भी अन्य जाति के साहसी एव अध्यवसायी लोगो के साथ ही देश मे दूर-दूर

---

१. टाड, राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ ११५४–११५५।

२. इस काल की परवाना वही एव कागदो की वहियो मे जो राजस्थान राज्य आमलेखागार मे सुरक्षित हैं, जैन जाति के सैकडो व्यापारियो का उल्लेख मिलता है, जो राज्य मे चारो ओर फैलकर व्यापार कार्य मे सलग्न थे।

३. मुंशी सोहनलाल, तवारीख राज बीकानेर, पृष्ठ ७१।

४. इस सम्बन्ध मे गिरिजाशकर शर्मा का राजस्थान इतिहास काग्रेस के अष्टम अधिवेशन अजमेर मे पढ़ा गया शोध पत्र "बीकानेर के व्यापारियो का निष्क्रमण एव उसके कारण" द्रष्टव्य है।

चारो ओर फैल गये । परन्तु राज्य के ओसवाल जाति के व्यापारी अधिकतर बगाल, मालवा, सेन्ट्रल प्राविन्स, बम्बई, मद्रास, हैदराबाद व मैसूर मे पहुँचे । वहां जाकर उन्होने कपडा, अफीम, जवाहरात, सोना, चांदी, जूट, रुई, बैंकिग, कमीशन एजेन्सी, फाटका व ठेकेदारी को अपने व्यापार का माध्यम बनाया । यही नही राज्य के ओसवाल प्रथम मारवाडी व्यापारी थे जिन्होने विदेशो मे ब्रिटिश फर्मों से सीधे ही कपड़े का आयात करना प्रारंभ किया था । इनमे से अनेक जूट प्रेसों के मालिक, शिपर्स व अनेक कारखानों के मालिक हो गये थे । इन्ही ओसवालो मे से कुछ बडे-बडे बैंकर बनकर भारी मुनाफा कमा रहे थे जिन्हें ब्रिटिश भारत मे अच्छा सामाजिक सम्मान भी प्राप्त था ।[1] इतना होते हुए भी इन प्रवासी ओसवालो का अपने मूल निवास स्थान बीकानेर राज्य से बराबर सम्बन्ध बना रहा ।

ब्रिटिश भारत स्थित अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानो के साथ-साथ अधिकांश लोगो ने राज्य मे भी अपने प्रतिष्ठानो की सहायक शाखाए खोल रखी थी जिन्हे दीवानखाने कहा जाता था जिनमे ब्याज बट्टा एवं सर्राफी व हूडी चिट्ठी का काम मुख्य रूप से हुआ करता था । इन व्यापारियो मे साहूकारी का धधा अनेक रूप मे प्रचलित था । कुछ लोग तो राज्य के कस्बो जहां से वे सम्बद्ध होते थे एव उसके आसपास तक अपने धधे को सीमित रखते थे । परन्तु बहुत से लोगो ने इसे अपने पैतृक धधे के रूप मे अपना रखा था और इनका अपनी ब्रिटिश भारत स्थित शाखाओ से बराबर सम्बन्ध बना रहता था । ये लोग हूंडी लिखने का काम एव ब्याज पर रकम जमा करने के कार्य के साथ कमीशन एजेन्सी (आढ़त) का काम भी किया करते थे और कृषको एव पशुपालको द्वारा कस्बो मे लाई गयी उपज को बेचने आदि कार्य का दायित्व भी लेते थे । इन्ही मे से अनेक लोग राज्य के बड़े-बडे कस्बो एवं राजधानी बीकानेर मे बैंकर का ही काम करते थे । वे रुपया, सोना, चादी जमा करते थे, चालू खातो पर रुपया निकालने की सुविधा देते थे, हूडी व अन्य कार्मशियल प्रलेखो जैसे रेल्वे रिसीप्ट आदि को बेचने एव खरीदने का कार्य करते और मुद्दती और दर्शनी हुडियो का लेनदेन मे उपयोग करते थे । अनेक ओसवाल एवं सरावगी व्यापारियों ने राज्य मे जब कम्पनीज रजिस्टर्ड होने

---

१. इनमे मैसर्स चैनरूप सम्पतराम दूगड़, मैसर्स उदयमल चादमल, मैसर्स हस्तमल डागा, मैसर्स अगरचद जेठमल सेठिया, मैसर्स हजारीमल हीरालाल रामपुरिया, मैसर्स ताराचंद मगराज, मैसर्स मन्नालाल सोभाचंद सुराना, मैसर्स गिरधारीलाल रामलाल गोठी, मैसर्स जैसराज जैचन्दलाल बैद, मैसर्स तिलोकचन्द जयमल, मैसर्स खेतसीदास कालूराम, मैसर्स जैसराज रिधकरण, मैसर्स नगराज माणकचंद, मैसर्स खूमचंद तोलाराम, मैसर्स कालूराम नथमल, मैसर्स लच्छीराम मेघराज, मैसर्स तेजमल बिरधीचंद, मैसर्स हजारीमल सिरदारमल, मैसर्स हजारीमल सागरमल, मैसर्स पन्नालाल सागरमल, मैसर्स गणेशदास मालचद, मैसर्स जैसराज गिरधारीलाल, मैसर्स पन्नालाल, गणेशदास, मैसर्स मंगलचंद उदयमल, मैसर्स मोजीलाल पन्नालाल बांठिया व मैसर्स गुलाबचंद हनुवतराम बीकानेर राज्य की पुरानी ओसवाल व सरावगी फर्में मुख्य थी जो ब्रिटिश भारत व दक्षिणी रियासतो मे विभिन्न प्रकार के व्यापार कार्य मे संलग्न थी ।

लगी तो अनेक कम्पनियों को रजिस्टर्ड करवाया और उन्ही के माध्यम से व्यापार किया।[1]

राज्य का औद्योगीकरण और व्यापारी :

राज्य मे सगठित उद्योगो का श्रीगणेश बीकानेर के महाराजा गंगासिह द्वारा सत्ता के वास्तविक अधिकार प्राप्त करने (सन् १९०८) से ही माना जा सकता है। इनकी मृत्यु (सन् १९४३) तक राज्य मे अनेक उद्योग धधे खुल चुके थे जिनका अधिक विकास उनके पुत्र महाराजा शार्दूलसिह के शासन (१९४३-४८) काल मे हुआ था। इससे पूर्व राज्य मे अनेक कुटीर लघु उद्योग भी प्रचलित थे जिनमे अधिकतर पशुपालन पर ही आधारित थे। इनमे ऊन उद्योग प्रमुख था। ऊन का न केवल निर्यात ही किया जाता था बल्कि उसको कातकर ऊनी लोइया, कम्बल व चटाइया बनाई जाती थी। पशुओ की खाल व चमड़े का भारी उत्पादन होता था, उससे अनेक प्रकार की वस्तुएं बनायी जाती थी जिनमे कुप्पिया बहुत प्रसिद्ध थी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों मे घी का उत्पादन भी अच्छा होता था जो राज्य मे खपने के अतिरिक्त कुछ निर्यात भी किया जाता था। पशुपालन पर आधारित कुटीर उद्योग धधो के अतिरिक्त हाथी दात की चूडियो पर सोने चादी के तार चढाने का काम भी बहुतायत से हुआ करता था। घरो मे रसोई मे काम आने वाले मिट्टी के बर्तन राज्य मे उपलब्ध लाल मिट्टी या चिकनी मिट्टी के बनाये जाते थे। पीतल के बर्तनो पर पालिश का सुंदर काम किया जाता था। लाख के काम मे खिलौने, चूडियां, पीढे (स्टूल) और चारपाई के पांवो पर लाख का रग चढ़ाया जाता था। चीनी से मिश्री बनाने का काम भी भारत प्रसिद्ध था।[2]

राज्य के औद्योगीकरण मे ब्रिटिश भारत एव अन्य दक्षिणी रियासतो में निष्क्रमण किये हुए बीकानेर के वैश्य वर्ग ने खुलकर भाग लिया। हालाँकि दुर्भाग्यवश अनेक कारणो से राज्य का उतना औद्योगिक विकास न हो सका जितना अपेक्षित था किन्तु जितने औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किये गये उनमे ओसवाल जैन जाति ने कम योग नही दिया। महाराजा गगासिह के शासनकाल मे मध्यम श्रेणी के उद्योगो मे सेठ चादमल ढड्ढा ने सर्वप्रथम १९२९ मे ऊन साफ करके काटे निकालने की बरिंग फैक्ट्री स्थापित की।[3] ये राज्य के ओसवालो मे बहुत ही प्रतिष्ठित सेठ थे। दूसरे

---

१. इस दृष्टि से बीकानेर के सेठ पूरनचद चोपड़ा, जयचदलाल पुगलिया, तेजमाल चौपडा, केशरीचद बोथरा व चम्पालाल बाठिया ने रुई व्यापार के लिये 'दी गगानगर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड', चौपड़ा परिवार के लोगो ने व्यापार एवं बैंकिंग कार्य के लिये 'दी जनरल इन्वेस्टमेट एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड', सेठ आसकरण, नथमल लोढा, व रतनलाल रामपुरिया ने शेयर व्यापार के लिये 'दी राजपूताना इन्वेस्टमेट सिन्डीकेट लिमिटेड', सेठ लहरचद सेठिया, जुगराज सेठिया, मुन्नालाल बैंद व जौहरमल सहबाग ने व्यापार व बैंकिग कार्य के लिये 'दी राजपूताना कार्माशियल कम्पनी लिमिटेड', सुजानगढ़ के सेठ एम. सी. चोटारिया, के. सी. सेठिया, टी. सी. दूगड व संतोषचंद बैद ने व्यापार व बैंकिंग कार्य के लिये 'ओरियन्ट ट्रेडिंग कम्पनी और सेठ मन्नालाल सरावगी व रतनलाल काला ने व्यापार व बैंकिंग कार्य के लिये 'ट्रेडर्स इन्वेस्टमेट कम्पनी' बना रखी थी।

२. पोलिटिकल डिपार्टमेट, बीकानेर १९०६-१२ नं० एफ-IV/१३६, पृष्ठ ९४।

३. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३२ नं० ए० १२९५-१३३५, पृष्ठ ५७।

ओसवाल व्यक्ति भैरूंदानजी सेठिया थे जिन्होने राज्य मे ऊन की गांठ बांधने के लिये ऊन प्रेस की स्थापना की थी। यह राज्य के ऊन उद्योग के लिये एक क्रातिकारी कदम था क्योकि राज्य में स्थानीय उद्योग के रूप में ऊन ही मुख्य वस्तु रही है जो राज्य के बाहर निर्यात की जाती थी। अंग्रेजी बाजारों में आस्ट्रेलियन ऊन की अपेक्षा बीकानेर की ऊन की साख थी किन्तु यहां की ऊन को विदेशो मे भेजने से पूर्व उसको गांठ बधवाने के लिये राज्य के सीमांत क्षेत्र फाजिल्का मे भेजा जाता था। वहां पर उसमे पंजाब की घटिया ऊन मिला दी जाती थी इससे विदेशो मे बीकानेरी ऊन की साख गिरने लगी थी। इन परिस्थितियो मे बीकानेरी ऊन की विदेशो मे साख पुनः जमाने मे सेठ भैरूंदान सेठिया ने बीकानेर मे सन् १९३० मे वूलन प्रेस की स्थापना कर भारी योग दिया।[1] उक्त वूलन प्रेस आज भी उनके पुत्र सेठ जुगराज व ज्ञानपाल सेठिया चला रहे है। सन् १९३४ मे ऊन साफ करने की बरिंग फैक्ट्री भी भैरूदान सेठिया ने लगाली थी।[2] इससे पूर्व एक अन्य ओसवाल सज्जन सेठ शिवचद झावक ने गगानगर मे ऊन साफ करने की फैक्ट्री कायम की थी।[3]

राज्य मे प्रथम मुद्रणालय की मशीन स्थापित करने मे ओसवालों ने ही पहल की थी। सेठ भैरूंदान सेठिया के पुत्र सेठ लहरचद सेठिया ने सन् १९२४ मे "सेठिया प्रिंटिग प्रेस" खोलकर पुस्तक प्रकाशन मे भारी योग दिया।[4] राज्य मे गगानगर क्षेत्र मे अनेक काटन जिनिंग एवं प्रेसिंग फैक्ट्रियो के मालिक बीकानेर के गगाशहर के ओसवाल जाति के ईसरदास चोपडा ही थे। राज्य मे बर्फ बनाने की अनेक फैक्ट्रिया स्थापित की गयी थी उनमे से बीकानेर मे श्री मोहनलाल रामपुरिया जो कि राज्य के प्रतिष्ठित ओसवाल रामपुरिया परिवार से सम्बद्ध थे, ने पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के आधार पर "रामपुरिया आईस फैक्ट्री" स्थापित की तथा चूरू मे भी उसी प्रकार की आईस फैक्ट्री की स्थापना ओसवाल सेठ धनपतसिंह कोठारी ने की थी।[5] राज्य की प्रथम पावरलूम फैक्ट्री जो राज्य के सरदारशहर कस्बे मे बडी सफलतापूर्वक चल रही थी के मालिक मैसर्स सागरमल सरूपचन्द ही थे।[6] मध्यम श्रेणी के उद्योगो के अतिरिक्त राज्य मे वृहत स्तरीय उद्योग खड़े करने मे ओसवाल जैन पीछे नही रहे। हालाकि राज्य मे गगानगर क्षेत्र मे प्रथम चीनी मिल खोलने का सन् १९३७ मे प्रयास किया गया था किन्तु वह फेक्ट्री सफल न हो सकी थी। इस पर सन् १९४५ मे कोटा के एक ओसवाल दीवान बहादुर सेठ केसरी सिंह बाफना ने इसको खरीदकर पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना कर उसका नाम "मैसर्स पोद्दार बाफना लिमिटेड" रखा।[7] इस कम्पनी की अधिकृत पूंजी १ करोड रुपया थी। यह चीनी मिल बहुत ही सफलतापूर्वक चली। इसी फर्म ने राज्य डिस्टलरी, प्लास्टिक प्रोडक्ट्स फैक्ट्री, कन्फेक्शनरी, कार्ड बोर्ड फैक्ट्री, बिस्कुट फैक्ट्री, फ्लॉर, सूजी व मैदा मिल, स्टार्च फैक्ट्री, ऑयल मिल व सोप फैक्ट्री स्थापित करने का प्रयत्न किया था जिनमे से कुछ को ही खोलने मे सफलता मिल

---

१. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३४ नं० बी० ९०७–९१०।
२. श्रीमान् धर्मभूषण दानवीर सेठ भैरूंदानजी सेठिया की संक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ १८।
३. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, सन् १९३२ न० ए १२९५–१३३५, पृष्ठ ४८।
४ होम डिपार्टमेट, बीकानेर, सन् १९२४ न० बी ३११९४-९५, पृष्ठ १०।
५. इण्डस्ट्रियल डेवलपमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ २१।
६. रिपोर्ट ऑन दी एडमिनस्ट्रेशन ऑफ दी बीकानेर स्टेट, १९४४-४५, पृष्ठ ६५।
७. इन्डस्ट्रियल डेवलमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ २२।

सकी थी। राज्य मे प्रथम वोन क्रशिंग एण्ड बटन मेकिंग फैक्ट्री चलाने का प्रयत्न ओसवाल फर्म मेसर्स पद्मचन्द भागचन्द ने ही किया था।[१] बड़े पैमाने के अतिरिक्त राज्य को छोटे उद्योगो मे जैसे आटा पीसने की चक्की, दाल मिल व आईस केन्डी फैक्ट्रिया चलाने में ओसवाल लोगो ने काफ सहयोग दिया।[२]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि बीकानेर राज्य के औद्योगीकरण मे जैनियो का योग काफी महत्त्वपूर्ण रहा।

राज्य का बैंक व्यवसाय एव जैन व्यापारी :

ज्यो-ज्यो वाणिज्य व्यापार एव उद्योग धन्धो मे वृद्धि हो रही थी, उससे राज्य मे आधुनिक पद्धति के बैंक खोलने की आवश्यकता महसूस हो रही थी। ओसवाल लोगो ने अपने अन्य जाति के सहयोगियो के साथ मिल कर राज्य मे प्रथम बैंक सन् १९४३ मे "पारीक कामर्शियल बैंक की स्थापना की जिसकी इस्यूड केपीटल १ करोड़ रुपयों तक पहुंच गयी थी तथा बम्बई, लाहोर, दिल्ली, कलकत्ता, जोधपुर एव जयपुर राज्य के अनेक स्थानो पर शाखायें स्थापित कर दी गयी थी। इसके निदेशक मडल मे सेठ छगनमल चोपडा, पूरनचंद चोपड़ा एवं लहरचन्द सेठिया जैसे के प्रतिष्ठित सेठ थे।[3] राज्य मे दूसरे प्रमुख बैंक "दी बैंक आफ बीकानेर लिमिटेड" की स्थापना सन् १९४५ मे की गयी थी। उसकी अधिकृत पूंजी २ करोड रुपया थी तथा राजपूताने की अन्य रियासतो के साथ ब्रिटिश भारत मे उनकी सन् १९४७ तक ५२ शाखाए स्थापित हो चुकी थी उसके निदेशक मण्डल मे अन्य लोगो के अतिरिक्त सेठ भवरलाल रामपुरिया, सेठ बुधमल दूगड तथा बाद मे सेठ लालचंद कोठारी सभी (ओसवाल) प्रतिष्ठित साहूकार थे।[४]

राज्य की विकास योजनाएं एवं जैन लोग :

प्रारम्भ से ही राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ न होने के कारण प्रायः समस्त विकास योजनाओ मे यहा के धनीमानी सेठ साहूकारो ने सहयोग दिया। ये शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य सेवायें, सिचाई सुविधाएं, यातायात के साधनो को विकसित करने एव पेयजल की समस्या का समाधान करने से सम्बन्ध रखती थी। राज्य मे अकाल पड़ना एक साधारण बात थी, अतः उससे निपटने के लिये सेठ साहूकारो ने अधिक से अधिक आर्थिक सहायता की। इसके अतिरिक्त राज्य युद्ध के समय एव आवश्यकता पडने पर अन्य अवसरो पर जनता से आर्थिक सहयोग प्राप्त करने के लिये ऋण जारी किया करता था उन ऋण-पत्रो को खरीदने मे सेठ साहूकार खुल कर सहयोग दिया करते थे। इन सेठ साहूकारो मे जैनियो का सहयोग द्रष्टव्य है। शिक्षा प्रसार के लिये मोमासर के सेठ इन्दरचन्द हीरालाल व गोरधन संचेती ने मोमासर मे अपर प्राइमरी एंग्लो वर्नाकुलर स्कूल को लोअर मिडिल स्कूल बनाने के लिये बिल्डिंग बना कर सहयोग दिया।[५] सेठ ईसरचंद चोपडा ने राजलदेसर मे गर्ल्स

१ इन्डस्ट्रियल डवलपमेंट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ १८।
२. रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९३४ न० बी—१९४८, पृष्ठ १।
३. इन्डस्ट्रियल डवलपमेंट इन दी बीकानेर स्टेट सन् १९४३-४६, पृष्ठ ९-१०।
४. इन्डस्ट्रियल इन दी बीकानेर स्टेट, सन् १९४३-४६, पृष्ठ १-८।
५. होम डिपार्टमेंट, बीकानेर, सन् १९३५ न० ए० १७३-१७७ पृष्ठ ४।

स्कूल के भवन के लिये १० हजार रुपया दिया था।[१] सेठ ईसरचंद चोपड़ा ने गगाशहर मे 'भैरूंदान चोपडा हाई स्कूल' के भवन का निर्माण करवाया था।[२] बीकानेर के जैन समाज की ओर से राजधानी में एक जैन पाठशाला व एक लडको एवं लड़कियो के लिये स्कूल चलता था।[3] भीनासर के सेठ कानीराम बांठिया ने भीनासर मे एक एंग्लो वरनाकुलर प्राइमरी व बाद मे लोअर मिडिल स्कूल स्थापित किया।[४] रतनगढ मे स्कूल स्थापित करने मे जालान घराने के साथ ओसवाल सेठ मालचद बैद, गुरमुखराय नवलखा ने भी सहयोग दिया।[५] सरदारशहर के दूगड़ परिवार ने प्रारंभ मे एक हाई स्कूल का निर्माण करवाया तथा बाद मे गाधी विद्या मन्दिर के अन्तर्गत यहा पर बेसिक हाई स्कूल, बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, बालवाडी, ग्राम ज्योति केन्द्र, आयुर्वेद विश्व भारती व सेठ बुधमल डिग्री कॉलेज की स्थापना कर सरदारशहर के एक पिछडे हुए छोटे से कस्बे को भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रो में परिवर्तित कर दिया।[६] चूरू का जैन श्वेताम्बर हाई स्कूल, सिधमुख का राजकीय हाई स्कूल, सुजानगढ़ का बगडिया हायर सेकण्डरी स्कूल, शिष्ट विद्यालय चूरू, सरदारशहर का सम्पतराम दूगड़ विद्यालय, राजकीय स्कूल परिहारा के अतिरिक्त बीदासर, छापर व डूगरगढ मे स्कूलो की स्थापना वहां के स्थानीय जैन परिवारो के सहयोग से की गयी थी।[७] सुजानगढ में ओसवाल समाज के सेठिया परिवार ने लडकियो के लिये प्रथम "सोनादेवी सेठिया गर्ल्स कॉलेज की स्थापना कर उच्च शिक्षा के लिये महान् कार्य किया।[८] बीकानेर के प्रमुख ओसवाल जाति के रामपुरिया परिवार ने प्रारभ मे रामपुरिया हाई स्कूल की स्थापना कर बाद मे इसे बी० जे० एस० रामपुरिया जैन कॉलेज का रूप दिया।[९] बीकानेर के ही ओसवालो के सहयोग से बीकानेर मे जैन पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज चल रहा है। उक्त दोनो जैन कॉलेजो का पुराना इतिहास रहा है।

राज्य के जैन परिवारो ने स्कूल व महाविद्यालय ही स्थापित नही किये बल्कि ऐसे ऐसे पुस्तकालय स्थापित किये जिनकी भारत भर मे प्रतिष्ठा है। चूरू के ओसवाल सेठ तोलाराम सुराना ने सन् १९२० मे सुराना लाइब्रेरी की स्थापना की थी। इसमे हजारो बहुमूल्य पुस्तको के अतिरिक्त करीब २००० अलभ्य मैन्युस्क्रिप्ट थे। आज भी यह पुस्तकालय उनके परिवार के सदस्य सेठ निरमलकुमार सिंह सुराना की देखरेख मे है। श्री डूंगरगढ पुस्तकालय की स्थापना (सन् १९४१) मे ओसवाल सज्जनो का सहयोग सराहनीय था। राजलदेसर का शाति पुस्तकालय भी ओसवाल समाज का सहयोग प्राप्त करने पर ही स्थापित हो सका।[१०] महाराज शार्दुलसिह जी के समय कस्बे के विकासार्थ गठित

---

१. होम डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९३५, न० ए० १३४-१४२, पृष्ठ ३।
२. रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९३४ न० बी ३००९-३०२३, पृष्ठ २१।
३. रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९३४ न० बी २९५०-२९५३, पृष्ठ ५।
४. रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९३३ न० बी० १७२५-१७३९, पृष्ठ १८।
५. होम डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९१४ न० ४३७-४४२, पृष्ठ १२।
६. श्री भवरलाल दूगड स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३१५-३२४।
७. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, चूरू, पृष्ठ २९४-२९७।
८. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, चूरू, पृष्ठ २८४।
९. रेवन्यू डिपार्टमेंट, बीकानेर, १९३१ न० बी० २२४-२२९, पृष्ठ १।
१०. राजस्थान गजेटियर्स, चूरू पृष्ठ २८९-९०।

श्री राजलदेसर यूनियन क्लब की कार्यकारिणी मे जैन परिवारो के लोग ही थे। सुजानगढ मे सेठ दानचन्द चोपडा ने एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। बीकानेर का अभय जैन पुस्तकालय तो आज शोधजगत के अध्येताओ के लिये तीर्थ स्थल बन चुका है। इसके संस्थापक भारत के प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री अगरचन्द नाहटा है। बीकानेर के दूसरे ओसवाल सेठ भैरूंदानजी सेठिया थे जिन्होने राजधानी मे सेठिया लाइब्रेरी स्थापित की थी, जो आज भी उनके पुत्रो के संरक्षण मे चल रही है। बीकानेर मे श्री गोविन्दराम भंसाली ने सन् १९३१ मे गोविन्द पुस्तकालय खोला। सन् १९३० मे श्री शकरदान नाहटा ने बीकानेर मे अगर जैन पुस्तकालय स्थापित किया। सन् १९१३ मे अगरचन्द भेरूदान सेठिया ने बीकानेर मे सेठिया वाचनालय खोला। सन् १९२४ मे श्री किशनचन्द पुस्तकालय, बीकानेर मे जैनियो द्वारा खोला गया था सन् १९२८ मे श्री शिखरचन्द कोचर, रामरतन कोचर व रतनचद चोपडा ने बीकानेर मे जैन परधान वाचनालय खोला। सन् १९३५ मे भैरूंदान सुराना ने सुराना जैन पुस्तकालय खोला। सन् १९३३ मे सूरतगढ मे पारसनाथ जैन पुस्तकालय नानकराम डागा ने खोला था।

जिस प्रकार शिक्षा के प्रसार मे इस जाति ने सहयोग दिया उसी प्रकार स्वास्थ्य सेवा के प्रसार मे भी अच्छा सहयोग रहा। सन् १९३१ मे सुजानगढ के सेठ दानचन्द चोपडा ने वहा जनाना अस्पताल खोलने के लिये सब मिलाकर ७५,००० रुपये दिये।[1] गगानगर मे होस्पिटल खोलने के लिये वहा के सेठ भेरूंदान ईसरीचन्द चोपडा ने ११,००० रुपये चूरू के ओसवाल सेठ मूलचन्द मालचन्द कोठारी ने १,५०० रुपये, चूरू के ही सेठ तेजपाल विरधीचन्द सुराणा ने १०१ रुपये, बीदासर के सेठ भेरूंदान दूगड ने १,१००, सेठ नेमचन्द छाजेड सरदार शहर ने १,१०० रुपये दिये। इसके अतिरिक्त सरदार-शहर के सेठ नेमचन्द गद्दैया फूसराज दूगड, आनन्दराज लूणिया व बीकानेर के सेठ भैरूदान सेठिया, कानीराम बाँठिया ने भी आर्थिक सहायता प्रदान की।[2] बीकानेर के सेठ भेरूदान सेठिया ने एक होम्योपैथिक औषधालय स्थापित किया तथा एक अन्य ओसवाल सज्जन भेरूदान कोठारी ने आयुर्वेदिक औषधालय खोला था। इसके साथ ही राज्य के अनेक भागो मे इस जाति के सज्जनो ने आयुर्वेदिक औषधालय खोलकर जन सेवा की।

राज्य मे जब महाराजा गगासिंह को गगनहर लाने के लिये आर्थिक कठिनाई हुई तो अन्य सेठ साहूकारो के साथ ओसवाल सज्जनो मे हजारीमल हीरालाल रामपुरिया ने ५ लाख रुपये सुजानगढ के दानमल चोपडा ने १,५०,००० रुपये एव सुजानगढ़ के ही बालचन्द आसकरण ने ५०,००० रुपयो के बोण्ड खरीद कर राज्य की सहायता की। इसी प्रकार से जिस समय राज्य की ओर से वारलोन के बोण्ड जारी किये गये थे, उन्हे ओसवाल सज्जनो ने भारी मात्रा मे खरीद कर राज्य की सहायता की। इनमे सरदारशहर का दूगड़ परिवार, चूरू के सेठ केसरीचन्द कोठारी, सुजानगढ के थानमल रामपुरिया व चूरू के सेठ सागरमल वैद के नाम उल्लेखनीय हैं।[3]

राज्य के पास अकाल से निपटने के साधन अपर्याप्त थे, अतः राज्य को इन अवसरों पर सेठ साहूकारो से आर्थिक सहायता की आवश्यकता रहती थी। अन्य जाति के सेठ साहूकारो के साथ इस जाति के लोगो ने भी राज्य को अकाल से उबारने के लिये धन देकर सहायता की सन् १८९९-

---

१. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३१ न० बी० २२४-२२९, पृष्ठ १३।
२. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३२ न० ए० १४६७-८०, पृष्ठ ३।
३. आदर्श श्रावक श्री सागरमल जी वैद, पृष्ठ ३३।

१९०० के भयकर अकाल के समय चूरू के गुरमुखराम सागरमल ने ४,००० रुपये सरदारमल कोठारी और विरधीचन्द ने ५००, सरदारशहर के चैनरूप सम्पतराम दूगड़ ने १५,७५० रु०, इन्दरचन्द ने २,०२५ रु०, बीजराज कालूराम दूगड़ ने ३,३७५ रु०, हीरालाल वाघमल नाहटा ने २,७०० रु०, मेघराज दूगड़ ने ९०० रु०, प्रतापमल चौथमल दूगड़ ने २,७०० रु०, कालूराम श्रीचद सेठिया ने १,३५० रु०, राजलदेसर के सेठ छोगमल ओमचन्द बैद ने १,४२५ रु०, हीरालाल बोथरा ने १०५० रु. व जयचन्दराय आसकरण बैंद ने ८,००० रु० दान दिये ।[1] इसके अतिरिक्त सन् १९३८-३९ के अकाल मे भी राज्य के ओसवाल अर्थसहयोग मे पीछे नहीं रहे। रतनगढ़ के सेठ मोहन लाल बैद, लूणकरणसर के जेठमल बोथरा, बीकानेर के सेठ भैरूदान सेठिया, सरदारशहर के गिरधारीमल, सरदारमल बगडिया, चूरू के लखनलाल शिवप्रताप सरावगी, सेठ भैरूदान ईसरचन्द चोपड़ा, सेठ चम्पालाल बाठिया, सेठ अगरचन्द भैरूदान सेठिया, सेठ पूरनचन्द कोठारी व सेठ बिरधीचन्द करवा, मगनमल कोठारी, सेठ चम्पालाल सरावगी, मालचन्द लोढा, रावतमल श्रीराम सरावगी, करनीदान रावतमल कोठारी, मूलचद बालकिशनदास कोठारी, आदि के नाम उल्लेखनीय है जिन्होने अकाल के समय अनेक रूपो मे धन से सहायता की ।[2]

राज्य के आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने में जैन लोगों का योग :

जिस प्रकार से इस जाति के लोग राज्य की विकास योजना मे धन से सहायता कर रहे थे तो दूसरी ओर इन्ही में से अनेक लोग राज्य के आर्थिक विकास मे आने वाली वाणिज्य व्यापार औद्योगिकरण, यातायात के साधनो, दूर संचार के साधनों के सम्बन्ध मे आने वाली बाधाओ को दूर करवाने के लिए राज्य सरकार पर जोर डाला करते थे । ओसवाल जाति के अनेक प्रमुख सेठ साहूकार राज्य विधान सभा के नामजद एव निर्वाचित सदस्य थे ।[3] उन्होने राज्य सभा के सत्र अधिवेशनों मे नियमित भाग लेकर राज्य सरकार को वाध्य किया कि जगात एवं आयकर सम्बन्धी कानूनो में परिवर्तन करे । उद्योग स्थापित करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करे, राज्य को भारत के अन्य व्यापारिक केन्द्रो से जोडने के लिए रेल निर्माण करायें, दूर सचार के लिए तार घर व टेलीफोन आदि

---

१. महकमा खास, बीकानेर, १९०० न० ९८, पृष्ठ ५-९ ।

२. रिपोर्ट आन दी फेमीन रिलीफ आपरेशन्स इन दी बीकानेर स्टेट १९३९-४०, पृष्ठ २१-११३ ।

३. बीकीनेर की राज्य सभा के प्रमुख जैन सभा सदस्य ये थे जो सन् १९१३ से १९४६ तक समय-समय पर नामजद एव निर्वाचित हुए—सेठ चादमल ढढ्ढा, भैरूंदान छाजेड, सेठ गणेशदास गद्हेया, सेठ दौलतराम भण्डारी, सेठ लक्ष्मीचन्द नाहटा, सेठ पन्नेचन्द सिघी, हरखचद भादानी, सेठ फूसराज दूगड, मूलचद कोठारी, रामलाल नाहटा, शुभकरण सुराना, सेठ मालचद कोठारी, सेठ पूनमचद नाहटा, सेठ चुन्नीलाल चोपड़ा, सेठ कानीराम बाठिया, सेठ भैरूंदान सेठिया, सेठ चम्पालाल कोठारी, सेठ बिरधीचद करवा, सेठ मोहलाल बैद, सेठ दानमल चोपड़ा, सेठ सूरजमल सरावगी, सेठ लहरचंद सेठिया, सेठ भवरलाल रामपुरिया, सेठ ईसरचंद चोपड़ा, सेठ चम्पालाल बाठिया, सेठ श्रीचद सुराना, सेठ सुमेरमल दूगड, सेठ बिरधीचद गद्हेया, सेठ पूनमचंद बैद, सेठ जैसराज कठोतिया व सेठ रगलाल बगड़िया ।

की व्यवस्था करायें। वाणिज्य व्यापार को सम्पन्न करते समय अनेक समस्यायें खड़ी होती थी, उनके लिए कानूनों का निर्माण कराये। इसके अतिरिक्त राज्य में आर्थिक मामलो के लिए राज्य सरकार ने अनेक कमेटियों का निर्माण किया उनमे जैन जाति के सेठ साहूकार भी नियुक्ति किए गए।[1] इन कमेटियो के माध्यम से राज्य सरकार को जो सलाह दी जाती थी उसे उसने स्वीकार कर राज्य में वाणिज्य व्यापार, बैंकिग एवं औद्योगिक विकास किया।

अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुंचने मे कोई कठिनाई नहीं होती कि राज्य की लघुतम इकाई ग्राम, जहा कृषि एव पशु पालन ही मुख्य उद्यम था से लेकर बड़े-बड़े कस्बो, शहरो एवं राजधानी बीकानेर जहा वाणिज्य व्यापार एवं उद्योग धंधे प्रगति पर थे का आर्थिक आधार तो राज्य का समस्त वैश्य वर्ग ही था किन्तु उसमे भी राज्य के जैन परिवारो का योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। राज्य के जैन वर्ग ने यहा की व्यावसायिक महत्त्वपूर्ण प्रगति में तो योग दिया ही, प्रत्युत व्यावहारिक शिक्षा द्वारा राज्य के छात्रों को कर्मठ नागरिक बनाने की ओर भी उन्होने ध्यान दिया। उन्होने राष्ट्र की भावी प्रगति की जड़ को समय पर परख लिया था, उसी का ही परिणाम है कि आज देश में विभिन्न क्षेत्रों में जैन जाति व अन्य जाति के राजस्थानी लोग व्यापार व उद्योग में कुशलता से अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहे है।

---
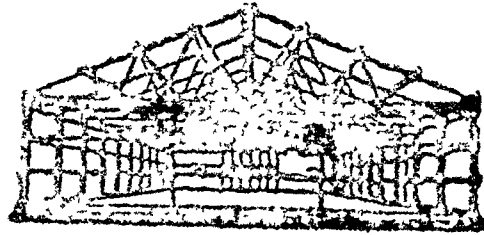
१. राज्य की उद्योग विकास समिति जो सन् १९२१ में स्थापित की गई थी में सेठ चांदमल ढड्ढा [illegible] सदस्य थे।

४६ | जोधपुर के औद्योगिक क्षेत्र में जैन समाज का योगदान

श्री घेवरचंद कानूगो

प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों के कारण जोधपुर सदैव से ही औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् ही जोधपुर का औद्योगिक स्वरूप निखरा है। जोधपुर के औद्योगिक स्वरूप को परिष्कृत करने मे जैन समाज का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उच्च कोटि की औद्योगिक क्षमता और प्रवन्ध कुशलता के योग से जैन समाज ने विषम भौगोलिक परिस्थितियो और अन्य अभावो के बावजूद भी जोधपुर के औद्योगीकरण मे नये कीर्तिमान स्थापित किये है। इनके उद्यम, पूंजी-विनियोजन से राजस्थान के औद्योगिक मान-चित्र मे जोधपुर को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

जैन धर्मावलम्बियों द्वारा स्थापित प्रमुख इकाइयां:—जोधपुर में भारी उद्योगों का अभाव है तथापि मध्यम श्रेणी व लघु श्रेणी के उद्योगो का सराहनीय विकास हुआ है। जैन समाज के सदस्यों द्वारा स्थापित ऐसे उद्योगों की निम्न प्रमुख इकाइया है—

(१) ऊन उद्योग (२) अलोह धातु उद्योग (३) सूती वस्त्र उद्योग (४) उपभोक्ता सामग्री के निर्माता (५) विविध इकाइया—(क) प्लास्टिक उद्योग, (ख) रासायनिक उद्योग, (ग) धातु उद्योग अलोह 'धातु, (घ) ग्वार गम उत्पादक इकाइया, (ङ) टैंट निर्माण इकाइया।

अलोह धातु उद्योग:—एल्कोवेक्स मैटल्स प्रा० लि० इस क्षेत्र की एक मात्र इकाई है। इसका वार्षिक उत्पादन (कुल मूल्य मे) ५ करोड रु० है। नान फैरस मेटल ब्रास, कोपर, एल्यूमिनियम, सिलिकोन, केडमियम, टेलुरीयम रोड्सव ट्यूब्स इसका प्रमुख उत्पादन है।

ऊन उद्योग:—जोधपुर वूलन मिल्स प्रा० लि० एक मात्र इकाई है। इसका वार्षिक उत्पादन अनुमानत: ४ करोड़ रु० (कुल मूल्य मे) है। गलीचे, होजरी, परिष्कृत ऊन, धागा इसके प्रमुख उत्पादन है।

सूती वस्त्र उद्योग:—जोधपुर मे सूती वस्त्र उत्पादन इकाइयां बहुलता मे है। जैन मतावलम्वियो की पन्द्रह इकाइया प्रति वर्ष अनुमानत: ३ करोड़ रु० का उत्पादन करती है।

उपभोक्ता सामग्री के निर्माताः—इस क्षेत्र मे लाइफ टाइम प्रोडक्टस कारपोरेशन प्रमुख है। बर्तन, स्टोव, तगारी, वाटर जग, रक्षा सम्बन्धी सामग्री का उत्पादन इस इकाई मे होता है।

विविध इकाइयां.—लघु उद्योगो के रूप मे अनेक इकाइयां विद्यमान है। टैंटो के निर्माण मे मारवाड़ टैंट फैक्ट्री का नाम प्रमुख है। प्लास्टिक उद्योगो के अन्तर्गत भी कई इकाइया है।

रसायनः—रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की ओर भी कई इकाइयां उन्मुख है। खाद्य-पदार्थों के उत्पादन की दृष्टि से ग्वार गम उत्पादन की कई इकाइया विद्यमान है। लकडी पर आधारित कई औद्योगिक इकाइया भी है।

उत्पादन (कुल मूल्य रु० मे):—उपर्युक्त सभी औद्योगिक इकाइयां अपनी क्षमता के अनुरूप उत्पादन प्रक्रिया मे संलग्न है। कभी विद्युत् संकट, कभी श्रमिक अव्यवस्था एव अन्य प्रतिकूल परिस्थितियो के बावजूद भी पर्याप्त उत्पादन होता है। जोधपुर की समस्त औद्योगिक इकाइयो द्वारा उत्पादन मे जैन समाज की औद्योगिक इकाइयो का काफी बडा भाग शामिल है। इन औद्योगिक इकाइयो के उत्पादन को अनुमानतः १–५ करोड़ रु० के मूल्य मे रूपातरित किया जा सकता है।

रोजगार व श्रम स्थिति.—जैन समाज के सदस्यों द्वारा स्थापित ये औद्योगिक इकाइया तकनीशियनो श्रमिको व अन्य शिक्षितो को रोजगार का अवसर उपलब्ध कराने मे बहुत सहायक रही है। इन इकाइयो मे अनुमानतः ३ हजार श्रमिक लगे हुए है? अप्रत्यक्ष रूप से भी रोजगार के अवसर अनेक वर्गों को प्राप्त हुए है और उपलब्ध अवसरो मे वृद्धि भी हुई है। इन औद्योगिक इकाइयो मे श्रम स्थिति सतोपप्रद है। श्रमिको को वेतन श्रम विभाग इंजीनियरिंग वेज बोर्ड या श्रमिको के साथ हुए समझौते के अनुसार मिलता है। अकुशल श्रमिक को न्यूनतम वेतन २५०/– प्रतिमाह मिलता है वेतन के अलावा अधिकाश औद्योगिक इकाइयो मे भविष्य निधि, फैमिली पैंशन, ग्रेच्यूटी, ग्रूप इन्स्योरस आदि की सुविधाएं भी उपलब्ध है। प्रायः सभी श्रमिक यूनियनो से सम्बद्ध है और ये यूनियनें मान्यता प्राप्त है। औद्योगिक इकाइयो के प्रबन्धको व यूनियनो के बीच मधुर सम्बन्ध है।

निर्यात :—जैन समाज के सदस्यो द्वारा स्थापित कुछ इकाइया निर्यात के क्षेत्र मे भी हैं। अपने श्रेष्ठ उत्पादनो से विदेशो मे बाजार निर्मित किये हैं। मध्यपूर्व एशिया, श्रीलंका, नेपाल आदि इन औद्योगिक इकाइयो के बाजार है। इस प्रकार विदेशी मुद्रा प्राप्त करने मे इन औद्योगिक इकाइयो का महत्त्वपूर्ण योग है। एल्कोवेक्स मेटल्स प्रा० लि०, जोधपुर वुलन मिल्स प्रा० लि०, लाइफटाइम प्रोडक्टस इस क्षेत्र मे प्रमुख है। एल्कोवेक्स द्वारा उत्पादित विशिष्ट उत्पादनो ने इस क्षेत्र मे आयात मे कमी कर अमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत मे सराहनीय योग दिया है।

जोधपुर मे औद्योगिक संभावनाएं :—जोधपुर औद्योगिक दृष्टि से अभी भी पिछडा हुआ है। यह पिछडापन प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों व अन्य साधनो के अभाव के कारण है। फिर भी उपलब्ध साधनो खनिज पदार्थों, पूंजी और श्रम शक्ति को देखते हुए जोधपुर के औद्योगिक विकास की प्रचुर सभावनाए है।

पशुओं पर आधारित उद्योग :—जोधपुर क्षेत्र मे अच्छी नस्ल की भेडें बहुतायत से हैं जिनसे अच्छे किस्म की ऊन प्राप्त की जाती है। अधिकांश ऊन बाहर भेज दी जाती है। अतएव जोधपुर मे ऊनी कपडा बनाने व ऊनी होजियरी की इकाइया स्थापित की जा सकती है।

पोर्टलैण्ड सीमेंट के कारखाने :—जोधपुर के निकटवर्ती क्षेत्रों मे चूने के पत्थर के व जिप्सम के बडे भण्डार हैं। इतने विशाल भण्डार से देश के अन्य भागों की सीमेट की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है। सफेद व रंगीन सीमेन्ट की इकाइयो की स्थापना भी जोधपुर मे संभव है।

कॉच बनाने का कारखाना :—देश मे काच की वढती हुई माग को देखकर जोधपुर मे कांच बनाने का कारखाना स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि जोधपुर क्षेत्र में काच बनाने की मिट्टी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है।

स्कूटर, मोटर साइकिलों, ट्रेक्टर व उससे सम्बन्धित यंत्रों के कारखाने :—जोधपुर इन उपकरणो के उत्पादन हेतु सर्वथा उपयुक्त स्थान है। राजस्थान नहर एव अन्य सिचाई परियोजनाएं पूर्ण हो जाने पर ट्रेक्टर आदि की मात्रा बहुत बढ़ जाएगी अतएव ट्रेक्टर बनाने का कारखाना जोधपुर मे शीघ्रता से स्थापित होना चाहिये।

इसी प्रकार इंजीनियरिंग उद्योगों, सूती वस्त्र की मिलो की स्थापना यहां हो सकती है।

४७ | रत्न-व्यवसाय के विकास में जैनियों का योगदान
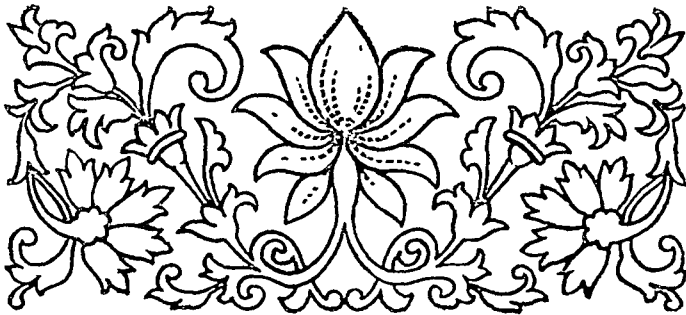
[१]
विकास की पृष्ठभूमि

श्री राजरूप टाँक

राजस्थान का इतिहास अतीत काल से ही शौर्य एवं पराक्रम के साथ साथ कला और संस्कृति की गौरवपूर्ण परम्परा को लिए हुए कीर्तिमान रहा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा सामाजिक चेतना के सदर्भ मे भी राजस्थान अग्रणी रहा। भूतपूर्व रियासतो का विलीनीकरण होकर नव-निर्माण के कार्यक्रमो को लेकर नये रूप मे राजस्थान का गठन हुआ। किन्तु इससे पहले भी और बाद मे भी क्या सामाजिक क्या राजनैतिक और क्या व्यावसायिक, सभी क्षेत्रों मे राजस्थान आगे रहा है। राजस्थान के विकास मे सभी का योगदान स्तुत्य है। तथापि विशेषकर जनचेतना और आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र मे यहां के जैन मतावलम्बियो का बहुत ही योगदान रहा है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर हर प्रकार के व्यवसाय और कलाओ का प्रमुख केन्द्र रहा है। जयपुर नगर के निर्माता सवाई जयसिहजी स्वय बहुत बडे उद्योग उपक्रमी, गणितज्ञ, ज्योतिषी और कलाप्रेमी थे। उन्होने सभी वर्गो के लोगो को सम्मान दिया जिसके कारण आज भी यहा पर लगभग सभी प्रकार का काम अथवा व्यवसाय करने वाले मिलते है। जयपुर दस्तकारी का मुख्य केन्द्र है और इसमे खास कर जवाहिरात का जो काम यहां होता है वैसा ससार भर मे कहीं नही होता। जयपुर इसके लिए विश्व विख्यात है। इस ख्याति का श्रेय मुख्य रूप से उन लोगो को है जो सदियो से यहा रह कर परम्परा से काम करते आए है। उनका परम्परागत ज्ञान और कौशल अनुपम है।

जयपुर मे पुराने जौहरियो को बाहर से बुलाकर, जो अधिकतर दिल्ली से आए थे, यहा बसाया था। भारत मे पहले दिल्ली, लखनऊ, बनारस, कलकत्ता ये केन्द्र थे। नगीने की कला यहीं की मशहूर होती थी। जयपुर मे पुराने नामी जौहरियो मे मुकीम, जूनीवाल, जरगड़, फोफलिया, मालपानी ये लोग थे। इनके पश्चात् दिल्ली से श्री काशीनाथजी जौहरी आकर जयपुर मे बसे। इनके बाद श्री सुगनचन्दजी जरगड़ ने मुक्त रूप से इस कला को सिखाना शुरू किया, जिससे अधिक से अधिक लोगो को इसका ज्ञान और रुचि हो तथा व्यवसाय भी आगे बढ़े। सुगनचन्दजी के दो मुख्य शिष्य थे। इनके नाम हैं श्री बनजीलालजी ठोलिया और श्री रतनलालजी फोफलिया। ये दोनो ही रत्न जगत में अत्यधिक प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी परख और सूझबूझ अद्वितीय कही जाती थी। बनजीलालजी के पुत्र श्री सुन्दरलालजी ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की। उधर श्री रतनलालजी ने

काफी लोगों को काम सिखाया और नई दिशा एवं प्रेरणा प्रदान की। मुझको यह कहते हुए गर्व है कि मैंने भी इन्ही के चरणों मे बैठकर काम सीखा, और उनके वताए हुए मार्ग पर चलने का सतत् प्रयत्न करता रहा हूँ। इनके शिष्य श्री सुगनचन्दजी चौरड़िया ने भी कई लोगो को काम सिखाया और इस व्यवसाय को नई दिशा देकर बढाया।

जयपुर मे आज हजारों परिवार रत्न-व्यवसाय मे लगे है। यहां सभी प्रकार के रत्नों का काम होता है। कारीगर से लेकर बडा व्यवसायी और निर्यातकर्त्ता इस काम को गर्व के साथ निष्ठा-पूर्वक करते है। कहना न होगा हमारे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में हमारे रत्न-व्यवसाय का स्थान प्रमुख है और इसके लिए इस व्यवसाय मे लगे सभी लोग उनके अच्छे योगदान के लिए बधाई के पात्र है।

[२]
विकास की दिशाएँ

श्री दुलीचन्द टाँक

राजस्थान के निर्माण से पूर्व-काल से ही अर्थात् देशी राजघरानों के जमाने से ही यहां पर जैन मतावलम्बी सम्मानित वर्ग के रूप में रहते आए है। यहां के प्रमुख व्यवसाय रत्न व्यवसाय में भी अधिकतर बड़े घराने जैन ही है। पहले राजाओं के जमाने से लेकर अब तक भी इस व्यवसाय की महानता रही है। आज इस व्यवसाय के द्वारा करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा देश के लिए अर्जित होती है। राजस्थान और इसमे सही माने मे यहां की राजधानी जयपुर इसका मुख्य केन्द्र रहा है। जयपुर का कलात्मक काम विदेशों मे प्रसिद्ध है और यह एक निर्विवाद सत्य है कि ऐसा काम संसार में कही पर भी नही होता।

जयपुर में सभी प्रकार के रत्नों का काम प्रचुरता से होता है। रत्नों की घिसाई, कटाई व पालिश वगैरह बड़े ही कलात्मक तरीके से की जाती है। इसमे केवल कारीगर का परम्परागत ज्ञान और कौशल होता है वरना वही साधारण से औजार और रग-रोगन काम आते है। यह सब कारीगर की कुशलता और सूझबूझ की बात है।

रत्न व्यवसाय के प्रशिक्षण के लिए हाल ही राज्य सरकार ने जयपुर मे एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला है। जयपुर मे ही 'जैम एण्ड ज्वैलरी कौसिल' ने एक टैस्टिग लेबोरेटरी कायम की है। इससे व्यावसायिक आधार पर इस काम को बढावा मिलेगा। वैसे हमारे यहां पर काफी पहले से ही काम सिखाया जाता रहा है। मेरे पिता श्री राजरूपजी टाँक अत्यधिक रुचि के साथ प्रशिक्षणार्थियों को बडे ही सरल और रोचक ढग से काम सिखलाते रहे हैं। उनकी बात सहज ही हृदयंगम हो जाती है। आज हजारो की सख्या मे उनके शिष्य इस व्यवसाय में तरक्की की ओर अग्रसर है। काम सिखलाने के साथ ही साथ इसमे शोध एवं विकास की ओर भी ध्यान दिया है। आधुनिक ढग से कटाई व घिसाई आदि से अवगत कराते हुए समुचित मार्गदर्शन देकर उन्होंने लोगों का उत्साह बढ़ाया है। इसीलिए आज इनके शिष्य वर्ग को इस व्यवसाय मे काफी सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही हजारों कारीगरों को रोजीरोटी के साधन प्राप्त हुए है। कारीगरो को भी बिना किसी भेदभाव के ज्ञान कराया जाता रहा है।

बीकानेर के श्री प्रेमचन्दजी खजांची भी मोती के काम के विशेषज्ञ है। इनके सान्निध्य में रहकर बहुत-से लोग इसमे पारगत हुए है।

हमारे यहां खनिजों की प्रचुर सम्पदा है। पन्ना, तामड़ा, ग्रेनाइट वगैरा बहुतायत से मिलते हैं। पन्ना, माणक की ही नही वरन् जयपुर में सभी प्रकार के रत्नो की कटाई-घिसाई व पालिश आदि होती है। जयपुर इस व्यवसाय के लिए प्रमुख मण्डी है। हम इसके उज्ज्वल भविष्य को लेकर अग्रसर है, जिससे इस व्यवसाय को आधुनिक ढग पर आगे बढ़ाया जा सके।[1]

१—जयपुर नगर के प्रमुख जैन रत्न व्यवसायी-प्रतिष्ठान इस प्रकार हैं:—जैम पैलेस, ज्वैलर्स एम्पोरियम, राक्यान्स, एस. गुलाबचंद लूनिया एण्ड कपनी, सुन्दरलाल विजयकुमार ठोलिया, आर. वाई. दुर्लभजी, वी. सी. दुर्लभजी, जैम्स ट्रेडिग कारपोरेशन, रतन ट्रेडिग कम्पनी, टीकमचद विनयचंद, गुमानमल उमरावमल चोरडिया, एम० खाजूलाल एण्ड कम्पनी, लूनिया इन्टरनेशनल, कासमोपोलीटन ट्रेडिग कारपोरेशन, धाधिया इन्टरनेशनल ज्वैलर्स, वी. एच. ज्वैलर्स, जयपुर जैम्स एण्ड ज्वैलर्स, सौभागमल गोकुल चन्द ज्वैलर्स, हीरालाल छगनलाल टाक, पुगलिया ज्वैलर्स कारपोरेशन, जेम्स एण्ड जेम्स, जेमाज, कर्नाविट ट्रेडिंग कारपोरेशन, भूरामल राजमल सुराना (लाल कटला), देवेन्द्र एण्ड पुष्पेन्द्र, इण्डियन जैम्स ट्रेडर्स, पूनमचन्द हीराचन्द कोठारी, आर० के० ज्वैलर्स, गुजराती ज्वैलर्स, सागरमल डागा एण्ड कम्पनी, पिंक ज्वैलर्स एण्ड हैण्डीक्राफ्ट्स, यूनीवर्सल ज्वैलर्स, के० डी० जवेरी, हजारीमल मिलापचन्द सुराना, महावीर ज्वैलर्स, सेठी ब्रादर्स, लोढा एण्ड कम्पनी, शरद सुधीर एण्ड कम्पनी, पूरनचन्द सुधीर कुमार गोदीका, ठाकुरदास केवलराम जैन, चोरडिया ट्रेडिंग कारपोरेशन, सरदारमल उमरावमल ढढ्ढा, श्रीचन्द विमलचन्द गोलेछा, ओवरसीज जैम्स कारपोरेशन, एस० सी० हीरावत एण्ड कम्पनी, जोरावरमल गुमानमल लूनावत, विजय जैम्स, खेतसीदास सदासुख दुग्गड, प्रवीण एण्ड संजीवन ब्रदर्स, आशानन्द लक्ष्मीचन्द भसाली, किशोरीलाल जैन एण्ड ब्रदर्स, गुलाबचन्द कमलकुमार कासलीवाल, अजित कुमार बिराणी, जूनीवाल जेम्स ट्रेडिंग कारपोरेशन, जैम ज्वैलर्स (इण्डिया), सौभागमल सज्जनमल कोठारी, उमरावमल शाह ज्वैलर्स, ताराचन्द आशानन्द जैन, बुधसिंह हीराचन्द बैद, धर्मचन्द पारसचन्द एण्ड कम्पनी, रीयल जैम्स, हेमचन्द्र पदमचन्द, मैसर्स ढढ्ढा एण्ड कम्पनी, प्रकाशचन्द विमलचन्द, के० जी० कोठारी, कैलाशचन्द मोतीचन्द, हजारीमल बोथरा एण्ड कम्पनी, जी० डी० डागा एण्ड कम्पनी आदि।

—सम्पादक
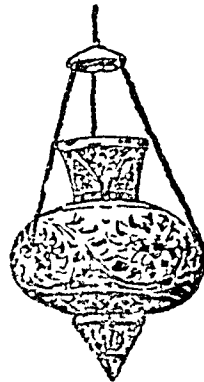
५

धर्म और समाज

४८ | जैन धार्मिक प्रवृत्तियों का जीवन और समाज पर प्रभाव

●

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

धर्म : व्यक्ति और समाज के संदर्भ में :

व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास की कला का ही दूसरा नाम 'धर्म' है। धर्म से व्यक्ति के जीवन का सुन्दर निर्माण होता है। व्यक्तियों के संगठित समुदाय से समाज का निर्माण होता है। अतः जैसे व्यक्तियों का समुदाय होता है वैसा ही समाज का निर्माण होता है। भले व्यक्तियो से भले समाज का व बुरे व्यक्तियो से बुरे समाज का निर्माण होता है।

धर्म का कार्य है—व्यक्ति की बुराइयों एवं राग-द्वेष, मोह आदि आन्तरिक विकारो को मिटाना। बुराइयों के मिटने से सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सुन्दर व्यक्तित्व वाले मनुष्यों से सुन्दर समाज का निर्माण होता है। सुन्दर समाजों से सुराष्ट्र का निर्माण होता है। इस प्रकार धर्म से व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र का सुन्दर निर्माण होता है। जैन-धर्म का इस कार्य मे अपना विशेष योगदान रहा है।

'जैन' शब्द का अर्थ है—अपने शत्रुओं पर विजय पाने का प्रयत्न करने वाला। शत्रु के स्वरूप का वर्णन करते हुए जैन दर्शन मे इस तथ्य को बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि हमारे वास्तविक शत्रु बाहर—बाहर कोई नही है अपितु अपने ही अन्तर मे विद्यमान राग-द्वेष, मोह, विषय-कषाय आदि, विकार, बुराइया व दोष ही हमारे वास्तविक शत्रु हैं। अतः अपने इन दोषो का संहार करना, इनको मिटाना ही वास्तविक विजय है। इस विजय को प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाला ही सच्चा जैन है।

धर्म : समस्त दुखों के निवारण का उपाय :

जो व्यक्ति अपनी बुराइयो को जितना–जितना मिटाता जाता है, वह उतना ही पवित्र होता जाता है, परमात्मा के निकट पहुंचता जाता है। पूर्ण निर्दोष व पवित्र हो जाने पर परमात्मा बन जाता है। परमात्मा के निकट पहुँचा हुआ व्यक्ति ही 'महात्मा' कहा जाता है। इस प्रकार धर्म से राग-द्वेष, हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों को मिटाता हुआ व्यक्ति आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बन जाता है।

यह सर्व विदित है कि सर्व दुःखो की जड बुराइया हैं फिर वह दुःख चाहे वैयक्तिक हो या पारिवारिक, सामाजिक हो अथवा राष्ट्रीय । ऐसा कोई दु.ख नही है जिसकी जड़ मे कोई न कोई बुराई न हो । अतः दु.ख मेटने का उपाय है बुराई का निवारण और बुराइयो के निवारण का उपाय है 'धर्म' । अत: जगत के समस्त दु:खो के निवारण का उपाय धर्म ही है ।

आत्मीय भाव का विकास ही आत्मा का विकास :

जैन धर्म मे बुराइयो के निवारण व गुणों के प्रकटीकरण की, कारण-कार्य के अनिवार्य नियम पर आधारित एक अति ही व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धति प्रस्तुत की गई है, जिसमे गुणस्थानो के क्रमारोहण के रूप मे गुणो के क्रमिक विकास के स्वरूप और उनकी उपलब्धि के उपाय का पूर्ण मनोवैज्ञानिक रूप मे विशद् विवेचन किया गया है ।

जैन दर्शन प्राणी के विकास मे प्रधान स्थान आत्मीय भाव या अहिंसा को देता है । हिंसा को पशुता, दानवता व प्राणी के अविकास की प्रतीक माना गया है । आत्मीयता सहृदयता का ही दूसरा नाम है । हृदयहीन प्राणी मे आत्मीय भाव उत्पन्न ही नही होता है । हृदयहीनता मे ही हिंसा जन्म लेती है जो पशुता की निशानी है । हिंसक शेर-चीते आदि पशु व गिद्ध, चील, बाज आदि पक्षी तड़फड़ाते जीवित प्राणियो को खा जाते हैं; उनके हृदय मे कपन (अनुकम्पा) नही होती है । उनका हृदय कठोर, पत्थरवत जड होता है । यह जडता चेतना के अविकास की द्योतक है । जो जितना कठोर व क्रूर हृदय है वह उतना ही अविकसित है और जो जितना सहृदय है वह उतना ही विकसित है । वस्तुत. आत्मीय भाव का विकास ही आत्मा का विकास है । आत्मीय भाव के ही जैन दर्शन मे दया, अनुकम्पा, अहिंसा, करुणा, वात्सल्य, सहृदयता, आदि अनेक रूप हैं । इन्हें ही प्राणी के विकास का आधार बनाया गया है ।

आत्मीयता और मानवता :

जो व्यक्ति अपनी आत्मा के समान दूसरो की आत्मा है, ऐसा अनुभव करता है, उसी मे दूसरे प्राणी के प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न होता है । उसका हृदय दूसरो के दु'ख से द्रवित होता है । उमे दूसरे का दु ख वैसा ही असह्य होता है जैसा अपना दु'ख । फलतः उसमे दूसरे का दु'ख दूर करने की भावना प्रबल होती है । ऐसा व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को दु.ख नही देता है । यदि किसी कारणवश देना भी पडे तो वह यथासभव कम से कम दुःख देता है और जितना सा उसके कारण से दूसरो को दु ख होता है उसके लिए भी उसे हार्दिक खेद होता है ।

जैन दर्शन आत्मीय भाव बढाता है जिससे हृदय की कोमलता बढती है और हृदय की कोमलता से उदारता बढती है तथा स्वार्थपरता घटती है । इससे दूसरे के हित के लिए प्रवृत्ति होती है । दूसरो के हित की प्रवृत्ति मे ही मानवता निहित है । मानवता ही से मानव और पशु का अन्तर प्रकट होता है अन्यथा खाना, पीना, सोना, आदि प्रवृत्तियां तो मानव मे और पशु में समान देखी जाती हैं । तात्पर्य यह है कि जैन धर्म मानवता को जागृत करता है और मानवता की भूमिका मे ही नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण सभव है ।

अहिंसा और समाज-सेवा :

मानवता का क्रियात्मक या प्रयोगात्मक रूप अहिंसा व सेवा है। जैन समाज में अहिंसा को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि बच्चे को जन्म से ही यह पाठ पढ़ाया जाता है कि किसी को मारना या कष्ट पहुंचना बुरा है, पाप है और दूसरों को सुख पहुचाना ही हमारे जीवन का परम कर्त्तव्य है। इस संस्कार के फलस्वरूप उसमें सहज ही दूसरों की सेवा करने की भावना जन्म लेती है। यही कारण है कि संख्या की अल्पता को देखते हुए भारत मे सेवा कार्यों मे जितना योगदान जैन समाज ने दिया है उतना अन्य किसी समाज ने नही।

भारत में जैनियों की संख्या एक प्रतिशत से भी कम है फिर भी जितने सर्वजनोपयोगी कार्य जैन समाज कर रहा है उतना शायद ही कोई अन्य समाज कर रहा हो। जो औषधालय, विद्यालय, पुस्तकालय, अनाथालय, छात्रालय, धर्मशाला, गौशाला आदि जैन समाज के द्वारा खोले गये है उनकी सख्या सराहनीय है। कही बाढ़ आए या अकाल पडे, महामारी फैले या कोई दुर्घटना घटे। जैन लोग सर्व प्रथम पहुँच कर तन, मन, धन से सेवा करते रहे हैं।

किसी भी जैन के यहां कोई भी दान लेने आवे वह बिना भेदभाव के मुक्त हस्त से दान देता है। यही नही वह कार्यकर्त्ता के रूप में बौद्धिक व शारीरिक सेवा भी देने को तत्पर रहता हे। इस प्रकार जैन धर्मानुयायी तन, मन, धन आदि से पूर्ण योग प्रदान कर समाज व देश की महान् सेवा कर रहे है।

जैन धर्म की अहिंसा की बारीकियों ने भी जैनियो को परोपकार भावना मे बहुत आगे बढ़ाया है। जैन धर्म जल, आग, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय तुच्छ प्राणियो को भी नही सताने पर पूरा जोर देता है। इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि हलते-चलते जीव चिऊँटी, मक्खी, मच्छर आदि क्षुद्र प्राणियो को सताने की भावना भी जैनियो में नही पैदा होती, फिर मनुष्य और पशुओं को मारने या सताने की तो कल्पना भी नही की जा सकती। कहा भी है—जो नक्षत्र को लक्ष्य करके तीर छोड़ता है, उसका तीर उस व्यक्ति के तीर से ऊँचा जाता है जो वृक्ष के नीचे की टहनी को लक्ष्य बनाकर तीर छोड़ता है। इसी प्रकार जैनियो की अहिंसा या सेवाभाव का लक्ष्य बहुत ऊँचा है—वनस्पति आदि के जीवो को भी यथासंभव बचाने का है, अतः मानव के बचाव व सेवाभाव तो उसको प्राथमिक स्थिति मे ही आजाते है। यही कारण है कि जैन श्रावक से किसी को कोई डर या हानि की संभावना नही है और आज भी कोई व्यक्ति अपरिचित जैन परिवार के घर मे ठहरने मे किंचित भी भय या संदेह नही करता है तथा अपने जान-माल को पूर्ण सुरक्षित समझ कर निश्चिन्त रहता है।

राष्ट्रीय सस्थाओं मे भी सेवा देने मे जैन समाज कभी पीछे नही रहा है। देशी रियासतो में विश्वासपात्रता के कारण प्रायः मत्री जैन ही हुआ करते थे। वे न केवल राज्य की शान्ति व समृद्धि की अभिवृद्धि मे ही योगदान देते थे वरन् युद्ध के समय भी अपना कर्त्तव्य निभाने, साहस दिखाने मे कभी मुँह नही मोड़ते थे। शायद ही भारत में कोई ऐसा राज्य मिले जहाँ जैन कार्यकर्त्ताओ ने अपनी सूझ-बूझ से वहां की जनता के सुख व शांति मे वृद्धि न की हो और राज्य का गौरव न बढ़ाया हो। स्वतंत्रता आंदोलन के समय तन, मन, धन से जैन समाज ने जो योगदान दिया वह इतिहास में

चिरस्मरणीय है। आज भी काग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ आदि राजनैतिक पार्टियो में सेवा देने वाले जैनियो की संख्या कम नही है।

जैन समाज ने देश के औद्योगिक विकास में जो अपना महत्वपूर्ण योग दिया है उसके पीछे भी राष्ट्र-सेवा व समाज सेवा की भावना ही कार्य कर रही है। जब कितने ही उद्योगपतियो से प्रश्न किया गया कि जब आयकर आदि देने के पश्चात् उद्योगों से कुछ लाभ बचता ही नही है तब फिर आप उद्योग चलाने की व्यर्थ परेशानी मोल ही क्यो लेते हैं? उन्होने सहज भाव से उत्तर दिया—भले ही हमे लाभ न हो, देश के हजारों लाखो बेकार लोगो को आजीविका का लाभ तो मिलता ही है। राष्ट्र की सम्पत्ति तो बढ़ती ही है। यह भी अपना ही लाभ है। अपनी पेट-पूर्ति तो पशु भी कर लेता है मानव जीवन की विशेपता ही यह है कि वह सब के लाभ मे अपना लाभ समझे।

नैतिक उत्थान :

जैन धर्म में मद्य, मास, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और जुआ इन सात कार्यों को कुव्यसन कहा है और इनका निपेध बताया है। ये ही सात कुव्यसन अनैतिकता को जन्म देने वाले हैं।

अनीति उसे कहा जाता है जो अपने और दूसरे के लिए अहितकर हो, जो किसी के लिए भी हितकर न हो। शराब, जुआ, व्यभिचार आदि कुव्यसन मानव के वे महाशत्रु हैं जो उसकी शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक आदि शक्तियों व सम्पत्तियो का हरण कर उसे निर्बल, असहाय व दीन-हीन बना देते हैं। इनके चगुल मे फंसे प्राणी का चित्त सदा भ्रमित व अशान्त रहता है। उसे अपने हित-अहित कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नही रहता है। वह मानवता से च्युत् हो जाता है। वह शरीर से रुग्ण और धन से हीन हो जाता है। उसकी बुद्धि मे जड़ता आ जाती है। मन का सकल्प-बल शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे उसके जीवन से सर्वगुण तिरोहित हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति किसी का विश्वासपात्र नही रहता। वह अलग-थलग पड़ जाता है। उसका जीवन नीरस व भारभूत हो जाता है। वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। उसका जीवन इतना दुःखी व पतित हो जाता है कि वह जीने के बजाय आत्मघात कर मरना पसन्द करने लगता है।

वस्तुत: ये दुर्व्यसन समाज व राष्ट्र के प्रबल शत्रु हैं। इसीलिए प्रत्येक देश की सरकार शराब, जुआ, चोरी, वेश्या व परस्त्रीगमन आदि को अपराध मानती है। इन पर कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगाती हे और इनके सेवन करने वाले अपराधी को कड़ा दण्ड देती है। कोई भी अपराध-वृत्ति केवल गैर कानूनी घोपित कर देने मात्र से, समाज से मिट नही जाती कारण कि प्रत्येक प्रकार के अपराध की जड़ मानव के हृदय मे होती है। कानून ऊपर से लादा जाता है अतः वह ऊपर ही रहता है हृदय तक नही पहुँच पाता है, और जब तक वह हृदय तक नही पहुँचता, हृदय बदलता नहीं और हृदय के बदले बिना अपराध वृत्ति मिटती नही।

हृदय बदलने का उपाय है—ज्ञान और अभ्यास। यह काम कानून या विधान नही कर सकता है। यह कार्य वे ही कर सकते हैं जिन्होने स्वय इनको हानिकारक समझकर पूर्ण रूप से त्यागा है। उन्हीं के जीवन, व्यवहार व उपदेश का प्रभाव दूसरो पर पड़ता है। यही कारण है कि जहाँ

चिरस्मरणीय है। आज भी काग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ आदि राजनैतिक पार्टियों में सेवा देने वाले जैनियो की संख्या कम नही है।

जैन समाज ने देश के औद्योगिक विकास में जो अपना महत्वपूर्ण योग दिया है उसके पीछे भी राष्ट्र-सेवा व समाज सेवा की भावना ही कार्य कर रही है। जव कितने ही उद्योगपतियो से प्रश्न किया गया कि जव आयकर आदि देने के पश्चात् उद्योगों से कुछ लाभ वचता ही नही है तव फिर आप उद्योग चलाने की व्यर्थ परेशानी मोल ही क्यो लेते है ? उन्होने सहज भाव से उत्तर दिया—भले ही हमे लाभ न हो, देश के हजारों लाखो वेकार लोगों को आजीविका का लाभ तो मिलता ही है। राष्ट्र की सम्पत्ति तो वढती ही है। यह भी अपना ही लाभ है। अपनी पेट-पूर्ति तो पशु भी कर लेता है मानव जीवन की विशेषता ही यह है कि वह सब के लाभ मे अपना लाभ समझे।

नैतिक उत्थान :

जैन धर्म मे मद्य, मांस, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और जुआ इन सात कार्यों को कुव्यसन कहा है और इनका निषेध वताया है। ये ही सात कुव्यसन अनैतिकता को जन्म देने वाले हैं।

अनीति उसे कहा जाता है जो अपने और दूसरे के लिए अहितकर हो, जो किसी के लिए भी हितकर न हो। शराव, जुआ, व्यभिचार आदि कुव्यसन मानव के वे महाशत्रु हैं जो उसकी शारीरिक, आर्थिक, वौद्धिक, मानसिक आदि शक्तियो व सम्पत्तियों का हरण कर उसे निर्वल, असहाय व दीन-हीन वना देते हैं। इनके चंगुल मे फंसे प्राणी का चित्त सदा भ्रमित व अशान्त रहता है। उसे अपने हित-अहित कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नही रहता है। वह मानवता से च्युत् हो जाता है। वह शरीर से रुग्ण और धन से हीन हो जाता है। उसकी वुद्धि में जड़ता आ जाती है। मन का संकल्प-वल शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे उसके जीवन से सर्वगुण तिरोहित हो जाते है। ऐसा व्यक्ति किसी का विश्वासपात्र नही रहता। वह अलग-थलग पड़ जाता है। उसका जीवन नीरस व भारभूत हो जाता है। वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। उसका जीवन इतना दुःखी व पतित हो जाता है कि वह जीने के वजाय आत्मघात कर मरना पसन्द करने लगता है।

वस्तुत. ये दुर्व्यसन समाज व राष्ट्र के प्रवल शत्रु हैं। इसीलिए प्रत्येक देश की सरकार शराव, जुआ, चोरी, वेश्या व परस्त्रीगमन आदि को अपराध मानती है। इन पर कानून वनाकर प्रतिवन्ध लगाती है और इनके सेवन करने वाले अपराधी को कड़ा दण्ड देती है। कोई भी अपराध-वृत्ति केवल गैर कानूनी घोषित कर देने मात्र से, समाज से मिट नही जाती कारण कि प्रत्येक प्रकार के अपराध की जड़ मानव के हृदय मे होती है। कानून ऊपर से लादा जाता है अतः वह ऊपर ही रहता है हृदय तक नही पहुँच पाता है, और जव तक वह हृदय तक नही पहुँचता, हृदय वदलता नहीं और हृदय के वदले विना अपराध वृत्ति मिटती नही।

हृदय वदलने का उपाय है—ज्ञान और अभ्यास। यह काम कानून या विधान नही कर सकता है। यह कार्य वे ही कर सकते हैं जिन्होने स्वयं इनको हानिकारक समझकर पूर्ण रूप से त्यागा है। उन्ही के जीवन, व्यवहार व उपदेश का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। यही कारण है कि जहाँ

जैनियो के कुछ घर हैं, उनके आसपास व उनके संपर्क में आने वाले इन कुव्यसनो से स्वतः बचते हैं। हजारों की संख्या मे जैन साधु प्रतिदिन अपने प्रवचनों मे सर्व लोगो के हित व भले की कामना रखते हुए उनके समक्ष इन कुव्यसनो की बुराइयों व हानियों को प्रस्तुत करते हैं। उन्हे प्रेम से समझाकर इनको छोड़ने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार अपने सदुपदेशो मे जैन साधुओ ने दुर्व्यसनो व अनैतिकता का त्याग कराकर करोड़ों मानवों के जीवन को पतन के गर्त्त मे गिरने व बरबाद होने से बचाने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

सामाजिक जागरण :

जैन साधुओं के प्रतिदिन के भाषण का विषय ही कुव्यसन-निवारण, कुरुढ़ियो व अनैतिकता के त्यागने तथा सेवा-सदाचार, परोपकार, आध्यात्मिक शक्तियों के जागरण का रहता है। उनका यह उपदेश विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों के समान केवल वाचिक नहीं होता है अपितु स्वयं उनके जीवन के अनुभव से युक्त होता है अतः उसमे प्रभाव डालने की क्षमता होती है। उनकी आवाज अतः-करण से निकलती है अतः प्राणवान होती है। यह नियम है कि केवल मुख से निकला हुआ शब्द श्रोता के कानों तक ही पहुँचता है वह गले उतर कर हृदय तक नही पहुँचता है—जबकि अंतःकरण से निकली हुई आवाज श्रोता के गले उतरकर अतःकरण मे पहुँचने मे समर्थ होती है।

अनैतिकता व दुर्व्यसन निवारण तथा सेवा, सदाचार, परोपकार प्रसारण का कार्य वेतन-भोगी अध्यापको व कर्मचारियों के भाषणो से कदापि संभव नही है फिर वे भले ही एम.ए. या पी एच.डी. हों, कारण कि उनके जीवन मे सेवा व त्याग का बल नही होता है अतः उनके उपदेशों का प्रभाव नही पड़ता।

दूसरों को प्रेरणा देने व पथ प्रदर्शन करने में वही समर्थ व सफल हो सकता है जो स्वयं सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनो का पक्षधार हो। केवल अभ्यास या प्रयोग करने वाला व्यक्ति दूसरो को समझाने मे असमर्थ होता है और केवल सिद्धान्त का ज्ञाता व्यक्ति प्रभाव डालने—प्रेरणा देने में असमर्थ होता है। जैन साधु इन दोनों पक्षो से युक्त होता है। वह सफल साधक के साथ-साथ सफल उपदेशक भी होता है।

जैन साधु जनसाधारण को जैसा कर्त्तव्य का उपदेश देता है स्वयं उस पर वह, उससे कई गुना अधिक चलता है। वह चीटी को चोट पहुंचाना तो दूर रहा, वनस्पति काय के जीवो तक को कष्ट नहीं पहुँचाता है। एक शब्द भी झूठ नही बोलता है। एक नये पैसे की चीज भी किसी के दिये बिना नही लेता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करता है। एक पैसा या धातु मात्र नही रखता है। पैदल नगे पैर चलता है। वस्त्र भी अति सीमित रखता है। वह मधुरभाषी, सेवाभावी सर्वहित चिंतक होता है अतः उसके उपदेश का प्रभाव स्वाभाविक रूप से सहज ही पड़ता है।

सामाजिक उन्नति का मूलाधार है—दूसरो से कम से कम लेना और उन्हे अधिक से अधिक देना। जैन साधु समाज से केवल जीवनरक्षार्थ भोजन लेता है और देता है समाज सेवा मे अपना

जीवन दान । वह समाज के नैतिक उत्थान व जागरण के रूप मे जो कुछ भी देता है उसके बदले में कुछ नही लेता है। उसका जीवन समाज का जीवन बन जाता है । इतिहास साक्षी है कि लाखो जैन साधुओ ने समाज व राष्ट्र के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के रूप मे देश की असीम सेवा की है। जनसाधारण को सस्कारित करने की दृष्टि से अनेक नैतिक, शिष्ट व संस्कारसम्पन्न समाजो का निर्माण किया है । ओसवाल समाज इसका जीता जागता प्रमाण है । दूर क्यो जायें, इसी शताब्दी मे स्वर्गीय दिवाकर श्री चौथमलजी म० सा० की नैतिक उत्थान के रूप मे की गई सेवा राजा से लेकर रक तक रही है । उन्होने एक ओर मेवाड के महाराणा फतेहसिहजी आदि राज वर्ग के लोगो को उपदेश देकर उन्हे सेवा के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर रेगर, चमार, बलाई, भील, हरिजन आदि पिछड़े वर्ग के लाखो लोगो को शराब, धूम्रपान, मास आदि कुव्यसनो का त्याग कराया । अगणित परिवारो मे आज भी वह परंपरा चल रही है । प्रवर्तक स्व० श्री पन्नालालजी मा० सा० ने राजस्थान मे फैली हुई मोसर, दहेज, पशु बलि आदि कुप्रथाओ (जो समाज को जर्जर कर रही थी, लाखो परिवारो को बरबाद कर रही थी) के विरुद्ध बिगुल बजाया । रूढ़िग्रस्त लोगों ने अनेक बार उन्हें मारने की धमकिया दी, संकट पैदा किये परन्तु आप अपने पथ से विचलित नही हुए। दिवाकरजी व प्रवर्तकजी द्वारा पशु बलि बद कराने, अगते पलवाने आदि के सैकड़ो पट्टे आज भी विद्यमान है। आपके ही उपदेशो से मीणा समाज मे सामाजिक जागरण की नई चेतना आई । जैनपुरी आदि ग्रामो मे जाकर मीणो के नैतिक उत्थान का कोई भी व्यक्ति साक्षात्कार कर सकता है ।

जैन सतो के उपदेशो से हजारो खटीक परिवार, जिनका धधा ही पशुवध करना था, मास व खालें बेचना था, शराब पीने की जिनमे जातिगत लत थी, उन्होने अपना धंधा छोड दिया, सप्त कुव्यसनो का त्याग कर दिया तथा एक सभ्य व उन्नत, समाज का आदर्श अपना लिया । इस प्रकार एक नीति व सदाचार सपन्न 'वीरवाल समाज' की रचना हुई । आज उनमे प्रायः सभी ही कपड़े, किराने आदि के सफल व प्रामाणिक व्यापारी है। उनकी प्रामाणिकता व सदाचारशीलता ने ही उनको गरीबी से उबारा है ।

आचार्य श्री नानालालजी म० सा० के सदुपदेशो से प्रेरित होकर हजारो बलाई परिवारो ने दुर्व्यसनो का त्याग कर 'धर्मपाल समाज' की रचना की है । परिणामस्वरूप धर्मपाल परिवारों की वर्तमान पीढी शिक्षा-दीक्षा मे पहले से बहुत आगे बढ़ी है । अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर इन आदिवासियो के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के लिए बराबर प्रयत्नशील है । ये आदिवासी, जिनका प्रमुख कार्य पहले तीर-कमान रखना व शिकार करना था अब भारी संख्या मे शिकार, मांस तथा शराब का सर्वथा त्याग कर, कृषि आदि से अपनी आजीविका चलाने लगे हैं। उनमें सामायिक, स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी बढ़ी है।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर हजारो व्यक्तियो ने अपनी जातिगत शराब पीने, मांस खाने आदि की परपरा का सदा के लिए त्याग कर दिया है । हजारो व्यापारियो ने प्रामाणिक माप तोल का नियम लिया है। इनके पूर्व भी आचार्य श्री योजनाबद्ध रूप से समय-समय पर नैतिक उत्थान, सामाजिक व

आध्यात्मिक जागरण के लिए बराबर प्रेरणा देते रहे है। आपने समाज मे सम्यक् ज्ञान का विकास हो, एतदर्थ स्वाध्याय के प्रचार पर विशेष जोर दिया, फलतः सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के अन्तर्गत स्वाध्याय संघ का जन्म हुआ। आज इस संघ मे सैकडों सक्रिय स्वाध्यायी है जो समता व सयम की ओर बराबर आगे बढ़ रहे है तथा सैकड़ो ग्रामों मे इनके द्वारा स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार समाज मे ज्ञान वृद्धि के साथ नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति मे महत्त्वपूर्ण योगदान मिल रहा है। स्व० श्री पन्नालालजी म० की प्रेरणा से संचालित स्वाध्याय सघ गुलाबपुरा भी इसी प्रकार योजनाबद्ध तरीके से नैतिक उत्थान मे उल्लेखनीय योगदान दे रहा है।

मेवाड कोकिला महासतीजी श्री जसकंवरजी म० सा० का भी ध्यान इस ओर सदा से रहा है। आप ही के सदुपदेश की प्रेरणा से इसी वर्ष जोगणिया देवी (बेगूं) के यहाँ होने वाली सैकडो पशुओ की बलि प्रथा बद हुई है।

तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत आदोलन के माध्यम से नैतिक उत्थान व समाज-सुधार का जो कार्य हुआ है, वह प्रशसनीय है। भ्रष्टाचार-निवारण व सदाचार-प्रसारण के साथ-साथ इस आंदोलन से जैन एकता एव सर्वधर्मसमभाव को भी बडा बल मिला है।

ऊपर केवल साकेतिक रूप मे जैन संतो द्वारा नैतिक उत्थान, सामाजिक जागरण व आध्यात्मिक विकास के लिए किए गए प्रयासो का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की अन्य भी अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। सच्चाई तो यह है कि जैनधर्मानुयायी प्रत्येक संत प्रतिदिन इस प्रकार की जीवन निर्माण की कुछ न कुछ प्रेरणा देता ही है और इसी का प्रभाव है कि आज देश के अन्य प्रान्तो मे जहा इतनी अनैतिकता व गुण्डागर्दी बढ गई है कि किसी का जान-माल सुरक्षित नही रहा है, रात को अकेले मकान से बाहर निकलना कठिन हो गया है, वहा राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि मे, जहा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक है, अब भी सुरक्षा व निश्चितता है। यह जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का ही परिणाम है।

जैन धर्मानुयायी गृहस्थो, श्रावकों का भी नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्रावक के लिए पाचो अणुव्रतों का पालन अत्यावश्यक है। उसके अहिंसा अणुव्रत के पालन से क्रूरता मिटकर आत्मीयता, मित्रता व सर्वोदय की प्रवृत्ति का प्रसार होता है। सत्याणुव्रत से अविश्वास, झूठ-कपट, धोखा-धड़ी मिटकर विश्वास, सत्यता, प्रामणिकता का प्रादुर्भाव होता है। अचौर्याणुव्रत से शक्ति-सपत्ति का अपहरण व शोषण मिटकर नैतिकता को बढ़ावा मिलता है। ब्रह्मचर्याणुव्रत से व्यभिचार, दुराचार मिटकर सदाचार का पोषण होता है। परिग्रह परिमाणुव्रत से संग्रहवृत्ति, विषमता. भ्रष्टाचार मिटकर समता व शाति का विस्तार होता है। पच अणुव्रतो के पालन से परिवार, समाज व राष्ट्र मे दुर्व्यसनो, दुराचारो, अनाचारो मे कमी होती है व क्षमा, विनय, सरलता, सज्जनता, सहृदयता, वत्सलता, मृदुता, मधुरता, नम्रता, सहकारिता का विकास होता है जो नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण का मूल है।

पहले कह आए हैं कि जैन समाज मे शराब, व्यभिचार, जुआ आदि कुव्यसनों व अन्य बड़ी

बुराइयों का त्याग जातीय परम्परा से ही होता है। ये ही वे दुर्व्यसन हैं जिनसे व्यक्ति या परिवार दिवालिया होता है, पूंजी का बुरी तरह से अपव्यय होता है। जैन परिवार इस अपव्यय से बचता है। इससे उसकी आय से व्यय कम होता है और कुछ न कुछ बचत सदा होती ही रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पूंजी का रूप ले लेती है। यह अर्थ शास्त्र का नियम है कि पूंजी से पूंजी पैदा होती है। इसी पूंजी से जैनी उद्योग खोलते हैं। इस प्रकार देश की समृद्धि बढ़ाने व लाखो लोगों की बेरोजगारी दूर करने में अपना योग देते हैं। आज भी जैन लोग न केवल भारत के सब प्रान्तों में उद्योग व व्यवसाय से जनता की सराहनीय सेवा कर रहे हैं, अपितु विदेशो मे भी सफल व्यवसायियो व उद्योगपतियो मे गिने जाते हैं। देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास मे जैन समाज का योगदान अपेक्षाकृत सबसे अधिक है।

कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि जैन लोग जनता का अधिक शोषण करते है। इसीलिए अन्य लोगो से अधिक सम्पन्न है। परन्तु उनकी यह धारणा यथार्थ न होकर भ्रमपूर्ण है। जैनियो की सम्पन्नता के लिए निम्नकारण विशेष रूप से उत्तरदायी है—

(१) जाति परम्परा के संस्कार के कारण जैन लोग पापभीरू होते हैं। अतः अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे धन्धे करते हैं जिनमें हिंसा न हो। व्यापार में अन्य सब धन्धों की अपेक्षा त्रसकाय की कम हिंसा होती है। अतः जैनो का आजीविका का साधन मुख्यतः व्यापार रहा है। व्यापार से अर्थोपार्जन अन्य धन्धो की अपेक्षा अधिक होता है।

(२) जैन जाति में दुर्व्यसनो का त्याग होता है। कोई शराब पीता, मांस खाता या व्यभिचार करता है तो उसका जाति से बहिष्कार कर दिया जाता है। दुर्व्यसनों मे धन का बुरी तरह व्यय होता है। अतः जैनो मे दुर्व्यसन न होने से धन की बचत होती रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पूंजी बन जाती है। फिर पूंजी से पूंजी बढ़ने का क्रम प्रारभ हो जाता है।

(३) जैनों में दुर्व्यसन न होने का एक लाभ यह भी है कि उनकी बौद्धिक क्षमता अन्य लोगो से अधिक होती है। अतः वे जो भी कार्य करते हैं उनमें प्रायः सफलता ही मिलती है कारण कि वे सफलता प्राप्ति के बीसो उपाय ढूंढ लेते हैं। व्यावसायिक सफलता ही जैनो की सम्पन्नता का कारण है।

इस संबंध में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य संपन्न लोगों की अपेक्षा जैन लोग समाज सेवा करने व दान देने में अधिक उदार रहे हैं। कारण यह है कि जैन घर में जन्मे बच्चे को जीवन के प्रारम्भ से ही यह सुनने को मिलता है कि परिग्रह अर्थात् धन का संग्रह बुरा है। धन का सदुपयोग सेवा करने व दान देने में है, भोग-विलास में नही। वही बच्चा जब बड़ा होता है तो इन्ही संस्कारो से जहा भी सेवा का अवसर आता है, वहां वह सहर्ष तन, मन, धन से अपना योग देता है।

जैन उदारचित्त होता है अतः वह सेवा के क्षेत्र में भी अपनी दृष्टि कभी भी संकुचित नहीं रखता है। उसका सेवा का क्षेत्र केवल जैन जाति तक ही सीमित या संकुचित नही होता है। वह जहां भी जैसी आवश्यकता होती है, वहां जाति-पाति के भेदभाव को भुलाकर निःस्वार्थ भाव से सेवा करता रहा है। वस्तुत. सेवा जैन के जीवन का एक अंग है।

जैन साधुओं ने जैन समाज को तो सेवा के लिए सतत प्रेरणा दी ही, साथ ही साथ अपने सार्वजनिक भाषणो मे बार-बार सेवा पर जोर देकर, अन्य जैनेतर समाजों में भी सेवा-भाव का प्रचार-प्रसार करने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सेवा के इसी सूत्र को, मंत्र को यदि सब लोग अपना ले तो समाज और देश की सब समस्याएं सुलझ जाएं।
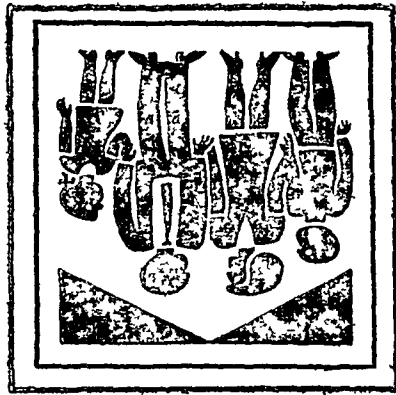
आशय यह है कि जैन समाज ने देश के सर्वांगीण विकास में तन, मन, धन से पूर्ण योग दिया है। नैतिकता का कोई अंग ऐसा नहीं है, जिसके उत्थान में जैनियों का पूर्ण सहयोग न मिला हो, समाज का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिसके विकास मे जैनियों का योग किसी से कम रहा हो। जैन समाज, संख्या मे देश का एक प्रतिशत न होते हुए भी, देश और समाज के विकास मे अपेक्षाकृत सबसे आगे रहा है। प्रत्येक जैन अपने जीवन की सार्थकता इसी में मानता है कि वह अपनी और दूसरो की बुराइयो को दूर करे व दूसरे के अधिक से अधिक काम आए। वह दूसरों के दुःख दूर करने व सुखी बनाने में अपना सौभाग्य समझता है। यही कारण है कि भारत के इतिहास मे सामाजिक जागरण व सेवा के रूप में जैनियों का योगदान सभी युगों में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य रहा है।

४९ | राजस्थान में जीव-हिंसा-निषेध के प्रयत्न

श्री अगरचन्द नाहटा

मूलधर्म समता :

जैनतीर्थंकरों का मूल धर्म समता का है ! उसीमें अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त आदि सिद्धांतों का विकास हुआ है। भगवान् महावीर ने तो अनेक जगह कहा है कि सभी जीव सुख चाहते हैं, जीना चाहते हैं। अतः किसी को भी दुःख देना और मारना अपना ही बुरा करना है। तुम दूसरे को दुःख देते हुए या मारते हुए अपने को ही दुःख दे रहे हो उसी भावना से प्राणीमात्र का रक्षण करो, अभय दो। सब आत्माओं को अपने समान देखो, यही अहिंसा है।

अहिंसा की सूक्ष्मता :

जैन धर्म में सूक्ष्म जीवों का जितना अधिक विवेचन है उतना विश्व के किसी भी धर्म में नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन स्थावर एकेन्द्रिय जीवों को बतलाना केवलज्ञानी सर्वज्ञ तीर्थंकरों का ही काम है। आज तो अनेक यन्त्रों द्वारा वनस्पति आदि में अन्य प्राणी जगत की भांति सुख दुःख की अनुभूति होती है, यह सिद्ध हो चुका है। पर भगवान महावीर या उससे पहले के इस आत्म विशुद्धि के बल पर ऐसा बतलाना अन्य किसी के लिए संभव ही नहीं था। केवल सूक्ष्म जीवों का निरूपण ही नहीं किया पर उनकी रक्षा के लिए भी उतना ही सजग उपदेश दिया व प्रयत्न किया। अतः जैनधर्म की अहिंसा अन्य सब धर्मों की अपेक्षा बहुत ही सूक्ष्म है।

जीवहिंसा : महान् पाप :

जिस लोक में हम मनुष्य रहते हैं उसी में पशु, पक्षी आदि जीव भी निवास करते हैं। उनसे हमारा सम्पर्क ही नहीं होता, परस्पर सम्बन्ध भी बने रहते हैं। कई बातों में तो हम उन सब जीवों के [illegible] भी हैं। इसलिए पशु-पक्षी जगत का विनाश करना तो बहुत ही हिंसा अर्थात् पाप का कारण है। उनकी हत्या अनेक कारणों से की जाती है। जिनमें सबसे पहला कारण तो है मांसाहार, दूसरा है पशुबलि, [illegible] यज्ञ आदि, तीसरा शिकार और खेल-मनोरंजन। पशु-पक्षियों में से कई प्राणी तो [illegible] हैं उनसे अपनी रक्षा करने के लिए भी मनुष्यों को समय-समय पर उनकी हिंसा करनी पड़ती है। इनमें से सबसे अधिक हिंसा तो मांसाहार के लिए होती है। अतः जैन धर्म में मांसाहार [illegible] मनुष्यों को उपदेश देकर निरामिषाहारी बनाया गया। इसी

तरह यज्ञों और बलि के निवारण के लिए भी पूर्ण प्रयत्न किया गया। भगवान महावीर और उनके अनुवर्ती आचार्यों, मुनियो और श्रावकों के महान प्रयत्नो से बहुत बड़ी जीव हिंसा बन्द की जा सकी। यह जैनो के लिए बहुत ही गौरवपूर्ण बात है।

जैन धर्म और जैन धर्माचार्यो का प्रभाव :

राजस्थान और गुजरात में जैनधर्म का प्रचार सबसे अधिक रहा। फलतः अन्य प्रान्तो की अपेक्षा शाकाहारियो की सख्या इन दो प्रान्तों में सबसे अधिक है। यज्ञों मे जो अश्व, मनुष्य आदि का होम किया जाता था वह तो जैनधर्म के प्रचार से सर्वथा बन्द ही हो गया। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जो बकरे, भैसे आदि की बलि दी जाती थी, वह भी काफी अंशो मे बन्द हो गयी। और राजाओं आदि के अतिरिक्त प्रायः शिकार करना भी बन्द हो गया। सप्त व्यसनो मे मांस के साथ-साथ शिकार का भी निषेध किया गया है। इसी तरह जुआ, मदिरापान, वेश्यागमन, परस्त्री गमन, चोरी भी सात व्यसनों मे सम्मिलित करके जैनी मात्र के लिए सप्त व्यसनो का निषेध किया गया। इसका प्रभाव अन्य संत-सम्प्रदायों पर भी और जैनेतर जनता पर भी पड़ा।

उपकेशगच्छ की परम्परा के अनुसार भगवान महावीर के १७ वर्ष मे रत्नप्रभ सूरिजी ने ओसियानगरी मे लक्ष्याधिक अहिंसा प्रेमी जैनी बनाये। इसी तरह अन्य ग्राम-नगरो मे श्वेताम्बर, दिगम्बर जैनाचार्यों ने लाखो व्यक्तियो को प्रतिबोध देकर मांस, पशुबलि, शिकार आदि पापो से विरक्त करते हुए उन्हे जैनी बनाया। यह जैनाचार्यों की संयम, तप-त्याग और मन्त्रादि शक्ति का प्रभाव था। उन्हे अहिंसा प्रचार मे काफी कठिनाई हुयी फिर भी उन्होने अपना प्रयत्न निरन्तर जारी रखा और तनिक भी शिथिलता नही आने दी।

आचार्य रत्नप्रभ सूरि जिन्होने सबसे पहले ओसवाल जैन बनाये उनके जीवन की ही एक घटना यहां दी जा रही है जिससे पता चलता है कि कितनी बड़ी कठिनाई को उन्होने कैसे सुन्दर रूप मे हल कर दिया। इसका महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक उल्लेख पट्टावलियों, वशावलियो आदि मे मिलता है। ओसिया नगर में उस समय चामुण्डादेवी की बड़ी मान्यता थी। नवरात्रि के दिनों मे तो सैकड़ो बकरों, भैसो आदि की बलि दी जाती थी। वैसे प्रायः प्रत्येक दिन ही देवी के सामने उन निरीह मूक पशुओ की निर्दयता पूर्ण हत्या की जाती थी। जन साधारण मे ऐसी मान्यता रूढ़ हो गयी थी कि जो देवी को बलि नही देगा उसका बड़ा अनिष्ट हो जायगा यह प्रश्न नये जैन बनने वालों के सामने भी आया। उन्होने देवी को पशु बलि नही दी तो कुछ दुर्घटनाएं भी घटी, उपद्रव भी होने लगे। तो उन्होने आचार्य रत्नप्रभ सूरि से पुकार की, कि हम तो आपके उपदेश से अहिंसक बन गये, मास, पशु बलि, शिकार सबको छोड दिया पर चामुण्डा देवी बडी क्रूर है। इसको पशुबलि दिये बिना हमारी रक्षा कैसे होगी ? तब आचार्य श्री ने कहा कि अच्छा इसका उपाय किया जायगा। उन्होने अपने ध्यान बल से देवी को आकर्षित किया देवी ने कहा—मेरी परम्परागत बलि को आप कैसे निषेध कर रहे हैं ? तब सूरिजी ने कहा कि तुम तो जगत की माता—अम्बा हो, जैसे मनुष्य तुम्हारे सेवक और भक्त है वैसे बकरे भी तुम्हारी सन्तान है। उनकी भी तो रक्षा तुम्हें करनी चाहिये। देवी ने कहा कि आप कहते तो ठीक हैं पर लम्बे समय से लोग मुझे बलि दे रहे है उसके बिना मै संतुष्ट नही होती, अभ्यास सा पड गया है। तब दृढ़ता से साथ आचार्य श्री ने कहा कि हमतो अहिंसा धर्मी है पशु बलि तो तुम्हे किसी भी तरह नही चढा सकते। तुम मेरे प्रतिबोधित जैनो का उपद्रव

करोगी तो मुझे फिर अन्य कोई टेढा रास्ता सोचना पड़ेगा। नही तो फिर मेरा कहा मानो। मैं तुम्हें अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ प्रचुर परिमाण में चढ़ाने को श्रावकों से कह दूंगा। हमारे श्रावकों के लिए तो तुम्हे इसकी छूट देनी ही पड़ेगी। अन्त मे सूरिजी के तप तेज से प्रभावित होकर देवी ने उनका कहा माना उसने सोचा कि मैं यदि ऐसे महात्मा पुरुष का कहा नही मानूंगी तो मेरे लिए ही भारी पड़ेगा। जैनी मुझे मानना छोड देंगे। मेरे से भी वडे देवी-देवता गुरुमहाराज के सेवक और भक्त है। अतः मैं बिगाड़ करूंगी तो उनके द्वारा अशान्ति का निवारण हो जायगा।

देवी को प्रतिबोध देकर उन्होने उसे ओसवालो की कुलदेवी मान्य रखते हुए उसकी मान्यता जारी रखी। पर उसका चण्डिका नाम वड़ा क्रूर था उसे बदल कर उन्होने उस देवी का नाम सच्चिका-सत्यिका रख दिया। इस नाम वाली देवी के कई स्तोत्र जैनाचार्यो व मुनियो के रचे हुए मिलते है और उनके प्रतिष्ठित सत्यिका की कई मूर्तियां जोधपुर आदि म्यूजियम में पायी जाती हैं।

ओसवाल समाज मूलतः क्षत्रिय समाज था जिसमे मांसाहार, शिकार, बलि आदि का बोल-बाला था। इसलिए जैनी बनने के बाद अधिकांश लोगों ने खेती, व्यापार करते हुए अपने को वैश्य के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया। यद्यपि राजघरानो से भी उनका सम्बन्ध अच्छे रूप मे बना रहा। जैन जातियो की अलग स्थापना जैनाचार्यों ने वड़ी दीर्घ दृष्टि से इसीलिए की कि पूर्व संस्कार और आसपास के वातावरण और सम्पर्क से उनमे फिर हिंसा भाव का पनपना सम्भव है। इसलिए मासा-हारियो, शिकारियो, पशुवलि आदि देने वालो से उनके रोटी, वेटी का व्यवहार वन्द कर दिया गया। इसी से जैनी आज भी पूर्ण शाकाहारी और पशु-पक्षी ही नही चीटी आदि छोटे-छोटे जन्तुओ की रक्षा के लिए भी सावधान रहते हैं। उनके इस अहिंसा पालन का प्रभाव आस-पास के सभी लोगो पर पड़ा। फलतः करोड़ो व असख्य जीवो को अभय दान मिल गया।

दया और करुणा भाव :

इतना ही नहीं पशु-पक्षियो के प्रति दया और करुणा भाव भी इतना जाग्रत किया गया जिससे उन्हे दाने, चुग्गे आदि के लिए अन्न, रोटियां आदि देना प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक कर्तव्य हो गया। और गाय, बैल आदि की रक्षा के लिए गोशालाएँ, कबूतरखाने आदि खोले गये। पशु-पक्षियों की रक्षा ही नही उनके संरक्षण और संवर्द्धन का भी प्रयत्न किया गया। पाठकों को यह जानकर बहुत ही आश्चर्य सा होगा कि कुत्ते आदि कई मांसाहारी पशुओ को भी जैन समाज, व इतर समाज ने नित्य नियमित रोटिया खिलाकर उनकी मांसाहार प्रवृत्ति कम करदी और पालतू बनाकर अपने घरो आदि की रक्षा का प्रवन्ध भी किया गया।

अमारि की उद्घोषणा :

समय-समय पर जैनाचार्यों ने राजाओं और बादशाहों को अहिंसा धर्म का उपदेश देकर उनके राज्य भर मे अमारि (किसी जीव की भी हत्या नही की जाय न मारा जाय,) की उद्घोषणा करवा दी, फरमान जारी करवा दिये। उन सवका विस्तृत विवरण दिया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है। पर यहां थोडे से उदाहरण ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

मल्लधारी अभय देव सूरि के उपदेश से राजा जयसिंह ने अमारि उद्घोषणा करवायी थी? मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि के उपदेश से सिद्धराज ने वर्ष में ८० दिनों तक जीव रक्षा के लिए एतवर पत्र

लिखकर दिये थे। बहुत से राज्यों के मन्त्री सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि जैनी ही थे। इसलिए अमारि उद्घोषणा व जीव हिंसा निषेध मे अधिक सहूलियत मिली।

बीकानेर राज्य के बच्छावत कई पीढ़ियों तक मन्त्री रहे। उन्हे धन और मान की अपेक्षा धर्म अधिक प्रिय था। इसका एक ही उदाहरण दिया जा रहा है कि मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र ने बड़ी सूझबूझ से सम्राट अकबर को प्रसन्न करके राव कल्याणसिंह जी के जोधपुर के राजगवाक्ष में बैठकर कमल पूजा करने का असंभव सा मनोरथ पूर्ण कर दिया। इसके उपलक्ष्य मे जब कल्याणसिंहजी ने मन्त्रीश्वर को जो भी इच्छा हो मागने को कहा तो कर्मचन्द्र ने और कुछ भी न चाहकर यही मांगा कि चातुर्मास मे हलवाई, तेली आदि अपने तिल पिड़नादि हिंसात्मक कार्य न करें। बकरी, भेड़, ऊँट आदि का कर न लिया जाय। इसी तरह समीयाणा के बन्दीजनों को रायसिंहजी की कृपा से सैनिको के हाथ से छुड़ाया। सं० १६३५ के महादुष्काल के समय १३ महिनो तक मन्त्रीश्वर ने दानशाला खोलकर दीन-हीन रोगग्रस्त व्यक्तियों को खान पान, वस्त्र, औषध आदि देकर प्रशसनीय सहायता की और आश्रितों को अपने खर्च से साथी देकर अपने स्थान पहुचा दिया। उनके हृदय मे कितनी दया व करुणा थी कि राज्य भर मे आठम, चवदस, पूनम, अमावस और चातुर्मास मे कुम्हार, तेली आदि को हिंसात्मक कार्य निषेध करवा दिये। सारे वायु मण्डल मे खेजड़ी आदि वृक्षो का छेदन निषेध करा दिया। सिन्धु देश की सतलज, रावि आदि नदियो मे मच्छों की हिंसा बन्द करवा दी।

इसी तरह सम्राट अकबर जब हीरविजयसूरि, जिनचन्द्रसूरि और विद्वान् जैन मुनियों से प्रभावित हुआ तो उसने आषाढ़ सुदी चौमासे के आठ दिन और पर्युषण के १२ दिन जीव हिंसा अपने सभी सूबो मे फरमान भेजकर बन्द करवा दी। खम्भात के समुद्र की मछलियों को पकड़ना १ वर्ष तक बन्द करवा दिया। यहां तक कि प्रायः वर्ष में ६ माह तक पशु-पक्षी की हिंसा सम्राट अकबर जैसे मुसलमान ने बन्द करवादी। गोरक्षा का फरमान जारी कर दिया और स्वयं मांसाहार करना छोड़ दिया।

मुसलमान सम्राट् अकबर ने हीरविजयसूरि व जिनचन्द्रसूरि को हिंसानिषेध के जो फरमान दिये थे उनकी नकल यहाँ दी जा रही है।

कसाइयों के मुचलके की नकल

बीकानेर मे पर्युषणों के १० दिन कसाईवाड़ा चिरकाल से बन्द रहता है। तत्सम्बन्धी कसाइयों के मुचलके की नकल इस प्रकार है—

मरजुआ १५ अक्टूबर सन् १८९२ ईस्वी
मोहर महकमे मुनिसीपल
कमेटी राज श्री बीकानेर
सं० १९४७

श्री महाकमा म्युनिसीपल कमेटी
राज श्री बीकानेर
महाराव सवाईसिंह

लिखतु वोपारी हाजी अजीम वासल रो वा अलफु कीमैं रो वा खुदाबग्स भीखैं रो वा वहादर समसैं रो वा इलाहीवग्स मोवत रो वा मोलावग्स मदैं रो वा कायमदीन अजीम रो वा, फोजू गोलू रो वा कायमदीन खाजु रो बगेरे समसुतां जोग तथा म्हे लोग पजुसणा मे अगता मिति भादवा वदि १२ सूं मिती भादवा सुदी ६ ताई कदीमी राखता आवां छां और पेली ओसवालां री तरफ सूं

लावण, वीहा में वगैरह में म्हाने मिलतो छो सु इया वरसां मे कम मिलने लाग्यो जै पर म्हे हर साल पंचान ओसवाल ने केवता रहा के हमारा वन्दोवस्त कर देणा चाहिजै लेकिन वांरी तरफ से वन्दोवस्त नही हुआ सं हमे मैनुसीपल कमेटी री मारफत मिती भादवा वदी १२ सुं मिती भादवा सुदि ६ तांई कोई वैपारी जीव हत्या नही करसी और श्री रसोवड़े री दुकान १ वाँ अजर साहव वहादुर री दुकान १ जारी रहसी जै मैं रसोवड़े री दुकान रो रसोवड़े सिवाय दूजे ने नही देसी वा० अंजर री दुकान वालों सवाय हुकमत अंगरेज वहादुर औरा ने नही देसी। केई साल मे भादवा दो रे कारण पंजूसण दो होगा तो अगता दोणुं पजुसण मे वरोवर राखसां रु० १००) सुं ज्यादा नही मांगसां इयै मै कसर नही पड़सी। अगर इयै मैं कसर घाता तो सिरकार सूं सजा कैद वा जरीवाने री मरजी आवे सु देवे। ओ लिखत मै म्हारी राजी खुशी सूं की यो छै। इये मैं कही लाव कसर नही घात सां सं० १९४९ मिति आसोज सुदी ९ ता. ३० सितम्वर सन् १८८२ इस्वी।

द० खुदावग्स वल्द भीखा वकलम— द० पीरवग्स

द० ....वगस द० इलाही वगस

द० मौलावग्स वल्द मदारी वकलम धाय भाई छोगो।

खत वा० फाजु वल्द गोलु वा० कायमदीन वल्द खाजु वा. हाजी अजीम वल्द वासल वकलम इलाहीवग्स। द० रहीम वल्द इलाईवग्स वा. मोलावग्स वल्द नूरा वा० समसु वा० कादर वा. अव्दुलो वा. कायमदीन वल्द अजीम वकलम धाय भाई छोगो।

द० रैमतउल्ला वकलम खाजू। द० करमतउल्ला वकलम खाजू।

द० खाजू वल्द वा० लखा वल्द अजीम वा० इलाईवग्स वल्द इमामवग्स वकलम इलाईवग्स वमुजव के णे च्यारा के द० करीमवग्स द० गुलाम रसूल।

फरमान अकवर वादशाह गाजी का

सूवे मूलतान के वड़े-वडे हाकिम, जागीरदार करोड़ी और सव मुतसद्दी (कर्मचारी) जानले कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यो और जीव जन्तुओ को सुख मिले, जिसे सव लोग अमन चैन में रहकर परमात्मा की आराधना मे लगे रहें। इससे पहले शुभ चिन्तक तपस्वी जयचन्द (जिनचन्द्र) सूरि खरतरगच्छ हमारी सेवा मे रहता था। जव उसकी भागवद् भक्ति प्रकट हुई तव हमने उसको अपनी वड़ी वादशाही की महरवानियो मे मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि इससे पहले हीर-विजय सूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल वारह दिन मांगे थे, जिनमे वादशाही मुल्को मे कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवो को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अव मैं भी आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय। इसलिये हमने अपनी-अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ शुक्ला पक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल मे कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल वात तो यह है कि जव परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भांति-भाति के पदार्थ उपजाये हैं तव कभी किसी जानवर को दुःख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे। परन्तु कुछ हेतुओ से अगले वुद्धिमानो ने वैसी तजवीज की है। इन दिनों आचार्य जिनसिंह सूरि उर्फ मानसिंह ने अर्ज कराई कि पहिले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है, इसलिये हमने उस फरमान के अनुसार नया फरमान इनायत किया है।

चाहिये कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय। इस विषय में बहुत बडी कोशिश और ताकीद समझ कर इसके नियमो मे उलट फेर न होने दें। ता. ३१ खुरदाद इलाही सन् ४६।

हजरत बादशाह के पास रहने वाले दौलत खाँ को हुक्म पहुंचाने से उमदा अमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख्वाजा लालचन्द के वाकिया (समाचार) लिखने की बारी मे लिखा गया।

सम्राट जहागीर ने भी कई खास दिनो मे जीव हिंसा निषेध जारी रखा। इसके अनुकरण मे राजस्थान के कई राजाओ ने भी अपने यहां अमारि उद्घोषणा करवा दी थी। यह सब जैनाचार्यों और श्रावको के अहिंसा प्रचार की प्रबल भावना और प्रभाव का द्योतक है।

जीव हिंसा निषेध जैनो का एक आवश्यक कर्तव्य ही हो गया। इसलिए जब भी जैन पर्व आते, कोई उत्सव होता तो सबसे पहला काम यही होता कि पशु-पक्षियों की हिंसा बन्द करवाई जाय। कसाई वाडे बन्द रखवाये जाय, अगते पालन किये जाय, बकरो आदि को अमर बनाये जाय। इसके लिए वे अपने प्रभाव और प्रयत्न से राजाओ से आज्ञा जारी करवा देते। पैसे देकर कसाइयो से जीवों को छुड़वा दिया जाता। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यो मे पर्युषणो आदि मे कसाई वाडा बन्द रहता। बीकानेर राज्य मे कसाईवाड़ा बन्दी का जो अन्तिम दस्तावेज था, उसकी नकल पीछे दी जा चुकी है। खेद है, जैन समाज की उपेक्षा के कारण यह प्रणाली कुछ वर्षो पहले बन्द हो गयी। फिर भी राजस्थान सरकार से कुछ खास दिनो के लिए[1] कसाईवाडे बन्द रखवाये जाते है। अभी भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में राजस्थान सरकार ने हिंसा निषेध के कुछ आदेश जारी किये है। शताब्दी वर्ष के लिए शिकार बन्द करदी है।

पशु-पक्षि बलि निषेध विधेयक :

भगवान महावीर ने अपने समय मे व्याप्त धर्म के नाम पर की जाने वाली बलि प्रथा का सख्त विरोध किया था। वस्तुतः यज्ञ मे बलि देने का जो विधान है वह किसी पशु या पक्षी से सम्बद्ध न होकर अपनी पशुता (पापवृत्तिया) को होमने का विधान है। व्यासजी का यह कथन इसी ओर इंगित करता है—ज्ञान रूपी पाल से घिरे हुए ब्रह्मचर्य और दया रूपी जल से परिपूर्ण पाप रूपी अग्नि कुण्ड मे दम रूपी वायु द्वारा प्रज्वलित ध्यान रूपी अग्नि मे बुरे कर्म रूपी ईंधन (समिधा) डाल कर श्रेष्ठ अग्नि होत्र करो। इसमें धर्म, अर्थ, और काम का नाश करने वाले कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) रूपी दुष्ट पशुओ का होम कर शातिमंत्र की आहुतियां देकर बुद्धिमान पुरुषो द्वारा विहित यज्ञ करो।

इसी धार्मिक मान्यता की झलक 'उत्तराध्ययन' सूत्र के बारहवें अध्ययन मे भी प्रतिबिम्बित है—तप रूपी अग्नि है, जीव अग्नि का स्थान है। मन, वचन और काया के शुभ व्यापार कुडछी रूप

१. ये खास दिन (अगते) निम्नलिखित हैं—
महाशिवरात्रि, रामनवमी, महावीर जयन्ती, गणतन्त्रदिवस, तीस जनवरी, बुद्ध जयन्ती, गणेश चतुर्थी, ऋषिपचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, अनन्त चतुर्दशी, पन्द्रह अगस्त, गांधी जयन्ती, कार्तिक कृष्णा १५ (दीपमालिका), और कार्तिक शुक्ला १५।
—सम्पादक

भी किसी भी प्राणी को मारते हुए हिचकिचाते रहते हैं। जहां अन्य देशों के लोग सर्प विच्छू आदि जहरीले जन्तुओ को देखते ही मार डालते है, वहां राजस्थान के निम्नस्तर वाले लोग भी ऐसे जन्तुओ को पकड़ कर दूर फेंक देते है परन्तु उनका वध कभी नहीं करते।

मरुधरा राजस्थान का एक प्रान्त है। यहां की 'ओसियां' नगरी में ओसवाल सघ की स्थापना हुई थी। ओसवाल संघ अर्थात् जैनो का एक विशिष्ट सघ। इस सघ मे प्रवेश पाने का अधिकार उन व्यक्तियो को मिला था जो मदिरा, मांस, व रात्रि-भोजन का परित्याग करने के लिए तैयार थे। अनेक प्राणियो के सहार पर ही मदिरा बनती है। पचेन्द्रिय प्राणियो के वध से ही मास-भोजन तैयार होता है और रात्रि-भोजन में अनेक जीव-जन्तुओ का संहार सुनिश्चित है। अतः इस सघ में प्रवेश पाने के अभिलाषियो को मदिरा, मांस व रात्रि-भोजन का परित्याग करना अतीव आवश्यक था, परन्तु यह त्याग सरल नही था। फिर भी इस कठिन तप-त्याग को स्वीकार कर सहस्रशः व्यक्तियो ने इस संघ में प्रवेश किया। यह जैन धर्म की एक बहुत बड़ी विजय थी। जो इस सघ में अपना स्थान नही बना सके, वे भी जैन धर्म से इतने प्रभावित हुए कि मदिरा, मांस की ओर तो उनकी अरुचि बढी ही, वे साथ मे रात्रि-भोजन से भी घृणा करने लगे।

अन्य देशो की अपेक्षा राजस्थान विशेषतः जैन मुनिराजो की विहार-स्थली बनी हुई है। इस भूमि में विचरण करने वाले मुनिराजों ने स्थान-स्थान पर प्राणी-वध को रुकवाया है।

एक समय था, राजस्थान में वर्षों से जागीरदारी प्रथा थी। जागीरदार प्रायः राजपूत लोग ही होते थे। छोटे-मोटे जागीरदारों पर जैन मुनिराजो का अच्छा प्रभाव था। उनके उद्बोधक उपदेश से अनेक जागीरदारो ने पर्व तिथियो पर शिकार खेलने व अन्य जीवहिंसा का परित्याग कर दिया था। कुछ जागीरदार तो ऐसे भी रहे कि उन्होने अपने अधिकृत क्षेत्र में सर्वथा जीव-हिंसा का निषेध कर दिया। वर्षावास काल में सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति विशेष रूप से होती है। इसलिए ऐसे समय में अतिहिंसाजनक कर्मो से दूर रहना, अहिंसा (जीव-दया) का एक सूत्र है। घाणी चलाना, भट्टी जलाना आदि अति-हिंसाजनक कर्म माने गए है। जिन लोगो को ये कर्म आजीविका के साधन थे, वे लोग भी इन दिनो में अपनी आजीविका के साधनभूत इन कर्मो से विरक्ति लेते थे। आज भी यत्र-तत्र यह प्रणाली प्रचलित है। इसमें जैन लोगो का सुमधुर व्यवहार व प्रभाव ही काम करता था।

देवी-देवताओ के स्थान पर होने वाला पशु-वध भी जैनो के प्रभाव मे अनेक स्थानो पर रुका है।

हाली के दिनो में राजस्थान के कुछ प्रान्तो में एक सामूहिक शिकार 'आहेडा के नाम से हुआ करती थी। निम्न जाति के पहाडी लोग एक बहुत विशाल समूह के रूप में एकत्रित होकर, चारो ओर मे पहाड को घेर कर उसमें घूमने वाले हिरण, खरगोश आदि वन्य पशुओं को बडी बेरहमी से मारते थे। जैनो के सतत प्रयासो मे यह क्रूरतम कर्म भी काफी अंशों में रुक गया है। ऐसे अनेक जीव दया के कार्य हैं, जो जैनो द्वारा राजस्थान में किये गए हैं। सचमुच यह जैन धर्म की राजस्थान को एक महान् देन है।

[२]
जागरण की दिशा

डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

जागरण का अर्थ है—कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना और कर्मक्षेत्र क्या है ? जीवन-संग्राम। सामाजिक जागरण से इस सदर्भ मे अभिप्राय है—सामाजिक कुरीतियो का उन्मूलन कर, मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा करना, मनुष्य मात्र के हित के लिए संघर्ष करना। जैन-समाज ने इस दृष्टि से अप्रतिम योगदान दिया है। प्रेम और करुणा, आत्म-निग्रह और सयम, नैतिकता तथा सदाचार, आत्मविसर्जन और आत्मसमर्पण आदि उदार मानवीय भावो को अपने मे समाहित कर जैन-समाज ने राजस्थान के जन-जीवन मे नई चेतना का संचार किया और मानव-मुक्ति, समता, समानता, भ्रातृत्व जैसे मधुर आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया।

राजस्थान मे जैन साधुओ एव श्रावकों ने सामंतीकारा से शूद्र और नारी को मुक्त कर तथा उन्हें नया व्यक्तित्व देकर, भगवान् महावीर के आदर्शों एवं सिद्धांतो का पालन करते हुए, अस्पृश्यता, वर्ण-भेद तथा धार्मिक और सामाजिक जडताओं से जीवन को उबारकर अपने समाज सुधारक व्यक्तित्व का परिचय दिया। रस्किन के शब्दो में वही समाज सदा सुखी रहता है जिसने नैतिक गुणो को अपने जीवन मे आत्ममात् कर लिया है। जैन-समाज ने भगवान् महावीर द्वारा दी गई आचार-संहिता के पांच व्रतो—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य व ५. अपरिग्रह का पालन करना अपने जीवन का ध्येय समझकर अहिंसामूलक संस्कृति का निर्वाह करते हुए वैचारिक एव व्यावहारिक संघर्ष को टाला तथा सामाजिक जीवन मे परस्पर सौहार्द बनाए रखने का सद्प्रयत्न किया।

जैन समाज में भी दो बड़ी श्रेणिया है—एक, जिनके पास भूख से अधिक भोजन है और दूसरी वह जिसके पास भोजन से अधिक भूख है। जैन मतावलम्बी—चाहे वह किसी सम्प्रदाय का हो यदि अपरिग्रह के व्रत का सच्चा अनुयायी है तो अपनी उदारता एवं दानशीलता का परिचय दुर्बल वर्ग की आर्थिक सहायता कर प्रस्तुत करता है। जयपुर, अजमेर एवं जोधपुर क्षेत्रो मे अनेक ऐसी संस्थाएं है जो अर्थ से कमजोर वर्ग की सहायता कर अपने को कृतार्थ समझती हैं।

भगवान महावीर ने श्रावकों की आचार-संहिता में श्रावक के लिए चार प्रकार के दानो का विधान किया है—१. औषधिदान २. शास्त्रदान ३. अभयदान और ४ आहारदान। राजस्थान के प्रायः प्रत्येक जिले मे जैन समाज ने औषधालय तथा चिकित्सा-गृहो की स्थापना कर प्रत्येक जाति के लिए नि.शुल्क चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-सेवा की व्यवस्था उपलब्ध करा कर नये कीर्तिमान स्थापित किए है। राजस्थान मे जैन-समाज द्वारा संचालित महाविद्यालय, विद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय आदि सैकडो की संख्या मे हैं। इससे व्यावहारिक एवं नैतिक शिक्षण को बडा बल मिला है। जयपुर, उदयपुर, अजमेर, बीकानेर, जोधपुर आदि नगरों में जैन-समाज द्वारा स्थापित अनेक ट्रस्ट हैं जो प्रति वर्ष कई लक्ष रुपयों की छात्र-वृत्ति प्रदान करते हैं। जैन-श्रावको द्वारा आहार दान की परम्परा आज भी प्रचलित है। बाढ, अकाल, भूकम्प आदि प्राकृतिक विपत्तियो के अवसर पर वे कल्याणकार्यों में मुक्तहस्त से सहयोग करते है। राजस्थान के प्रमुख नगरो मे सार्वजनिक उपयोग के लिए प्याऊ, कूप धर्मशालाएं आदि के निर्माण की परम्परा जैनियो द्वारा आज तक निभायी जा रही है।

जर्मन दार्शनिक गेटे के मतानुसार सबसे अधिक सुखी समाज वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परस्पर हार्दिक सम्मान की भावना रखता है। जैन-समाज पारस्परिक सौहार्द की भावना रखता है। पापकर्म से यथासम्भव दूर रहना, निरन्तर पुण्य में तत्पर रहना, अच्छी मनोवृत्ति रखना और शुभाचरण करना, जन-कल्याण के साधनो को अपनाना, सत्य का अन्वेषण करना तथा व्यापक और सामञ्जस्यपूर्ण जीवन-बोध करना एव कराना—इन उत्तम साधनो को व्यवहृत कर जैनसमाज सामाजिक जागरण की भूमि तैयार करने मे अधिकाशतः लगनशील रहता है। स्वानुभूत सत्य और आत्म-चिन्तन की प्रतिष्ठा कर सामाजिक सुधार को जैन-समाज मूल स्वर प्रदान करता है। जैन-समाज ने भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में साधारणतया परन्तु आधुनिक काल में विशेषतया, सुधारवादी धार्मिक और सामाजिक सस्थाएं एवं सस्थान स्थापित किए और मानव मात्र के जागरण एवं कल्याण के स्वर निनादित किये। जैन साधु-सतो ने मनुष्य मात्र की व्यथा समझने, मानव की मुक्ति का उद्घोष करने तथा प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता की भावना का विकास करने की प्रेरणा प्रदान की। जैन-मतावलम्बियो ने समय-समय पर सती-दाह, बाल-हत्या, नर-बलि, पशु-बलि, यज्ञ, कर्मकाण्ड, बाल-विवाह, मृत्युभोज विवाह मे फिजूलखर्ची जैसी कुरीतियो के विरोध मे स्वर बुलन्द किया और इनसे यथासम्भव दूर रहने की प्रतिज्ञाएं की।

जन साधारण की यह सामान्य मान्यता है कि जैन-समाज एक सम्पन्न, धनाढ्य समाज है और यह मान्यता अधिकाशतः उचित ही है क्योकि जैन-समाज निर्व्यसनी है तथा इसके नब्बे प्रतिशत सदस्य सयमी हैं। महावीर के अनुयायी हर युग मे जनमानस में आत्म-विश्वास और मानववादी स्वर की दृढता का संचार करते रहे हैं। उन्होने सदैव सामाजिक जागरण में नैतिकता और धर्म का समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की, श्रम की महत्ता प्रतिपादित की, अस्पृश्यता-निवारण तथा नारी-मुक्ति की जोरदार अपील की। दलित और पीड़ित के प्रति अनन्त सहानुभूति के द्वार खोले, जीवन-मूल्यों की नैतिक स्थापना की, धार्मिक अन्धविश्वास और जडता से मुक्ति की कामना की, दरिद्रता के प्रति क्षोभ प्रकट किया तथा मानव अधिकारो के सजग प्रहरी की भूमिका अदा की। अपनी दुर्बलताओ एव सीमाओ के बावजूद भी जैन-समाज ने राजस्थान में सामाजिक जागरण को विशेष स्वर प्रदान किया।

साधक के लिए सबसे बडा प्रतिबन्ध कीर्ति की चाह है। जैन-साधको ने सदा ही यश या कीर्ति की मृगतृष्णा में भटकने से अपने को बचाया है तथा जैन श्रावकों ने उत्तम साध्य के लिए सदैव उत्तम साधन ही अपनाये। व्यापक सामाजिक बन्धुत्व और उदार धार्मिक वातावरण मे जैन समाज ने राजस्थान मे सामाजिक जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है, यही आज का विश्वास है और जैन-समाज मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा मे भविष्य में क्रांतिदर्शी भूमिका निभायेगा, यही कल की आशा है।

[३]

जैन संतो का योग

श्री मिट्ठालाल मुरड़िया

त्याग, बलिदान, स्वदेशप्रेम और वीरता मे राजस्थान का गौरव सर्वोच्च रहा है। साधु-सतो का सम्मान भी यहा कम नही हुआ है। श्रमणो की अमृत वाणी और वैराग्य भावनाओ से यहां का

प्राचीरें और किले आज भी गूंज रहे है। यहा की एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर मे वीरता के भाव व्याप्त है। यहां का कण-कण वीरता की कहानी कहते सुनाई देता है। युद्ध और प्रेम के आख्यान आज भी उत्त‍ंग घाटियों और मैदानी तलहटियो मे प्रतिध्वनित हो रहे है। यहा के वीरों ने सचमुच जीवन और मृत्यु को खेल ही माना है। यह खेल यहां के राणा जीवन भर खेलते रहे। यहा की वीर नारिये भी कम नही थी। वीरो का सम्मान कर, वीरता को आदर देना यह उन्होने धार्मिक-व्रतो से सीखा था। इसी वीर भूमि ने पन्नाधाय जैसी वीर माता को जन्म दिया जिसने छाती पर पत्थर रखकर, अपने लाड़ले लाल का नगी तलवार से टुकड़े करते देखकर भी, चूं नही किया और मेवाड की वश परम्परा कायम रखने के लिए उदयसिंह की रक्षा की थी। इसी भूमि मे मीरां ने अपनी भक्ति साधना का प्रेम स्त्रोत बहाकर सारे रेगिस्तान को हरा-भरा कर दिया। सन्तो के सामीप्य के कारण मीरा की भक्ति भावना बढी-चढ़ी थी। मीरां प्रेम सदन की नही भक्ति मन्दिर की साधिका थी। मीरां के भजनों की स्वर लहरिया आज भी देश मे लहरा रही हैं।

जनता युद्ध की विभीषिकाओ से परेशान थी। सुख का नाम नही था ऐसे समय समाज का जागरण कैसे होता ? उनकी आशा-आकाक्षाओं को सम्मान कहां मिलता ? पर जैन संत इस विकट परिस्थिति मे भी नीति और धर्म का उपदेश देते हुए ग्रामानुग्राम विचर रहे थे, साधारण जनता का भय दूर कर, अहिंसात्मक कथाए सुनाते हुए आगे बढ़ रहे थे। तप, त्याग की छाप डालकर उन्हें व्रत-नियम दिलवा रहे थे। एक तरफ युद्ध का आतंक था, दूसरी ओर धर्म का शान्ति संदेश। एक ओर अशान्ति थी और दूसरी ओर धर्म की मंगलवाणी। यह सन्तो के उपदेश का ही परिणाम था कि कोई राजा किसी निहत्थे शत्रु पर वार नहीं करता था। धर्म का यह संकल्प वे जीवन पर्यन्त पालते रहे।

जहां यह वीर भूमि संकल्प और आन-बान और शान के लिये प्रसिद्ध रही है। वहां यह धरा अन्धविश्वास, भैरू भवानी, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र और अशिक्षा से ग्रस्त भी रही है। अंधविश्वास के कारण कई माताएं दिन दहाड़े ठगी जाती थी। शिक्षा की दिशा मे राजस्थान इतना पिछडा था कि अन्य राज्यो की तुलना मे इसकी स्थिति विशेष चिन्तनीय थी। किसानों, भीलों, मीणो, जाटो, लुहारों, मेहतरो और रेगरों का बुरी तरह शोषण होता था। कही-कहीं तो एक कुल्हाड़ी का मूल्य नही चुकाने पर व्याज दर व्याज से भैंस तक देनी पडती थी। एक धोती के बदले २ बीघा जमीन और ५) पाच रुपये के बदले २ गाडी गेहूँ देने के उदाहरण आज भी सुनने मे आते है।

राजाओ की ज्यादती, ठाकुरो की मनमानी, सेणों का आंतक और पुलिस की जोरजबरदस्ती से जनता परेशान और भयभीत थी। उनकी बात को टालने पर खडे-खडे कोडे लगवा दिये जाते थे। किसानों की चार मास की खरी कमाई का अनाज लूट लिया जाता था। बिचारा किसान कड़ी मेहनत करने के बाद भी, अपने बच्चों सहित भूखा ही सोता था।

इस आंतक से समाज मे हाहाकार मचा हुआ था। शासकों की लापरवाही से प्रजा पीड़ित थी, मगर साधारण जन कुछ नही कर सकता था। मौत का भय सदा उनके सिर पर मंडराता रहता था। ऐसी स्थिति मे जैन श्रमणों ने राजाओ को बोध देकर जनता की भलाई की ओर उनका ध्यान

सीचा । इधर देश मे आजादी की लहर उमड रही थी । फिर, भला राजस्थान इस लहर से कैसे अछूता रहता ? राष्ट्रीय जागरण से लोक मानस का आलस्य टूटा । सभी ओर से अन्याय के खिलाफ बगावत होने लगी । देशप्रेम की लहर के साथ ही साथ सामाजिक जागरण की चेतना जगी । शिक्षा प्रसार से अध विश्वास टूटने लगा । भैरू-भवानी का प्रभाव मिटने लगा और सामाजिक बुराइयां कम होने लगी । राष्ट्रीय आन्दोलनो, बुद्धिजीवियो के आह्वान और जैन सन्तो के शिक्षात्मक उपदेशों से सामाजिक कुरीतियो के बन्धन ढीले पड़ने लगे । जनता सन्तो के जीवन के निकट आकर व्रत-उपवास, धर्माराधन आदि करने लगी ।

इधर सतो ने कहा कि एकता से ही समाज का जागरण सम्भव है । जब समाज की जागृति हो जायगी तो फिर धीरे-धीरे समाज का नैतिक उत्थान भी होगा । सन्तो ने गाव-गांव, नगर-नगर घूम कर बोध दिया कि बाल-विवाह न्यायोचित नही है । इससे धन, जन और स्वास्थ्य की बर्बादी के साथ देश का गौरव घटता है । विधवाओं का जीवन कष्टपूर्ण था । पति की मृत्यु के बाद वे घर के परकोटे से बाहर नही जा सकती थी । समाजोत्थान से विधवाओ के प्रति आदर भाव बढा और उनमे सुपुप्त नारीत्व का तेज जागृत हुआ । वे समाज-सेवा के कार्यों मे सक्रिय हुई । बार बार साधु-सन्तो के आगमन से गावो मे धूम मचने लगी । समूचा राजस्थान जाग उठा, ललकारे और हुंकारें होने लगी, उत्साह और जोश एक साथ उमड पड़ा । ज्यो-ज्यो सन्तो के उपदेशों से सामाजिक जागरण और नैतिक उत्थान होने लगा, त्यो-त्यो व्रत, उपवास और धर्मोपासना बढ़ने लगी । समाज सुधार की मंगल भावनाओ का प्रभावोत्पादक असर डाकुओ, लुटेरो पर पड़ा । वे सन्तो के निकट आकर धर्म लाभ लेने लगे । चोरो ने चोरी न करने, शराब न पीने और मास न खाने का संकल्प लिया और भविष्य मे आम जनता की तरह उज्ज्वल जीवन जीने में उनका विश्वास जमा ।

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी म० एक ऐसे निर्गन्थ थे जिन्होने सामाजिक जागरण और नैतिक उत्थान के लिये जो कार्य किया, राजस्थान उनकी सेवाओ को कभी विस्मरण नही कर सकेगा । उन्होने जनता को सरल भाषा मे उपदेश दिया जो सामाजिक रूढिया तोड़ने और अन्धविश्वास दूर करने मे कारगर सिद्ध हुआ । अपने शिष्यो के बहुत बडे समुदाय के साथ पैदल घूम-घूम कर इस निर्गन्थ ने दया और करुणा की, प्रेम और सत्य की जो ललकारे की, उससे राजाओं का आलस्य टूटा और वे सन्मार्ग गामी बने । इनके प्रभाव से लाखो व्यक्तियो ने शराब, मास, बीडी, सिगरेट और जीव हिंसा छोडी तथा वे उत्तम मार्ग के राही बने । इनके व्याख्यानों में राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार, हाकिम, सरदार, ठाकुर, नाई, धोबी, कुम्हार, मुसलमान, मीणा और बोरे सभी आकर अपने जीवन को धन्य बनाते थे । राजस्थान की दलित जाति के नैतिक उत्थान मे इनका जो सहयोग रहा है, वह कभी भूला नही जा सकेगा ।

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहर लालजी म० ने लोक कल्याण के लिए थली प्रान्त को विशेषत: अपना विहार-क्षेत्र बनाया, जनता में आत्म जागृति कर मगलमयी भावनायें फैलाई । उनका कहना था कि लोग साहस पूर्ण तरीको के साथ सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत करें और अपना कार्य ईमानदारी के साथ करें । जीवन के प्रत्येक व्यवहार में विवेक और धर्म को न छोड़े । अच्छे कपड़े पहिनने और अलकारो से लदने से ही व्यक्ति बड़ा नही बनता । बडे बनने के लिए गुण आवश्यक है । व्यक्ति अपने आत्मीय गुणो से ही बड़ा बनता है । वे राष्ट्रीय विचारो के क्रातिकारी संत थे । उन्होने स्वातन्त्र्य

सग्राम मे जुटे रहने की प्रेरणा दी । वे सत्याग्रह और स्वदेशी आदोलन के बडे हिमायती थे। खादी पहिन और राष्ट्र धर्म को महत्त्व देकर उन्होने राष्ट्रीय भावना के विकास मे वडा योग दिया ।

स्वर्गीय आ० श्री गणेशलालजी म०, आचार्य श्री हस्तीमलजी म०, मरुधर केशरी, श्री मिश्रीमलजी म०, श्री पूर्णमलजी म०, स्व० श्री समरथ मलजी म०, आचार्य श्री नानालालजी म० आचार्य श्री तुलसी आदि का नाम भी राजस्थान के नैतिक उत्थान मे विशेष उल्लेखनीय है ।

इस दिशा मे साध्वियो का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है । समाज को मार्ग दर्शन देने, बुराइयां निकालने, बहिनो को जगाने व उनमे आत्म विश्वास पैदा करने मे साध्वी समुदाय के योग को कभी विस्मृत नही किया जा सकता ।

आत्म कल्याण के इन पथिको को किसका भय ? जो दूसरो को भयभीत करते है, वे सदा भयभीत होते है, जो दूसरो को डराते हैं, वे सदा डरते है, किन्तु जो निडर होते है उन्हे डरने की आवश्यकता नही रहती है ।

राजस्थान मे जैन निर्ग्रन्थो ने समाज-जागरण और नैतिक उत्थान का जो अभूतपूर्व कार्य किया, सरकार सैकड़ो अफसरो को नियुक्त कर लाखो रुपये व्यय करके भी यह कार्य नही कर सकती थी । जनता मे भी आज सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, उपकार और प्रेम की जो भावनाए दिखाई देती हैं, वह इन सन्तो के प्रताप का ही परिणाम है । राजस्थान की कोई ऐसी जाति नही होगी जिसे इन सन्तो ने उद्वोधन न दिया हो ।

[४]

व्यसन-मुक्ति और संस्कार-निर्माण

श्री रिखबराज कर्णावट

यो तो इस अवसर्पिणी काल (वर्तमान समयचक्र) के जैनो के प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव ने समाज-व्यवस्था कायम की तभी से जैन धर्मावलम्बियो द्वारा इस बात का सतत प्रयास रहा कि समाज मे नैतिकता का उल्लघन न हो । व्यसन सदा ही समाज की बुराई व नैतिक मूल्यो के उल्लघन माने जाते रहे हैं । मद्यपान, मांसभक्षण, शिकार, जुआ, चोरी, व्यभिचार तथा वैश्यावृत्ति की गणना सात कुव्यसनो मे की जाती है । जैन धर्म के सभी तीर्थकरो ने आत्मिक उत्थान पर अधिक वल दिया है । सासारिक सुख-वैभव, भोगविलास मे लोगबाग न फसे, इस हेतु सदा ही उन्हे सावधान रखने का प्रयास किया जाता रहा । फलस्वरूप बुराइयो से निवृत्ति व सद्विचारो मे प्रवृत्ति का उपदेश जैन धर्मोपदेशक देते रहे ।

इस काल के अन्तिम तीर्थकर भगवान् महावीर के साधु-साध्वियो, श्रावक, श्राविकाओ ने मानवो को व्यसनो से बचाकर सुपथ पर लाने का काम किया तथा आज भी उनके अनुयायी इस काम को रुचिपूर्वक कर रहे हैं । मध्य काल मे अनेक जैनाचार्यो ने योजनावद्ध तरीके से यह कार्य किया । ओसवाल जाति की उत्पत्ति व्यसन-निवृत्त समाज के रूप में ही हुई । दादागुरु रत्नप्रभ सूरि, जिनदत्त-सूरि एव आचार्य हरि विजयसूरि आदि ने सामूहिक स्तर पर इस कार्य को सम्पन्न किया । वस्तुतः सभी जैन धर्मोपदेशक लोगो से व्यक्तिगत सम्पर्क रखकर उन्हे व्यसन-मुक्त करने मे लगे हुए हैं । इसी

शताब्दी मे प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने राजस्थान व मालवा मे राजवर्गी लोगो, जागीरदारो व नरेशों से संपर्क कर, स्थान-स्थान पर अगते (व्यसन मुक्त दिन) रखवाने के घोषणा-पत्र जारी करवाए और व्यसनों मे फंसे सहस्रों लोगों को व्यसनों का त्याग करवाया। स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने महात्मा गांधी से संपर्क कर राष्ट्र उत्थान हेतु गांधीजी के परामर्श के अनुसार सहस्रो लोगो को सदाचार से रहने का व्रत दिया। अन्य अनेक संतो ने भी अपना समय इस काम में दिया। इन सब महान् पुरुषों के कार्य का विवरण दिया जाय तो एक बड़ा ग्रंथ तैयार हो जाये।

वर्तमान समय मे भी जैनो के सभी संप्रदायो के आचार्य अपने साधु-साध्वियों व अनुयायियो के माध्यम से व्यसनो के बढते हुए प्रचार को रोकने तथा व्यसन-मुक्त समाज के निर्माण में लगे हुए हैं। इस बात को समझने के लिये कुछ थोड़े से संतो व संस्थाओं का संक्षिप्त उल्लेख करना उपयोगी होगा। तेरापंथ समाज के आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत समाज की स्थापना की और अणुव्रत के माध्यम से शराब, मांस आदि कुव्यसनों के निवारण का तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना का बड़ा अभियान प्रारम्भ किया और उसका काफी असर भारत के अनेक प्रांतों मे हुआ। अभी-अभी आचार्य तुलसी की प्रेरणा से 'संस्कार-निर्माण समिति' की स्थापना हुई और स्थान-स्थान पर विशेषकर थली प्रदेश मे इस समिति की शाखायें खुली हैं। यह समिति वर्षों से पददलित एवं शोषित अनुसूचित जातियो मे जागरण व उनको व्यसनो से मुक्ति दिलाने का काम करती है। आचार्य तुलसी की आज्ञा से लगभग ६०० साधु-साध्वी तथा सैकड़ों गृहस्थ इस काम में योग दे रहे हैं।

इसी भांति स्थानकवासी जैन समाज के आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० की प्रेरणा से अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति की स्थापना हुई थी। जिसने हजारो लोगो को शराब, मांस आदि व्यसनों से मुक्ति दिलाई है और नैतिक कर्तव्यों की ओर अग्रसर किया है। स्थानकवासी समाजके ही एक अन्य आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० ने भी धर्मपाल संघ की स्थापना कर हजारो लोगो को व्यसनो से छुड़ाया है। एक अन्य मुनि श्री समीर मुनि जी ने भी वीरवाल संघ बनाकर इस दिशा मे काफी काम किया है। राष्ट्रीय विचारो के धनी मुनि श्री संतबाल जी तथा मुनि श्री नेमिचन्द्रजी ने भी व्यसन-निवारण की दिशा मे बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया है। गुजरात और पंजाब के जैन संतो ने विशेष रूप से व्यसन-निवारण संबधी काम को हाथ में लेकर उसे क्रियान्वित किया है।

आज भी सभी आचार्य व अन्य साधु-साध्वी व श्रावकवृन्द व्यसन-मुक्ति व नैतिक उत्थान के काम मे दिन-रात लगे हुए हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि पाश्चात्य हवा का असर हमारे देश में जोरो से बढ रहा है। फलस्वरूप नई पीढ़ी के लोग व्यसनों की तरफ झुक रहे हैं यहां तक कि जैन जाति के युवक भी इस हवा मे प्रगतिशीलता के नाम पर, बहने लगे हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है, परन्तु इसका हल्ला ज्यादा है; फिर भी जैन संतों की कृपा से उनके धर्म के संस्कार पारिवारिक तौर-तरीको पर कायम है। जो लोग व्यसनो मे फसे भी हैं तो वे प्रायः छिपे रूप में और व्यसनों में लिप्त होने के काम को बुरा मानते हैं। जो भी हो, वर्तमान में भी जैन संतों का और उनकी प्रेरणा से जैनो का योगदान व्यसन-मुक्ति मे निरंतर चालू है।

[५]
धर्मस्थानकों की भूमिका

श्री सम्पतराज डोसी

सर्वज्ञो ने प्राणीमात्र की अहिंसा, दया, इन्द्रियो एव मन का निग्रह रूप सयम, और स्वाध्याय, ध्यान, अनशनादिरूप तप को ही धर्म और सुख का प्रमुख उपाय बताया। धर्म की शुद्धि और परीक्षा के लिये किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

> ''निज आतम कूं दमन कर, पर आतम कूं चीन।
> परमातम को भजन कर, सोई मत परवीन ॥''

ऐसे परमोत्कृष्ट मगल रूप धर्म की साधना जिस स्थान विशेष पर की जाय, उसे धर्म स्थानक कहते हैं।

वैसे स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन तथा सतकर्म आदि सभी क्रियाये विशेषकर आत्मा और मन से सम्बन्ध रखती हैं इसलिये कोई भी स्थान या समय इनके लिये साधक या बाधक नही हो सकता है फिर भी अधिकांश साधको के लिये स्थान, वातावरण और सगति का प्रभाव होना सभव है। सांसारिक या घर के वातावरण मे लडाई झगड़े, होहल्ला, शुभाशुभ शब्द, रूप आदि का विक्षेप रहता है पर धर्म स्थान मे स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन, मनन, व्याख्यान, स्तवन आदि का वातावरण रहता है, जो साधक के लिये मन, वचन और काया के योगों को अशुभ से हटाकर शुभ की ओर लगाने मे निमित्त बनता है। जिन-जिन धर्म स्थानो मे छः काय के आरम्भ सभारम्भ, या नाच-गायन आदि राग-रंग अथवा निंदा-विकथा आदि पाप प्रवृतियो का सेवन होता हो वह स्थान भी उस समय धर्म-स्थानक कहलाने योग्य नही रहता।

पुराने समय में भी शंख जैसे प्रमुख श्रावक थे जो अपनी साधना के लिये घर से अलग पौषधशाला रखा करते थे। धर्म साधना मे प्रमुख निमित्त सत समागम, व्याख्यान, चौपाई, प्रश्नोत्तर आदि भी धर्म स्थानक मे ही ज्यादा मिल सकता है। इसके अलावा भी घर की अपेक्षा धर्म स्थानक में धर्म साधना करने से निम्न लाभ हैं :—

(१) धर्म स्थान मे सामायिक आदि करने पर अपने ज्ञान का लाभ दूसरों को व दूसरो के ज्ञान का लाभ अपन ले सकते हैं।

(२) अच्छे क्रियावान श्रावकों की सत् संगति से कुव्यसन आदि अनेको दुर्गुणो से छुटकारा मिल जाता है।

(३) प्रमाद वश सामायिक स्वाध्याय आदि में अनियमितता आ जाय तो धर्म स्थानक मे हमेशा साथ धर्म ध्यान करने वालो से पुनः प्रेरणा मिलती रहती है।

(४) घर पर सामायिक, स्वाध्याय आदि करते नींद आदि भी आ सकती है पर धर्म स्थानक में कोई चेता भी सकता है।

(५) बहुत लोगो के साथ मे सामूहिक रूप से धर्माराधना करने से समाज मे धर्म का वातावरण बनता है।

(६) धर्म स्थानको मे यदि धार्मिक उपकरण हो, पुस्तकालय हो, तो उनकी सार-संभाल की जा सकती है नही तो उनमे कचरा जम कर दीमक आदि जानवरो से सामग्री नष्ट हो सकती है।

एक ही धर्म स्थानक मे अनेको धार्मिक एव सामाजिक कार्य जैसे प्रार्थना, सामायिक, स्वाध्याय, दया, पौषध, व्याख्यान, धार्मिक पाठशाला, पुस्तकालय, वाचनालय, आदि-आदि हो सकने के कारण हर छोटे या वडे क्षेत्र मे इनका होना अत्यन्त आवश्यक है। उपयुक्त स्थान के अभाव मे हर क्षेत्र मे उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियो का सुचारु रूप से चलना संभव नही हो सकता। कई गावो मे तो धर्म स्थानको के अभाव मे ये प्रवृत्तिया रुकी रहती है पर कई गावो व बड़े नगरो मे अनेक स्थानक एक ही नगर मे होने पर भी उपर्युक्त प्रवृत्तियो के अभाव मे वे सूने पडे रहते हैं। उनमे धूल ही जमा होती है सिर्फ वर्षाकाल मे जब साधु-सतियो का पदार्पण होता है तभी वहां का कचरा निकलता है और कुछ चहल-पहल भी होती है। जिन-जिन गांवो व नगरो मे स्थानक है उन-उन के श्रावक सघो के अधिकारियो को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि वहां नियमित प्रार्थना, सामायिक, स्वाध्याय, वालको के धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था तथा पर्यूषण पर्व मे स्वाध्यायियो को बुलाना तथा ग्रीष्मावकाश मे स्थानीय शिविरो का आयोजन आदि करने की व्यवस्था हो। ताकि समाज मे धर्म का वातावरण वना रहे तथा स्थानको का भी उपयोग हो सके। हर छोटे से छोटे गाव मे तथा वडे-वडे शहरों मे हर मोहल्ले-मोहल्ले मे एक-एक धर्म स्थानक हो और वहां नजदीक मे रहने वाले हो सके तो हमेशा, नही तो कम से कम रविवार, चतुर्दशी, पक्खी आदि के रोज वहा जाकर सामूहिक प्रार्थना, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करे तो समाज मे वालको, नवयुवको आदि मे भी धार्मिक संस्कार पड़ सकते है।

धर्म स्थानक समाज और देश की वे व्यायामशालाएं है जहा जाकर वच्चे से लेकर वृद्ध तक अहिंसा, दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा, सेवा, सन्तोष, सरलता, विनय, परोपकार आदि सभी सद्गुणों रूप धर्म का ज्ञान व अभ्यास रूप साधना करके व्यक्ति से लेकर विश्व तक मे सच्चे सुख और वास्तविक शान्ति का वातावरण वनाया जा सकता है। स्व और पर सब के कल्याण, तथा इस जीवन मे और भवान्तर मे भी सुख-शान्ति की प्राप्ति के उपाय उपर्युक्त गुण ही है। इन स्थानको मे निराकार परमात्मा के साकार उपासको की सत्संगति, व्याख्यान, आदि का लाभ उपलब्ध होता है। परन्तु ये सब लाभ तभी प्राप्त हो सकते है जब कि स्थानक मे जाकर व्यक्ति ज्ञान या क्रिया की आराधना करे। स्थानक मे चले जाने मात्र से या खाली रूढ क्रियाओ तक करके सन्तोष धारण कर लेने से जीवन वदल नही सकता और धर्म जीवन मे उतरे विना धर्म का सच्चा सुख और वास्तविक शान्ति मिल नही सकती। वडे-वडे आचार्यों, सन्तों, महासतियां आदि के उपदेशो का उनकी सगति का लाभ इन्ही धर्म स्थानको मे प्राप्त हो सकता है। स्कूलो और कॉलेजो मे मात्र भौतिक उत्थान की शिक्षा मिल सकती है जिससे मात्र अपना या परिवार का पेट भरा जा सकता है परन्तु स्व के साथ प्राणी मात्र की कल्याण की भावना और आचरण की शिक्षा इन्ही धर्म स्थानको मे ही मिल सकती है। इनसे वढ़कर विश्व भर मे कोई पवित्र स्थान नही हो सकता।

कुछ प्रमुख धर्म स्थानकों का परिचय :—वैसे जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, अजमेर आदि नगरो मे एक-एक मे अनेक बडे तथा छोटे स्थानक है तथा गांव-गाव मे गिनती की जाये तो राजस्थान मे ही सैकड़ो स्थानक है। पर सब का परिचय देने से तो स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन जाय। इस कारण मात्र कुछ प्रमुख धर्म स्थानको के नाम व सक्षिप्त परिचय ही यहां दिया जा रहा है।

जोधपुर :—यहां के प्रमुख धर्मस्थानक इस प्रकार है :—

(१) **सवाईसिहजी की पोल—**यह स्थानक काफी बड़ा व पुराना है तथा इसमे "जैन रत्न पुस्तकालय" भी है। इसके कुछ हिस्से मे व्यावहारिक स्कूल भी चलती है। २-३ हजार व्यक्ति व्याख्यान का लाभ ले सकते है। यह धार्मिक पाठशाला के उद्देश्य से खरीदा गया था।

(२) **श्री साधुमार्गी जैन ज्ञान भवन सिटी पुलिस—**यह कपडा बाजार मे सिटी पुलिस के सामने है, तथा तीन मजिला बना है। श्रावक वर्ग के धर्म, ध्यान, दया, पौषध हेतु खरीदा गया। परठने की सुविधा छतो पर है।

(३) **श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला भवन घोड़ों का चौक—**यह भी तिमजिला बना हुआ है। पाठशाला हेतु खरीदा व बनाया गया। धार्मिक पाठशाला भी चलती है। पुस्तकालय व वाचनालय के साथ स्वाध्याय सघ व वीर निर्वाण समिति का कार्यालय भी यहाँ है।

(४) **जैन ज्ञान भवन रायपुर हाउस—**यह अभी नया खरीदा गया तथा कपड़ा बाजार के बीच मे आम रास्ते पर है। निर्माण कार्य चालू है। बडे व्याख्यान हाल के साथ, बडा लाइब्रेरी हाल साथ मे धार्मिक बोर्डिग भी बनाने की योजना है। रात्रि मे धार्मिक पाठशाला चलती है।

(५) **कपड़ा बाजार का स्थानक—**यह भी कपडे बाजार मे सड़क पर ही है। यहा भी २५-३० व्यक्ति रोज सामायिक करते है। रात्रि मे धार्मिक पाठशाला भी चलती है।

(६) **महावीर जैन भवन ऊपल्लावासा—**यह भी दुमंजिला स्थानक है तथा धार्मिक पाठशाला चलती है।

(७) **कोठारी भवन, सरदारपुरा—**यहा भी पाठशाला चलती है तथा दुमजिला अच्छा स्थानक है।

(८) **जैन भवन, नेहरू पार्क, सरदारपुरा—**यह भी दुमंजिला स्थानक है तथा काफी बडा है।

जयपुर—यहा चौडा रास्ता स्थित लालभवन प्रसिद्ध स्थानक है। यह तीन मजिला बड़ा स्थानक है। ३-४ हजार व्यक्ति व्याख्यान का लाभ ले सकते है। आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार जैसा विशाल हस्तलिखित सग्रहालय तथा पुस्तकालय इसी मे है। यहां धार्मिक पाठशाला चलती है। ३०-३५ व्यक्ति रोज सामायिक स्वाध्याय मे भाग लेते है।

यहा बारह गणगौर के रास्ते पर एक अन्य स्थानक भी है जहा साध्वियां जी म० सा० ठहरती है, तथा महिलाएं सामायिक, स्वाध्याय करती है। इसी से जुडा हुआ सुबोध बालिका विद्यालय है।

अजमेर—यहा लाखन कोटड़ी का तीन मंजिल का काफी बड़ा स्थानक है। २-३ हजार व्यक्ति व्याख्यान श्रवण का लाभ ले सकते है।

बीकानेर—यहां रागड़ी मोहल्ले मे स्थित सेठिया जी की कोटड़ी नाम से प्रसिद्ध दुमजिला स्थानक है, और काफी बड़ा है।

अन्य स्थानको मे सवाईमाधोपुर, आलनपुर, कोटा, भरतपुर, उदयपुर, ब्यावर, कानोड जैसे अनेक नगरो के काफी अच्छे स्थानक है। मारवाड़ मे बाड़मेर, सांचोर, जालोर, बिलाडा, भोपालगढ, बालेसर, भावी, जैतारण, हरसोलाव, मेडता, नागौर, खीचन, फलोदी, लोहावट, कुचेरा आदि तथा मेवाड़ मे देलवाड़ा, भादसोड़ा, डूंगला, घासा, डबोक, आकोला, फतेहनगर, बडीसादड़ी, सनवाड़, खैरोदा, वल्लभनगर, नाथद्वारा, कांकरोली, देवगढ आदि सैकड़ो स्थानक हैं।
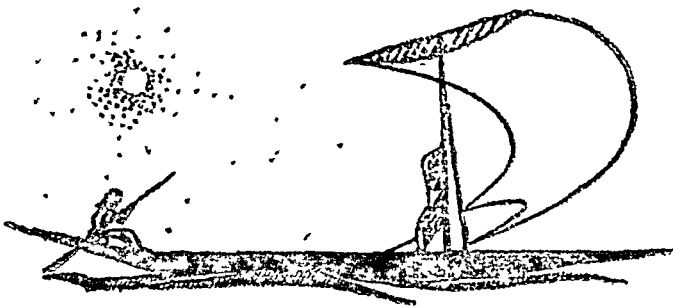
५१ | राजस्थान में लोकोपकारी जैन संस्थाएँ[1]

●

श्री महावीर कोटिया
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

जैन धर्म लोक धर्म है। इसके सिद्धान्त लोक-कल्याण की भावना के प्रतिबिम्ब है। भगवान् महावीर ने लोक सेवा को महान् धर्म बतलाया था। उन्होने एक ऐसे समाज का स्वप्न देखा था, जहा न केवल मनुष्य ही अपितु पृथ्वी का छोटे से छोटा जीव-जन्तु भी निर्भय रहकर अपने जीवन का आनन्द ले सके। इसलिए उन्होने अहिंसा को परम धर्म कहा। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक समर्थ, शक्तिवान एवं सम्पन्न का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह समाज के असहाय, पीडित, अभावग्रस्त लोगो की सहायतार्थ अपनी शक्ति व धन का सदुपयोग करे और परमार्थ को जीवन मे आवश्यक समझे। इस दृष्टि ने जैन धर्मानुयायियो को सदा ही लोक कल्याणकारी कार्य करने की प्रेरणा दी है। जैन साधु तथा साध्वियो ने भी धर्म के इस स्वरूप को श्रावको के समक्ष प्रस्तुत करते रहने का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यही कारण है कि अनेक लोकोपकारी जैन संस्थाओं के निर्माण के मूल मे उन विद्वान साधुओ की सद्प्रेरणा प्रमुख रही है। ऐसे समर्थ साधुओ की विद्वता, निस्पृहता और लोक सेवा भावना का श्रावक समाज मे सदैव आदर व सम्मान रहा है। लोकोपकार की इस भूमि पर ही धर्म का सच्चा रूप प्रकट हो पाया है, धर्म सामाजिक बन सका है। प्रस्तुत पृष्ठों मे जैन धर्म के इस सर्व प्राणी हिताय सामाजिक रूप के दिग्दर्शन का छोटा सा प्रयास किया गया है। हमने प्रयत्न किया कि हमे अधिकाधिक संस्थाओ का परिचय प्राप्त हो सके, जो कुछ प्राप्त हो सका वह पाठको के समक्ष है।

(क) शैक्षणिक संस्थाएँ

मन की पवित्रता व्यक्ति को स्वतः ही धर्मोन्मुख बनाती है। जैन धर्म इस पवित्रता की

---

[1] हमारे अनुरोध पर जिन संस्थाओं एवं व्यक्तियों ने अपने क्षेत्र की संस्थाओ का परिचय भेजा है, उसके आधार पर यह सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्य स्रोतो से भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। जिनका परिचय प्राप्त नही हो सका है, उन संस्थाओ का मात्र नामोल्लेख ही किया जा सका है। फिर भी यह संभव है कि प्रदेश की कई संस्थाओं की जानकारी इस परिचय मे आने से रह गई है। इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

प्रेरणा के लिए सतत् चेष्टारत रहा है। जैन धर्म मे स्वीकृत पचाणुव्रत इसी आधार-भित्ति पर प्रतिष्ठित है। इसी कारण से जैन धर्म मे अध्ययन-मनन, स्वाध्याय-चिन्तन आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ज्ञान का समुचित प्रकाश पाकर ही मानव अपने स्वरूप को पहचान सकता है। अपने को पहचान कर और पाकर ही मानवतात्मा मुक्ति की राह पकड़ सकती है। जैन धर्म का प्राणीमात्र के लिए निर्दिष्ट पथ है—स्वप्रयत्नो से आत्मा को क्रमश ऊर्ध्वगामी बनाते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त करना, मुक्त होकर, स्वय शुद्ध-प्रबुद्ध परमात्मा बन जाना। और कहना नही होगा, इस लक्ष्य प्राप्ति का प्रथम सोपान—आधारभूत सोपान 'शिक्षा' है, ज्ञान है। इसलिए जैन धर्मावलम्बियो मे—साधु वर्ग तथा श्रावक वर्ग—दोनो मे ही स्वयं ज्ञान पाने तथा ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने की परम्परा रही है। विशेषत: जैन साधु वर्ग की दिनचर्या का अधिकतम अ श स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, लेखन तथा श्रद्धालुओ को ज्ञान बोध देने आदि मे ही व्यतीत होता है। इस पृष्ठभूमि पर जैन धर्मावलम्बियो द्वारा राष्ट्र के शैक्षणिक व सास्कृतिक जीवन में, उसके महत्त्वपूर्ण योगदान का चित्र स्वत: ही उभरने लगता है। जैनियो द्वारा राष्ट्र के विविध भागो मे अनेक शिक्षा-सस्थाओ का निर्माण व सचालन, पुस्तकालयो-वाचनालयो की स्थापना व सचालन अध्ययनरत छात्रो की सुविधा के लिए छात्रावासों का सचालन साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन, स्वाध्याय, मनन व चिन्तन के लिए अन्य धार्मिक व सार्वजनिक संस्थानो की स्थापना, शास्त्र व सत्साहित्य के पठन व श्रवण की परम्परा, ज्ञान गोष्ठियो का प्राय आयोजन, जिनका बिना भेदभाव के सभी लाभ उठा सकते है, शिक्षण-शिविरों का आयोजन आदि अनेक प्रवृतिया हैं, जिनके माध्यम से जैन समाज देश मे व्याप्त अज्ञानान्धकार को नष्ट कर, ज्ञान की समुज्जवल प्रभा विकीर्ण करता रहा है। प्रस्तुत विवरण मे शैक्षणिक विकास के कार्यो मे रत राजस्थान प्रदेश की प्रमुख जैन संस्थाओ का परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान देश के अत्यधिक पिछड़े प्रदेशो में से था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इतने बडे प्रदेश मे कोई विश्वविद्यालय तक नही था। राजस्थान विश्वविद्यालय की स्थापना १९४७ मे हुई। इसी प्रकार स्कूल कॉलेजो का भी अभाव था। राज्यो की राजधानियो के अतिरिक्त अन्य नगरो मे कालेज प्राय. नही थे। जिन राज्यो के विलय से राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ है, उन सभी मे स्वतन्त्रता से पूर्व निरकुश राजतन्त्र था। ये राजागण अधिकाशत: अपने ही स्वार्थ की बात अधिक सोचते थे, जन-जागरण से तो उन्हे प्रत्यक्ष भय ही था। अत. शिक्षा के प्रचार-प्रसार मे उनकी अधिक रुचि नही रही। फलत: ग्राम अञ्चलो मे तो माध्यमिक स्तर तक के विद्यालय भी प्राय तहसील केन्द्र पर भले ही थे, ग्रामो मे तो प्राथमिक पाठशालाएँ भी नही के बराबर थी। ऐसे वातावरण मे जैन साधुओ ने तथा उनकी प्रेरणा से धनी श्रावको ने जनजागरण का यह महाशंख फूँका। इन लोगो के परिश्रम, सद् विचार तथा सद् प्रयत्नो ने अनेक शैक्षणिक सस्थाओ को जन्म दिया। ये सस्थाएँ आज फलफूलकर राजस्थान प्रदेश मे शिक्षा के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। आगे दी जाने वाली शिक्षा-सस्थाओ की सूची से यह तथ्य स्पष्ट है।

जैन शिक्षा-संस्थाओं को सूची

महाविद्यालय

१. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सुबोध कॉलेज, जयपुर

२. बी० जे० एस० आर० जैन कॉलेज, बीकानेर
३. सोना देवी सेठिया विद्या मन्दिर (कन्या), सुजानगढ़
४. एस० पी० यू० कॉलेज, फालना
५. श्री जैन स्नातकोत्तर कॉलेज, बीकानेर
६. श्री जैन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, अलवर
७. श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर
८. सी० आर० जे० बी० एन० वाणिज्य महाविद्यालय, राणावास
९. श्री प्राज्ञ जैन महाविद्यालय, विजयनगर
१०, श्री वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर
११. श्री जवाहर विद्यापीठ स्वायत्त ग्रामीण महाविद्यालय, कानोड़।

उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

१. श्री शान्ति जैन सैकण्डरी स्कूल, ब्यावर
२. श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीर जी (सवाई माधोपुर)
३. श्री के० डी० जैन हा० सै० स्कूल, मदनगंज, किशनगढ
४. श्री जैन सैकण्डरी, स्कूल, अलवर
५. श्री महावीर दि० जैन हा० सै० स्कूल, जयपुर
६. श्री एस० एस० जैन सुबोध हा० सै० स्कूल, जयपुर
७. श्री श्वेताम्बर जैन सैकण्डरी स्कूल, जयपुर
८. श्री दि० जैन हा० सै० स्कूल, सीकर
९. श्री जैन हा० सै०, स्कूल, बीकानेर
१०. श्री जैन श्वे० तेरापथी सैकण्डरी स्कूल. चूरू
११ श्री ओसवाल सैकण्डरी स्कूल, सुजानगढ
१२. श्री वर्द्धमान जैन सैकण्डरी, स्कूल, ओसिया
१३. श्री जैन रत्न विद्यालय सैकण्डरी स्कूल, भोपालगढ
१४. श्री महावीर हा० सै० स्कूल, लाडनूं
१५. एस० पी० यू० सैकण्डरी स्कूल, फालना
१६. श्री सुमति शिक्षा सदन (हा० सै० स्कूल), राणावास
१७. श्री मरुधर केसरी विद्यालय (सैकण्डरी स्कूल) राणावास
१८. श्री पार्श्वनाथ सैकण्डरी स्कूल, वरकाणा
१९. श्री महावीर हा० सै० स्कूल, भीलवाडा
२०. श्री डी० सी० सेठिया उच्चतर विद्यालय, बीदासर
२१. श्री गाधी उच्च माध्यमिक विद्यालय, गुलाबपुरा
२२. श्री जवाहर विद्यापीठ हा० सै० स्कूल, कानोड़ (उदयपुर)
२३. श्री गोदावत जैन हा० सै० स्कूल. छोटी सादड़ी
२४. श्री वीर बालिका विद्यालय सैकण्डरी स्कूल, जयपुर

२५. श्री पद्मावती कन्या विद्यालय (सैं० स्कूल), जयपुर
२६. श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ, विद्यावाड़ी, रानी
२७. श्री दि० जैन सैकण्डरी स्कूल (कन्याएँ), उदयपुर
२८. श्री सरदार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जोधपुर

अन्य संस्थाएँ

१. श्री तेरापंथी मिडिल स्कूल, जयपुर
२. श्री महावीर विद्यालय मिडिल स्कूल, सरदारशहर
३. श्री वर्धमान जैन मिडिल स्कूल, जोधपुर
४. श्री महावीर विद्यालय मिडिल स्कूल, बूंदी
५. श्री वर्धमान जैन मिडिल स्कूल, मोतीभवन, भीलवाडा
६. श्री विमलसागर जैन विद्यालय, भीलवाडा
७. श्री पी० सी० एम० सी० जैन मिडिल स्कूल, उदयपुर
८. श्री पार्श्वनाथ जैन दि० मिडिल स्कूल, उदयपुर
९. श्री महावीर दि० जैन बालिका विद्यालय (मि० स्कूल), जयपुर
१०. श्री एल० के० एस० जैन कन्या पाठशाला, बीकानेर
११. श्री जैन केसर बालिका विद्यालय, चूरू
१२ श्री महावीर कन्या पाठशाला जोधपुर
१३. श्री भ० यशकीर्ति दि० जैन माध्यमिक विद्यालय, प्रतापगढ
१४. श्री रमण बहिन दि० जैन कन्या शाला, प्रतापगढ
१५. श्री फूलचन्द जैन कन्या पाठशाला, सवाई सिंह जी की पोल, जोधपुर
१६ श्री भट्टारक यशकीर्ति दि० जैन गुरुकुल ऋषभदेव (उदयपुर)
१७. श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल, जोबनेर
१८. श्री जैन दिवाकर प्राथमिक पाठशाला, चित्तौडगढ
१९ श्री गुलाब कँवर ओसवाल उच्च प्राथमिक शाला, अजमेर
२०. श्री दिवाकर बाल निकेतन, कोटा।
२१ श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ, टौंक
२२ श्री महावीर जैन विद्यालय, भरतपुर
२३ श्री जैन सुबोध बालिका विद्यालय, जयपुर
२४. श्री अकलंक दि० जैन पाठशाला, कोटा
२५. श्री दिगम्बर जैन विद्यालय, सुजानगढ
२६ श्री फूलचन्द जैन कन्या पाठशाला, जोधपुर
२७. श्री सुबोध जैन पाठशाला, जोधपुर
२८. श्री सागर जैन विद्यालय, किशनगढ
२९. श्री शांति जैन पाठशाला, ब्यावर
३० श्री दि० जैन पन्नालाल एलक प्राथमिक विद्यालय, ब्यावर

३१. श्री खूबचन्द बाँठिया, विद्या मन्दिर, बीदासर
३२ श्री मगनज्ञान मन्दिर, गोगुन्दा
३३. श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, घोडो का चौक, जोधपुर
३४. श्री गाधी बालिका उच्चतर विद्यालय, बीदासर
३५. श्री जीवन कन्या पाठशाला, बीकानेर
३६ श्री सेठिया जैन कन्या पाठशाला, बीकानेर

प्रमुख संस्थाओं का परिचय

सस्थाओं का विस्तृत परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था। जिन संस्थाओ का परिचय हमे प्राप्त हो सका उनका परिचय आगे के पृष्ठो मे दिया जा रहा है। परिचय का क्रम है—महाविद्यालय, उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तथा अन्य सस्थाएँ।

(१) महाविद्यालय

१ **श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सुबोध महाविद्यालय, जयपुर**—इस सस्था की स्थापना श्री माधव मुनि जी की प्रेरणा से सन् १९२५ मे एक प्राथमिक पाठशाला के रूप मे हुई। सन् १९३४ मे माध्यमिक विद्यालय, १९४४ मे हाई स्कूल, १९५४ मे इण्टर कॉलेज तथा सन् १९६१ मे स्नातक स्तर तक के महाविद्यालय मे क्रमोन्नत होकर यह नन्हा पौधा आज जयपुर नगर की प्रमुख शिक्षा सस्था के रूप मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सस्था का जौहरी बाजार मे विशाल भवन है तथा अब कॉलेज विभाग का नया भव्य भवन रामबाग सर्किल के पास निर्मित हो चुका है। सस्था का संचालन एक समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सिरह मल नवलखा है। मन्त्री के रूप मे स्व० श्री सिरहमल जी बम्ब की सेवाएँ कई वर्षो तक मिलती रही। वर्तमान मे प्राचार्य श्री नथमल गोलेछा है। प्राचार्य के रूप में श्री बालचन्द वैद्य की सेवाएँ इस सस्था के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण रही है।

२. **श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय एवं श्री पार्श्वनाथ उम्मेद माध्यमिक विद्यालय, फालना**—उक्त संस्थाएँ श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण सघ, फालना के द्वारा संचालित है। इस सस्था की स्थापना श्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की प्रेरणा से हुई। सस्था की स्थापना उम्मेदपुर मे हुई थी परन्तु १९४२ की बाढ़ में क्षतिग्रस्त हो जाने के बाद यह संस्था फालना मे स्थानान्तरित हो गई। संस्था १९४७ मे मिडिल स्कूल, १९४८ मे हाई स्कूल, १९५१ में इण्टर कॉलेज तथा १९५८ मे डिग्री कॉलेज के रूप मे विकसित होकर इस प्रदेश के विद्यार्थी वर्ग को लाभान्वित करती रही है। वर्तमान मे संस्था महाविद्यालय एवं माध्यमिक विद्यालय की दो पृथक इकाइयो का संचालन करती है तथा साथ ही दोनो सस्थाओ के निजी छात्रावास भी है। संघ की वर्तमान कार्यकारिणी मे सघवी कुन्दनमल जी पारेख अध्यक्ष तथा संघवी मोहनलाल जी बनेचन्द जी मन्त्री है।

३. **श्री रामपुरिया जैन महाविद्यालय, बीकानेर**—शिक्षा प्रेमी, व्यवसायी स्व० श्री भंवरलाल जी रामपुरिया द्वारा २९ जुलाई, १९३४ को अपने आदरणीय पितामह श्री सेठ बहादुरमल जी पिता सेठ जसकरण जी एवं पितृव्य सेठ श्री सिद्धकरण जी की स्मृति मे बी० जे० एस० रामपुरिया

जैन स्कूल के रूप मे एक माध्यमिक शाला की स्थापना की गई । उन्होने प्रारम्भ में संस्था के लिए १½ लाख रुपये से एक ट्रस्ट की स्थापना की । इसके अतिरिक्त इसकी उन्नति मे वे समय-समय पर मुक्त-हस्त से दान देते रहे । इसी कारण यह विद्यालय एक वर्ष के अनन्तर हाई स्कूल मे क्रमोन्नत हुआ । सन् १९४५ मे यह संस्था इण्टर कॉलेज बनी । इस अवसर पर भी सेठ साहब ने एक लाख रुपये का अतिरिक्त दान देकर कॉलेज ट्रस्ट को २½ लाख रुपये का बना दिया । सन् १९५६ मे इस सस्था ने डिग्री कॉलेज का स्वरूप प्राप्त किया । प्रारभ मे इसमें वाणिज्य संकाय की कक्षाएँ ह प्रारभ की गई थी । सन् १९६१ मे कला संकाय की तथा मन् १९७३ में विधि संकाय कक्षाएँ भ इसमे चालू हो गई है । इस प्रकार आज यह महाविद्यालय वाणिज्य, कला एवं विधि संकाय के लगभ ८०० विद्यार्थियो को शिक्षा प्रदान कर रहा है । बीकानेर नगर के शिक्षण-क्षेत्र मे इस महाविद्याल का महत्त्वपूर्ण स्थान है । शिक्षा-स्तर एव परीक्षा परिणामों की दृष्टि से भी यह प्रारंभ से ही उल्ले खनीय संस्था रही है । संस्था के विकास में स्व० श्री शिवकाली सरकार का प्राचार्य के रूप म महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । वर्तमान मे इसके मन्त्री श्री युगराज सेठिया है ।

४. श्री आदिनाथ जैन शिक्षण संस्थान, अलवर—श्री आदिनाथ जैन शिक्षण सस्थान अलवर द्वारा श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं श्री जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय क संचालन हो रहा है ।

संस्था ने सन् १९०० मे समाज के छोटे बालको को धार्मिक शिक्षा देने की दृष्टि से एक शाला की स्थापना की थी । यही शाला सन् १९१६ मे प्राथमिक विद्यालय के रूप में क्रमोन्नत हुई और इसमे सामान्य शिक्षण कार्य प्रारभ किया गया । तत्कालीन अलवर नरेश श्री जयसिंह ने इसे राजकीय सहायता प्रदान की । सन् १९४४ मे यह शाला मिडिल स्कूल तथा सन् १९६५ मे जूनियर हायर सैकण्डरी स्कूल के रूप में क्रमोन्नत हुई । शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना सन् १९६८ मे हुई । इस प्रकार संस्थान के अन्तर्गत इस समय तीन भिन्न संस्थाएँ कार्यरत है—(१) श्री जैन उच्च प्राथमिक शाला, (२) श्री जैन माध्यमिक शाला एवं (३) श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय । प्रथम दो संस्थाओ को राजकीय अनुदान प्राप्त है । सस्थान मे लगभग एक हजार छात्र-छात्राएँ अध्ययन रत हैं ।

शालाओ मे जैन धर्म की शिक्षा का भी अलग से प्रबन्ध है । विद्यार्थी अखिल भारतीय जैन परीक्षा मण्डल द्वारा आयोजित परीक्षाओ मे बैठते है । संस्थान के अध्यक्ष श्री बाबूराम जैन तथा व्यवस्थापक श्री ग्यारसीराम जैन है ।

५ श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर—सस्था की स्थापना सन् १८८५ मे श्री धन्नालाल जी फौजदार एवं श्री भोलीलाल जी सेठी के विशेष प्रयत्न से हुई । प्रसिद्ध जैन विद्वान पं० चैनसुखदास जी सन् १९३१ से मृत्युपर्यन्त इस संस्था से सम्बन्धित रहे तथा इसकी उन्नति मे विशेष योगदान किया । यह सस्था प्रवेशिका, उपाध्याय, शास्त्री तथा आचार्य तक की सस्कृत-परीक्षाओ के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है । आचार्य में जैन-दर्शन तथा संस्कृत साहित्य प्रमुख विषय हैं । संस्था शिशुकला से लेकर अष्टम श्रेणी तक सामान्य शिक्षा भी देती है । संस्था का निजी छात्रावास भी है । संस्था की व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति करती है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री प्रकाशचन्द कासलीवाल एवं मन्त्री श्री कपूरचंद पाटनी हैं ।

६. **श्री जवाहर विद्यापीठ, स्वायत्त ग्राम्य महाविद्यालय, कानोड़**—इस संस्था की स्थापना मुनि श्री चाँदमलजी महाराज की प्रेरणा से पं० श्री उदय जैन द्वारा २४ अक्टूबर, सन् १९४० ई० को 'प्रतापोदय' स्कूल के नाम से हुई। यह प्रतापोदय स्कूल नाम का नन्हा पौधा आज जवाहर विद्यापीठ के वटवृक्ष के रूप मे फल-फूल गया है। सन् १९५३ मे यह हायर सैकण्डरी, १९५८ में बहुउद्देशीय हायर सैकण्डरी व सन् १९७४ मे डिग्री कॉलेज के रूप मे क्रमोन्नत हुआ है। स्कूल मे कला, वाणिज्य व विज्ञान तीनों सकाय है। कॉलेज मे कला व वाणिज्य की कक्षाएँ चलती है। संस्था का निजी छात्रावास है जिसमे २०० से अधिक छात्र है। इसका प्रबन्ध जैन शिक्षण सघ, कानोड द्वारा होता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरडिया तथा पं० श्री उदय जैन सचालक है। सघ के अधीन विभिन्न शैक्षणिक संस्थाएँ कार्यरत है, जिनमे डिग्री कॉलेज, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जवाहर जैन गुरुकुल, जवाहर विद्यापीठ प्राथमिक शाला, श्री जैन कन्या विद्यालय, श्री कस्तूरबाई बालचन्द बाल मन्दिर, महिला उद्योगशाला, रात्रि प्रौढ़शाला आदि है। कुल मिलाकर लगभग १५०० छात्र लाभ उठाते है। लगभग सात बीघे से अधिक जमीन पर जवाहर विद्यापीठ के लाखो रुपयो की लागत के भवन बने हुए है।

(२) उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

१. **श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़**—इस आवासीय शिक्षण संस्था की स्थापना १५ जनवरी, १९२९ को हुई। आज यह संस्था राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा सैकण्डरी स्कूल स्तर तक मान्यता प्राप्त है। संस्था मे लगभग ४०० विद्यार्थीगण अध्ययनरत है। संस्था के छात्रावास मे लगभग ७५ छात्रो के रहने की व्यवस्था है। संस्था की स्थापना मुनि श्री मोहन ऋषिजी महाराज की प्रेरणा से हुई थी। सस्था का भवन निर्माण सेठ श्री भीकमचन्दजी विजयराजजी कॉकरिया तथा सेठ राजमलजी ललवाणी के अथक प्रयत्नो से हुआ। इस सस्था को जैन जगत की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' का प्रकाशन प्रारंभ करने का भी श्रेय है।

२. **श्री महावीर दिगम्बर जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जयपुर**—इस संस्था का प्रारम्भ श्री दिगम्बर जैन सस्कृत कॉलेज की शाखा के रूप मे हुआ। यह संस्था सन् १९४१ मे मिडिल स्कूल, सन् १९४५ मे हाईस्कूल तथा सन् १९६५ मे हायर सैकण्डरी स्कूल के रूप मे क्रमोन्नत हुई। आज यह सस्था जयपुर नगर की अत्यधिक लोकप्रिय व महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। संस्था का महावीर मार्ग, सी-स्कीम मे विशाल भव्य भवन है। सस्था का संचालन श्री महावीर दिगम्बर जैन शिक्षा परिषद् द्वारा हो रहा है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री गोपीचन्द पाटनी तथा मन्त्री श्री तेजकरण डण्डिया है। विद्यालय की एक शाखा घीवालो के रास्ते मे भी है।

३. **श्री महावीर उच्च माध्यमिक विद्यालय, लाडनू**—सन् १८९५ मे एक प्राथमिक विद्यालय के रूप मे स्थापित यह संस्था सन् १९५६ से उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत होकर सेवारत है। वर्तमान मे विद्यालय मे कला, विज्ञान एव वाणिज्य विषयो मे ४२७ विद्यार्थी अध्ययन कर रहे है।

४. **श्री श्वेताम्बर जैन सैकण्डरी स्कूल, जयपुर**—सन् १९४५ मे स्थापित यह संस्था सैकण्डरी स्कूल स्तर तक के अध्ययन के लिए एक प्रमुख संस्था है। घीवालो के रास्ते मे संस्था का विशाल भवन

है। संस्था का संचालन एक प्रबन्ध समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री मेहतावचन्द गोलेछा तथा मन्त्री श्री छुट्टनलाल श्रीमाल हैं।

५. श्री के. डी. जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय, किशनगढ़—इस विद्यालय की स्थापना सेठ श्री भागचन्द सोनी, श्री हीरालाल पाटनी, श्री मगनलाल पाटनी आदि के प्रयास से सन् १९५१ मे हुई। सन् १९५९ से यह उच्च माध्यमिक विद्यालय मे क्रमोन्नत हुआ है। यह मदनगंज, किशनगढ़ की महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। इस समय विद्यालय मे २२८९ छात्र अध्ययनरत हैं।

६. गांधी उच्च विद्यालय, गुलाबपुरा—इस विद्यालय की स्थापना मुनि श्री पन्नालालजी म० की सद्प्रेरणा से जैन विद्यालय के रूप मे सन् १९३८ मे हुई। ४ जुलाई, १९४९ को गांधी विद्यालय के रूप मे इसे वर्तमान सार्वजनिक शिक्षण संस्था का रूप प्राप्त हुआ। विद्यालय से सम्बद्ध तीन छात्रावास—श्री नानक जैन छात्रावास, श्री गांधी छात्रावास तथा श्री कृष्ण छात्रावास हैं। विद्यालय-पुस्तकालय मे दस हजार पुस्तकों का संकलन है।

७ श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय, वरकाणा (पाली)—इस संस्था की स्थापना २६ फरवरी, १९२६ को श्री विजय ललित सूरीश्वरजी महाराज साहब की प्रेरणा से हुई। सस्था के निर्माण मे स्व० श्री जसराजजी सिंघी तथा स्व० सेठ श्री मूलचन्दजी सादड़ी निवासी का विशेष योग तथा प्रयास रहा। आज यह संस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से सम्बन्धित, उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे इस क्षेत्र की सेवा कर रही है। विद्यालय का अपना छात्रावास भी है। वर्तमान मे संस्था की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष श्री कालिदास राठौड़ तथा प्रधानाध्यापक श्री दाऊलाल माथुर हैं।

८ श्री गोदावत जैन गुरुकुल (उच्च माध्यमिक विद्यालय), छोटी सादड़ी—मेवाड़ क्षेत्र की यह एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। इसकी स्थापना सन् १९१९ मे हुई थी। इसके संस्थापक सेठ श्री नाथूलालजी गोदावत द्वारा सवा लाख रुपये की धनराशि दान देने से जैनाश्रम की स्थापना के रूप मे इस संस्था का प्रारम्भ हुआ था। सन् १९१९ मे जबकि ग्रामीण अञ्चल मे शिक्षा का प्रचार-प्रसार नगण्य था, इस सस्था की स्थापना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कदम था। आज यह संस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से सम्बद्ध एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्षेत्र मे सेवारत है। यह एक आवासीय शिक्षा संस्था भी है। सलग्न छात्रावास मे लगभग ६० विद्यार्थियों के रहने योग्य स्थान है। श्री नेमीचन्द सुराणा पिछले २५ वर्षों से यहाँ प्रधानाध्यापक के रूप मे कार्य कर रहे हैं। संस्था का संचालन एक ट्रस्ट मण्डल द्वारा होता है। मंत्री के रूप मे श्री चाँदमलजी नाहर की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। वर्तमान मे इसके मंत्री श्री शांतिचन्द्र मोगरा हैं।

९. श्री सुमति शिक्षा सदन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास—इस सस्था की स्थापना सन् १९४४ मे "श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी शिक्षण संघ" राणावास (पाली) के द्वारा हुई। आज यह सस्था हायर सैकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा प्रदान कर रही है; तथा इसमे कला, विज्ञान व वाणिज्य तीनों ही विषय समूहों के अध्ययन की व्यवस्था है। सस्था से सम्बन्धित आदर्श निकेतन छात्रावास है जिसमे लगभग २५० छात्रों के रहने का प्रबन्ध है। सन् ७४ से यह सस्था

वाणिज्य एवं कला महाविद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत हो गई है। संस्था की स्थापना मे स्व० श्री बस्तीमलजी छाजेड़ एवं स्व० श्री गणेशमलजी सुराणा मुख्य प्रेरक एवं सहयोगी रहे है। श्री केसरीमलजी सुराणा पिछले २६ वर्षो से अवैतनिक रूप मे इस सस्था के सचालन एव विकास मे जुटे हुए है।

१०. श्री मरुधर केसरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास (पाली)—यह सस्था मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज साहब की प्रेरणा से जुलाई, १९७० मे प्रारभ हुई। संस्था में कक्षा ६ से ११ तक लगभग ४०० छात्र अध्ययन करते है। सस्था से संलग्न छात्रावास मे ३५० छात्रो के रहने की सुन्दर व्यवस्था है। सस्था की प्रबन्ध-समिति के वर्तमान अध्वक्ष श्री इन्द्रसिंह जी मुणोत एवं मन्त्री श्री अमीरचन्दजी कटारिया है।

११ श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ, विद्यावाड़ी, रानी (पाली)—इस उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय का उद्घाटन १५ अगस्त, १९५७ को हुआ। संस्था आवासीय शिक्षण सस्थान है। सलग्न छात्रावास मे छात्राओ के निवास तथा खानपान की सुन्दर व्यवस्था है। संस्था के मन्त्री श्री फूलचन्द बाफना है तथा प्रधानाध्यापिका श्रीमती सुभद्रा जैन है। सस्था की विकासमान प्रवृत्तियो मे प्रो० गणपतिचन्द्र भण्डारी का विशेष योगदान रहा है।

१२. श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल सस्कृत प्रवेशिका विद्यालय, जोबनेर (राज०)—जोबनेर के जैन समाज द्वारा धार्मिक व सस्कृत शिक्षा के लिए स्थापित श्री बाल-बोधनी दिगम्बर जैन पाठशाला ही आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज की प्रेरणा से सन् १९६३ मे शान्ति वीर जैन गुरुकुल के नाम से नवीनीकृत हुई। इस समय संस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रवेशिका स्तर तक मान्यता प्राप्त है। इस समय २३६ विद्यार्थी यहाँ अध्ययनरत है। विद्यालय का अपना छात्रावास भी है। वर्तमान में संस्था की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष श्री सुगनचन्द पाटनी तथा मन्त्री श्री मिलापचन्द जैन है।

१३ श्री वीर बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—सस्था की स्थापना सन् १९२५ मे साध्वी श्री स्वर्णश्रीजी की प्रेरणा से हुई। इस समय विद्यालय मे लगभग ११०० छात्राएँ अध्ययनरत है। सन् १९७४ से विद्यालय को महाविद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत कर दिया गया है। इसका सचालन श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा गठित समिति करती है। समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री सौभाग्यमल श्री श्रीमाल है। स्व० श्रीमती प्रकाशवती सिन्हा का प्रधानाध्यापिका के रूप मे इस संस्था को उल्लेखनीय योगदान रहा। यह संस्था कुन्दीगरो के भैरूजी के रास्ते मे स्थित है।

१४. श्री पद्मावती जैन बालिका माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—इस सस्था की स्थापना सन् १९०८ मे हुई थी। सन् १९६० मे यह उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत हुआ। यह घीवालो के रास्ते मे स्थित है। वर्तमान मे लगभग ५५० छात्राएँ यहाँ अध्ययनरत है। इसका प्रबन्ध दिगम्बर जैन कन्या शिक्षा प्रचारिणी कमेटी द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री कोमलचन्द पाटनी एव मत्री श्री चतुरमल अजमेरा है। श्री माणिक्यचन्द्र जैन प्रधानाध्यापक है।

१५. आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीरजी—इस संस्था की स्थापना सन् १९५३ मे विदुषी कमलाबाई द्वारा हुई। यह बालिका विद्यालय सैकण्डरी स्कूल स्तर तक मान्यता प्राप्त है।

इस समय इसमे कक्षा १ से १० तक ६५० बालिकाएँ अध्ययनरत है। विद्यालय का लगभग २ लाख रुपये का अपना भवन है। विद्यालय के छात्रावास मे मात्र तीस रुपये मासिक शुल्क पर बालिकाओ के रहने तथा खाने-पीने की सुन्दर व्यवस्था है।

१६. **श्री दिगम्बर जैन बालिका माध्यमिक विद्यालय, उदयपुर**—इस सस्था का प्रारंभ १९४१ मे एक जैन मन्दिर के प्रागरण मे हुआ। धीरे-धीरे क्रमोन्नत होकर सन् १९६४ मे सस्था ने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। आज सस्था मे कक्षा ६ से १० तक ४५० बालिकाएँ अध्ययनरत हैं। यह सस्था स्थानीय दिगम्बर जैन शिक्षा समिति के तत्त्वावधान मे कार्यरत है।

१७. **हीरालाल सौभागमल रामपुरिया विद्या निकेतन, गंगाशहर (बीकानेर)**—बीकानेर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति रामपुरिया बधु श्री जयचन्दलाल, श्री रतनलाल व श्री माणकचन्द रामपुरिया ने अपने स्व० पितामह सेठ हीरालाल रामपुरिया व स्व० पिता सौभागमल रामपुरिया की पावन स्मृति मे सन् १९५४ मे इस शिक्षणशाला की स्थापना की।

विद्या निकेतन एक विशिष्ठ शिक्षण शाला है यहा पर शिशु विभाग मे मॉन्टेसरी पद्धति से बच्चो को शिक्षा दी जाती है और २½ वर्ष के बच्चो को प्रवेश दिया जाता है।

बालिकाओ के लिए सैकण्डरी तक पढने की व्यवस्था है। बालक-बालिकाओ के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने हेतु निकेतन मे मनोवैज्ञानिक उपकरणो, साज-सज्जा आदि की समुचित व्यवस्था है व विभिन्न प्रकार के कार्य-क्रम अपनाये जाते हैं। इस समय संस्था मे ५५० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं व २५ शिक्षक सेवारत हैं।

रामपुरिया विद्या निकेतन का भवन बीकानेर से पाच किलोमीटर दूर शान्त व स्वच्छ वातावरण मे गगाशहर मे सडक के किनारे स्थित है। दूर से बच्चो को लाने के लिए सस्था की अपनी पाच बसे हैं। मुख्य भवन मे सांस्कृतिक कार्यक्रमो के लिए सस्था का अपना ओडिटोरियम, खेलकूद के लिए मैदान, सुमज्जित वाचनालय, पुस्तकालय व प्रयोगशालाये है।

१८. **श्री सुबोध बालिका विद्यालय, जयपुर**—इस सस्था की स्थापना सन् १९१८ मे हुई। सन् १९७३ से पूर्व यह उच्च प्राथमिक शाला के रूप मे थी और अब क्रमोन्नत होकर सैकण्ड्री स्कूल के रूप मे बालिकाओ की शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। संस्था का प्रबन्ध श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक समाज द्वारा गठित समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सिरहमल नवलखा हैं। यह बारह गणगोर रास्ता, जौहरी बाजार मे स्थित है।

(३) अन्य विद्यालय

१ **श्री महावीर दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय, जयपुर**—इस संस्था की स्थापना श्री मुन्शी सूरजनारायणजी सेठी की प्रेरणा से महिला शिल्प विद्यालय के रूप मे सन १९३० मे हुई। सन् १९६२ से यह मिडिल स्कूल बना। यहाँ कक्षा ८ तक की पठन-पाठन की सुन्दर व्यवस्था है। श्री हीरालाल जैन परोपकार फण्ड द्वारा संस्थापित इस सस्था का सचालन एक प्रवन्ध समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सूरजनारायण सेठी व मन्त्री श्री मिलापचन्द शास्त्री है। सस्था चुरुको का रास्ता (मोदीखाना) मे स्थित है।

२ **श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी माध्यमिक विद्यालय, जयपुर**—मोतीसिंह भोमिया के रास्ते मे स्थित इस शिक्षा सस्था की स्थापना स्व० सेठ सूरजमलजी बाठिया द्वारा सन् १९१३ मे हुई। यहाँ कक्षा अष्टम तक के शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था है। इसका सचालन तेरापथी समाज द्वारा होता है।

३. **श्री गुलाब कवर ओसवाल उच्च प्राथमिक कन्या विद्यालय, अजमेर**—इस सस्था की स्थापना श्री धनराजजी कास्टिया के प्रयास से ८ सितम्बर, १९१२ को हुई। वर्तमान मे सस्था का सचालन ओसवाल फीमेल एज्यूकेशन सोसाइटी के द्वारा होता है। पाठशाला मे आठवी कक्षा तक अध्ययन की व्यवस्था है। संस्था के वर्तमान अध्यक्ष श्री रतनचन्दजी सचेती तथा मंत्री श्री चांदमलजी सीपाणी है।

४. **श्री अकलक दिगम्बर जैन पाठशाला, कोटा**—जैन मन्दिर स्ट्रीट मे स्थापित यह माध्यमिक शाला, राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। वर्तमान मे यहाँ ५०० छात्र-छात्राएँ तथा १४ अध्यापक है। सस्था का निजी भवन है।

५. **श्री दिगम्बर जैन विद्यालय, सुजानगढ़**—इस विद्यालय की स्थापना सन् १९१० मे हुई थी। जुलाई, १९७२ से यह माध्यमिक शाला के रूप मे सेवारत है। इसका संचालन स्थानीय दिगम्बर जैन समाज का एक ट्रस्टी मण्डल करता है।

६. **श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल, ऋषभदेव (उदयपुर)**—यह ट्रस्ट भी भट्टारक यशकीर्तिजी महाराज की प्रेरणा से सन् १९५९ मे रजिस्टर्ड होकर अस्तित्व मे आया। ट्रस्ट गुरुकुल के अतिरिक्त दिगम्बर जैन कन्या पाठशाला, महिला उद्योगशाला तथा सरस्वती भवन पुस्तकालय आदि शैक्षणिक प्रवृत्तियो का सचालन करता है। ट्रस्ट के अध्यक्ष जवेरी श्री मोतीलालजी मीण्डा, उदयपुर व मन्त्री प० रामचन्द्रजी जैन हैं।

७. **श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन बोर्डिंग, प्रतापगढ़**—इस नाम से रजिस्टर्ड संस्था न केवल छात्रावास की व्यवस्था करती है अपितु श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर माध्यमिक विद्यालय व श्री रमण बहिन दिगम्बर जैन कन्याशाला का भी सचालन व प्रबन्ध करती हैं। इस संस्था के प्रेरक भट्टारक श्री यशकीर्ति महाराज थे तथा सस्था १८ मई, १९४४ को अस्तित्व मे आई। सस्था की प्रगति का श्रेय भट्टारकजी के शिष्य पं० रामचन्द्रजी को है।

८ **श्री दिवाकर बाल निकेतन, कोटा**—यह विद्यालय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज साहब की प्रेरणा से सन् १९७१ मे स्थापित किया गया। इसमे नर्सरी कक्षा से कक्षा ६ तक की अध्ययन की व्यवस्था है। वर्तमान मे १६५ छात्र-छात्राएँ तथा ७ अध्यापक है। शाला की सचालक समिति के अध्यक्ष श्री हरवशलाल जैन तथा व्यवस्थापक श्री माणिकचन्द्र जैन है।

९. **श्री महावीर जैन विद्यालय, भरतपुर**—यह संस्था स्थानीय महावीर भवन मे स्थापित है। यहाँ कक्षा प्रथम से पाँचवी तक के अध्ययन की सुचारु व्यवस्था है। बच्चो को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

१०. **श्री जैन दिवाकर प्राथमिक पाठशाला, चित्तौड़गढ़**—जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी

महाराज साहब की स्मृति में स्थापित यह पाठशाला निजी भवन में सुचारु रूप से संचालित है। कक्षा १ से ५ तक के अध्यापन की व्यवस्था है।

११. श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ़ (टौंक)—श्री गोडीदासजी महाराज साहब की प्रेरणा से सम्वत् २००३ मे इसकी स्थापना हुई। यह प्राथमिक विद्यालय है। सेठ श्री राधाकृष्णजी जालानी, कलकत्ता संस्था का समस्त व्यय-भार वहन कर रहे हैं।

१२. श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, नागौर—आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब की सद्-प्रेरणा एवं स्थानकवासी जैन समाज, नागौर के कतिपय उत्साही व सेवाभावी सज्जनो के सद्-प्रयास के फलस्वरूप विक्रम संवत् २००६ मे इस पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य नन्ही बालिकाओं मे धार्मिक एव नैतिक शिक्षण के माध्यम से सुसस्कार उत्पन्न करना रहा है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए पाठशाला मे राजकीय पाठ्यक्रम के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण की विशेष व्यवस्था है। इस समय पाठशाला मे पाचवी कक्षा तक पढ़ाई होती है। छात्राओं की सख्या एक सौ से अधिक है एव अध्यापिकाओ की सख्या ५ है। सन् १९६९ मे पाठशाला के सचालन हेतु नया विधान बनाया गया। तत्पश्चात् सस्था को पंजीवद्ध कराया जाकर राजकीय मान्यता प्राप्त कराई गई। पाठशाला भवन आधुनिक सुविधाओं से युक्त एवं नगर के मध्य मे स्थित है। भवन समिति पृथक् बनी हुई है जिसके अथक प्रयास से ही भवन का वर्तमान स्वरूप बन सका है। पाठशाला का सचालन निर्वाचित कार्यकारिणी समिति के द्वारा किया जाता है जिसमे कुल २१ सदस्य हैं। समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री भेरुदान जी सुराणा, मंत्री श्री नवरत्न राज मेहता एव कोषाध्यक्ष श्री डुंगरमलजी सुराणा हैं। सस्थापक सदस्य सर्व श्रीपारसमल जी सुराणा एव उमरावमल जी सुराणा हैं तथा सरक्षक सर्व श्री दीपचन्दजी सुराणा एवं गणेशमलजी कांकरिया हैं।

(४) धार्मिक शिक्षण संस्थाएं

जैन धार्मिक सिद्धान्तो, जैन-साहित्य व दर्शन आदि के अध्ययन अध्यापन के लिए प्रदेश भर मे अनेक संस्थाए कार्यरत है। जैन-धर्मावलम्बियो में अपने विद्यालय छात्रावास, मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय, आदि से सलग्न धार्मिक शिक्षा केन्द्र चलाने की परम्परा रही है। अतः धार्मिक शिक्षण केन्द्र प्रदेश भर मे बड़ी संख्या में इतस्ततः फैले हुए है। यहां कुछ प्रमुख संस्थाओ का नामोल्लेख किया जा रहा है।

१. श्री शान्ति वीर दि० जैन गुरुकुल संघीजी की नसिया, जयपुर
२. श्री जैन दर्शन विद्यालय, चाकसू का चौक, जयपुर
३. श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला, टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर
४. श्री धार्मिक शिक्षण शाला, लालभवन, जयपुर
५. श्री धार्मिक शिक्षा केन्द्र, दि० जैन समाज, आदर्शनगर, जयपुर
६. श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला, आत्मानन्द जैन-सभा भवन, घी वालों का रास्ता, जयपुर
७. श्री महावीर दि० जैन पाठशाला, कोटा
८. श्री महावीर जैन शिक्षण शाला, भादसोड़ा

९ मुनि श्री हजारीमल स्मृति जैन सिद्धान्त शाला, ब्यावर
१० श्री साधुमार्गी जैन सिद्धान्त शाला, ब्यावर
११. श्री भूधर जैन पौषधशाला, जोधपुर
१२. श्री वर्धमान जैन धार्मिक पाठशाला, जोधपुर
१३. श्री महावीर स्वाध्याय मण्डल, श्यामपुरा
१४. मुनि श्री रामकुमार जैन धार्मिक पाठशाला, श्यामपुरा
१५. महता ज्ञानचन्द जैन सिद्धान्त शिक्षणशाला, ब्यावर
१६ श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन पाठशाला, आलनपुर
१७ श्री बाहुबलि जैन पाठशाला, नसीराबाद
१८. श्री शांति जैन पाठशाला पाली
१९. श्री जैन विद्यालय संचालन समिति, डूंगता
२०. श्री गजेन्द्र ज्ञान जैन पाठशाला, धनोप
२१. श्री नाहर धार्मिक जैन पाठशाला, भोजास (नागौर)
२२. श्री पार्श्वनाथ जैन तत्वज्ञान विद्यापीठ, अजमेर
२३. श्री श्रमणोपासक जैन फूलादेवी धार्मिक रात्रि पाठशाला, अजमेर
२४. श्री नानक जैन कन्या पाठशाला, विजयनगर
२५. श्री जैन धार्मिक शिक्षण शिविर, जोधपुर

[ख] छात्रावास

जैन शिक्षण संस्थाओ मे से अनेक के साथ संलग्न छात्रावास भी है। पीछे पृष्ठो मे संस्थाओ के परिचय के साथ इसका उल्लेख भी यथा-स्थल कर दिया गया है। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी अनेक छात्रावास है। इनसे सम्बन्धित विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१. **श्री आनन्द यश जैन छात्रावास, फूलिया कलां**—इसकी स्थापना २२–८–६८ को महासती श्री यशकवरजी म. सा. की प्रेरणा से श्री आनन्द कवरजी मा सा. की पावन स्मृति मे हुई। श्री नेमीचन्दजी वडोना यहा के गृहपति है।

२. **आदर्श निकेतन छात्रावास, राणावास**—श्री सुमति शिक्षा सदन से संलग्न इस छात्रावास मे ३५० विद्यार्थियो के रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

३. **श्री उपाध्याय प्यारचन्द जैन छात्रावास, ब्यावर**—इस संस्था की स्थापना स्व उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी मा. सा. की स्मृति मे सन् १९६९ मे हुई।

४. **श्री कुंथुसागर दिगम्बर जैन छात्रावास डूंगरपुर**—मुनि श्री कुंथूसागरजी की प्रेरणा से इसकी स्थापना हुई थी। इसके संचालक श्री सूरजमल ढीढू हैं।

५. **श्री कृष्णाबाई मुमुक्षु महिलाश्रम, श्री महावीरजी**—इसकी संस्थापक तथा सचालिका ब्रह्मचारिणी कृष्णा बाई है। इसमे लगभग १०० छात्राओ के रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

६. **श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर**—इसकी स्थापना आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. की पुण्य स्मृति मे अगस्त १९६४ मे हुई इसका सचालन श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर द्वारा होता है।

७. श्री गोदावत जैन गुरुकुल छात्रावास, छोटी सादड़ी—गोदावत जैन गुरुकुल का परिचय शिक्षा संस्थाओ मे दिया चुका है। संलग्न छात्रावास मे लगभग ६० विद्यार्थियो के रहने की समुचित व्यवस्था है।

८. श्री जयमल्ल जैन छात्रावास, मेड़ता शहर—इसकी स्थापना आचार्य श्री जयमल्लजी म. सा. की पावन स्मृति मे जुलाई १९६१ मे हुई। इसका संचालन एक ट्रस्टीमण्डल द्वारा होता है जिसके अध्यक्ष पद्म श्री मोहनमल जी चोरड़िया हैं।

९. श्री जवाहर विद्यापीठ छात्रावास, कानोड़—सस्था का परिचय पिछले पृष्ठो मे दिया जा चुका है। संलग्न छात्रावास मे लगभग २५० विद्यार्थियों के रहने की समुचित व्यवस्था है। इसके साथ ही यहां छात्राओ के लिये एक अलग छात्रावास भी चलता है।

१०. श्री जैन बोर्डिंग छात्रावास, कुचेरा—इस छात्रावास की स्थापना १५ जुलाई १९४२ को स्वर्गीय सेठ श्री ताराचन्द जी गेलडा द्वारा स्थानीय समाज के कर्मठ व प्रतिष्ठित सज्जनो के सहयोग से हुई। छात्रावास का नवनिर्मित सुन्दर भवन है तथा संलग्न पुस्तकालय भी है।

११. श्री जैन रत्न विद्यालय छात्रावास, भोपालगढ़—विद्यालय का परिचय सस्थाओ के साथ दिया जा चुका है। सलग्न छात्रावास मे लगभग ७५ छात्रो को रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

१२. श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान, जयपुर—आचार्य श्री हस्तीमलजी मा. सा की प्रेरणा व श्री नथमलजी हीरावत के प्रयत्नो से सन् १९७३ मे श्री सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल के अन्तर्गत इसकी स्थापना हुई। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य सस्कारशील उच्चकोटि के जैन विद्वान तैयार करना है। संस्थान मे प्रविष्ट छात्रो के आवास व भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था है। वर्तमान में श्री कन्हैयालाल लोढा इसके अधिष्ठाता है।

१३. श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय छात्रावास, श्री महावीरजी—इस छात्रावास की स्थापना कुचामन निवासिनी ब्रह्मचारिणी विदुषी कमलाबाई ने की थी। इस समय छात्रावास मे लगभग १५० छात्राए अध्ययनार्थ निवास करती हैं।

१४. पं० चैन सुखदास छात्रावास, जयपुर—यह छात्रावास श्री दि० जैन संस्कृत कॉलेज से संलग्न है। सस्कृत कॉलेज मे अध्ययन रत छात्रो के लिए यहाँ निवास की व्यवस्था है।

१५. श्री नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा—इसकी स्थापना श्री नानकरामजी म. सा. की स्मृति मे सन् १९३८ मे श्री पन्नालालजी म. सा. के सदुपदेश से हुई। छात्रालय का अपना विशाल भवन है। श्री रतनलाल जैन यहां गृहपति हैं।

१६. श्री पारसमल मिलापचन्द जैन छात्रावास जोधपुर—इसकी स्थापना श्री मिलापचन्दजी बोहरा मंडिया निवासी ने की। इसकी स्थापना से विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियो के रहने की अच्छी व्यवस्था हो सकी है।

१७. श्री पार्श्वनाथ विद्यालय छात्रावास, वरकाणा (पाली)—यह छात्रावास श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय से संलग्न है। यहा रहने की अच्छी व्यवस्था है।

१८. श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण संघ, फालना द्वारा संचालित छात्रावास—इस संघ के तत्वावधान मे महाविद्यालय छात्रावास तथा जैन छात्रावास संचालित होते है। इनमे पार्श्वनाथ उम्मेद, महाविद्यालय तथा माध्यमिक विद्यालय मे अध्ययन रत छात्रो के निवास की सुविधा है।

१९. श्री पार्श्वनाथ जैन छात्रालय, मालवाड़ा—इसकी स्थापना मार्च १९४६ मे सेठ श्री उमाजी ओखाजी के सुपुत्र श्री मगनलालजी, श्री मूलचन्दजी एव श्री चिमनलालजी ने की थी। इस छात्रावास मे ११० विद्यार्थियो के निवास की सुन्दर व्यवस्था है।

२०. श्री पार्श्वनाथ दि० जैन छात्रावास, धानमण्डी उदयपुर—इसकी स्थापना ब्रह्मचारी श्री चादमलजी द्वारा हुई। छात्रावास में २० छात्रों के रहने की व्यवस्था है।

२१. श्री भ. यशकीर्ति दि० जैन बोर्डिंग प्रतापगढ़—इसकी स्थापना भट्टारक श्री यशकीर्तिजी महाराज की प्रेरणा एव प्रयत्नो से सन् १९४४ मे हुई। सस्था के भवन मे १०० विद्यार्थियो के रहने की समुचित व्यवस्था है।

२२. श्री भ. यशकीर्ति दि० जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल, ऋषभदेव (उदयपुर)—इस सस्था की स्थापना १९६८ मे हुई थी। यहा १०० छात्रों के पढ़ने-लिखने तथा रहने की उत्तम व्यवस्था है।

२३. श्री मरुधर केसरी उच्च माध्य. विद्यालय छात्रावास, राणावास—उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सलग्न छात्रावास मे ३५० छात्रों के रहने की व्यवस्था है। छात्रावास का सचालन श्री फूलचन्दजी कटारिया करते है।

२४. श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ छात्रावास, रानी (पाली)—छात्रावास की स्थापना भी संस्था के साथ-साथ ही १५ अगस्त १९५७ को हुई। छात्रावास में साधारण शुल्क पर छात्राओं के रहने तथा खाने-पीने की सुन्दर व्यवस्था है।

२५. श्री महावीर जैन छात्रावास सीकर—जैन एजूकेशन ट्रस्ट के अधीन इस छात्रावास की भगवान महावीर के २५००वे निर्वाण-महोत्सव के क्रम मे स्थापना हुई है। इससे यहां की शिक्षा संस्थाओ मे अध्ययनरत छात्रो को रहने की सुविधा हो गई है।

२६. श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल, सादड़ी (मारवाड़)—इसकी स्थापना फरवरी, १९४४ मे मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म०, स्वामीजी श्री भारमलजी म० सा०, श्री त्रिलोकचदजी म० सा० व पं० रत्न मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' के सदुपदेशों से हुई। इसी सस्था के प्रांगण में सन् १९५२ मे स्थानकवासी समाज का बृहत्साधु सम्मेलन हुआ था। संस्था मे छात्रो की आवास व भोजन व्यवस्था के साथ-साथ उनके धार्मिक व व्यावहारिक शिक्षण की विशेष व्यवस्था है। सस्था का अपना स्वतन्त्र पुस्तकालय, वाचनालय औषधालय, बालोद्यान आदि भी है। वर्तमान मे ६४ छात्र यहां रहकर अध्ययन कर रहे हैं। इसका सचालन कार्यकारिणी द्वारा होता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री नथमलजी वलदोठा, उपाध्यक्ष श्री हस्तीमलजी मेहता व मंत्री श्री जीवंतराजजी पुनमिया है। गुरुकुल का वार्षिक व्यय लगभग साठ हजार रुपया है।

२७. श्री विजय जैन छात्रालय, ब्यावर—स्व० सेठ श्री विजयराजजी मूथा के प्रयत्नों से इस छात्रालय की स्थापना जनवरी १९५६ मे हुई। छात्रावास मे २० छात्रो के खाने-पीने तथा रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

२८. श्री जैन छात्रावास, सिरोही—यह शांति नगर मे स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९५१ मे हुई। इसमे ५० छात्रों के रहने के लिए पर्याप्त सुविधा है। वर्तमान मे २३ छात्र रहते है।

२९. श्री सेठिया जैन छात्रावास, बीकानेर—श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था के अधीन यह छात्रावास सन् १९४६ से चल रहा है। यहाँ प्रविष्ट छात्रो के आवास एवं भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था है।

३०. श्री आत्मानन्द जैन छात्रावास, सादड़ी (मारवाड़)—मूर्तिपूजक सम्प्रदाय द्वारा सचालित इस छात्रावास मे लगभग ३५ छात्रो के निवास की सुविधा है।

अन्य छात्रावास

३१. श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल छात्रावास, जोबनेर
३२. श्री जैन गुरुकुल छात्रावास, ब्यावर
३३. मुनि श्री बुधमल जैन छात्रावास, भरतपुर
३४ श्री शान्ति वीर नगर गुरुकुल छात्रावास, श्री महावीर जी
३५ श्री जिनदत्त सूरिमंडल छात्रावास, अजमेर
३६. श्री सूरज बाई दि० जैन छात्रावास, कोटा
३७ श्री शाति जैन छात्रालय, पाली
३८ श्री जैन विद्या मन्दिर छात्रावास, कालन्द्री (सिरोही)
३९. श्री जैन छात्रावास, जावाल (सिरोही)
४०. श्री जय चौथ जैन छात्रावास, जवाजा
४१. श्री जयमल्ल जैन छात्रावास, नागौर
४२. श्री गौतम जैन गुरुकुल, सोजतसिटी
४३. श्री मरुधर केसरी जैन छात्रालय, जैतारण
४४. श्री व स्था० जैन वख्तावर पारमार्थिक छात्रावास, किशनगढ़

[ग] पुस्तकालय एवं वाचनालय

पुस्तकें ज्ञान-राशि का संचित कोष है। अत. पुस्तकालय स्थापित करना एक पवित्र कार्य है। पुस्तकालय अच्छे समाज के निर्माण मे कितने सहायक हो सकते है; यह कोई अप्रकट सत्य नही ! धर्मों का मूल इसी सत्य मे निहित है कि पृथ्वी मनुष्य के निवास के लिए सर्वोत्तम स्थान बन सके। यही जैन-दृष्टि भी है। अतः जैनियो मे पठन-पाठन का धार्मिक कृत्य के रूप मे भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन-समाज का लगभग ९० प्रतिशत वर्ग शिक्षित है।

जैन-मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय आदि धार्मिक स्थानो पर प्रारम्भ से ही ग्रन्थ भण्डार होने की परम्परा रही है। ये ग्रन्थ भण्डार एक प्रकार से पुस्तकालय ही हैं। छोटे से छोटे गांव मे भी यदि जैन मन्दिर या स्थानक है तो उसके साथ ही वहाँ ग्रन्थ भण्डार अवश्य है। प्रस्तुत पृष्ठो मे हमारा ध्येय इन भण्डारों का परिचय देना नही है। जैन-संस्थाओं तथा जैन-धर्मावलम्बियो ने इनके अतिरिक्त अनेक सार्वजनिक पुस्तकालय एवं वाचनालय भी स्थापित किए है जो राष्ट्र की शैक्षणिक जागरूकता

की वृद्धि मे महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे है। राजस्थान प्रदेश मे भी ऐसे अनेक सार्वपुस्तकालय एवं वाचनालय है। इन पृष्ठो में उनका सक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है।

१. **श्री जैन सांखला पुस्तकालय, ब्यावर**—इस पुस्तकालय की स्थापना सेठ श्री जीवराजजी तथा श्री फूलचन्दजी साखला द्वारा सन् १६४५ मे हुई। पुस्तकालय का निजी भवन है। पुस्तकालय मे लगभग १०२५० पुस्तके है।

२. **श्री महावीर जैन पुस्तकालय, कोटा**—इस पुस्तकालय की स्थापना सन् १६१८ मे हुई। इसका संचालन स्थानीय जैन-समाज करता है। इस समय इसमे ३०५६ पुस्तके संग्रहीत है जो विषयवार वर्गीकृत है।

३. **श्री भवरलाल दूगड़ आयुर्वेद विश्वभारती पुस्तकालय, सरदार शहर**—आयुर्वेद विश्वभारती के अन्तर्गत संचालित इस पुस्तकालय की स्थापना १६५६ मे हुई। इसमे लगभग ४ हजार ग्रन्थ है। आयुर्वेद एव पाश्चात्य विज्ञान से सम्बन्धित ग्रन्थ संग्रह पुस्तकालय की निजी विशेषता है। संस्था का निजी भवन है।

४. **श्री जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल पुस्तकालय, जयपुर**—इस पुस्तकालय की स्थापना श्री रतनचन्द जी कोचर द्वारा १६२७ मे हुई। यह घी वालो के रास्ते में स्थित है। इसमे वर्तमान में ३५०० पुस्तके तथा लगभग २५० हस्तलिखित ग्रन्थो का संग्रह है। श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ इसका सचालन करता है।

५. **श्री महावीर पुस्तकालय, जयपुर**—इस पुस्तकालय की स्थापना १६३६ में हुई। पुस्तकालय किशनपोल बाजार स्थित महावीर पार्क मे है। वर्तमान मे यहा ६००० पुस्तकों का संग्रह है। १५ पत्र-पत्रिकाएं आती है। श्री प्रसन्नकुमार सेठी यहा पुस्तकालयाध्यक्ष है।

६. **श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ पुस्तकालय, जयपुर**—यह पुस्तकालय मोतीसिंह भोमियो के रास्ते मे शिवजीराम भवन के सामने उपाश्रय मे स्थित है। इसका संचालन खरतरगच्छ सघ करता है, जिसकी परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष श्री राजरूप टाक और मन्त्री श्री गुमानमल मालू है। सग्रहालय मे ५००० पुस्तके है जिनमें १४०० हस्तलिखित ग्रन्थ है। श्री ज्ञानचन्द जैन (रांवका) अवैतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे कार्यरत है।

७. **आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर**—इस भण्डार की स्थापना आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज सा. की प्रेरणा एवं स्व. श्री सोहनमल जी कोठारी के प्रयास से सं० २०१६ तदनुसार सन् १६५६ मे हुई। यह चौडा रास्ता स्थित लालभवन मे चल रहा है। अब तक इस भण्डार में लगभग तीस हजार ग्रंथ और १५० गुटके (जिनमे अनुमानतः पांच हजार फुटकर रचनाएं लिपि बद्ध है) हस्तलिखित ग्रन्थो के रूप में संग्रहीत हो चुके है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह के साथ-साथ शोधकार्य को वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण से आगे वढाने के लिए यहां स्तरीय एवं बहुमूल्य मुद्रित पुस्तकों तथा शोध सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओ को भी संग्रहीत किया गया है। वर्तमान मे श्री श्रीचन्दजी गोलेछा इसके अध्यक्ष व डॉ० नरेन्द्र भानावत मानद निदेशक है। श्री मोतीलालजी गांधी पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे अपनी सेवाएं दे रहे है।

८. **श्री सन्मति पुस्तकालय, जयपुर**—इस पुस्तकालय की स्थापना मा० मोतीलालजी संघी द्वारा १९२० मे हुई। पुस्तकालय का नवीन भव्य भवन अर्जुनलाल सेठी नगर मे बना है। पुस्तकालय के सस्थापक मास्टर मोतीलाल जी एक महान् पुस्तकालय-अनुदाता तथा पुस्तकालय-कार्यकर्ता थे। वर्तमान मे लगभग ४० हजार पुस्तकें इस पुस्तकालय मे है।

९. **श्री जैन साहित्य शोध-विभाग पुस्तकालय, महावीर भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर**—विलुप्त साहित्य की खोज, प्रकाशन एव शोध के लक्ष्य को ध्यान मे रखकर श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा सन् १९४७ में इसकी स्थापना की गई। इसके प्रेरक स्व० प० चैनसुखदासजी थे। यहा के पुस्तकालय मे हस्तलिखित तथा प्रकाशित दोनों ही प्रकार के ग्रन्थो का अच्छा संग्रह है। यहा के प्रकाशन विभाग से अब तक १७ ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। अनेक शोधार्थी यहा के पुस्तकालय से लाभ उठा चुके हैं। डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल के योग्य निर्देशन में यहा का शोध विभाग जैन-साहित्य की महान् सेवा कर रहा है।

१० **श्री सरस्वती भवन, श्री दि. जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर**—घी वालो के रास्ते में स्थित इस जैन पुस्तकालय मे लगभग ९०० हस्तलिखित ग्रन्थ तथा ७०० मुद्रित ग्रन्थ हैं। श्री नरेन्द्र मोहन डंडिया इसकी देख-रेख करते हैं।

११. **श्री सरस्वती भण्डार, दि. जैन मन्दिर गोधान, जयपुर**—चौकडी घाट दरवाजा, नागौरियो के चौक में अवस्थित इस पुस्तकालय मे लगभग २१०० मुद्रित तथा ७०० हस्तलिखित पुस्तके हैं। श्री राजमल संघी समिति के सयोजक हैं।

१२. **श्री जैन शास्त्र भन्डार सग्रहालय, जैसलमेर**—इस संग्रहालय में अनेक प्राचीन व दुर्लभ हस्तलिखित जैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैन-शोध की दृष्टि से इन ग्रन्थो का महत्वपूर्ण स्थान है।

१३ **श्री महावीर पुस्तकालय, महनसर**—इसकी स्थापना सन् १९३३ मे हुई। वर्तमान में इसमें ४८८३ पुस्तके सग्रहीत है। पुस्तकालय पर प्रतिवर्ष लगभग २ हजार रुपये व्यय होता है।

१४. **श्री ओसवाल पुस्तकालय, लाडनूं** ओसवाल सभा द्वारा १९१९ में इस पुस्तकालय की स्थापना हुई। पुस्तकालय का निजी भवन है। वर्तमान मे इसमें ९४५० पुस्तकें संग्रहीत हैं। वार्षिक व्यय लगभग ११ हजार रुपये हैं पाठको की प्रतिदिन औसत सख्या १५० है। श्री मोहनलाल चोरड़िया यहा पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

१५ **श्री जैन सार्वजनिक पुस्तकालय, भादरा**—इसकी स्थापना सन् १९४७ मे हुई। वर्तमान मे यहां ४३७४ पुस्तकें सग्रहीत है तथा ४० पत्र-पत्रिकाएं आती हे। राज्य सरकार से सहायता प्राप्त है।

१६. **श्री जैन दिवाकर पुस्तकालय, ब्यावर**—मेवाडी गेट पर संस्था का नवनिर्मित निजी भवन है। लगभग २००० पुस्तको का सग्रह है, जिनमे हस्तलिखित शास्त्रादि भी है।

१७ **श्री जैन दिवाकर शोधपीठ पुस्तकालय, कोटा**—यह पुस्तकालय जैन दिवाकर स्मृति भवन मे स्थित है। इसकी स्थापना श्री अजित मुनि की प्रेरणा से हुई। वर्तमान मे लगभग एक हजार हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। इसी भवन मे अलग से एक पुस्तकालय भी है, जिसमे लगभग ५०० पुस्तको का सग्रह है।

१८. आचार्य श्री खूबचन्दजी पुस्तकालय, निम्बाहेड़ा—इस पुस्तकालय की स्थापना आचार्य श्री की स्मृति मे हुई है। अभी लगभग ५०० पुस्तको का सग्रह है।

१९. श्री जिनदत्त सूरि मण्डल पुस्तकालय, अजमेर—सन् १९५२ में स्थापित जिनदत्त सूरि मण्डल द्वारा संचालित यह एक समृद्ध पुस्तकालय है जिसमे लगभग ७००० उपयोगी ग्रन्थों का सग्रह है। पुस्तकालय का निजी विशाल भवन है। मण्डल की स्थापना श्री मागीलाल जी पारख द्वारा की गई। वर्तमान अध्यक्ष श्री अमरचन्द जी लूणिया तथा मन्त्री श्री चांदमल जी सीपाणी हैं।

२०. श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा पुस्तकालय, मोमासर—सभा का प्रादुर्भाव १९५१ मे हुआ था। सभा का निजी भवन है, उसी मे सभा द्वारा स्थापित पुस्तकालय भी है। सभा के अन्तर्गत महिला विकास मण्डल व किशोर मण्डल आदि संस्थाओ के भी निजी पुस्तकालय व वाचनालय है।

२१. श्री सेठिया जैन ग्रन्थालय, बीकानेर—श्री अगरचन्द भैरोदान सेटिया जैन पारमार्थिक सस्या द्वारा संचालित सेठिया जैन ग्रन्थालय, बीकानेर के प्रमुख पुस्तकालयो मे उल्लेखनीय है। इसमें हिन्दी, उर्दू, मराठी, बगला, अग्रेजी, गुजराती, फ्रेन्च, जर्मन, रूसी आदि भाषाओ की १७००० पुस्तकें है। इनके अतिरिक्त सैकड़ो ऐसे ग्रन्थ है जिनकी एक से अधिक प्रतिया है। ग्रन्थालय मे १५०० हस्तलिखित ग्रन्थ एव ७०० पत्र-पत्रिकाओ की अलभ्य फाइलें है। ग्रन्थालय की सदस्यता निःशुल्क है। वाचनालय उपविभाग मे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एवं त्रैमासिक कुल चालीस पत्र-पत्रिकाएं आती है।

२२. श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर—श्री अभयराज जी नाहटा की स्मृति में नाहटा परिवार द्वारा उक्त साहित्यिक, सास्कृतिक व लोकोपयोगी प्रवृतियाँ खरतरगच्छीय आचार्य जिनकृपाचन्द सूरि जी महाराज के परामर्श से सवत् १९८४ के लगभग प्रारम्भ की गई। हस्ततिखित ग्रन्थों के सग्रह मे श्री कृपाचन्द सूरि जी के यतिशिष्य तिलकचन्द जी की प्रेरणा वहुत मूल्यवान रही। पिछले लगभग ४८ वर्षों मे ग्रन्थालय हस्तलिखित एवं प्रकाशित ग्रन्थो का इनना वडा भण्डार वन गया है कि आज ग्रन्थालय के लिए विशेष रूप से निर्मित तीनतल्ला भवन मे ग्रन्थ रखने को जगह नही रही है। १०० मे भी अधिक आलमारिया ग्रथों से भरी हुई हैं और लगभग एक लाख ग्रन्थों का महत्वपूर्ण सग्रह यहा उपलब्ध है। अनेक विद्वान तथा अनुसन्धानकर्ता इस महत्वपूर्ण ग्रन्थालय से लाभान्वित होते रहते हैं। प्रसिद्ध गवेपक श्री अगरचन्द नाहटा इसके सचालक है।

२३. श्री जैन दिवाकर चतुर्थ पुस्तकालय, उदयपुर—यह पुस्तकालय महावीर भवन, मदनपोल, वड़ा बाजार मे स्थापित है। विविध विपयों की तथा धर्म सम्बन्धी पुस्तकों का विशाल सग्रह है।

२४. श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, जयपुर—सन् १९२४ में स्थापित यह पुस्तकालय आज नगर के प्रमुख पुस्तकालयों मे है। पुस्तकालय मे लगभग ६५०० ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त वाचनालय मे अनेक मासिक, साप्ताहिक व दैनिक पत्र आते है। पुस्तकालय का संचालन श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज करता है। यह चौड़ा रास्ता स्थित लालभवन मे है।

२५. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर—श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ द्वारा संचालित यह पुस्तकालय श्वेताम्बर जैन स्थानक सवाईसिंह जी की पोल मे स्थित है। इसमे ७००० पुस्तकों का संग्रह है। इसकी एक शाखा घोड़ो के चौक मे है।

२६. श्री सुबोध जैन पुस्तकालय, जोधपुर—यह पुस्तकालय कपडा बाजार, जोधपुर मे स्थित है। इसका सचालन तथा व्यवस्था श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ द्वारा होती है।

२७. श्री महावीर जैन पुस्तकालय, जोधपुर—इसकी स्थापना अभी दिसम्बर १९७४ मे नेहरू पार्क, सरदारपुरा के जैन स्थानक में हुई है। इसकी स्थापना श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ द्वारा की गई है।

२८. श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ वाचनालय, जयपुर—इसकी स्थापना श्री गप्पूलाल जैन ने की। इसमे लगभग पाच सौ धार्मिक तथा अन्य पुस्तकें है। यह गोखले मार्ग सी-स्कीम मे स्थित है।

२९. श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन वाचनालय, जयपुर—यह वाचनालय सेठ बनजीलाल ठोलिया चेरिटी ट्रस्ट के अन्तर्गत चलता है। यहा पर मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, एवम् दैनिक पत्र पत्रिकाएं आती है। लगभग ६० पाठक प्रतिदिन इस वाचनालय से लाभ उठाते हैं। इसकी प्रबन्ध व्यवस्था श्री ताराचन्दजी ठोलिया के द्वारा होती है।

३०. सम्यक् ज्ञान मोक्षमार्ग वाचनालय, जयपुर—इसके निर्माण मे श्री अमरचन्द नाहर का विशेष योग है। यह सोथली वालो के रास्ते में स्थित है।

अन्य पुस्तकालय एवं वाचनालय

१. श्री महावीर पुस्तकालय, केकड़ी
२. श्री महावीर पुस्तकालय, रघुनाथ चौक, कोटा
३. श्री जैन पुस्तकालय एवं वाचनालय, बलजी राठौड़ की गली, अलवर
४. श्री महावीर भवन पुस्तकालय, अलवर
५. श्री जैन सार्वजनिक पुस्तकालय, हरसाना
६. श्री ज्ञानभण्डार, देलवाडा मन्दिर, आबू
७. श्री जय विजय ज्ञान भण्डार, सिरोही
८. श्री पंकुबाई ज्ञान भण्डार, शिव गज, (सिरोही)
९. श्री ग्रन्थ भण्डार, श्री प्रेम सूरीश्वर जी उपाश्रय, पिण्डवाड़ा
१०. श्री जैन पुस्तकालय, कालन्द्री, (सिरोही)
११. श्री जैन पुस्तकालय, किशनगढ़
१२. श्री प्राज्ञ जैन वाचनालय, विजयनगर
१३. श्री महावीर पुस्तकालय, राताकोट
१४. श्री देवमुनि जैन सार्व० पुस्तकालय, भोईवाड़ा, उदयपुर
१५. श्री स्थानकवासी जैन पुस्तकालय, डग, (झालावाड़)
१६. श्री वर्ध० जैन पुस्तकालय, सिंहपोल, जोधपुर

१७. श्री नानक जैन वाचनालय, पाण्डुकलां, (नागौर)
१८. श्री स्था० जैन पुस्तकालय, बड़ी सादड़ी
१९. श्री सरदार जैन पुस्तकालय, कानोड
२०. श्री वर्धमान जैन पुस्तकालय, कुश्तला, (सवाईमाधोपुर)
२१ श्री श्वेताम्बर पोरवाल जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, सवाईमाधोपुर
२२. श्री श्वेताम्बर जैन पुस्तकालय, चौथ का बरवाड़ा
२३. आचार्य पूज्य श्री दौलतराम पुस्तकालय सवाईमाधोपुर
२४. श्री दि० जैन पन्नालाल एलक पुस्तकालय, सवाईमाधोपुर
२५. श्री वर्द्धमान स्थानक जैन वाचनालय, आलनपुर (सवाईमाधोपुर)
२६. श्री भंवर पुस्तकालय, बीदासर
२७. श्री दीपचन्द बोथरा सार्वजनिक वाचनालय, बीदासर
२८. श्री महावीर जैन वाचनालय, खुशालपुर
२९. श्री रघुनाथ जैन पुस्तकालय, सोजत सिटी
३०. श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, भीलवाड़ा
३१. श्री वर्धमान स्थानक जैन पुस्तकालय, अजमेर
३२. श्री वर्धमान स्थानक जैन वाचनालय, बदनोर
३३ श्री महावीर जैन पुस्तकालय, बीकानेर
३४. श्री जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, सादड़ी, (मारवाड़)
३५. सेठ श्रीचन्दजी गधैया पुस्तकालय, सरदारशहर
३६. श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी पुस्तकालय, मोमासर, (चूरू)
३७. श्री जैन किशोर मंडल पुस्तकालय, मोमासर, (चूरू)
३८ श्री वर्धमान जैन पुस्तकालय, बाड़मेर
३९. श्री गुलाब पुस्तकालय, जयपुर
४०. श्री आत्मानन्द जैन सभा पुस्तकालय एवं वाचनालय, जयपुर
४१ श्री सरस्वती पुस्तकालय, चौकड़ी मोदीखाना, जयपुर
४२. श्री पार्श्वनाथ जैन लायब्रेरी, जयपुर
४३. श्री जैन प्राज्ञ पुस्तक भंडार, भिनाय, (अजमेर)
४४. श्री सुराना जैन लायब्रेरी, चूरू
४५. श्री शाति पुस्तकालय, राजलदेसर
४६. श्री जैन पुस्तकालय, सुजानगढ़
४७. श्री गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर
४८. श्री किशनचन्द पुस्तकालय, बीकानेर
४९. श्री सुराना जैन पुस्तकालय, बीकानेर
५०. श्री पार्श्वनाथ जैन पुस्तकालय, सूरतगढ
५१. श्री जैन पुस्तकालय, डूंगरगढ़
५२. श्री व. स्था० जैन बख्तावर पारमार्थिक पुस्तकालय, किशनगढ

(घ) चिकित्सालय एवं औषधालय

धनी जैन-श्रावकों तथा जैन लोकोपकारी संस्थाओं द्वारा प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर शताधिक ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक चिकित्सालय व औषधालय खोले गए है। वस्तुतः जैन धर्म मे लोकोपकार को, दीन-दुखियों की सेवा को जो महत्त्व प्राप्त है, वह भावना इन सस्थाओ के द्वारा साकार होती दिखाई देती है। हमको जिन चिकित्सा सस्थाओ का परिचय प्राप्त हो सका है, वह यहां दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक चिकित्सा-संस्थान रह गये हैं, जिनका जानकारी के अभाव में उल्लेख नही किया जा सका है।

१. **सन्तोकबा दुर्लभजी मेमोरियल अस्पताल, जयपुर**—पद्म श्री खेलशंकर दुर्लभजी ने अपनी मातुश्री एवं पिता श्री की स्मृति मे सन् १९५८ मे सन्तोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट की स्थापना की और इसके अन्तर्गत क्रमशः सन् १९६३ में डाईग्नोस्टिक क्लिनिक, सन् १९६९ मे प्रसव केन्द्र तथा सन् १९७१ मे अस्पताल की स्थापना की। यह अपने ढग का समस्त राजस्थान मे एक ही चिकित्सा केन्द्र है। इसका सुन्दर भवन, साज-सज्जा, सफाई व व्यवस्था प्रत्येक चिकित्सालय के लिए अनुकरणीय है। अस्पताल मे सर्जीकल, मेडीकल, ग्यानोकोलोजी, न्यूरो सर्जरी, पोलियो, आंख, कान एवं गला निदान केन्द्र तथा पैथोलोजी आदि विभाग हैं। एक्स-रे की सुविधा उपलब्ध है।

२. **श्री अमर जैन मेडीकल रिलीफ सोसायटी, जयपुर**—मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज की स्मृति मे इस सोसायटी की स्थापना २४ फरवरी १९६१ को हुई। स्व० श्री स्वरूपचन्दजी चोरड़िया एव स्व० श्री सागरमलजी डागा का इस संस्था को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सोसायटी ने अपने १३-१४ वर्ष के कार्यकाल मे उल्लेखनीय प्रगति की है। इस समय सोसायटी के तत्त्वावधान मे चिकित्सालय, महिला विभाग चिकित्सालय, एक्स-रे क्लिनिक, परीक्षण प्रयोगशाला, टीका केन्द्र, तथा परिवार नियोजन सलाह सुविधा केन्द्र कार्यरत हैं। सोसायटी ने श्री स्वरूपचन्द चोरडिया प्रसूति गृह की भी स्थापना की है जो पूर्णतया आधुनिक सुविधा सम्पन्न है।

३. **श्री ओसवाल औषधालय, अजमेर**—इसकी स्थापना सं० १९७४ मे सेठ दीवान बहादुर श्री उम्मेदमलजी लोढ़ा के द्वारा हुई। तब से अब तक यह औषधालय बराबर जनता की नि शुल्क सेवा करता आ रहा है। सन् १९५६ मे इसके अन्तर्गत एक सर्जरी विभाग भी खोला गया। इसका सालाना खर्च करीब १५ हजार रुपया है। प्रतिदिन करीब ३००-४०० रोगियो की निःशुल्क सेवा की जाती है। इसकी व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति द्वारा होती है जिसके अध्यक्ष श्री सम्पतमलजी लोढ़ा व मन्त्री श्री लालचंदजी चौपडा हैं।

४. **श्री दिगम्बर जैन औषधालय, जयपुर**—यह औषधालय जयपुर नगर का सर्वाधिक प्राचीन आयुर्वेदिक औषधालय है जो चौकड़ी मोदीखाना के लालजी सांड के रास्ते मे स्थित है। इसकी स्थापना विक्रम सवत् १९७२ मे हुई। गत ६० वर्षों से यह औषधालय शुद्ध आयुर्वेदिक पद्धति से जनता की बिना किसी जातीय भेदभाव के नि.शुल्क चिकित्सा कर रहा है और अब तक इससे लाखो रोगियो ने आरोग्य लाभ लिया है। यह संस्था धन्वन्तरि औषधालय से भी प्राचीन है तथा अपनी निःस्वार्थ सेवा के कारण लोकप्रिय बनी हुई है। वर्तमान मे श्री प्रकाशचन्द कासलीवाल इसके अध्यक्ष व श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ मन्त्री हैं।

५. श्री सेठिया जैन होम्योपैथिक औषधालय, बीकानेर—श्री अगरचंद भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था द्वारा संचालित यह औषधालय बीकानेर नगर की प्रमुख चिकित्सा-संस्था है। यह औषधालय सन् १९४९ से जनता की सेवा कर रहा है। यहा निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है। असहाय एवं निर्धन रोगियो को पथ्य, भोजन सामग्री एवं दूध हेतु नकद राशि देने का भी प्रावधान है।

गत वर्ष ६०,००० (साठ हजार) से अधिक रोगियो को इसका लाभ मिला है। बीकानेर नगर, जिला एवं निकटवर्ती गावो के रोगी ही नही, राजस्थान के अन्य भागो, दिल्ली, आसाम, हरियाणा, बगाल आदि प्रान्तों से भी रोगी अपनी चिकित्सा हेतु यहां आते है। अनेक व्यक्तियो ने पत्राचार द्वारा विदेशो से हमारे चिकित्सा अधिकारी (डॉ० हेमचन्द्र भट्टाचार्य) से परामर्श भी किया है।

इस औषधालय में सैकड़ों ऐसे रोगियों की चिकित्सा की गई है जो अन्य पद्धतियों द्वारा की गई असाध्य रोगो की चिकित्सा से निराश हो चुके थे। अनेक रोगियो को इस चिकित्सा द्वारा शल्य-चिकित्सा के कष्टो से बचाया गया है।

औपधालय के चिकित्सा अधिकारी की विशिष्ट निदान-शैली, मधुर व्यवहार एवं दीर्घकालीन अनुभव के कारण दिन-ब-दिन अधिक रोगी पंजीयत हो रहे है।

६. एस० जोरास्टर एण्ड कम्पनी पॉली क्लिनिक, जयपुर—कम्पनी के संस्थापक सेठ राजमलजी गोलेछा व सोहनमलजी गोलेछा की स्मृति मे यह क्लिनिक प्रारम्भ की गई। यहां पर अनुभवी चिकित्सको द्वारा नाम मात्र के शुल्क पर रोगी को परामर्श व निदान सुलभ कराया जाता है।

७. पक्षी चिकित्सा गृह, जौहरी बाजार जयपुर—प्रारम्भ में कबूतर खाने के रूप में स्थापित यह चिकित्सालय आज पक्षियों की चिकित्सा की दृष्टि से आधुनिकतम सुविधाओं से युक्त है। इसमे बीमार बन्दरों, कबूतरों, तोता, चील, कोए आदि का ऐलोपैथिक तरीके से इलाज होता है। इसका संचालन व० स्थानकवासी जैन श्रावक संघ जयपुर द्वारा होता है।

८. श्री दिगम्बर जैन धर्मार्थ औषधालय, जयपुर—यह आयुर्वेदिक औषधालय खजाचियों की नसियां ट्रस्ट के अन्तर्गत चलता है। इसमे बिना किसी साम्प्रदायिक भेद भाव के रोगियो की निःशुल्क सेवा की जाती है।

९. श्री शान्तिसागर दिग० जैन औषधालय, जयपुर—इसकी स्थापना सेठ बनजीलाल ठोलिया के परिवार द्वारा आचार्य श्री शान्ति सागरजी म० की प्रेरणा से सं० १९८९ में की गई। यहा रोगियो को निःशुल्क औपधिया प्रदान की जाती है।

१० श्री धर्मार्थ औषधालय, जयपुर—इसकी स्थापना श्री पूजा प्रचारक समिति, जयपुर की ओर से सन् १९६३ मे की गई। अब तक हजारो रोगियों ने इससे निःशुल्क लाभ उठाया है। यहा होम्योपैथिक एवं आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है।

११. श्री दिग० जैन औषधालय, रामपुरा, कोटा—यह लगभग ७० वर्ष पुरानी संस्था है। यहां बिना किसी भेदभाव के प्रतिदिन ४००-५०० रोगी लाभ उठाते हैं। रोगियो को औपधियां भी

यथासम्भव निःशुल्क दी जाती है। औषधालय की अपनी फार्मेसी हैं, जहां सभी प्रकार की औषधिया तैयार की जाती है। यह राजस्थान सरकार से मान्यता प्राप्त रजिस्टर्ड सस्था है।

१२. **श्री देशभूषण जैन औषधालय, चौड़ा रास्ता, जयपुर**—इस औषधालय की स्थापना १९६४ मे हुई। यहा पर रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। औषधियो का निर्माण भी औषधालय के अन्तर्गत ही किया जाता है। निकट भविष्य मे औषधालय के अन्तर्गत अन्तरंग चिकित्सालय (Indoor Hospital) बनाने की योजना है।

१३. **श्री दीपचन्द राजमल जैन जनाना अस्पताल, सादड़ी (मारवाड़)**—लगभग दो लाख रुपयो की लागत से इसका निर्माण कर यह राज्य सरकार को सौप दिया गया है।

१४ **श्री रूपचन्द ताराचन्द जैन पुरुष अस्पताल, सादड़ी (मारवाड़)**—यह भी लगभग दो लाख रुपयो की लागत से निर्मित कराकर राज्य सरकार को सौंप दिया गया है।

१५. **श्री परमार्थ जैन औषधालय, नसीराबाद**—यह नगर के मध्य में स्थित है। गत ८५ वर्षों से यह जनता की सेवा करता आ रहा है। प्रति वर्ष हजारो रोगी इससे लाभ उठाते है।

अन्य औषधालय

१६. श्री महावीर जैन आयुर्वेदिक औषधालय, जोधपुर
१७. श्री रामनाथ मेहता होम्योपैथिक औषधालय, जोधपुर
१८. श्री नवरत्न भांडावत आयुर्वेदिक औषधालय, जोधपुर
१९. श्रीमती उमरावकुंवर मोदी होम्योपैथिक औषधालय, जोधपुर
२० श्री थानचन्द मेहता आई बैंक, जोधपुर
२१. श्री होम्योपैथिक औषधालय, जोधपुर
२२. श्री आंखो का अस्पताल, जोधपुर
२३. श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, टोक
२४ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, कोटा
२५. श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, भरतपुर
२६. श्री मानव सेवा औषधालय, भरतपुर
२७. श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, अलवर
२८. श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, पालासनी
२९ श्री चक्षु चिकित्सा सेवा समिति, जोधपुर
३०. श्री थानचन्द मेहता रोगी सेवा बैंक, जोधपुर
३१. श्री भंवरी देवी शेखानी मातृ सेवा सदन, बीदासर
३२. श्री टांटिया पशु चिकित्सालय, बीदासर
३३. श्री दि० जैन औषधालय, अजमेर
३४. श्री दि० जैन औषधालय, किशनगढ़
३५. श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, बीकानेर

(ङ) विविध संस्थाएं

विभिन्न स्थानों पर सचालित अनेक लोकोपकारी, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व औद्योगिक प्रवृतियाँ वहाँ के समाज तथा दानी महानुभावों द्वारा संस्थापित संघ, सभा तथा समितियो के माध्यम से संचालित हो रही है। ऐसी संस्थाएँ अधिकांशतः बहुउद्देशीय है तथा कुछेक विशिष्ट उद्देश्यो को लेकर कार्यरत है। इन पृष्ठों मे हमने ऐसी प्रमुख संस्थाओ का परिचय प्राप्य सामग्री के आधार पर व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया है। परिचय के अभाव मे बहुत सी सस्थाओं का नामोल्लेख भर किया जा सका है। फिर भी यह सभव है कि कई सस्थाएँ इस परिचय-क्रम मे आने से रह गई हो।

(१) प्रमुख बहुउद्देशीय संस्थाएं

१. **श्री सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर**—स्व० आचार्य श्री रतनचन्द्रजी म० सा० की स्वर्गवास शताब्दी (स० २००२) के पुनीत अवसर पर आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से सस्थापित यह मण्डल विगत तीस वर्षों से ज्ञान और साधना के प्रचार-प्रसार की अनेक प्रवृत्तियाँ चला रहा है। प्रारम्भ मे इसका कार्यालय जोधपुर मे था पर बाद मे यह जयपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। मण्डल के विकास मे अध्यक्ष के रूप मे न्यायमूर्ति स्व० इन्द्रनाथजी मोदी की सेवाएँ विशेष उल्लेखनीय रही हैं। मत्री के रूप में स्व० श्री सिरहमलजी बम्ब की सेवाएँ सदैव स्मरण की जाती रहेगी। मण्डल को सुदृढ और सक्रिय बनाने मे मंत्री के रूप मे श्री नथमलजी हीरावत का उल्लेखनीय योगदान रहा है। वर्तमान मे न्यायमूर्ति श्री सोहननाथजी मोदी इसके अध्यक्ष, श्री उमरावमलजी ढड्ढा एव श्री सिरहमलजी नवलखा उपाध्यक्ष, श्री चन्द्रराजजी सिंघवी मंत्री और श्री पूनमचन्दजी बडेर कोषाध्यक्ष है। मण्डल की मुख्य प्रवृतियाँ निम्न है—

१. आध्यात्मिक विचार एवं आचार के प्रचार व प्रसार हेतु मासिक 'जिनवाणी' पत्रिका का विगत ३२ वर्षों से प्रकाशन। इसके स्वाध्याय, सामायिक, तप, श्रावक धर्म, साधना और ध्यान विशेषाक सर्व प्रशसित और विशेष उपयोगी रहे है। सम्पादक है डॉ० नरेन्द्र भानावत।

२. समाज मे ज्ञान एवं चरित्रवान सुश्रावकों, स्वाध्यायियो, योग्य धार्मिक अध्यापकों तथा मेधावी प्रचारको को तैयार करने हेतु स्वाध्यायी एव शिक्षक प्रशिक्षण शिविरो का आयोजन करना।

३. समाज मे प्रकाण्ड पण्डितो, विद्वानो एव वक्ताओं को तैयार करने हेतु श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण सस्थान का संचालन करना। वर्तमान मे इसमे ५ छात्र अध्ययनरत हैं।

४. गावो एव नगरो में बालक-बालिकाओं तथा नवयुवकों आदि मे धार्मिक संस्कार डालने हेतु स्थानीय धार्मिक शिक्षण शिविरों तथा धार्मिक पाठशालाओ का सचालन करना।

५. सन्त, मुनियो व महासतियांजी के चौमासों से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण-पर्व पर शास्त्र व्याख्यान, चौपाई आदि वाचन हेतु योग्य स्वाध्यायियो को भेज कर जैन संस्कृति के रक्षण व प्रचार एवं प्रसार मे योगदान देना।

६. समाज के विद्वान, चारित्रवान, समाज सेवियो का प्रति वर्ष गुणी-अभिनन्दन करना।

७ मुनियो व गृहस्थो के बीच का ब्रह्मचारी या साधक वर्ग तैयार करना।

८. भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी को व्यापक एवं रचनात्मक ढंग से मनाने हेतु विविध प्रकार के त्याग एवं प्रत्याख्यान करवाने हेतु अखिल भारतीय वीर निर्वाण साधना समारोह समिति का गठन।

९. आगम एवं अन्य विविध प्रकार के सद् साहित्य का प्रकाशन करना। अब तक मण्डल की ओर से लगभग ५० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

मण्डल के अन्तर्गत संचालित विभिन्न संस्थाओं का परिचय इस प्रकार है—

(क) श्री स्था० जैन स्वाध्यायी संघ जोधपुर—इस संघ की स्थापना संवत् २००२ में आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के सदुपदेश से हुई। इसका मुख्य कार्यालय घोडों का चौक, जोधपुर मे है। इसके संयोजक है श्री सम्पतराजजी डोसी। विगत वर्षों मे संघ ने सराहनीय प्रगति की है। वर्तमान मे लगभग १५० स्वाध्यायी श्रावक है जो राजस्थान के अतिरिक्त मद्रास, मैसूर, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि प्रान्तो मे अपनी सेवाएं दे चुके हैं। संघ के प्रमुख उद्देश्य है—

१. श्रावक समाज में सम्यग्ज्ञान का प्रचार व प्रसार करना जिससे प्रत्येक क्षेत्र में संत सतियो की अनुपस्थिति मे भी सामायिक, स्वाध्याय, धर्म ध्यान आदि की प्रवृत्ति चालू रह सकें।

२. पर्वाधिराज पर्युषण के अवसर पर जिन-जिन क्षेत्रो मे संत सतियो के चातुर्मास न हों वहां-वहां स्वाध्यायी श्रावको को भेज कर धर्म आराधना कराना।

३. स्वाध्यायियों के ज्ञान, दर्शन, तप, त्याग में वृद्धि हेतु तथा नये-नये स्वाध्यायी धार्मिक अध्यापक तैयार करने हेतु विभिन्न प्रान्तो मे समय-समय पर धार्मिक शिविरो का आयोजन करना।

४. नगर-नगर व गांव-गांव मे घर-घर के बालक-बालिकाओं एवं नवयुवकों मे धार्मिक संस्कार डालने हेतु धार्मिक पाठशालाएं चलाना एव स्थानीय धार्मिक शिक्षण शिविर लगाना।

५. सब के उपयोगी धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करना।

निम्नलिखित स्थानो पर संघ की प्रमुख शाखाएं हैं—

१. सवाई माधोपुर—इस शाखा के अन्तर्गत सवाई माधोपुर से लगाकर कोटा तक का क्षेत्र है। गत वर्ष तक सदस्यो की संख्या ६५ थी। इस वर्ष के अन्त तक १०१ नये स्वाध्यायी बनने की आशा है।

२. बेंगलोर—कर्नाटक प्रान्त की इस शाखा की स्थापना गत वर्ष ही हुई। वर्तमान में ११ सदस्य हैं।

३. मद्रास—इस शाखा की स्थापना भी गत वर्ष हुई। यहां कुल ७ सदस्य हैं।

४. पाली—इस शाखा की स्थापना भी गत वर्ष हुई। सदस्य संख्या २० है।

५. डूंगला—इस शाखा की स्थापना इसी वर्ष हुई।

गत वर्ष रूंडेडा, नवाणिया, पारमोली, बोहेडा आदि स्थानो पर स्थानीय शिविर लगाये गये तथा कई नये स्वाध्यायी बनाये गये। मेवाड क्षेत्र मे डूंगला, भादसोडा, आकोला, कपासन, भूपालसागर, खैरोदा, वल्लभनगर, धासा, देलवाडा, डबोक, नाथद्वारा, जासमा, फतहनगर, सनवाड़ आदि कई स्थानो मे ८२ नये स्वाध्यायी बने।

उपर्युक्त स्थानों के अलावा अनेक गांवो व नगरो जैसे अजमेर, दिल्ली, जलगांव, उटकमड, कोइम्बटूर, पीपाड, रणसीगाँव, बिलाड़ा, जालोर, बालेसर, भोपालगढ़, कोसाणा आदि के स्वाध्यायी है।

(ख) अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति, जोधपुर—भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण वर्ष को सावना और त्यागमय ढग से मनाने हेतु आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के सद्उपदेशो से ७–१–७२ को राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति माननीय श्री सोहननाथजी मोदी की अध्यक्षता मे इस समिति का गठन किया गया। समिति ने समाज के समक्ष २५ सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमे २५०० मास त्यागी, २५०० शराब त्यागी, २५०० धूम्रपान त्यागी आदि सामाजिक दुर्व्यसनो तथा दहेज प्रथा, रात्रि भोजन, खोटे माप तौल आदि सामाजिक कुरीतियो को मिटाने का संकल्प किया है। इसके साथ ही भगवान् महावीर के सिद्धान्तो को हम अपने दैनिक जीवन मे उतार सकें इस हेतु सामायिक और स्वाध्याय के भी कार्यक्रम प्रस्तुत किए है। इन सभी सकल्पो मे २५००–२५०० न्यूनतम लक्ष्य रखा है। समिति ने अपने लक्ष्यो के पूर्ति हेतु व्यक्तिगत सम्पर्क पर बल दिया एव देश के विभिन्न भागो जैसे मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, कर्नाटक आदि प्रान्तो मे प्रचारार्थ अपने कार्यकर्ता भेजे। मध्यप्रदेश, गुजरात व राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रो मे प्रचार कर उन्हे मांसाहार एव मदिरापान आदि छुड़वाए। इसी प्रकार मद्रास, कर्नाटक आदि प्रान्तो में स्वाध्याय और सामायिक की प्रवृतिया बढाने हेतु प्रचार किया। परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर के शुभाशीर्वाद, सन्तसतियाजी म० सा० की प्रेरणा एव सामाजिक कार्यकर्ताओ के सद्सहयोग के फलस्वरूप समिति ने अपने अधिकतम लक्ष्यो की पूर्ति कर ली है। इन लक्ष्यो की पूर्ति मे समिति को श्री शान्तिचन्द्रजी भण्डारी, श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी, श्री सम्पतराजजी डोसी, श्री मदनराजजी सिंघवी, श्री भवरलालजी चौपडा, श्री मोहनराजजी चामड़, श्री मोहनलालजी जैन, श्री पूनमचन्दजी बरडिया, अहमदाबाद, श्री मोतीलालजी सुराणा, इन्दौर आदि महानुभावों का विशेष सहयोग रहा। समिति के युवा मत्री श्री ज्ञानेन्द्रजी वाफना एव माणकमलजी भण्डारी की कार्य-व्यवस्था सराहनीय रही।

(ग) श्री महावीर धर्म प्रचार संघ—भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान मे गठित अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति द्वारा प्रस्तुत २५ सूत्रीय कार्यक्रमो के बढते चरण मे दिनांक २९–११–७४, शुभ मिति कार्तिक सुदि १५ सम्वत् २०३१, सवाईमाधोपुर वर्षावास के समापन दिवस पर इस सघ की स्थापना की गई। इसका केन्द्रीय कार्यालय जयपुर मे व प्रधान कार्यालय जोधपुर मे है।

सघ के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है—

१. देश के विभिन्न प्रान्तो मे जैन घरो का सर्वेक्षण करना एवं वहा के विशिष्ट व्यक्तियो की तालिकाएँ बनाना।

२. उक्त क्षेत्रो मे प्रवृत्तमान धार्मिक एव सामाजिक गतिविधियो की जानकारी एकत्रित करना।

३. सामयिक सघ एवं स्वाध्याय संघ की प्रवृतियो को बढावा देने हेतु स्थान स्थान पर ऐसे सघो का गठन करना।

४. धार्मिक शिक्षण हेतु यथा सभव धार्मिक पाठशालाएं खोलने का प्रयास करना व स्थानीय धार्मिक शिविरो के आयोजन की प्रेरणा करना ।

५. सामाजिक कुरीतियो एवं दुर्व्यसनो के निवारणार्थ प्रयत्न करना ।

६. मुख्य तिथियो पर स्थानीय कत्लखाने बन्द रखवाने एव अगता पालन करने के लिए जीव दया समितियो का गठन करना ।

७. धार्मिक सत् साहित्य, उपकरण आदि उपलब्ध करवाने हेतु व्यवस्था करना ।

८. धर्म स्थानों को सुचारु रूप से व्यवस्थित रखने का प्रबन्ध करना ।

९. स्वधर्मी वात्सल्य सेवा हेतु कार्य करना एवं समाज के असमर्थ भाई बहिनों की उचित सहायता का प्रबन्ध करना ।

१०. अन्य ऐसे सभी कार्य करना जो धर्म प्रवृत्तियों को बढ़ाने में सहायक हों ।

प्रचारकों की श्रेणियां :—

१. विशिष्ट प्रचारक : जो व्यक्ति एक साल भर सेवा देंगे वे विशिष्ट प्रचारक कहलायेंगे ।

२. प्रेमी प्रचारक : जो व्यक्ति वर्ष मे तीन माह सेवा देंगे तथा प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे प्रेमी प्रचारक कहलायेंगे ।

३. सामान्य प्रचारक : जो व्यक्ति एक वर्ष में लगातार एक माह एव प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे सामान्य प्रचारक होगे ।

४. साधारण प्रचारक : जो व्यक्ति एक वर्ष में एक साथ आठ दिन एवं प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे साधारण प्रचारक कहलायेंगे ।

नियम :—

१. आजीवन सप्त व्यसनों (मांस, मदिरा, शिकार, वेश्यागमन, स्त्रीगमन, जुआ, चोरी) का त्याग ।

२. प्रचारक का जीवन, सरल, सात्विक और आचारनिष्ठ होना ।

सेवाकाल के नियम :—

१. स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का त्याग ।

२. सामायिक, स्वाध्याय, व्रत प्रत्याख्यान से ओतप्रोत दिनचर्या ।

३. धार्मिक क्रिया मे धोती व दुपट्टे का प्रयोग ।

४. प्रतिदिन के कार्यों की डायरी लिखना ।

५. प्रचारक को यात्रा व्यय लेना अनिवार्य होगा ।

६. किसी प्रकार की भेंट स्वीकार नही करेंगे ।

७. किसी प्रकार का धूम्रपान नही करेंगे ।

८. सूर्योदय से पहले चाय नाश्ता नही लेना ।

निम्न का भी यथासम्भव पालन करें :—

१. रात्रि भोजन का त्याग ।

२. स्थानक व ज्ञान गोष्ठियों मे दुपट्टे का प्रयोग ।

३. ज्ञानचर्चा करते समय मुंहपत्ति या रुमाल का प्रयोग ।

कार्य क्रम के विशेष बिन्दु :—

१ प्रत्येक क्षेत्र मे सामायिक व स्वाध्याय का प्रचार करना तथा स्वाध्यायियों एवं योग्य कार्यकर्ताओ को तैयार करना ।

२. धार्मिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध करने की प्रेरणा देना यथासंभव धार्मिक पाठशालाएँ खुलवाना अथवा स्थानीय शिविर लगवाने की प्रेरणा देना । धार्मिक परीक्षाओ के लिए परीक्षार्थियों को तैयार करना ।

३. जहाँ १० या इससे अधिक घर हों वहां पर्यूषण पर्व में स्वाध्यायियो को बुलाने की प्रेरणा करना ।

४. युवक मण्डल, बाल मण्डल एवं महिला मण्डल की स्थापना करना एवं उनमें जागृति भरना ।

५. अपाहिज, निर्धन, जरूरतमन्द आदि व्यक्तियों को सहायता दिलवाने के लिए श्रीमन्तों को प्रेरणा देना ।

६. विविध विषयों पर आवश्यकतानुसार भाषण संगोष्ठियां, निबन्ध लेखमालाएँ आदि साहित्यक व सांस्कृतिक कार्य-क्रमो का आयोजन करना ।

७ स्थानीय आवश्यकताओं के माफिक कार्य करना ।

२. श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर—श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना स० २०१९, मिती आसोज शुक्ला २, दिनांक ३० सितम्बर, १९६२ को श्रद्धेय आचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० के स्थिरावास स्थान उदयपुर नगर मे हुई । इसका मुख्य कार्यालय बीकानेर मे हैं व राजस्थान तथा देश के अन्य भागों में इसकी कई शाखाएँ संचालित है । सघ का उद्देश्य श्रमण संस्कृति और आचार-विचार मूलक सिद्धांतों के धरातल पर स्वस्थ, सम्पन्न समाज का निर्माण करना है । जिसमे व्यक्ति को धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रो मे समता, समानता और स्वतत्रता प्राप्त हो जिससे व्यक्ति समतामय नैतिक धरातल पर स्वनिर्माण, आध्यात्मिक विकास करते हुए सुदृढ, सुसपन्न, प्रगतिशील, जागरूक राष्ट्र बनाने मे सहकारी बने । अतएव इन सभी दृष्टिकोणो को लक्ष्य में रखते हुए विचारशील मनीषीवर्ग ने सघ का उद्देश्य—'**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि और समाजोन्नति के कार्यो को करना**' निर्धारित किया । उद्देश्य को प्रतिफलित करने के लिए सघ ने निम्नलिखित प्रवृत्तियों का प्रावधान अपने विधान मे किया है—

१. जैन साहित्य का निर्माण तथा प्रचार एवं प्राचीन साहित्य की खोज करना और इसके प्रकाशन की व्यवस्था करना ।

२. धार्मिक शिक्षा का प्रचार करना।

३. समाज सेवा तथा पारमार्थिक कार्यों को करना एव दूसरों को प्रोत्साहित करते हुए सहयोग देना।

४. स्वधर्मी सहयोग प्रदान करना।

५. जैन छात्रो को छात्रवृत्ति प्रदान करना व छात्रावास का निर्माण करना।

६. जैन धर्म का प्रचार एव संघ की प्रवृत्तियो को बढाने के लिए पत्र का प्रकाशन करना।

७. जीवदया के कार्यों के लिए प्रयत्न करना।

८. श्रमण-सस्कृति के रक्षार्थ शुद्ध चारित्र पालने वाले साधुमार्गी श्रमणवर्ग के सुसंगठन मे सहयोग देना।

९. उक्त प्रवृत्तियो से सबंधित और पूर्ति मे कोई कार्य करना।

उक्त प्रवृत्तियो के क्रियान्वयन हेतु वर्तमान मे संघ द्वारा निम्नलिखित कार्य हो रहे है—

१. सत्साहित्य का प्रकाशन—अब तक लगभग २५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

२. प्राचीन अनुपलब्ध साहित्य की सुरक्षा व उस पर शोध-कार्य हेतु आचार्य श्री गणेश ज्ञान भण्डार की स्थापना की गई है।

३. धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना एव सचालन—हजारो परीक्षार्थी बोर्ड की विभिन्न परीक्षाओं मे सम्मिलित होते है।

४. धार्मिक-नैतिक शिक्षणशालाओ मे सहयोग—कई स्थानो पर संघ की ओर से इन शालाओ का संचालन किया जाता है।

५. श्री गणेश जैन छात्रावास का संचालन—उदयपुर मे छात्रावास का निजी भवन है जिसमे छात्र रहते है।

६. अध्ययनशील छात्रो को छात्रवृत्ति।

७ स्वधर्मी सहयोग—जरूरतमद भाई-बहिनो को आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाता है।

८. धर्मपाल जैन प्रवृत्ति—आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की प्रेरणा से मालवा-क्षेत्र मे बलाई जाति के भाई-बहिनो को संस्कारशील बनाने मे यह प्रवृत्ति विशेष सक्रिय है।

९. जीवदया संबधी कार्यों को करना।

१०. 'श्रमणोपासक' पाक्षिक पत्र का नियमित प्रकाशन।

११. महिला उद्योग मदिर (रतलाम) की स्थापना।

१२. समता समाज रचना का प्रयत्न।

वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरड़िया व मत्री श्री भंवरलालजी कोठारी है।

३. श्री अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं—तेरापंथ युवक परिषद् युवको का एक गतिशील संगठन है। सरचना और संगठन के माध्यम से समाज की युवा पीढी को सही कार्य दिशा प्रदान करना इसका लक्ष्य है। तेरापंथ धर्म संघ के

संचालक युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी का जीवन्त व्यक्तित्व युवको का प्रेरणा-संबल है। उनके निर्देशन मे चलने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति मे अपनी शक्ति को नियोजित करने मे परिषद् का प्रत्येक सदस्य अपना आत्मगौरव मानता है। यही कारण है कि तेरापथ युवक परिषद् के पवित्र उद्देश्यो की पूर्ति मे श्रद्धास्पद आचार्य प्रवर का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है।

परिषद् का मुख्य कार्यालय लाडनू में है पर देश के विभिन्न भागों मे इसकी शाखाएँ गठित की गई है। युवा भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने तथा जीवन के समग्र पक्षो को समग्रता से देखने का दृष्टिकोण देने के लिये परिषद् ने 'युवादृष्टि' मासिक पत्र प्रारम्भ किया है। केन्द्रीय कार्यालय द्वारा देश के विभिन्न अचलो मे फैली हुई अपनी शाखा परिषदो को एक निश्चित और सुनियोजित कार्यक्रम 'पाथेय' के माध्यम से प्रतिमाह प्रसारित किया जाता है। सत्संस्कारो के निर्माण तथा संयम सहअस्तित्व और अनुशासन का सक्रिय प्रशिक्षण देने के लिये विभिन्न परिषदो द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में शिविर आयोजित किये जाते है। केन्द्रीय परिषद् द्वारा वर्ष मे एक बार अखिल भारतीय युवक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जाता है। जन्म, विवाह और मृत्यु के प्रसंग पर जैन संस्कार विधि के प्रसार का उपक्रम परिषद् ने किया। परिषद् ने इसके लिये एक पुस्तिका भी प्रकाशित की है। समाज मे इसका अच्छा स्वागत हुआ है। पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर भगवान् महावीर की वाणी को जन-जन मे प्रसारित करने का व्यापक कार्य-क्रम परिषद् ने अपने हाथ मे लिया है। स्थान-स्थान पर तथा हर गली मोहल्लो मे महावीर वाणी को अकित करने का कार्य परिषद् की विभिन्न शाखाएं कर रही है। इसी सदर्भ मे ऐसे पच्चीस सौ युवकों को तैयार करने का गुरुतर कार्य परिषद् ने प्रारम्भ किया है जो शादी या विवाह के प्रसग मे किसी प्रकार का लेन-देन का ठहराव नही करेंगे। स्वस्थ समाज की रचना के क्षेत्र मे यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। बालकों मे धार्मिक ज्ञान और संस्कार निर्माण के लिये देश के अनेक भागों मे ज्ञानशालाओ का व्यवस्थित क्रम चल रहा है। समाज के योग्य युवको को काम दिलाने का उपक्रम नियुक्ति केन्द्र के माध्यम से किया जाता है। योग्य और प्रतिभा सम्पन्न छात्रो को छात्रवृत्ति देने का क्रम प्रारम्भ हुआ है। जन साधारण की सुविधा एवं ज्ञान विकास के लिये देश के विभिन्न भागों मे पुस्तकालय एवं वाचनालयों का संचालन विभिन्न तेरापथ युवक परिषदो द्वारा किया जाता है। जनता के लिये यह एक उपयोगी कार्यक्रम सिद्ध हुआ है। बुक बैंक द्वारा अध्ययनशील और जरूरतमन्द छात्रो को इस प्रवृत्ति के द्वारा अनेक क्षेत्रो मे पाठ्यपुस्तको की सुविधा प्रदान की जाती है। समाज की उन बहिनो को, जिन्हे आजीविका के लिये काम की आवश्यकता है, परिषद् के सदस्य विविध उपक्रमो के माध्यम से सहायक योजना क्रियान्वित करने के लिये अग्रसर हो रहे है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री धरमचन्द चोपड़ा और मत्री श्री विजयसिंह कोठारी है।

४. **श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, दादावाड़ी, अजमेर**—जैन समाज की आध्यात्मिक एव सामाजिक प्रगति को लक्ष्य मे रखते हुये इसकी स्थापना सन् १९५२ मे समाज के सेवाभावी श्रीमान् मागीलालजी सा० पारख के कर कमलो द्वारा हुई। उस समय से ही यह संस्था बडे उत्साह, लगन एव निष्ठा से सामाजिक, धार्मिक आदि विविध क्षेत्रों मे अत्युत्तम एव व्यवस्थित रूप से सेवा कार्य कर रही है। जिससे समाज के बाल, तरुण एवं वृद्धानुभवी जनता को पर्याप्त लाभ हुआ और समाज की प्रगति भी हुई।

वार्षिक मेला—जन जागरण, सामाजिक सम्मेलन एवं धार्मिक प्रचार के उद्देश्य से प्रतिवर्ष युगप्रधान दादा सा० जिनदत्तसूरिजी की स्मृति मे आषाढ शुक्ला १०-११ को अखिल भारतीय स्तर पर मेले का आयोजन होता है, जिसमे भारत के भिन्न-भिन्न भागों, नगरो तथा ग्रामों से सैकड़ों की संख्या मे श्रद्धालु भक्तजन आकर पूज्यपाद गुरुदेव के श्री चरणो मे श्रद्धान्जलि समर्पित करते हैं।

पुस्तकालय—संस्था के अन्तर्गत उच्च कोटि की साहित्यिक सामग्री से समृद्ध एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमे विभिन्न प्रकार के लगभग ७००० उपयोगी ग्रंथ है। विद्वज्जन यहाँ प्रवास कर स्वाध्याय, समालोचना तथा शोध कार्य सुचारु रूप से करें, एतदर्थ समुचित व्यवस्था है।

छात्रावास—यहाँ पर बिना शुल्क विशेष के छात्रो को स्थान देने की सुविधा है। प्रति वर्ष अनेक अध्ययनशील छात्र यहां आवास प्राप्त कर लाभान्वित होते हैं।

ऋण-छात्रवृत्ति—समाज के होनहार बालकों के लिये प्रतिवर्ष आवश्यकतानुसार ऋण एवं छात्रवृत्तियां दी जाती है जिसमे छात्रो को अध्ययन संबंधी आवश्यकता व अभाव की पूर्ति होती है। अब तक कुल ८६,००० रु० की छात्रवृत्तियां योग्य छात्रो को दी जा चुकी हैं। ऋण प्राप्त करने वाले छात्र अध्ययन के पश्चात् ऋण राशि तत्परता पूर्वक लौटा देते हैं। विद्या के क्षेत्र मे भी यह संस्था अच्छी प्रगति कर सकी है। जो ओसवाल कन्याये संस्कृत लेकर अपना अभ्यास आगे बढ़ाती है उन्हें छात्रवृत्ति देकर उनका निरन्तर उत्साहवर्धन किया जाता है। इस योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बिना किसी स्थाई कोष के १२ वर्ष से निरन्तर सफलतापूर्वक उद्देश्य पूर्ति मे तत्पर है। कुछ वर्षो से उदारदानी महानुभावो से प्रति वर्ष लगभग १०,००० रु० की धनराशि एकत्रित कर वितरण कर दी जाती है। ऋण लेने वाले छात्र ऋण राशि के भुगतान के साथ ही अपनी ओर से सस्था को यथाशक्ति धनराशि प्रदान कर सक्रिय सहयोग भी देते है।

निराश्रितों को सहायता—गत चार वर्षो से समाज के अशक्त बन्धुओं और बहनो को जो निराश्रित है अथवा जिनके पास जीवनयापन का कोई साधन नही हैं उन्हे उदार दानी सज्जनो के आर्थिक सहयोग से सक्रिय सहायता देने की व्यवस्था है। इससे कई बंधु व बहिनें लाभान्वित हो रही हैं।

प्रकाशन—किसी भी समाज, जाति एवं धर्म को यदि जीवित रहना है तो समाज एव जाति व उस धर्म को मानने वालो मे सुसंस्कारो का बीजारोपण करने के लिये सुसाहित्य की अत्यंत आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण को लेकर अब तक इस योजना के अन्तर्गत २२ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

५. राजस्थान जैन सभा जयपुर—राजस्थान जैन सभा दिगम्बर जैन समाज जयपुर का एक मात्र ऐसा प्रतिनिधि सगठन है जो जैन समाज के सभी वर्गो को सगठित कर उसके सर्वांगीण विकास मे सक्रिय प्रयत्नशील है। समाज के साहित्यिक, सास्कृतिक, चारित्रिक एवं आर्थिक उन्नति मे कार्यक्रम हेतु सभा का स्वयं का एक सविधान है जो राजस्थान सोसाइटीज एक्ट के अन्तर्गत पजीकृत है।

अपने कार्यकाल मे सभा ने जहां जैन मान्यताओं और जैन समाज के हितों की रक्षा के लिये प्रयत्न किये हैं वहां नवयुवको मे जीवन एव स्फूर्ति उत्पन्न करने की दिशा मे काफी महत्वपूर्ण भूमिका

प्रदा की है। जनमानस को धर्म एवं कर्तव्य की ओर आकृष्ट करने की दृष्टि से पर्युषण पर्व, क्षमापन समारोह, महावीर जयन्ती तथा निर्वाणोत्सव आदि प्रमुख पर्वों पर विविध आयोजन सभा की मुख्य गतिविधियां है।

सामाजिक कुरीतियो के उन्मूलन हेतु सभा ने समाज का ध्यान आकृष्ट करते रहने का कार्यक्रम भी लिया हुआ है तथा उस दिशा मे सतत् प्रयत्नशील है। साहित्यिक गतिविधियों मे समय-समय पर छोटे-छोटे ट्रेक्टस् प्रकाशित किये हैं और महावीर जयन्ती के अवसर पर 'महावीर जयन्ती स्मारिका' का प्रकाशन किया जाता है—यह प्रकाशन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जयपुर के मूक समाज-सेवी मास्टर मोतीलालजी सघी का स्मृति दिवस मनाना भी सभा की एक नियमित गतिविधि बनी हुई है इसका मुख्य उद्देश्य सेवाभावी कार्यकर्ताओ को तैयार करना है।

सभा की गतिविधि केवल समारोहो के आयोजन तक ही सीमित नही रही है। राजस्थान विधान सभा में प्रस्तुत किये गये नग्न विरोधी बिल को वापिस कराने, राजस्थान सरकार द्वारा अनन्त चतुर्दशी एवं संवत्सरी का ऐच्छिक अवकाश स्वीकृत कराने, राजस्थान विधान सभा द्वारा पारित राजस्थान ट्रस्ट एक्ट मे संशोधन कराने तथा जन-गणना मे जैन सम्प्रदायो के सभी वर्गो को जैन लिखवाने आदि क्षेत्रो मे भी इस सभा ने काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

जयपुर मे पधारे आचार्यों, मुनियो, तथा विद्वानो के भाषणों, विचार गोष्ठियो के आयोजन भी सभा कराती रहती है तथा समाज के लोगों को उनके द्वारा विशेष कार्य सम्पन्न कराने, विदेश यात्रा से लौटने अथवा उच्च स्थान प्राप्त करने पर भी उन्हे सम्मान देने की दृष्टि से समय-समय पर अभिनन्दन समारोह के आयोजन भी सभा द्वारा किये जाते है।

सभा में कार्य समिति के लिये प्रतिवर्ष चुनाव होते है। विधानानुसार क्रम से साल सदस्यों का रिटायरमेंट होता है और उनके स्थान पर नवीन चुनाव बेलट पद्धति द्वारा कराये जाते हैं। वर्तमान में सभा के अध्यक्ष श्री कपूरचन्द पाटनी और मन्त्री श्री रतनलाल छाबडा हैं।

६. श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर—मरुस्थल मे सरस्वती सुरसरि प्रवर्तित करने का भगीरथ प्रयत्न सेठिया बन्धु द्वारा (श्री अगरचन्दजी एवं श्री भैरोदानजी) ने सन् १९१३ मे किया। तदन्तर ज्ञानरश्मियां सम्पूर्ण भारत में प्रशस्त करने के उद्देश्य से संस्था मे ग्रन्थालय, प्रकाशन विभाग सिद्धान्तशाला आदि खोले गये। गत ६२ वर्षों मे संस्था ने जैनधर्म एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार का जो कार्य किया है वह चिर-स्मरणीय रहेगा। संस्था भवन मरोठी सेठियो के मोहल्ले में मुख्य सड़क पर स्थित है। संस्थापको ने दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाया और कलकत्ता मे संस्था के मकान खरीद लिए, जिसके किराये और ब्याज मे संस्था का कार्य सुचारु रूप से चलना आ रहा है। स्व० श्री जेठमलजी सेठिया की मंत्री के रूप मे उल्लेखनीय सेवाएं रही हैं। वर्तमान में श्री जुगराजजी सेठिया संस्था के मन्त्री है। सम्प्रति संस्था के निम्नलिखित विभाग हैं—

(१) प्रकाशन विभाग—वैदिक संस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु जिस प्रकार गीता प्रेस, गोरखपुर ने कार्य किया है, उसी स्तर पर संस्था ने जैनधर्म दर्शन के व्यापक प्रचार-प्रसार का कार्य किया है। संस्था ने निजी मुद्रणालय क्रय कर बडे पैमाने पर ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। अब तक सेठिया जैन ग्रन्थमाला के १४० पुष्प प्रकाशित हुए हैं। संस्था का सदा यही उद्देश्य रहा है कि पुस्तके लागत मूल्य या उससे भी कम मूल्य पर उपलब्ध की जायें। अब तक विविध ग्रन्थो की हजारो प्रतियो का मूल्य

'सदुपयोग', 'नित्य पठन', 'ज्ञानाराधन', रखकर संस्था ने संस्कार-निर्माण की दिशा में श्लाघनीय कार्य किया है। सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल का थोकड़ा आदि ग्रन्थ वर्षों से प्रामाणिक माने गये हैं और इनका बड़े पैमाने पर अध्ययन किया जाता रहा है। हिन्दी बालशिक्षा एवं जैन सिद्धात बोल सग्रह ग्रन्थो की मुक्तकठ से प्रशसा हुई है। जैन सिद्धात बोल संग्रह (भाग १–८) तो जैन धर्म दर्शन का विश्वकोष है। इसमे बोल-क्रम से जैन ग्रन्थो का निचोड़ संगृहीत है।

(२) **पुस्तक उपहार विभाग**—संस्था द्वारा विविध पुस्तकालयो, अध्ययन केन्द्रो, सन्त-सतियांजी एवं अन्य पाठको को उपहार स्वरूप ग्रन्थ भेजने का प्रावधान है। प्रतिवर्ष करीब ५००) रु० के ग्रन्थ भेंट स्वरूप प्रदान किए जाते हैं। इनमे मुख्य रूप से संस्था के प्रकाशन होते हैं।

(३) **दीक्षोपकरण एवं धर्मोपकरण विभाग**—दीक्षार्थी भाई-बहनो के लिए ओघे, पातरे, खादी, पूंजणी, कम्बल, डोरी आदि उपकरण संस्था द्वारा प्रदान करने का प्रावधान है। पातरे, डोरी, कपडा आदि सभी सम्प्रदाय के मुनिराज ले सकते हैं। इसी प्रकार धार्मिक उपकरण भी सस्था मे सगृहीत हैं। पूंजणी, आसन, ओघे आदि विक्रयार्थ भी उपलब्ध किए जाते हैं।

(४) **सेठिया जैन छात्रावास**—जैन आवासीय शिक्षण संस्थाओं मे सेठिया जैन छात्रावास का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सन् १९४६ से चल रहा है। इसमे प्रविष्ट छात्रो के लिए आवास, भोजन, बिजली, पानी आदि की नि:शुल्क व्यवस्था संस्था की ओर से है। संस्था को गर्व है कि छात्रावास मे अध्ययन कर सैकडो छात्र आज लब्ध प्रतिष्ठ चिकित्सक, निदेशक, प्राचार्य, व्याख्याता, अधिवक्ता अभियता, प्रशासक, लेखक, सम्पादक, व्यापारी, शिक्षक आदि के रूप मे समाज एवं राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। छात्रावास मे रहकर उन्होने व्यावहारिक शिक्षा तो ग्रहण की ही, साथ मे धार्मिक अध्ययन से उनमे संस्कार-निर्माण भी हुआ है।

(५) **सेठिया जैन ग्रन्थालय**—ग्रन्थालय मे हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, अरबी प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओ की २०००० पुस्तके हैं। विविध विषयो के चुनिन्दा ग्रन्थों का सग्रह कर संस्थापको ने समाज को एक निधि दी है। सैकड़ो ग्रन्थो की एकाधिक प्रतिया हैं और अनेक दुर्लभ ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। वाचनालय उपविभाग मे त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एव दैनिक—कुल ३० पत्र-पत्रिकाए आती हैं।

(६) **कन्या पाठशाला**—सन् १९२८ से सेठिया जैन कन्या पाठशाला कार्यरत है इसमे प्राथमिक स्तर का अध्ययन कराया जाता है। शैक्षणिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के साथ छात्राओ को नैतिक व धार्मिक शिक्षा दी जाती है जिससे उनमे धार्मिक संस्कार जाग्रत हो। साथ ही छात्राओ को सिलाई, कसीदा, स्वेटर बुनना आदि भी सिखाया जाता है। सम्प्रति, १४५ छात्राएं अध्ययन कर रही हैं।

(७) **सिद्धान्तशाला एवं विद्यालय**—सन्त-सतिया जी को पढाने के लिए संस्था द्वारा पूर्ण व्यवस्था की गई है। उन्हे व्याकरण (हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत) जैनागम, दर्शन आदि विषयो का अध्ययन कराया जाता है। योग्य एव होनहार छात्रो के लिए फीस, पुस्तकें आदि प्रदान करने का भी प्रावधान है। सस्था की ओर से इनके लिए ट्यूशन की व्यवस्था भी की जाती है।

(८) **होमियोपैथिक औषधालय**—सन् १९५३ से सस्था की ओर से निशुःल्क होमियोपैथिक औषधालय चलता है, जिसमे प्रतिदिन २५० से भी अधिक रोगी अपनी चिकित्सार्थ आते हैं।

७. **श्री ओसवाल सभा, बीदासर**—इस सभा की स्थापना वि. सं० १९८६ मे हुई थी। अपने लम्बे कार्यकाल मे सभा ने महत्व पूर्ण प्रगति की है और आज यह सभा बीदासर कस्बे की सामाजिक

व सास्कृतिक उत्थान करने वाली प्रतिनिधि सस्था है। सस्था के कार्यक्रम 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की पवित्र भावना पर आधारित है। संस्था का उद्देश्य एक आदर्श समाज की रचना का रहा है, जहाँ सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम, सहयोग, एवं भ्रातृत्व भावना से रहते हुए उन्नति की ओर कदम बढाते जाए।

पिछले लगभग ४६ वर्षो मे संस्था ने जिन महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों के संस्थापन एव सचालन मे सहयोग दिया है, वे निम्न प्रकार है—

(क) सेठ दुलीचन्द सेठिया हा. सै. स्कूल (ख) श्री गान्धी बालिका उच्चतर विद्यालय (ग) श्री खूबचन्द बाठिया विद्या मन्दिर (घ) श्री भवरी देवी शेखानी मातृ सेवा सदन (ङ) श्री भवर पुस्तकालय (च) श्री ओसवाल स्वास्थ्य परिषद् (छ) बालबाडी (ज) श्री दीपचन्द बोथरा सार्वजनिक वाचनालय (झ) श्री सुख समृद्धि फन्ड का निर्माण।

सभा का अपना सुन्दर भवन है। सभा द्वारा बीदासर कस्बे की सार्वजनिक उन्नति मे लगातार योग रहा है। बीदासर नगरपालिका के निर्माण मे सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। सभा कस्बे के सुन्दर व आधुनिक सुविधाओ से पूर्ण बनाने का लगातार प्रयत्न करती रही है। सभा की भावी योजनाओ में पशु चिकित्सालय का निर्माण, गऊशाला की स्थापना, विश्रामालय के लिए भवन-निर्माण, महिला कुटीर उद्योग की स्थापना, टाउनहाल का निर्माण, मानकसर तालाब पर पिकनिक, स्पोट का विकास आदि प्रमुख कार्यक्रम है।

८. **श्री जैन शिक्षण संघ, कानोड़**—२४ अक्टूबर, १६४० ई० मे पं० 'उदय' जैन द्वारा अपने पिता और अपने नाम से संस्थापित 'प्रतापोदय' स्कूल १६४६ ई मे व्यवस्थित श्री जैन शिक्षण सघ कानोड़ बना दिया गया और मेवाड़ गवर्नमेट से रजिस्टर्ड करा दिया गया। वर्तमान मे इसके सचालक पं० उदय जैन है।

१६४७ ई० मे जैन विद्यालय, जैन कन्या विद्यालय, डूंगला, मोरवन, मंगलवाड़ चिकारड़ा और कुंथवास धार्मिक स्कूलो के साथ जैन छात्रालय भी चालू किया गया। १६५२ ई० तक सभी संस्थाये इस सघ द्वारा चलाई जाती थी।

१६५२ अप्रैल से जवाहर विद्यापीठ अलग रजिस्टर्ड संस्था बनादी गई तब से राज्य सरकार से मदद प्राप्त सभी प्रवृत्तिया इसके अन्तर्गत आ गई। श्री जैन शिक्षण सघ इनको आर्थिक योग देता आ रहा है।

वर्तमान में श्री जवाहर जैन छात्रालय प्रमुखतया चल रहा है। इसमे २३० बच्चे बाहर के रहते है और उन्हे मकान, पानी, भोजन व रोशनी का पूर्ण लाभ दिया जाता है। औषधोपचार की भी व्यवस्था है। धार्मिक, शारीरिक व व्यावहारिक शिक्षण दिया जाता है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश के छात्र लाभ उठा रहे हैं। चालू वार्षिक व्यय १½ लाख रुपयो का है गृहपति सहित १० कर्मचारी कार्यरत हैं।

वर्तमान भवन ७ बीघा जमीन पर फैले हुए है। जवाहर जैन छात्रालय, विनोद कुमार सामायिक भवन, जैन कन्या गुरुकुल भवन, अध्यापक वसति गृह पशुशालाएँ आदि करीब ८ लाख के भव्य भवन है। सभी भवनो मे पानी और रोशनी की सस्था की निजी व्यवस्था है।

भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष में 'वीर-विभूति' प्रकाशित हो चुकी है और 'सांप्रदायिकता से ऊपर उठो' ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। १० 'उदय' जैन अभिनंदन ग्रन्थ का प्रकाशन भी जैन शिक्षण संघ द्वारा किया गया है।

सभी प्रवृत्तियो को चलाने के लिए सवा लाख का स्थायी फंड भी है जो बैंको में सुरक्षित है। जैन शिक्षण संघ का चालू व्यय ६०,०००) रु० वार्षिक का है। इसके अन्तर्गत ही स्वायत्त ग्राम्य महाविद्यालय, उच्च माध्यमिक विद्यालय, जवाहर पुस्तकालय एव वाचनालय, प्राथमिक पाठशाला, कन्या विद्यालय, श्री कस्तूर बाई बालचन्द जवाहर बालमन्दिर, महिला उद्योगशाला, रात्रि प्रौढ़शाला आदि अनेक प्रवृत्तिया संचालित है।

६. पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर—इस संस्था का मुख्य उद्देश्य आत्मकल्याणकारी, परम-शान्ति-प्रदायक वीतराग-विज्ञान तत्त्व का नई पीढी मे प्रचार व प्रसार करना है। इसकी पूर्ति के लिए संस्था ने तत्त्व प्रचार सम्बन्धी अनेक गतिविधियां प्रारम्भ की, जिन्हें अत्यल्प काल मे ही अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई है। वर्तमान मे ट्रस्ट द्वारा निम्न गतिविधिया संचालित हैं।

पाठ्यपुस्तक निर्माण विभाग—बालकों को सामान्य तत्त्वज्ञान प्राप्ति एव सदाचारयुक्त नैतिक जीवन बिताने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से युगानुकूल उपयुक्त धार्मिक पाठ्यपुस्तकें सरल, सुबोध भाषा में तैयार करने में यह विभाग कार्यरत है। इसके अन्तर्गत बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३; वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३; तथा तत्त्व ज्ञान पाठमाला भाग १, २, पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है।

परीक्षा विभाग—उपर्युक्त पुस्तको की पढ़ाई आरम्भ होते ही सुनियोजित ढंग से परीक्षा लेने की समुचित व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप 'श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड' की स्थापना हुई। इस परीक्षा बोर्ड से सन् १९६८-६९ मे ५७१ छात्र परीक्षा मे बैठे, जबकि १९७३-७४ मे यह सख्या बढकर २०,०३५ हो गई। परीक्षा बोर्ड से विभिन्न प्रान्तों की ३०९ शिक्षण-सस्थायें सम्बन्धित हैं—जिनमे २२० तो परीक्षा बोर्ड द्वारा स्थापित नवीन वीतराग विज्ञान पाठशालायें हैं। गुजराती भाषी परीक्षार्थियों की सुविधा की दृष्टि से इसकी एक शाखा अहमदाबाद मे भी स्थापित की गई है।

शिविर विभाग—१. प्रशिक्षण शिविर—श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम चालू हो जाने पर और उत्तर-पुस्तकाओ के अवलोकन करने पर अनुभव हुआ कि अध्ययन शैली मे पर्याप्त सुधार हुए बिना इन पुस्तको को तैयार करने का उद्देश्य सफल नही हो सकेगा। अतएव धार्मिक अध्यापन की सैद्धान्तिक व प्रायोगिक प्रक्रिया मे अध्यापक बन्धुओ को प्रशिक्षित करने हेतु ग्रीष्मावकाश के समय २० दिवसीय प्रशिक्षण शिविर लगाया जाना प्रारम्भ किया गया। तत्सम्बन्धी एक पुस्तक 'वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका' भी प्रकाशित की गई है। अभी तक ऐसे कुल सात शिविर क्रमशः जयपुर, विदिशा, जयपुर, आगरा, विदिशा, मलकापुर व छिंदवाड़ा मे सम्पन्न हो चुके हैं, जिनमे ९४० अध्यापको ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

२. शिक्षण शिविर—प्रशिक्षण शिविर की भांति ही बालको एवं प्रौढों के लिये भी यथासमय जगह-जगह शिक्षण शिविर लगाये जाते हैं। इनमे लोकप्रिय प्रवचनकारो के साथ ही ट्रस्ट के

प्रशिक्षण शिविरों में प्रशिक्षित अध्यापक पढ़ाने जाते हैं। परिणामस्वरूप जगह-जगह वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खुलती हैं। अतः परीक्षा बोर्ड की छात्र संख्या बढ़ने मे इनका बहुत बड़ा योगदान है।

शिक्षा विभाग—इस विभाग की चार शाखायें हैं—

१. **वीतराग विज्ञान पाठशाला विभाग**—इस विभाग के अन्तर्गत धार्मिक शिक्षण देने के लिए सारे भारत मे इस समय २२० पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं, जिनमे एक घण्टा धर्म की शिक्षा दी जाती है।

२. **सरस्वती भवन विभाग**—अध्ययन व स्वाध्याय के लिए सर्व प्रकार का साहित्य उपलब्ध हो सके, इस दिशा मे सरस्वती भवन में अब तक १,८८२ ग्रन्थों का संग्रह किया जा चुका है।

३. **वाचनालय विभाग**—वाचनालय विभाग में लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान की वृद्धि हेतु धार्मिक, सामाजिक और लौकिक सभी प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ मगाई जाती है। वर्तमान में इनकी सख्या २० हैं।

४. **शोधकार्य विभाग**—'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व' नामक शोध-प्रबन्ध इस विभाग की प्रथम उपलब्धि है। इस विभाग द्वारा आगे और भी शोधकार्य हाथ मे लिए जाने की अपेक्षा है।

वर्तमान में डॉ० हुकमचंद भारिल्ल इसके संचालक व श्री नेमीचन्द पाटनी इसके मन्त्री हैं।

१०. **श्री अखिल भारतीय पल्लीवाल जैन महासभा, जयपुर**—सन् १९६२ में जयपुर के कतिपय नवयुवको ने पल्लीवाल जैन समाज मे संगठनात्मक कार्य की दृष्टि से उक्त संगठन को जन्म दिया। संगठन के विधान में एक प्रमुख उद्देश्य यह भी था कि जितनी जैन जातिया, उपजातियां हैं, उनको सामाजिक दृष्टि से सगठित किया जाये और जैन समाज की भावनात्मक स्तर पर एकता बढ़ाई जाये। इस दृष्टि से संगठन का मासिक-पत्र "जैन सगम" जयपुर से प्रकाशित किया गया। पत्रिका का सम्पादन श्री महावीर कोटिया ने तथा व्यवस्था का कार्य श्री युगलकिशोर जैन व कुन्दनलाल काश्मीरिया ने बराबर इसी लक्ष्य को ध्यान मे रखकर किया। पत्रिका कुछ परिस्थितियों वश सन् १९६६ मे बन्द कर देनी पडी। सगठन के कार्य मे भी कुछ शिथिलता आई। परन्तु उत्साही कार्यकर्ताओं के प्रयास से संस्था को पुनर्गठित किया गया। इस समय संस्था के अध्यक्ष डॉ० किशनचन्द तथा महामन्त्री श्री कान्तिकुमार हैं। संस्था का पत्र "पल्लीवाल जैन" नाम से प्रकाशित हो रहा है। संस्था का अपना एक स्थायी कोष है जिसके ब्याज से तथा अन्य स्रोतो से विविध सामाजिक गतिविधियो, जिनमे असहाय विधवाओं को सहायता, निर्धन विद्यार्थियो, विधवाओ को छात्रवृत्तियां देना आदि भी सम्मिलित हैं। संगठन अखिल भारतीय स्तर पर कार्य रत है तथा विभिन्न स्थानों पर इसकी शाखाएँ है।

११. **श्री वर्धमान श्वेताम्बर स्था० जैन श्रावक संघ, जयपुर**—इस संघ की स्थापना सन् १९३० मे हुई थी यह संघ जयपुर श्वे० स्था० समाज की प्रतिनिधि संस्था है। संघ द्वारा निम्न प्रवृत्तियो का संचालन हो रहा है—

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, श्री जैन श्वे० स्था० शिक्षा समिति के अन्तर्गत—(क) श्री एस० एस० जैन सुबोध महाविद्यालय, (ख) श्री एस० एस० जैन सुबोध उ० मा० विद्यालय, (ग) श्री एम० एस० जैन सुबोध बालिका विद्यालय, (घ) श्री एस० एस० जैन सुबोध प्राथ० विद्यालय। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ, सोसायटी, पक्षी चिकित्सालय, धार्मिक व नैतिक शिक्षणालय, श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, कबूतर भण्डार।

सघ के वर्तमान अध्यक्ष श्री गणपतलाल जी कोठारी तथा मन्त्री श्री सरदारमल जी चौपडा है।

१२. **श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर**—श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर सामाजिक व सांस्कृतिक अभ्युत्थान मे रत एक महत्त्वपूर्ण सस्था है। सस्था विविध ११ प्रवृतियो का सचालन व प्रबन्ध करती है जो इस प्रकार है—

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ मन्दिर, उपाश्रय, आत्मानन्द जैन सभा भवन, धार्मिक पाठ-शाला, जैन श्वे० मित्र-मण्डल पुस्तकालय, श्री वर्धमान आयम्बिल शाला, श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल, श्री सुमति ज्ञान भण्डार, सुमति जिन स्नात्र मण्डल, जैन कला चित्र दीर्घा तथा 'मणिभद्र' वार्षिक-पत्र का प्रकाशन। वर्तमान मे श्री हीरा भाई एम० शाह इसके अध्यक्ष और श्री जवाहरलाल चौरडिया सघ मत्री है।

१३. **श्री जैन श्वे० खरतर गच्छ सघ, जयपुर**—जयपुर खरतर गच्छ समाज की विविध प्रवृत्तियो का सचालन इस संघ के माध्यम से होता है। समाज के मन्दिर तथा धर्मशालाओ की व्यवस्था के अतिरिक्त सघ द्वारा भी ज्ञान भण्डार (प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ भण्डार), ज्ञान प्रसारण भण्डार व पुस्तकालय, धार्मिक शिक्षण केन्द्र आदि प्रवृत्तियो का संचालन भी होता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री महतावचन्द गोलेछा व मन्त्री श्री सुभागचद नाहटा हैं।

१४. **श्री जैन श्वे० तेरापन्थी सभा, जयपुर**—सभा की स्थापना सन् १९३३ मे हुई। तेरापंथी समाज की विविध प्रवृत्तियो की व्यवस्था व सचालन सभा करती है। मुख्य प्रवृत्तिया है—तेरापन्थी सभा भवन, तेरापन्थी माध्यमिक विद्यालय, श्री तेरापंथी महिला मण्डल व कन्या मण्डल, श्री तेरापंथ युवक परिषद्, श्री गुलाव पुस्तकामय व ज्ञानशाला। सभा के वर्तमान अध्यक्ष श्री श्यामलाल नागौरी तथा मन्त्री श्री राजकुमार बरडिया है।

१५. **अ० भा० दिग० जैन परिषद्, जयपुर प्रान्तीय शाखा, (राजस्थान)**—यह अखिल भारतीय स्तर की प्राचीनतम संस्था की शाखा है। इसकी स्थापना हुए ५० वर्ष से भी अधिक समय हो गया है। इस परिषद् की राजस्थान प्रदेश शाखा का उद्घाटन १९ जनवरी, १९६८ को जयपुर में बडे दीवान जी के मन्दिर में सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० प० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ द्वारा सम्पन्न हुआ। राजस्थान मे विभिन्न नगरो मे इसकी २० से अधिक शाखाएं स्थापित हो चुकी है। इसका प्रमुख उद्देश्य जैन समाज मे सामाजिक एवं सास्कृतिक जागृति उत्पन्न करना है। इस परिषद् की जयपुर शाखा के अध्यक्ष डॉ० कस्तूरचद कासलीवाल और मन्त्री श्री बाबूलाल सेठी है।

१६. **श्री भैरूबाग पार्श्वनाथ जैन तीर्थ, जोधपुर**—इसकी स्थापना सं० १९४८ में हुई व श्रीमद् विजयनीति सुरीश्वर जी म० सा० के सान्निध्य मे निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। इसकी प्रतिष्ठा

स० १९९८ मे श्रीमद् विजयलब्धि सूरीश्वर जी म० सा० द्वारा सम्पन्न हुई। यहां दुमंजिला मन्दिर है जिसमें भगवान् पार्श्वनाथ की विशाल कलापूर्ण मकराने की मूर्ति प्रतिष्ठित है। मन्दिर के साथ ही ६० कमरो की एक धर्मशाला है। जहा जैन सत-सतियो को ठहरने की व्यवस्था के साथ यात्रियों को ठहरने की भी सुविधा है। यहा भोजनशाला, आयबिल शाला, धार्मिक पाठशाला आदि प्रवृत्तियां भी चालू है।

१७. जैन विश्व भारती, लाडनू—तेरापथ द्विशताब्दी के अवसर पर आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से जैन विश्व भारती की योजना बनी और विचार-विमर्श व विद्वानो के सतपरामर्श से बने संस्था के सविधान को २२ अगस्त १९७० को पंजीकृत कराया गया।

जैन विश्व भारती के रूप मे जैन-विद्या के अध्ययन-अध्यापन व शोध की एक अनूठी विश्व-संस्था सस्थापित करने की परिकल्पना है जो लगभग १५० बीघा भूमि पर फैली होगी। संस्था के मुख्य भवनो में ग्रन्थालय भवन, अतिथि भवन, केन्द्रीय हाल, प्रयोगशालाये, साधना भवन, कार्यकर्त्ता प्रवास भवन, छात्रावास ध्यान कुटीर, स्वाध्याय भवन आदि के निर्माण की योजना है। वर्द्धमान ग्रंथागार और अतिथि भवन का उद्घाटन तथा गौतम ज्ञान शाला, महिला विद्यापीठ तथा तुलसी अध्यात्म नीड़म् आदि भवनो का शिलान्यास मार्च ७५ में उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ति द्वारा सम्पन्न हुआ। समय-समय पर जैन विद्या से सम्बद्ध संगोष्ठियों का आयोजन इसकी मुख्य प्रवृत्ति है। जैन विश्व भारती का प्रकाशन विभाग कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर चुका है। 'तुलसीप्रज्ञा' त्रैमासिक पत्रिका का भी प्रकाशन होता है। इसके अध्यक्ष श्री खेमचंद सेठिया व मंत्री श्री सम्पतराय भूतोडिया है। इसकी एक शाखा दिल्ली मे भी है।

(२) धार्मिक, सामाजिक जागृति एवं संस्कार निर्माणकारी प्रमुख संस्थाएँ

१. श्री अ. रा. स्था. अहिंसा प्रचारक जैन संघ, अहिंसानगर, चित्तौड़गढ़—श्री सुमेर मुनि जी म० ने राजस्थान व मध्यप्रदेश की बिखरी खटीक जाति मे अहिंसा का प्रचार करने हेतु अपना लक्ष्य निर्धारित कर उन लोगो से सम्पर्क किया। उनको धीरे-धीरे उपदेशो से अपनी ओर आकर्षित किया। सयोग से मुनि श्री का संवत् २०१३ का चातुर्मास चित्तौड़ नगर मे हुआ। उसी वर्ष ९-१० खटीक परिवारो ने सस्कारी बनना स्वीकार किया। धीरे-धीरे नीमच, छावनी, प्रतापगढ़, नारायणगढ, मनासा, मन्दसोर, छोटी सादडी, निम्बाहेडा आदि के खटीक परिवारो ने अपने पुराने धन्धे (मांस बकरे आदि का विक्रय) छोड़ अहिंसा के मार्ग पर चलने की शपथ ली। जब धीरे-धीरे कुछ परिवारों ने सस्कारी बनना स्वीकार किया तो बीच मे १ मई, १९५८ को इन सब परिवारो को नई जाति का रूप देकर वीरवाल जाति नाम से सम्बोधित किया गया। इस संस्कार परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य अधर्म-निवारण करके धर्म की स्थापना करना, अज्ञान मिटाकर ज्ञान की वृद्धि करना, दुर्गुण दूर करके गुण बढ़ाना, अनार्य प्रवृत्ति का त्याग कर अहिंसा का पूर्ण पालन करना एवं जाति मे फैले हुए गरीबी के कारणो को दूर कर साधारण सम्पन्नता बढ़े, वैसा प्रयत्न करना रहा। धीरे-धीरे मालवा व मेवाड़ के उन क्षेत्रो मे मुनि श्री का विहार हुआ, जिन क्षेत्रो मे इस जाति के लोग काफी मात्रा मे थे। आज कुल मिलाकर १००० परिवार अहिसा का रास्ता अपना कर, वीरवाल बने है।

इस प्रवृत्ति को स्थायी रूप से चलाने के लिये चित्तौडगढ से ४ मील दूर ओछडी व सेती के समीप करीब २० एकड़ जमीन लेकर अहिंसा नगर की स्थापना की गई है जो इस प्रवृत्ति का मुख्य

केन्द्र विन्दु है। ३ अप्रैल १९६६ महावीर जयन्ती के अवसर पर राजस्थान के मुख्य मंत्री मोहनलाल जी सुखाड़िया के कर कमलो द्वारा अहिंसा नगर का शिलान्यास हुआ। उस अवसर पर इस प्रवृत्ति को मूर्त रूप देने के लिए सेठ श्री हेमराज जी सा० सिंघवी, कुशलपुरा वाले ने १ लाख रुपये दान देने की घोषणा की। वर्तमान मे इस संस्था द्वारा निम्नलिखित प्रवृत्तियां संचालित हो रही है—

धार्मिक सम्मेलन व शिविर आयोजन—वीरवाल जाति के सामाजिक व आर्थिक पहलुओं पर विचार-विमर्श व समाधान हेतु वर्ष मे एक से अधिक सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। इन सम्मेलनो मे साधु-सन्त व समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति व कार्यकर्ता आदि सम्मिलित होते है। वर्ष मे एक बार पर्युषण पर्व के अवसर पर ८ दिन का वार्षिक शिविर आयोजित किया जाता है। जिसमें वीरवाल परिवारो को धार्मिक अध्ययन कराया जाता है। इन शिविरो मे वीरवाल भाई-बहन सामायिक, उपवास आदि करते है। इन परिवारो मे बहुत से भाई-बहन ५-८ ही नही १-१ माह के उपवास तक करते हैं। ये रात्रि भोजन नही करते, व जैन धर्म के प्रमुख नियमो की पूरी-पूरी पालना करते हैं।

छात्रावास—अहिंसा नगर मे एक छात्रावास सन् १९६८ से चलाया जा रहा है जिसमें वीरवाल विद्यार्थियो को भोजन, निवास, दूध तथा रोशनी आदि की निशुल्कः सुविधा प्रदान की जाती है। इस वर्ष चार अहिंसक आदिवासी छात्रो को भी भरती किया गया है। गरीब छात्रो को पाठ्य पुस्तके कपडे आदि भी दिलवाये जाते हैं। इस वर्ष छात्रावास के परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहे। छात्रावास मे स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

छात्रवृत्ति—छात्रावास के अतिरिक्त अन्य वीरवाल छात्रो को संघ के माध्यम से छात्रवृत्ति दी जाती है तथा जरूरतमंद छात्रो को रोजगार भी उपलब्ध करवाया जाता है।

रात्रि-शालाएँ—संघ की ओर से कूरज और वल्लभनगर मे रात्रि शालाये भी चलाई जाती हैं। जिनमे धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। इस समय लगभग १०० छात्र–छात्रायें इन रात्रि शालाओ का लाभ उठा रहे हैं। भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष के दौरान २५ रात्रि-शालाएँ चलाने का निर्णय किया गया हे।

वर्तमान मे संघ के अध्यक्ष श्री हेमराज जी सिंघवी और मन्त्री श्री नाथूलाल जी चंडालिया हैं।

२. अ. भा. जैन सामायिक संघ एवं अहिंसा प्रचार समिति, जयपुर—संघ अनेक शाखाओ के माध्यम से लोगो को सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देता है। सं० २०१९ से संघ के प्रति वर्ष विभिन्न स्थानो पर सम्मेलन आयोजित होते रहे हैं। सघ के संयोजक श्री चुन्नीलालजी ललवाणी हैं। संघ के सदस्यो को निम्न प्रतिज्ञाओ मे आबद्ध रहना होता है—

१. ताश आदि पर पैसे रखकर जुआ नही खेलना।
२. मास, मछली और अण्डे आदि का उपयोग नही करना।
३. देशी-विदेशी शराब, भंग, अफीम की आदत नही रखना।
४. वैश्या गमन नही करना।

५. पर स्त्री का त्याग करना।

६. बिना दी हुई पराई चीज छिपाकर नहीं लेना (यह चोरी है)।

७. बिना अपराधी किसी जीव पर आक्रमण नहीं करना।

८. व्यापारीवर्ग द्वारा माप-तोल खोटे नहीं करना एवं सर्विस वालों द्वारा भ्रष्टाचार नहीं करना।

९. माल मे गलत तरीके से नफा नहीं कमाना तथा मिलावट नहीं करना।

सामायिक संघ की महिला सदस्यों की प्रतिज्ञाएँ :

१. रेशमी, चर्बी आदि के हिंसक वस्त्र नही पहनना।

२. घर मे या पडौस में कोई बीमार हो तो उसकी संभाल किये बिना नहीं सोना।

३. बच्चों को क्रोध में बेसुध हो नही पीटना।

४. रात को असमय में किसी के घर रोने को नहीं जाना एवं पल्ले नही लेना।

५ किसी पर कलंक नही देना, एवं झगडा नही करना।

६. चोरी नही करना एव बगैर पूछे किसी की वस्तु नही उठाना।

७. मादक एव नशीले पदार्थ नही लेना, आत्महत्या नही करना।

८. स्वपति सन्तोष एवं शील का पालन करना।

९. गन्दे गीत नही गाना और भद्दे चित्रपट (सिनेमा) आदि नहीं देखना।

३. श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ. गुलाबपुरा—श्रावकों को संयम, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रति जागरूक बनाने उन्हे जैनागम का बोध कराने तथा साधु-साध्वी जी म० के चातुर्मास से वंचित क्षेत्रो मे पर्युषण मे स्वाध्यायी श्रावको को निःशुल्क भेजकर धर्म ध्यान की साधना-आराधना करने-कराने के उद्देश्य से श्रद्धेय स्व० श्री पन्नालाल जी म० सा० के सदुपदेश से २५ वर्ष पूर्व इसकी स्थापना हुई थी। विगत १०-११ वर्षों से इस संघ के तत्वावधान मे स्वाध्यायी श्रावकों को तैयार करने के लिये छात्रो एवं अध्यापकों का पाक्षिक ग्रीष्मकालीन धार्मिक शिक्षण शिविर भी आयोजित किया जाता रहा है। इस सघ द्वारा देश के विभिन्न प्रांतों में काफी बड़ी संख्या मे स्वाध्यायी श्रावक भेज कर सत सतियो के चातुर्मास से वचित क्षेत्रो में पर्युषण काल में धर्म साधना का सराहनीय कार्य गत २५ वर्षों से होता आ रहा है। संघ के मत्री श्री मिलापचंद जामड है। संघ को प्रवर्तक श्री छोटमल जी म० सा०, श्री कुन्दनमल जी म० सा० एवं श्री सोहनलाल जी म० सा० का विशेष आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है।

४. सस्कार-निर्माण समिति, सरदारशहर—अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी गत २० वर्षों से भी अधिक समय से दलित वर्ग के लोगों मे संस्कार निर्माण और मानवीय एकता का कार्यक्रम अपनाये हुए हैं दलित वर्ग के हजारों लोग आचार्य श्री के सपर्क मे आये और उनके साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने दलित वर्ग की बस्तियो मे जाकर सम्पर्क साधा। आचार्य श्री ने वहां अपने अनुयायिओ को उपदेशों, व्रतो और गीतिकाओं के द्वारा जातिगत छूआछूत की भावना का

परित्याग करने की प्रेरणा दी वहां दलित वर्ग के लोगों को हीनभावना का परित्याग करने की प्रेरणा दी।

अणुव्रत ग्राम वरदासर मे अखिल भारतीय अणुव्रत अधिवेशन का निर्णय आचार्य श्री का अस्पृश्यता निवारण की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावी कदम था। इस अधिवेशन मे छूआछूत की दीवार पर एक जबर्दस्त प्रहार किया और दलित वर्ग के लोगो मे एक नई चेतना का संचार किया।

८ अप्रैल, १९७३ को पड़िहारा मे आचार्य श्री के सान्निध्य मे दलित वर्ग के कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ है। तीन गोष्ठियो मे गम्भीर चिंतन के बाद संस्कार निर्माण समिति का गठन हुआ। १५ व्यक्तियो की एक अस्थायी कार्य समिति बनी जिसके अध्यक्ष डॉ० गोविन्दराम गोयल और मन्त्री श्री मोहनलाल जैन थे।

समिति के मुख्य कार्यक्रम हैं--(१) शराब और मास का परित्याग, (२) मोसर (मृत्यु भोज) वन्द, (३) आचार-व्यवहार शुद्धि, (४) ज्ञानालयो, छात्रावासो एव उपासना कक्षो की स्थापना, (५), अस्पृश्यता निवारण, (६) संस्कार निर्माण शिविर, (७) साहित्य प्रकाशन और प्रचार।

५. श्री वर्धमान अहिंसा एण्ड वेलफेयर सोसायटी बम्बई, शाखा, अजमेर—इसका मुख्य उद्देश्य जगह-जगह हर शहर, कस्बो मे बाल मन्दिर, छात्रावास, स्कूल तथा कालेज खोलने का है जिसमे बिना जाति-पाति व धर्म के भेद से ऐसे छात्र-छात्राओ, अध्यापक-अध्यापिकाओ तथा उसके कर्मचारियो को ही प्रवेश किया जावे जो यह शपथ पत्र भरे कि अण्डे, मास, मछली नही खावेंगे और ऐसा बाल मन्दिर अजमेर लाखन कोटड़ी में चालू कर दिया है और उपयुक्त स्थान मिलने पर छात्रावास भी चालू कर दिया जावेगा। इसके अन्तर्गत जैन पुस्तकालय लाखन कोटड़ी मे रात्रि के समय २½ घण्टे प्रतिदिन समाज की निरन्तर सेवा कर रहा है। इसके मुख्य ट्रस्टी मगलचन्द सखलेचा है।

६. महावीर समाज, जोधपुर—समाज मे व्याप्त जडता, अन्ध विश्वास तथा अन्य कुरीतियो के उन्मूलन का प्रयास करने हेतु इस सस्था की स्थापना हुई है। इसके अध्यक्ष है श्री प्रकाश बाठिया। समाज के प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार है—

१. सामाजिक कुरीतियो यथा दहेज प्रथा, शराब, मांस अण्डा आदि मादक व तामसिक पदार्थों के विरुद्ध प्रबल आंदोलन।

२. सामूहिक विवाहपद्धति का प्रचलन।

३. सामाजिक सुरक्षा हेतु महावीर सेना का गठन।

४. समाज मे व्याप्त बेरोजगारी उन्मूलन हेतु प्रयास।

५. स्वयंसेवी रोजगार व वैवाहिक कार्यालय की स्थापना।

६. भावी जीवन का मार्ग दर्शन करना।

इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए निम्न प्रवृत्तियो का सचालन किया जाता है।

१. नवयुवकों के शारीरिक विकास हेतु व्यायाम शालाओं की स्थापना करना ताकि नवयुवक हर संकट का सामना करने में अपने को सक्षम समझ सकें।

२. युवावर्ग में पारस्परिक विश्वास सौहार्द व सद्भावना का विकास।

३. असहाय पीडित व निर्धन वर्ग का सर्वांगीण विकास।

४. विभिन्न क्षेत्रों मे अग्रगण्य सज्जनो का स्वागत और युवा वर्ग को उनके कार्यों से प्रेरणा लेने हेतु प्रेरित करना।

५. उच्चाधिकारियो द्वारा समाज के विकास हेतु सहयोग प्राप्त करना।

६. वाद-विवाद प्रतियोगिताओं, विचार गोष्ठियो आदि अन्य साहित्यिक धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।

७. **श्री पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनूं**—इस संस्था की स्थापना तेरापंथ के आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य मे फाल्गुन शु० २ संवत् २००५ को सरदार शहर मे हुई। प्रारम्भ के २३ वर्षों मे यह संस्था एक चलते-फिरते विद्यालय के रूप मे कार्यरत रही। सवत् २०२८ से लाडनूं नगर में श्री सम्पतराय जी भूतोड़िया द्वारा अपने स्व० माता-पिता की स्मृति में भेट किए गए भवन मे संस्था स्थायी रूप से स्थिर होकर कार्यरत है।

यह सस्था दीक्षार्थियो को अध्यात्म शिक्षा तथा संयम साधना का विधिवत प्रशिक्षण देने वाली एक मात्र सस्था है। संस्था का कार्यक्रम ६ वर्ष का है। इसमे शिक्षार्थी को सस्कृत, प्राकृत, जैन तत्त्व विद्या, दर्शन, न्याय, योग, इतिहास हिन्दी अग्रेजी तथा भाषा-साहित्य आदि विषयो की शिक्षा दी जाती है। सस्था अब तक लगभग २५० भाई-बहिनो को प्रशिक्षण देकर दीक्षित करने मे सहयोगी रही है।

८. **श्री अहिंसा स्नेही मण्डल, नसीराबाद**—नसीराबाद की एक मात्र धार्मिक व सामाजिक सस्था के रूप मे अहिसा स्नेही मण्डल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सस्था सन् १९६० से जीव दया की प्रमुख प्रचारक सस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य अहिंसा एव स्नेह के द्वारा जन सेवा लोक कल्याण एव शाकाहारिता का प्रचार-प्रसार करना है। गाव-गाव मे सभाओ तथा गोष्ठियों द्वारा यह अपने उद्देश्यो का प्रचार करता है। प्रतिवर्ष लगभग ५-६ हजार व्यक्तियो से यह मण्डल मास-मदिरा खाने-पीने का त्याग कराता आ रहा हे।

९. **जैन वीर मण्डल, जयपुर**—इसकी स्थापना सन् १९६४ मे हुई। यह एक समाज सेवी सस्था है। नवयुवको मे धर्म के प्रति जागृति हेतु दशलक्षण पर्व मे प्रवचनो, व्याख्यानों आदि का आयोजन मण्डल करता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री कुवेरचद काला एव मन्त्री श्री प्रकाशचद लुहाडिया हैं।

११. **जैन युवा परिषद्, जयपुर**—इसकी स्थापना १४ सितम्बर, १९७३ को हुई। इसके लगभग ३०० सदस्य है। इसमे श्वेताम्बर-दिगम्बर सभी आम्नाय के जैन युवक-युवतियां कार्यरत हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक सगठन, कुरीतियो के विरुद्ध संघर्ष, हिंसा को रोकना, असहाय छात्रो को सहायता प्रदान करना है। अनन्त चतुर्दशी के दिन परिषद् द्वारा मास, मदिरा का विक्रय बन्द करवाया जाता है। इसके अध्यक्ष श्री विमल चौधरी और महामन्त्री श्री सतीश वाकलीवाल हैं।

११. **श्री महावीर जैन श्राविका समिति, जोधपुर**—आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म. सा. की प्रेरणा से स० २०२९ चैत्र सुदि १३ को इसकी स्थापना हुई। इसके मुख्य उद्देश्य है—महिलाओ मे अध्यात्मिक चेतना जागृत करना, समाज मे व्याप्त रूढ़ियो एवं कुरीतियो को दूर करने का प्रयास

इसका दूसरा कार्यक्रम सिरोही के अस्पतालों से सम्बद्ध रोगी सहायता कार्यक्रम है जो जीव सेवा समिति के नाम से कार्य करता है। मासिक ३००) तक की दवाइयां असहाय रोगियों की सहायतार्थ काम आती है। समिति के अपने दो आक्सीजन सिलेण्डर भी हैं जो निःशुल्क कहीं भी लेजाए जा सकते हैं। देने योग्य रोगियो से शुल्क उनकी इच्छानुसार लिया जाता है।

३. श्री शान्ति सेवासंघ, मांडोली नगर (जालौर)—यह संस्था सन् १९६८ के भीषण अकाल के समय बनी थी, जिससे अकाल सहायता का कार्य हुआ। जरूरतमन्दो को अनाज तथा मवेशियो के लिए चारे-पानी का प्रबन्ध व गरीबो को दवाई, बालको को शिक्षावृत्ति आदि इसकी मुख्य प्रवृत्तियां हैं। वालचंद उद्योग समूह द्वारा दिये गये चार इन्जिनो से जानवरो हेतु घास एवं पानी की व्यवस्था होती है। संस्था की सबसे बड़ी योजना एक गौशाला बनाने की है। 'शान्ति ज्योति' पत्रिका के प्रकाशन का संचालन भी इस संघ द्वारा होता है।

४. वीर सेवक मण्डल, जयपुर—इसका गठन सन् १९२० मे हुआ। मण्डल का मुख्य उद्देश्य समाज की निस्वार्थ सेवा, सामाजिक जागृति एवं सुधार का कार्य करना है। श्री महावीर जी के वार्षिक मेले के अवसर पर मण्डल के स्वयंसेवक यात्रियो की सुविधा सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था करते है। इसके अध्यक्ष श्री सूरजमल वैद और मंत्री श्री राजमल सोनी हे।

५. श्री ऋषभवात्सल्य फंड, जोधपुर—इसकी स्थापना ई० सन् १९६२ मे हुई। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रो को विद्याध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देना है। इसके साथ ही जैन स्वधर्मी बन्धुओ को भी सहायता देना है जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो।

६. श्री ओसवाल सहायता समिति जोधपुर—यह समिति समस्त ओसवाल समाज के आर्थिक सहायता के इच्छुक व्यक्तियों को १०) से ५०) रुपये प्रतिमाह तक प्रत्येक परिवार को सहायता देती है। प्रति वर्ष लगभग २० हजार की सहायता लगभग ८० परिवारो को दी जाती है। मुख्य कार्यकर्त्ता है श्री रूपराजजी संचेती, श्री घीगडमलजी गिडिया, श्री सम्पतराजजी डोसी व श्री छगनराजजी साड।

७. श्री मगन सहायता समिति ब्यावर—यह समिति समाज के असहाय वर्ग को सहायता देने का कार्य करती है। इस समय करीब ६० भाई-बहिनो को गुप्त सहायता समिति की ओर से दी जा रही है। इसके संस्थापक हैं श्री अभयराजजी नाहर।

८. सेवादल, जयपुर—यह समाज मे गरीब, असहाय व्यक्तियो की यथा संभव वस्त्र, खाद्यान्न एवं दवाइयो के रूप मे सहायता करता है। गत वर्षो मे इसने जरूरतमंद छात्रो को पुस्तके व स्टेशनरी के रूप मे भी सहायता प्रदान की। यह गोपाल जी के रास्ते में श्री जैन नवयुवक मण्डल के अन्तर्गत संचालित है।

९. श्री दि० जैन अ० क्षेत्र महावीरजी द्वारा सचालित छात्रवृत्ति फण्ड, जयपुर—इसके द्वारा प्रतिवर्ष हजारो रुपयो की छात्रवृत्ति दी जाती है। छात्रवृत्ति फण्ड से अनेक विद्यार्थी लाभान्वित हुए है। इसका कार्यालय महावीर भवन, चौड़ा रास्ता है।

१०. श्री सन्मति सहायता कोष, जयपुर—यह असहाय जैन बन्धुओ, विधवाओ और प्रतिभाशाली छात्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। इसके मंत्री श्री केवलचन्द ठोलिया तथा कोषाध्यक्ष श्री नानूलाल [illegible] हैं।

११. स्वर्ण फण्ड, जयपुर—श्वेताम्बर साधु-साध्वियो, आचार्यो आदि को समय-समय पर विभिन्न सहायता एव सहयोग देने आदि के उद्देश्य से इस फड का गठन किया गया है। इसके अध्यक्ष श्री राजरूपजी टाक व मंत्री श्री रतनचदजी कोठ्यारी है।

अन्य ट्रस्ट एवं सेवा समितियां

१२. अखिल भारतीय नानक जैन सेवा संघ, अजमेर
१३. श्री जैन वृद्धाश्रम, चित्तौड़गढ
१४. „ घेवरचंदजी बाठिया व श्रीमती लक्ष्मीदेवी बाठिया स्वधर्मी सहायता फण्ड
१५. „ श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर
१६. श्रीमती जेठादेवी कांकरिया स्वधर्मी सहयोग फण्ड, बीकानेर
१७. श्री सुरेन्द्रकुमार साड शिक्षा सोसायटी, बीकानेर
१८. „ थानचन्द मेहता शिक्षा ट्रस्ट, जोधपुर
१९. „ थानचन्द मेहता लोकसेवा ट्रस्ट, जोधपुर
२०. „ सन्तोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट, जयपुर
२१. „ बनजीलाल ठोलिया चैरिटेबिल ट्रस्ट, जयपुर
२२. „ दीवान उदयलाल जैन ट्रस्ट, जयपुर
२३. „ सुराना चैरिटेबिल ट्रस्ट, जयपुर
२४. „ जैन दिवाकर सेवासदन, उदयपुर
२५. „ भूरालाल पालडेचा स्वधर्मी सहायता फण्ड, धनोप
२६. „ महावीर जैन सेवा समिति, जोधपुर
२७. „ श्रीलाल पारमार्थिक ट्रस्ट फण्ड, रेनवाल (किशनगढ)

(४) प्रमुख प्रकाशन-संस्थान

१. श्री जैन इतिहास समिति, लालभवन, जयपुर—इस समिति की स्थापना आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराजा सा० की प्रेरणा से संवत् २०२२ मे उनके बालोतरा चातुर्मास के अवसर पर हुई। समिति का मुख्य उद्देश्य जैन-परम्परा के शृंखलाबद्ध प्रामाणिक इतिहास लेखन प्रकाशन एवं अन्य महत्वपूर्ण गवेषणात्मक जैन-ग्रन्थो का प्रकाशन है। समिति को व्यवस्थित रूप देने मे इसके अध्यक्ष स्व० श्री इन्द्रनाथ जी मोदी एवं मन्त्री स्व० श्री सोहनमलजी कोठारी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समिति ने अब तक 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १-२,' ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पट्टावली प्रबन्ध सग्रह, जैन आचार्य चरितावली आदि ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। वर्तमान मे समिति के अध्यक्ष श्री इन्द्रचन्द्र हीरावत, मन्त्री श्री चन्द्रराज सिंघवी व कोषाध्यक्ष श्री पूनमचन्द बडेर है।

२. श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर—इस प्रकाशन सस्था की स्थापना २४ वर्ष पूर्व उपा० श्री प्यारचंदजी म० की प्रेरणा से एव सेठ देवराजजी सुराणा, सेठ स्वरूपचदजी तालेडा श्री चादमलजी टोडरवाल, श्री चांदमलजी कोठारी, श्री छगनलालजी दुगड, श्री बापूलालजी बोथरा व श्री अभयराजजी नाहर आदि के सम्मिलित प्रयास से सम्पन्न हुई।

यह प्रकाशन संस्था पूर्व मे "श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, चौमुखीपुल, रतलाम

(म० प्र०)" के नाम से कार्यरत थी। इस रतलाम की संस्था का ही ब्यावर में नवाभ्युदय हुआ। इन दोनो ही संस्थाओं द्वारा अभी तक छोटे-बड़े शताधिक प्रकाशन हो चुके हैं। दोनों ही संस्थाओं ने प्रमुखतः परम श्रद्धेय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी म० एवं उनके सुशिष्य-प्रशिष्यों की नैतिक आध्यात्म एवं समाज-शोधी रचनाओं का सराहनीय प्रकाशन किया है। वर्तमान में इसके मन्त्री श्री अभयराजजी नाहर हैं।

३. श्री आदर्श साहित्य संघ चूरू—यह साहित्यिक, सामाजिक, आध्यात्मिक साहित्य के प्रकाशन एवं विक्रय का प्रमुख संस्थान है। इस संस्थान ने अब तक शताधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथमल, मुनि श्री बुधमल व तेरापंथ सम्प्रदाय के अनेक सत-सतियो के ग्रन्थ इस संघ ने प्रकाशित किये है। इस प्रकाशन संस्थान की कलकत्ता व दिल्ली मे भी शाखाएं हैं।

४. श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर—इस समिति की स्थापना आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की स्मृति मे की गई है। आचार्य श्री के चरित व प्रवचन साहित्य का प्रकाशन जवाहर किरणावली नाम से कई भागो में इस समिति ने किया है। समिति के मंत्री श्री चम्पालालजी वाठिया हैं।

५. श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल, ब्यावर—मण्डल होनहार छात्र-छात्राओं को अध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देने के साथ-साथ जैन साहित्य के प्रचार व प्रसार के लिए सत् साहित्य का प्रकाशन भी करता है। इस दिशा मे मडल गत ३० वर्षों से कार्यरत है।

६. श्री अभय जैन ग्रंथमाला, बीकानेर—इसका प्रकाशन श्री जिन कृपाचन्द सूरिजी के परामर्श व प्रेरणा से प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम अभ्यरत्न सार' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। अब तक इस ग्रन्थमाला मे २५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

७. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर—मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद सन् १९६५ ई० मे उनकी स्मृति को चिर स्थायी बनाने की दृष्टि से इस प्रकाशन संस्थान की स्थापना की गई। संस्था के कार्य संचालन के लिए एक कार्यकारिणी समिति है, जिसके अध्यक्ष श्री फूलचन्दजी नाहटा, जोधपुर हैं तथा मन्त्री श्री अमरचन्दजी मोदी ब्यावर हैं। सस्था ने अब तक ३४ प्रकाशन किए हैं।

संस्था के अन्तर्गत ही एक सिद्धान्तशाला तथा मुनि व्रज-मधुकर जैन पुस्तकालय भी सचालित हो रहे हैं।

८. श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर-ब्यावर—श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति ने सन् १९६८ ई० में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करके अपना उद्देश्य पूर्ण किया। तब समिति के सदस्यो को यह आवश्यक लगा कि पूज्य प्रवर्त्तक मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म. सा. की वाणी को जन-जन मे प्रचारित करने के लिये साहित्य प्रकाशन का कार्य चालू रखा जावे। इस तरह श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशन समिति को ही श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति के रूप मे परिवर्तित करके इस संस्था की स्थापना की गयी। संस्था का मुख्य उद्देश्य ऐसे साहित्य का प्रचार व प्रसार करना है जिससे समाज मे जैनधर्म के प्रति अनुराग पैदा हो, सन्तो के प्रति भक्ति एवं धर्म मे दृढ आस्था जमे। अब तक समिति ४० के लगभग ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है।

६. श्री शीतल जैन साहित्य सदन, मांडलगढ़—इसके प्रेरक है उप प्रवर्तक श्री मोहनलालजी म. के विद्वान सुशिष्य मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल'। इसकी स्थापना सन् १९७० मे हुई। इसका एक शाखा कार्यालय बीगोद (भीलवाड़ा) मे भी है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य है—

१. विभिन्न धर्मों में समन्वय स्थापित करने की दिशा में कार्य करना।

२. महत्वपूर्ण जीवन स्पर्शी लोक भोग्य सत् साहित्य का प्रकाशन करना।

३. समय-समय पर उपस्थित होने वाली धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, तथा राजनैतिक समस्याओ पर विचार गोष्ठियां आयोजित कर उनके समाधान हेतु दिशा-निर्देश करना।

४. संस्थान के उद्देश्यो के प्रसार हेतु पत्रिका एवं स्मारिकाएं प्रकाशित करना।

५. भारतीय धर्म नेताओं, विद्वानों, समाज सेवियों तथा सत्साहित्यकारों को भारत के नैतिक एवं चारित्रिक आदर्शो के प्रचारार्थ विदेशो मे भेजने और विदेशी विद्वानो को अपने यहां आमन्त्रित करने की व्यवस्था करना है।

६. विशिष्ट विद्वानों, साहित्यकारो, समाज सेवियों तथा सन्तों का यथा समय सम्मान करना।

७. नैतिकता एवं चारित्र निर्माण सम्बन्धी समस्त जन हितकारी कार्य करना।

१०. श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर—इसकी स्थापना सन् १९६६ में पदराड़ा गांव मे श्री पुष्कर मुनिजी की प्रेरणा से हुई। संस्था के ग्रन्थभण्डार में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण संग्रह है। सत्-साहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र मे संस्था ने उल्लेखनीय कार्य किया है। अब तक लगभग ३८ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। संस्था के वर्तमान अध्यक्ष श्री डालचन्द जी परमार है। अब इसका मुख्य कार्यालय उदयपुर मे है।

११. श्री अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर—थोडे ही समय मे इस प्रकाशन संस्थान ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर अपने आपको प्रतिष्ठित किया है। अब तक हिन्दी तथा गुजराती मे लगभग १५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है जिनमे श्री गणेशमुनि के ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है।

१२. वीर पुस्तक भण्डार, जयपुर—मनिहारो के रास्ते मे स्थित यह संस्थान धार्मिक पूजा-पाठ, पुराण, चरित्र सिद्धांत आदि सभी प्रकार के जैन ग्रन्थों का प्रमुख प्रकाशक एवं विक्रेता है। अब तक इसने १५ से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये है। इससे संलग्न 'वीर प्रेस' है। इसका सचालन श्री भवरलालजी, न्यायतीर्थ करते है।

१३ श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ, सिरपाल (उदयपुर)—यह संस्था जैनागम व जैनतत्व को सरल सरस कथात्मक शैली मे प्रस्तुत करने के साथ-साथ नैतिक बोधपरक साहित्य प्रकाशित करता रहा है। श्री भगवती मुनि 'निर्मल' के कई ग्रन्थ यहां से प्रकाशित हुए है।

अन्य प्रकाशन संस्थान

१४. श्री सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर

१५ श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

१६. श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र, महावीरजी, जयपुर

१७. प० श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

१८. श्री जिनदत्त सूरि मडल, अजमेर

१९. श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर
२०. श्री जैन विश्व भारती, लाडनूं
२१. श्री राजस्थान जैन सभा, जयपुर
२२. श्री अ० भा० तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं
२३. श्री जैन शिक्षण संघ, कानोड़

नोट :—उक्त प्रकाशन सस्थानो का परिचय अन्यत्र यथास्थल दिया जा चुका है।

(५) कला एवं उद्योग संस्थान

१. **श्री थानचन्द मेहता कला एवं उद्योग संस्थान, राणावास**—इसकी स्थापना जुलाई १९७३ मे हुई। इस सस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य, निरुद्देश्य शिक्षा को सोद्देश्य बनाना है। आज भारत के कोने कोने से शिक्षाशास्त्रियो, नेताओ बुद्धिजीवियो, यहां तक कि सामान्य नागरिको की भी यही आवाज प्रतिध्वनित हो रही है कि विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयो तथा सैकण्डरी विद्यालयों से निकलने वाले छात्र, बेकारी, बेरोजगारी के शिकार हो रहे है और फलत. एक बड़ी भीड़, भीड ही क्यो, टिड्डियो का एक दल राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिए उखाड़-पछाड़ कर रहा है। युवको का आक्रोश उत्तरोत्तर राष्ट्र के सामने महान् चिन्ता का विषय बना हुआ है। यह कटु सत्य है कि राजनेता चाहे नौकरी के कितने ही मीठे आश्वासन दें किन्तु वे इन आश्वासनो को किस सीमा तक पूरा करने मे समर्थ होगे ?

ऐसी दशा मे बेकार, दर-दर भटकने वाले, परावलम्बी, छात्र यदि व्यावहारिक शिक्षा न मिलने के अभाव से विध्वस और अनुशासनहीता का दुखान्त नाटक खेलते रहें तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। यह संस्थान देश को उपर्युक्त विषम परिस्थिति से निकालने के लिए आशा और उत्साह भरा कदम है। संस्थान की आशाएं अभिलाषाएं, योजनाए तथा भावी स्वप्न बहुत ऊंचे है। देश का युवक श्रमप्रिय और स्वावलम्बी बना दिया जाय तो देश व्यापी विध्वंस लीला के समाप्त होने की आशा की जा सकती है। इसमे कोई संदेह नही कि हाथ द्वारा किये गए काम से हम देश की श्रम शक्ति का न केवल उपयोग ही करेंगे वरन् कई अन्यन्य क्षमताओ को भी प्रकाश मे ला सकेंगे।

सम्प्रति सस्थान की विभिन्न प्रवृत्तियो मे कुल ७२ विद्यार्थी 'सीखो और कमाओ' योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। ये श्री मरुधर केसरी उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र हैं। कला एव उद्योग के जिन विषयो का प्रशिक्षण दिया जाता है वे इस प्रकार है—

(i) सगीत (ii) ड्राइंग तथा पेन्टिंग (iii) सोफा सेट तथा आधुनिक साज सजावट का सामान (iv) कारपेन्टरी (v) अटेची, होलडोल आदि बनाना (vi) टंकण सुधार प्रशिक्षण (vii) टेलरिंग (सिलाई)

इस अवधि मे बालको ने जो कार्य किया है उससे यह अनुभव हुआ है कि बालक कला एव उद्योग मे बडी रुचि लेते है, बड़ी तत्परता व तन्मयता से कार्य करते है और अपनी कार्य कुशलता निरतर बढाते जा रहे है और आत्म-विश्वास की प्रबल भावना जागृत होकर यह प्रेरणा दे रही है कि सीखो और कमाओ का सिद्धान्त उनके लिए वरदान है।

२. **श्री जिनेन्द्र कला भारती, भीलवाड़ा**—सुसगीत एव कला के माध्यम से जिनवाणी के प्रसार एवं नई पीढी को धार्मिक क्रिया-कलापो की ओर प्रवृत करने के पवित्र उद्देश्य को लेकर इस

संस्था की स्थापना ४–६–७२ को हुई थी । अपने थोड़े से ही कार्यकाल मे संस्था ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए है तथा समाज के प्रबुद्ध वर्ग की प्रशंसा प्राप्त की है। कला भारती ने सम्पूर्ण जैन समाज में णमोकार मन्त्र, भक्तामर स्तोत्र, मेरी भावना, ध्वजगीत तथा कीर्तन आदि को एक ही ताल स्वर मे गाने की दृष्टि से स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक संगीत प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया है, जिनमें अब तक तीस हजार व्यक्तियो को प्रशिक्षित किया जा चुका है । इस वर्ष की समाप्ति तक एक लाख व्यक्तियो को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य है। इसी दृष्टि से सस्था ने भक्ति सगीत माला भाग १ व २ का प्रकाशन भी किया है। संस्था के अन्तर्गत एक सुसगीत विद्यालय का सचालन भी होता है, जहा भक्ति सगीत शिक्षण की उत्तम व्यवस्था है। सस्था द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर जैन-संगीत विशारद, जैन सगीत निपुण आदि परीक्षाओ के आयोजन तथा संचालन का भी कार्यक्रम है । सस्था के कठपुतली विभाग द्वारा कठपुतलियों के माध्यम से जैन तत्त्व को रंगमंच पर लाने का प्रयास किया जा रहा है । यह अपने ढंग का प्रथम प्रयास है । सस्था अब तक तीन कठपुतली नाटिकाओ का प्रदर्शन कर चुकी है । संस्था ने लोक धुनों पर आधारित १०० भजनों का संकलन एवं उनकी स्वर-लिपियो की रचना का भी स्तुत्य कार्य किया है । संस्था के अध्यक्ष श्री गौरीलाल अजमेरा तथा मन्त्री श्री निहाल अजमेरा है ।

३. भारतीय लोककला मडल, उदयपुर—लोकधर्मी कलाओ के शोध, सर्वेक्षण, प्रदर्शन, प्रकाशन, उन्नयन एव परिमार्जन के वृहत् उद्देश्यो को लेकर पद्मश्री देवीलाल सामर के प्रयत्नो से २२ फरवरी १६५२ को इसकी स्थापना हुई । परम्परागत कठपुतली एवं लोकनृत्य के क्षेत्र में मण्डल ने अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये है । राजस्थानी लोककला व लोक सस्कृति के रक्षण एव उन्नयन मे मण्डल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । मंडल के सचालक श्री सामरजी ने हाल ही में भ० महावीर के २५००वे निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे 'वैशाली का अभिशेक' नामक कठपुतली नाटिका का सृजन कर पुतली नाट्य क्षेत्र मे एक अभिनव प्रयोग किया है । डॉ० महेन्द्र भानावत वर्तमान मे मंडल के उपनिदेशक है ।

४. नाहटा कला-भवन बीकानेर—स्व० श्री शंकरदान जी नाहटा की स्मृति मे स्थापित इस कला भवन मे हस्तलिखित प्रतियो के साथ-साथ अनेक प्राचीन चित्र, दुर्लभ मूर्तियो व अमूल्य सिक्कों का महत्वपूर्ण सग्रह है । श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा भंवरलालजी नाहटा जैसे विद्वान इस संस्था से सम्बन्धित है ।

५. श्री वर्द्धमान जैन उद्योगशाला, बाड़मेर—राजस्थान के पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र बाडमेर नगर में जैन समाज ने अपने ही समाज की आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर, एव कम आय के परिवार की जैन महिलाओ को आर्थिक मदद पहुचाने के लिये श्री वर्द्धमान जैन उद्योगशाला की स्थापना की । जिसके माध्यम से समाज की अनेक माताऐ एव वहने अपने श्रम से लघु उद्योग मे कार्य कर अपनी एवं अपने पर आश्रित परिवार का भरण पोषण कर रही है ।

इस समाज सेवी सस्था की स्थापना मुनिवर श्री कातिसागरजी एव दर्शनसागर जी महाराज साहब के सदुपदेश, से ३० जनवरी ७२ को हुई । आरम्भ में इस उद्योगशाला मे ४० महिलाओ को रोजगार उपलब्ध करवाया गया और स्थाई रूप से ६ स्त्री-पुरुषो को इस शाला के विभिन्न कार्यो के लिये नियुक्त किया गया । अब इस उद्योग शाला मे ६५ महिलाऐ प्रतिदिन पापड़ बटने एव वड़िये

तैयार कर रोजगार प्राप्त कर रही है। आरंभ मे इस उद्योगशाला मे केवल १६ किलो पापड़ प्रतिदिन तैयार किया जाता था। बाजार मे अन्य पापड़ो के मुकाबले हमारे यहा से तैयार शुद्ध एवं स्वादिष्ट पापड़ ने बाजार मे अपना अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया। अब प्रतिदिन ८० किलो पापड़ तैयार होने लगा है। यद्यपि यह अत्यन्त ही कम मुनाफे एवं जोखिम का व्यापार था फिर भी अच्छी क्वालिटी मे तैयार होने के कारण बाडमेर का यह पापड बाजार में अधिक साख जमा सका। जिसके कारण आरम्भ के साढे चार मास मे उद्योग शाला ने सभी प्रकार का खर्चा आदि को निकाल कर रु० १०९१) का शुद्ध मुनाफा अर्जित किया। वर्तमान मे अध्यक्ष श्री हुक्मीचन्द मालू व मन्त्री श्री देवीचन्द गुलेछा है।

६. महावीर जैन शिक्षण संघ छोटी सादड़ी—गत वर्ष इस संघ की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य संस्कार निर्माण के साथ-साथ टाइपिंग, टेलरिंग, मोटर मेकेनिज्म, रेडियो मेकेनिज्म आदि प्रशिक्षण देकर युवको को आत्म निर्भर बनाना है। इसके अध्यक्ष श्री केशरी किशोर नलवाया और मत्री श्री सोहनलाल जैन है।

अन्य उद्योग संस्थान

७. श्री जैन नारी उद्योगशाला, कोटा

८. श्री महिला सिलाई केन्द्र, ब्यावर

९. श्री लोका शाह जैन महिला उद्योग, ब्यावर

१०. श्री फूलकुमारी चोरड़िया महिला विकास केन्द्र, बीदासर

११. श्री उद्योग पापड़ भण्डार, पाली

१२. श्री जैन महिला उद्योगशाला, बीकानेर
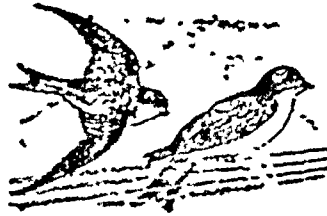
चतुर्थ खण्ड
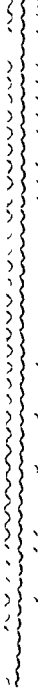
परिचर्चा

५२ | राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनधर्म एवं संस्कृति का योगदान

●

परिचर्चा-आयोजक—डॉ० नरेन्द्र भानावत

भारतीय सांस्कृतिक जीवन के निर्माण तथा उससे प्रसूत सांस्कृतिक परम्पराओ की रक्षा और विकास के विविध प्रयत्नो मे किसी प्रदेश विशेष का ही एकाधिकार रहा हो, ऐसा नही कहा जा सकता। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक के भारतीय जीवन मे सांस्कृतिक चेतना का जो विशिष्ट स्वरूप रहा है वह सभी प्रदेशो के मानवीय प्रयत्नों की समन्विति का फल है। इसी प्रकार देश की सस्कृति तथा सभ्यता के अवरोधक एव साधक तत्त्वो का सक्रमण भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशो मे होता रहा है। निष्कर्ष यह कि समूचे देश की सस्कृति और सभ्यता के सर्जन, रक्षण और विकास की समस्याये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विभिन्न रूपो की होते हुए भी मूलतः एक जैसी हैं। भारत और उसके प्रदेशो की संस्कृति के विषय मे कही गई यह बात विश्व और उसके देशो के विषय मे भी सत्य है। इतना सब कुछ होते हुए भी प्रत्येक देश और प्रदेश की अपनी कुछ आंचलिक विशेषताएं और छवियाँ होती है जिनसे उस प्रदेश विशेष की सांस्कृतिक चेतना अपना अलग रंग बिखेरती है। यह सस्कृतिमूलक वैविध्य अलगाव का प्रतीक न होकर सम्पन्नता का परिचायक होता है। राजस्थान के सांस्कृतिक दाय की बहुरंगी छवि का अध्ययन और मूल्यांकन इसी परिदृष्टि से किया जाना चाहिए।

किसी भी प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना के विकास मे वहा के प्रचलित-पल्लवित धर्मों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। राजस्थान को अनेक धर्मों एव मतो की उद्गमस्थली एवं संगमभूमि होने का गौरव प्राप्त है। उन सबके सम्मिलित प्रयत्नो से यहा के सास्कृतिक गौरव मे वृद्धि हुई है, विचारो मे सहिष्णुता और व्यवहार मे सहनशीलता का भाव जागृत हुआ है। जैन धर्म के विशिष्ट प्रभाव के रूप में एक ओर साहित्य, कला और दर्शन का आयाम विस्तृत हुआ है तो दूसरी ओर आचार दृष्टि से जीवन में निर्व्यसनता, मितव्ययता और आहार-शुद्धि जैसे भावो के प्रति विशेष सजगता का भाव विकसित हुआ है।

संक्षेप मे कहा जा सकता है कि राजस्थान के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक एवं अध्यात्मिक चेतना के विकास मे अन्य धर्मो के साथ-साथ जैनाचार्यो व जैनधर्मानुयायियों की महत्त्वपूर्ण

[२] प्रो० गणपतिचन्द्र भण्डारी

१. राजस्थान की सांस्कृतिक दाय बहुमुखी है पर उसका मूलाधार है 'जातीय चेतना'। सामंती युग मे जातीय संगठन बडे शक्तिशाली रहे और जन जागरण का सारा कार्य भी जातीय स्तर पर होता रहा। 'जाति-प्रेम' एक सर्वमान्य मूल्य था। इसके फलस्वरूप विभिन्न जातियों ने अपने समाज मे विद्या प्रचार के लिए शिक्षण सस्थाए और छात्रावास खोले। आमोद-प्रमोद के लिए गाव या नगर के उपकंठ मे किसी जलाशय के निकट बगीचियां और तीर्थ स्थानो पर धर्मशालाए बनाई पर वे प्राय स्वजाति की सेवा के लिए ही थी अथवा सुविधाए देने मे स्वजाति और पर जाति का भेद अवश्य किया जाता रहा। इससे जहा जातीय सगठन के रूप मे एक समूह विशेष के भीतर आत्मीयता पनपी वहा विभिन्न जातियो की स्पर्द्धा भी इतनी बढी कि कही-कही उसका विद्वेषपूर्ण घातक रूप भी प्रकट होने लगा।

इस जातीयता का सर्वाधिक प्रबल रूप जोधपुर राज्य मे देखने को मिलता है। जहां विभिन्न जातियो की लगभग १०–१५ शिक्षण सस्थाए हैं। इनसे कतिपय हानियो के साथ एक लाभ यह अवश्य हुआ कि जातीय चरित्र उभर कर ऊपर आया। राजपूत अपने दर्प, शौर्य, साहस और शरणागत रक्षा एवं बलिदान के गुणों से पहचाने जाने लगे तो चारण अपनी विद्वत्ता और काव्य-कौशल के लिए। ओसवाल, अग्रवाल और माहेश्वरी आदि वैश्य जातियां अपने सादे और निर्व्यसनी जीवन, बुद्धिमत्ता एव व्यवसाय कौशल के लिए विशेष प्रसिद्ध हुईं तो कायस्थ अपने बौद्धिक, कौशल और नीति-निपुणता के लिए विख्यात हुए। ब्राह्मणो ने विद्वत्ता, सगीत-कौशल एवं ज्योतिष ज्ञान मे प्रसिद्धि पाई तो श्रमिक जातियो ने स्थापत्य और शिल्प-कौशल मे। मुसलमानो ने संगीत और नृत्य शैलियो का विकास किया तो ईसाइयो ने शिक्षा और चिकित्सा के श्रेष्ठ प्रतिमान स्थापित किये। सोमपुरो ने विश्वविख्यात जैन मंदिरो का निर्माण किया तो ढोलियो ने सगीत, नृत्य, अभिनय को सहेजा। लोक कलाओं की रक्षा अधिकतर, निम्न समझी जाने वाली जातियो ने ही की है। अतः राजस्थान की सांस्कृतिक दाय जाति मूलक है या धर्म मूलक क्योकि अनेक जातिया धर्म के आधार पर ही निर्मित हैं।

निर्गुणोपासना भी राजस्थान की एक प्रमुख सास्कृतिक दाय है जिसे अछूत जाति के सतो ने प्रतिष्ठित किया और आज भी अनेक श्रमिक जातियो के अध्यात्मज्ञान के वे ही उद्गम स्रोत हैं। सवर्ण हिन्दुओं मे सगुणोपासना भी खूब प्रचलित रही। नाथ पंथ और कबीर पंथ का प्रचार भी राजस्थान में काफी रहा।

२. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धर्म और जाति का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है यद्यपि कुछ अपवाद भी अवश्य हैं। ब्राह्मण प्रायः शैव व वैष्णव हैं, राजपूत और चारण शाक्त भी हैं और कुछ शैव व वैष्णव भी; जैसे उदयपुर का राजपरिवार। ओसवाल प्रायः जैन है पर उनके अतिरिक्त पोरवाल भी जैन हैं। दिगम्बर जैनो में सरावगी गोदा, हूमड आदि जातिया हैं पर अधिकाश दिगम्बर अपने को 'जैन' ही लिखते-बताते हैं, वे जाति का उल्लेख नही करते। अधिकांश दिगम्बर जैन पूर्वी और दक्षिणी राजस्थान में हैं परन्तु बहुसंख्यक जैन श्वेताम्बर हैं जो अधिकतर पश्चिमी राजस्थान के निवासी हैं। कायस्थो में कुछ सत्संगी सम्प्रदाय के हैं जिनके गुरु की गद्दी दयाल बाग, आगरा में है जो स्वयं वैश्य भी है। राजस्थान मे अग्रवाल जैन बहुत कम हैं, अधिकाश वैष्णव हैं। माहेश्वरी,

माली एवं अधिकांश श्रमिक जातियां वैष्णव, शैव, रामदेव या संत मत के विभिन्न सम्प्रदायों की हैं। विश्नोइयों का अपना अलग सम्प्रदाय है जिसके प्रणेता जाम्भोजी हैं। इनके अतिरिक्त मुसलमान, ईसाई और आर्यसमाजी भी है। राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में इन धर्मों की दाय लगभग वही है जो इनकी अनुयायी जातियों की है। फिर भी कुछ ऐसे कार्य है जिन पर जाति की अपेक्षा धर्म की छाप अधिक है और जो जाति के प्रतिबंध से मुक्त हैं।

सुविधा के लिए यदि हम शैव, शाक्त, वैष्णव और निर्गुणोपासको को हिन्दू धर्म में समाहित मान ले तो राजस्थान मे मुख्य धर्म ५ रह जाते है—हिन्दू, जैन, वैदिक (आर्यसमाजी), इसलाम और ईसाई। राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे इन सबका योगदान रहा है। हिन्दू धर्म ने यहां एक ओर सगुण भक्ति की गगा बहाई और मीरां, नागरीदास और चंद्र सखी जैसे भक्त साहित्यकार प्रदान किये एव नाथद्वारा, कांकरोली, एकलिगजी जैसे भव्य तीर्थ स्थानो का निर्माण किया तो दूसरी ओर दादू और कबीर आदि के अनुयायियो ने संतो की वाणी गा-गाकर अल्पशिक्षित और अशिक्षित श्रमिक जातियो मे शुद्ध आचरण एवं नैतिक और सतोपी जीवन को प्रोत्साहन दिया। साथ ही रूढ़ धार्मिक उपदेशो ने इन्हे भाग्यवादी भी बनाया। धर्मशालाओ और गोशालाओं के निर्माण जैसे लोकोपकारी कार्य भी धार्मिक वृत्ति के लोगों ने किये।

राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनों का योगदान बहुमुखी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है विशेषतः साहित्य, शिक्षा और शिल्प एवं स्थापत्य के क्षेत्र मे, जिसकी चर्चा तीसरे प्रश्न के उत्तर में अधिक विस्तार से की जायगी।

जन जागरण के क्षेत्र में सर्वाधिक मूल्यवान योगदान आर्यसमाज का रहा है। महर्षि दयानन्द का देहावसान अजमेर मे होने से राजस्थान में वैदिक धर्म के प्रचार की एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि बनी और उनके सिद्धांतों के व्यापक प्रचार से मानो राजस्थान ने इस महान् विभूति के प्रति अपनी धरती पर किये गये क्रूर अन्याय का प्रतिकार किया। स्त्री शिक्षा, पर्दा निवारण, अछूतोद्धार, विधवा विवाह एवं अनाथ संरक्षण जैसे सामाजिक क्रांति के ठोस कार्य आर्यसमाज द्वारा पूरे जोश खरोश से किये गये और सामाजिक सुधारो का एवं अंधविश्वासो को त्याग कर बौद्धिक दृष्टि से स्वतंत्र चिंतन के नये युग का सूत्रपात करने का बहुत बड़ा श्रेय आर्यसमाज के प्रचारकों को है। इन्होने अनेक शिक्षण सस्थाएँ भी स्थापित की और महिलाओ को अबला से सबला बनाने का व्यापक प्रयास किया।

इस्लाम की देन मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है अजमेर मे ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह जो मुसलमानो का अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व का तीर्थ स्थान है और जिन के उर्स पर हिन्दू और मुसलमान दोनो उनके भक्तों की कव्वालियो का आनंद लेते हैं एवं उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। ईसाइयो ने श्रेष्ठ शिक्षण संस्थाएँ और चिकित्सालय कायम करके एक ओर चिर उपेक्षित आदिवासियों मे अपने धर्म का प्रसार किया तो दूसरी ओर जनता को शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान की। पर इन शिक्षण संस्थाओं का लाभ अधिकतर धनिक वर्ग ने ही उठाया और इससे उनके जीवन और रहन सहन पर पाश्चात्य संस्कृति का गहरा रंग चढ गया। अंग्रेजी के विद्वानो और कुशल प्रशासको के निर्माण मे मिशनरी स्कूलों का विशेष योगदान रहा है।

३. सांस्कृतिक चेतना की इस पृष्ठभूमि में जैनों का योगदान बहुमुखी और महत्त्वपूर्ण रहा

है। जैनाचार्यों ने बहुमूल्य धार्मिक साहित्य का निर्माण किया और प्राचीन साहित्य का सरक्षण भी। राजस्थानी का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य जैनाचार्यों का ही रचित है। उनकी कृतिया नैतिक और आध्यात्मिक जीवन की प्रेरक तो है ही, लोकनीति और लोक व्यवहार की परिचायक भी है और साथ ही अनेक कृतिया साहित्यिक सौदर्य से पूर्ण है। उपदेशो का आधार प्राय: रोचक कथाए रही है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनो मे है और विक्रम की १३वी शताब्दी से ही उपलब्ध होता है। इसमे विविधता भी बहुत है। साथ ही राजस्थान मे पच्चीसो ऐसे ग्रंथागार है जहा जैनो ने प्राचीन हस्तलिखित साहित्य को सुरक्षित रखा है। इनमे अनेक अलभ्य जैनेतर कृतिया भी है और इस सुरक्षित साहित्य की मात्रा विपुल है। जैनाचार्यों की साहित्य-साधना आज तक निरंतर चलती रही है और आज भी अनेक कवि काव्य रचना की नवीन पद्धति को अपनाते हुए अपना सदेश प्रभावशाली ढग से देते है और उनकी कृतियाँ देश के ख्यातनामा हिन्दी प्रकाशको ने प्रकाशित की हैं। प्राचीन साहित्यकारो मे आचार्य हेमचंद्र, मेरुतुंग, तरुणप्रभसूरि, माणिक्य सुदर सूरि, कुशललाभ, राजेद्र सूरि, आचार्य भिक्षु जयाचार्य आदि विख्यात है और आधुनिक साहित्यकारो मे आचार्य तुलसी, आचार्य हस्तीमलजी, मुनि नगराजजी, मुनि नथमलजी, मुनि महेन्द्रकुमारजी, मुनि मधुकरजी उल्लेखनीय हैं। प्राचीन जैन श्रावको मे नैणसी मुहणौत राजस्थान के प्रथम महत्त्वपूर्ण इतिहासकार है और आधुनिक श्रावको मे अनेक कवि, लेखक, समीक्षक एवं शोधकर्ता है जिनमे श्री अगरचद नाहटा, श्री कन्हैयालाल सेठिया, श्री भवरमल सिंघी व डॉ० नरेन्द्र भानावत आदि विशेष उल्लेखनीय है।

साहित्य रचना और सरक्षण के अतिरिक्त गाधी युग के आचार्यों और मुनियो ने समाज सुधार की चेतना उत्पन्न करने मे भी प्रशसनीय योगदान दिया जिसमे स्त्री शिक्षा का प्रचार, पर्दा और अंधविश्वासो का विरोध, फैशन, नशा, वृद्ध विवाह, बाल विवाह आदि का विरोध मुख्य था। इनमे जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी, आचार्य श्री जवाहरलालजी और गणेशीलालजी विशेष लोकप्रिय हुए। शिक्षा प्रचार का कार्य राजस्थान मे श्री विजयवल्लभ सूरि ने विशेष रूप से किया। सास्कृतिक चेतना जगाने और नैतिकता का प्रभावशाली प्रचार करने मे आचार्य तुलसी और उनके शिष्यो का कार्य विशेष सराहनीय है। आचार्य तुलसी ने जैन धर्म को जैनो के सीमित दायरे से निकाल कर सर्वसाधारण के मध्य प्रतिष्ठित करने एव राजनैतिक नेताओ, उच्च अधिकारियो और विद्वानो को जैन धर्म के निकट सम्पर्क मे लाने वाले वैचारिक मच के निर्माण का क्रातिकारी कार्य किया है जिसका अनुकरण अब अन्य सम्प्रदायो के साधु लोग भी करने लगे है। साम्प्रदायिक अह को तोडने और विद्वेष को मिटाने का भी आचार्य तुलसी ने योजनाबद्ध कार्य किया एव साधु समाज को आधुनिक विद्याओ का ज्ञान प्राप्त करने एवम् कलात्मक साधना के लिए भी प्रेरित किया। इस प्रकार शिक्षण सस्थाओ के निर्माण द्वारा ज्ञान की वृद्धि और चेतना के विकास का एव सामाजिक सुधार और चरित्र-उत्थान का श्लाघनीय कार्य वर्तमान युग मे जैन श्रमणो द्वारा किया जा रहा है।

जहा तक अनुयायियो के योगदान का प्रश्न है, वे अपने गुरुओ के आदेशो का पालन करने मे खुले दिल से धन लगाते है। प्राचीन काल मे उन्होने भव्य और विशाल मंदिरो का निर्माण करके राजस्थान को स्थापत्य और शिल्प की अनुपम थाती भेट की और आज के युग मे शिक्षण संस्थाओ का निर्माण करके ज्ञान-प्रसार के कार्य मे सक्रिय योग दे रहे हैं। इसके अलावा चिकित्सालयो के

निर्माण द्वारा एवं अकाल आदि प्राकृतिक प्रकोपो के समय उदार द्रव्य दान द्वारा लोक सेवा भी करते हैं। स्वतन्त्रता सग्राम के अग्रणी नेताओ मे भी अनेक जैन नेता थे, जैसे सर्वश्री अर्जुनलाल सेठी, आनंदराज सुराणा, फूलचद बाफणा, मानमल जैन इत्यादि। राजस्थान के औद्योगिक विकास मे भी जैन श्रावको का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है और वाणिज्य व्यवसाय मे तो वे देश भर मे अनेक संस्थानो के अत्यंत दायित्वपूर्ण पद सम्हाले हुए हैं। इस प्रकार राष्ट्रनिर्माण के कार्य मे भी उनका सराहनीय योगदान है। परन्तु इतने बडे समाज मे सभी लोग उच्च नैतिक स्तर के नही होते, अतः कुछ लोग धन के लोभ से कुछ ऐसे धधे भी अपना लेते है जो जैनो को शोभा नही देते; जैसे तस्करी, काला-बाजारी, मिलावट, कर चोरी। पर छाती पर हाथ रख कर देखे तो आज कौनसा समाज इससे मुक्त है ? कौन है दूध का धुला हुआ आज ? तथापि जैन धर्म के बिम्ब को धुधलाने वाले ऐसे धधो से कम से कम जैनो को तो दूर ही रहना चाहिए। वैसे व्यक्तिगत गुणो की दृष्टि से औसत जैन व्यवहार का मधुर, बुद्धिमान, व्यसनो से मुक्त और झगडे-टटे से दूर रहने वाला होता है।

४. जैन धर्म मे प्रतिपादित पाचो महाव्रत ऐसे मूल्य है जिनके स्थूल रूप अणुव्रतों के नाम से प्रसिद्ध है और युगानुकूल सदर्भ देकर आचार्य तुलसी ने जिनका विशेष प्रचार किया है। वे हैं—

(१) **अहिंसा**—जिसका व्यावहारिक रूप है किसी के मन को दुर्भावना से न दुःखाना और किसी जीव का जहा तक सभव हो, हनन न करना। गांधीजी ने इसका राजनैतिक क्षेत्र मे भी सफलता से प्रयोग किया और अतर्राष्ट्रीय समस्याओं को बातचीत से सुलझाने की आधुनिक प्रवृत्ति के पीछे भी अहिंसा का सिद्धान्त ही है। कुछ लोग दया, करुणा और प्रेम को भी इस का ही विधायक रूप मानते है और ये गुण सफल एव सुसस्कृत सामाजिक जीवन के लिए परम आवश्यक है।

(२) **सत्य**—आचार-विचार मे मिथ्यात्व से बचना, किसी से छल न करना, मिलावट न करना, ठगी न करना आदि स्वस्थ सामाजिक जीवन की अनिवार्य शर्ते है, जो चिरंतन है।

(३) **अस्तेय (अचौर्य)**—इसकी आज के युग मे सर्वाधिक आवश्यकता है और वह भी हमारे देश को विशेष रूप से। कर की चोरी, झूठा नाप-तौल, सार्वजनिक सम्पत्ति एव रेल्वे की सम्पत्ति की चोरी, दफ्तरो से विभिन्न प्रकार के सामान की चोरी, कॉलेजो मे विचारो की चोरी (नकल)—सर्वत्र चोरी का बोलबाला है। इससे बचना जैनो का प्रमुख सिद्धात है।

(४) **ब्रह्मचर्य**—बढती जनसख्या विश्व का सबसे बडा अभिशाप है और उसे रोकने का एक उपाय है ब्रह्मचर्य की साधना। पर यह होना चाहिए ध्यान की साधना से न कि काम प्रवृत्ति के दमन द्वारा। काम की अपेक्षा काम के चिंतन से मुक्त होने की बहुत आवश्यकता है। यदि मन काम से मुक्त हो तो तन की चिंता करने की आवश्यकता भी नही रहती।

(५) **अपरिग्रह**—अपनी आवश्यकताओ को सीमित रखना और नितात आवश्यकता से अधिक कोई वस्तु न रखना। आज के संग्रहखोर युग मे इसकी कितनी उपयोगिता हैं, इसे बताने की कोई आवश्यकता नही। यदि सभी लोग अपने भोग्य पदार्थों की और सम्पत्ति की सीमा निर्धारित कर दें तो देश की आर्थिक स्थिति मे आमूलचूल परिवर्तन हो जाए, पर कहा ? स्वय जैनियो मे ही

अनेक उच्च कोटि के परिग्रही हैं। परिग्रह से बचना बढती हुई जनसख्या के भरणपोषण के लिए नितात आवश्यक है।

इन सबके मूल मे है अनेकान्तवादी जैन दृष्टि जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने विचार दूसरो पर थोपो मत। आग्रही मत बनो। यह सोचकर चलो कि दूसरे का कथन भी किसी अन्य दृष्टि से सही हो सकता है। पारस्परिक सम्बन्धो को स्वस्थ रखने के लिए यह गुण नितात आवश्यक है। सत्य बहु आयामी होता है और हम एक समय मे उसके केवल एक ही पहलू को देख पाते हैं; अतः उसके अन्य पहलुओ की सम्भावना स्वीकारने मे हिचकिचाहट क्यो हो ? फिर जिन्होने पूर्ण सत्य की अनुभूति की है, वे भी भाषा की अपूर्णता के कारण अपनी अनुभूति का सही रूप मे सम्प्रेषण नही कर पाते और भाषा मे ढलते ही सत्य एकागी हो जाता है क्योकि भाषा एक आयामी है—आप एक समय मे एक साथ घटित होने वाली बातो को भी एक-एक करके क्रमानुसार ही कह सकते है जिससे पूर्ण सत्य का चित्र विकृत हो जाता है अतः सत्य के इतर पहलुओ की सम्भावना स्वीकार करते हुए अपनी ही बात सही और श्रेष्ठ मानने का आग्रह न किया जाय—यही स्याद्वादी दृष्टि है जो आज के जीवन में पारिवारिक जीवन से लेकर अंतर्राष्ट्रीय जीवन तक अत्यत उपयोगी और पारस्परिक बधुत्व भावना बढाने वाली है।

५. क्या यह युग 'नव सास्कृतिक जागरण का युग' है भी ? मुझे तो लगता है, यह युग 'तोडने' का ही युग है—बिखराव का युग है जिसमें परम्परागत आस्थाए टूट रही है, पुराने जीवन मूल्य बिखर रहे है और हमारा सामाजिक जीवन मानो मर्यादाहीनता और अराजकता से ग्रसित होता जा रहा है। अभी पतझड चल रहा है और वसन्त की कोपले फूटी नही है। हर नव सृजन के पूर्व पुरातन का ध्वस अवश्यम्भावी है—वही हो रहा है। नव निर्माण होगा अवश्य—नये मूल्य भी आकार लेंगे ही—पर अभी उन के रूप-रग और आकार-प्रकार का आभास नही मिल रहा है। जैन समाज भी इसका अपवाद नही। यदि हम आज के औसत नवयुवक की दिनचर्या देखे तो शायद वह जैन से अधिक अजैन कृत्यो और विचारो से ही लिप्त दिखाई देगी। ठीक है प्रश्न ४ के उत्तर मे लिखित जीवन के कतिपय चिरंतन लगने वाले मूल्यो की सुरक्षा मे हमारे धर्माचार्य लगे हैं परन्तु नये जीवन की नई समस्याएं सम्भव है, उनमे भी परिवर्तन की माग करे।

[३] श्री भंवरमल सिंघी

१. राजस्थान को शौर्य-संस्कृति का स्थल कहा गया है। वहां की भूमि के लिए मुख्य विशेषण 'वीर-प्रसविनी' रहा है। राजस्थान का नाम आते ही महाराणा प्रताप आदि रणवीरो का खयाल आता है और जन्मभूमि की स्वतन्त्रता और सुरक्षा के लिए लड़ते-लड़ते प्राणो की बलि देने वाले अन्य वीरो का भी सहज ही स्मरण हो आता है। पर उसी के साथ भामाशाह जैसे उदार और त्यागी जैन वीरो का भी तो स्मरण हो आता है, जिन्होने लोक-कल्याण की भावना से, निस्वार्थ रूप से अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वास्तव मे, राजस्थान वीरो की तपोभूमि रही है। तप और त्याग वहां की संस्कृति का हार्द रहा है। शस्त्र-वीरता तो बाह्य रूप है, वास्तविक महत्ता तो मन-प्राण की आतरिक वीरता की है। इसी से हिंसक वीरता की अपेक्षा अहिंसक वीरता कही बड़ी मानी जाती है।

राजस्थान मे तप और त्याग की जो महान् ऊर्जा संगठित और विकसित हुई, उसके पीछे वहा पर प्रचलित सभी धर्मो और संस्कृतियों का योग रहा है। मानवमात्र की स्वतन्त्रता, समता और शान्ति के लिए राजस्थान हर अवसर पर प्राणोत्सर्ग करता रहा है। वहां शान्ति के समय सन्तो की शान्त वाणी निनादित होती रही है, तो युद्ध के समय चारणों का ओजस्वी सिंहनाद गूंजता रहा है। दोनो मे ही निःस्वार्थ भाव से व्यक्ति, समाज और देश के जीवन मे त्याग और बलिदान की सस्कृति अपने प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होती रही है।

२–३. राजस्थान जैन धर्म और सस्कृति का प्रमुख क्षेत्र रहा है। वहां जैन धर्मावलम्बियो की बहुत बड़ी सख्या है। न केवल वाणिज्य-व्यवसाय मे ही, बल्कि प्रशासन और स्वतन्त्रता-सग्राम मे भी उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। ज्ञान के क्षेत्र मे अन्य जातियो और समाजो की अपेक्षा जैनियो ने कही अधिक प्रगति की है। साहित्य और कला के क्षेत्र मे जैन समाज के लोगो का अप्रतिम अवदान है। जैन साधुओ और यतियो ने इस दिशा मे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यही कारण है कि जिसे भी राजस्थान के इतिहास और साहित्य की खोज करनी हो, उसे जैन मन्दिरो और भांडारो की शरण लेनी ही होती है। केवल जैन-धर्म सम्बन्धी दार्शनिक ग्रन्थो का ही नही, बल्कि इतिहास और लोक-संस्कृति की परम्परा सम्बन्धी ग्रंथो का भी बहुत बडा समुच्चय इन मन्दिरों और भाडारो मे भरा पडा है। सस्कृत एव प्राकृत भापाओ के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा की समृद्धि वढाने मे भी जैन साधुओ एवं अन्य लेखको का विशिष्ट योग रहा है। इतिहास के सदर्भ मे हमे उस विद्वान् जैन यति का स्मरण हो आना स्वाभाविक है, जिसकी सहायता से ही कर्नल टाड राजस्थान का इतिहास प्रस्तुत कर पाये। टाड का इतिहास जिस सामग्री पर आधारित है, उसमे जैन आचार्यो, साधुओ और यतियो के हस्त-लिखित ग्रथों का कितना महत्त्व रहा है, यह उस इतिहास को पढने वाले सभी जानते और मानते हैं। स्वय टाड ने उनका ऋण स्वीकार किया है।

इस प्रकार अपने बहु-सूत्रीय महत्त्वपूर्ण अवदान से जैन समाज ने राजस्थान की जीवन-संस्कृति को अत्यन्त प्रभावित किया है। जैन धर्म के मूल सिद्धान्त जैसे अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त आदि समता, संयम और त्याग पर जोर देते है और सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य की महिमा मानते है। इन गुणों के आधार पर ही जैनियो ने समता-मूलक सस्कृति का निर्माण और निर्वाह किया है। यद्यपि व्यापार-व्यवसाय, जो जैनियो का प्रमुख कर्म रहा है, मे अपरिग्रह एवं अहिंसा की मूल भावना पूरी तरह से नही खिल पाई परन्तु राष्ट्रीय तथा सामाजिक संकटो के समय जैन श्रावको ने औदार्य और त्याग के पर्याप्त उदाहरण रखे है। स्वनामधन्य भामाशाह इसी संस्कृति का पुष्प था। मेवाड के स्वाधीनता सग्राम मे उन्होंने अपना सर्वस्व महाराणा प्रताप को समर्पित करके जो महान् कार्य किया, उसे इतिहास कभी भी भुला नही सकता। उन्होने राष्ट्रीय और सामाजिक हितों के लिए दान की जो प्रवृत्ति स्थिर की, वह कम-ज्यादा रूप मे बराबर कायम रही। आज भी राजस्थान मे ही नही, वहां से बाहर भी जगह-जगह जैनियो द्वारा लोकमगल के सार्वजनिक कार्यो में बहुत अवदान हो रहा है। जैन संस्कृति का हार्द निवृत्ति और निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति है। जिसके स्वभाव मे परिग्रह की भावना नही है, वह किसी से राग-द्वेष नही करता। राग-द्वेष के लिये अवसर ही नही होता।

महावीर और पूर्ववर्ती सभी जैन तीर्थंकरो ने अहिंसक जीवन-पद्धति और समाज-रचना को

अपनी साधना का प्रमुख ध्येय माना और उसके लिए अहिंसा, अपरिग्रह तथा अनेकान्त के सिद्धान्त पर चलने की बात कही। जगत् एवं जीवन सम्बन्धी अपनी इन मान्यताओं पर बल देते हुए भी उन्होंने अन्य धर्मों के सिद्धान्तों एवं विचारों की कभी उपेक्षा नहीं की जिससे सह-धार्मिकता और सह-जीवन की भावना रख कर वे शान्ति-पूर्वक जीवन की ऊर्ध्व गति प्राप्त करते रहे। जैन साधु-साध्वियां अपने नियमों के अनुसार चलते-फिरते तीर्थ रहे हैं—गांव-गांव में पद-यात्रा करते हुए वे संयम एवं त्याग की संस्कृति के प्रचार के जीवन-दूत सिद्ध हुए। लोक-भाषा में बोलते हुए लोक-कल्याणमयी संस्कृति का जीवन-सन्देश फैलाते रहे हैं। प्राणि-रक्षा की मूल मानवीय भावना के निरन्तर प्रचार से उन्होंने इस सारे क्षेत्र में मद्य और मांस के त्याग का जो अनुपम सुसंस्कार डाला, वह स्पष्ट है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा है कि गुजरात प्राणि-रक्षा एवं निर्मांस भोजन के संस्कार में जो सभी प्रान्तों से आगे है, वह जैन धर्म और संस्कृति के प्रचार एवं पालन का ही फल है। राजस्थान के विषय में भी यह बात उतनी ही सच है।

४ संस्कृति केवल पुस्तकीय और शास्त्रीय वस्तु नहीं है; उसकी कसौटी तो जीवन है। जैन दृष्टि में जीवन में सतत् शोधन-संस्कार द्वारा कर्मक्षय की पद्धति एवं प्रवृत्ति सदैव कायम रहनी चाहिए। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में मैत्री और क्षमा-भावना पर इतना जोर दिया गया है। इन गुणों वाली जीवन-संस्कृति के निर्माण और विकास के लिये हम दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य की सम्यकता रूपी रत्नत्रयी की साधना को अनिवार्य मानते हैं।

जीवन-शोधन की सतत् प्रवृत्ति की जो बात मैंने अभी कही, उसी से प्रेरित होकर आधुनिक काल में भी जैन समाज ने व्यक्तियों एवं समाजों के मध्य पारस्परिक मैत्री एवं एकता के कार्यों में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह कहना तो सही नहीं होगा कि जैनियों में जड़ता और अधपरंपरा की स्थिति है ही नहीं। परन्तु यह जरूर कहा जा सकता है कि जब जब सिद्धान्तों में या तदनुसार जीवनचर्या में विकार की वृद्धि हुई, उसका संशोधन करने की दिशा में जैन लोगों ने विशेष रुचि और प्रवृत्ति दिखाई है। जैन सिद्धान्तों के अनुसार समस्त जीव समान हैं और सभी प्राणियों के जीवन का समान महत्त्व है। इसी में अहिंसा धर्म का सच्चा पालन है। जैन संस्कृति में जाति-भेद नहीं है। परन्तु अन्य समाजों की जाति व्यवस्था से जैन भी प्रभावित हुए और कालान्तर से उनमें भी जातिगत भेदभाव पैदा हो गया। एक ही गुरु और तीर्थंकर के अनुगामी होते हुए भी सामाजिक व्यवहार में जाति की दीवारें जैनियों में खड़ी हो गई। यहां तक कि जीव-अजीव सबकी समानता में विश्वास करने वाले जैन समाज में अस्पृश्यता भी घुस गई। इसमें जैन जीवन-विधि का सर्वान्त निषेध था। जैन धर्म व कर्म-सिद्धान्त के अनुसार जाति-भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। इस मान्यता के अनुसार राजस्थान में स्व० श्री अर्जुनलाल सेठी ने जातिवाद के विरुद्ध जो सुधार आंदोलन संगठित और संचालित किया उसका राजस्थान की मैत्रीपूर्ण लोकसंस्कृति के विकास में बहुत बड़ा योग सिद्ध हुआ जिसका महत्त्व आज भी माना और समझा जाता है।

५. सम्पूर्ण सारे देश में भगवान् महावीर की पच्चीससवीं निर्वाण-शती मनायी जा रही है। इस संदर्भ में हम भगवान् महावीर के लिये केवल परिग्रह-पूजा का ही आयोजन न करें बल्कि जीवन के शोधन-परिवर्तन की दिशा में भी सक्रिय हों ताकि जैन संस्कृति का वास्तविक रूप उजागर हो तथा महावीर की जीवन-साधना की ओर सभी लोगों का ध्यान आकर्षित हो। आज संग्रह और शोषण की

जो वृत्ति चारो तरफ फैली हुई दीखती है, वह इसी कारण से है कि हम परिग्रहवाद मे फसे हुए है। जो और जितना परिग्रह हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे बढा और फैल गया है, उसी से विषमता का वर्तमान वातावरण पैदा हुआ है। हम भौतिक सग्रह के गुलाम हो गये हैं। जैन धर्म एव संस्कृति मे बार-बार परिग्रह का निषेध करने को कहा गया है। पर श्रावक-श्राविका ही नही, हमारे तीर्थ और मन्दिर भी इसके शिकार हो गये है। वहा भी संयम एवं शाति के बदले अशाति और सघर्ष की स्थिति पैदा हो रही है, बढ रही है। वर्तमान जीवन के सारे तनाव, घुटन और संत्रास के मूल मे यह स्थिति ही है। यदि हम इस स्थिति मे से निस्तार चाहते है, चिर सुख और शान्ति चाहते है तो हमे एक तरफ अपने मन्दिरो, तीर्थों और संघो मे अपरिग्रह-आधारित दृष्टि का प्रत्यावर्तन करना होगा और दूसरी तरफ व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन मे समता, संयम और सादगी के मूल गुण-स्थानो का जीवन जीना होगा; उनका पुनरान्वेषण और पुनर्प्रवर्तन करना होगा और उन पर चलना होगा। यदि अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकात और मैत्री से निर्मित और प्रवृर्त्तमान सस्कृति के वास्तविक हार्द को समझ कर चले और सतत् जीवन-शोधन की दृष्टि एव वृत्ति के प्रति जागरूक तथा सक्रिय रहे, तो विषमता का वर्तमान दुष्चक्र स्वतः समाप्त हो जायेगा। यदि हम इस मार्ग को अपना ले और उसके अनुसार चले, तो सहज ही लोकतन्त्र एवं समाजवाद के तत्त्व सार्थक एवं सफल बन जायेगे। इस अर्थ मे जैन सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक और प्रेरक है।

[४] प्रो० प्रवीणचन्द्र जैन

१. वर्तमान राजस्थान की रचना का आरम्भ सन् १९४७ से होता है। इससे पूर्व यह प्रदेश छोटे-बडे २३ राज्य तथा २ ठिकानो एव अजमेर मेरवाडा मे विभक्त था। आज का राजस्थान सन् १९५६ मे बना है। १९४७ मे जो राज्य थे उनका अस्तित्व भी ईसा की ७वी शती के बाद का है। इन रियासतो की स्थिति मुस्लिम शासन के आरम्भ के पूर्व की मानी जा सकती है, हालाकि मुस्लिम और ब्रिटिश शासन काल में भी अनेक परिवर्तन और परिवर्धन हुए है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति से पूर्व इन सब राज्यो मे जो राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता का भाव रहा उससे उत्पन्न कुरूपता और भीषणता को हटाते रहने मे सस्कृति, साहित्य और कला के विविध क्षेत्रो मे होने वाले काम का महत्त्वपूर्ण योग है। संस्कृति, साहित्य और कला, इन तीनों का पक्ष मानवता का पक्ष है और उनका लक्ष्य अपनी-अपनी प्रवृत्तियों के माध्यम से मानव और मानव के बीच को दीवारे ढहाते रहना है। इन क्षेत्रो मे होने वाले आयोजन, सृजन और प्रसारण के माध्यम से एक प्रदेश के लोगो का दूसरे प्रदेश के लोगो से सास्कृतिक स्तर पर सम्पर्क होता रहा है, उनकी भावात्मक कोमलता बनी रही है और वैचारिक आदान प्रदान के अवसर आते रहे है। ये सब जीवन के लक्षण है। स्पष्ट है, राजस्थान की सांस्कृतिक दाय का स्वरूप अन्य प्रदेशो के समान ही विविध संकीर्णताओ के साथ भावात्मक एकता और वैचारिक प्रबुद्धता को लिये हुए है।

२. राजस्थान मे मुख्यतः हिन्दू, मुसलमान, जैन, सिख और ईसाई धर्मों के अनुयायी रहते है। इन धर्मों की प्रवृत्तियो मे एक ओर तो साम्प्रदायिक संकीर्णता का भाव मिलता है और दूसरी ओर उनसे सार्वजनिक हित का भाव भी समर्थित और सम्पुष्ट होता है। इन धर्मो के अनुयायियो को एक जगह रहना पडता है और मिल जुल कर अपनी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करनी

होती है इसलिए संकीर्णता और उदारता दोनो का सह अस्तित्व सम्भव होता रहा है। विभिन्न धर्मावलम्बियो ने जीवन के सांस्कृतिक पक्ष को समझने–समझाने का जो प्रयत्न किया है उससे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के होते हुए भी सार्वजनिक अथवा सामाजिक लाभो की निष्पत्ति हुई है। यहा के विद्वानो, आचार्यों और साधु-सन्तो ने जीवन के शाश्वतिक मूल्यो को निरावृत रूप मे प्रस्तुत किया है। और एक बार नही, अनेक बार स्थितिपालको मे से ही कई लोग ऐसे निकले हैं जिन्होने चेतना के क्षेत्र मे क्रातिकारी कदम उठाये है।

ऐसे लोगो के उपदेशो, व्याख्यानो और सवादो का सामाजिक परिणाम यह हुआ है कि समृद्धि और सम्पन्नता के मायाजाल मे फसे हुए लोगो को, चाहे वे सम्पन्न रहे हों या असम्पन्न, सासारिक उपलब्धियो की नश्वरता का बोध बराबर बना रहा है। इससे मानव और मानव के बीच की दरारे तो चाहे नही मिट सकी, पर उनके बीच गहरी खाइया नही बन पाई। किसी भी निमित्त विशेष को लेकर अनेकशः एक जगह बैठ सके, खा पी सके, एक दूसरे की भावना का आदर कर सके और वैचारिक क्षेत्र मे स्थूल और सूक्ष्म के अन्तर को आदान प्रदान की प्रक्रिया से, वादो और शास्त्रार्थो से समझ सके समझा सके।

३. इस बडे काम मे निश्चय ही राजस्थान के जैन आचार्यों, साधुओ तथा प्रबुद्ध गृहस्थो का भी प्रशसनीय योग रहा—ऐसा योग जिसका प्रभाव देशकालातीत है। कम से कम लेकर अधिक से अधिक देने की वृत्ति वाले जैन श्रमणो या तापसों ने एक स्थान से दूसरे स्थान तक पद-यात्रा करते हुए जन साधारण की चेतना के आवरणो को हटाने और शुद्ध एव सरल जीवन धारा को निरन्तर प्रवाहित करते रहने मे स्थायी योग दिया। उन्होने व्यक्ति की समस्याओ को जाना, उसकी पीडा का अनुभव किया और सामाजिक रूप से उनका समाधान किया। त्याग और तपस्या के महत्त्व को मनोवैज्ञानिक रीति से समझाकर उन्होने अर्थशक्ति अथवा राज्यशक्ति से सम्पन्न लोगो को धन या राज्य को ही सब कुछ मानने के अभिमान मे बचाया और दोनो शक्तियो से हीन लोगो को दीनता या हीनता के भाव से मुक्त किया, उनमे आत्म-बल का सचार किया। जीवन के लक्ष्य की स्पष्ट रूप रेखा प्रस्तुत करके उसकी प्राप्ति की ओर सभी वर्गों के लोगो को—मानवमात्र को—गतिशील किया। प्रबुद्ध गृहस्थो ने भी साधु-सस्था की उपयोगिता को समझा और अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे आत्मोद्धार के पथ का अवलम्बन करते हुए उन्होने साधु-सन्तो के कार्य को आगे बढाया। यह परम्परा आज भी चालू है। आज भी सहस्रो की सख्या मे साधु-साध्विया अर्थतन्त्र की बारीक पर सशक्त तन्त्रियों मे जकडे मानव को पैदल ही गांव-गाव और नगर-नगर जाकर अपनी—स्वयं की—गहराइयो मे उतरने की प्रेरणा दे रहे हैं। बहिरात्मा को अन्तरात्मा बनने की प्रेरणा देने का काम साधारण नही है। अपने सन्तुलन या समत्व को बनाए रखते हुए दूसरो को अन्तर्मुख बनाना आत्मवान व्यक्तियो के लिए ही सम्भव है। कितना महान् योग रहा है हृदय-परिवर्तनकारी इस बडे काम मे इन आचार्यों, साधुओ और विद्वानो का। इसका प्रत्यक्ष दर्शन उस विपुल साहित्य के अध्ययन से हो सकता है जिसमे पूर्वागागम (चतुर्दश पूर्व, द्वादश अंग और आगम) एवं उन पर आधारित विविध विधाओ मे विरचित प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय तथा विदेशी भाषाओ की कृतियो का समावेश है।

४. जैन दृष्टि तत्त्व-ज्ञान पर बल देती है। स्व और पर का भेद, चेतन और अचेतन का

भेद, जीव और अजीव का भेद, एक ही बात है विभिन्न शब्दों मे। इस भेद का इतना विस्तृत, गहन और सूक्ष्म विवेचन किया है जैनाचार्यों ने कि इसी कारण एक विज्ञान अस्तित्व में आ गया, भेद-विज्ञान। और वह जैन दर्शन की एक विशेषता बन गया। यदि आत्मा और अनात्मा का भेद दर्शन ज्ञान और चारित्र की सम्यक्ता से यथार्थ रूप मे उपलब्ध हो गया तो जीवन सार्थक हो गया। कर्मरूप पुद्गल बन्ध से मुक्ति जीवन का परम पुरुषार्थ है, उसके लिए अन्तरात्मता चाहिये। पर वासनाओं के जटिल जाल मे फसा हुआ आज का असन्तुष्ट मानव केवल प्रवृत्ति की भाषा को ही समझता है। जैन दर्शन प्रवृत्ति की भाषा मे भी एक ऐसी आचार पद्धति को प्रस्तुत करता है जो उसे सही मार्ग पर ला सके। यह पद्धति लौकिक सम्बन्धों को यथार्थ या मूर्त रूप मे प्रस्तुत करने की है। यथा, अहिंसा जो आत्मा का भाव है उसकी ओर किसी को उन्मुख करने के लिए कहा जाय—हिंसक की आकृति को देखो, उसके कामो को देखो, जिसकी हिंसा हो रही है उसकी दशा को देखो, इससे होने वाले समाज व्यापी परिणामो को देखो, इसके विपरीत अहिंसक की आकृति को देखो, उसके कामों को देखो, जिसके साथ अहिंसामय व्यवहार हो रहा है उसकी दशा को देखो, इससे होने वाले सामाजिक परिणामो को देखो। और फिर दोनो के अन्तर को समझो—। इसी प्रकार चौर्य अचौर्य, असत्य सत्य, अपरिग्रह परिग्रह और अब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य, इनमे रत रहने वाले लोगो के कार्यों का अन्तर समेत बोध सुस्पष्ट रीति से सोदाहरण दिया जाय।

इस बोध का यही परिणाम आना चाहिए कि मानव परावलम्बिता के स्थान पर स्वावलम्बी बने, उसका ज्ञानावरण हटे और वह अपने ज्ञानमय रूप में प्रतिष्ठित होता जाय। स्पष्ट है, मानव के जागरण के किसी भी प्रसग मे स्व-रूप मे प्रतिष्ठित होने की बात का सर्वथा साँगत्य और औचित्य है। अणुव्रतो और महाव्रतो के नाम से सुपरिचित अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य तथा दश लक्षण धर्म के नाम से सुविदित क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि मूल्यो की जीवन मे अभिव्यक्ति होनी ही चाहिये तभी असंस्कार या कुसस्कार, अशिक्षा या कुशिक्षा से जनित दोषो का उपशम या क्षय होगा। और तब व्यक्ति सुधार के मार्ग से समाज के नव सास्कृतिक जागरण का मार्ग खुल जायगा। इसके लिए प्राचीन दोषपूर्ण रूढ़ियो को छोड़कर आधुनिक आवश्यकताओ के अनुरूप स्वस्थ परम्पराओ का निर्माण करते रहना होगा।

५. यह एक शुभ लक्षण है कि जैन समाज चाहे कितना भी अर्थ परायण हो गया है उसके घटक व्यक्ति के विचार और भाव दोनो के किसी न किसी बिन्दु पर अध्यात्म का प्रभाव गहराई को लिये हुये है। इसलिए देश और समाज के नव जागरण के प्रसंग में इस प्रभाव का अधिक से अधिक उपयोग होना चाहिये। वर्तमान मे नव जागरण से इतना भी अभिप्राय पर्याप्त हो सकता है कि मानव समता, एकता और परस्परोपयोगिता के महत्त्व को भौतिक और आध्यात्मिक दोनो स्तरो पर समझे। उसके शिक्षण प्रशिक्षण, उद्योग व्यवसाय तथा ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियो मे अहिंसक भाव की प्रमुखता हो जिससे समाज उस स्थिति मे आ जाय जो नव जागरण के लिये उपयुक्त भूमि बन सके।

भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के इस वर्ष में जो भी सावचेता लोग हैं, चाहे वे गृहस्थ है या गृहत्यागी, सागार है या अनागार अपनी उदार भावना; संयत वाणी और अप्रमत्त आचरण से सर्वोदय की इस दिशा मे चल पड़े, इतना ही पर्याप्त है। गति होगी तो अवरोध हटेंगे और फिर लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित है।

[५] श्री रिषभदास रांका

१ राजस्थान की भारतीय संस्कृति को सबसे बड़ी देन है, त्याग। राजस्थान का इतिहास आत्मोत्सर्ग से भरा पड़ा है। चारित्र्यशील तथा आत्म-सम्मान के लिये मर मिटना राजस्थानियो की विशेषता है। आजादी, धर्म व शील की रक्षा के लिये हसते-हसते मृत्यु का वरण करना यहा की वीर रमणियो का धर्म रहा है। आश्रय मे आये हुये की रक्षा के लिये बडे शत्रु का भी हिम्मत से मुकाबला करना और समय आने पर सर्वस्व त्याग कर देना यहां के वीरों की परम्परा रही है। त्याग और शौर्य की गाथाए राजस्थान के साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं। मातृभूमि या शासक के प्रति समर्पण करने वाले भामाशाह और पन्ना धाय जैसे उदाहरण भी राजस्थान के इतिहास मे पाये जाते है। शरण मे आये हुये को उदारतापूर्वक अभयदान देना और उस शत्रु से परास्त होने की घटनाए भी राजस्थान मे अनेक घटी है और हमीर का नाम तो इसी कारण हठी-हमीर पड गया था। धर्म के प्रति अपूर्व श्रद्धा, कला के प्रति अगाध प्रेम, उपास्यदेव के प्रति अनुपम भक्ति राजस्थान मे देखने को मिलती है। भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने भी राजस्थान मे है और उसको आध्यात्मिक रूप देने की विशिष्टता भी यहा परिलक्षित होती है। स्थापत्य, चित्रकला व साहित्य का विपुल सृजन भी राजस्थान मे हुआ है। विदेशियो के हुये उत्तर दिशा के हमलो को रोकने तथा मन्दिरो व मूर्तियो को बचाने का काम राजस्थानी वीरो ने किया। भारतीय सस्कृति मे सभी दृष्टियो से राजस्थान मुकुटमणि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी।

२. वैसे भारतीय धर्मों की तीनो शाखाओ (जैन, बौद्ध और वैदिक) का कम अधिक मात्रा मे योगदान रहा है। वैदिक व जैनियो का योगदान बौद्धो की अपेक्षा अधिक है। वैदिक शाखाओ मे से वैष्णव व शैव दोनो के ही अनुयायियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राजस्थान के तीर्थो मे शिव, कृष्ण व राम तीनो का ही योगदान रहा है और तीनो के ही मदिर और भक्ति राजस्थानियो मे आज भी पाई जाती है। वैदिक या ब्राह्मण शाखा की तरह जैनियो का प्रभाव भी इस प्रदेश मे विशेष रूप से पाया जाता है। नाथपंथी एवं योगियो का भी प्रभाव प्राचीनकाल मे अब तक कही-कही दिखाई देता है। प्राचीन मंदिर राजस्थान के विविध क्षेत्रो मे पाये जाते हैं। विदेशियो को जैन व भारतीय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य अनेक आचार्यों ने किया जो आचार्य जिनदत्तसूरि तक चलता रहा। जैन के प्रभावक आचार्यो ने विदेशियो को जैन के रूप मे भारतीय बनाकर भारत की अखण्डता को सुरक्षित रखा था पर बाद मे वर्णाश्रम धर्म का प्रभाव बढने से जन्म से जाति मानी जाने लगी। वर्ण मे ऊंच-नीच का भेद तीव्र बनकर विदेशियो को भारतीय बनाना तो बन्द हुआ ही पर उनके सम्पर्क में आने वाले को धर्म से अलग किया जाने लगा। छूआछूत का प्राबल्य बढा। यदि कोई विदेशी का छुआ हुआ भोजन भी कर लेता तो उसे अपने धर्म से बाहर किया जाने लगा, फलतः लाखो नही करोड़ो भारतीयो ने पर-धर्म स्वीकारा जिसका प्रारम्भ मुस्लिम काल से ईसाइयो के समय तक चलता रहा। भारत के पराधीन बनने व विभाजन का दुःखद इतिहास हमारी संकुचितता के कारण सर्जित हुआ। जैनियो के आचार्यो ने उसके बाद भी जैन बनाने का काम तो किया ही पर उनका प्रभाव वर्णाश्रम धर्मवालो के समक्ष कुछ कम रहा। स्वय जैन गृहस्थ भी छूआछूत और छोटे-बडे के भेद को मानने लगे। कई जैन जातिया भी अजैन बनी और जो नये जैन बने उन्हें भी जैनी अपने मे शामिल न कर पाये।

जब मुगल काल मे मुसलमानो का प्रभाव बढ़ा तो अजमेर जैसे स्थान पर उनका बहुत बडा

तीर्थस्थान बन गया। कई जैन व हिन्दू मंदिर, मस्जिदो के रूप मे परिवर्तित हुये। मुस्लिमो की तरह ईसाइयो ने भी अपने धर्म के प्रचार का क्षेत्र राजस्थान के पिछडे हिस्से व पिछड़ी जातियों मे बनाया। राज्यसत्ता से भी उन्होंने सेवा के बल पर तथा भारतीयो की ऊंच-नीच की भावना का लाभ उठाकर अपने धर्म का प्रसार किया। आज अनेक स्कूल, शिक्षा सस्थाएँ तथा अस्पताल ईसाइयों के हैं। अकाल के समय लोगो को सहायता पहुँचा कर उन्हे अपने धर्म मे ये आकर्षित करते रहते हैं। जब तक अंग्रेजो का राज्य रहा उन्होने अपने धर्म-प्रचारको के द्वारा उनके काम मे सहायता की, पर अग्रेजो ने धर्म-प्रचार मे राजस्थान मे जोर-जबर्दस्ती की हो, ऐसा नही दिखाई देता। जिन सेवा के तरीको से अंग्रेजो ने ईसाई धर्म को बढावा दिया, जैनियो ने भी धर्मप्रचार मे इसी तरीके से धर्म-प्रसार का काम किया था। जैनो के चार दान प्रसिद्ध है—अन्नदान, विद्यादान, औषधिदान और अभयदान। जैनाचार्यों ने उत्तर की तरह दक्षिण मे भी यही तरीका अपनाया। हमारे यहां यतियो ने शिक्षा, वैद्यकीय, ज्योतिष, मत्र-विद्या द्वारा धर्म-प्रचार का काम किया।

३. जैनाचार्यों का राजस्थान की सास्कृतिक चेतना जागृत रखने मे बहुत बडा योगदान रहा। जैसा हम ऊपर बता चुके है कि उन्होने विदेशियो को भारतीय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य यूनानी, सिथियन, शक, हूण, आभीर, गुर्जर और न मालूम कितनी ही जातिया भारतीय बनी और भारत की राष्ट्रीयता सुरक्षित रखी। ऊच-नीच के भेद को प्रश्रय मिलने पर आपसी ईर्ष्या और द्वेष बढा जिससे हम टुकड़ो मे बट गये। कई बार तो विदेशियो को अपनी फूट के कारण ही हमने विजयी बनाकर गुलामी अपनाई। यदि जैनाचार्यों की उदारता और व्यापक दृष्टिकोण को समाज अपनाता तो उनकी शक्ति का बहुत अधिक उपयोग होता। उन्होने जो समाज मे सद्गुणों और चारित्र्य की प्रतिष्ठापना के लिये कठोर दिनचर्या व जीवन अपनाया था उसका लाभ राजस्थान व पूरे भारत को अधिक मिलता। इन जैनाचार्यो ने प्रजा मे धर्म व उदात्त विचारो का प्रसार किया था। उससे राष्ट्र अधिक सुदृढ होता। फिर भी जैन साधुओ की त्यागपूर्ण व श्रमाधारित चर्या व निस्पृह जीवन निरर्थक गया हो, ऐसी बात नही।

समाज के विविध क्षेत्रो मे जैनाचार्यो ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। समाज मे सद्गुणो की प्रतिष्ठापना की जिससे जैन श्रावको ने निस्वार्थ भाव से शासन के द्वारा अनेक जनोपयोगी कार्य किये और आज जैनी संख्या के अनुपात मे सेवाकार्यों मे अधिक योगदान देते है। चाहे वह क्षेत्र राजनैतिक हो या सामाजिक, शैक्षणिक हो या सेवा का। इसके अतिरिक्त साहित्य और कला के क्षेत्र मे भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जीवन मे त्याग के महत्त्व को उन्होने बनाये रखा है और आज भी त्याग के महत्त्व को उन्होंने सामाजिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया है। उनकी अहिंसा का उन पर तथा लोकजीवन पर अच्छा परिणाम हुआ है और आज भी मासाहार की अपेक्षा निराभिष भोजन ही होता है और जो मांसाहार करने वाली जातियां है वे भी धार्मिक पर्वो मे मासाहार नहीं करती। निर्व्यसनता, परिश्रमशीलता, मितव्ययता आदि गुणो का जनजीवन पर जो प्रभाव दीखता है वह भी कुछ अशो मे जैनाचार्यों तथा जैन धर्म के सिद्धान्तो का ही प्रभाव है। जैन साधु पद-यात्रा के द्वारा जनजीवन को अपने उपदेशो से प्रभावित करते रहते है। उनके कठोर व त्यागमय जीवन को देखकर साधुत्व यानी त्याग ऐसी मान्यता साधुओ के सम्बन्ध मे सहज मे होकर उनसे त्याग की अपेक्षा रखी जाती है। एक तरह से मानवीय गुणो की वृद्धि मे जैनाचार्यो व जैन धर्म का विशिष्ट स्थान स्पष्ट दिखाई देता है।

४. जैन धर्म का आचार मार्ग और मानवीय गुणो की वृद्धि पर दिया हुआ बल, ये तत्त्व ऐसे हैं जिनसे सांस्कृतिक जागरण मे प्रेरणा मिल सकती है। जीवन को विशुद्ध बनाकर धर्माचरण आये बिना हम केवल भगवान् की भक्ति कर अपना उद्धार नही कर सकते। हमारे दुष्कर्मों व सत्कर्मों के हमे फल मिलते हैं जिससे भगवान् की भक्ति मे से परावलम्बन दूर होकर कामनिक भक्ति के कारण जो अकर्मण्यता जनता मे आती है उसे दूर करने व जीवन मे सदाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने मे जैन तत्त्व सहायक हो सकते है। जैन धर्म मे मनुष्य जाति से नही, कर्म से छोटा-बडा या ऊंच-नीच माना गया है। इसका आधार लेकर छूआछूत को मिटाकर समता भाव प्रतिष्ठित करने मे जैन धर्म प्रेरक बन सकता है। जैन धर्म का अनेकान्त सिद्धान्त अन्य सम्प्रदायो के साथ उदारता का व्यवहार सिखाता है। इससे साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामो से बचा जा सकता है। धर्म और कर्तव्य के लिये त्याग की प्रेरणा जैन धर्म दे सकता है। जैनियो ने सगठित होकर अपने जाति या धर्म के लिये कभी विशेष अधिकार नही मांगें, किन्तु सदा राष्ट्रीयता को ही प्राधान्य दिया है। उन्होने आजादी के जग मे या उसके भी जातीय द्वेष को बढ़ावा न देकर, राष्ट्रीयता को प्राधान्य दिया है। जैनियो को दान या सेवा की विरासत परम्परा से प्राप्त है। वे आज भी व्यापक दृष्टिकोण से सेवा-कार्यों मे योगदान देते है।

५. मेरी दृष्टि मे राष्ट्र या मानवता के सांस्कृतिक नव-जागरण मे जैन समाज बहुत बड़ा काम कर सकता है और उसे करना चाहिये। नव सांस्कृतिक जागरण मे आज सबसे बडी आवश्यकता समता और आत्म स्वातत्र्य भाव की है। आज का प्रबुद्ध व्यक्ति, चाहे वह किसी भी विचारधारा से प्रभावित हो, समता को प्राथमिकता देता है। जैन धर्म प्रत्येक व्यक्ति मे पूर्ण विकास की क्षमता मानता है और इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति अपने सद्‌गुणो व पुरुषार्थ से सर्वोच्च पद पा सकता है। उसे अपने पूर्ण विकास के लिये या महत्त्वपूर्ण स्थान पाने के लिये किसी की गुलामी नही करनी होती। जैन धर्म उच्च स्थान प्राप्ति के लिये याचना की जरूरत नही मानता। उसकी उपासना, अपने उपास्यदेव ने जिस मार्ग से और जैसे विकास किया, उसके अनुकरण की है जो उसे कर्मण्यता की ओर प्रेरित करती है। अपने विकास मे बाधक दूसरा नही परन्तु स्वयं उसकी कमियां है, यह प्रेरणा जैन धर्म से प्राप्त की जा सकती है। भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण वर्ष मे उनके सर्वोपयोगी और सभी का कल्याण करने वाले उपदेशो का आज के सन्दर्भ मे प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। यदि जैनियो ने यह कार्य किया तो उसमे उनका, राष्ट्र का व मानव जाति का कल्याण है। महावीर का उपदेश विशुद्ध धर्म का उपदेश है। उसमे कही व्यक्तिगत श्रेष्ठता को आवश्यकता से अधिक स्थान नही है, पर सद्‌गुणो को ही प्रधानता है। उच्च तत्त्वो के आचरण से ही कल्याण हो सकता है, यह विधान है। यह धर्म शाश्वत है, सर्वकाल के लिये उपयोगी है और बुद्धि द्वारा प्रतिपादित तत्त्वो को जीवन मे अपनाने की प्रेरणा देने वाला है। उसका प्रचार यदि जैनी कर सकें तो वे सांस्कृतिक नव जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे। स्वयं समता का आचरण संयमपूर्वक करें और दूसरे को वैसा करने की प्रेरणा दे, यही भगवान् महावीर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

[६] डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

१. भारतवर्ष की संस्कृति का अंग राजस्थान है। प्रत्येक अंचल की अपनी सांस्कृतिक और कलात्मक उपलब्धियां होती हैं, वे राजस्थान की भी हैं। राजस्थान सस्कृतियो का भडार है। यहा

बहुत से जनसमूह और जातिया, जमातें बाहर से आईं। उन्होने यहां राज्य बनाये और सामान्य भारतीय जीवन मे घुलमिल गये। इस तरह राजस्थान मे एक घुलीमिली संस्कृति है। लेकिन उसके कई रग अपने है जो यही मिलते है और कही नही मिलते। राजस्थान की सस्कृति की विशेषता इसका समन्वित रूप है। यहां विभिन्न सस्कृतियो मे घुलनशीलता है। यहां हिन्दू समाज की प्रधानता होते हुए भी जैन धर्म बहुत सबल है और अनेक प्रभावशाली व्यक्ति उसमे विश्वास करते है।

२. राजस्थान वीर भूमि भी है और योग भूमि भी है। यह साधना-स्थल रहा है और आज भी है। यहां मनुष्य ने विभिन्न धर्मो के निर्देशन मे प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर आध्यात्मिक मनोविज्ञान की सृष्टि की, जिसकी वजह से सारी दुनिया मे इस देश को आज भी गौरव मिलता है, क्योकि वे देश प्रवृत्तियो से परेशान है और मूल्यहीनता के शिकार है। राजस्थान ने महान् हठयोगियो और देलवाड़ा मन्दिर के महान् निर्माताओ को जन्म दिया। कई जैन-अजैन विद्वानो और साहित्यकारो को जन्म देने का श्रेय भी इसे है। राजस्थान के सामन्ती शासक चर्च या धर्म के प्रति यूरोप के सामन्तो की तरह मुकाबले की मनःस्थिति मे नही थे। वे परम्पराओ के अनुसार शासन करते थे। यह देश अत्यन्त प्राचीन और सभ्य देश है इसलिये स्मृतियो मे वर्णित कठोरताएं, परम्पराओ के कारण कम होती रहती थी। फलस्वरूप सब एक-दूसरे को सहते थे। यह सहनशीलता राजस्थान के वातावरण मे भी है और अवचेतन मे भी। फिर भी रग की दृष्टि से राजस्थान मे प्रत्येक मत और प्रत्येक संगठन ने अपनी पहचान को बनाये रखा है। उसकी अपनी परम्पराएं, मूल्य और रीतिरिवाज है।

३. जैन धर्माचार्यो का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि उन्होने भारतीय संस्कृति को वैचारिक उदारता और व्यावहारिक सहनशीलता दी। उन्होंने मानव व्यक्तित्व के विकास का चरम आदर्श प्रस्तुत किया और इस विकास विन्दु को पाने मे बाधक हर चीज को छोड़ दिया। प्रवृत्ति से शुद्ध विचार या आदर्श की इस यात्रा मे राजस्थान के जैन साधकों, जैन विद्वानो और सामान्यतः सभी जैन मतावलम्बी नागरिको ने यथासभव इस आदर्श को पाने की कोशिश की और यह कोशिश जारी है। चरम अहिसा मे विश्वास करने के कारण जैन मत का एक सीमा तक आर्थिक व्यवस्था पर भी असर पड़ा। कृषि मे हिंसा होने के कारण अहिंसावादियो ने उद्योग-धन्धों और व्यवसाय को अपनाया, जिनमे साक्षात् हिंसा नही होती। जैन मत के प्रभाव से परम्परागत व्यवसायी व्यक्ति यूरोप और अमरीका के धन प्रदर्शनवादी और अहकारी व्यवसायियो की तुलना मे बहुत नम्र और सभ्य प्रतीत होते है। जीव दया के प्रचार से हिन्दुस्तानी व्यवसायियो के प्रति सामान्य जनता मे उतनी नफरत नही है जितनी कि समझी जाती है। आधुनिक व्यवसायी और परम्परागत व्यवसायी का अन्तर मुख्य रूप से जैन प्रभाव का अन्तर है। आधुनिक व्यवसायी धर्मोन्मुख नही है। वह किसी उच्चतर मूल्य को स्वीकार नही करता। इसीलिये वर्ग चेतना बढ रही है।

४. मनुष्य के विकास की, उसके उच्चतर मूल्यो की विचार-व्यवस्था कभी भी पूर्णतः प्रासगिक नही हो सकती। उसमे मनुष्यो को प्राकृतिक जीवन से ऊपर उठ कर उच्चतर मानसिक भूमियो मे विचरने के आमन्त्रण होते हैं। दूसरे, प्रत्येक विचारधारा का उद्देश्य मनुष्य के उच्चतम मूल्यो की ही उपलब्धि है, सिर्फ मतभेद साधनो के विषय मे है। उदाहरण के लिये आज का भौतिकवादी व्यक्ति भी वर्ग-वर्णविहीन एक पारिवारिक समाज की परिकल्पना करता है, यानि वह व्यक्तित्व के विकास की संभावनाओ के द्वार खोलना चाहता है और हर उस चीज को नष्ट कर देना चाहता

४. यह उदारता एव आत्मसात् करने की भावना सदा से जैन धर्मावलम्बियो मे रही है। धार्मिक सहिष्णुता एवं दूसरे धर्मों को उचित आदर देना अनेकांतवाद का ही प्रतीक है। यही कारण है कि जैन धर्म के विशिष्ट सिद्धातो का किसी न किसी रूप मे, राजस्थान मे पनपे अन्य धर्मो मे, थोडा-बहुत प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। अहिंसा, अनेकान्तवाद, अपरिग्रह, ध्यान, मानवता, करुणा, दार्शनिक चिन्तन, चित्त की शुद्धि, मैत्री, उदारता, आत्म बलिदान आदि अनेक मान्यताये आज के इस भौतिकवाद के युग मे भी अपरिहार्य है। आवश्यकता यह है कि उनको वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे नवीन स्वरूप मे उपस्थित किया जाय।

५ जैन धर्म मानने वालो का राजस्थान की सामाजिक एव शैक्षणिक प्रवृत्तियो मे भी बडा योगदान रहा है। अधिकतर जैन समाज व्यापार उद्योगो के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य करता है। यही कारण है कि इस प्रकार से होने वाली आय का एक निश्चित भाग धर्मार्थ नाम से बचाया जाता है और उससे लोकोपकारी प्रवृत्तियो को सहायता दी जाती है। इस सहायता से राजस्थान मे अनेक विद्यालय, महाविद्यालय, छात्रावास, वृद्धाश्रम, विधवाश्रम, उद्योग शिक्षण केन्द्र, पुस्तकालय, वाचनालय, साहित्य प्रकाशन सस्थान, धार्मिक शिक्षणशालाये, जीवदया केन्द्र, असहाय सहायताकोष, छात्रवृत्तिया, स्वाध्याय मडल, औषधालय, अस्पताल आदि जैन धर्मावलम्बियो द्वारा वर्षो से चल रहे हैं और राजस्थान के विकास मे सहायक हो रहे हैं। उक्त प्रकार की कतिपय सस्थाए सार्वजनिक रूप से सभी लोगो के लिये सेवारत हैं और सकुचित भावना से ऊपर उठकर काम करती हैं।

राजनीतिक क्षेत्र मे भी जैन समाज ने बडा सक्रिय भाग लिया है। प्रशासन के ऊचे से ऊंचे पदो पर वे सफलता पूर्वक काम करते रहे है। स्वतन्त्रता सग्राम और उसके पश्चात् की राजनीति मे भी ऐसे जैन कर्मठ कार्यकर्ता रहे हे जिन्होने अपने त्याग और बलिदान से राष्ट्र और प्रदेश को सुदृढ बनाने मे अद्वितीय भूमिका अदा की हे।

सक्षेप मे, यदि अन्य जैन सिद्धान्तो को छोडकर, अनेकान्त एवं अपरिग्रह इन दो ही को मुख्य रूप से लेकर चले तो इन से ही हम वर्तमान मे व्याप्त सघर्ष और अशाति का सही ढग से शमन कर सकते है। ये दो महान सिद्धांत जैन धर्म और महावीर की अनोखी देन है। इन पर विचार किया जाना चाहिये और इनको आधुनिक परिस्थितियो मे कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है, इस पर अधिकारी विद्वानो को गवेषणापूर्वक चिन्तन, मनन और फिर उसकी विवेचना समाज के सामने कार्यान्विति के लिए उपस्थित की जानी चाहिए।

[८] डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

१ जातीय गौरव, स्वामिभक्ति, आत्मोत्सर्ग, शौर्य एव त्याग, सगुण-निर्गुण भक्ति एव हिन्दू-मुस्लिम प्रेम राजस्थान के सास्कृतिक दाय हैं। कला (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, सगीत तथा ललित कलाएं और लोक कलाए), साहित्य (अपभ्रंश, अर्धमागधी, डिंगल काव्य तथा इतर) तथा जैन धर्म के विकास, मध्यकालीन शौर्य—'रजपूती', नवयुग मे देश-भक्ति, मानवीय मूल्यो के रक्षार्थ उत्सर्ग की भावना प्रमुखतया सांस्कृतिक दाय है।

२. आरम्भ मे वैष्णव धर्म (वैदिक यज्ञ धर्म), तदुपरान्त जैन धर्म इस प्रदेश में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। महावीर ने स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिन्तनधारा को खींच कर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गए। महावीर ने भारतीय संस्कृति

की अपूर्व सेवा की और उसकी झलक सर्वाधिक राजस्थान मे दिखाई दी । राजस्थान अनेक धर्मों की समन्वय भूमि है । यद्यपि वैराट जैसे स्थलों पर बौद्ध धर्म, राजपूत काल मे शैव, शाक्त और तन्त्रवाद भी प्रचलित हुआ, मध्यकाल मे इस्लाम का प्रभाव भी रहा तथा आधुनिक युग मे राजस्थान के हृदय अजमेर मे ईसाई धर्म का प्रभाव भी परिलक्षित हुआ तथापि इस प्रदेश मे सर्वत्र धार्मिक सहिष्णुता की प्रधानता ही प्रदर्शित हुई । लोक-धर्म की ही प्रधानता इस प्रदेश मे रही ।

३ प्राचीन काल मे हरिभद्रसूरि, उद्योतन सूरि, जिनेश्वर सूरि, जिनवल्लभ सूरि जैसे आचार्यो से लेकर आज तक विभिन्न परम्पराओ के जैनाचार्यो और उनके अनुयायियो के द्वारा धार्मिक जन-जागरण, शिक्षा-प्रचार-प्रसार, साहित्य-रचना, राष्ट्रीय-चेतना तथा नैतिक उत्थान के लिए निरन्तर प्रयास किये गए ।

४. जैन धर्म की दो वड़ी विशेषताएं हैं—अहिसा और तप । अहिसा जैनो का परम धर्म है और तप द्वारा अपरिमित कष्ट सहने की प्रवृत्ति का पोषण होता है । पच व्रत का प्रत्येक जैन गृहस्थ को प्रण लेना पड़ता है । वर्तमान युग मे आचार्य तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन सांस्कृतिक जागरण मे विशेष सहायक हुआ है । जैन धर्म का त्रिरत्न—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हमारे सांस्कृतिक जागरण की आधार शिलाएं है । जैनधर्म मे भी अहिंसा का उच्चतम शिखर अनेकान्त-वाद या स्याद्वाद सिद्ध हुआ जिसने सहअस्तित्व, सहिष्णुता, निष्पक्षता, सर्वहिताय, समझौतावाद की नव दृष्टि प्रदान की, सांस्कृतिक नवजागरण के नये द्वार खोले, नई प्रेरणाओ को उन्मुख किया । संक्षेप मे अहिंसा, स्याद्वाद, त्याग, तपस्या, अनासक्ति, उदारता इत्यादि जैन धर्म के प्रतिपादित मूल्य हैं जिनसे सास्कृतिक जागरण मे आज भी प्रेरणा मिलती है तथा भविष्य मे मिल सकती है । यही आज का विश्वास और कल की आशा है ।

५. अनास्था के इस युग मे जव कि मानव असंतुष्ट, क्षुब्ध, अभावग्रस्त एवं धार्मिक तथा नैतिक मूल्यो से पतित है । तथा समस्त समाज अशाति के वातावरण मे श्वासे ले रहा है, तव जैन धर्म तथा उसके सत्यनिष्ठ अनुयायी नए नैतिक आधारो और नवीन सामाजिक मानवीय मूल्यो द्वारा शाति और सुरुचिपूर्ण जीवन प्रदान कर सकते है । मानव मात्र के प्रति प्रेम, सौहार्द एव उदारता, सर्व जीवो के प्रति समादर भाव, जीव-हत्या से निवृत्ति, मानव-मात्र के हित-चिंतन, अपरिग्रह की भावना का विकास, सादा जीवन जीने की कला इत्यादि कतिपय ऐसे ठोस विचार विन्दु हैं जिनको आधार मान कर नव सांस्कृतिक जागरण में जैन समाज संभावित भूमिका अदा कर सकता है ।

[६] श्री यज्ञदत्त अक्षय

१. मेरे लेखे राजस्थान की सास्कृतिक दाय का स्वरूप उसके निवासियो की वोल-चाल, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, दैनंदिन व्यवहार, रीति रिवाज, पर्व-त्यौहार, कला-कौशल आदि में व्यक्त हुआ है ।

२. राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के विकास मे वैष्णव और जैन धर्मो का विशेष योगदान रहा प्रतीत होता है । यद्यपि क्षत्रिय वर्ण के लोग ब्राह्मण प्रभाव मे लक्षित होते हैं पर उन पर शैव और शाक्त मतों का प्रभाव अधिक अभिव्यक्त हुआ है । उनकी सामरिक प्रवृत्तियो मे इन मतो का मेल सहज ही वैठ जाता था । ब्राह्मण वेदशास्त्र, भागवत पुराण आदि के अध्येता होने के कारण द्वैताद्वैत, भक्ति-निर्गुण व सगुण तथा राम, कृष्ण को लगभग समान महत्त्व देने वाले वैष्णव रहे हैं । वैश्यो मे अग्रवाल, माहेश्वरी आदि तो स्पष्टतः वैष्णव मत से प्रभावित थे । ओसवाल व सरावगी

जैन धर्म के श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि भेदो में अन्तर्भुक्त थे। शूद्र, कबीर, रैदास आदि के अतिरिक्त जिस श्रेणी के सम्पर्क मे अधिक आते थे, उनसे प्रभावित होते थे। इन विभिन्न मतो, सम्प्रदायो ने क्षत्रिय व शूद्र वर्णो को छोडकर, शेष ने अहिंसा के व्यक्त रूपो को ग्रहण किया। वैष्णव मतानुयायियो ने परिस्थिति सापेक्ष अहिंसा को और जैनमतानुयायियो ने परिस्थिति निरपेक्ष अहिंसा को। लगभग सभी मे अन्य मत समादर विकसित होता गया। फलतः निरामिषाहार सगुण भक्ति, दया-दान, जीवन मे बाह्यातर शुद्धता आदि पनपे।

३. यह इतिहास की—जन जीवन के इतिहास की बात है। प्रायः जैन धर्माचार्य साधु-साध्वियो के प्रवचन, उपदेश, व्रतग्रहण प्रेरणादान की विशेष भूमिका रही। इनके उपदेश मन्दिरों, उपाश्रयो आदि के अतिरिक्त खुले सार्वजनिक स्थानो पर भी होते थे जिन्हे सभी मतानुयायी श्रद्धाभाव से सुनते थे। कथा-कहानियो, गीतो और राजस्थानी के स्थानीय रूपो के प्रयोग से इनके प्रवचन सहज, सुबोध और हृदयग्राह्य होते थे। जैन धर्मानुयायी विविध व्रत ग्रहण, तपपूर्ति के उपलक्ष्य मे दान धर्म तथा औषधालय, धर्मशाला मन्दिर निर्माण-सचालन आदि के द्वारा जन कष्ट निवारण का प्रयत्न करते देखे जाते थे। रात्रि भोजन त्याग व शुद्धाहारपान के आग्रह के कारण इनकी विशिष्टता वैष्णवधर्मानुयायियो से स्पष्टतः पृथक् परिलक्षित होती थी। ये उच्च सस्कृति (महाजन संस्कृति) के चिह्न माने जाते थे।

४. अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाच अणुव्रत (जिन्हे योग दर्शन मे 'यम' कहा गया है), अनेकांतवाद, (जिससे सर्वमत समभाव, जीओ और जीने दो आदि व्यवहारो मे लाये जा सकते है), निरामिषाहार, रात्रि भोजन त्याग, मादक, उत्तेजक व्यसन त्याग (जिनके प्रचार-प्रसार मे स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता ली जा सकती है तथा जो शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सवर्धन के लिए आवश्यक है) 'जन्म' के स्थान पर 'कर्म' को महत्त्व प्रदान, अप्रमाद आदि मूल्य आज भी सस्कारशील जीवन के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकते है। ये मूल्य अब तो 'जैन धर्म' के ही नही, 'मानव-धर्म' के लिए अपरिहार्य हैं। व्यवहार मे देखा यह जा रहा है कि जन्मना जैन कर्मणा जैन नही पाये जा रहे है। अतः इन बातो पर 'जैन' धर्म की छाप लगाना बेमानी है। ये मानवमात्र के सांस्कृतिक विकास के लिए उपयोगी है। फिर वैदिक मतानुयायी, वैष्णव आदि 'रात्रिभोजन त्याग' को छोड शेष बातें अधिकाश मे मानते है। अनेकांतवाद को जैन धर्म का शब्द होने से भले ही न मानने का ढोंग करे पर व्यवहार मे सापेक्षवाद के रूप मे मानते ही है। ईसाई, मुसलमान धर्मानुयायी निरामिषाहार की ओर आते आते आयेंगे।

५. रूढियो मे बधा रह कर, बुद्धि तर्कसगत हुए बिना जन्मना 'जैन' समाज युग की समस्याओ का समाधान नही कर सकेगा। सर्व धर्म समभाव व वैज्ञानिकता की ओर बढ़े बिना आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियो का श्रमोपहरण करके, जैन शास्त्रो की तथाकथित अन्ध मान्यताओ से चिपके रहकर क्या निर्णायक भूमिका निभायी जा सकेगी? जैन समाज 'जन्मना जैन' और अजैन की भाषा मे सोचता रहेगा तो क्या कर सकेगा? जैन धर्म का युगानुरूप कायाकल्प आवश्यक है। वास्तव मे सभी धर्मो का कायाकल्प 'मानव धर्म' के रूप में होने से ही विश्व मानवता का विस्तार होगा। सभी धर्मानुयायियो को विवेक की छननी से छानकर अपने-अपने धर्मो की व्यर्थ रूढियो, निस्सार मान्यताओ और अवैज्ञानिकतापूर्ण विचारो को निकाल फेंकना होगा और मानव मात्र के लिए शुद्ध-मानव धर्म के रूप मे परिणत होना होगा, अन्यथा अपनी-अपनी खीचतान तो हो ही रही है, वह होती रहेगी।

•••

परिशिष्ट

हमारे सहयोगी लेखक

[परिचय अकारादि क्रम से है]

लेखक-परिचय

१. **श्री अगरचन्द नाहटा**—हिन्दी व राजस्थानी के प्रसिद्ध गवेषक विद्वान् व लेखक, जैन धर्म और साहित्य के विशेषज्ञ, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२. **पं० अनूपचन्द**—कवि, लेखक और गवेषक, महावीर भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–३।

३. **उपाध्याय अमर मुनि**—जैन मुनि, प्रबुद्ध चिन्तक, कवि और लेखक, राजगृह मे वीरायतन योजना के प्रेरक।

४. **आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी**—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ।

५. **श्री कन्हैयालाल लोढ़ा**—प्रबुद्ध चिन्तक, लेखक और स्वाध्यायी, अधिष्ठाता—श्री जैन शिक्षण सस्थान, रामललाजी का रास्ता, जयपुर–३।

६. **डॉ कमलचन्द सोगानी**—उदयपुर विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग मे रीडर, जैन दर्शन के विद्वान और लेखक, 'Jain Ethics' पर शोध कार्य, १०६, अशोक नगर, उदयपुर।

७ **डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल**—जैन साहित्य के गवेषक विद्वान् और लेखक, राजस्थान के जैन ग्रथ भंडार विषय पर शोध कार्य, श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी, जयपुर के साहित्य-शोध विभाग के निदेशक, महावीर भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–३।

८. **डॉ. कालूराम शर्मा**—बनस्थली विद्यापीठ मे इतिहास विभाग के आचार्य एव अध्यक्ष।

९. **डॉ. के. ऋषभचन्द्र**—गुजरात विश्वविद्यालय मे प्राकृत और पालि विभाग के अध्यक्ष, जैन साहित्य और दर्शन के विद्वान्, ३ यूनिवर्सिटी टीचर्स होस्टल, अहमदाबाद–९।

१०. **डॉ. कैलशचन्द जैन**—विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के इतिहास विभाग मे रीडर, प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व के विद्वान्, जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ। मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जैन।

११. **श्री गणपतिचन्द्र भण्डारी**—जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक, कवि, समालोचक और सम्पादक। कई सामाजिक व शैक्षणिक संस्थाओ से सम्बद्ध, ४४०-बी, तीसरी 'सी' सड़क, सरदारपुरा, जोधपुर।

१२. **श्री गिरिजाशंकर शर्मा**—राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के सहायक निदेशक।

१३. **श्री घेवरचन्द कानूगो**—उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता और प्रसिद्ध व्यवसायी, एलको वैक्स मेटल्स प्रा० लि० जोधपुर के प्रवन्ध संचालक।

१४. **प० चैनसुखदास (स्व०)**—जैनदर्शन के प्रसिद्ध विद्वान्, अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओ के प्रेरणा-स्रोत।

४५. डॉ. रामगोपाल शर्मा—राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास एवं भारतीय सस्कृति विभाग मे रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृति के विशेषज्ञ, 'महाभारत मे राजनीतिक चिन्तन और सस्थान, विपय पर शोध कार्य, सी–११, तिलक नगर, जयपुर–४।

४६. श्री रामवल्लभ सोमानी—इतिहास और पुरातत्त्व के गवेपक विद्वान, कानूनगो भवन कल्याणजी का रास्ता, जवपुर–१ ।

४७. श्री रावत सारस्वत—हिन्दी-राजस्थानी के कवि और लेखक, 'मरुवाणी' राजस्थानी मासिक के सम्पादक, राजस्थान भाषा प्रचार सभा के सचिव, राजस्थान रेडक्रास सोसायटी के सगठन सचिव, डी–२८२ मीरा मार्ग, वनीपार्क, जयपुर–६ ।

४८ श्री रिखवराज कर्णावट—अभिभाषक, सर्वोदयी विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता, ४४८ रोड, १ 'सी', सरदारपुरा, जोवपुर ।

४९ श्री रिषभदास रांका—सुप्रसिद्ध समाजसेवी, कर्मठ कार्यकर्ता और लेखक, 'जैन जगत' के सम्पादक, भारत जैन महामण्डल एवं महावीर कल्याण केन्द्र के मत्री, अनेक धार्मिक, शैक्षणिक एवं सेवा-सस्थाओ से सम्बद्ध, लक्ष्मी महल, वमन जी पेटिट रोड, बम्बई–६१ ।

५०. उपाध्याय विद्यानन्द मुनि—जैन मुनि, जैनदर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रबुद्ध चिन्तक और प्रखर वक्ता ।

५१. डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे रीडर एव अध्यक्ष, कवि, उपन्यासकार और समीक्षक, ज्ञानमार्ग, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५२. डॉ. (श्रीमती) शान्ता भानावत—विदुपी लेखिका, 'जिनवाणी' मासिक के सम्पादन से सम्बद्ध, 'ढोला मारु रा दूहा का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन' विपय पर शोध कार्य, सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५३. श्री श्रीचन्द जैन—सान्दीपनी स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य, लेखक और समीक्षक, मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जैन ।

५४ श्री सम्पतराज डोसी—स्था० जैन स्वाध्यायी सघ के सयोजक, जैन दर्शन के विशेपज्ञ, लेखक और प्रचारक. घोडो का चौक, जोधपुर ।

५५. प. सुखलाल संघवी—जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान, पद्मभूपण अलकार से सम्मानित, अहमदावाद ।

५६. मुनि श्री सुशीलकुमार—जैन मुनि, प्रबुद्ध चिन्तक और लेखक, विश्वधर्म सम्मेलन और अहिंसा शोधपीठ, दिल्ली के प्रेरक ।

५७. श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल—अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक, लेखक और शिक्षाविद्, कई शैक्षणिक व सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध, वी ८१, वापू नगर, जयपुर–४ ।

५८. आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, गवेपक विद्वान् और इतिहासज्ञ ।

परिशिष्ट
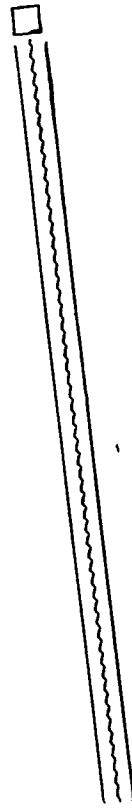
हमारे अर्थ-सहयोगी

स्वर्गीय श्री गुरुबचनसिंहजी

जन्म
सन् १९२२

निधन
२६ सितम्बर,
१९७३

को

हार्दिक श्रद्धांजलि

आप बड़े मिलनसार, अध्यवसायी और सत्संगप्रेमी थे। भारत-विभाजन के बाद आप पाकिस्तान से दिल्ली आकर बसे और बसों की बॉडी (Body) बनाने का व्यवसाय शुरू किया। सन् १९६८ में आप जयपुर आये और यहाँ भी 'आजाद बॉडी बिल्डर्स' के नाम से आमेर रोड पर यह व्यवसाय प्रारम्भ किया और अच्छी ख्याति अर्जित की। आप संत बाबा जसवन्तसिंहजी के परम भक्त थे। आप विचारों में उदार और व्यवहार में बड़े विनम्र थे। श्री चन्द्रराजजी सिंघवी के सम्पर्क से आपको आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के दर्शनों का अवसर मिला। आप उनकी वाणी और साधनापरक व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए और उनके परम श्रद्धालु बन गये।

स्वर्गीय श्री सिरहमलजी बम्ब
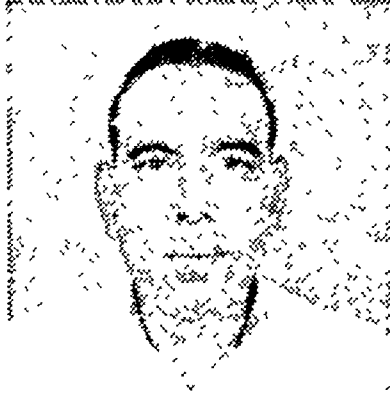
जन्म
15 नवम्बर, 1923

निधन
5 फरवरी, 1975

को

हार्दिक श्रद्धांजलि

आपकी प्रारम्भ से ही शैक्षणिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक प्रवृत्तियो मे सक्रिय रुचि रही। जयपुर नगर के आप दो बार पार्षद निर्वाचित हुए। आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० के प्रति आपकी अनन्य भक्ति और निष्ठा थी। लगभग 10 वर्षो तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मन्त्री के रूप मे आपने उल्लेखनीय सेवाये की। श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी शिक्षा समिति के आप 1961 से 66 तक और 1969 से लेकर जीवन पर्यन्त मन्त्री पद पर कार्य करते रहे। मन्त्री के रूप में सुबोध कॉलेज व सम्बद्ध सस्थाओ के विकास और उन्नयन मे आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 'जिनवाणी' के नियमित प्रकाशन और व्यवस्था में आपका जो सहयोग रहा, वह सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। आप सहृदय, मिलनसार, कर्मठ और उदार स्वभाव के जागरूक समाजसेवी थे।

स्वर्गीय श्री घीसीलालजी कोठारी

जन्म
सन् १९१५

निधन
५ मार्च, १९७५

को

हार्दिक श्रद्धांजलि

'लाल हाथी वालो' के नाम से प्रसिद्ध श्री कोठारी जी की बचपन से ही धार्मिक क्रियाओ के प्रति विशेष रुचि थी और आप नियमित रूप से सामायिक-स्वाध्याय करते थे। सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों में आपका सक्रिय योगदान रहा। आप वर्षो तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के उपाध्यक्ष रहे। 'जिनवाणी' पत्रिका के स्तंभ के रूप में आपका प्रारम्भ से ही सराहनीय योगदान रहा। जैन इतिहास समिति के भी आप विशिष्ट सहयोगी थे। आपकी व्यावसायिक बुद्धि तीव्र थी। अल्पायु मे ही आपने रत्न व्यवसाय शुरू किया और शीघ्र ही देश-विदेश के जवाहरात के प्रमुख व्यवसायियों मे आप प्रसिद्ध हुए। वर्तमान में जयपुर, बम्बई, मद्रास, हागकाग और न्यूयार्क में आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान है। आप बड़े मिलनसार, मृदुभाषी एवं संत-सेवा में अग्रणी थे।

चत्तारि मंगलं अरिहन्ता मंगलं,
सिद्धा मंगलं साहू मंगलं,
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा,
सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

संसार में चार मंगल रूप है । अरिहन्त-सिद्ध-साधु और केवलिप्ररूपित दया-धर्म ।

ससार में चार ही उत्तम है । अरिहन्त-सिद्ध-साधु और केवलिप्ररूपित दया-धर्म ।

卐

ये सभी हमारे लिये मंगल मय हों एवं ये चारो लोकोत्तम हमारे हृदय पटल पर सदा अंकित रहे—इस शुभ कामना के साथ—

V. K. NAINANI
M/s ASIA GEMS
Burlington House
10TH FLOOR B–1
90/94 NATHAN ROAD
KOWLOON (HONGKONG)
Tel. 676824

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि
अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि
केवलि पण्णत्तो धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

ए चार शरणा-दुःख हरणा, और न शरणा कोय,
जे भवि प्राणी आदरे, ते अक्षय अमर पद होय ।

ससार में चार शरण-भूत है । अरिहन्त-सिद्ध-साहू एवं दयामय केवलि-भाषित धर्म । इन चारो की मै शरण ग्रहण करता हू ।

卐

ये चारों शरण्य हम सब शरणागतो को संसार सागर से शीघ्र ही पार करे—इस प्रार्थना के साथ,

NANIK R. MIRPURI
M/s NIK GEMS & JEWELLERY
GOLDEN CROWN COURT
14TH. FLOOR B–1
NATHAN ROAD
KOWLOON (HONGKONG)
Tel. 683008

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो,
माणुसत्त सुइ सद्धा सजमम्मि य वीरियं।

—भ० महावीर

(१) मनुष्यत्व, (२) प्रभुवाणी का श्रवण, (३) सुने हुए धर्म-तत्वो पर विश्वास और श्रद्धा, (४) सयम-पालन मे पौरुष—ये चारो बाते प्राप्त होनी दुर्लभ है।

ये दुर्लभ हमे सदा सुलभ हो—इस कामना के साथ प्रभु-चरणो मे शत्-शत् वन्दन !

इन्द्रचन्द्र हीरावत
परतानियो का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर।
फोन ७२४६६

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।

संसार के सभी प्राणी सुखी, निर्भय एवं निरापद बनें, सब एक दूसरे का हित चिन्तन करें, कोई दुःखी न रहे ।

प्रभु महावीर हमें यह सद्बुद्धि दें—इस हित कामना के साथ वीर-जयन्ती वर्ष पर प्रभु वीर को हमारा हार्दिक अभिवन्दन !

ईश्वरलाल
रमेश जरीवाला
अम्बिका ऑइल मिल्स,
झोटवाड़ा, जयपुर ।
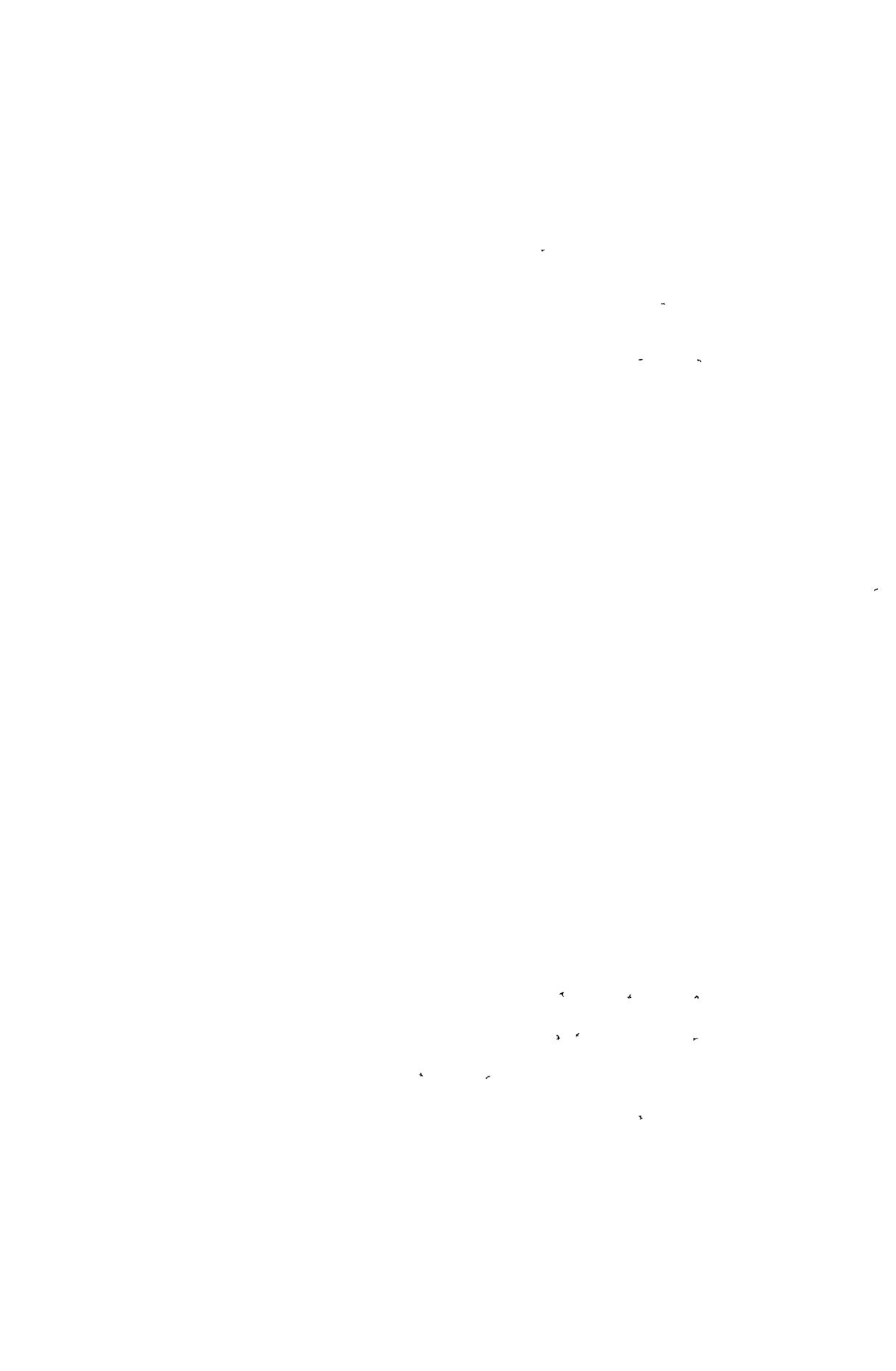
अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो,
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ।

—भ० महावीर

अपनी ही आत्मा का दमन करो—वही दुर्दमनीय है। अपनी ही बुराइयों का दमन करने वाला महापुरुष इस लोक और परलोक में सुखी रहता है।

卐

वीर प्रभु के इस उपदेश पर आचरण करने की हमें शक्ति प्राप्त हो इस कामना के साथ।

उदयसिंह बोथरा
सुमेरसिंह बोथरा, ज्वेलर्स
[illegible]
जौहरी बाजार, जयपुर।
फोन [illegible]

लब्भन्ति विमले भोए, लब्भंति सुरसम्पया,
लब्भन्ति पुत्त-मित्तं च, एगो धम्मो न लब्भइ ।

उत्तमोत्तम भोगोपभोगो से युक्त भौतिक भोग सामग्री, देवताओं जैसी ऋद्धि-सम्पदा तथा पुत्र-परिवार एव मित्रों से भरापूरा घर प्राप्त करना सरल है—पर सद्धर्म को प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है ।

卐

वह सद्धर्म प्राप्त करने की सामर्थ्य प्रभु वीर हमें दे – इस प्रार्थना के साथ—

प्रभु वीर की २५००वी जयन्ती के पावन वर्ष के प्रसग पर प्रभु महावीर को हमारा शत् शत् वन्दन !

नथमल हीरावत
टीकमचन्द विनयचन्द
ज्वैलर्स
हीरावत भवन,
बारह गरणगौर का रास्ता, जयपुर
फोन ७२५१६, ६५२१६

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियट्टइ,
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ।

—भ० महावीर

जो जो रात और दिन वीतते जा रहे है, वे फिर कभी लौट कर नही आते । अत. जो मनुष्य धर्माचरण मे निरत रहता है, उसी के ये दिन-रात सफल कहे जा सकते है ।

卐

वीर प्रभु के ये उपदेश हमारे अन्तर की गहराइयों मे उतरें—इस कामनाके साथ—

लाभचन्द लोढ़ा
परतानियों का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर ।
फोन : ७५३४८

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ,
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।

—भ० महावीर

कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र होते है, जन्म से नही ।

卐

समदर्शी प्रभु महावीर द्वारा उपदिष्ट इस तथ्य को हृदयगम कर आचरण मे ढालने की शक्ति हमे प्राप्त हो इस शुभ भावनापूर्वक—

खिरदमल नवलखा

बी. एच. ज्वैलर्स,

कालों का मोहल्ला,

पोस्ट बॉक्स न० 26, जयपुर-3

तार : '[illegible]' · फोन 72603, 74211

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ,
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।

—भ० महावीर

कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र होते है, जन्म से नही ।

卐

समदर्शी प्रभु महावीर द्वारा उपदिष्ट इस तथ्य को हृदयगम कर आचरण मे ढालने की शक्ति हमे प्राप्त हो इस शुभ भावनापूर्वक—

सिरहमल नवलखा

बी. एच. ज्वेलर्स,

फालों का मोहल्ला,

पोस्ट बॉक्स न० 26, जयपुर-3

तार : 'गोन' . फोन . 72603, 74211

जरा-मरण वेगेणं, बुज्झमाणाण पाणीणं,
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ।

—भ० महावीर

जन्म-जरा-मरण के निरन्तर प्रवाह मे वहते-डूवते हुए प्राणियो के लिए एक मात्र धर्म ही द्वीप, आधार, गति एव सर्वश्रेष्ठ शरण है ।

卐

प्रभु वीर का यह उपदेश हमारे जीवन मे साकार हो इन शुभ-कामनाओ सहित—

ढड्ढा ट्रेडिंग कारपोरेशन
कुन्दीगर भैरों का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर ।
फोन · ६३६६५

भगवान् महावीर ने कहा है—

दुप्परिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीर पुरुसेहिं ।
अह सन्ति सुव्वया साहू, जे तरन्ति अतरं वणिया व ।।

प्राप्त काम-भोग की सामग्रियो को स्वेच्छापूर्वक त्यागना दुष्कर है। कमजोर मनोवल वाले अधीर पुरुषो के द्वारा ये आसानी से नही छोड़ी जाती। किन्तु जो दृढ मनोवल वाले है, सुव्रती है, साधु है वे इन दुस्तर काम-भोगो की वैतरणी को भी उसी प्रकार तैर जाते है जैसे चतुर वणिक् समुद्र को।

卐

अमर्यादित भोगवादी पाश्चात्य सस्कृति से प्रभावित आज के युग मे प्रभु वीर के उपदेशो पर चलने की सामर्थ्य हम सवको प्राप्त हो—इस शुभकामना के साथ—

हेमचन्द पदमचन्द
ज्वैलर्स,
बरड़िया हाउस, जोहरी बाजार, जयपुर-३
फोन : ६२८४०

ज्ञान के समग्र प्रकाश से
अज्ञान और मोह के निःशेष विवर्जन से
एवं राग और द्वेष के मूलतः उन्मूलन से
आत्मा अनन्त सुखसम्पन्न मोक्ष प्राप्त करती है।

卐

इस २५००वे निर्वाण महोत्सव-वर्ष के पुण्य-पर्व पर
प्रभु वीर का शत-शत अभिनन्दन
एवं
कोटि-कोटि अभिवन्दन!

हुक्मीचन्द एडवोकेट
जोधपुर

जहा गेहे पलित्तम्मि – तस्स गेहस्स जो पहू ।
सार भण्डाणि नीणेइ – असार अवउज्झइ ॥
एवं लोए पलित्तम्मि – जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि – तुब्भेहि अणुमन्निओ ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र ।

जिस प्रकार घर मे आग लगने पर गृह-स्वामी मूल्यवान-सार वस्तुओ को निकालता है—मूल्यहीन असार वस्तुओ को छोड़ देता है—उसी प्रकार आपकी अनुमति पाकर जरा और मरण से जलते हुए इस लोक मे से मै सार भूत अपनी आत्मा को वाहर निकालूंगा ।

卐

उस सारभूत को समझने एव उसकी रक्षा करने की शक्ति हमे शीघ्र ही प्राप्त हो, इस कामना के साथ—

प्रभु वीर की २५००वीं निर्वाण तिथि पर,
वीर प्रभु को हमारा शत-शत वन्दन !

अजीतकुमार बोराणी
माहेर निवास,
हनुमान का रास्ता, जौहरी वाजार, जयपुर–३
फोन ६२८२७, ६७३६३

तवो जोई जीवो जोइ ठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्म एहा संजम जोग सन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ।।

—उत्तराध्ययन सूत्र

तप ज्योति अर्थात् जाज्वल्यमान अग्नि है । जीवात्मा उस ज्योति का स्थान अर्थात् हवन-कुण्ड है । मन, वचन, काया का योग श्रुवा है । शरीर कण्डे है । कर्म ईन्धन है । सयम मे प्रवृत्ति करना शान्ति-पाठ है । मै महर्षियों द्वारा प्रशस्त ऐसा यज्ञ करता हू ।

卐

ऐसा प्रशस्त यज्ञ करने की योग्यता किसी दिन हम भी प्राप्त कर के अपना जीवन सफल बना सके—इस उदात्त भावना के साथ,

कैलाश दूगड़
सुरेश दूगड़
४२०, मिण्ट स्ट्रीट,
मद्रास-१

कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स,
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया।

—भ० महावीर

सभी प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण यह समग्र विश्व भी यदि किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाय तो भी वह व्यक्ति संतुष्ट नहीं होगा। इतना कठिन है लोभग्रस्त की इच्छाओं को पूर्ण करना।

ॐ

प्रभु वीर के अमृतोपम इस उपदेश को हृदयंगम कर प्रत्येक मानव अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाना सीखे—इसी भावना के साथ—

हीराभाई

मंगलचन्द ट्यूब्स प्रा० लि०
फोन [illegible]

मंगलचन्द ग्रुप ऑफ इन्डस्ट्रीज
मंगल भवन, स्टेशन रोड
जयपुर-302006

आर० एस० मेटल्स प्रा० लि०
फोन [illegible]

फैक्ट्री—इन्डस्ट्रियल एस्टेट
जयपुर दक्षिण 302006

शान्तिलाल एण्ड ब्रादर्स
फोन [illegible]

दी राजस्थान स्टेट कोआपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स सोसाइटी लि., जयपुर

फोन . ६५५३१ तार कोपहाउसिंग

राज्य की गृह निर्माण समस्या के हल मे महत्त्वपूर्ण योगदान

अधिकृत पूंजी . रु० २,००,००,०००/— जमा पूंजी . १.०० करोड़ रुपया

• दीर्घकालीन गृह निर्माण ऋणो की एक मात्र शीर्ष सहकारी वित्त दात्री संस्था। • उचित व्याज दर पर २० वर्ष की लम्बी अवधि के लिये ऋण। • पुनर्भुगतान ८० समान किश्तों मे। • ऋणी सदस्यों के लिये सामूहिक बीमा योजना की व्यवस्था। • गृह निर्माण सहकारी समितियो को माडल नक्शे एवं एस्टीमेट्स मामूली लागत पर उपलब्ध कराने की सुविधा। • समस्त राज्य मे भवन निर्माण सहकारी समितियो का गठन।

अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को विशेष सुविधाएं :

• प्रति वर्ष अनुसूचित जाति व जनजाति की गृह निर्माण सहकारी समितियो के ऋण सुरक्षित। • अनुसूचित जाति एव जनजाति के लोगो को ३००/— रु० प्रति व्यक्ति हिस्सा पूंजी अनुदान तथा ४०००/— रु० तक के ऋण का व्याज राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराने की सुविधा। • उक्त जातियो की गृह निर्माण समितियो के ऋण आवेदन-पत्र तयार करने, समस्त प्रकार का मार्ग दर्शन उपलब्ध कराने तथा उनकी हर प्रकार से सहायता करने हेतु हर जिले मे राज्य सरकार द्वारा अतिरिक्त जिला विकास अधिकारी की अध्यक्षता मे गठित "सहकारी गृह निर्माण ऋण प्रकोष्ठ"। • ऋण सम्बन्धी कानूनी औपचारिकताओ पर होने वाले व्यय के लिये राज्य सरकार द्वारा अनुदान।

प्रगति

(१) सदस्य समितियो की संख्या ८४७।

(२) स्वीकृत ऋण ६ ६४ करोड रुपये २२,७६१ मकानो के निर्माण हेतु।

(३) वितरित ऋण २.१० करोड रुपये ११,४४४ मकानो के निर्माण हेतु।

ऋणी समितियो व सदस्यो से अपेक्षित सहयोग :

(१) ऋणो का उपयोग भवनो के निर्माण मे ही करे।

(२) ऋण का पुनर्भुगतान समय पर करे जिससे ऋण योजना सुचारु रूप से जारी रह सके।

(३) इस ऋण योजना की सफलता आपके हित मे है, अत इसे सफल बनाने मे हर प्रकार से अपना सहयोग दे।

विशेष जानकारी के लिये इस फाइनेन्स सोसाइटी/अपने जिले के अतिरिक्त जिला विकास अधिकारी अथवा सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी समितियो से सम्पर्क करे।

रामदेवसिंह
अध्यक्ष

रामशरण शर्मा
प्रबन्ध सचालक

दी राजस्थान स्टेट कोआपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स सोसाइटी लि०, जयपुर द्वारा

प्रसारित

समय गोयम मा पमायए ।

—भ० महावीर

समय मात्र का भी प्रमाद मत करो ।

प्रभु महावीर के इस शखनाद से प्रबुद्ध हो हम सब स्वपर–कल्याण मे निरत हो जाय – क्षण भर भी प्रमाद न करे, इस अमर भावना के साथ !

वीरेन्द्रकुमार देवेन्द्रकुमार लूणावत
सोंथली वालों का रास्ता, □ चौड़ा रास्ता,
जयपुर-३
फोन : ७४८०१,७६७६१

जावंतऽविज्जा पुरिसा सव्वे ते दुक्ख-सम्भवा,
लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणन्तए ।

—भ० महावीर

जितने भी अज्ञानी पुरुष है वे सब दु ख के भागी है । सद्-असद् के विवेक से शून्य वे लोग इस अनन्त ससार मे बार-बार पीडित होते रहते है ।

प्रभु वीर के ये उपदेश हमारे अन्तस्तल मे ज्ञान का प्रकाश प्रकट करे, इन शुभ कामनाओ के साथ—

चम्पालाल बोथरा
ज्वैलर्स,
देव आशीष,
पृथ्वीराज रोड, सी-स्कीम, जयपुर
फोन · ७५२६६

प्रभु महावीर का प्रवचन—

न य पाव - परिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पइ,
अप्पियस्सावि मित्तस्स रहे कल्लाण भासई।

सुशिक्षित व्यक्ति न किसी पर दोषारोपण करता है और न किन्हीं परिचितों पर कुपित ही होता है। और तो क्या वह मित्र से मतभेद होने पर भी परोक्ष तक में उनकी भलाई की ही बात करता है।

प्रभु वीर के इन उपदेशों पर चल सकें, यह साहस हमें प्रभु दे, इन कामनाओं सहित—

गाढ़मल ढड्ढा, जौहरी
उणियारा गार्डन, मोतीडूंगरी रोड, जयपुर-४
फोन : ६११०५

छज्जीव काए असमारभन्ता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माण-मायं, एवं परिन्नाय चरन्ति दन्ता॥

—भ० महावीर

मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले मुनि पृथ्वीकाय आदि ६ जीवनिकाय की हिंसा नहीं करते, असत्य नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, परिग्रह-स्त्री-मान और माया को स्वरूपतः जानकर एवं छोड़कर विचरण करते हैं।

ऐसे मुनियों के आराध्य देव जगद्गुरु महावीर के २५००वें निर्वाण-वर्ष के पावन पर्व पर हमारा उन सब को शत शत वन्दन!

शरद सुधीर एण्ड कम्पनी
जौहरी,
चान्द बनूसार का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर-३
फोन [illegible]

महावीर ने कहा है—

कोह च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा ।
एयाणि वंता अरहा महेसी, न कुव्वई पावं न कारवेइ ।।

क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार आत्मा के भयकर दोष है । इनका पूर्णतः त्याग करने वाले अर्हन्त महर्षि न स्वय पाप करते है और न दूसरो से करवाते है ।

ऐसे महर्षियो के भी महनीय महर्षि प्रभु महावीर को कोटि-कोटि प्रणाम है ।

चन्द्रसिंह बोथरा
ज्वैलर्स,
धरतानियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर-३
फोन : ६३६६४, ६२५११

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ,
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो ।

—भ० महावीर

शरीर को नाव रूप कहा है—आत्मा उसका खिवैया कहलाता है—ससार को समुद्र बताया है—ऐसे ससार-समुद्र को महर्षि-जन पार करते हैं ।

ऐसे महर्षिजनो के आराध्य प्रभु महावीर को हमारा शत शत अभिनन्दन ।

ज्ञानचन्द कोठारी
६, पुलिस मेमोरियल,
नेहरू मार्ग, जयपुर-४
फोन : ७५१६८, ६५६३५

सव्व सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।

—भ० महावीर

मनुष्यो द्वारा समाचरित सब सत्कर्म फलदायी होते है क्योकि किये हुए कर्मो के फल को भोगे विना मुक्ति नही है ।

प्रत्येक कार्य को करने से पहले प्रभु महावीर के इस उपदेश पर अच्छी तरह चिन्तन करने की क्षमता हमे प्राप्त हो —इस आन्तरिक आकाक्षा के साथ—

जयपुर प्रिंटर्स एवं जयपुर ब्लाक्स
मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर-१
फोन ७३८२२, ६२४६८

सच्च भगवओ ।

—भ० महावीर

ससार मे सत्य ही सारभूत है ।
सत्य ही भगवान् है ।

वह भगवत्स्वरूप सत्य हमारे मानस का मराल बन हमारे अन्तर्ह्रद मे सदा तैरता रहे । इस प्रार्थना के साथ प्रभु वीर को हमारा शत-शत वन्दन ।

एग्रो किंग
मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर-१
फोन : ६६२३१

माणुसत्तंमि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संबुडे निद्धुणे रयं ।।

—भ० महावीर

मनुष्य जन्म पाकर जो धर्म को सुनता और उसमे श्रद्धा करता है, वह तपस्वी पराक्रम प्रकट कर जितेन्द्रिय हो अपने समस्त आश्रव द्वारो को बन्द कर कर्मरज को नष्ट कर देता है ।

इस प्रकार का पराक्रम प्रकट करने की हम मे भी क्षमता आये—

इस हार्दिक कामना के साथ—

Asoka Enterprises

Chameliwala Market, M I. Road, Jaipur-1

Stockists Asian Paints, Decorating in all kinds of Industrial Decorations & Automobile Paints, Dealers in Doors of Houses & Windows Alluminium & Hardware for Bus Body Fittings, Buildings Furniture & Counter Fitting, Shades Coils & Extruded Sections

Phone Office 64603 · *Resi* 67201

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइयो, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाई कम्मं ।।

मनुष्य के दु ख को न जाति के लोग बटा सकते है और न मित्र, पुत्र एव बन्धु वर्ग ही । प्राप्त दु खो को प्राणी स्वय एकाकी ही भोगता है, क्योकि कर्म सदा कर्ता के पीछे ही लगा रहता है ।

यह शाश्वत सत्य प्रतिपल, प्रत्येक कार्य करते समय हमे स्मरण रहे—

इसी आन्तरिक अभिलापा के साथ—

राजस्थान एल्यूमीनियम हाउस

A 20-21, M G D. (आतिश) Market, Jaipur-2

Phone : 66997, 67336

Branch . 21, Kishan Market Bazar, Sirkiwalan, Delhi-6

Phone . 260082

जहा कि पाग फलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सुन्दरो ।।

जिस प्रकार दिखने मे सुन्दर पर उपभोगानन्तर नितान्त अनर्थकारी किम्पाक नामक फलो के खाने का परिणाम भयकर होता है, उसी प्रकार भोगो के उपभोग का परिणाम भी भीषण होता है ।

प्रभु महावीर की यह अमृतवाणी हमारे अन्त करण को आप्यायित कर हमारी भोग-लिप्सा को सदा सर्वदा के लिए समाप्त कर दे—

इसी आन्तरिक अभिलाषा के साथ—

Shree Amolak Iron & Steel Mfg. Co.

Manufactuers of

QUALITY STEEL FURNITURE, SURGICAL GOODS,
AGRICULTURE GOODS, ICE BOXES, COOLERS, BOXES ETC

Factory
71-72, Industrial Area, Jhotwara,
Jaipur West
Telephone 74897

Show Room
C-3/23 8, M I Road,
Jaipur
Telephone 75478

सुवण्ण रुव्वस्स हु पव्वया भवे, सिया हु केलास समा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगास समा अणंतया ।।
—भ० महावीर

ओ मानव ! यदि गगनचुम्बी हिमाचल के समान विशाल स्वर्ण और रजत के असख्य पर्वत भी किसी व्यक्ति के अधिकार मे आ जाय तो भी लोभ के वशीभूत उस मनुष्य की किंचित मात्र भी इच्छापूर्ति नही होगी, क्योकि इच्छा का वस्तुत आकाश के समान कोई ओर-छोर अर्थात् अन्त ही नही है ।

त्रिकालदर्शी प्रभु महावीर के इस अमोघ उपदेश को अपने मन-मस्तिष्क और आचरण मे ढाल कर धूलि के समान धन की चाह छोड, हम सतोष-धन प्राप्त करने मे सफल हो—

इसी मंगल कामना के साथ—

विशाल टायर्स
प्रोप्रा० मुखी गोवर्धनदास
मोतीडूंगरी रोड, जयपुर

तुमंसि नाम तं चेव, ज हंतव्वं ति मन्नसि,
तुमसि नाम तं चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ।
तुमंसि नाम त चेव, जं परियावेयव्वं ति मन्नसि [आचाराङ्ग]

—महावीर

ओ मानव ! जिस प्राणी को तू मारना चाहता है, वह तू ही तो है। अरे ! जिसे तू शासित करना चाहता है, वह भी तो तू ही है और जिसे तू परिताप पहुँचाना चाहता है वह भी वस्तुत तू ही तो है।

प्रत्येक मानव भगवान् महावीर के इस अमर उपदेश को अपने प्रति-पल के जीवन मे चरितार्थ कर सुखपूर्ण संसार का नवनिर्माण करे—इस आन्तरिक कामना के साथ—

कुलवन्त मोटर्स
मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर
फोन दुकान ७५३५३
निवास ७२४६४

धम्मो मगलमुक्किट्ठं, अहिसा-सजमो-तवो ।
देवावि तं णमसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।

—भ० महावीर

अहिसा, सयम और तपोमूलक धर्म ही सर्वोत्कृष्ट मगल है। देवता भी उस नरोत्तम को नमस्कार करते है, जिसका मन सदा धर्म मे लीन रहता है।

इस प्रकार के विश्व कल्याणकारी विश्वधर्म के प्ररूपक और पालन-कर्त्ताओ को कोटि-कोटि प्रणाम करते है—

हम
हरिनारायण एण्ड सन्स
कोच बिल्डर्स
चादी की टकसाल, जयपुर
फोन ७३३७३

गुणभवणगहण ! सुयरयणभरिय ! दंसणविसुद्धरच्छागा !
संघनगर ! भद्दं ते, अक्खंडचरित्तपागारा !

पिण्ड विशुद्धि आदि अमित उत्तर-गुणरूपी भवनों की विद्यमानता के कारण अतिगहन ! आचाराङ्गादि अनेक सुखदायी श्रुतरत्नों से परिपूर्ण ! मिथ्यात्वादि कूडे-कर्कट से रहित विशुद्ध दर्शनरूपी रथ्याओं वाले ! और अखण्ड चारित्र के प्राकार (परकोटे) से सदा सुरक्षित ! ओ संघनगर ! तुम्हारा कल्याण हो ।

भगवान् महावीर के संघनगर को कोटि-कोटि प्रणाम है—

सरदारमल उमरावमल ढड्ढा
परतानियों का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर
फोन ७५१६३

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो अ, एयं जीवस्स लक्खणं ।।

—भगवान् महावीर

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण है ।

जड और चेतन का भेद बताने वाले सर्वज्ञ प्रभु महावीर को कोटि-कोटि प्रणाम !

सौभाग्यमल गोकुलचन्द
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर-३
फोन . ७२६६२

सारं दंसणनाणं, सारं तव-नियम-सीलं ।
सारं जिणवर-धम्मं, सारं संलेहणा-मरणं ।।

संसार मे, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सार रूप है, तप, नियम और शील सार भूत है, वीतराग जिनेश्वर प्रभु द्वारा प्ररूपित जैनधर्म ही सार है और अन्त मे सलेखनापूर्वक मरण ही सार है ।

ये चारो उच्चकोटि के सारभूत पदार्थ हमारे त्रिकरण त्रियोग मे रम जाय इसी उच्च आकांक्षा के साथ—

हीराचन्द बोथरा
कुन्दीगरो का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर
फोन : ७४६८८

ते धण्णा सुकयत्था, ते सूरा ते वि पडिया मणुया ।
सम्मत्तं सिद्धियर, सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ।।

वे मानवोत्तम धन्य, कृतार्थ एव वस्तुत. शूरवीर और पण्डित है, जिन्होने अजरामर अक्षय मोक्ष प्रदान करने वाले अपने सम्यक्त्व को स्वप्न मे भी मिथ्यात्व का मैल नही लगने दिया ।

प्रभु महावीर हमे वह शक्ति दे कि हम अपने सम्यक्त्व रत्न पर मिथ्यात्व का मैल न लगने दे—इसी आन्तरिक मनोभावना के साथ—

जैन ट्रेडर्स
पुरोहितजी का कटला, क्लॉथ मर्चेण्ट्स
जौहरी बाजार, जयपुर
फोन · ७२७६४

छोटेलाल पालावत
पुरोहितजी का कटला, क्लॉथ मर्चेण्ट्स
जौहरी बाजार, जयपुर
फोन : ७२७६४

प्रभु ! मॉगू नही धन धान्य कभी भूल कर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न दे हमें मगलकर ।

भगवान् महावीर की २५००वी जयन्ती वर्ष के पुनीत पर्व कर यही हमारी एकमात्र कामना है ।

FACT IS A FACT—IS A FACT

Your Rs. 5,000/-

Deposited with us in

ORIENTAL BANK

becomes

Rs. 40,480/-

After 21 years

For Details Please Contact our nearest Branch

For Saving & Service

The Oriental Bank of Commerce Ltd.

JAIPUR-3

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

हे देव ! मै समस्त जगत् के जीव मात्र से मैत्री, गुणीजनो के साथ हृदय मे प्रेम और जो इस ससार मे रोग, शोक, भूख-प्यास आदि कष्टो से पीड़ित है उनके लिये अन्तरग मे दया भाव एव जो दुर्जन, क्रूर, कुमार्गगामी एव मिथ्यात्वी भी है तो उनके प्रति भी माध्यस्थ भाव चाहता हू ।

इस उदात्त भावना से प्रेरित होकर हम पीडित मानव-सेवा मे समभाव से लगे रहे—इस भावना के साथ—

सुराणा चैरिटेबल ट्रस्ट
सुराणा भवन
जयपुर

फोन : ६२८०४

परिचय खण्ड

श्री नानक आर. मीरपुरी

आप हागकाग के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त रत्न व्यवसायी है। आचार्य श्री हस्ती-मलजी म. सा. के सान्निध्य मे आने के पश्चात् आप जैन धर्म मे वडी रुचि लेते है। यह आपकी विशाल हृदयता का प्रमाण है कि अजैन होते हुए भी आप धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु मण्डल द्वारा सचालित कार्य-क्रमो को वल देने के लिये मुक्त हस्त हो सहायता देने में तत्पर रहते है।

श्री वासुदेव के. नयनानी

आप रत्न-व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यवसायी है। आचार्य श्री १०८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत प्रवचनों से अनुप्राणित हो आप जैन धर्म के सिद्धान्तों मे वडी रुचि रखने लगे है। आचार्य श्री से प्रेरणा प्राप्त कर मण्डल, धर्म और समाज की नीव को सुदृढ वनाने वाले जिन रचनात्मक कार्यो का सचालन कर रहा है, उनमे आप मुक्त हस्त हो आर्थिक सहयोग देने के लिये तत्पर रहते है।

श्री इन्द्रचन्द्रजी हीरावत

राजस्थान के रत्न-व्यवसायियो मे आपका प्रमुख स्थान है। इतिहास समिति के अध्यक्ष पद पर रहते हुए आपने विगत दो वर्षो मे जो जैन समाज की सेवायें की हे वे चिरस्मरणीय रहेगी। सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे आपका युवको जैसा उत्साह वस्तुत. सवके लिए प्रेरणा प्रदायी रहा है। समाज के पिछडे वर्ग के शिक्षित युवको को जवाहरात के व्यवसाय मे निष्णात कर आपने अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की है। धर्म और धर्मगुरु के प्रति प्रगाढ़ आस्था आपकी सवसे वडी विशेपता है।

श्री रमेश ज़रीवाला

आप गुजराती पटेल परिवार के एक वडे उत्साही नवयुवक हैं। जयपुर के तेल व्यवसाइयो मे आपका प्रमुख स्थान है। अम्बिका आइल मिल्स, झोटवाडा, जयपुर तथा लक्ष्मी आइल एण्ड एक्सट्रेक्शन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड, झोटवाड़ा इन दो आइल मिलो को आप वडी कुशलतापूर्वक चला रहे हैं।

आज के युग के महान् सन्त आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के उपदेशो से प्रभावित हो आपने आध्यात्मिक साधना के अनेक नियम ग्रहण किए है । अजैन परिवार के होते हुए भी आप जैन धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा रखते हुए जैन धर्म के प्रचार-प्रसार मे गहरी दिलचस्पी रखते है ।

चोरड़िया परिवार

सर्व श्री गुमानमलजी, उमरावमलजी, राजमलजी चोरडिया—आप तीनो श्रेष्ठिवर प्रसिद्ध समाज सेवी, धर्मनिष्ठ एव प्रमुख रत्न व्यवसायी स्वर्गीय श्री स्वरूपचन्द जी सा० चोरड़िया के सुपुत्र है । स्व० श्री चोरडिया साहब ने धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र मे अमूल्य सेवाए देने के साथ-साथ समाज के आर्थिक दृष्टि से अक्षम अनेक युवको को कुशल रत्न व्यवसायी बना कर जो समाज की उत्कट सेवा की है, वह शताब्दियो तक जयपुर के जैन समाज के स्मृति पटल पर स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगी ।

चिकित्सा सेवा क्षेत्र मे अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी की स्थापना तथा सचालन मे इस परिवार का श्लाघनीय एव बडा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।

श्री गुमानमलजी चोरडिया—आप अखिल भारतीय श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन सघ के अध्यक्ष है । आपने स्थान-स्थान पर पद यात्राए कर जैनधर्म के प्रचार एव प्रसार मे नवीन क्रान्ति का शखनाद फूक कर समाज मे नवजीवन का प्रसार किया है ।

श्री उमरावमल चोरडिया—आप एक परखे हुए विचारशील एव कर्मठ समाज-सेवी है । सदा प्रसन्न सौम्य मुखमुद्रा और प्रभाव एव प्रवाहपूर्ण वक्तृत्व शैली के धनी कब्बूजी के नाम से लोकप्रिय । इन मझले चोरडिया बन्धु ने पशुबलि निषेध विधेयक को कानून का रूप दिलाने के लिये किये गये सामूहिक अभियान मे अद्भुत प्रतिभा प्रदर्शित कर विपुल यश एव पुण्य अर्जित किया है ।

श्री राजमलजी भी अपने पिता के पद चिह्नो पर चलते हुए पिछले अनेक वर्षो से समाज सेवा के कार्यों मे सक्रिय सहयोग देते आ रहे है ।

श्री उग्रसिंहजी बोथरा

आप बडे शान्त, सौम्य, सरल एवं मधुर प्रकृति के लब्धप्रतिष्ठ रत्न व्यवसायी है । सामायिक, स्वाध्याय और सहधर्मी-वात्सल्य आपके दैनिक जीवन के प्रमुख एवं

कार्यकर्त्ता तथा अनेक के प्रमुख पदाधिकारी हे । जनोपयोगी भवन, जनता कॉलोनी और सुवोध कॉलेज के भव्य भवन, जिनके निर्माण मे आपने अपना अमूल्य समय और अहर्निश अथक श्रम देने के साथ-साथ विचक्षण बुद्धि कौशल का परिचय दिया है, शताब्दियो तक भावी पीढियो को आपका स्मरण कराते रहेगे ।

आप ज्वैलर्स एसोसिएशन एव सुवोध कॉलेज के भी वर्षो अध्यक्ष रहे है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के आप उपाध्यक्ष है । 'साधना भवन' के निर्माण मे भी आपही का अमूल्य सहयोग हमे प्राप्त है ।

श्री कीर्ति एवं श्री प्रकाश

आप दोनो उत्साही युवा जौहरी वन्धु अपनी धर्म-प्राण मातुश्री से प्राप्त सस्कारो एव प्रेरणा से अनुप्राणित हो सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा सचालित धार्मिक, सास्कृतिक एव सामाजिक अभ्युत्थान के कार्यक्रमो मे वडी रुचि के साथ सक्रिय सहयोग देने मे सदा तत्पर रहते हैं । आदर्श स्वाध्यायियो के रूप मे भी आप समाज मे वडे लोकप्रिय है ।

श्री हेमचन्द पदमचन्द

आप दोनो उत्साही नवयुवक जयपुर के प्रतिष्ठित रत्न-व्यवसायी, लगनशील समाजसेवी और अटूट आस्थावान धर्म प्रेमी है । अपने स्वधर्मी वन्धुओ को आगे बढाने की इन युवा हृदयो मे जो अटूट लगन है वह वस्तुत प्रत्येक युवक के लिए स्पृहणीय एव अनुकरणीय है । श्री हेमचन्दजी जयपुर के प्रमुख व्यवसायी श्री अनूपचन्दजी वम्व के और श्री पदमचन्दजी श्रीमान् राजमलजी सा० कोठारी के सुपुत्र है। समाज को इन दोनो विचारशील परिश्रमी युवको से वडी आशाये है ।

श्री पदमचन्दजी हीरावत

आप जयपुर के गण्यमान्य रत्न-व्यवसायी है । अपने धर्म तथा धर्मगुरु के प्रति प्रगाढ एव अटूट आस्था को अपनी रग-रग मे रमाये आप स्वधर्मीवात्सल्यता के कार्यो मे मुक्त-हस्त हो सद्व्यय करने मे परमानन्द का रसास्वादन करते रहते है ।

श्री हुक्मीचन्दजी साहब, जोधपुर

आप जोधपुर के लब्ध प्रतिष्ठ अग्रगण्य वकील है। समाज-सेवा के कार्यो मे मुक्त-हस्त हो आर्थिक सहयोग देने मे आपको अपार आनन्द का अनुभव होता है। 'मित्र धर्मेण योजयेत्' इस नीति वाक्य को आपने अपने जीवन मे उतारा है। आप प्रतिवर्ष अनेक बार बस की व्यवस्था कर अधिकाधिक स्वधर्मी बन्धुओ एव माताओ को गुरु दर्शनार्थ दूरस्थ नगरो एव ग्रामो मे ले जाते है। अनन्य गुरु-भक्ति इस परिवार की विशेषता है।

श्री अजीतकुमार बीरानी

सौम्य सम्मोहक व्यक्तित्व एव प्रभावोत्पादक प्रतिभासम्पन्न उत्साही युवक बीरानीजी ने रत्न व्यवसाय मे अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की है। समाजसेवा के कार्यो मे आपकी बाल्यकाल से ही अभिरुचि रही है। आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा. की प्रेरणा से समाज के आध्यात्मिक अभ्युत्थान को लक्ष्य मे रखकर स्थान-स्थान पर स्वाध्याय सघो को सुदृढ सुसगठित एव देशव्यापी बनाने का कार्य सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान में चल रहा है। इसी उद्देश्य से जून, १९७५ में अलीगढ रामपुरा मे स्वाध्यायी शिविर का आयोजन किया गया। श्री बीरानी धर्म और समाज की नीवो को सुदृढ़ बनाने वाले इन कार्य-क्रमो से बड़े प्रभावित हुए। आर्थिक दृष्टि से अक्षम स्वधर्मी बन्धुओ को सर्वत. सक्षम बनाने की भावना से श्री बीरानी ने बहुत बडे पैमाने पर स्वधर्मी वात्सल्य सघ गठित करने का बीड़ा उठाया है। आप इन दिनो इसी भगीरथ प्रयास मे निरत है।

श्री कैलाश एवं श्री सुरेश दुगड़

आप मद्रास के बहुत बडे व्यवसायी है। आप उन अगुलियो पर गिने जाने वाले व्यवसाइयो मे प्रमुख है, जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनो की समान कृपा होती है। सौम्य, स्मित आकर्षक व्यक्तित्व के साथ हर विषय पर अधिकार और वचन-चातुरी—यह मणिकाञ्चन सयोग प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी के लिए प्रेरणा प्रदायी है। सामाजिक एव धार्मिक अभ्युत्थान के प्रति आपकी गहरी अभिरुचि है और सदा इस प्रकार के कार्यो मे महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहते है।

श्री हीराभाई (मंगलचन्द ग्रुप)

आप 'मंगलचन्द ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' के अन्तर्गत चल रहे बड़े-बड़े तीन उद्योगो के स्वामी है। 'मंगलचन्द ग्रुप' के तत्वावधान मे चल रही अनेक जनकल्याणकारी संस्थाओ को आत्मनिर्भर बना कर जिस दक्षता से आप उनका संचालन कर रहे है, उससे आपकी दान वीरता, समाज प्रेम और धर्मनिष्ठा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सामाजिक, धार्मिक एव सास्कृतिक अभ्युत्थान के लिये सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा सचालित कार्य-क्रमो को सफल बनाने में भी मण्डल को समय-समय पर आपका सहयोग प्राप्त होता रहा है। आप तपागच्छ श्री संघ के अध्यक्ष और गुजराती समाज के उपाध्यक्ष हैं।

श्री गनपतलालजी कोठारी

आप जवाहरात उद्योग के प्रमुख रत्न व्यवसायी है। समाज सेवा के कार्यों मे आपकी बाल्यकाल से ही गहरी अभिरुचि रही है। आप बड़े कर्मठ एव लोकप्रिय समाज सेवी हैं। वर्तमान समय मे आप श्री वर्द्धमान जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सघ के कार्यकारी अध्यक्ष का पद भार बडी योग्यता के साथ वहन कर रहे है।

श्री राजेन्द्र कुमार गोलेछा,

आप सोपस्टोन उद्योग के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यवसायी श्री हरिश्चन्द्रजी गोलेछा के सुपुत्र है। आप सामाजिक अभ्युत्थान के कार्यो मे निरत समाज सेवी सस्थाओ को मुक्तहस्त सहायता देते रहते हैं। मण्डल को भी आपका सहयोग प्राप्त होता रहा है।

श्री वीरेन्द्रकुमार देवेन्द्रकुमार लूणावत

आप दोनों सहोदर जयपुर के लब्धप्रतिष्ठ रत्न-व्यवसायी हैं। लगातार १६५ दिन तक उपवास कर संसार को आश्चर्य मे डाल देने वाली, तपस्या का विश्व मे नया कीर्तिमान स्थापित करने वाली घोर तपस्विनी मा उछावजकवर के ये दोनो सुपुत्र समाज-सेवा

के कार्यो मे प्रगाढ रुचि के साथ सक्रिय सहयोग देते रहते है। अपनी माता द्वारा की गई अभूतपूर्व तपस्या के उपलक्ष मे आप दोनो युवको ने एक लाख रुपये की वडी राशि समाज-सेवा के स्थायी कार्यो के लिए प्रदान कर अनुकरणीय मातृ-भक्ति के साथ-साथ समाज-सेवा का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस आदर्श परिवार पर समस्त जैन जगत् को वडा गर्व है, नाज है।

श्री चम्पालालजी बोथरा, देव आशीष, जयपुर

रत्न व्यवसाय मे आपने उल्लेखनीय प्रतिष्ठा एव ख्याति प्राप्त की है।

पुण्य का पौधा कितना सुखद, शीतल, सुन्दर और सुस्वादु फल वाला होता है—इस आध्यात्मिक गूढ प्रश्न का उत्तर आपके देवाशीष प्राप्त देवोपम सौम्य व्यक्तित्व को देखते ही स्वत. मिल जाता है। सामाजिक धार्मिक एव आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से किये जाने वाले प्रत्येक कार्यक्रम मे सदा से आप प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे योगदान देते आये है।

श्री गाढमलजी सा० ढड्ढा

आप जयपुर के जवाहरात व्यवसाय के प्रमुख व्यवसायी हैं। सामायिक, स्वाध्याय एव समाज सेवा मे आपकी दृढ आस्था है। मण्डल की विविध गतिविधियो मे आपकी गहरी अभिरुचि है।

श्री शरद सुधीर

आप वन्धु द्वय जयपुर के यशस्वी रत्न व्यवसायी तथा सरस्वती और लक्ष्मी दोनो के समान रूप से प्रीति पात्र श्रीमान् श्रीचन्द्रजी गोलेछा (वावू साहव) के पौत्र है। शरद सी शीतलता और सुधीर सा धीरज इन दोनो गुणो का श्री शरद और श्री सुधीर मे नामानुरूप सुन्दर सुयोग है। इन दोनो उत्साही युवा व्यवसाइयो से समाज को वडी आशाए है।

श्री चन्द्रसिहजी बोथरा

आप जयपुर के प्रतिष्ठित रत्न व्यवसायी है। समाज सेवा के कार्यो मे आपका वर्षो से सक्रिय योगदान रहा है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्त्वावधान मे चल रही सामाजिक एवं धार्मिक अभ्युत्थान की विविध गतिविधियो मे आप अपना अमूल्य समय एव श्रम देने के साथ-साथ आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रहे है।

श्री ज्ञानचन्दजी कोठारी

जयपुर के रत्न व्यवसाइयो मे आपका स्थान अग्रगण्य है। इस व्यवसाय मे आपने बड़ी ख्याति प्राप्त की है। प्रमुख रत्न पारखी होने के साथ आप बड़ी सुलझी हुई विचार-धारा के व्यक्ति है। आज की तेजी के साथ बदलती हुई परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए समाज की नीव को सुदृढ बनाने के पक्षपाती हैं। धर्म और समाज की अभ्युन्नति के कार्यो मे आप सदा सक्रिय सहयोग देते आये है। आप से समाज को बहुत कुछ अपेक्षाएं है।

सांघी श्री मन्नूजी

आप मोटर व्यवसाय के बहुत बडे व्यवसायी, धर्म-प्राण धर्म भीरु, भावुक और मिलनसार है। विशाल हृदयता आपका सबसे बडा गुण है। सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक अभ्युत्थान से सम्बन्धित रचनात्मक कार्य-क्रमो में आपकी गहरी दिलचस्पी रहती है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान मे किये जा रहे रचनात्मक कार्य-क्रमो मे आप अजैन होते हुए भी विगत दो वर्षो से खुले दिल से सहयोग देते आ रहे है।

श्री सोहनलाल जैन, जयपुर प्रिण्टर्स

आप जयपुर प्रिण्टर्स एवं जयपुर ब्लाक्स के नाम से राजस्थान मे विख्यात छापेखाने के स्वामी है।

आप बडे सेवाभावी, मृदुभाषी एव छपाई उद्योग मे निष्णात है।

मण्डल के प्रति आपका विशेष स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा है। अनेक अवसरो पर दिन-रात परिश्रम कर मण्डल के साहित्य को समय पर स्वच्छ, सुन्दर और परम आकर्षक रूप में छापकर आपने मण्डल की बडी सहायता की है।

श्री धर्मव्रत आर्य, भरतपुर

आप कृषि उपयोगी यन्त्रो के बहुत बडे व्यवसायी है। 'एग्रोकिंग', मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर—के नाम से विख्यात अपनी फर्म के माध्यम से राजस्थान मे कृषि उन्नति के क्षेत्र मे आपने बडा महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आप अजैन होते हुए भी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब के जन-कल्याणकारी उपदेशो से प्रभावित हो विश्वबन्धुत्व की भावनाओ से ओतप्रोत जैनधर्म के सिद्धान्तो के प्रति गहरी रुचि रखते है।

श्री माणकजी लोढा

जयपुर मे मिर्जा इस्माइल रोड पर स्थित 'हेण्डीक्राफ्ट पेरेडाइज' नामक फर्म के स्वामी श्री माणकजी लोढा आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के अनन्य भक्त एव नि स्वार्थ समाज सेवी डॉ० कल्याणमलजी लोढा (जोधपुर) के वड़े पुत्र है। आप समाज के सर्वांगीण और विशेषत आध्यात्मिक धरातल के अभ्युत्थान के कट्टर पक्षपाती है और इस अभियान मे अपना योगदान करने के लिये सदा सहर्ष तत्पर रहते है।

श्री राधेश्यामजी

आप अरुण एम्पोरियम, ससार विल्ला, जयपुर के नाम से विख्यात फर्म के अधिष्ठाता है। सत समागम की रुचि के फलस्वरूप आप अजैन कुल के होते हुए भी जैनधर्म के जन-कल्याणकारी सिद्धान्तो के प्रति प्रगाढ अभिरुचि रखते हैं और उनके प्रचार प्रसार लिये यथाशक्ति योगदान कर हर्ष का अनुभव करते हैं।

श्री गुलाबमलजी सिघवी

'बुक्स कोर्नर' नामक फर्म के स्वामी तथा सोडा केमिकल इण्डस्ट्रीज, झोटवाडा के मुख्य साझीदार श्री सिंघवी जयपुर के ख्याति प्राप्त व्यवसायी है। धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा के साथ-साथ आप समाज सेवा और सामाजिक अभ्युत्थान के लिये मण्डल द्वारा किये जा रहे कार्यों मे आन्तरिक रुचि रखते हुए मण्डल को आर्थिक सहायता देने के लिये भी तत्पर रहते है।

श्री हुक्मराजजी भंसाली

राजस्थान एल्यूमीनियम कारपोरेशन, जयपुर के स्वामी श्री भसाली बडे ही उत्साही नवयुवक है। आपकी धर्म मे प्रगाढ निष्ठा है। धार्मिक एव सामाजिक अभ्युत्थान के लिये मण्डल द्वारा किये जाने वाले कार्यों मे आप सदा सक्रिय सहयोग देते रहे हैं।

एल्यूमीनियम उद्योग के अतिरिक्त आप सोडा केमिकल इण्डस्ट्रीज, झोटवाडा नामक केमिकल उद्योग मे श्री गुलाबमलजी सिघवी के साझीदार है।

श्री श्रीपाल सिघवी, जोधपुर

आप राजस्थान के यशस्वी पत्रकार और साहित्य प्रकाशन उद्योग के प्रतिष्ठित व्यवसायी है। आचार्य श्री १०८ श्री हस्तीमलजी म सा से प्रेरणा प्राप्त कर सामाजिक एव धार्मिक कार्य-क्रमो मे वडी रुचि रखते है। मण्डल को आपसे तथा आपके प्रेस से समय-समय पर सहायता मिलती रहती है।

श्री केवलचन्दजी हीरावत, परतानियों का रास्ता, जयपुर

आप जवाहरात व्यवसाय के प्रतिष्ठित व्यवसायी है। आप धार्मिक एव सामाजिक प्रगति के कार्यक्रमो मे वडे उत्साह के साथ सदा भाग लेते रहते है। देव धर्म और धर्मगुरु के प्रति अनन्य आस्थावान् आप नियमित रूप से धर्माराधन मे तत्पर रहते है। आपके

सुपुत्र श्री कैलाशचन्दजी आधुनिक विचारो के उत्साही युवक हैं एवं स्वधर्मी बन्धुओ की मदद करने मे बड़ी रुचि रखते है।

श्री नरेन्द्र सांघी, सदस्य लोकसभा

आप भारत के माने हुए मोटर व्यवसाइयो मे अग्रगण्य है। मोटरों के व्यवसाय में आपने वडी ख्याति प्राप्त की है। आप भारतीय गणतन्त्र की लोकसभा के वडे लोकप्रिय सदस्य है। धर्म मे आपकी वडी अभिरुचि है। यह आपकी विशाल हृदयता और सुलझे हुए विचारो का ज्वलन्त उदाहरण है कि अजैन होते हुए भी आप सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान मे सामाजिक, साहित्यिक एवं धार्मिक अभ्युत्थान की दिशा मे की जा रही कार्यवाहियो मे गहरी रुचि रखते हुए मण्डल को सदा सक्रिय सहयोग देते रहते है।

श्री सरदारमलजी चोपड़ा, बारह गनगौर का रास्ता, जयपुर

आप राजस्थान के प्रमुख रत्न व्यवसायी है। रत्न व्यवसाय मे विशिष्ट ख्याति प्राप्त करने के साथ-साथ आपने सामाजिक कार्यो मे बडी निष्ठा एव लगनपूर्वक कार्य कर यश अर्जित किया है। आप पिछले कतिपय वर्षों से श्री वर्द्धमान जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रावक सघ, जयपुर के मन्त्री पद के कार्यभार का निर्वहन वडी योग्यतापूर्वक कर रहे हैं। देव, गुरु, धर्म के प्रति निष्ठावान् चोपडाजी सामाजिक कार्यों एव अपने व्यावसायिक कार्यो मे अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी अपने आराध्य गुरु गजेन्द्राचार्य से ग्रहण किये हुए सामायिक, स्वाध्याय, व्रत प्रत्याख्यानादि नियमो का नियमित रूप से पालन करते है।

श्री कुशलचन्द्रजी हीरावत, बारह गनगौर का रास्ता, जयपुर

आप अपने नाम के अनुरूप ही रत्न व्यवसाय में कुशल है।

आप जयपुर के प्रतिष्ठित रत्न व्यवसायी है। अपने नाम के अनुरूप आप व्यवहार कुशल, व्यवसाय कुशल और सेवाभावी है। आप मण्डल के रचनात्मक कार्यों मे गहरी अभिरुचि रखते है।

श्री विमलकुमार संचेती, हल्दियों का रास्ता, जयपुर

आप जयपुर के कुशल रत्न-व्यवसायी है। धार्मिक एव सामाजिक अभ्युत्थान हेतु सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा सचालित कार्यक्रमों मे आपकी गहरी रुचि है।

श्री सरदारमलजी उमरावमलजी ढड्ढा
परतानियों का रास्ता, जयपुर

आप राजस्थान के लब्धप्रतिष्ठ, सम्पन्न, प्रतिष्ठित एव प्रमुख व्यवसायी है। भव्य व्यक्तित्व के धनी ढड्ढा साहब धार्मिक एव सामाजिक कार्यों में गहरी रुचि रखते हुए सेवाभावी संस्थाओ को सहयोग देने मे तत्पर रहते है।

श्री उमरावमल सेठ, जौहरी बाजार, जयपुर

आप रत्न व्यवसाय के बहुत पुराने ख्याति प्राप्त व्यवसायी है। देव, धर्म और गुरु के प्रति प्रगाढ आस्था के प्रतीक सेठ साहब का अधिकाश समय स्वधर्मी वात्सल्य, सत-सतियो की सेवा और समाज सेवा के कार्यों मे ही व्यतीत होता है। सेठ परिवार की धर्म और गुरु के प्रति निष्ठा समाज मे सर्वविदित है। इस परिवार ने पूर्व मे एक सन्त रत्न और वर्तमान काल मे एक श्रमणी रत्न समाज को प्रदान किया है। जब आपकी किशोर वय की पुत्री कुमारी तेज कवरजी ने ससार से विरक्त हो आत्म कल्याणार्थ श्रमणी धर्म स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की तो सेठ साहब ने उन्हे तत्काल दीक्षित होने की सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी।

सेठ साहब की गुरु भक्ति समाज मे स्पृहा की वस्तु बनी हुई है।

श्री कैलाशचन्द विमलचन्द डागा

आप दोनो उत्साही नवयुवक रत्न व्यवसाय के लब्ध प्रतिष्ठ एव सम्पन्न व्यवसायी है। दोनो सहोदर नवीन सुलझे हुए विचारो के समाजसेवी है। धर्म और धर्मगुरु के प्रति अनन्य आस्थावान डागा बन्धु सामाजिक एव धार्मिक अभ्युत्थान के निर्माणकारी कार्यो मे बडे उत्साह के साथ सक्रिय भाग लेते रहते है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की सृजनकारी प्रवृत्तियो मे आपका पूर्ण सहयोग रहा है।